"ओ३म्"

सामवेद

आध्यात्मिक "भाष्य"

भाष्यकार
पं. विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली ११०००५





सामवेद

[आध्यात्मिक भाष्य]



॥ ओ३म् ॥

सा म वे द

[आध्यात्मिक भाष्य]



भाष्यकार—

पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड



—प्रकाशक—

जन-ज्ञान प्रकाशन

नई दिल्ली-११०००५

जन-ज्ञान प्रकाशन का १८४वाँ पुष्प



प्रकाशक—
पंडिता राकेश रानी, मंत्री
दयानन्द संस्थान, वेद मंदिर
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००५

मूल्य— पुस्तकालय संस्करण= २५)
साधारण संस्करण= २०)

ज्येष्ठ संवत् २०३२

मुद्रक—
विराट् प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा
वैदिक मुद्रणालय दिल्ली में छपा।

लेखक की ओर से !

(१) सामवेद गीतिप्रधान वेद है। सामगानों द्वारा, उपासक में, सामवेद की भावनाओं को प्रतिष्ठित किया गया है। संगीत का जीवन में बड़ा महत्त्व है। गद्य भाषणों द्वारा श्रोताओं पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि संगीत द्वारा पड़ता है। भक्तिमय सात्त्विक गानों द्वारा चित्त की सात्त्विक वृत्तियों को जाग्रत् कर, उनमें एकतानता वनी रहती है, अर्थात् चित्त की सात्त्विक वृत्ति धारारूप में प्रवाहित होती रहती है, जिससे सात्त्विक चित्तवृत्ति प्रवाह में, राजसिक-और-तामसिक चित्तवृत्तियों का अनुप्रवेश नहीं होने पाता। जैसे निःस्तब्ध जलाशय में जलपृष्ठ की समता होती है, उसी प्रकार संगीत द्वारा चित्तवृत्ति में समता वनी रहती है। इस समता की दृष्टि से सम्भवतः सामवेद को साम कहा गया है। "साम" शब्द के सम्वन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार के निर्वचन मिलते हैं, उन्हें भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता।

सोमरस

(२) सायणाचार्य नें सामवेदभाष्य में "सोम" द्वारा ओषधि का ग्रहण किया है, जिसे कि पीस कर और उसका रस निकाल कर पिया जाता है, और उसे इन्द्र देवता को भेंट किया जाता है। निःसन्देह ऐसी ओषधि का भी वर्णन "सोम" पद द्वारा वेदों में हुआ है। परन्तु उपासना-परक सामवेद में सोम पद द्वारा इस ओषधि का ग्रहण नहीं होता। इस सम्बन्ध में अथर्व वेद के निम्नलिखित मन्त्र साक्षिभूत हैं। यथाः—

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥१४।१।३॥
यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥१४।१।४॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥१४।१।५॥

ऋत्विक् लोग जो सोम ओषधि को सम्यक्तया पीसते हैं, और रस निकाल कर पीते हैं, तो वे मानते हैं कि हमने सोमरस पी लिया। परन्तु ब्रह्मवेत्ता लोग जिसे सोम जानते हैं उसका भोग वह व्यक्ति नहीं कर सकता जो कि पार्थिव भोगों में रत है॥

हे सोम! ऋत्विक् लोग जब तुझे पीते हैं, उस पान से तू और अधिक बढ़ता है। वायु अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास द्वारा हे सोम! तेरी रक्षा होती है, और प्राणायाम द्वारा तेरा स्वरूप बनता है जैसे कि मासों द्वारा वर्षों का स्वरूप वनता है॥

हे सोम ! तू वैदिक छन्दों में निर्दिष्ट विधियों द्वारा, तथा बार्हत आदि सामगानों द्वारा, रक्षित होता है, वेदोपदेष्टाओं के उपदेशों को सुन कर तू स्थिर हो जाता है, पार्थिव भोगों में रत व्यक्ति तेरा भोग नहीं कर पाता ।।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि ब्रह्मवेत्ताओं की दृष्टि में सोम ओषधिरूप नहीं। यह सोम वह है जिसका भोग आध्यात्मिक व्यक्ति ही कर सकते हैं, पार्थिव-भोगी नहीं। तथा जैसे-जैसे सोमरस का पान किया जाता है, सोमरस वैसे-वैसे क्षीण नहीं होता जाता, अपितु बढ़ता जाता है। तथा प्राणायाम के अभ्यास द्वारा इस सोमरस की रक्षा होती है। वैदिक विद्वानों के उपदेशों के श्रवण-मनन द्वारा सोमरस उपासक में स्थिर होता जाता है। सामवेद के आध्यात्मिक भाष्य को पढ़ते हुए स्वाध्यायी को यह स्पष्ट हो जायगा कि उपासना प्रकरण में सोमरस का अभिप्राय है,— भक्तिरस। अथर्ववेद का उपर्युक्त वर्णन भी भक्तिरस में पूर्णतया सुसंगत हो जाता है।

सोमरस के वर्णन के प्रसंग में सोमरस का स्वरूप, सोमरस की निष्पत्ति के साधन, उपासक का स्वरूप, उपास्य का स्वरूप, तथा उपासना के लिये उपयुक्त स्थान, और उपासना का फल,—इत्यादि विषयों का भी वर्णन सामवेद में हुआ है।

कविर्मनीषी (यजु. ४०।८)

(३) सामवेद में स्थान-स्थान पर कहा है कि हे इन्द्र ! हमारे सोम-रस अर्थात् भक्तिरस का तू "पान" कर। इस वर्णन द्वारा यह भ्रम हो सकता है कि परमेश्वर पुरुषाकृति है, जो कि मुख द्वारा सोमरस का "पान" करता है। परन्तु यह भ्रम उन्हीं को हो सकता है जिन्हें यह ज्ञात नहीं कि वेद "महाकाव्य" हैं, जो कि परमात्म-कवि की रचना रूप हैं। कवियों की रचना अद्भुत होती है, जो कि अलौकिक बुद्धिगम्य होती है। कवि के शब्दों द्वारा जो सामान्य अर्थ प्रतीत होता है उसे तद्रूप में यथार्थ न समझ कर कवि के मनोगत अभिप्राय को समझने का यत्न करना चाहिये, तभी कविता के वास्तविक अभिप्राय को जाना जा सकता है। परमेश्वर कवि है,—यह उक्ति मन्त्रों में स्पष्ट प्रतीत होती है। वह कवि है, और साथ ही मनीषी भी है, बुद्धिमान् भी है, यथार्थवेत्ता और सर्वज्ञ की कवितामय रचना को समझने के लिये जहां सत्तर्क की आवश्यकता है, उसके साथ-साथ श्रोता और पाठक में स्वयं भी कविता के अभिप्राय को समझने की सूझ-बूझ होनी चाहिये।

लौकिक संस्कृत साहित्य में भी "पान-पेय-पीति" आदि शब्दों

का प्रयोग मुख्यार्थ में न हो कर गौणार्थ में हुआ है। यथाः—कवि कालिदास ने मेघदूत में मेघ को सन्देश देते हुए कहा है कि "सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्"। शब्दमय सन्देश को यहां "श्रोत्रपेय" कहा है अर्थात् श्रोत्र द्वारा "पान" करने योग्य। यहां श्रोत्रपेय का अभिप्राय है श्रोत्र द्वारा ध्यान से सुनने योग्य। इसी प्रकार "विवातपस्मस्तिमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिवतः सुताननम्" (रघुवंश ३।१७) में ध्यानावस्थित अर्थात् निर्निमेष चक्षु के द्वारा पुत्र के सुन्दर मुख के "पान" का वर्णन है, जिसका अभिप्राय है "उत्सुकतापूर्वक देखना"। इसी प्रकार "ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यः" (रघुवंश ७।१२) में राम को "दृष्टि द्वारा देखने को "दृष्टि द्वारा पान" कहा है। पान क्रिया में उत्कण्ठा, अभिरुचि आदि भावों की अभिव्यक्ति होती है।

इसी प्रकार जड़ वस्तु का सम्वोधन और उसके साथ "त्वम्" आदि शब्दों के प्रयोगों को भी कवितामय ही जानना चाहिये।

(४) श्री राय साहिब प्रतापसिंह जी चौधरी, करनाल, तथा श्री पं० भारतेन्द्र नाथ जी, अध्यक्ष दयानन्द-संस्थान, नई दिल्ली की प्रेरणा तथा सहायता द्वारा "सामवेद आध्यात्मिक भाष्य" दोबारा लिखा है। ३ वर्षों के लगातार परिश्रम से जो पहिले "सामवेद आध्यात्मिक भाष्य" लिखा था उसे परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, अजमेर को, छपवाने के निमित्त रजिस्टरी द्वारा, जुलाई में भेजा था। उस में की प्रथम दो दशतियों का भाष्य परोपकारी मासिक पत्र में अगस्त १९७१, तथा सितम्बर १९७१ के दो अंकों में प्रकाशित भी हुआ था। परन्तु तत्पश्चात् कार्यालय-अध्यक्ष की असावधानी के कारण यह आध्यात्मिक भाष्य किसी के हाथ लग गया, जो कि परोपकारिणी सभा के पत्रानुसार १५-९-७३ को सभा के कार्यालय में पुनः किसी प्रकार पहुँचा दिया गया और मेरे पास रजिस्टरी द्वारा लगभग १३-११-७३ को पहुँचा। पृष्ठ संख्या अस्त-व्यस्त पाई गई। इन अवान्तर दो वर्षों में किस वैदिक व्यक्ति ने इस भाष्य का दुरुपयोग किया, इस पर परोपकारिणी सभा नें कोई प्रकाश नहीं डाला। इसलिये पूर्व लिखित "सामवेद आध्यात्मिक भाष्य" के शेष बचे निर्देशों के आधार पर दोबारा भाष्य लिखा गया है, जो कि परमेश्वरीय कृपा से ३० नवम्वर, १९७३ को सम्पूर्ण हुआ है।

(५) मेरी पुत्री श्रीमती कमला, वी० ए०, वी० टी०, ने दोवारा सामवेद भाष्य लिखने में मेरी बड़ी सहायता की है, जिससे लगभग ११-१२ मासों में यह भाष्य सम्पन्न हो सका है। एतदर्थ वह मेरे आशीर्वाद की पात्र है।

६१, कांवली रोड, देहरादून —**विश्वनाथ विद्यालंकार, विद्यामार्त्तण्ड**

काण्ड-सूचि

इस ग्रंथ के प्रकाशन में ५०१)रु० श्री मनोहर विद्यालंकार ने दान दिए हैं, हम उनके आभारी हैं— —सम्पादक

प्रभु का आशीर्वाद

ज्ञान का अमृत उपस्थित है। अर्पित है आप सभी प्रभु भक्तों की सेवा में इस विश्वास के साथ कि इस का पान कर हम अमरता की ओर बढ़ेंगे और मिलेगा सभी को मंगल आशीर्वाद; स्वीकार करें।

—भारतेन्द्रनाथ

अध्यक्ष— दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-११०००५

ओ३म्

सामवेद-संहिता

पूर्वार्चिक

आग्नेय काण्ड

सामवेद आध्यात्मिकभाष्य पूर्वार्चिक (आग्नेय काण्ड) पू०अ० प्र० १ (१) द० १

दशति १

(१-१०) १-२, ४, ७, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ३ मेधातिथिः काण्वः, ५ उशनाः काव्यः, ६ सुदीतिपुरुमीढावाङ्गिरसौ तयोर्वान्यतरः, ८ वत्सः ९ काण्वः, १० वामदेवः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

२ ३ १ २ ३१२ ३२ ३१२
१—अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
१ १र ३१२
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

(अग्ने) हे जगत् अग्रणी अर्थात् सर्वश्रेष्ठ नेता ! (आ याहि) आइये, प्रकट हूजिए हमारे हृदयों में, (वीतये) हम उपासकों के जीवनों में प्रगति देने के लिये, हमारे सब कार्यों में व्याप्त हो जाने के लिये, हमें नया आध्यात्मिक जन्म देने के लिये, हम में कान्ति पैदा करने के लिये, हमारे दुर्गुणों को परास्त करने के लिये, हमारे पापों को भस्म कर देने के लिये, (गृणानः) आप गुरुवत् उपदेश करते हो, अनादि गुरु हो (हव्यदातये) दानयोग्य और भोगयोग्य वस्तुएँ देने के लिये । (होता) आप अपनी ओर उपासक का आह्वान करते, दाता और चराचर के अत्ता हो । आप हमारे (बर्हिषि) हृदयासनों पर (नि सत्सि) निरन्तर विद्यमान हों ।

[अग्ने=अग्रणीर्भवति (निरु० अ० ७, पा० ४, खं० १५) । वीतये=वी गति, व्याप्ति, प्रजन, कान्ति, असन, खादन । गृणानः=गॄ विज्ञाने (चुरादि), तथा "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" (योग १।२६) । हव्य=हु दाने, अदने, आदाने । होता=ह्वेञ् शब्दे, तथा होतुः ह्वातव्यस्य (निरु० ४।४।२५) ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
२—त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥

(अग्ने) हे सर्वाग्रणी ! (त्वम्) आप (यज्ञानाम्) यज्ञिय विचारों और यज्ञिय व्यवहारों के (होता) ज्ञान दाता हो, तथा (विश्वेषाम्) सब का (हितः)

हित करते हो। और (जने मानुषे) उत्पन्न प्रत्येक मनुष्य में (देवेभिः) अपने दिव्य गुणों समेत (हितः) निहित हो।

[यज्ञानाम्=यज् देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान]

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
३—अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

(अग्निम्) जगत् के स्वामी परमात्मा का (वृणीमहे) हम वरण करते हैं, (दूतम्) जो सर्वत्र गतिशील है, रागद्वेष और मिथ्याज्ञान के मल को भस्मीभूत करता, (होतारम्) उपासकों को अपने समीप बुलाता, उन्हें सामर्थ्य प्रदान करता, तथा उनके दुर्गुणों का विनाश करता, (विश्ववेदसम्) समग्र सम्पत्तियों का स्वामी तथा विश्ववेत्ता है। और (अस्य) इस (यज्ञस्य) संसार-यज्ञ का (सुक्रतुम्) याथातथ्येन निर्माण करता, और हमारे यज्ञियकर्मों को सफल करता है।

[दूतम्=दु गतौ; दु परितापे; दूङ् परितापे। होतारम्=मन्त्र संख्या १]

२ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४—अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
१ २ ३ १ २र
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥

(अग्निः) जगत् का नेता परमात्मा (द्रविणस्युः) उपासक के धनदान और बलदान की आहुति चाहता है, तब उपासक की आत्मा पर (वृत्राणि) आवरण डाले हुए कामादि का (जङ्घनत्) बार-बार और पूर्ण हनन कर देता है। वह परमात्मा (विपन्यया) विशिष्ट अर्थात् भक्तिपूर्ण स्तुति-प्रार्थना द्वारा, तथा विशिष्ट व्यवहारों द्वारा उपासक में (समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्त होता है, (आहुतः) और उपासक की आत्मसमर्पणमयी आहुति को स्वीकार करता है। वह परमात्मा (शुक्रः) वीर्यवान्, शीघ्रकारी, शुचि तथा निर्मल प्रकाश वाला है।

[द्रविण=धन, बल (निरु० ८।१।१) वृत्राणि=वृञ् आवरणे। विपन्यया=पण व्यवहारे स्तुतौ च।]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
५—प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
२ ३ २ ३ १ २ र
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

हे उपासको! (वः) तुम्हारे लिये, (अतिथिम्) अतिथि सदृश, (प्रेष्ठम्) प्रियतम, तथा (मित्रं इव प्रियम्) मित्र के सदृश प्रिय, और (अग्ने रथं न) अग्नि-रथ के सदृश (वेद्यम्) प्रगति के लिये प्रापणीय परमात्मा की (स्तुषे) मैं उपासक स्तुति करता हूँ, उसके गुणों का वर्णन करता हूँ।

१ २ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
६—त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।
३ २ ३ १ २र
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे भक्ति मार्ग पर आगे ले जाने वाले प्रभो! (त्वम्) आप (महोभिः)

अपने उग्र प्रकाशों और महाशक्तियों द्वारा (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये, (विश्वस्याः) सब प्रकार की (अरातेः) अदान भावनाओं से हमारी रक्षा कीजिये। (उत) तथा (मर्त्यस्य) मनुष्य सुलभ (द्विषः) द्वेष भावनाओं से हमारी रक्षा कीजिये।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७—एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
३ १ २ ३ १ २
एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥ ७॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप नेता! (एहि) मेरे हृदय में आइये, प्रकट हूजिये, (उ) अवश्य प्रकट हूजिये। मैं (ते) आप के प्रति (इत्था) सत्य (गिरः) वेद-वाणियों, तथा (इतरा) तद्भिन्न लौकिक वाणियों का (सु ब्रवाणि) अच्छे प्रकार उच्चारण तथा गान करता हूँ। आप (एभिः) इन स्तुतिवाणियों द्वारा (वर्धास) ऐसे प्रफुल्लित हूजिये, जैसे कि (इन्दुभिः) चन्द्रकिरणों द्वारा समुद्र बढ़ता तथा प्रफुल्लित होता है।

१ २ ३ २ २र ३ १ २ ३ १ २
८—आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने त्वां कामये गिरा॥ ८॥

हे प्रभो! (ते) आप का (वत्सः) पुत्र यह उपासक, (परमात् चित्) दूर-दूर के (सधस्थात्) स्थानों में भटकने वाले (मनः) मन को, वहाँ से हटा कर, (ते) आप में (आ यमत्) नियन्त्रित करता है। (अग्ने) हे प्रकाशमय विश्वनेता! मैं आप का पुत्र (गिरा) स्तुति-प्रार्थना द्वारा (त्वाम्) आप के दर्शन को केवल (कामये) कामना करता हूँ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
९—त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
३ १ २र ३ १ २
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥ ९॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप नेता (अथर्वा) स्थिर चित्त वृत्ति वाले उपासक ने (पुष्करात् अधि) शरीर की पुष्टि करने वाले हृदय से आपको (अमन्थत) मथा है, (निर्) और मथ कर आप को प्रकट किया है। तथा (विश्वस्य वाघतः) समग्र शरीर का वहन करने वाले (मूर्ध्नः) मूर्धा स्थान से भी मथ कर आप को प्रकट किया है।

[अथर्वा=थर्वतिः चरतिकर्मा, तत्प्रतिषेधः (निरु० ११।२।१९)। पुष्कर=पुष्टि+कर। अमन्थत="स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देव पश्येन्निगूढ़वत्" (श्वेता० २।११)। अर्थात् अपने देह को अवरारणि अर्थात् निचली अरणि-वृक्ष-की-लकड़ी करके, और प्रणव अर्थात् ओ३म् को उत्तरारणि अर्थात् अरणिवृक्ष की ऊपर की लकड़ी करके, तथा ध्यानाभ्यासरूपी मथन द्वारा,

१. अरणि A piece of wood (of samitree) used for kindling the sacred fire by attrition, the two pieces of wood used in kindling the sacred fire (आपटे)।

हृदय में छिपे अग्नि देव का, अर्थात् परमात्मा का दर्शन करे। मूर्ध्नः=मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् (योग ३।३२)]

२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१०—अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।
३ १ २र ३ २
देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! (विवस्वत्) अन्धकार को भगाने वाले सूर्य के सदृश, अज्ञानान्धकार को भगाने वाले अपने ज्योतिर्मय स्वरूप को (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिये (आ भर) प्रकट कीजिये, (महे ऊतये) ताकि हमारी महा-रक्षा हो सके। आप (नः) हमारी (दृशे) अन्तर्दृष्टि के लिये (देवः) ज्योतिर्मय देव हैं।

[विवस्वत्=वि+वस्+वत्। विवासयति दूरीकरोति अन्धकारम् (सूर्यः); अज्ञानान्धकारम् (परमात्मा)]

दशति २

(१-१०) १ आयुङ्क्ष्वाहिः (विरूप आङ्गिरसः); २ वामदेवो गौतमः; ३, ८-६ प्रयोगो भार्गवः; ४ मधुच्छन्दो विश्वामित्रः; ५, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः; ६ मेधातिथिः काण्वः; १० वत्सः काण्वः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११—नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
१ २ ३ १ २
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! (नमः ते) आप को नमस्कार हो। (देव) हे देवाधिदेव! (कृष्टयः) जीवनों की खेतियों में सद्गुणों के बीज बोने वाले कर्मयोगी (ओजसे) ओज-शक्ति की प्राप्ति के लिये, ओजस्वी बनने के लिये, (गृणन्ति) आपकी स्तुति करते हैं। आप अपने स्वाभाविक (अमैः) ज्ञान, बल और क्रिया द्वारा, (अमित्रम्) हमारे साथ स्नेह न करने वाले शत्रुरूप काम, क्रोध आदि को, (अर्दय) नष्ट कीजिये।

[अमैः=अम (बल; निरु० १।२।२०), तथा अम गतौ]

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१२—दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्।
१ २ ३ २
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ २ ॥

हे कर्मयोगियो! (दूतम्) दूतवत् कार्यसाधक, (विश्ववेदसम्) सकल सम्पत्तियों के स्वामी तथा विश्ववेत्ता, (हव्यवाहम्) सब को दान योग्य तथा भोग योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाले, (अमर्त्यम्) मर्त्य मानुष शरीर से रहित तथा अमर, (यजिष्ठम्) यज्ञियकर्मों को सफल बनाने वाले प्रभु को,—(गिरा) स्तुति-प्रार्थना की वाणियों द्वारा मैं, (वः) तुम्हारे लिये, (ऋञ्जसे) प्रसन्न करता हूँ।

[ऋञ्जति=प्रसाधनकर्मा (नि०६।४।२१)]

१२ १ ३२३ २३१२ ३१२
१३—उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
३ १२ २२
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥

(हविष्कृतः) उपासना-यज्ञ में समर्पण योग्य हवियों का सम्पादन किये हुए उपासक की (गिरः) स्तुति-प्रार्थना की वाणियां, (जामयः) जो कि उपासकों के साथ सहोदर बहिनों के समान स्नेह करती हैं,—वे (त्वा देदिशतीः) आप के यथार्थ स्वरूप का निर्देशन करती हुई, (वायो) वायुवत् प्राणाधार आपके (अनीके) समीप (उप अस्थिरन्) उपस्थित हैं। प्रभो! स्वीकार करो।

२३ ३१२३ २ ३२ ३२
१४—उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्
२३ १२३ १२
नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे मार्गदर्शक नेता! (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायंकाल और प्रातःकाल (वयम्) हम उपासक, (धिया) धारणा-ध्यान द्वारा, (नमः भरन्तः) नमस्कारों की भेंटें लाते हुए, (त्वा) आप की (उप एमसि) शरण में आते हैं।

१ २ ३१२ ३१२ ३१२
१५—जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
१२३१२ ३२
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥

(जराबोध) हमारी स्तुति-प्रार्थनाओं को जानने वाले हे प्रभो! (तत्) उन हमारे हृदयों में (विविड्ढि) आप प्रवेश कीजिये, (विशे विशे) ताकि समग्र प्रजा का कल्याण हो, (यज्ञियाय) और हमारे उपासना-यज्ञ सम्पन्न हो सकें। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले आप के प्रति हम उपासक, (दृशीकम्) दर्शनीय (स्तोमम्) स्तुति-गानों की भेंट करते हैं।

[जरा=स्तुति (निरु० १०।१।७) : विविड्ढि=विश् प्रवेशने]

२ ३ १ २र ३१२३२३१ २
१६—प्रति त्यञ्चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
३१२ ३१२
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप नेता! आप (त्यं चारुम्) उस सुन्दर रुचिकर (अध्वरं प्रति) हिंसा आदि दोषों से रहित उपासना-यज्ञ में, (प्र हूयसे) भक्ति और श्रद्धापूर्वक निमन्त्रित किये जाते हैं, (गोपीथाय) ताकि हमारी इन्द्रियों और ऐन्द्रियिक व्यवहारों की सुरक्षा हो सके। हे प्रभो! (मरुद्भिः) प्राणायाम की विधियों और क्रियाओं द्वारा (आ गहि) आइये, हम में प्रकट हूजिये।

२ ३२ ३१२ ३१२३१ २
१७—अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
३१२ ३१२
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥

(वारवन्तम्) प्रशस्त बालों वाले अर्थात् उत्तम नस्ल वाले **(अश्वं न)** अश्व की, जैसे **(नमोभिः)** अन्नों द्वारा सेवा की जाती है, वैसे ही **(वारवन्तम्)** दोषों के निवारक **(त्वा अग्निम्)** आप जगन्नेता की **(नमोभिः)** नमस्कारों तथा हविष्यान्नों द्वारा, **(वन्दध्यै)** हम उपासक, आप का अभिवादन और स्तुतियां करते हैं। **(तम्)** उस आप की हम वन्दना करते हैं जो आप कि **(अध्वराणाम्)** हिंसा आदि दोषों से रहित उपासना आदि यज्ञों के **(सम्राजम्)** सम्राट् हैं।

[नमोभिः=नमः अन्न (निघ० २।७); तथा नमस्कार]

३ १ २र ३ १ २र
१८—और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे।
३ १ ३ २ १
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥

(समुद्रवाससम्) पार्थिव-समुद्र, आकाशीय-समुद्र तथा हृदय-समुद्र में बसने वाले, **(अग्निम्)** प्रकाशस्वरूप जगन्नेता का **(आहुवे)** मैं उपासक श्रद्धा-भक्ति पूर्वक हृदय में आह्वान करता हूँ, **(और्वभृगुवत्)** जो कि उर्वी अर्थात् पृथिवी के पदार्थों को पकाने वाली आदित्याग्नि के समान **(शुचिम्)** शुद्ध और तेजस्वी है। **(अप्नवानवत्)** मैं इस प्रकार प्रभु का आह्वान करता हूँ जैसे कि भक्ति सम्पन्न कर्मयोगी उसका आह्वान करता है।

[अप्नवान=अप्न=कर्म (निघं० १।२)+वान, वन संभक्तौ]

३ १ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २
१९—अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।
३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥

(अग्निं) ज्योतिः स्वरूप परमेश्वर को **(इन्धानः)** हृदय में प्रदीप्त करता हुआ **(मर्त्यः)** मनुष्य, **(मनसा)** मन के साथ **(धियम्)** कर्म का **(सचेत)** सम्बन्ध किया करे, अर्थात् अपनी पवित्र मानसिक भावनाओं के अनुसार कर्मों को भी किया करे। **(विवस्वभिः)** उषा कालों की चमकों के साथ-साथ **(अग्निम्)** प्रकाशमान परमात्म-देव को हृदय में **(इन्धे)** मैं प्रदीप्त करता हूँ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
२०—आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
३ २उ ३ १ १ ३ २
परो यदिध्यते दिवि ॥ १० ॥

(आत् इत्) मानसिक शुद्ध भावनाओं तथा तदनुसार किये कर्मों के परस्पर मेल हो जाने के पश्चात् ही उपासक, **(प्रत्नस्य)** सनातन तथा **(रेतसः)** जगत् के बीज रूप **(ज्योतिः)** परमात्म-ज्योति का **(पश्यति)** दर्शन कर सकते हैं, **(यत्)** जो ज्योति कि **(वासरम्)** दिन के सदृश प्रकाशमान है, **(परः)** सर्वोत्कृष्ट है, **(दिवि)** और द्युलोक में **(इध्यते)** चमक रही है, ग्रहों, उपग्रहों, सूर्य नक्षत्र तथा तारागणों में चमक रही है।

दशति ३

(१-१४) १ प्रयोगो भार्गवः; २, ५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३, १० वामदेवो गौतमः ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ विरूप आङ्गिर्गतिः; ९ गोपवन आत्रेयः ११ प्रस्कण्वः काण्वः; १२, मेधातिथिः काण्व; १३ सिन्धुदीप आम्बरीषः, त्रित आत्यो धाः; १४ उशनाः काण्वः ।। अग्निः ।। गायत्री ।।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२१—अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
२ ३ २ ३ १ २
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ।। १ ।।

(वः) हे उपासको ! तुम्हें, तथा (अध्वराणाम्) तुम्हारे हिंसा रहित यज्ञों अर्थात् स्तुति-प्रार्थना-उपासना, स्वाध्याय, ब्रह्मयज्ञ आदि को (वृधन्तम्) बढ़ाने वाले, वृद्धि देने वाले, (पुरूतमम्) सर्वपालक तथा सर्वत्र परिपूर्ण (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के (अच्छा) अभिमुख तुम हुआ करो, और (सहस्वते) धर्म साहसी (नप्त्रे) पुत्रों और पौत्रों के लिये प्रभु के स्वरूप का उपदेश दिया करो। [पुरु=पृ पालन-पूरणयोः]

३ २ १ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २
२२—अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्य३त्रिणम् ।
३ १ २ ३ २
अग्निर्नो वंसते रयिम् ।। २ ।।

(अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (तिग्मेन) अपनी तीव्र (शोचिषा) चमक द्वारा, (अत्रिणम्) जीवनीय तत्त्वों को खा जाने वाले (विश्वम्) सब अध्यात्मिक शत्रुओं का (नि यंसत्) नियन्त्रण करता है। (अग्निः) वह प्रभु (नः) हमें (रयिम्) सांसारिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियाँ (वंसते) प्रदान करता है। [वंसते=वन संभक्तौ (ठीक प्रकार बाँटना)]।

१ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
२३—अग्ने मृड महां असय्य आ देवयुञ्जनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
इयेथ बर्हिरासदम् ।। ३ ।।

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप नेता ! (मृड) हमें सुखी कीजिये। (महान् असि) आप महान् हैं। (देवयुम्) आप— देव की जो कामना करता है, उस (जनम्) मनुष्य को (अयः) आप प्राप्त होते हैं। (बर्हिः) हृदयासन पर (आ सदम्) आ बैठने के लिये, (आ इयेथ) आप आइये।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
२४—अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः ।
१ २ ३ १ २
तपिष्ठैरजरो दह ।। ४ ।।

(अग्ने) हे प्रकाशमान प्रभो ! (अंहसः) पाप से (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये। (देव) हे देवाधिदेव ! (रीषतः) नाश करने वाले (प्रति) प्रत्येक पाप

से हमारी रक्षा कीजिये। (अजरः) आप जरा से रहित हैं, अर्थात् जीर्ण-शीर्ण न होने वाले हैं। (तपिष्ठैः) अत्यन्त तपाने वाले तेजों द्वारा, हमारे पापों को (दह) दग्ध कीजिये। (स्म) आप का यह स्वभाव चिरन्तन काल से है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
२५—अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥ ऋ० ६-१६.४३

(अग्ने) हे प्रकाशमान प्रभो! शरीर-रथ के इन्द्रिय-घोड़ों को (युङ्क्ष्व) आप ही जोतिये, (ये अश्वासः) जो इन्द्रिय-घोड़े कि (तव हि) आप के ही हैं। (देव) हे देव! आप द्वारा जुते इन्द्रिय-घोड़े उपासक को (साधवः) साधना-मार्ग पर ले जाते हैं। (आशवः) शीघ्र गति वाले हो कर ये इन्द्रिय-घोड़े उपासक को (अरम्) शीघ्रता से (वहन्ति) लक्ष्य तक पहुँचा देते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २
२६—नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।
३ १ २
सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥

(नक्ष्य) हे प्राप्त होने योग्य! (विश्पते) हे प्रजाओं के स्वामिन्! (आहुत) हे समर्पण की आहुति को स्वीकार करने वाले! (अग्ने) हे सर्वाग्रणी! (द्युमन्तम्) द्युतिमान् और द्युलोक के स्वामी, तथा (सुवीरम्) उत्तम धर्मवीर बनाने वाले या उत्तम और विशिष्ट प्रेरणाओं के दाता आप का, (वयम्) हम उपासक, (नि धीमहे) निरन्तर ध्यान करते हैं। [नक्ष्य=नक्षतिः एतिकर्मा (निघं० २।१४) सुवीरम्=सु+वि+इर् (गतौ)]

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
२७—अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम्।
३ १ २र
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ ७ ॥

(अयम्) यह (अग्निः) प्रकाशस्वरूप प्रभु (मूर्धा) संसार का शिरोमणि है, (दिवः) द्युलोक की (ककुद्) सर्वोच्चशक्ति है, (पृथिव्याः) पृथिवी का (पतिः) रक्षक स्वामी है। (अपाम्) कर्मों के (रेतांसि) बीजों अर्थात् संस्कारों को, उनकी उत्पादकशक्ति को, (जिन्वति) तृप्त कर देता है, जिस से कि वे कर्म-बीज पुनः प्ररोहित नहीं होते।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
२८—इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।
१ २ ३ २ २ १ २
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥

(अग्ने) अनन्तविद्यानिधि परमेश्वर! जैसे सृष्टि के आदि में, (देवेषु) पुण्यात्मा अग्नि—वायु-आदित्य-अङ्गिरा नामक मनुष्य देवताओं की आत्माओं में, (त्वम्) आप ने (नव्यांसम्) नवीन=नवीन बोध कराने वाले, (गायत्रम्) गायत्री आदि छन्दों से युक्त, (सनिम्) सब को सुखों का सेवन कराने वाले, चारों वेदों का

(प्रवोचः) उपदेश किया था, और अगले कल्प-कल्पान्तरों में फिर भी करोगे, वैसे (अस्माकम्) हमारी आत्माओं में (इयम्) इस वेद विद्या का उपदेश (सु) अच्छी प्रकार कीजिये। [ऋग्वेद में महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य के आधार पर अर्थ किया है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

२९—तन्त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।

१ २ ३ १ २

स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशमय जगन्नेता! (अङ्गिरः) हे अङ्ग-प्रत्यङ्ग और समग्र शरीर के रसरूप प्रभो! (गिरा) वेदवाणियों द्वारा (गोपवनः) इन्द्रियों को पवित्र करने वाला उपासक, (तं त्वा) उस आप को, अपने हृदय में (जनिष्ठत्) प्रकट करता है। (पावक) हे पवित्र करने वाले! (सः) वह आप (हवम्) उपासक की पुकार को (श्रुधी) सुनिये।

२ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २

३०—परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।

२ ३ १ २ ३ १ २

दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

(वाजपतिः) अन्नों-बलों-ज्ञानों का स्वामी, (कविः) तथा वेदकाव्यों का रचयिता, (अग्निः) प्रकाशमय प्रभु, (हव्यानि) उपासक द्वारा समर्पित हव्यों की ओर (परि अक्रमीत्) कदम बढ़ाता है, या उन समर्पणों की रक्षा के लिये मानो उनकी परिक्रमा करता रहता है, और (दाशुषे) समर्पक को देने के (रत्नानि) नानाविध रत्नों को (धत्) धारण करता है। [रत्नानि=अभिलषित योग, योगज-विभूतियाँ, तथा मोक्ष]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

३१—उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।

३ १ २र ३ १ २

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ११ ॥

जैसे (केतवः) सूर्य-किरणें (त्यं सूर्यम्) उस सूर्य को (उद्) ऊपर आकाश में (वहन्ति) ढोए लिये जाती हैं, ताकि (विश्वाय दृशे) समग्र प्राणी उसका दर्शन कर सकें, इसी प्रकार (केतवः) परमात्मा का ज्ञापन करने वाले परमेश्वरीय नियम तथा नानाविध रचनाएँ, (जातवेदसम्) वेदों को प्रकट करने वाले सर्वज्ञ (त्यं देवम्) उस प्रसिद्ध परमेश्वर को, (उ) निश्चय से, (उद् वहन्ति) उद्घोषित कर रही हैं, जता रही हैं, (विश्वाय दृशे) ताकि सब उसका दर्शन कर सकें।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

३२—कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।

३ १ २ ३ १ २

देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥

हे उपासक! तू (अध्वरे) हिंसारहित उपासना-यज्ञ में, (अग्निम्) प्रकाश-स्वरूप जगन्नेता की (उपस्तुहि) उपासना विधि से स्तुति किया कर, जो जगन्नेता

कि (कविम्) वेदव्यासों का कवि है, (सत्यधर्माणम्) जिसके धर्म नित्य-और-सनातन हैं, (देवम्) जो दिव्यगुणों वाला है, (अमीवचातनम्) और जो अविद्या आदि रोगों का विनाश करता है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

३३—शन्नो दवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये।

२उ ३ १ २

शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ १३ ॥

जगन्नेता की (देवीः) दिव्यशक्तियाँ (नः) हमें (शम्) शान्ति दें, ताकि हमें (अभिष्टये) अभीष्ट फल प्राप्त हो सकें, तथा ये दिव्य शक्तियां (नः) हमारी (पीतये) रक्षा के लिये, तथा खान-पान की सामग्री प्रदान करने के लिये (भवन्तु) हों। ये दिव्य शक्तियां (नः) हमारे (शम्) उपस्थित अज्ञान आदि रोगों को शान्त करें, तथा (योः) भविष्य में होने वाले इन रोगों के भय को दूर करें। ये दिव्य शक्तियां (नः) हमारे उपकार के लिये (अभि) हमारी ओर (स्रवन्तु) सदा प्रवाहित होती रहें। [शंयोः=शमनं च रोगाणां, यावनं च भयानाम् (निरु० ४।३।२१)]

१ २ ३ १ २उ ३ १ २

३४—कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥

(सत्पते) हे सच्च स्वामिन्! आप (नूनम्) निश्चय से (कस्य) किसकी (धियः) बुद्धियों और कर्मों को (परीणसि) भरपूर (जिन्वसि) तृप्त कर देते हैं, संतुष्ट कर देते हैं? आप उसकी बुद्धियों और कर्मों को भरपूर तृप्त अर्थात् सन्तुष्ट करते हैं (ते) आप की (गिरः) वेद वाणियां, (यस्य) जिस की (गोषाताः) इन्द्रियों में तृप्ति प्रदान कर देती हैं।

[बुद्धि, इन्द्रियां, और कर्म,—ये तीन साधन हैं प्रवृत्तियों के। बुद्धि में ज्ञान और इच्छा प्रकट हुई तो इन्द्रियों के द्वार बनाकर कर्मों द्वारा उन इच्छाओं को पूरा किया जाता है। जिस व्यक्ति की इन्द्रियों में तृप्ति प्रकट हो जाती है उस की बुद्धि और कर्म भी तृप्त रहते हैं। मन्त्र में इन्द्रिय निग्रह तथा इन्द्रिय-संयम का वर्णन हुआ है। [गोषाताः=गो (इन्द्रियां) + षणु (दाने)]

दशति ४

(१-१०) १, ३, ७ शंयुर्बार्हस्पत्यः (७ तृणपाणिः); २, ५, ८-९ भर्गः प्रागाथः; ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; १० सोमरिः काण्वः ॥
अग्नि ॥ बृहती ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

३५—यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रिय मित्रन्न शंसिषम् ॥ १ ॥

हे उपासको! (अग्नये) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता की प्राप्ति के लिए,

(च) और (दक्षसे)* उत्साह-बल-प्रगति और वृद्धि के लिए,—(वः) तुम्हारे (यज्ञायज्ञा) प्रत्येक उपासना-यज्ञ में सम्मिलित हो कर, (वयम्) हम प्रजाजन, (गिरा गिरा) वेद की नानाविधि स्तुति वाणियों द्वारा,—(अमृतम्) अमर (जातवेदसम्) तथा वेदोत्पादक सर्वज्ञ परमात्मा की (प्रशंसिषम्) प्रशंसा करते हैं, (न) जैसे कि हम अपने (प्रियं मित्रम्) प्यारे मित्र की प्रशंसा किया करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २
३६—पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ २ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप अग्रणी! (पाहि) रक्षा कीजिए (नः) हमारी (एकया) एक वेदवाणी द्वारा, (उत) और (पाहि) रक्षा कीजिये (द्वितीया) द्वितीया वेदवाणी द्वारा; (ऊर्जांपते) हे बलों-और-प्राणों के पति। (तिसृभिः) तीन (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (पाहि) हमारी रक्षा कीजिये; (वसो) हे हृदयवासी तथा विश्ववासी प्रभो! (पाहि) हमारी रक्षा कीजिये (चतसृभिः) चारों वेद-वाणियों द्वारा।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३७—बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप सर्वाग्रणी! (देव) हे देवाधिदेव! (बृहद्भिः अर्चिभिः) महाज्वालाओं के साथ, तथा (शुक्रेण शोचिषा) निर्मल चमक के साथ, (भरद्वाजे) शक्ति भरे-मन में, आप (समिधानः) प्रदीप्त हूजिए। (यविष्ठ्य) हे सदा-युवा! (पावक) हे पवित्र करने वाले! (रेवत्) उपासकों को अध्यात्मिक सम्पत्तियां देते हुए आप, उन जीवनों में, (दीदिहि) प्रदीप्त हूजिये। [अर्चिभिः शोचिषा (देखो मन्त्र ६)। भरद्वाज=मन। "मनो वै भरद्वाज ऋषिः (शत. ब्रा. ८।१।१।९); तथा "भरद्वाज ऋषिः=मनो गृह्णामि" (यजु०१३।५५)। भरद्वाज=भरत्+वाज। शक्ति से भरा मन।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
३८—त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥

(स्वाहुत) उत्तम विधि से भक्तिरस की आहुति को प्राप्त हुए (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! (ये) जो उपासक (मघवानः) आध्यात्मिक सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेते हैं, और जो (गोनाम्) अपनी इन्द्रियों की (ऊर्वम्) हिंसक अग्नियों को (दयन्त) संयम में रखते हैं, (त्वे) वे (सूरयः) प्रेरणाएं देने वाले विद्वान्, आप के (प्रियासः) प्यारे (सन्तु) हो जाते हैं, और (जनानाम्) प्रजाजनों के (यन्तारः) नियन्ता हो जाते हैं।
[ऊर्वम्=उर्वी हिंसार्थः]

* दक्षसे=दक्षतेरुत्साहकर्मणः (निरु. १।३ ७); तथा दक्ष=गति, वृद्धि।

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३९—अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अप्रोषिवान् गृहपते महां असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥

(जरितः) हे वेदों द्वारा उपदेश देने वाले (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (विश्पतिः) प्रजाजनों के एक मात्र स्वामी तथा रक्षक हैं। (देव) हे देवाधिदेव! आप उपासकों के (रक्षसः) राक्षसी भावों और राक्षसी कर्मों को (तपानः) तपा कर उन्हें दग्ध कर देते हैं। (गृहपते) हे हमारे हृदय=गृहों के स्वामिन्! (अप्रोषिवान्) आप इन हृदय=गृहों से कभी प्रवास न करें। आप (महान् असि) महान् हैं। (दिवस्पायुः) द्युलोक की भी आप ही रक्षा कर रहे हैं। (दुरोणयुः) और आप हमारे हृदय=गृहों को चाहते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ५ २
४०—अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप (अमर्त्य) अमर नेता! मेरे अध्यात्मिक जीवन की (उषसः) नई उषा का (चित्रम्) विचित्र और (विवस्वत्) अज्ञानान्धकार को दूर करने वाला जो (राधः) आराधना रूप धन है; (आवह) उसे मुझे प्राप्त कराइये। (जातवेदः) हे वेदोत्पादकः (दाशुषे) आत्मसमर्पण किये हुए मेरे प्रति (त्वम्) आप (अद्य) आज से ही, (उषर्बुधः) मेरे आध्यात्मिक जीवन की उषा में उद्बुद्ध होने वाले (देवान्) दिव्यगुणों को, और दिव्यशक्तियों को, (आवह) प्राप्त कराइए।

१ २ ३ २ २ २उ ३ १ २
४१—त्वन्नश्चित्रं ऊत्या वसो राधांसि चोदय।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥

(चित्र) हे अद्भुत! (वसो) हे विश्ववासी! (त्वम्) आप (ऊत्या) अपनी रक्षाशक्ति द्वारा, (राधांसि) आध्यात्मिक धन (नः) हमारे प्रति (चोदय) प्रेरित कीजिए। (अग्ने) हे सत्पथ पर ले जाने वाले! आप (अस्य रायः) इस आध्यात्मिक धन के (रथिः असि) स्वामी हैं। और (नः) हमारी (तुचे) सन्तानों के लिए आप (गाधम्) अपना आश्रय (विदाः) दीजिए। [अग्ने="अग्ने नय सुपथा राये"]

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
४२—त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः।
१ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८॥

(अग्ने) हे सत्पथ पर ले जाने वाले! (त्रातः) हे त्राण करने वाले! (त्वम् इत्) आप ही (सप्रथाः) इस विस्तृत संसार के स्वामी हैं, (ऋतः) सत्यस्वरूप, (कविः) और वेदों के कवि हैं। (समिधान) हे सब को चमकाने

वाले ! (दीदिविः) तथा स्वयं चमकने वाले ! (वेधसः) विधि-विधान से चलने वाले (प्रियासः) आप के प्रिय उपासक, (त्वाम्) आप की (आ विवासन्ति) सदा परिचर्या करते हैं।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
४३—आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥९॥

(उपमाते) हे सर्वोपमारूप ! (पावक) हे पतित पावन ! (अग्ने) हे सत्पथ पर आगे ले जाने वाले प्रभो ! आप (नः) हमें (रयिम्) ऐसी आध्यात्मिक सम्पत्ति (आ रास्व) प्रदान कीजिये, जो कि (वयोवृधम्) हमारी आयुओं को बढ़ाए, (शंस्यम्) प्रशंसनीय, (पुरुस्पृहम्) तथा बहुत चाही गई है। तथा (सुनीती) उत्तम मार्ग द्वारा कमाई गई, (सुयशस्तरम्) अत्युत्तम यश देने वाली जो सांसारिक सम्पत्ति है, उसे भी हमें (आ रास्व) प्रदान कीजिये।

२उ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
४४—ये विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥

(यः) जो (होता) दाता (विश्वा) सब प्रकार की (वसु) सम्पत्तियां (दयते) प्रदान करता है, और (जनानाम्) सब जनों को (मन्द्रः) हर्ष, आनन्द, और तृप्ति प्रदान करता है, (अस्मै) इस (अग्नये) प्रकाशस्वरूप नेता के लिये, (स्तोमाः) हमारे स्तोत्र और कीर्तन (प्रयन्तु) भेंट रूप हों ! (न) जैसे कि श्रेष्ठ अतिथि के लिए (मधोः) मधुर वस्तुओं के (प्रथमानि पात्रा) श्रेष्ठ पात्र भेंट किये जाते हैं।

दशति ५

(१-१०) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २ भर्गः प्रागाथः; ३, ७ सौभरिः काण्वः; ४ मनुर्वैवस्वतः; ५ सुदीतिपुरुमीलावांगिरसौ; ६ प्रस्कण्वः; ८ मेधातिमेध्यातिथी काण्वौ; ९ विश्वामित्रो गाथिनः १० कण्वो घोरः ॥ अग्निः, २ इन्द्रः ॥ वृहती ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
४५—एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारे लिए, मैं, (एना नमसा) इस नमस्कार विधि द्वारा, (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता का (आ हुवे) आह्वान करता हूँ, जो कि (ऊर्जः न पातम्) उपासक की बलशक्ति-और-प्राणशक्ति को पतित नहीं होने देता, जो (प्रियम्) प्रिय है, (चेतिष्टम्) अत्यन्त सचेत बनाने वाला (अरतिम्) सर्वगत, (स्वध्वरम्)अहिंसामय यज्ञिय कर्मों के सम्पादन में सहायक है, (विश्वस्य) विश्व के कर्मों का साधक, (अमृतम्) और अमर है। [अरतिम् ऋ गतौ]

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
४६—शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्त्तास इन्धते ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १२
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥२॥

हे जगन्नेता ! आप विश्व में (शेषे) अव्यक्त रूप में शयन कर रहे हैं, (वनेषु) जैसे वनों में अग्नि अव्यक्त रूप में शयन करती है तथा गर्भस्थ शिशु (मातृषु) माताओं के गर्भों में शयन करते हैं । (मर्त्तासः) उपासक जन (त्वा) आप को हृदयों में (सम् इन्धते) प्रदीप्त करते हैं । (अतन्द्रः) आप निरालस होकर (हविष्कृतः) श्रद्धाभक्ति पूर्वक आत्मसमर्पण करने वाले की (हव्यम्) आत्म-समर्पणरूपी हवि को (वहसि) स्वीकार करते हैं, (आत् इत्) तदनन्तर ही आप (देवेषु) दिव्य उपासकों के हृदयों में (राजसि) चमकते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
४७—अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
२ ३ २ ३ १ २र२ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्नि नक्षन्तु नो गिरः ॥३॥

(गातुवित्तमः) सच्चे मार्गदर्शक का (अदर्शि) दर्शन, मैंने कर लिया है, (यस्मिन्) जिस मार्गदर्शक में व्रती (व्रतानि) अपने-अपने व्रतों का (आ दधुः) आधान करते आए हैं । वह (उप) हमारे समीप है, (उ) निश्चय से हमारे समीप है । (सुजातम्) स्पष्ट हुए, (आर्यस्य वर्द्धनम्) ईश्वरभक्तों की वृद्धि करने वाले (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप जगत्स्वामी को (नः) हमारी (गिरः) स्तुतिवाणियाँ (नक्षन्तु) प्राप्त हों । [आर्यः =ईश्वरपुत्रः (निरु.६।५।२६)]

३ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ २
४८—अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४॥

(अध्वरे) अहिंसामय उपासना-यज्ञ में, (उक्थे) वैदिक सूक्तों के उच्चारण करने पर, (अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (पुरोहितः) प्रत्यक्षवत् सम्मुख निहित हो जाता है, तथा दूर-दूर के (ग्रावाणः) पर्वत और (बर्हिः) ओषधियां आदि भी प्रत्यक्षवत् सम्मुख निहित हो जाती हैं । (मरुतः देवाः) हे मितभाषी अर्थात् वाक्-संयमी (देवाः) दिव्यजनो ! तथा (ब्रह्मणस्पते) हे वेदाचार्य ! मैं (ऋचा) ऋचाओं के स्वाध्याय द्वारा, आप सब से, (वरेण्यं अवः) सर्व श्रेष्ठ रक्षा की (यामि) याचना करता हूँ ।

[ग्रावाणः— योगज ज्ञान द्वारा दूर-दूर के, सूक्ष्म तथा व्यवहित पदार्थों का भी प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है । (योग ३।४९,५४ तथा ४।३१) । ऋचा= वैदिक स्वाध्याय का फल है "स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः" (योग २।४४) । मरुतः=मितराविणः (निरु० ११।२।१४)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४९—अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्नि राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ।।५।।

हे उपासक ! तू (अवसे) आत्मरक्षा के लिए (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप नेता की (ईडिष्व) स्तुति किया कर, (गाथाभिः) वैदिक गानों द्वारा उस की स्तुति किया कर (शीरशोचिषम्) जो कि प्रसिद्ध ज्योति के रूप में सब में रम रहा है। (पुरुमीढ) पालक-और-परिपूर्ण परमात्मा को भक्तिरस सींचने वाले हे उपासक ! तू (राये) आध्यात्मिक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए (अग्निम्) उस जीवन ज्योति की (ईडिष्व) स्तुति किया कर (श्रुतम्) जो कि वेदों में सुना गया है, तथा विश्रुत है। (नरः) हे उपासक नर-नारियो ! (अग्निः) यह जीवन-ज्योतिः (सुदीतये) कष्ट निवारण के लिए (छर्दिः) छत वाले गृह के समान है।

[पुरुमीढ—पुरु (पृ पालनपूरणयोः)+मिह् सेचने। सुदीति—सु+दीङ् क्षये]

३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
५०—श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
१ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ।।६।।

(श्रुत्कर्ण) श्रवण शक्ति से सम्पन्न कानों वाले के सदृश श्रवण करने में समर्थ (अग्ने) हे जगन्नता ! (श्रुधि) मेरी स्तुतियों और प्रार्थनाओं को सुनिये। (प्रातर्यावभिः) प्रातःकाल होने वाली, (सयावभिः) और समान रूप में सब को प्राप्त होने वाली, (वह्निभिः) तथा अग्नि के समान चमकने वाली (देवैः) दिव्य किरणों के साथ-साथ, तत्काल किए जाने वाले (अध्वरे) मेरे हिंसारहित उपासना यज्ञ में हे परमात्मन् ! आप (मित्रः) मित्र के रूप में स्नेहार्द्र हो कर, तथा (अर्यमा) न्यायकारी के रूप में न्यायानुसार, (बर्हिषि) मेरे हृदयाकाश में (आ) (सीदतु) आ विराजिये।

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
५१—प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।।७।।

(दैवोदासः) देवाधिदेव तथा कुवासनाओं का क्षय करने वाला (अग्निः देवः) प्रकाशस्वरूप परमात्मदेव, (मज्मना) बल की दृष्टि से (इन्द्रः) विद्युत् और सूर्य के (न) समान है। वह (पृथिवीं मातरम्) पृथिवी माता को (अनु) अपनी इच्छानुकूल (वि वावृते) वृत्ताकार परिधि में विविध रूप से प्रवृत्त करता है, चला रहा है। वह अग्निदेव (नाकस्य) आनन्द के (शर्मणि) प्रशान्त-सागर में (तस्थौ) सर्वदा स्थित रहता है। [दैव, दासः (दसु उपक्षये)]

२ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
५२—अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

(सुक्रतो) हे सुविज्ञ, सुकर्मी, तथा शुभसंकल्पी प्रभो ! (मम) मेरी (अया) इस (तन्वा) लगातार की गई (गिरा) स्तुति-प्रार्थना की वाणी द्वारा (अधि वर्धस्व) मुझ में अधिकाधिक प्रकाश में आप बढ़िये, (अध) और (ज्मः) पृथिवी से, (अधवा) अथवा (बृहतः) विस्तृत (रोचनात् दिवः) चमकीले द्युलोक से, सामग्री ला कर, (जाता) सब जन्मधारी प्राणियों का (पृण) पालन-पोषण कीजिये। [पृथिवी से खाद्य सामग्री, और आकाश तथा द्युलोक से शुद्ध वायु, वर्षा जल, प्रकाश तथा गर्मी आदि सामग्री]

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ ३
५३—कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्तपः ।
१ २र ३ १२ ३ १ २ २ २ ३ २उ ३ १ २
न तत्त प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः ॥९॥

हे प्रभो ! (त्वम्) आप (वना) सम्यक् भक्ति की (कायमानः) कामना करते हुए, (यत्) जो (मातृः) हमारे जीवनों का निर्माण करने वाले (अपः) प्राणों, कर्मों, तथा रसरक्तों में (अजगन्) व्याप्त हो चुके हैं, (तत्) अब तो (ते) आप का (निवर्तनम्) बिछोड़ा (न प्रमृषे) सहा नहीं जाता। क्योंकि पहिले तो आप मुझ से (दूरे सन्) दूर थे, अप्रत्यक्ष थे, परन्तु अब तो (इह) यहीं मुझ में आप (आ भुवः) प्रकट हो चुके हैं। [वना=वन् संभक्तौ (सम्यक् भक्ति)]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५४—नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१०॥

(अग्ने) हे सर्वाग्रणी ! (मनुः) श्रवण-मनन करने वाला उपासक, (त्वाम्) आप को (विदधे) अपनी निधि मानता है। (शश्वते) शाश्वत काल से आने वाले (जनास) प्रजाजनों के लिये आप (ज्योतिः) ज्योतिरूप हैं। (ऋतजातः) आप सत्यनिष्ठ व्यक्ति में प्रकट होते हैं। (उक्षितः) भक्ति रस द्वारा सींचे गए आप, (कण्वे) कण-कण रूप में आप की भक्ति का उपार्जन करने वाले मेधावी उपासक में, (दीदेथ) ज्योतिरूप में चमकते हैं। आप वे हैं (यम्) जिसे कि (कृष्टयः) समग्र प्रजाजन (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं।

प्रथम प्रपाठक का प्रथमार्धप्रपाठक समाप्त

दशति ६

(१-८) १, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ३, ५ कण्वो घौरः; ४ सौभरिः काण्वः, ६ उत्कीलः कात्यः; ८ विश्वामित्रो गाथिनः ॥ अग्निः, २ ब्रह्मणस्पतिः; ३ यूपः ॥ बृहती ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५५—देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

हे उपासको ! (द्रविणोदाः देवः) आध्यात्मिक धन और बल का दाता परमात्मदेव (वः) तुम्हारी (पूर्णाम्) भक्तिरस से परिपूर्ण (आसिचम्) हृदय-स्रुक् को (विवष्टु) चाहता है। अतः परमात्मा पर भक्तिरस की (उत्) उत्कृष्ट (सिञ्चध्वम्) वर्षा करो, (उप पृणध्वम्) और उपासना द्वारा परमात्मा को तृप्त करो। (आत् इत्) तदनन्तर ही (देवः) परमात्मदेव (वः ओहते) तुम्हारे लिये सुख प्रवाहित करता है। [स्रुक्=चम्मच, जिसके द्वारा, अग्नि में घृताहुति दी जाती है]

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ १ २
५६—प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥२॥

(ब्रह्मणस्पतिः) वेदों का पति परमात्म-गुरु (प्रैतु) हमें प्राप्त हो, (देवी) ज्ञान प्रकाश देने वाली (सूनृता) प्रिय-और-सत्य वेदवाणी (प्र एतु) हमें प्राप्त हो। (देवाः) हमारी दिव्य भावनाएँ (नः अच्छ) हमें ऐसा पुत्र (नयन्तु) प्रदान करें, जो (वीरं, नर्यम्) वीर हो, नर-नारियों का हित करने वाला हो, (पंक्तिराधसम्) ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अतिशूद्र,—इन पांचों की सेवा करने वाला हो, (यज्ञम्) तथा यज्ञिय विचारों वाला हो।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र३ २
५७—ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥

हे प्रभो ! (नः) हमारी (सु ऊतये) उत्तम रक्षा के लिये, (उ) निश्चय से आप ही, (वाजस्य) समृद्धि के (सनिता) दाता (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि शक्ति में (तिष्ठ) स्थित होते हैं, (न) जैसे कि (देवः) प्रकाशमान (सविता) सूर्य, हमारी सुरक्षा के लिये, हमारे सौरमण्डल में सर्वोपरि शक्तिरूप में स्थित है, (यत्) जब कि हम उपासक, (अञ्जिभिः) आपके स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाले, (वाघद्भिः) आप को प्राप्त कराने वाले मन्त्रों द्वारा, (विह्वयामहे) विशेषतया आप को पुकारते हैं।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २
५८—प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशꣳसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४॥

(यः) जो (मर्तः) मरणधर्मा उपासक (राये) आध्यात्मिक सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिये, (प्र निनीषति) आपके साथ प्रणय करता है, (वसो) हे सम्पत्-स्वरूप प्रभो ! और जो उपासक (ते) आप के प्रति या आप के नाम पर (दाशत्) उस सम्पत्ति का दान करता रहता है, (सः) वह उपासक, (अग्ने) हे

सर्वाग्रणी ! (वीरं धत्ते) वीर सन्तान प्राप्त करता है, जो सन्तान कि (उक्थशंसिनम्) वैदिक सूक्तों द्वारा आप की स्तुति गाती रहती है, तथा (त्मना) स्वयं (सहस्रपोषिणम्) हजारों नर-नारियों को अपने आध्यात्मिक-ज्ञान द्वारा या प्राप्त प्राकृतिक धन द्वारा, परिपुष्ट करती रहती है।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
५९—प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ ३ १ २
अग्निँसूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यँसमिदन्य इन्धते ॥५॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारे, तथा (देवयतीनाम्) परमात्मा-देव की अभिलाशा वाले (पुरूणाम्) नानाविध (विशाम्) प्रजाजनों के उपास्य, (यह्वम्) महान् (अग्निम्) सर्वाग्रणी प्रभु का, (वृणीमहे) हम वर्णन करते हैं, (सूक्तेभिः वचोभिः) उत्तम कहे गए वैदिक वचनों द्वारा; (यम्) जिस प्रभु को (अन्ये इत्) अन्य सब भी (सम् इन्धते) अपने हृदयों में संदीप्त करते हैं।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
६०—अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य।
१ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६॥

(अयम्) यह (अग्निः) प्रकाशस्वरूप सर्वाग्रणी, (सुवीर्यस्य) शुभ-तथा-विशिष्ट प्रेरणा देने वाले (सौभगस्य) उत्तम-भगों अर्थात् आध्यात्मिक-सम्पत्तियों, धर्म, यश, ज्ञान और वैराग्य का (ईशे) अधीश्वर है; (रायः) उन सम्पत्तियों का (ईशे) अधीश्वर है जिनसे (स्वपत्यस्य) हमारी सन्तानें उत्तम होती है; तथा (गोमतः) हमारी इन्द्रियां प्रशस्त होती हैं; तथा वह प्रभु (वृत्रहथानाम्) पापों के हनन करने वाले साधनों का भी (ईशे) अधीश्वर है, [सुवीर्यस्य=सु+वि+ईर् (प्रेरणा)+य]

१२ ३१ ३ १ २र ३ २
६१—त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे।
१ २र १ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७॥

(अग्ने) हे जगन्नेता प्रभो ! (त्वम्) आप (गृहपतिः) हमारे शरीरों, हृदयों तथा ब्रह्माण्ड-गृह के (पतिः) रक्षक और स्वामी हैं, (नः) हमारे (अध्वरे) हिंसारहित उपासना-यज्ञ में (त्वम्) आप (होता) शक्ति प्रदाता हैं। (विश्ववार) हे सब क्लेशों का निवारण करने वाले ! तथा सब द्वारा वरणीय प्रभो ! (त्वम्) आप (पोता) पवित्र करने वाले, तथा (प्रचेताः) प्रकृष्ट ज्ञानी हैं। (वार्यम्) वरण करने योग्य सद्गुणों को (यक्षि) आप हम में संगत कीजिए। आप (यासि च) इन सद्गुणों को प्राप्त हैं। [यक्षिः=यज् (देवपूजा, संगतिकरण, दान) यासि=या आपणे]

१ २ ३ १ २र ३ १ २
६२—सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपां नपातँ सुभगँ सुदंससँ सुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ।।८।।

(मर्तासः) हम मरणधर्मा उपासक (सखायः) आपके सखा बन कर, (ऊतये) आत्म रक्षा के लिये, (त्वा देवम्) दिव्य गुणों वाले आप का (ववृमहे) वरण करते हैं, (अपां न पातम्) आप जो कि सत्कर्मों से पतित नहीं होने देते, (सुभगम्) जो उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, (सुदंससम्) सुकर्मा हैं, (सुप्रतूर्तिम्) पापों के सर्वोत्तम नाशक हैं, तथा (अनेहसम्) स्वयं निष्पाप हैं, उस का हम वरण करते हैं। [सखायः=समान ख्यातिमन्तः। आपकी ख्याति के समान ख्याति वाले। आप संसार में रहते संसार से अलिप्त हैं, परोपकारी तथा न्यायकारी हैं, ऐसी ख्याति अर्थात् प्रसिद्धि वाले हम उपासक]

दशति ७

(१-१०) १ श्यावाश्वो वामदेवो वा; २ उपस्तुतो वार्हिष्टव्यः; ४ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ५ कुत्स आंगिरसः; ५-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; ८, १०, वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ।। १, ३, ५, ९ त्रिष्टुप्: २, ४ जगती; १० त्रिपाद्विराड्गायत्री ।।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
६३—आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
इडस्पदे नमसा रातहव्यँ सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ।।१।।

हे उपासको ! (हविषा, आ जुहोत) प्रभु के प्रति आत्मसर्पणरूपी हवि की आहुतियां दो, (मर्जध्वम्) इस प्रकार आत्मशोधन करो, (होतारम्) दाता और गृहपतिम्) तुम्हारे हृदय-गृहों तथा ब्रह्माण्ड-गृह के रक्षक और स्वामी को (नि दधिध्वम्) अपनी श्रेष्ठ विधि समझो, और उसका निरन्तर ध्यान किया करो (इडस्पदे) स्तुति-प्रार्थना के स्थान में अर्थात् हृदय में, (नमसा) नमस्कारों द्वारा, (रातहव्यम्) हव्यों के दाता की (सपर्यत) पूजा किया करो, जो दाता कि (पस्त्यानाम्) गृहस्थियों का (यजतम्) पूजनीय तथा सत्संग के योग्य है। [पस्त्यम्=गृहनाम (निघं० ३।४)]

३ २उ ३ १ २ २ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
६४—चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यां३ चरन् ।।२।

(शिशोः) शिशुवत् राग-द्वेष से रहित, परन्तु कार्य करने में (तरुणस्य) सदा युवा परमात्मा का, (वक्षथः) संसार-भार का वहन कार्य, (चित्र इत्) विचित्र है, आश्चर्यकारी है, जो कि (धातवे) दुग्ध पान तथा अन्य प्रकार के धारण-पोषण के लिये (मातरौ) माता-पिता का (न अन्वेति) अनुगमन नहीं करता, अर्थात् अवतार

रूप में मानुष-जन्म नहीं लेता। (अनूधाः) स्तनरहित प्रकृति (यद्) जब (अजीजनत) परमात्मा को सक्रिय रूप में प्रकट करती है, (अधा) तदनन्तर, (चित) यह परमात्मा सचेत हो कर, (महि दूत्यं चरन्) महा दूत-कर्म करता हुआ, (आ ववक्षत्) सब ओर विस्तृत संसार का वहन करने लगता है। [दूत्यम् :—दूत का कार्य है एक देश का सन्देश दूसरे देश में पहुँचाना। प्रभु अपने संदेशों को एक लोक से दूसरे लोकों में सदा पहुँचा रहा है। तभी सभी लोक-लोकान्तर पारस्परिक समन्वय में स्थित हैं।]

३ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
६५—इदं त एकं पर उ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
२ १ २ ३ २ उ १ २ ३ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २
संवेशनस्तन्वे३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥३॥

हे मुमुक्षो! (इदम्) यह ज्ञानेन्द्रियगण (ते) तुम्हारी (एकम्) एक ज्योति है, (परः) इस से परे और इस से उत्कृष्ट (ते) तेरी (एकम्) एक और मनरूपी ज्योति है। समाधि अवस्था में तू (तृतीयेन ज्योतिषा) निज तृतीय-ज्योति रूप में अर्थात् जीवात्मारूप में (संविशस्व) परमात्म-ज्योति में सम्यक् प्रवेश कर। (परमे जनित्रे) जगत् के जनयिता परम-ज्योतिरूप परमेश्वर में (संवेशनः) सम्यक् प्रवेश पाया हुआ तू हे मुमुक्षो! (तन्वे) विस्तृत अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा की प्राप्ति के लिये (चारुः) उसे रुचिकर (एधि) हो जा, और (देवानाम्) अन्य दिव्य मुमुक्षुजनों का (प्रियः) प्रेम पात्र बन जा।

[शिवसंकल्पमन्त्रों में ज्ञानेन्द्रियों को ज्योति कहा है, और मन को "ज्योतिषां ज्योतिः" कहा है। यथा :—"ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" (यजुः ३४।१)। तृतीय ज्योति जीवात्मा है]

३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ ३
६६—इमँ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सँसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४॥

(इमं स्तोमम्) इस स्तुति समूह का अर्थात् सामगान का, हम उपासक, (मनीषया) बुद्धिपूर्वक (सं महेम) मिल कर निर्माण करते हैं, (इव) जैसे कि (रथम्) रथ का निर्माण बुद्धिपूर्वक किया जाता है; और इसे (अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) वेदप्रकाशक परमेश्वर की भेंट करते हैं। (अस्य) इस परमात्मा के (संसदि) सत्संग में (नः) हमारी (प्रमतिः) मति उत्कृष्ट और (भद्रा) सुखदायिनी और कल्याणकारिणी हो जाती है, (हि) यह निश्चित है। (अग्ने) हे ज्योतिस्वरूप प्रभो! (तव) आप के (सख्ये) सखिभाव में (वयम्) हम (मा रिषाम) विनष्ट नहीं होते।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२३२उ ३ २ ३ २
६७—मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २
कवि सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥

(दिवः) द्युलोक के (मूर्धानम्) शिरोरूप, (पृथिव्याः) पृथिवी के (अरतिम्) स्वामी, (वैश्वानरम्) सब नर-नारियों के नायक, (ऋते आजातम्) सत्यनिष्ठ

उपासक में प्रकट होने वाले, (कविम्) वेदकाव्यों के कवि, (सम्राजम्) जगत् के सम्राट्, (जनानाम्) जनता के लिये (अतिथिम्) अतिथिवत् पूजनीय, (नः) हमारे (पात्रम्) पालक-और-त्राणकर्त्ता (अग्निम्) ज्योतिरूप प्रभु को, (देवाः) उपासक-देव (आसन्) सुख में स्थित वाणियों द्वारा, (जनयन्त) सर्वसाधारण प्रजाजन के लिये प्रकट करते हैं, उपदेशरूप में उसका ज्ञान देते हैं।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ ३ १ २र ३ १ २
६८—वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः।
१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो
३ १ २
जिग्युरश्वाः ॥ ६ ॥

(न) जैसे (देवाः) प्राकृतिक शक्तियां (पर्वतस्य) मेघ की या पर्वत की (पृष्ठात्) पीठ से, (आपः) जलों को (वि जनयन्त) प्रकट करती हैं, वैसे (अग्ने) हे ज्योतिर्मय प्रभो! (देवाः) उपासक-देव (त्वत्) आप से प्रकट हुए (उक्थेभिः) वैदिक सूक्तों द्वारा, आप को प्रकट करते हैं। (सुष्टुतयः गिरः) उत्तम स्तुतिरूप वेद वाणियां (तं त्वा) उस आप को (वाजयन्ति) सक्रिय बनाती हैं, (न) जैसे कि (गिर्ववाहः) अपनी वाणी के इशारों से अश्वों का वहन करने वाले अश्वारोही योद्धा अश्वों को सक्रिय करते हैं, प्रेरित करते हैं, और परिणाम में (अश्वाः) अश्व (आजिम् जिग्युः) युद्ध पर विजय पा लेते हैं, (न) इसी प्रकार उपासक काम क्रोध आदि पर विजय पा लेते हैं। [पर्वत=मेघ (निघं० १।१०)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २
६९—आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रँ होतारँ सत्ययजँ रोदस्योः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ १ २ ३ १२
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥

हे उपासको! (वः) तुम्हारे (अध्वरस्य) हिंसारहित उपासना-यज्ञों के (राजानम्) सम्राट्, (रुद्रम्) पापियों को रुलाने वाले, (होतारम्) सब के दाता, (रोदस्योः) द्युलोक-और-भूलोक में (सत्ययजम्) यथार्थ रूप में परस्पर सम्बन्ध पैदा करने वाले (हिरण्यरूपम्) हितकर और रमणीयरूप वाले (अग्निम्) ज्योतिर्मय प्रभु को,—(अचित्तात्) अचेत बना देने वाली, (तनयित्नोः) मृत्युरूप घनघोर गर्जना से (पुरा) पहिले ही, (अवसे) अपनी रक्षा के लिये, (आकृणुध्वम्) अपने अभिमुख कर लो, अपना बना लो।

३ १उ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७०—इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥ ८ ॥

(राजा) जगत् का राजा, (अर्यः) सब का स्वामी, (नमोभिः) नम्रभावों और नमस्कारों द्वारा (सम् इन्धे) सम्यक् प्रदीप्त होता है, (यस्य) जिस राजा की (प्रतीकम्) प्रतीकभूत (अग्निः) पार्थिव-अग्नि (घृतेन आहुतम्) घृताहुति प्राप्त

करती है। (सबाधः) विघ्न-बाधाओं से पीड़ित हुए (नरः) नर, (हव्येभिः) हवियों-और-आत्मसमर्पणों द्वारा, (ईडते) इस राजा की पूजा तथा सत्कार करते हैं। (अग्निः) यह ज्योतिर्मय प्रभु (उषसाम् अग्रम्) उषाकालों से पहिले अर्थात् प्रातः-काल की सन्धिवेला से, (अशोचि) उपासकों के हृदयों में चमक उठता है।

[प्रतीकम् :—अथर्ववेद में कहा है "अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः" (अथर्व० ४।३६।६), अर्थात् प्राकृतिक अग्नि में परमात्माग्नि प्रविष्ट हुई है। इसीलिये अग्नि-होत्र का विधान है। अग्निहोत्र की अग्नि में दी गई आहुति परमेश्वर के प्रति दी आहुति समझनी चाहिये। अग्निहोत्र की अग्नि, परमात्माग्नि की प्रतीक रूप है। ये दोनों अग्नियां ज्योतिर्मय हैं]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २र १ ३ १ २
७१—प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥

(बृहता केतुना) बड़े प्रकाश के साथ (अग्निः) ज्योतिर्मय जगन्नेता (प्र याति) समाधि अवस्था में उपासक की ओर प्रयाण करता है, और (रोदसी) उपासक के सिर-से-नख तक (वृषभः) आनन्दरस की वर्षा करता हुआ, (आ याति) उपासक को प्राप्त होता है, (रोरवीति) और बार-बार उपासक को मार्गोपदेश करता रहता है। (दिवः चित् अन्तात्) द्युलोक के प्रान्त भाग से, परमात्मा ने, (उपमाम्) उपमा को (उद् आनट्) प्राप्त किया है। (महिषः) वह महा-प्रभु (अपाम् उपस्थे) रक्त-रूपी जल के संग्रहालय में, अर्थात् हृदय में, (ववर्ध) अपने प्रकाश में बढ़ता है।

[रोदसी का अर्थ है द्युलोक-और-भूलोक। आध्यात्मिक दृष्टि में द्युलोक है, "सिर" और भूलोक है "पैर"; (अथर्व १०।७।३२ तथा यजु० ३१।१३)। उपमाम्-यथा :—"आदित्यवर्णम्" (यजु० ३१।१८) "नक्षत्राणि रूपम्" (यजु० ३१।२२)]

३ २उ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २
७२—अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्।
३ १ २ ३ १२ ३ २
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥

(नरः) हे उपासक शिरोमणियो! (हस्तच्युतम्) हाथ आदि अवयवों से रहित, अर्थात् अप्रकाय (यजु० ४०।८), (प्रशस्तम्) वेदों में प्रशंसित, (दूरे दृशम्) दूर दृष्टि वाले, (गृहपतिम्) ब्रह्माण्ड-गृह के स्वामी, (अथव्युम्) सर्वगत (अग्निम्) प्रकाश स्वरूप जगन्नेता को, (दीधितिभिः) ध्यान-वृत्तियों द्वारा, (अरण्योः) स्वदेह-रूपी अधरारणि तथा प्रणवरूपी उत्तराणि से (जनयत) प्रकट करो। [अरण्योः—"स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्यान निर्मथनाभ्यासात् देवं पश्येत् निगूढ़वत्" (श्वेता० उप० १।१४)]

दशति ८

(१-८) १ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ; २, ५ वत्सप्रिर्भालन्दनः; ३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४, ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ पायुर्भारद्वाजः ॥ अग्निः, ३पूषा ॥ त्रिष्टुप् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
७३—अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ ३ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥

(इव) जैसे (धेनुम्) प्रातःकाल आती हुई दुधार गौ, दुग्धधाराओं के साथ आती है, वैसे प्रकाश-धाराओं समेत (आयतीम्) आती हुई (उषासम्) उषा को (प्रति) लक्ष्य करके, (जनानां) उपासकों की (समिधा) आत्मसमर्पणरूपी समिधाओं द्वारा, (अग्निः) परमात्माग्नि (अबोधि) हृदयों में जागरित हो जाती है, जब कि (यह्वाः) महावृक्ष (इव) जैसे (वयाम्) अपनी शाखाओं को (प्र उज्जिहानाः) आकाश में ऊपर की ओर फेंकते हैं, वैसे उषा की (भानवः) चमकती हुई किरणें (नाकम् अच्छ) द्युलोक की ओर (प्र सस्रते) अपना प्रसरण अथवा फैलाव कर रही होती हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
७४—प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं दर्माणम् ।
१२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥२॥

(जयन्तम्) सर्वविजयी, (महाम्) सर्वतो महान्, (विपोधाम्) विप्रों के पोषक, (मूरैः) मूढों द्वारा भी (अमूरम्) अमूढ जाने गये, (पुरां दर्माणम्) जीवन्मुक्तों की शरीर-पुरियों का विदारण करने वाले, (नयन्तम्) सन्मार्ग पर ले चलने वाले, (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (वनाम्) संभजनीय, (धियम्) ज्ञानस्वरूप, (हरिश्मश्रुम् न) [1]हरी किरणों वाले सूर्य के सदृश वर्तमान अर्थात् आदित्यवर्णी, तथा (वर्मणा) वेदरूपी कवच द्वारा रक्षा करके जो (धनर्चिम्) आध्यात्मिक धनों का प्रकाश करता है उस प्रभु को (धाः) हे उपासक ! तू हृदय में धारण कर, और (प्रभूः) शक्तिशाली वन, प्रभावशाली वन।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
७५—शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १र ३ २ ३ १ २
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ।
॥ ३ ॥

हे प्रभो ! (ते) आप का (शुक्रम्) शुभ्ररूप (अन्यत्) एक रूप है, और (यजतम्) संसार-यज्ञ की रचना (ते) आपका (अन्यद्) उससे भिन्न दूसरा रूप है, (विषुरूपे) ये दोनों रूप विषम रूपों वाले हैं, (अहनी) जैसे कि दिन-रात विषम रूपों वाले हैं, तो भी आप (द्यौः इव) सूर्य के सदृश सदा स्वप्रकाशी हैं। (स्वधावन्) हे स्वाश्रित सत्ता वाले ! आप ही (विश्वाः मायाः) सब प्रकार के ज्ञानों-विज्ञानों के (अवसि) रक्षक हैं। (पूषन्) हे पुष्टि देने वाले ! (इह) इस संसार में (ते)

---

१. सूर्य की किरणों के कारण वृक्षों और वनस्पतियों में हरापन होता है। इस दृष्टि से सूर्य की किरणों को "हरि" कहा है। अथर्ववेद में कहा है कि "तस्य रूपेणेमे वृक्षाः हरितः हरित स्रजः" (१०।८।३१)। श्मश्रु—किरणें।

आपका (रातिः) दिया दान, (भद्रा अस्तु) सब के लिये, सुखदायी तथा कल्याणकारी हो। [प्रलय में परमेश्वर अपने विशुद्धरूप में रहता है, परन्तु सृष्टिकाल में वह पिता, माता, सृष्टिकर्ता, कर्मफल दाता, बन्धु, सखा, ज्ञानदाता आदि नानारूपों वाला हो जाता है,—ये दो रूप विषुरूप हैं]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
७६—इडामग्ने पुरुदँसँसनिं गोः शश्वत्तमँहवमानाय साध।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशमान जगन्नेता ! (इडाम्) मेरी स्तुति-प्रार्थना वाणी को (पुरुदंससम्) तदनुरूप महाकर्म करने वाली (साध) कीजिये, मुझे (गोः सनिम्) वेदवाणियों के उपदेशों का दाता (साध) बनाइये, (हवमानाय) आप के प्रति आत्माहुति समर्पित करने वाले मुझ उपासक के प्रति (शश्वत्तमम्) शाश्वतिक मोक्ष को (साध) सिद्ध कीजिये। (नः) हमारे (सूनुः) पुत्र-और-पुत्रियां (तनयः) सत्कर्मों का विस्तार करने वाले (स्यात्) हों, और (विजावा) विजयशील हों। वेदों द्वारा उपदिष्ट (ते) आप की (सा) वह (सुमतिः) शुभ मति (अस्मे) हमें (अस्तु) प्राप्त हो।

१ २र ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २
७७—प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते।
३ ३ २ ३ २ ३१ २र १ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
दधद्यो धायी सुते वयाँसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः।

(होता) सब का दाता प्रभु (प्रजातः) मुझ में प्रकट हो गया है। वह (महान् नभोवित्) महान् है, आकाश में सर्वत्र विद्यमान है, (नृषद्मा) सब नर-नारियों में अन्तर्यामी रूप में स्थित है, (अपां विवर्ते) शारीरिक रस-रक्तों के विविध प्रवाहों में (सीदत्) वह स्थित है। (यः) जो (धायी) विधाता (सुते) हमारी सन्तानों में (वयांसि) दीर्घ जीवन (दधत्) प्रदान करता है वह (यन्ता) सर्वनियन्ता है, (वसूनि) और सम्पत्तियों का (विधते) विधिपूर्वक विधान कर रहा है (तनूपाः) वह हमारे शरीरों का रक्षक है।

१ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७८—प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुँसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥६॥

(तवसः) बलशाली (इन्द्रस्य) क्षत्रिय के (कृतानि) किये क्षात्रधर्मों अर्थात् प्रजापालन को (इव) जैसे प्रभु (प्र विवष्टु) चाहता है, वैसे वह (असुरस्य) प्रज्ञावान् तथा (कृष्टीनाम्) प्रजाओं द्वारा (अनुमाद्यस्य) निरन्तर प्रसादित किये गए (पुंसः) प्रजावर्धक ब्राह्मण व्यक्ति के ब्राह्मणधर्मों को भी चाहता है। (प्रशस्तम्) सर्वप्रशस्त उस (सम्राजम्) जगत्-सम्राट की, (वन्द द्वारा) वन्दना-की-विधि से

:हम (वन्दमानाः) वन्दनाएं कर रहे हैं। (१)

३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
७९—अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः।
३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥ ७॥

(इव इत्) जैसे (गर्भिणीभिः) गर्भवती माताओं द्वारा (गर्भः) गर्भस्थ शिशु (सुभृतः) गुप्तरूप से धारित किया होता है, वैसे (जातवेदाः) सर्वज्ञ परमात्माग्नि, (अरण्योः) देहरूपी-अधरारणि तथा प्रणवरूपी उत्तरारणि में (निहितः) निहित रहता है। वह (अग्निः) परमात्माग्नि (जागृवद्भिः) उपासना-कर्म में सदा जागरूक रहने वाले, (हविष्मद्भिः) आत्मसमर्पण रूपी हवियों वाले (मनुष्येभिः) मनुष्यों द्वारा, (दिवे दिवे) प्रति दिन (ईड्यः) स्तुत्य तथा पूजनीय हैं।

३ १ २ ३ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८०—सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांऽसि पृतनासु जिग्युः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अनु दह सहमूरान्क्रयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः॥ ८॥

(अग्ने) अग्नि के सदृश (पापों को) दग्ध करने वाले हे प्रभो! आप (सनात्) सदा (यातुधानान्) यातनाएँ देने वाले कामादि शत्रुओं का (मृणसि) विनाश करते हैं। (पृतनासु) देवासुर-संग्रामों में (रक्षांसि) पाप-राक्षस (त्वा) आप पर (जिग्युः न) विजय नहीं पा सकते। (मूरान्) इन मूढ भावनाओं को जो कि (क्रयादः) शरीर के मांस को सुखा देती हैं, अर्थात चिन्ता, ईर्ष्या आदि शत्रुओं को, आप (अनुदह) निरन्तर दग्ध करते रहिए। (ते) आप के (दैव्यायाः) दैव्य (हेत्याः) वज्र प्रहार से (मा मुक्षत) छूटने न पाएं। [क्रयादः अर्थात् कच्चा मांस खाने वाले। चिन्ता, ईर्ष्या आदि मनुष्य के कच्चे मांस को खाते रहते है]

। दशति ९।

(१-१०) १ गय आत्रेयः; २ वामदेवः; ३, ४, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४ द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः; ६ वसूयव आत्रेयाः; ७, ९ गोपवन आत्रेयः; ८ पूरुरात्रेयः; १० वामदेवः; कश्यपो वा मारीचो. मनुर्वा वैवस्वत, उभौ वा॥ अग्निः॥ अनुष्टुप्॥

२ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
८१—अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम्॥ १॥

(अग्ने) हे प्रभो! (ओजिष्ठम्) अत्यन्त ओजभरा (द्युम्नम्) आत्मिक

१. वेदों में ब्राह्मणशक्ति और क्षात्रशक्ति में परस्पर समन्वय को उत्तम माना गया है। यथा:—"यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना" (यजु० २०।२५) इसी दृष्टि से मंत्र ७८ में क्षात्रधर्मों और ब्राह्मणधर्मों का एक साथ वर्णन हुआ है। असुर=असु (प्रज्ञा, निरु१०।३।३४)+र (वाला)।

धन-और-आत्मिक यश (अस्मभ्यम्) हम उपासकों को (आभर) प्राप्त कराइये। (अध्रिगो) हे प्रभो ! आप की गति इस सम्बन्ध में अबाधित है। (पनीयसे) स्तुति के योग्य (राये) आध्यात्मिक धन की प्राप्ति के लिये, तथा (वाजाय) इस निमित्त बल-वेग की प्राप्ति के लिये, आप (नः) हमारे लिये (प्र पन्थाम्) श्रेष्ठ-मार्ग (रत्सि) निर्माण करते हैं तय्यार रखते हैं। [अध्रिगो=अधृतगमन (निरु-५।२।१०) रत्सि=रद् विलेखने]

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८२—यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (यदि, अग्निम्) यदि प्रकाशस्वरूप परमात्माग्नि को, (अनु) निरन्तर अपने जीवन में, (इन्धीत) प्रदीप्त रखता है, तो वह (वीरः स्यात्) वीर बन जाता है, और यदि वह (आनुषक्) निरन्तर (हव्यम्) आत्मसमर्पणरूपी हव्य की (आ जुह्वत्) आहुति देता रहता है, तो वह (दैव्यम्) परमात्मदेव द्वारा प्रदत्त (शर्म) सुख-शान्ति का (भक्षीत) उपभोग करता रहता है।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
८३—त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि संच्छुक्र आततः।
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥

(पावक) हे पवित्र करने वाले प्रभो ! जैसे यज्ञाग्नि से उठा (धूमः) धूआँ आकाश की ओर (ऋण्वति) फैलता है, वैसे (ते) आप का (शुक्रः) निर्मल (त्वेषः) प्रकाश (दिवि) द्युलोक में अर्थात् तारागणों में (सम् आततः) सम्यक् फैला हुआ है। (न) जैसे (सूरः) सूर्य (द्युता) अपनी दीप्ति द्वारा चमकता है, (न) वैसे (हि) ही (त्वम्) आप (कृपा) अपनी सहज कृपा या सामर्थ्य द्वारा, मुझ उपासक में, (रोचसे) चमक रहे हैं।

१ २र ३ १ ३र ३ १ २र
८४—त्वꣳहि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप नेता ! (त्वं हि) आप ही (क्षैतवत्) क्षिति निवासी प्रजाजनों की भलाई सम्बन्धी (यशः) यश को (पत्यसे) प्राप्त हुए हुए हैं, (न) जैसे कि (मित्रः) मित्र अपने मित्र की भलाई के यश को प्राप्त करता है। (विचर्षणे) हे विविध जगत् के द्रष्टा !, (वसो) हे विश्ववासी ! (त्वम्) आप अपने (श्रवः) इस यश को इस प्रकार (पुष्यति) परिपुष्ट किये हुए हैं; (न) जैसे कि (पुष्टिम्) पुष्टि अपने स्वरूप में सदा ही परिपुष्ट होती है। [विचर्षणिः=पश्यतिकर्मा (निघं० ३।११)]।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८५—प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ।। ५ ।।

(पुरुप्रियः) बहुत प्यारा तथा बहुतों को प्यारा (अग्निः) प्रकाशमय नेता, (प्रातः) प्रातःकाल की उपासना में (विशः) उपासकजनों को, (अतिथिः) श्रोत्रिय अतिथि के सदृश, (स्तवते) सन्मार्ग का उपदेश करता है। (यस्मिन्) जिस (अमर्त्ये) अमर-परमात्माग्नि में, (विश्वे मर्तासः) सब मरणधर्मा उपासक, (हव्यम्) दानयोग्य और उपभोग योग्य अपने-अपने पदार्थों की (इन्धते) आहुतियाँ देते हैं।

२ २र ३ २ ३ १ २ ३१२
८६—यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ।। ६ ।।

(विभावसो) प्रभु के प्रकाश को सर्वोत्तम धन समझने वाले हे उपासक ! (वाहिष्ठम्) परमात्मा को अपनी ओर लाने में, या परमात्मा तक अपने आप को पहुँचाने में (यत्) जो (बृहत्) सर्वश्रेष्ठ समर्पण है, (तत्) उसे, (अग्नये) प्रकाश स्वरूप प्रभु के लिये (अर्च) अर्चनारूप में भेंट कर। हे उपासक ! (इव) जैसे (महिषी) रानी, समक्ष आए राजा के प्रति, (उदीरते) प्रत्युत्थान करती है, वैसे (त्वत्) तुझ से (रयिः) तेरी सम्पत्तियां, तथा (वाजाः) तेरी शक्तियां, परमात्मा के प्रति मानो (उदीरते) प्रत्युत्थानरूप में गति करें। [वाहिष्ठम्=वह प्रापणे]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८७—विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ।। ७ ।।

हे उपासको ! (वाजयन्तः) तुम आध्यात्मिक-बल चाह रहे हो, (वः) तुम में से (विशः विशः) प्रत्येक उपासक के (अतिथिम्) अतिथिवत् पूजनीय, (पुरुप्रियम्) अतिप्रिय, तथा (वः दुर्यम्) तुम्हारे गृह-जीवनों के हितकर (अग्निम्) अग्रनेता प्रभु के प्रति, (वचः स्तुषे) मैं स्तुति वचनों का उच्चारण करता हूं, तथा (शूषस्य) सुखदायी (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा उस के गुणों का वर्णन करता हूं [स्तुषे]। [दुर्यम्=दुर्याः (गृहाः, निघं० ३।४)। मन्मभिः=मननीयैः स्तोत्रैः (निरु० १०।१।५)।

३ २उ ३ १ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
८८—बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
२ ३ २ २र ३ १ २ ३ २ ३२
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ।। ८ ।।

(न) जैसे मित्र (मित्रम्) अपने मित्र को, (प्रशस्तये) उसकी प्रशंसा के लिये, (पुरः) सदा अपने सामने अर्थात् ध्यान में रखता है, वैसे (मर्तासः) मरण-

धर्मा-उपासक (यम्) जिस अग्नि देव को, (प्रशस्तयं) उसकी प्रशंसा-गान के लिये सदा (पुरः) अपने सामने (दधिरे) रखते हैं, उसे अपने ध्यान में रखते हैं, वैसे हे उपासक ! तू भी उस परमेश्वर को सदा ध्यान में रख, और (भानवे) आदित्यवत् प्रकाशमान (अग्नये देवाय) परमेश्वर-रूप अग्नि-देव के प्रति, (हि) निश्चयपूर्वक तू (बृहद्वयः) अपनी आयु का बड़ा भाग, (अर्च) अर्चनारूप में समर्पित कर।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
८९—अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३१२ ३ १ २
य स्म श्रुतर्वन्नार्क्ष्ये बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥

हम उपासक (अगन्म) पहुँच गए हैं उस तक, जोकि (वृत्रहन्तमम्) पाप-वृत्रों का समूल हनन करता, (ज्येष्ठम्) सब से बड़ा, (अग्निम्) सर्वाग्रणी, (आनवम्) तथा मनुष्यमात्र का हितकारी है, और (यः) जो (श्रुतर्वन्) श्रुति अर्थात् वेदों द्वारा श्रवण-मनन करने वाले (बृहदनीके) महा-प्राणायामाभ्यासी व्यक्ति में, तथा (आर्क्ष्ये) द्युलोक के नक्षत्र समूह में (इध्यत्) चमकता है, और (स्म) सदा चमकता आया है। [अनवः=मनुष्याः (निघं० २।३)। ऋक्ष=नक्षत्र। अनीक=अन् प्राणने]

३.१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९०—जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥

परमात्माग्नि (परेण धर्मणा) पर-धर्म के सेवन द्वारा (जातः) प्रकट होता है, (यत्) जबकि वह (सवृद्भिः सह) सदा साथ रहने वाली अपनी स्वाभाविक शक्तियों समेत (आ भुवः) आ प्रकट होता है। तब उपासक "कश्यप" संज्ञा वाला हो जाता है। (यत्) जबकि (अग्निः) परमात्मा (कश्यपस्य) कश्यप का (पिता) पिता बनता है, (श्रद्धा) श्रद्धा उसकी (माता) माता बनती है, और उसका (मनुः) मन (कविः) उस का उपदेष्टा गुरु बनता है।

[पर धर्मः=सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, उपासना आदि पर-धर्म हैं, पर-ब्रह्म की प्राप्ति के लिये। अभ्युदय अर्थात् सांसारिक उन्नति के लिये, सुपथ द्वारा उपार्जन के निमित्त जो कर्म किये जाते हैं, इन्हें अपर-धर्म कहते हैं। पराविद्या और अपरा-विद्या का भेद भी इसी दृष्टि से है। कश्यपस्य="कश्यपः पश्यको भवति, यत् सर्वं पश्यतीति" (तै० आ०, १।८।८)। उपासक जब दिव्यदृष्टि से सम्पन्न हो जाता है तब वह "कश्यप" हो जाता है, यथार्थ द्रष्टा बन जाता है]।

दशति १०

(१-६) १ अग्निस्तापसः; २, ३ वामदेवः कश्यपः, असितो देवलो वा, ४ सोमाहुति-भार्गवः; ५ पायुर्भारद्वाजः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ अग्निः १ विश्वेदेवाः; २ अङ्गिराः ॥ अनुष्टुप् ॥

२३ १२३ १२ ३ २३ १२
९१—सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३ २र ३ १२३ १२३ २३१२
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥१॥

हम उपासक (अग्निम्) प्रकाश स्वरूप जगन्नेता का (अनु) निरन्तर (आरभामहे) अवलम्ब लेते हैं, जोकि (सोमम्) जगदुत्पादक है, (राजानम्) जगत् का राजा है, (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ, वरणीय तथा पापनिवारक है, (आदित्यम्) आदित्यवत् सदा प्रकाशमान है, (विष्णुम्) सर्वव्यापक, (सूर्यम्) सब का प्रेरक है, (ब्रह्माणम्) जो बृहती-शक्ति है, (च) और (बृहस्पतिम्) बृहती-वेदवाणी का पति है।

[मन्त्र में वर्णन अग्नि का है, साथ ही यह दर्शाया है कि सोम, वरुण, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, बृहस्पति आदि नाम भी उसी अग्नि के ही हैं, जोकि उसके भिन्न-भिन्न गुणों का वर्णन करते हैं]।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २र
९२—इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
१ ३ २ ३ १ २ ३ २ २र
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥२॥

(यथा) जैसे (एते) ये (अङ्गिरसः) प्राणाभ्यासी योगी, (इतः) इस मूलाधार चक्र से (पथः) इससे ऊपर के पथों पर (उदारुहन्) क्रमशः ऊपर-ऊपर आरोहण करते, और (दिवः) मस्तिष्क के (पृष्ठानि) भिन्न-भिन्न स्तरों पर (आरुहन्) आरोहण कर लेते हैं, तब ये (द्याम्) वहां दिव्य प्रकाश को (ययुः) प्राप्त कर लेते हैं, वैसे हे उपासक! तू भी (प्रभूः) इस निमित्त सामर्थ्य वाला बन, (जयः) और अभ्यास मार्गों पर विजय प्राप्त कर।

[प्रभूः (देखो मन्त्र ७४)। सुषुम्णा-नाड़ी के निचले भाग में मूलाधार चक्र है, इससे ऊपर की ओर क्रमशः हैं स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरचक्र, अनाहतचक्र, (हृदय के समीप), विशुद्धचक्र (गले में), आज्ञाचक्र (दो भ्रुवों के मध्यवर्ती स्थान में) तथा सहस्रारचक्र (मस्तिष्क में)। जब योगी का चित्त सहस्रारचक्र में स्थित हो जाता है तब दिव्य ज्योतियाँ प्रकट होने लगती हैं। मुक्तात्मा सहस्रारचक्र के मार्ग से मुक्त होते हैं]।

३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
९३—राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
१ २ ३ १ ३ १ २ १ १ २ १ १ २ ३ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (महे राये) महा-सम्पत्ति अर्थात् मोक्ष के (दानाय) दान की प्राप्ति के लिये हम उपासक, (त्वा) आप को (समिधीमहि) सम्यक् प्रदीप्त करते हैं, उपासना विधि से सम्यक् प्रकार प्रकट करते हैं। (वृषन्) हे आनन्दरस की वर्षा करने वाले! (महे होत्राय) इस महादान की प्राप्ति के लिये आप, (द्यावापृथिवी) द्युलोक तथा पृथिवी पर समग्र नर-नारियों को

(इडिष्व) प्रेरित कीजिये। [ईडिष्व=ईर् (प्रेरणा)। रलयोरभेदः। र=ल, ल=ड]।

३ १ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
९४—दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत्।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत्॥४॥

(यत्) जब (ईम्) इस अग्नि को, उपासक, (अनु) निरन्तर अपने जीवन में (दधन्वे) धारण करता है, और (ब्रह्म इति वोचत्) कहता है कि यह अग्नि "ब्रह्म" है, तब उपासक ने (उ) निश्चय से (तत्) अग्नि के वास्तविक स्वरूप को (वेः) जान लिया है। वह ब्रह्माग्नि (विश्वानि काव्या) समस्त वेदकाव्यों को (परि आभुवत्) घेरे हुए हैं, (इव) जैसे कि (नेमिः) रथ-चक्र की परिधि (चक्रम्) चक्र को घेरे रहती है।

[वेः=वी गतौ। गतेः त्रयोऽर्थाः, ज्ञानं, गतिः, प्राप्तिश्च। नेमिः=The circumference, Ring of a wheel]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
९५—प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि।
३ १ २ ३ २ ३ २३क २उ ३क २र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम्॥५॥

(अग्ने) हे ब्रह्माग्नि! आप (विश्वतः परि) सब प्रकार से, (यातुधानस्य) यातना देने वाले (रक्षसः) राक्षसी भावों और राक्षसी कर्मों की (हरः) विषयों में हरण करने वाली शक्ति को, (हरसा) अपनी संहारक शक्ति द्वारा (प्रति शृणाहि) जीर्ण-शीर्ण कर दीजिए, और इस के (बलं, वीर्यम्) बलों और वीर्यों को (न्युब्ज) नितरां ऋजु अर्थात् ढीले कर दीजिये। [न्युब्ज=नि+उब्ज आर्जवे]

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ २
९६—त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत।
१ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम्॥६॥

(अग्ने) हे ब्रह्माग्नि! (त्वम्) आप (इह) इस पृथिवी में, (वसून्) २४ वर्षों तक ब्रह्मचर्य-व्रतधारी वसुनामक ब्रह्मचारियों को, (रुद्रान्) ३६ वर्षों तक ब्रह्मचर्य-व्रतधारी रुद्रनामक ब्रह्मचारियों को, (उत्) और (आदित्यान्) ४८ वर्षों तक ब्रह्मचर्यव्रतधारी आदित्य-ब्रह्मचारियों को उनके अपने २ व्रत पालनरूपी यज्ञों में (यज) सफल कीजिये। तथा (स्वध्वरम्) उत्तम तथा हिंसारहित यज्ञों के करने वाले, (घृतप्रुषम्) यज्ञियाग्नि में घृताहुतियां देने वाले, (मनुजातं जनम्) मानुष माता-पिता से उत्पन्न प्रत्येक सज्जन को, उसके रचाए यज्ञों में (यज्) सफल कीजिये।

प्रथम प्रपाठक का द्वितीयार्ध प्रपाठक समाप्त, तथा प्रथम प्रपाठक समाप्त।

दशति १

(१-१०) दीर्घतमा औचथ्यः, २, ४ विश्वामित्रो गाथिनः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ त्रितः आप्त्यः, ६ इरिम्बिढिः काण्वः, ७, ८, १० विश्वमना वयश्वः, ९ ऋजिश्वा भारद्वाजः ॥ अग्निः, ४, पवमानः सोमः, ६ अदितिः, ९ विश्वे देवाः ॥ उष्णिक् ॥

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
९७—पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१॥

(अग्ने) हे सर्वाग्रणी प्रभो ! (दाशिवान्) आप सब के दाता हैं, अतः (त्वा) आप के प्रति ही मैं उपासक, (पुरु) बहुत प्रकार के (आ वोचे) प्रार्थना वचन कह रहा हूँ। (अरिः) आप सर्वाधीश हैं, (तव स्विद्) मैं आप का ही हूँ। मैं (महस्य) आप महान् की (शरणे) शरण में (आ) आया हूँ, (इव) जैसे (तोदस्य) प्रेरक-स्वामी की शरण में भृत्य आता है। [अरिः=ईश्वरः (निरु० ५।२।७) दाशिवान्=दाशृ दाने। तोद=A goad (आप्टे)]

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३२
९८—प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २
विपां ज्योतीँषि बिभ्रते न वेधसे ॥२॥

हे उपासको ! (होत्रे) सब के दाता, तथा (वेधसे) जगद्-विधाता (अग्नये) सर्वाग्रणी परमात्मा के निमित्त, (पूर्व्यम्) पूर्वकालों से प्राप्त अनादि, तथा (बृहत्) वृद्धिदायक (वचः) वैदिक स्तुतिवचन (प्र भरत) सदा भेंट किया करो, (न) जैसे कि (विपाम्) वेदवाणियों की (ज्योतींषि) ज्योतियों को (बिभ्रते) धारण करने वाले महाविद्वान् के निमित्त, (वचः) प्रशंसा-वचन भेंट किये जाते हैं। [विपा=वाक् (निघं० १।११)। बृहत्=बृह् (वृद्धौ)]

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९९—अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३१ २ ३ १ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! (सहसः यहो) हे बल की दृष्टि से महान् प्रभो ! आप, (गोमतः वाजस्य) वेदोपदिष्ट सब प्रकार के बलों के (ईशानः) अधीश्वर हैं। (जातवेदः) हे वेदोत्पादक ! (अस्मे) हमें वेदज्ञान और वेदोपदिष्ट बलों की प्राप्ति का (महि श्रवः) महायश (देहि) प्रदान कीजिये।

[यहो="यहु" का अर्थ "अपत्य" है (निघं० २।२) यह्वः का अर्थ है "महान्" (निरु० ८।२।८) यह्व=यहु=यहो। अपत्यार्थ में "प्रकट होना"—अर्थ सम्भव है। उपासक की प्रबल ध्यान शक्ति से परमात्मा प्रकट होता है]।

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
१००—अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज।
१ २ ३ १ २३ २र ३ २ ३ १ २
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥४॥

(अग्ने) हे सुपथ के नेता ! आप (यजिष्ठः) संसार-यज्ञ के विधाता हैं। (अध्वरे) हिंसारहित उपासना-यज्ञ में (देवयते) दिव्यगुणों को चाहने वाले के लिये (देवान्) दिव्यगुण (यज) प्रदान कीजिये। (होता) आप दाता हैं, (मन्द्रः) हर्ष-और-आनन्द के प्रदाता हैं, (स्रिधः) क्षयकारी कामादि वासनाओं का (अति) अति-क्रमण करके, इन से छूटे हुए हो कर, (विराजसि) आप विराजमान हैं। [यज=दाने]।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
१०१—जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।
३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ २
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥५॥

सुपथ का नेता प्रभु, (मातृभिः) मातृरूप (सप्त) सात वैदिक छन्दों वाली वैदिक वाणियों द्वारा, (जज्ञानः) प्रकट होता है, और उपासक की (श्रिये) शोभा और आध्यात्मिक सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये, प्रभु, उपासक की (मेधाम्) मेधा पर (आशासत) पूर्ण शासन करता है। (अयम्) यह प्रभु, उपासक के लिये, (रयीणाम्) सब सम्पत्तियों में (ध्रुवः) स्थिर सम्पत्ति है। प्रभु (आ चिकेतत्) सर्वज्ञ है, और उपासक को यथार्थज्ञान प्रदान करता है।

[वेदवाणी को "माता" कहा भी है, यथा—"स्तुता मया वरदा वेदमाता" (अथर्व० १९।७१।१)]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १२
१०२—उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्।
१ २र ३ १२ ३२ ३ १ २
सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥६॥

(उत) तथा (स्या) वह (अदितिः) न क्षीण होने वाली (मतिः) आध्यात्मिक मेधा (दिवा) प्रतिदिन (नः) हमें, (ऊत्या) रक्षा के साथ-साथ (आ गमत्) प्राप्त होती रहे। (सा) वह आध्यात्मिक मेधा (शन्ताता) शान्ति का विस्तार करने वाली हो, (मयः करत्) हमें सुख प्रदान करे, (स्रिधः) और विनाशकारी कामादि को (अप) हम से पृथक् करे। [स्या=मन्त्र १०१ में कथित, वेदोक्त आध्यात्मिक मेधा]।

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १२
१०३—ईडिष्वा हि प्रतीव्या३ँ यजस्व जातवेदसम्।
३ १ २ ३ १ २
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥१॥

हे उपासक ! तू (प्रतीव्यम्) प्रतिपदार्थ में व्याप्त तथा प्रतिपदार्थ की रक्षा करने वाले परमात्मा की (हि) ही (ईडिष्व) स्तुति-प्रार्थना-उपासना किया कर।

(जातवेदसम्) तथा प्रज्ञा वाले, अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा का ही (यजस्व) यजन किया कर, उस की ही पूजा, उसका सत्संग तथा उस के प्रति सर्वस्व समर्पण किया कर। (चरिष्णुधूमम्) उपासनाकाल में चलायमान जो धूम अर्थात् धुआं दृष्टिगोचर होता है वह जिस परमात्मा की प्राप्ति का पूर्वरूप है, (अगृभीतशोचिषम्) और तदनन्तर जिस परमात्मा की अबाधित ज्योति प्रकट होती है, उसी की स्तुति-प्रार्थना-उपासना किया कर।

[प्रतीव्यम्=प्रति+वी (व्याप्ति); या प्रति+अव् (रक्षा)। चरिष्णु-धूमम्=नीहार, धूम्र, अर्क, अनिल, अनल, खद्योत, विद्युत्, स्फटिक, शशी—अभ्यास में ये पदार्थ मानसिक दृष्टिगोचर होते हैं, जोकि ब्रह्माभिव्यक्ति के पूर्वरूप हैं। (श्वेता० उप०, अ० २, ख० १२) तथा मन्त्र संख्या ६]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०४—न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अग्नये ददाशह व्यदातये॥ ८॥

(हव्यदातये) दानयोग्य और उपभोग योग्य पदार्थों के देने वाले (अग्नये) जगन्नेता के प्रति, (यः मर्त्यः) जो उपासक (ददाश) सर्वस्व समर्पण कर देता है, (तस्य) उसका (रिपुः) शत्रु, (मायया चन) छल-कपट द्वारा भी, (न ईशत) उस पर प्रभुत्व नहीं पा सकता।

२३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३क२र
१०५—अप त्यं वृजिनꣳरिपुꣳस्तेनमग्ने दुराध्यम्।
१ २ ३ २ ३ २
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम्॥ ९॥

(अग्ने) हे जगन्नेता! (अप कृधि) पृथक् कीजिये (त्यम्) उस (वृजिनम्) पाप को, जो कि हमारे जीवनों में (रिपुः) शत्रुरूप है, जो हमारे जीवनों में (स्तेनम्) चोररूप में घुसा हुआ है, (दुराध्यम्) जिस का ध्यान करना भी बुरा है। (सत्पते) हे सच्चे पति! उसे (दविष्ठम् अस्य) दूर कर दीजिये, इस प्रकार हमारे जीवनमार्ग को (सुगं कृधि) सुगम कर दीजिये। [अस्य=अस् प्रक्षेपणे]

३क २र३ १२ ३ १ २
१०६—श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।
२ ३ २ ३ १२ ३ १ २
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह॥ १०॥

(वीर) हे पराक्रमशील! (विश्पते) हे प्रजाओं के रक्षक-और-पालक! (अग्ने) हे जगन्नेता! (नवस्य) स्तुति में गाए गए (मे स्तोमस्य) मेरे सामगान

को (श्रुधि) कृपा करके सुनिये। आप (मायिनः रक्षसः) छल-कपटरूपी राक्षसों को (तपसा) अपने तेज द्वारा (नि दह) दग्ध कर दीजिये। [नवस्य=नु स्तुतौ]।

दशति २

(१—८) १ प्रयोगो भार्गवः (ऋ० सौभरिः काण्वः)। २, ३, ५—७ सौभरिः काण्व; ४ प्रयोगो भार्गवः सौभरिः काण्वो वा; ८ विश्वमना वैयश्वः॥ अग्निः

उष्णिक्

१ २र ३१ १२ ३२ ३१२

१०७—प्र म॑ꣳहिष्ठाय गायत ऋताब्ने बृहते शुक्रशोचिषे।

३१ १२३१२

उपस्तुतासो अग्नये॥ १॥

(उपस्तुतासः) हे उपासनाविधि द्वारा स्तुति करने वालो! (मंहिष्ठाय) महादानी, (ऋताब्ने) नियमों और विधियों के विधाता, (बृहते) महान्, तथा (शुक्रशोचिषे) निर्मल प्रकाश वाले (अग्नये) जगन्नेता के लिये, (प्रगायत) खूब सामगान किया करो।

१ २र ३ २ ३१२३ ३१२ ३१२

१०८—प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।

२ ३ २ ३१ २र

यस्य त्वꣳसख्यमाविथ॥ २॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! (यस्य) जिस उपासक के (सख्यम्) सखिभाव को (त्वम्) आप (आविथ) प्राप्त कर लेते हैं, स्वीकार कर लेते हैं, (सः) वह उपासक, (तव) आप की (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा (तरति) तर जाता है, (प्र) खूब तर जाता है; जो रक्षाएँ कि (सुवीराभिः) उपासक को उत्तम वीर बनातीं, तथा (वाजकर्मभिः) उसे अपने ध्येय में बढ़ने के लिए बलकारिणी होती हैं।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १२३१ २

१०९—तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।

३ २३१२

देवत्रा हव्यमूहिषे॥ ३॥

(देवासः) देवकोटि के उपासक, जिस (स्वर्णरम्) स्वर्ग (सुख) के नेता, (अरतिम्) जगत्स्वामी, (देवम्) परमात्मदेव का, (दधन्विरे) अपनी आत्माओं में धारण करते हैं, (तम्) उस परमात्मा की, हे उपासक! तू (गूर्धय) अर्चना किया कर, तब तू (देवत्राम्) परमात्मदेव को (हव्यम्) अपनी आत्मसमर्पणरूपी हवि (ऊहिषे) पहुँचा सकेगा। [गूर्धयति=अर्चतिकर्मा (निघं०) ३।१४)।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
११०—मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
२ ३ १ २ ३ २
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥

हे उपासको !, (नः) हम दिव्य-उपासकों के लिये, (१०९) (यः) जो (अग्निः) सर्वाग्रणी (अतिथिः) अतिथिवत् पूजनीय है, उसे तुम (मा हृणीथाः) रुष्ट मत करो। (एषः) यह सर्वाग्रणी (वसुः) सब को बसाने वाला, तथा (पुरु प्रशस्तः) अति प्रशस्त है, (सुहोता) सर्वोत्तम दाता, तथा (स्वध्वरः) उत्तम मार्गदर्शी है। [स्वध्वरः=सु+अध्वा+रा (दाने)]

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१११—भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३१ २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥

(सुभग) हे सौभाग्य सम्पन्न उपासक ! (आहुतः) समर्पण की आहुतियां पाया हुआ (अग्निः) सर्वाग्रणी (नः) हम सब के लिये (भद्रः) सुखप्रदाता और कल्याणप्रद होता है, (रातिः) उसका दिया दान (भद्रा) सुखदायी तथा कल्याणकारी होता है, (उत) तथा (प्रशस्तयः) उस की उत्तम स्तुतियां सुखदायिनी और कल्याणकारिणी होती हैं। [भद्रः=भद् कल्याणे, सुखे च]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३१ २
११२—यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥

हे जगन्नेता ! (यजिष्ठम्) उपासना यज्ञों को सफल करने वाले, (देवत्रा देवम्) देवों में सर्वश्रेष्ठ देव, (होतारम्) सब के दाता, (अमर्त्यम्) मर्त्यशरीर से रहित अमर, तथा (अस्य यज्ञस्य) रचाए इस उपासना-यज्ञ को (सुक्रतुम्) साधने वाले (त्वा) आप का, (ववृमहे) हम उपासक वरण करते हैं।

१२ ३ १ २र३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
११३—तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम् ।
३ १ २र ३क २र
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे प्रभो ! आप मुझ में (तत्) वह द्युम्नम्) आत्मिक धन और आत्मिक यश (आ भर) भर दीजिए (यत्) जिस द्वारा मैं उपासक, (सदने) अपने शरीर-गृह में और अपने पारिवारिक गृह में विद्यमान (कं चित्) जिस किसी भी (अत्रिणम्) पाप का, (आ सासह) पूर्णतया पराभव कर सकूं, तथा (मन्युम्) उस मन्यु [क्रोधवृत्ति] का मैं पराभव कर सकूं, जो कि (जनस्य) मनुष्य को (दूढ्यम्)

दुर्बुद्धि बना देता है। [दूढ्यम्=दुर्धियम् (निरु० ५।१।१२)। अत्रिणम्=अद् (भक्षणे)=पाप, जो कि मनुष्य का भक्षण करते हैं]।

१ २र ३ १२ १ ३ २ र ३ १ २ ३ २
११४—यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे।
२उ ३ २उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रति रक्षाँसि सेधति ॥ ८ ॥

(विश्पतिः) प्रजाओं का पति (अग्निः) जगदग्रणी, (यद् वै उ) जब निश्चय से, (मनुषः) उपासक मनुष्य के (विशे) हृदयरूपी घर में (सु प्रीतः) सुप्रसन्न हो जाता है, तब वह (शितः) तीक्ष्णरूप हो कर, उपासक के (विश्वा इत्) सब ही (रक्षांसि) राक्षसी भावों-और-कर्मों का (प्रति सेधति) प्रतिषेध कर देता है, प्रत्येक राक्षसी भाव और कर्म का निवारण कर देता है।

आग्नेय पर्व समाप्त

आग्नेयकाण्डस्य मंत्र संख्या ११४

卐 ऐन्द्रकाण्ड 卐

दशति ३

(१—१०) १ शंयुर्बार्हस्पत्यः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; ३ हर्यतः प्रागाथः; ४, ५ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षो वा, ५ सुकक्षः) आंगिरसः; ६ देवजामय इन्द्रमातरः ऋषिकाः; ७, ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; ९, १० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः ॥ इन्द्रः (ऋ० ३ अग्निर्हवींषि वा) ॥ गायत्री ॥

१ २ ३ २ २र ३ २ ३ १ २
११५—तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३ २ ३ १ २
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥

(सुते) भक्ति रस के उत्पन्न हो जाने पर, (वः) तुम सब (सचा) मिल कर, (पुरुहूताय) बहुत नामों द्वारा पुकारे गये तथा (सत्वने) बलशाली परमेश्वर के लिए, (तत्) उस स्तोत्र का (गाय) गान करो, (यद्) जो स्तोत्र कि (गवे) गाने वाले के (न) सदृश (शाकिने) शक्तिशाली परमेश्वर को भी (शम्) प्रसन्न करने वाला हो।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११६—यस्ते नूनꣳशतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
१ २ ३ १ ३ १ २र
तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥

(शतक्रतो) हे अनन्त कर्मों तथा अनन्त प्रज्ञाओं वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) आप का (यः) जो (नूनम्) निश्चय से (द्युम्नितमः) अत्यन्त यशस्वी (मदः) आनन्द रस है, (तेन) उस द्वारा आप (नूनम्) निश्चय से सदा (मदे) आनन्दित रहते हैं, उस द्वारा हमें भी (मदेः) आनन्दित कीजिए।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११७—गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३ १ २र ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥

(गावः) हे स्तोताओ ! तुम में से प्रत्येक, (अवटे) हृदय-गुहा में, (उप)

परमेश्वर के समीप हो कर, उस के प्रति (वद) स्तुति-प्रार्थना के वचन बोला करें। ताकि (मही) समग्र पृथिवी (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ सम्बन्धी (रप्सुदा) अभिव्यक्त वेद-वाणी का उत्तम दान, सब को कर सके, और प्रत्येक श्रोता के (उभा कर्णा) दोनों कान (हिरण्यया) उसके प्रति हितकर और रमणीय हो जायँ।

[गावः=गौः स्तोतृनाम् निघ० ३।१६; गै शब्दे। मही=पृथिवी (निघं० १।१)। रप्सुदा=रप्=व्यक्तायां वाचि+सु+दा]।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
११८—अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

(श्रुतकक्ष) श्रुति [वेद] की कक्षा अर्थात् घेरे में विचरने वाले हे उपासक! तू तथा अन्य सब (अश्वाय) इन्द्रियों की शक्ति प्राप्त करने के लिये परमेश्वर का (अरम्) पर्याप्त (गायत) गान किया करो, (गवे) वेद-वाणी के रहस्यार्थ के ज्ञान के लिये उस परमेश्वर का (अरम्) पर्याप्त गान किया करो, (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (धाम्ने) धाम अर्थात् तेज की प्राप्ति के लिये उसका (अरम्) पर्याप्त गान किया करो।

[अश्वाय=इन्द्रियाणि हयानाहुः (कठ० उप० १।३।४)। गवे=गौः वाक् निघं० १।११)]।

१ २र ३२ ३ २ ३ १ २
११९—तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।
१ २र ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥

(वृत्राय) आत्मिक शक्तियों पर आवरण डालने वाले (महे) महावृत्रों अर्थात् महापापों के (हन्तवे) हनन के लिये, (तम्) उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् की हम सब (वाजयामसि) अर्चना करते हैं। तब (सः) वह परमेश्वर, शक्तियों की (वृषा) वर्षा करने वाला (भुवत्) हो जाता है। वह हम पर इन शक्तियों की (वृषभः) वर्षा सदा करता है। [वाजयति=अर्चतिकर्मा (निघं० ३।१४]।

१ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २र
१२०—त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः।
१ २र ३ १ २र
त्वꣳसन्वृषन्वृषेदसि ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (त्वम्) आप ध्यान के (बलात्) बल से, मन के (सहसः) साहस से, और आत्मा के (ओजसः) तेज से अधिजातः) प्रकट होते हैं। हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (सन्) सत्स्वरूप हैं। (वृषन्) हे शक्ति की वर्षा करने वाले! आप (इत्) वास्तव में (वृषा) शक्ति वर्षा करने वाले (असि) हैं।

३ १ २र ३२उ ३ १ २
१२१—यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।
३ १ २ ३ २ ३ २
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥

(यज्ञः) परमेश्वर की अर्चना, परमेश्वर का संग, तथा परमेश्वर के प्रति समर्पण,—ये कर्म, (इन्द्रम्) परमेश्वर की प्रसन्नता और कृपा को (अवर्धयत्) बढ़ाते हैं, (यद्) जो परमेश्वर कि (भूमिम्) भूमि को (व्यवर्तयत्) द्युलोक में घुमा रहा है, और (दिवि) द्युलोक में जिस परमेश्वर ने सूर्य और नक्षत्रों को संसार के (ओपशम्) शिरोभूषणों के रूप में (चक्राणः) बनाया है।

१ २ ३२र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ २
१२२—यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
३ २ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यथा) जैसे (त्वम्) आप (एक इत्) अकेले ही (वस्वः) वैदिक ज्ञान सम्पत्ति के अधीश्वर हैं, वैसे (यद्) यदि (अहम्) मैं उस सम्पत्ति का (ईशीय) अधीश्वर होता, तो (मे) मेरा (स्तोता) सेवक-शिष्य (गो सखा) वेदवाणी का सखा हो जाता, अर्थात् मैं उसे इतनी शिक्षा देता कि वह वेद-सखा नाम से प्रसिद्ध हो जाता।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१२३—पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥

(सोतारः) भक्तिरस को उत्पन्न करने वाले हे उपासको ! (मद्याय) प्रसन्न करने योग्य, (वीराय) विविध जगत् के प्रेरक, तथा (शूराय) पराक्रमशील परमेश्वर के प्रति, तुम, (पन्यं पन्यम् इत्) अति प्रशंसनीय (सोमम्) भक्तिभावनाओं को समर्पित करने के लिये, (आधावत) शीघ्रता करो। [पन्यम्=पन् स्तुतौ। वीर=वि+ईर् (गतौ)। शूर=विक्रान्तौ]

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३१२
१२४—इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १२
अनाभ्र यिन्नरिमा ते ॥ १० ॥

(वसो) हे विश्वासी ! (इदम्) यह भक्तिरस (अन्धः) आध्यात्मिक अन्न है, जिसे कि हमने (सुतम्) तैय्यार किया है। आप इसे (पिब) स्वीकार कीजिये, जैसे, कि व्यक्ति (सुपूर्णम् उदरम्) खूब भर-पेट दुग्ध आदि का पान करता है।

(अनाभयिन्) हे सब ओर से भयरहित ! हम उपासक आप के प्रति भक्तिरस (रिश्मा) भेंट करते हैं। [अन्धः=अन्न (निघं० २।७)]

दशति ४

(१—१०) १, २ सुकक्षश्रुतकक्षौ (ऋ० सुकक्ष आंगिरसः); ३ भारद्वाजः (ऋ० शंयुर्बर्हस्पत्यः); ४ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षो वा आंगिरसः)। ५, ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७, ९, १० त्रिशोकः काण्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः (९ ऋ० अग्नीन्द्रौ) ॥ गायत्री ॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१२५—उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

(सूर्य) आध्यात्मिक अन्धकार को दूर करने वाले हे सूर्य ! हे परमेश्वर ! आप (ह) निश्चय से, और (इत्) अवश्य, ऐसे उपासक के प्रति (अभि उद् एषि) प्रत्यक्ष उदित होते हो जिसकी कि (श्रुतामघम्) आध्यात्मिक सम्पत्ति विश्रुत है, प्रसिद्ध है, जो प्रजाजनों पर सुखों की (वृषभम्) वर्षा करता है, (नर्यापसम्) जिसके कर्म प्रजाजनों का हित करने वाले हैं, तथा जिसने अपने पापों को (अस्तारम्) परास्त कर दिया है।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१२६—यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥

(वृत्रहन्) हे पापवृत्रों का हनन करने वाले ! (सूर्य) हे सूर्यों के सूर्य (इन्द्र) परमेश्वर ! (यद्) जो (अद्य कत् च) जब कभी आप उपासकों के प्रति (अभि उद्गाः) प्रत्यक्ष रूप में उदित हो जाते हैं, (तत्) तब (सर्वम्) वे सब उपासक, (ते) आप शासक के (वशे) वशवर्ती हो जाते हैं।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२
१२७—य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥

(यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर, (तुर्वशम्) अपनी हिंस्र वृत्तियों को वश में करने वाले, और (यदुम्) इस ओर यत्न करने वाले उपासक को, (सुनीती) सुनीति द्वारा, (परावतः) परे से अर्थात् विषयों से अपनी ओर (आनयत्) ले आता है, अपने अभिमुख कर लेता है, (सः) वह परमेश्वर (नः) हमारा (सखा) है। वह (युवा)

सदा युवा है।
[तुर्वशम्=तुर्वी (हिंसा)+वशम्]

१ २ ३ २उ १ ३ १ २ ३ १ . २र
१२८—मा न इन्द्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत्।
२ ३१ २ ३ २
त्वा युजा वनेम तत्॥ ४॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर (अक्तुषु) अज्ञान-की-रात्रियों में, आप (मा) न तो (नः) हमें (अभि आ दिशः) मार्ग का साक्षात् आदेश देते हैं, न (सूरः) प्रेरणा देते हैं, और न (आयमत्) हमारे अन्तर्यामी बनते हैं। हे परमेश्वर ! (त्वा) आप के (युजा) सहयोग द्वारा, हम (तत्) उन अज्ञान-की-रात्रियों का (वनेम) विनाश करें। [अक्तु=रात्रि (निरु० ५।४।२७; २२।३।२४)। वन=हिंसार्थः भ्वा०]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२९—एन्द्र सानसिँरयिँसजित्वानँसदासहम्।
१ २ ३ १२
वर्षिष्ठमूतये भर॥ ५॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये, हमें ऐसी (रयिम्) आध्यात्मिक-सम्पत्ति (आ भर) दीजिये, जो कि (सानसिम्) सुख-शान्ति देने वाली, (सजित्वानम्) कामादि पर विजय पाने वाली, (सदासहम्) सदा कामादि का पराभव करने वाली, और (वर्षिष्ठम्) सर्वश्रेष्ठ हो। [सानसिम्=षणु=दाने]

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
१३०—इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।
१ २ ३ १२ ३ १२
युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥ ६॥

(वयम्) हम (महाधने) महाधन अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति में, (युजम्) सहयोगी (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हवामहे) आह्वान करते हैं, और (अर्भे) अल्प धन अर्थात् मोक्ष से भिन्न आध्यात्मिक सम्पत्तियों की प्राप्ति में भी परमेश्वर का (हवामहे) आह्वान करते हैं। (वज्रिणम्) वज्रधारी परमेश्वर का हम उस समय भी (हवामहे) आह्वान करते हैं जब कि (वृत्रेषु) कामादि दुर्वासनाएँ हमें घेर लेती है। [वृत्रेषु=वृत् आवरणे]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१३१—अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे।
१ २ ३ १ २
तत्राददिष्ट पौँस्यम्॥ ७॥

(कद्रुवः) अल्प गति अर्थात् अल्प शक्ति वाले उपासक के भी (सुतम्) निष्पन्न भक्तिरस को (इन्द्रः) परमेश्वर (अपिबत्) स्वीकार करता है, ताकि उपासक

(सहस्रबाह्वे) सहस्र-बाहु बन सके, अधिक यशस्वी और बलिष्ठ बन सके। (तत्र) सहस्रबाहु बन जाने पर उस उपासक में परमेश्वर (पौंस्यम्) पौरुष (अददिष्ट) स्थापित कर देता है।

[कद्रुवः=कद्रु+उवङ्+ङस् (षष्ठी विभक्ति)। कद्रु=कु (कत्)+द्रु (गतौ); कत्+द्रु=कद्रु (तकारलोपः)। अददिष्ट=दद् धारणे। बाहु=बाहूभ्यां यशोबलम्]।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र
१३२—वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन्।
३ २ ऽऽऽ १ २
विद्धी त्वा३ स्य नो वसो ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (वयम्) हम उपासक केवल (त्वायवः) आप को ही चाहते हैं। (वृषन्) हे सुखों और शक्तियों की वर्षा करने वाले! आप को (अभि) प्रत्यक्ष कर हम आपकी (प्रनोनुमः) वार-बार स्तुतियां करते हैं। (वसो) हे हृदयवासी! (नः) हमारी (अस्य) इन स्तुतियों को (तु) तो (विद्धि) जानिये, पहचानिये।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१३३—आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।
३ ३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥

(ये) जो उपासक (अग्निम्) जगदग्रणी को अपनी आत्मा में (इन्धते) प्रदीप्त करते हैं, और (युवा) सदा युवा (इन्द्र) परमेश्वर (येषाम्) जिन उपासकों का (सखा) सखा बन जाता है, वे उपासक (आनुषक्) निरन्तर इस परमेश्वर के लिये हृदयासन (आस्तृणन्ति) बिछाए रहते हैं, (घ) यह निश्चित है।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१३४—भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १० ॥

हे परमेश्वर! हमारी (विश्वाः) सब प्रकार की (द्विषः) द्वेषभावनाओं को (भिन्धि) छिन्न-भिन्न कर दीजिये। (बाधः) विघ्न-बाधाओं को (परि) पूर्णरूप से (अप) पृथक् कीजिये। देवासुर-संग्राम में (मृधः) संग्रामकारी कामादि शत्रुओं का (जहि) पूर्ण ध्वंस कीजिये। और हमारा जो (स्पार्हम्) स्पृहणीय, अभीप्सित (वसु) आध्यात्मिक धन, मोक्ष है (तत्) उसे हमें (आभर) प्राप्त कराइये।

दशति ५

(१—१०) १ कण्वो घौरः; २ त्रिशोकः काण्वः; ३ वत्सः काण्वः; ४ कुसीदी काण्वः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षः) आंगिरसः; ७ श्यावाश्व आत्रेयः; ८ प्रगाथः काण्वः; ९ वत्सः काण्वः; १० इरिंबिठिः काण्वः ॥ इन्द्रः (ऋ० १ मरुतः; ४ ब्रह्मणस्पतिः; ७ सविता) ॥ गायत्री ॥

३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

१३५—इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।

१ २र ३ १ २

नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥

(एषाम्) इन द्वेषभावनाओं, विघ्न बाधाओं, और संग्रामकारी आसुरीभावों मन्त्र १३४) के (हस्तेषु) हाथों में (कशाः) मानो चाबुकें हैं (यत्) जिनकी मार की (वदान्) आवाज (इह इव) इस जीवन में मानो, (शृण्वे) मैं सुन रहा हूं। परमेश्वर इन चाबुकों द्वारा (नियामन्) नियन्त्रण में, शासन में, अपने (चित्रम्) अद्भुत स्वरूप को (ऋञ्जते) प्रसिद्ध कर रहा है।

[रोग, कष्ट, शारीरिक और मानसिक व्यथाएँ,—आदि इन चाबुकों की मारें हैं। मन्त्र की भावना कर्मफल के अटल सिद्धान्त का निर्देश करती है]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१३६—इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (इमे) ये उपासक, जो कि आप के (सखायः) सखा हैं, (उ) निश्चय से (सोमिनः) भक्तिरस को लिये हुए (त्वा) आप की (विचक्षते) विशेष प्रतीक्षा कर रहे हैं, (यथा) जैसे कि (पुष्टावन्तः) पुष्टि देने वाले घास-चारे को तय्यार किये हुए पशुपालक, (पशुम्) गौ आदि पशु के आने की प्रतीक्षा किया करते हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१३७—समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।

३ १ २३ १ २

समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥

(अस्य) इस परमेश्वर के (मन्यवे) मन्यु की ओर (विश्वाः विशः) सब नागरिक तथा (कृष्टयः) कृषिकार प्रजाएँ (सम् नमन्त) स्वभावतः झुक रही हैं, (इव) जैसे कि (सिन्धवः) बहती हुई नदियां स्वभावतः (समुद्राय) समुद्र की ओर झुकी रहती हैं।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
१३८—देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्।
१ २ ३ १ २ ३ १२
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥

(वृष्णाम्) सुख शान्ति की वर्षा करने वाले (देवानाम्) दिव्य गुणों द्वारा (इत्) अवश्य प्राप्त होने वाली जो (महत् अवः) महारक्षा है, (तत्) उसे (वयम्) हम उपासक, (अस्मभ्यम् ऊतये) अपनी रक्षा के लिए, परमेश्वर से (आवृणीमहे) चाहते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २
१३६—सोमानाँस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे वेद-के-स्वामी परमेश्वर! (यः) जो मैं (औशिजः) कान्ति सम्पन्न आप का पुत्र हूं, (कक्षीवन्तम्) वेद-विद्या की प्राप्ति के लिए कमर कसे हुए हूं, तथा (सोमानाम्) एतदर्थ आपके प्रति भक्तिरस सम्पादित किये हुए हूं, उस मुझ को, आप (स्वरणम्) वेदविद्या से प्रकाशित (कृणुहि) कीजिए।

[औशिजः=उशिजः पुत्रः। उशिक् वष्टेः कान्तिकर्मणः (निरु० ६।२।१२)। सोमानाम्=सोमानां सोतारम्। स्वरणम्=प्रकाशवन्तम् (निरु० ६।३।११)]।

१२ ३ १२ ३ १ २र
१४०—बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥

(शक्रः) शक्तिशाली परमेश्वर (नः) हमारे (बोधन्मनाः अस्तु) मनों में आध्यात्मक बोध प्रकट करे। वह (इत्) अवश्य (वृत्रहा) हमारे पाप-वृत्रों का हनन करता हैं (भूरि आसुति) उसके निमित्त हम ने प्रभूत मात्रा में भक्तिरस निष्पादित किया है। वह हमारी (आशिषम्) आकांक्षाओं और प्रार्थनाओं को सुने।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२
१४१—अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्।
१ २ ३ १ २
परा दुःष्वप्न्यँसुव ॥ ७ ॥

(सवितः देव) हे प्रेरक देव! (अद्य) आज (नः) हमें (प्रजावत्) उत्तम सन्तानों समेत (सौभगम्) उत्तम ऐश्वर्य, उत्तम धर्म, उत्तम यश, उत्तम श्री, उत्तम ज्ञान और उत्तम वैराग्य (सावीः) प्रदान कीजिये। हमारे (दुःष्वप्न्यम्) बुरे संकल्पों और बुरे संकल्पों से होने वाले पापों और दुःखों को (परासुव) दूर कीजिए।

[सविता=षुप्रेरणे। भगः=ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्य-योश्चैव षण्णां भग इतीरणा]।

२ऽ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
१४२—क्व३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
३ १ २र
ब्रह्मा कस्तँसपर्यति ॥ ८ ॥

जो परमेश्वर कि (तुविग्रीवः) समग्र पापों को निगले हुए है, (युवा) सदा युव-शक्ति वाला, (अनानत) कभी न झुकने वाला, तथा जिसे (ब्रह्मा) ब्रह्मा कहते हैं, (स्यः) वह (वृषभः) सुख शान्ति की वर्षा करने वाला परमेश्वर (क्व) कहां प्राप्त किया जा सकता है ? तथा (कः) किन गुणों वाला उपासक (तम्) उस परमेश्वर की (सपर्यति) पूजा और भक्ति कर सकता है ?

इन प्रश्नों के उत्तर मन्त्र १४३ में हैं।

[तुविग्रीवः=तुवि (बहुनाम; निघ० ३।१)+ग्रीवा (निगरति, निगलति इति ग्रीवा) गॄ निगरणे]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४३—उपह्वरे गिरीणाँसङ्गमे च नदीनाम्।
३ १ २र
धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥

(गिरीणाम्) पर्वतों की (उपह्वरे) गुफाओं और घाटियों में, (च) तथा (नदीनाम्) नदियों के (सङ्गमे) सङ्गमों पर, उपासक (धिया) धारणा, ध्यान सात्त्विक बुद्धि और सात्त्विक कर्मों द्वारा, परमेश्वर सम्बन्धी विषयों में (विप्रः) मेधावी (अजायत) बन जाता है।

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
१४४—प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रँस्तोता नव्यं गीर्भिः।
१२ ३ २ ३ १ २
नरं नृषाहं मँहिष्ठम् ॥ १० ॥

हे उपासको ! (गीर्भिः) स्तुतिवाणियों द्वारा (इन्द्रम्) परमेश्वर की (प्र स्तोत) खूब स्तुति किया करो, जो परमेश्वर कि (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (सम्राजम्) सम्राट् है, (नव्यम्) स्तुति के योग्य है, (नरम्) नेता है, (नृषाहम्) नेताओं का नेता है, (मंहिष्ठम्) तथा महादानी है।

[नव्यम् = नु स्तुतौ]

द्वितीय प्रपाठक का प्रथम अर्ध=प्रपाठक

दशति ६

(१—१०) १ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षः) आंगिरसः; २ मेधातिथिः (ऋ० शंसुर्बार्हस्पत्यः) काण्वः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४ बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः; ८ वत्सः काण्वः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५ बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः; ६, ७ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (ऋ० सुकक्षः) आङ्गिरसः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेपो आजीगर्तिः; १० शुनःशेपो आजीगर्तिः; वामदेवो वा ॥ इन्द्रः, (४ ऋ० इन्द्रापूषणौ) ५ मरुतः ॥ गायत्री ॥

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
१४५—अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
२ ३ २ ३ १ २
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥

(शिप्री) भरे-चेहरे वाला वीर-योद्धा जैसे (सुदक्षस्य) उत्तम शक्ति देने वाले (अन्धसः) अन्न से तैय्यार की गई (यवाशिरः) जौ-की-पकी-लप्सी को प्रसन्नता से (अपात्) पीता है, (उ) ऐसे ही (इन्द्रः) परमेश्वर भी भक्ति मार्ग में (सुदक्षस्य) प्रवीणता को प्राप्त किये हुए, तथा (प्रहोषिणः) सर्वस्व समर्पण कर देने वाले उपासक के (इन्दोः) भक्ति रस का (अपात्) पान करता है ।

[यवाशिरः = यव+आ+श्रीञ् (पाके) । प्रहोषिणः = प्र+हु+षणु (दाने)]

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१४६—इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥

(पुरुवसो) हे बहुधनी तथा भरपूर बसे हुए परमेश्वर (इमाः) ये हमारी (गिरः) स्तुति-वाणियां (त्वा) आपकी ही (अभि प्रनोनुत्रु) प्रत्यक्ष रूप में स्तुति करती हैं, (न) जैसे कि (धेनवः) दूध पिलाने वाली (गावः) गौएँ अपने अपने (वत्सम्) बछड़े की ओर हम्भारती हैं ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
१४७—अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

(त्वष्टुः) सूर्य की (गोः) किरणों का, सूर्य से (अपीच्यम्) अपगत होकर, अलग हो कर, (अत्र, ह) इस (चन्द्रमसः गृहे) चन्द्रमा के घर में (नाम) नत होना, पहुंचना (अमन्वत) विद्वान् लोग मानते हैं । (इत्था) इसी प्रकार उपासक मानते हैं

कि प्रभु-रूपी-सूर्य का प्रकाश, उपासक के मनरूपी चन्द्रमा में पहुंचता है।

[चन्द्रमा मनसो जातः (यजु=३१।१२)]

२उ ३ १२३ २ ३ २ ३ १ २र
१४८—यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः।
१ २ ३ १ २३ २ २
तत्र पूषाभुवत्सचा ॥ ४ ॥

(वृषन्तमः) आनन्द रस की वर्षा करने में सर्वश्रेष्ठ (इन्द्रः) परमेश्वर, (यद्) जब (अपः) आनन्द रसों को (मही) भारी मात्रा में उपासक के प्रति (अनयत्) लाता है, जो आनन्द रस कि उपासक में (रितः) विशेष प्रेरणाए देते हैं, (तत्र) उस अवस्था में आनन्द रस से (पूषा) परिपुष्ट उपासक, परमेश्वर का (सचा) साथी बन जाता है।

[रितः = रि (गतौ)+क्त=कर्तरि।]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१४९—गौर्धयति मरुताꣳश्रवस्युर्माता मघोनाम्।
३ २उ ३ १ २
युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५ ॥

(गौः) गौ जैसे अपने सेवक को (धयति) दूध पिलाती है वैसे ही परमेश्वर उपासक को आनन्द रस का पान कराता है। यह परमेश्वर (मघोनाम्) आत्मिक ऐश्वर्य से सम्पन्न (मरुताम्) प्राणधारियों की (माता) माता है। यह सदा उनका (श्रवस्युः) यश चाहता है। जब परमेश्वर-माता योग विधि द्वारा (युक्ता) युक्त हो जाती है, तब वह (रथानाम्) हमारे शरीर-रथों का स्वयं (वह्निः) वहन करती है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५०—उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥

(मदानां) हे आनन्दों के पति! (नः) हमारी (हरिभिः) इन्द्रियों द्वारा (सुतम्) निष्पदित भक्ति-रस के (उप) समीप (याहि) आइये। (नः) हमारी (हरिभिः) इन्द्रियों द्वारा (सुतम्) निष्पादित भक्ति-रस के (उप) समीप अवश्य आइये।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ ३२
१५१—इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे।
१ २ ३ १ २र
अच्छावभृथमोजसा ॥ ७ ॥

(होत्राः) वेद वाणियों का जब (इष्टाः) सत्सङ्ग किया जाता है, अर्थात् वेद का जब स्वाध्याय-यज्ञ किया जाता है, तब वेदवाणियाँ (अध्वरे) हिंसारहित-स्वाध्याय-

यज्ञ में (असृक्षत) भक्तिरस का सर्जन करती हैं, और (इन्द्रम्) परमेश्वर के गुणों को (वृधन्तः) बढ़ाती हैं, बढ़ बढ़ कर वर्णन करती हैं। इस प्रकार (अवभृथम्) रक्षा करने वाले और भरण पोषण करने वाले परमेश्वर की (अच्छा) और (ओजसा) वेग से वेदवाणियां ले चलती है।

[होत्राः)=मन्त्र जिन द्वारा आहुतियां दी जाती हैं। होत्रा=(निघः१-११) अवभृथम्=अव=रक्षा+भृथ=भरण—पोषण]

३२उ ३१ २ ३ २३१ २ ३ २ १
१५२—अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह।
३ १ २र
अहꣳसूर्य इवाजनि ॥ ८॥

(अहम्) मैं उपासक ने (पितुः) जगत् के पिता से (ऋतस्य) सच्चाई की (मेधाम्) मेधा का (जग्रह) ग्रहण कर लिया है, और (अहम्) मैं (सूर्य इव) सूर्य के सदृश (अजनि) हो गया हूँ अर्थात् जैसे सूर्य प्रकाश द्वारा, जगत् के अन्धकार को दूर करता है, वैसे ही मैं भी प्राप्त मेधा के प्रकाश द्वारा पृथिवी वासियों के अज्ञानान्धकार को दूर करता हूँ।

३१ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २
१५३—रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।
३ २ ३ २ ३ १२
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९॥

(इन्द्रे) परमेश्वर जब (नः) हमारे (सधमादे) साथ मिलकर भक्तिरस और आनन्द रस के पारस्परिक भोग से प्रसन्न हो जाता है, तब (रेवतीः) आध्यात्मिक-सम्पत्ति-शक्ति वेद वाणियां, (नः) हमें (तुविवाजाः) बहुत बल प्रदान करती हैं, (याभिः) जिन वेद वाणियों द्वारा, हम (क्षुमन्तः) अन्नभोगी या वेद मन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाले (मदेम) आनन्द प्राप्त करते हैं।

[रेवती ! = रयिवतीः। क्षु=अन्न (निघं, २।७) अथवा क्षु=शब्दे [क्षुमन्ताः =वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाले]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५४—सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासाꣳसुक्षितीनाम्।
३ २ २क२र ३ २
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १०॥

(समः) भक्तिरस (च) तथा (पूषा) भक्तिरस से परिपुष्ट हुआ जीवात्मा, ये दोनों, (सुक्षितीताम्) पृथिवीवासी (विश्वासाम्) समस्त मनुष्यों में (चेततुः) एक नई चेतावनी या जागृति उत्पन्न कर देते हैं, (देवत्राः) ये दोनो अर्थात् सोम-और-पूषा दिव्य गुणों की रक्षा करते हैं, तथा (रथ्योः) शरीर-रथ के स्वामी अर्थात् मन-और बुद्धि के लिए (हिता) हितकर होते हैं।

[रथ्योः=रथी+षष्ठी विभक्ति+द्विवचन। उपनिषद् के अनुसार शरीर=रथ का रथी अर्थात् स्वामी "आत्मा" है। परन्तु सांसारिक जीवन में आत्मा स्वामी न बन कर मन-और-बुद्धि शरीर-रथ के स्वामी बने रहते हैं। भक्ति रस तथा भक्तिरस से परिपुष्ट आत्मा, जब शरीर-रथ के स्वामी बनते हैं तो ये, दोनों अर्थात् मन-और-बुद्धि को नियन्त्रित कर, जीवन में हितकर हो जाते हैं]

दशति ७

(१-१०) १, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः, २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ मेधातिथिः काण्वः; प्रियमेधश्चांगिरसः; ४ इरिम्बिठिः काण्वः; ६, १० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ त्रिशोकः काण्वः। ८ कुसीदी काण्वः; ९ शुनःशेप आजीगर्तिः॥ इन्द्रः॥ गायत्री।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१५५—पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २
विश्वासाहँशतक्रतुं मँहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ १॥

हे उपासको! (वः) तुम्हारे दिये (अन्धसः) भक्तिरस-रूपी-अन्नरस को (अभि) समक्षरूप में (पान्तम्) स्वीकार करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की (आ) पूर्ण रूप में (प्र गायत) प्रकृष्ट स्तुतियां गाया करो, जो परमेश्वर कि (विश्वासाहम्) विश्वविजयी है, (शतक्रतुम्) सैंकड़ों प्रकार के कर्मों का करने वाला तथा बहुप्रज्ञ है; (चर्षणीनाम्) मनुष्यों को (मंहिष्ठम्) सम्पत्तियां देने वाला तथा परम पूजनीय है।

[मंहतिर्दानकर्मा। मह=पूजायाम्।]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५६=प्र व इन्द्राय मादनँहर्यश्वाय गायत।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने॥ २॥

(सखायः) हे परमेश्वर के सखाओ! जिस परमेश्वर ने शरीर-रथ को (हर्यश्वाय) वहन करने वाले दो प्रकार के इन्द्रिय-घोड़े दिये हैं, तथा जो (वः) तुम्हारे (सोमपाव्ने) भक्ति-रस का पान करता है, उस परमेश्वर के प्रति, (मादनम्) आनन्ददायी स्तोत्रों को (प्र गायत) गाया करो।

[हर्यश्वाय=हरि (हरण करने वाले)+अश्व (इन्द्रिय घोड़े) "इन्द्रियाणि हयानाहुः" (कठ० उप० १।३।४)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५७—वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।
१ २ ३ १ २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते॥ ३॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आपके ज्ञानभण्डार में से (कण्वाः) ज्ञानकणों के अभिलाषी लोग (उक्थेभिः) वैदिक-सूक्तियों द्वारा (जरन्ते) आपकी स्तुतियां करते हैं। (वयम्) हम उपासक भी (त्वा) आपकी ही स्तुतियां करते हैं। हम (त्वायन्तः) आपकी प्राप्ति चाहते हैं, (मत् इत् अर्थाः) आपकी प्राप्ति,—केवल यही हमारी चाहना है, यही हमारा प्रयोजन है। हम आपके (सखायः) सखा हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

१५८—इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।

३ १ २ ३ १ २

अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥

(मद्वने) आनन्दमय (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये भक्तिरस (सुतम्) निष्पादित हुआ है। (नः) हमारी (गिरः) वाणियां उस परमेश्वर की (परिष्टोभन्तु) खूब स्तुतियां करें। और इन स्तुतियों के (कारवः) करने वाले उपासक उस (अर्कम्) अर्चनीय परमेश्वर की (अर्चन्तु) अर्चना किया करें।

[मद्वने=मद् (आनन्द)+वनिप् ।]

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१५९—अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अयम्) यह (सोमः) भक्तिरस (ते) आपके प्रति समर्पित है। (बर्हिषि अधि) उपासना-यज्ञ में या हृदयाकाश में यह भक्तिरस (निपूतः) विशुद्ध भावनाओं की छाननी में बहुत पवित्र कर लिया है। (एहि) हे परमेश्वर आप आइये, प्रकट हूजिये, (ईम्) इस भक्तिरस के प्रति (द्रव) शीघ्र आइये। (अस्य) और इसका (पिब) पान कीजिये।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१६०—सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।

३ २ ३ १ २

जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥

(इव) जैसे, दूध की इच्छा वाला, (गोदुहे) गौ दोहने के लिये (सुदुघाम्) सुलभ-दुहाने वाली गौ को दोहकर अपनी रक्षा कर लेता है, वैसे हम उपासक (द्यविद्यवि) दिन-प्रतिदिन (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये, उस परमेश्वर के प्रति (जुहूमसि) समर्पणों की आहुतियां देते हैं, जो परमेश्वर कि संसार में (सुरूपकृत्नुम्) उत्तम उत्तम रूपों तथा आकृतियों का निर्माण करता है, तथा उपासक के रूप को उत्तम बना देता है।

३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २

१६१—अभि त्वा वृषभा सुते सुतँसृजामि पीतये ।

३ १ २ ३ १ २

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥

(वृषभ) हे शक्ति-और-बल की वर्षा करने वाले परमेश्वर! (सुत) भक्ति-रस प्रकट हो जाने पर, मैं, (पीतये) आपके स्वीकार के लिये, (सुतम्) उत्पन्न भक्तिरस की (त्वा अभि) आपके प्रति (सृजामि) समर्पित करता हूं। आप उस द्वारा (तृम्प) तृप्त हूजिये और मुझ उपासक में (मदम्) आनन्द रस को (आ व्यश्नुहि) पूर्णरूप में व्याप्त कर दीजिये!

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
१६२—य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः।
१ २र ३ १ २
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! मेरे (चमसेषु) मस्तिष्क और उसके अवयवों में, तथा (चमूषु) भोगसाधन मेरी इन्द्रियों में, (यः) जो (सोमः) भक्तिरस (आ सुतः) सम्पन्न हुआ है, वह (ते) आपके लिये है। (अस्य) इसका आप (पिब) पान कीजिये। क्योंकि (त्वम्-इत्) आप ही (अस्य) इस भक्तिरस के (ईशिषे) अधीश्वर हैं, स्वामी हैं।

[चमसेषु=मस्तिष्क (तिर्यग्बिलः चमसः ऊर्ध्वबुध्नः) अथर्व० (१०।८।९) चमूषु=चमु (अदने)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१६३—योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

(योगे योगे) योगाभ्यास की भिन्न-भिन्न भूमियों में अर्थात् भिन्न-भिन्न योगावस्थाओं में, (वाजे वाजे) बल, ज्ञान, वेग आदि की प्राप्ति के निमित्त, (तवस्तरम्) गति और वृद्धि प्रदान करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं। हम परमेश्वर के (सखायः) सखा हैं। अतः (ऊतये) रक्षा के लिये परमेश्वर का आह्वान करते हैं।

[तवस्तरम्=तवस् (तु=गतौ, वृद्धौ)]

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१६४—आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
१ २ ३ १ २
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥

(सखायः) हे मित्रो! आप लोग (तु) अवश्य आइये, (आ) सब ओर (निषीदत) बैठ जाइये, और (इन्द्रम् अभि) परमेश्वर को लक्ष्य करके (प्र गायत) खूब गाइये। आप (स्तोमवाहसः) स्तुति=गानों के जानने वाले हैं।

दशति ८

(१-१०) १ विश्वामित्रो गाथिनः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; कुसीदी काण्वः; ४ प्रियमेध आंगिरसः; ५, ८ वामदेवो गौतमः; ६, ९ श्रुतकक्षः सुकक्षो

वा आंगिरसः; (६ ऋ० सुकक्ष आंगिरसः); ७ मेधातिथिः काण्वः;
१० बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः ॥ इन्द्रः ऋ० ७ सदसस्पतिः;
१० मरुतः) ॥ गायत्री ॥

३१ २र ३ १ २
१६५—इदꣳह्यन्वोजसा सुतꣳराधानां पते ।
२ ३ ३ऽ १ २
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥ १ ॥

(राधानां पते) हे आराधनाओं के स्वामी ! (ओजसा) आपके ओज के द्वारा, (इदम्) यह भक्तिरस (सुतम्) निष्पादित हुआ है। (गिर्वणः) हे वेद-वाणियों द्वारा भजनीय ! (अस्य) इस भक्तिरस का (तु) तो (हि) अवश्य, (अनुपिब) निरन्तर पान कीजिये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६६—महाꣳइन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
१ २र ३ १ २र
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (महान्) है, विभुता की दृष्टि से महान् है, गुणों की दृष्टि से महान् है। यह (नः) हमारे (पुरः) सम्मुख सदा विद्यमान रहे। (महित्वम्) सब महिमा उसी (वज्रिणे) पापों के प्रति वज्रधारी की (अस्तु) हो। (प्रथिना) विस्तार की दृष्टि से उसका (शवः) वल (द्यौःन) द्युलोक के सदृश फैला हुआ है।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
१६७—आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभꣳसं गृभाय ।
३ १ २र
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (नः) हमारे (क्षुमन्तम्) फुंकारते हुए तथा (चित्रम्) विचित्र रूप वाले (ग्राभम्) पापग्राह को (संगृभाय) सम्यक् रूप से पकड़ लीजिये, जैसे कि (महाहस्ती) बड़ा हाथी अपनी (दक्षिणेन) बलशाली सूंड द्वारा शाखा आदि को मजबूती से पकड़ लेता है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१६८—अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुꣳसत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

हे उपासक ! तू (यथाविदे) यथार्थ विद्या की प्राप्ति के लिये (गिरा) वेदवाणियों द्वारा, (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (अर्च) अर्चना किया कर, (प्र) खूब अर्चना किया कर, जो परमेश्वर कि (गोपतिम्) वेदवाणियों का पति है, (सत्यस्य) सत्यज्ञान का (सूनुम्) प्रेरक है, तथा (सत्पतिम्) सच्चा पति है।

[सूनुम्=षू (प्रेरणे)]

१२ ३१ २र ३ २ ३१२३ ११
१६९—कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
२३ १२ ३२
कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥

(चित्रः) अद्भुत स्वरूप वाला परमेश्वर, जो कि (नः) हमें (सदावृधः) सदा बढ़ाता है, (सखा) और हमारा मित्र है, वह (कया ऊती) किस रक्षा विधि से (नः) हमें (आभुवत्) घेरे हुए है ? (प्रश्न)। वह (कया) सुखमयी, (शचिष्ठया) शक्तिशाली-तथा-प्रज्ञासम्पन्न (वृता) वर्ताव-विधि द्वारा (आभुवत्) हमें घेरे हुए है (उत्तर)।

[शची=कर्म (निघं० २।१)। तथा प्रज्ञा (निघं० ३।९)]

१२ ३२३ १२ ३१२
१७०—त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।
१ २ ३१२
आ च्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥

हे उपासक ! तू (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये, (त्यम्) उस परमेश्वर को (उ) ही अपनी ओर (आच्यावयसि) आवर्जित कर, स्वाभिमुख कर। हे उपासको! तुम सब भी उसे (वः) अपनी ओर आवर्जित करो, स्वाभिमुख करो। वह परमेश्वर (सत्रासाहम्) सदा कष्टों का पराभव करता है, और (गीर्षु) वेद की सब बाणियों में (आनतम्) व्याप्त है।

१२३ २३१२ ३१ २र ३ १२
१७१—सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
३२ ३१२
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥

(सदसः पतिम्) संसार-गृह के पति, (अद्भुतम्) अद्भुत स्वरूप वाले, (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के (प्रियम्) प्रिय, (काम्यम्) और जीवात्मा की कामना के योग्य परमेश्वर को, (सनिम्) तथा न्याय-अन्याय का विभाग कर सकने वाली विवेकमयी (मेधाम्) बुद्धि को, मैं उपासक (अयासिषम्) प्राप्त हुआ हूं।

२३१ २३ २३२उ ३क २र ३१२
१७२—ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः।
३१ २ ३१२
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

हे परमेश्वर ! (दिवः) द्युलोक के (अधः) नीचे, (ते) आपके नियत किये हुए (ये) जो (पन्थाः) मार्ग हैं, (येभिः) जिन मार्गों द्वारा कि (अश्वम्) सूर्य आदि

को (वि ऐरयः) आप प्रेरित कर रहे हैं, चला रहे हैं, वे आपकी आज्ञा का (श्रोषन्तु) श्रवण करते हैं, आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते, ऐसी कृपा कीजिये कि (नः) हमारे (भुवः) पृथिवीवासी जन (उत) भी आपकी आज्ञाओं को सुना करें, उनका उल्लंघन न किया करें।

[असौ वा आदित्योऽत्रः" (तै० ३।६।२३।२)]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१७३—भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जꣳशतक्रतो।
१ २ ३ १ २
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥

(शतक्रतो) हे सैंकड़ों प्रकार के कर्मों वाले परमेश्वर! (नः) हमें (भद्रम्) कल्याणकारी और (भद्रम्) सुखदायी प्रत्येक मार्ग का (आभर) उपदेश दीजिये, (इषम्) अभीष्ट मोक्ष और (ऊर्जम्) बल-तथा-प्राणशक्ति हमें दीजिये। (यत्) क्योंकि (इन्द) हे परमेश्वर! आप तो (नः) हमें (मृडयासि) सुखी ही करना चाहते हैं।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१७४—अस्ति सोमो अयꣳसुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥

हे परमेश्वर! (अयम्) यह (सोमः) भक्तिरस (सुतः) सम्पन्न (अस्ति) हो चुका है, आपकी कृपा से मेरे (मरुतः) समग्रप्राण अब (अस्य) इस भक्तिरस का (पिबन्ति) पान करने लग गए हैं, और वे समग्रप्राण (स्वराजः) अपने अपने क्षेत्र में राज्य करते हुए अनुभूत हो रहे हैं। (उत) और (अश्विना) प्राण-तथा-अपान रूपी मुख्य प्राण भी उस भक्तिरस का पान करने लग गए हैं अर्थात् मेरी समग्र शक्तियां भक्तिरस से आप्लुत हो गई हैं।

[मरुतः=शरीर और शरीरावयवों की जीवनीय शक्तियां।]

दशति ९

(१-१०) १ देवजामय इन्द्रमातरः; २ गोधा ऋषिका; ३ दध्यङ्ङाथर्वणः; ४ प्रस्कण्वः काण्वः; ५ गोतमो राहूगणः; ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ वामदेवो गौतमः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेप आजीगर्तिः; १० उलो वातायनः॥ इन्द्रः (ऋ० ४ अश्विनौ; १० वायुः)
॥ गायत्री ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१७५—ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते।
३ १ २ ३ १ २
वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥

मेरी प्राणशक्तियाँ (१६४) (जातम्) प्रकट हुए (इन्द्रम्) परमेश्वर की (उपासते) उपासना में रत हो गई है। ये प्राणशक्तियाँ मुझ में (ईङ्खयन्तीः) विशेष प्रेरणाएं देने लग गई हैं, मानो (अपस्युवः) विशेष कर्म कराना चाह रही हैं, मानो परमेश्वर से (सुवीर्यम्) उत्तम वीरता की (वन्वानासः) याचना कर रही हैं।

[इखि=गतौ। अपस्यु=अपस् कर्म (निघं २।१) +क्यच् (इच्छा)+उ वनु=याचने]

१ २ ३ १ २र
१७६—नकि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि।
३ १ २
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥

(देवाः) हे दिव्य प्राणशक्तियो! (१६४) अब हम जीवनों में परमेश्वर से भिन्न किसी शक्ति को (इनीमसि नकि) अधीश्वरी शक्ति के रूप में नहीं मानते। (नकि) न हम अब कोई (आयोपयामसि) व्रतभङ्ग ही करते हैं। अपितु (मन्त्रश्रुत्यम्) मन्त्रों में जो उपदेश सुने गए हैं तदनुसार ही हम (चरामसि) आचरण करते हैं।

इनः=ईश्वर नाम (निरु० ३।२।१२; तथा ११।३।२१)]

३ १ २ २१३३ र२१
१७७—दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तुहि देवꣳसवितारम् ॥ ३ ॥

हे उपासक! (दोषा उ) सायंकाल (आगात्) आ गया है, तू परमेश्वर के (बृहद्) बड़े सामगान को (गाय) गा। (गामन्) हे गाने वाले। (आथर्वण) अथर्ववेद के विद्वान्! तथा हे निश्चल चित्तवृत्ति वाले! तू ऐसा सामगान गा जो कि (द्युमत्) उज्जवल हो, जिससे हम में उज्ज्वल प्रकाश चमक उठे। तू (देवम्) देवाधिदेव की, (सवितारम्) सब के प्रेरक की, (स्तुहि) स्तुति गा।

[दोषा=रात्रि (निरु० ३।३।१५) आथर्वण=थर्वतिः=(चरति कर्मा, अकारः तत्प्रतिषेधः; निरु० ११।२।१६)] मन्त्र में सायंकाल की स्तुति का वर्णन है।

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २
१७८—एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।
३ १ २ ३ २
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥

(एषा) यह प्रातःकाल की (उषा) उषा, जो कि (अपूर्व्या) अपूर्व छटा वाली है, और (प्रिया) प्रियरूपा है, (दिवः) द्युलोक से (व्युच्छति) विविध रंगों

में छिटक रही हैं। इस उषाकाल में मैं परमेश्वर का (स्तुषे) स्तुतिगान करता हूं। (अश्विना) हे स्त्री-पुरुषो ! (वाम्) तुम्हारे निमित्त, मैं परमेश्वर का (बृहद्) महा स्तुति-गान करता हूं। [मन्त्र में प्रातःकाल की स्तुति का वर्णन है।]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

१७९—इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।

३ १ २ ३ १ २र

जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर जो कि (अप्रतिष्कुतः) किसी शक्ति से भी प्रतिरुद्ध नहीं हो सकता, (अस्थभिः) परास्त कर देने वाली अपनी शक्तियों द्वारा (दधीचः) ध्यानी की (नवतीः) न-वाली (नव) ९ (वृत्राणि) पापमयी-वृत्तियों का (जघान) हनन कर देता है।

[नव=९ वृत्तियां अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रिय वृत्तियां, तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—ये चार वृत्तियां मिलकर ९ होती हैं। ये ९ वृत्तियाँ रजस् और तमस् के बाहुल्य के कारण वृत्ररूप होती हैं। ये आत्मा पर आवरण डाले रखती हैं। (वृत्र=वृ आवरणे)। वृत्र-रूप में ये ९ वृत्तियां "नवतीः" कहलाती हैं। "नवतीः" का अर्थ है न—वाली, नकार वाली, अर्थात् नास्तिक रूप वाली। न—वाली वृत्तियाँ परमेश्वर को नहीं मानतीं। अतः ये नास्तिक वृत्तियां हैं। परमेश्वरीय परास्त-शक्ति द्वारा जब रजस् और तमस् दूर हो जाते हैं, तब उपर्युक्त ९ वृत्तियां, सात्त्विकरूप धारण कर लेती हैं, तब ये वृत्तियाँ आस्तिक-वृत्तियां बन जाती हैं। इस प्रकार परमेश्वर "न-वतीः नव" वृत्तियों का हनन कर देता है। "अस्थभिः" का प्रसिद्ध अर्थ हड्डियां होता है। आस्तिक महात्माओं के जीवितावस्था में उनके सदुपदेश लोगों को आस्तिक बनाते ही रहते हैं। परन्तु इन महात्माओं के दिवंगत हो जाने पर भी इनकी हड्डियाँ, राख और स्मृतियां भी लोगों को आस्तिक बनाए रखती हैं। [अस्थभिः=अस्त+तृतीया विभक्ति]

२उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१८०—इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।

३ १ २ ३ १ २र

महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे परमेवर ! आप (एहि) आइए। हमारे समर्पित (अन्धसः) भक्तिरस रूपी अन्न दानों से आप (मत्सि) प्रसन्न हूजिये। (विश्वेभिः सोमपर्वभिः) हमारे भक्तिरस की सब अर्थात् अल्पाधिक मात्राओं के द्वारा प्रसन्न हूजिये। आप (ओजसा) शक्ति से (महाँ) महान् हैं, तथा (अभीष्टिः) अभीष्ट साधक हैं।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ २

१८१—आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

महान्महीभिरूतिभिः ॥ ७ ॥

(वृत्रहन्) हे पापवृत्रों का हनन करने वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! आप (नः) हमें (तू) शीघ्र (आ गहि) प्राप्त हूजिये, (अस्माकम्) हमारी (अर्धम्) समृद्धियों में आप हमें (आ) प्राप्त हूजिये। (महान्) आप महान् हैं। (महीभिः ऊतिभिः) महारक्षाओं के साथ आप हमें प्राप्त हूजिये।

[अर्धम्=ऋधु वृद्धौ]

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
१८२—ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्।
२ ३ १ २ ३ १ ३
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥

(अस्य) इस परमेश्वर का (तत्) वह प्रसिद्ध (ओजः) ओज (तित्विषे) चमकता है (यत्) जबकि (इन्द्रः) परमेश्वर (रोदसी) द्युलोक और भूलोक इन (उभे) दोनो को, प्रलयकाल में (समवर्तयत्) लपेट लेता है, जैसे कि कोई (चर्म) चर्म को, मृगछाल को, लपेट लेता है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१८३—अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।
२ ३ १ २
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥

हे परमेश्वर ! (अयम्) यह उपासक (उ) निश्चय से (ते) आपका है। आप इस उपासक के प्रति (सम् अतसि) सदा आते हैं, (इव) जैसे कि (कपोतः) कबूतर, (गर्भधिम्) गर्भ धारण चाहने वाली कबूतरी के प्रति आया करता है। और (नः) हमारे (तत् चित् उ वचः) उन प्रार्थना-वचनों को आप (ओहसे) स्वीकार करते हैं। [कबूतर का कबूतरी की ओर आना कबूतरी की चाहना पर निर्भर होता है। इसी प्रकार उपासक की उग्र अभिलाषा पर परमेश्वर का उपासक की ओर उन्मुख होना निर्भर है]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१८४—वात आ वातु भेषजꣳशम्भु मयोभु नो हृदे।
२ ३ १ २
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १० ॥

हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से (वातः) वायु हमारे लिये (भेषजम्) औषध (आवातु) बहा लाए, जो औषध कि (नः) हमारे (हृदे) हृदयों के लिये (शम्भु) शान्ति पैदा करने वाली हो, तथा (मयोभु) सुख उत्पन्न करने वाली हो, और जो (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (प्रतारिषत्) बढ़ाए। अथवा (वातः) सर्वगत तथा (भेषजम्) दुःख नाशक परमेश्वर ऐसी चिकित्सा करे कि दुःख, सन्ताप, अज्ञान आदि रोग शान्त हों, हमारे हृदय सुखी हों, और हमारी आयुएँ बढ़ें।

[मयः=सुख (निघं० ३।६)। वातः=वा गति गन्धनयोः]

दशति १०

(१-६) १ कण्वो घौरः; २, ३, ६ वात्सः (ऋ० २, ६ वशोऽश्व्यः) काण्वः; ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ इरिम्बिठिः काण्वः; ८ सत्यधृतिर्वारुणिः ॥ इन्द्रः (ऋ० १ वरुणमित्रार्यमणः; ८ आदित्यः) गायत्री ॥

१ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
१८५—यँ रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
२ ३ १ २ ३ १ २
न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

परमेश्वर की (वरुणः) पाप निवारण करने की शक्ति, (मित्रः) उसकी मैत्री, तथा (अर्यमा) पक्षपात छोड़ कर न्याय करने की शक्ति,—(प्रचेतसः) सदा सचेत ये तीनों शक्तियां—(यम्) जिस उपासक की (रक्षन्ति) रक्षा करती हैं, (सः) वह (जनः) उपासक आसुरी—वृत्तियों द्वारा (न किः) कभी नहीं (दभ्यते) दबाया जा सकता ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
१८६—गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
३ २ ३ १ २
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (महोनाम्) महिमा वाले उपासकों को आप (यथा) जैसे (पुराः) अनादिकाल से (गव्या) वेदवाणी की प्राप्ति द्वारा, (उ) और (अश्वया) इन्द्रिय-शक्तियों की प्राप्ति द्वारा, (रथया) शारीरिक शक्तियों की प्राप्ति द्वारा, (उत) तथा (वरिवस्या) मानसिक और आत्मिक सम्पत्तियों की प्राप्ति द्वारा, (सु) सुखी करते आए हैं, वैसे (नः) हमें भी इनकी प्राप्ति द्वारा सुखी कीजिये ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१८७—इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (इमाः) ये (पृश्नयः) प्रजाएँ, (ते) आपके लिये, (घृतम्) घृत-भरे (एनाम् आशिरम्) इस पके-दूध को (दुहते) दोहती हैं, [ताकि अग्नि होत्र आदि द्वारा आपके प्रति उसे समर्पित कर सकें] । इस प्रकार ये प्रजाएँ (ऋतस्य) सत्य धर्म की (पिप्युषीः) वृद्धि करती हैं ।

[आशिरम्=आ+श्रीञ् (पाके) । ताजे दुहे दूध को भी "पका" दूध कहते हैं ।]

३ २ ३ १ २ ३ १ २र

१८८—अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत ।

१ २र ३ १ २

यत्सोमेसोम आभुवः ॥ ४ ॥

(पुरुणामन्) हे सबको नमाने वाले ! तथा हे अग्नि आदि नाना नामों वाले ! तथा (पुरुष्टुत) हे बहुत स्तुतियों वाले परमेश्वर ! (यत्) जब आप (सोमे सोमे) प्रत्येक उपासक के भक्ति रस में (आ भुवः) उपस्थित होते हैं, तब (अया धिया) इस विचार से उपस्थित होते हैं कि आप उसे (गव्यया) गौ अर्थात् वेदवाणी का ज्ञान-दुग्ध पिला सकें ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१८९—पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

३ १ २ ३ १ २

यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥

(सरस्वती) ज्ञान-विज्ञान के स्रोत वाली सरस वेदवाणी, (नः) हमें (पावका) पवित्र करती है। (वाजेभिः) ज्ञान, बल और अन्नादि के उपदेशों के कारण वेदवाणी (वाजिनीवती) वाजिनीवती नामवाली है। वह (धियावसुः) ज्ञान और कर्मों की दृष्टि से सम्पत्ति वाली है। वह वेदवाणी हमारे (यज्ञम्) यज्ञिय कर्मों को (वष्टु) सम्पादित करे ।

२ ३ १ २र उ २उ ३ १ २

१९०—क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रँसोमस्य तर्पयात् ।

२ ३ २ ३ १ २

स नो वसून्या भरात् ॥ ६ ॥

(नाहुषीषु) कर्म बन्धनों में बंधी प्रजाओं में (कः) कौन सा ऐसा उपासक है जो कि (इमं इन्द्रम्) इस परमेश्वर को (सोमस्य) भक्तिरस के समर्पणों द्वार (तर्पयात्) तृप्त कर देता है। तृप्त होकर (सः) वह परमेश्वर (नः) हमें (वसूनि) नानाविध सम्पत्तियों से (आभरात्) भर देता है ।

[नाहुषीषु=नह बन्धने। नहुषः मनुष्य नाम (निघं० २।३)]

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

१९१—आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।

२उ ३ १ २ ३ १ २

एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (आयाहि) आइये, दर्शन दीजिये। (ते हि) आपके लिये ही इस (सोमम्) भक्तिरस को (सुषुम) हमने तैय्यार किया है। (आ) आइये, आप (इमम्) इस भक्तिरस का (पिब आ) पान पूर्णरूप से कीजिये। (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) हृदयासन पर (आ सदः) आ विराजिये ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
१९२—महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
३ २ ३ १ २
दुराधर्षं वरुणस्य ।। ८ ।।

हे परमेश्वर ! आपके (त्रीणाम्) तीनों रूपों की (महि अवः) महारक्षा हमें (अस्तु) प्राप्त हो। आपके (मित्रस्य) मित्ररूप द्वारा हमें (द्यु) ज्ञान-प्रकाश मिले, आपके (अर्यम्णः) न्यायकारित्वरूप द्वारा हमें (क्षम्) सुखीनिवास मिले, और आप के (वरुणस्य) पाप निवारकरूप द्वारा हमें (दुराधर्षम्) पाप द्वारा पराभूत न होने का सामर्थ्य मिले ।

[द्युक्षम्=द्यु (प्रकाश)+क्षम् (क्षि निवासे)]

१ २ ३ १ २
१९३—त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
१ २
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ।। ९ ।।

(पुरूवसो) हे महाधनी ! (प्रणेतः) हे उत्तम नेता ! हे प्रेम करने वाले ! तथा (हरीणाम्) हे हमारे इन्द्रिय-घोड़ों के (स्थातः) अधिष्ठाता (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वयम्) हम तो (त्वावतः) आप जैसे स्वामी के (स्मसि) सेवक हैं ।

द्वितीयार्ध प्रपाठक समाप्त

द्वितीय प्रपाठक समाप्त

दशति १

(१-१०) १ प्रगाथः काण्वः; २ विश्वामित्रो गाथिनः; ३, १० वामदेवो गौतमः; ४, ६ श्रुतकक्षः आङ्गिरसः (ऋ० ४ सुकक्षो वा; ६ सुकक्ष आंगिरस): ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ गृत्समदः शौनकः; ८, ९ भरद्वाजः (ऋ० -८ शंयुः) वार्हस्पत्यः ।। इन्द्रः (९ ऋ० इन्द्रापूषणौ) ।। गायत्री ।।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
१९४—उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
१ २ ३ १ २
अव ब्रह्मद्विषो जहि ।। १ ।।

हे परमेश्वर ! हमारे (सोमाः) भक्तिरस (त्वा) आपको (उत् मदन्तु) सुप्रसन्न करें। (अद्रिवः) हे अविदीर्ण शक्तियों के स्वामी ! (राधः) हममें आराधनारूपी धन (कृणुष्व) प्रकट कीजिये, तथा हमारी (ब्रह्मद्विषः) ब्रह्मद्वेषी भावनाओं को (अवजहि) नष्ट कीजिये ।

१ १ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
१९५—गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे
२ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥

(गिर्वणः) हे वेदवाणियों द्वारा भजने योग्य परमेश्वर ! (नः) हमारे (सुतम्) निष्पादित भक्तिरसों की (पाहि) रक्षा कीजिये। (मधोः) मधुर भक्ति-रस की (धाराभिः) धाराओं द्वारा आप (अज्यसे) सींचे जाते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वादातम्) आप द्वारा दिया (यशः) यश (इत्) ही सच्चा यश है।

१ २ २ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २
१९६ सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
२ ३ २ ३ २उ ३ १ २
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

हे उपासको ! (इन्द्रः) परमेश्वर (वः सदा) तुम्हें सदा अपनी ओर (चर्कृषत्) आकृष्ट करे। (सः) वह (नु उ) निश्चय से तुम्हारे (उप) समीप होकर तुम्हारी (सपर्यन्) सेवा कर रहा है। (न) जैसे (शूरः) शूरवीर (इन्द्रः) सम्राट् प्रजाओं द्वारा वरण किया जाता है, वैसे ही (देवः) वह परमेश्वर-देव उपासकों द्वारा (वृतः) वरण किया जाता है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१९७—आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
२उ ३ १ २
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ ४ ॥

हे परमेश्वर ! (इन्दवः) चन्द्रमा की किरणों के समान आह्लाद देने वाले भक्तिरस (त्वा) आप में (आ विशन्तु) प्रवेश पा जायें, आप में लीन हो जायें, (इव) जैसे कि (सिन्धवः) नदी और नद (समुद्रम्) समुद्र में प्रवेश पा जाते हैं, उसमें लीन हो जाते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वाम्) आपसे (न अतिरिच्यते) बढ़ कर कोई शक्ति नहीं है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१९८—इन्द्रमिद्गाथिनो बृहद्गदिवन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
२ ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥

(गाथिनः) सामगान करने वाले सामवेदी उपासक (इन्द्रम्) परमेश्वर का (इत्) ही (बृहत्) महागान करते हैं। (अर्किणः) ऋग्वेद के मन्त्रों द्वारा अर्चना करने वाले (अर्केभिः) ऋग्वेद के मन्त्रों द्वारा (इन्द्रम्) परमेश्वर की ही महा-स्तुतियां करते हैं। (वाणीः) यजुर्वेद तथा अथर्ववेद की वाणियाँ भी (इन्द्रम्) परमेश्वर की ही (अनूषत) स्तुतियाँ करती हैं।

१ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २   ३ २
१९९—इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुँरयिम् ।
३ १ २   ३ १ २
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥

(इषे) हमारे अभीष्ट अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये (इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमें (रयिम्) सम्पत्ति (ददातु) देवे, जो सम्पत्ति कि (ऋभुम्) ऋत के मार्ग अर्थात् सत्य के मार्ग द्वारा चमकती है, और (ऋभुक्षणम्) ऋत के मार्ग पर चमकने वाले उपासकों में जिसका निवास रहता है। (वाजी) शक्तिशाली परमेश्वर (वाजिनम्) शक्तिशाली आध्यात्मिक शक्ति (ददातु) हमें प्रदान करे।

[ऋभवः=उरु भान्तीति वा। ऋतेन भान्तीति वा। ऋतेन भवन्तीति वा (निरु० ११।२।१५) ऋभुक्षणम्=ऋभु+क्षि (निवासे)]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
२००—इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
२उ   २ १   २र
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥

(अङ्ग) हे प्रिय उपासक! (इन्द्रः) परमेश्वर (अभिषत्) सर्वत्र स्थित है। जन्म-मरण के (महद् भयम्) महाभय को वह (अपचुच्यवत्) हटा देता है। (सः हि) वह ही (स्थिरः) कूटस्थ नित्य है और (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा है।

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
२०१—इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे वाणियों द्वारा संभजनीय! (सुते सुते) बार-बार भक्तिरस के उत्पन्न होने पर (इमाः) ये हमारी (गिरः) स्तुति-वाणियाँ (त्वा उ) आपको ही (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं, (न) जैसे कि (धेनवः) दुधार (गावः) गौएँ अपने-अपने (वत्सम्) बछड़े को प्राप्त होती हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२०२—इन्द्रा नु पूषणा वयँसख्याय स्वस्तये ।
३ २ ३ १ २
हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥

(इन्द्रा) परम ऐश्वर्य वाले, तथा (पूषणा) पुष्टि देने वाले परमेश्वर का (वयम्) हम (हुवेम) आह्वान करते हैं, ताकि वह हमारा (सख्याय) सखा बन जाय, और हमारा (स्वस्तये) कल्याण करे, तथा हमें (वाजसातये) साधना में बल और वेग प्रदान करे।

[इन्द्रा पूषणा = इन्द्र और पूषन्—इन दोनों पदों में द्विवचन का प्रयोग हुआ है, और दोनों में द्विवचन के प्रयोग होने पर भी दोनों समस्त पद हैं। यह वैदिक शैली है]

१ २ ३ १ २२ ३ १ २२
२०३—न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
२ ३ २उ ३ २
न क्येवं यथा त्वम् ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वत्) आपसे (उत्तरम्) उत्कृष्ट (न कि) कोई नहीं है। (वृत्रहन्) हे पापों का हनन करने वाले ! आपसे (ज्यायः) बड़ा भी कोई नहीं, और (न कि) न कोई (एवम्) ऐसा ही है (यथा) जैसे कि (त्वम्) आप हैं।

दशति २

(१-१०) १, ४ त्रिशोकः काण्वः; ९ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ वत्सः काण्वः; (ऋ० वशोऽश्व्यः); ५ सुकक्ष आङ्गिरसः; ६, ६ वामदेवो गौतमः; ७ विश्वामित्रो गाथिनः। ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः॥ इन्द्रः॥ गायत्री॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
२०४—तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।
३ २ ३ १ २
समानमु प्र शꣳसिषम् ।

(वः जनानाम्) तुम प्रजाजनों को (तरणिम्) भवसागर से तैराने वाले, (गोमतः) सांसारिक बल सहित (वाजस्य) आध्यात्मिक बल के (त्रदम्) दाता और रक्षक (समानम् उ) और निश्चय से तुम सबके एक ही परमेश्वर की (प्रशंसिषम्) मैं प्रशंसा करता हूं।

[त्रदम् = त्र (त्राण) + द दान।]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २२
२०५—असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
३ १ २ ३ १ २२
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! मैंने स्तुति रूप में (ते) आपकी (गिरः) वेदवाणियों का (असृग्रम्) सर्जन किया है, उच्चारण किया है। वे वेदवाणियां (त्वाम् प्रति) आपको मानो (उद् अहासत) उत्कण्ठा पूर्वक प्राप्त हो रही हैं। जैसे कि (सजोषाः) पति के साथ प्रेम करने वाली पत्नी (वृषभं पतिम्) समर्थ पति को उत्कण्ठापूर्वक प्राप्त होती है।

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
२०६—सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।
३ २उ ३ १ २
मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥

(सः) वह (मर्त्यः) मरणधर्मा उपासक (घ) निश्चय से (सुनीथः) जीवन के उत्तम मार्ग पर चलने लगता है, (यम्) जिसकी कि (पान्ति) रक्षा करते हैं (अद्रुहः) द्वेषद्रोह आदि से रहित (मरुतः) विद्वान् लोग; तथा जिसकी रक्षा करता है (अर्यमा) न्यायकारी और (मित्रः) स्नेही परमेश्वर ।

[मरुतः=ऋत्विक् नाम) (निघं० ३।१८); मरुत्=मनुष्य जाति (उणादि कोश १।९४) महर्षि दयानन्द ।]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २३ १ २
२०७—यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आपने (यत्) जो (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) सम्पत्ति अर्थात् दृढ़ता (वीडौ) वीर योद्धा में (पराभृतम्) भर दी है, और (यत्) जो मानसिक सम्पत्ति (स्थिरे) स्थिर वृत्ति वाले योगी में भर दी है, तथा (यत्) जो प्रज्ञालोक-सम्पत्ति (पर्शाने) मेघ अर्थात् धर्म मेघ समाधि में भर दी है (तत्) उस समग्र सम्पत्ति को मुझ उपासक में भी (आभर) भर दीजिये ।

[वीडु=बल (निघं३।९) । यथा वीडंगः=दृढांगः (निरु० ६।२।११) ।]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
२०८—श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥

हे उपासको ! जो (श्रुतम्) वेद-और-लोक में विश्रुत है, प्रसिद्ध है, (वृत्रहन्तमम्) जो अज्ञान रूपी आवरण का पूर्ण हनन करता है, तथा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में जो (प्र शर्धम्) प्रकृष्टबल के रूप में वर्तमान है, उस परमेश्वर को प्राप्त करने की (आशिषे) मैं इच्छा करता हूं, ताकि (वः) आप सबको और मुझे (राधसे) आराधनारूपी (महे) महाधन प्राप्त हो सके ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२०९—अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
१ २ ३ १ २
अरंशक्र परेमणि ॥ ६ ॥

(शूर इन्द्र) हे पराक्रमी परमेश्वर ! पराक्रम में (त्वावतः) आपके समान आप स्वयं ही हैं। (ते) आपके (श्रवसे) यशोगान के लिए हम उपासक (अरम्)

शीघ्र (गमेम) इकट्ठे होते हैं। (शक्र) हे शक्तिशाली परमेश्वर! (परेमणि) आप परस्वरूप की प्राप्ति के निमित्त हम शीघ्र इकट्ठे होते हैं।

[परेमणि=पर+इश् (गतौ)+मनिन् प्रत्यय+सप्तमी एक वचन]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२१०—धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
१ २ ३ १ २
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥ ७॥

(धानावन्तम्) जिसके पास धनधान्य प्रभूत मात्रा में हैं, और (करम्भिणम्) जिसके पास सत्तू और दही आदि पदार्थ प्रभूत मात्रा में हैं, तथा (अपूपवन्तम्) जिसके पास मालपूआ आदि पदार्थ प्रभूत मात्रा में हैं,—ऐसे व्यक्ति को जैसे याचक लोग चाहना से प्राप्त होते हैं, तथा (उक्थिनम्) जो आचार्य वैदिक सूक्तों का पण्डित है उसे जैसे ब्रह्मचारी लोग चाहना से प्राप्त होते हैं, ऐसे ही (इन्द्र) हे परमेश्वर! आप भक्तिरस की चाहना वाले होकर (नः) हमें (प्रातः) प्रातः काल की उपासनाओं में (जुषस्व) प्रेम से प्राप्त हूजिये।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२११—अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।
२ ३ १ २र ३ १ २
विश्वा यदजय स्पृधः॥ ८॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! शरीर में रहने वाले (अपाम्) रस-रक्त-रूपी जल के (फेनेन) वीर्यरूपी फेन द्वारा, आपने (नमुचेः) न मुक्त होने वाले, न छूटने वाले, पापरूपी वृत्र के (शिरः) सिर को (उदवर्तयः) काट फेंका है। (यत्) चूंकि आपने (स्पृधः) स्पर्धा आदि (विश्वाः) हमारी सब दुर्वृत्तियों पर (अजयः) विजय पाई हुई है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
२१२—इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः।
१ २
तेषां मत्स्व प्रभूवसो॥ ९॥

(प्रभूवसो) हे प्रभूत-सम्पत्ति वाले (इन्द्र) परमेश्वर! (इमे) ये (सोमाः) भक्तिरस (ते) आपके लिये (सुतासः) निष्पादित किये हैं, (च) और (ये) जो भक्तिरस (सोत्वाः) भविष्य में निष्पादित किये जाएंगे, (तेषां) उन सब द्वारा आप (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
२१३—तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो।
३ १ २
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय॥ १०॥

(विभावसो) हे प्रकाशघनी परमेश्वर ! (तुभ्यम्) आपके लिये (सोमाः) हमने भक्तिरस (सुतासः) निष्पादित किये हैं, और आपके लिये (बर्हिः) हृदयासन (स्तीर्णम्) बिछाए हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर (स्तोतृभ्यः) अपने स्तोताओं को (मृडय) सुखी कीजिये ।

दशति ३

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२१४—आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मंहिष्ठंसिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

(वाजयन्तः) अन्न चाहाते हुए कृषक (यथा) जैसे (कृविम्) कूँआ खोदकर उसे स्वाभाविक जल से सींचने देते हैं, इसी प्रकार मैं (शतक्रतुम्) सैंकड़ों-कर्मों-वाले (मंहिष्ठम्) महादानी (इन्द्रम्) परमेश्वर को (वः) तुम सबके लिए, (इन्दुभिः) स्वाभाविक भक्ति-रसों द्वारा (आसिञ्चे) सींचता हूँ ।

[कृवि :=कूपनाम (निघं. ३।१३)]

१ २ ३ १ २र ३ १ २
२१५— अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया ।
३ २ ३ १ २
इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अतः चित्) इस भक्तिरस द्वारा सींचे जाने के कारण, आप (नः) हमारे (उप) समीप (आयाहि) आइये, हमें दर्शन दीजिये। और (इषा) इस इच्छा से आइये कि आपने हमें (शतवाजया) सैंकड़ों तथा (सहस्रवाजया) हजारों अन्न-बल-ज्ञान-तथा-प्रेरणाएँ देनी हैं ।

[इषा=इष् (इच्छायाम्]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १.२
२१६—आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् ।
२ ३ १ २र
क उग्राः के हा शृण्विरे ॥ ३ ॥

(वृत्रहा) पापवृत्रों का हनन करने वाला परमेश्वर, (बुन्दम्) वज्र को (आददे) धारण करता है, और (जातः) प्रकट होकर (मातरम्) पापों के निर्माण से (विपृच्छाद्) पूछता है कि (के) कौन से तेरे (उग्राः) उग्र-पापशत्रु हैं, और

(के ह) किन पाप शत्रुओं का नाम (विशृण्विरे) विशेष रूप से सुना गया है ? (ताकि मैं उनका हनन करूं)।

[बुन्दः=इषुः निरु. ६।६।३२]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२१७—बृबदुक्थंहवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
१ २ ३ २ ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥

वेदों के (बृबदुक्थं) बड़े २ सूक्त जिसकी स्तुति गाते हैं, जो हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (सृप्रकरस्नम्) हाथ बढ़ाए इसे शुद्ध कर रहा है, तथा जो उपासकों की (साधः) साधनाओं को (कृण्वन्तम्) सिद्ध करता है, हम (अवसे) रक्षार्थ, उसका (हवामहे) आह्वान करते हैं।

[सृप्रः सर्पणात्। करस्नौ=बाहू, कर्मणां प्रस्नातारौ (निरु. ६।४।१७)। बृवत्= महत् (निरु. ६।१।४।)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
२१८—ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान्।
३ २ ३ २ ३ १ २
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥

(वरुणः) पापों से निवारण करने वाला, (मित्रः) स्नेह करने वाला, (विद्वान्) सर्वज्ञ, (अर्यमा) न्यायकारी, तथा (देवैः) दिव्यगुण वालों के साथ (सजोषाः) प्रेम करने वाला परमेश्वर (नः) हमें (ऋजुनीती) सत्य के सीधे मार्ग से (नयति) ले चले।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
२१९—दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत्।
२ ३ २ ३ १ २
वि भानुं विश्वथा तनत् ॥ ६ ॥

(इव) जैसे (दूरात्) दूर (सतः) विद्यमान (अरुणप्सुः), लालिमा-रंजित उषा का रूप-रंग, (इह) इस पृथिवी में (अशिश्वितत्) चमकता है, वैसे ही हे परमेश्वर! (अरुणप्सुः) उषा के सदृश प्रकाशमान आपका प्रकाश जब (इह) इस हृदय में (अशिश्वितत्) चमक उठता है, तब आप उपासक में ऋतंभरा-प्रज्ञा रूपी या तारक ज्ञानरूपी (भानुम्) सूर्य को (विश्वथा) सब ओर (वि) विशेष रूप से (आतनत्) फैला देते हैं।

[अरुणप्सुः=अरुण+प्सु (रूप, निघं० ३।७)। अरुण=The Ruddy colour of the dawn or morning twilight (आपटे), तथा अरुण=आरोचनः निरु० ५।४।२०)। ऋतम्भरा (योग १।४८), तारकज्ञान (योग ३।५४)]

१ २ ३ १ २र
२२०—आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजांसि सुक्रतू ।। ७ ।।

(मित्रा) स्नेह करने वाला तथा (वरुणा) पापों और अज्ञानावरण का निवारण करने वाला परमेश्वर, (नः) हम उपासकों के (गव्यूतिम्) ऐन्द्रियिक-मार्गों को (घृतैः) प्रकाशों द्वारा (उक्षतम्) सींचे, और अपने (मध्वा) मधुर प्रकाश द्वारा (रजांसि) सब लोकों को सींचे। मित्र और वरुण रूपों वाला परमात्मा (सुक्रतू) उपासकों के कर्मों तथा संकल्पों को उत्तम बना देता है।

["मित्रावरुणा" में द्विवचन है। इस द्वारा परमेश्वर के दो रूपों को सूचित किया गया है। घृतैः=घृ क्षरणदीप्तयोः ।]

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२२१—उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।
३ १ २ ३ १ २र
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ।। ८ ।।

(त्ये) वे (सूनवः) हमारे पुत्र, (काष्ठाः) जल की तरह शान्ति देने वाली तथा सूर्य के सदृश ज्ञान-प्रकाश देने वाली (गिरः) वेद-वाणियों का अपने (यज्ञेषु) स्वाध्याय-यज्ञों में (अत्नत) विस्तार किया करें, ताकि वे हमारे पुत्र अपने जीवन-मार्गों को (अभिज्ञु) पहचान कर, उन मार्गों पर (यातवे) चल सकें, जैसे कि (वाश्राः) रम्भाती हुई गौएं अपने २ मार्गों को पहचान कर उन पर चलती हैं।

[काष्ठाः=आपः आदित्यः (निरु० २।५।१६)]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
२२२—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
१ २ ३ २
समूढमस्य पांसुले ।। ९ ।।

(विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (इदम्) इस संसार में (विचक्रमे) व्याप्त है, उसने (त्रेधा) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में (पदम्) अपनी स्थिति (निदधे) रखी हुई है। परन्तु (अस्य) इसका स्वरूप (पांसुले) इस प्रकृतिमय जगत् में (समूढम्) छिपा हुआ है, जैसे कि कोई वस्तु मिट्टी में छिपी रहती है।

दशति ४

(१-१०) १.७,८ मेधातिथिः काण्वः; २ वामदेवो गौतमः; ३, ५ मेधातिथिः काण्वः; प्रियमेधश्चाङ्गिरसः. ४ विश्वामित्रो गाथिमः ६ दुर्मित्रः (सुमित्रो वा) कौत्सः; ९विश्वामित्र गाथिमोऽभीपाद् संदलो वा; १० श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षो वा) आंगिरसः ।। इन्द्रः ।। गायत्री ।।

१२ ३१२ १२ ३१२र
२२३—अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय ।
३२ ३२ ३१ २
अस्य रातौ सुतं पिब

हे परमेश्वर ! (मन्युषाविणम्) क्रोधी उपासक को (अतीहि) आप त्याग देते हैं, (सुषुवांसम्) शान्त्युत्पादक उपासक को आप (उपेरय) प्राप्त होते और उसे प्रेरणाएँ देते हैं, (रातौ) और भक्तिरस के समर्पण करने पर (अस्य) इस शान्त्युत्पादक उपासक के (सुतम्) उत्पन्न भक्तिरस को आप (पिब) स्वीकार करते हैं।

[मन्युषाविणम्=मन्यु (क्रोध)+षाविणम् (षु प्रसवे)]

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
२२४—कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
१ २र ३ १ २
तदिद्ध्यस्य वर्धनम्

(प्रचेतसे) चेतना देने वाले तथा प्रकृष्टज्ञानी, (महे) सबसे महान्, तथा (देवाय) दिव्य गुणों वाले परमेश्वर के लिये, (कत् उ) जो कुछ भी (वचः) स्तुति-वचन (शस्यते) कहा जा जाता है, (तत् इत् हि) उतना मात्र ही स्तुतिवचन (अस्य) इस उपासक की (वर्धनम्) वृद्धि अर्थात् समुन्नति कर देता है।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
२२५—उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
न गायत्रं गीयमानम्

(अगोः) जो वास्तव में स्तोता नहीं अर्थात् जो श्रद्धापूर्वक स्तुति नहीं करता, उसके (शस्यमानम्) उच्चारित (उक्थम्) स्तुतिपरक सूक्तों पर (चन) भी (अयिः) सर्वगत परमेश्वर (न आचिकेत) नहीं ध्यान देता, और (न) न (गीयमानं गायत्रम्) गाए गए सामगान पर ही ध्यान देता है।

[अगोः=अ+गौः (स्तोता, निघं, ३।१६) । अयिः=अय् (गतौ)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२२६—इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
हरिवांत्सुतानां सखा

(इन्द्रः) परमेश्वर (उक्थेभिः) वैदिक-सूक्तों द्वारा (मन्दिष्ठः) स्वाध्यायी मनुष्यों को तृप्त तथा प्रसन्न करता है, (वाजपतिः) तथा शक्तियों-का-पति परमेश्वर उसे (वाजानाम्) शक्तियाँ प्रदान करता है। (हरिवान्) और सब मनुष्यों का

स्वामी परमेश्वर (सुतानाम्) अपने उपासक पुत्रों का (सखा) सखा बन जाता है, मित्र बन जाता है। [हरयः=मनुष्य (निघं २।३)]

२ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २
२२७—आ याह्यु प नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः।
३ १ २ ३ १ २
महाँ इव युवजानिः

हे परमेश्वर ! (नः) हमारे (सुतम्) निष्पादित भक्तिरस के (उप) समीप (आ याहि) आइये, (वाजेभिः) अन्न-बल-ज्ञान-और शक्ति के उपहारों समेत आइये। इन उपहारों को न दे कर मुझे (मा हृणीयथाः) लज्जित न कीजिये। आप ऐसे आइये (इव) जैसे कि कोई (युवजानिः) युवती-पत्नी वाला (महान्) उदार पति, पत्नी को सदा उपहार देता, और उपहार न देकर उसे लज्जित नहीं करता।

[हृणी=लज्जायाम्।]

३ १ २ ३ १ २र३ १ २र ३ १ २ ३ २
२२८—कदा वसो स्तोत्रँ हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः।
३ २ ३ २ ३ १ २
दीर्घँ सुतं वाताप्याय

(वसो) हे हृदयवासी प्रभो ! (हर्यते) आपको चाहने वाले उपासक के लिये आप उसकी (स्तोत्रम्) स्तुति-प्रार्थनाओं को (कदा) कब तक (अव आ रुधत्) रोके रखेंगे। जैसे कि (श्मशा) शरीरवर्तिनी नाड़ी (वाः)शरीर के रस-रक्त रूपी जल को रोके रखती है। हे परमेश्वर ! (वाताप्याय) वातवत् प्राणरूप तथा प्रापणीय आपके लिये, (दीर्घम्) दीर्घकाल से, (सुतम्) भक्तिरस निष्पादित रखा पड़ा है।

[श्मशा=नाड़ी। श्म (शरीरम्) अश्नुते (निरु० ३।१।५; ५।२।१२)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
२२९—ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँ रनु।
२ ३ २ ३ १ २र
तवेदँ सख्यमस्तृतम्

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ब्राह्मणात्) ब्रह्म प्रोक्त वेद द्वारा निर्दिष्ट, अथवा ब्रह्मविद् द्वारा उपदिष्ट (राधसः) आराधना से (सोमम्) निष्पादित भक्तिरस को (पिबा) आप स्वीकृत कीजिये। (ऋतून् अनु) समयानुसार तथा ऋतु के अनुसार निष्पादित भक्तिरस को आप स्वीकृत कीजिये। ताकि (तव) आपका, उपासक के साथ, (इदम्) यह (सख्यम्) सखिभाव (अस्तृतम्) अटूट बना रहे।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२३०—वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।
१ २
त्वं नो जिन्व सोमपाः

(गिर्वणः) हे वेदवाणियों द्वारा भजने योग्य (इन्द्र) परमेश्वर! (वयं) हम (घ) निश्चय से (ते) आपके (स्मसि) हैं, (अपि) और (स्तोतारः) आपका ही स्तवन करने वाले हैं। (सोमपाः) हे भक्तिरस को स्वीकार करने वाले! (त्वम्) आप (नः) हमें (जिन्व) तृप्त कीजिये, प्रसन्न कीजिये, सन्तुष्ट कीजिये।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
२३१—एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।
१ २ ३ १ २
सत्राजिदुग्र पौँस्यम्

हे परमेश्वर! अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—यें (तनूषु) तनुएँ, जोकि आपस में (पृक्षु) सम्पृक्त हैं, मिली हुई हैं, (नः) हमारी इन तनुआ में से (कासुचित्) किन्ही तनुओं में आप (नृम्णम्) बल का (आधेहि) आधान कीजिए। (सत्राजित्) हे सदा विजयी तथा सत्य पर विजय पाने वाले! हे न्याय करने में (उग्र) उग्र! किन्हीं भी हमारी तनुओं में आप (पौंस्यम्) पौरुष और वृद्धि का सामर्थ्य प्रदान कीजिये।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
२३२—एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
३ २ ३ २ ३ १ २
एवा ते राध्यं मनः

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [स्व० १२। उ० ४। वा० ३०। पौ ॥]

हे परमेश्वर। (एवा हि) निश्चय से आप (वीरयुः) उपासना में वीरों की चाहना करने वाले (असि) हैं, (एवा) निश्चय से आप (शूरः) पराक्रमी (उत) और (स्थिरः) स्थिर हैं, अविचाली और अनश्वर हैं। (एवा) निश्चय से (ते) आपका (मनः) संकल्प (राध्यम्) सिद्ध करने के योग्य है, [यह संकल्प कि हम अपनी उपासना में शूरवीर बनें और इस मार्ग से विचलित न हों]।

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इत्येकसामि समाप्तम् ॥

अथ तृतीयाध्यायः।

दशति ५

(१-१०) १, ६, ९, वसिष्ठौ मैत्रावरुणिः; २ भरद्वाजः (ऋ० शंयुः) बार्हस्पत्यः; ३ प्रस्कण्वः काण्वः, ४ नोधा गौतमः; ५ कलिः भागाथः; । ७ मेधातिथिः काण्वः; ८ भर्गः प्रागाथः; १० प्रगाथो घौरः काण्वः ॥ इन्द्रः, ९ मरुतः ॥ बृहती ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२३३—अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः

(शूर) हे पापों पर आक्रमण करने वाले। (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (त्वा) आपकी (नोनुमः) हम स्तुतियाँ करते हैं, और आपको पुकारते हैं (इव) जैसे कि (अधेनवः) न दुही गई (धेनवः) दूध-भरे ऊधोंवाली गौएं अपने बछड़ों के प्रति रम्भायी हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर! जो आपकी (अस्य जगतः) इस समग्र जगत् के (ईशानम्) अधीश्वर हैं और (स्वर्दृशम्) स्वः अर्थात् आदित्य के समान ज्योतिर्मय दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उस आपकी प्रत्यक्ष स्तुतियां हम करते हैं।

१ २र ३ १ २र ३ १ २
२३४—त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः

(कारवः) हम कर्मयोगी (वाजस्य) शक्तियों और ज्ञानों की प्राप्ति के लिये (त्वाम्) आप सहायक का ही (हवामहे) आह्वान (इत्हि) करते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर! जब (वृत्रेषु) पाप और अज्ञान के घेरे हमें घेर लेते हैं तब आप (सत्पतिम्) सच्चे-पति का ही हम आह्वान करते हैं। (नरः) सर्वसाधारण मनुष्य भी (अर्वतः काष्ठासु) दुःखों की पराकाष्ठाओं में (त्वाम्) आपका ही आह्वान करते हैं।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
२३५—अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति

हे उपासको! (यथाविदे) यथार्थ-ज्ञान की प्राप्ति के लिये, (वः) तुम्हारे अभीष्टों को (सुराधसम्) उत्तम प्रकार से सिद्ध करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अभि प्र अर्च) समक्षरूप में खूब अर्चना किया करो। (पुरुवसुः) सबमें बसा हुआ (यः) जो (मघवा) दानी परमेश्वर तुम (जरितृभ्यः) स्तोताओं को (सहस्रेण इव) हजारों प्रकार की सम्पत्तियां (शिक्षति) दे रहा है, तथा हजारों मन्त्रों द्वारा नानाविध शिक्षाएँ दे रहा है।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
२३६—तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे

हे उपासको! (वः) तुम्हारे (दस्मम्) दुःखों का नाश करने वाले, (ऋती

षहम्) आर्तियों अर्थात् पीड़ाओं और कष्टों का पराभव करने वाले, (वसोः) सम्पत्तियों तथा (अन्धसः) अन्नों से (मन्दानम्) तृप्त तथा प्रसन्न करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की, (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा हम (स्वसरेषु) प्रतिदिन (नवामहे) स्तुतियां करते हैं, जैसे (धेनवः) दूध-भरी गौएं अपने-अपने बछड़े के प्रति रम्भाती हैं।

१ ३   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२३७—तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रँ सबाध ऊतये।
३ १ २र   ३ १ २   ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम्

हे उपासको ! तुम (सबाधः) विघ्न-बाधाओं द्वारा सताए जाने पर, (ऊतये) आत्म-रक्षा के लिये, (अध्वरे) हिंसा-रहित उपासना-यज्ञों में, (सुतसोमे) भक्तिरस के उत्पन्न हो जाने पर, (तरोभिः) निज शक्तियों के द्वारा, (विदद्वसुम्) सम्पत्तियों के दाता (इन्द्रम्) परमेश्वर का (बृहद्गायन्तः) प्रेमपूर्वक महागान करते हुए, उसका आह्वान किया करो, (न) जैसे कि सन्तानें (भरम्) भरण-पोषण (कारिणम्) करने वाले उपकारी पिता का आह्वान प्रेमपूर्वक करती हैं। मैं तुम्हारा शिक्षा-गुरु भी परमेश्वर का (हुवे) सदा प्रेमपूर्वक आह्वान करता हूं।

३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ २
२३८—तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
२ ३ १ २   ३ १ २   १ २ ३ १   २र   ३ १ २
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्

(तरणिः) तारने वाला परमेश्वर (इत्) ही (युजा) योगयुक्त (पुरन्ध्या) बुद्धि द्वारा (वाजम्) शक्ति (सिषासति) प्रदान करने की इच्छा करता है। (पुरुहूतम्) बहुत नामों द्वारा स्तुति किये गए (इन्द्रम्) परमेश्वर को मैं (गिरा) वेदवाणी द्वारा (वः) तुम्हारे प्रति (आ नमे) आवर्जित करता हूं, झुकाता हूं, और उसे (सुद्रुवम्) तुम्हारी सहायता के लिये शीघ्र-गति वाला करता हूं (इव) जैसे कि (तष्टा) बढ़ई रथ के पहिये पर (नेमिम्) हाल को चढ़ाकर रथ को (सुद्रवम्) शीघ्र-गतिमान् कर देता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २   ३ १२
२३९— पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
३ १ २   ३ १ २ ३ २   १ २   ३ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः गोमतः) हम स्तोताओं के (रसिनः) रसीले (सुतस्य) भक्तिरस को आप (पिब) स्वीकार कीजिये, और (मत्स्वा) प्रसन्न हूजिये, आप (नः) हमारे (आपिः) बन्धु हैं। आप हमारी भावनाओं को (बोधि) जानिये, तथा हमें बोधयुक्त कीजिये। (सधमाद्ये) पारस्परिक प्रसन्नता में आप हमारी (वृधे) वृद्धि कीजिये। (ते) आपके (धियः) विचार और संकल्प (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें।

[गोमतः=गौः वाक्, (निघं. १।११)। सधमाद्ये=उपासक भक्तिरस देकर परमेश्वर को प्रसन्न करता है, और परमेश्वर आनन्द-रस देकर उपासक को प्रसन्न करता है। यह पारस्परिक-प्रसन्नता है।]

२उ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २
२४०—त्वँ ह्ये हि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (हि) अवश्य (एहि) आईए, मेरे हृदय और जीवन में (रवे) विचरने के लिए। आप हमें (विदाभगम्) भग (विदाः) प्रदान कीजिए अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य प्रदान कीजिए ताकि हम (वसुत्तये) इन सम्पत्तियों का प्रतिदान कर सकें। (मघवन्) हे ऐश्वर्य वाले इन्द्र! परमेश्वर! भगों की हम पर (उद् उ आवृषस्व) खूब वर्षा कीजिए, ताकि हम (गविष्टये) समग्र-पृथिवी में इनका दान-यज्ञ कर सकें, (उत्) और (अश्वम्) हमें शक्तिशाली मन दीजिए, (इष्टये) ताकि हम उपर्युक्त दान-यज्ञ कर सकें। [अश्व=मन, चूंकि यह सर्वविषय व्यापी है, अशूङ् व्याप्तौ। "श्वेताश्वतर" नामक उपनिषद् के नाम में "अश्व" का अर्थ है "मन"। अर्थात् वह उपनिषद् जिसमें "अधिक सात्त्विक मन" का वर्णन हुआ है।]

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
२४१—न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमँसते।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ ३ ३ १ २
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः

हे उपासको! (वः) तुममें से (चरमम्) निचली कोटि के (चन) भी उपासक को, वह (वसिष्ठः) विश्ववासी तथा सबको बसाने वाला परमेश्वर (न (परिमंसते) त्यागता नहीं। (मरुतः) हे सर्वसाधारण उपासक जनो! (विश्वे) तुम सब (अद्य) आज (अस्माकम्) हमारे इस (सुते) सोम-यज्ञ में, भक्ति-यज्ञ में (सचा) सम्मिलित होओ, और (कामिनः) चाहनापूर्वक उस भक्ति-रस का (पिबन्तु) पान करो।

[मरुतः=ऋत्विजः (निघं. ३।१८) अर्थात् भक्ति-यज्ञ रचाने वाले]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
२४२—मा चिदन्यद्वि शँसत सखायो मा रिषण्यत।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषणँ सचा सुते मुहुरुक्था च शँसत

(सखायः) हे उपासक-मित्रो! तुम परमेश्वर से (अन्यत्) भिन्न किसी की भी (विशंसत) स्तुति, प्रार्थना और उपासना (मा चित्) मत किया करो; परमेश्वर की ही स्तुति करते हुए (मा रिषण्यत) तुम नाश को प्राप्त नहीं होते।

(सुते) भक्ति-रस के उत्पन्न हो जाने पर तुम सब (सचा) इकट्ठे होकर (वृषणम्) आनन्द-वर्षी (इन्द्रम्) परमेश्वर की (इत्) ही (स्तोत) स्तुति, प्रार्थना और उपासना किया करो, और इसके प्रति (उक्था) वैदिक-सूक्तों का (मुहुः) बार-बार और लगातार (शंसत) उच्चारण किया करो।

तृतीय प्रपाठक का प्रथमार्ध समाप्त

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [स्व० १२ । उ० ५ । धा० ७३ ॥ त्रि ॥] इति तृतीय प्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

दशति ६

(१-१०) १ पुरुहन्मा आंगिरसः; २, ३ मेधातिथी काण्वौ; ४ विश्वामित्रो गाथिनः; ५ गोतमो (गौतमो वा) राहुगणः; ६ नृमेध पुरुमेधावांगिरसौ; ७, ८, ९, मेधातिथिमेध्यातिथिर्वा (ऋ० मेध्यातिथिः) काण्वः; १० देवातिथिः काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२४३—नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा

(यः) जो परमेश्वर (सदावृधं) सदा सबकी वृद्धि (चकार) करता है, (विश्वगूर्तम्) विश्व जिसका उद्यम-रूप है, (ऋभ्वसम्) महान् से महान् शक्तियों को भी जिसने परास्त किया हुआ है, (अधृष्टम्) जो कभी किसी द्वारा पराभूत नहीं हुआ, अपितु जो (ओजसा) निज पराक्रम द्वारा (धृष्णुम्) सबका पराभव करता है, (तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर की पहुंच तक (न किः) न कोई (यज्ञः) याज्ञिक कर्मों द्वारा (नशत्) पहुंच पाया है, और न कोई (कर्मणा) अन्य किसी कर्म द्वारा पहुंच पाया है।

[विश्वगूर्तम्=विश्वस्मिन् उद्यमशीलम्, गुरी उद्यमने। ऋभ्वसम्=ऋभु (उरु भवन्ति)+असु (परास्त करना)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२४४—य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरुवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः

(यः) जिस परमेश्वर ने (अभिश्रिषः) जोड़ने के किसी साधन के (ऋते चित्) बिना ही, (जत्रुभ्यः) हड्डियों, पसलियों आदि से इस शरीर को, (पुरा) आरम्भ में, (आतृदः) घड़ा था, उसने ही शरीर की प्रत्येक (सन्धिम्) सन्धि को (सन्धाता) जोड़ रखा है। वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् है, (पुरुवसुः) पूर्ण होकर सर्वत्र बस रहा है, शरीर की (विह्रुतम्) तोड़-फोड़ को (पुनः) फिर से और बार-बार (निष्कर्ता) ठीक कर देता है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
२४५—आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये

(सहस्रम्) जैसे हजारों और (शतम्) लाखों (हरयः) सूर्य-किरणें (हिरण्यये) सुवर्ण के से (रथे) सूर्य-रथ में (आ युक्ताः) जुती हो कर सूर्य-रथ का (आ वहन्तु) वहन करती हैं. वैसे ही (ब्रह्म-युजः) ब्रह्म के साथ योगविधि द्वारा जुते हुए उपासक लोग जो कि (हरयः) प्रत्याहार आदि साधनों से सम्पन्न हैं, तथा योगज ज्ञान-प्रकाश में (केशिनः) सूर्य-चन्द्र-अग्नि के समान प्रकाशमान हैं—वे (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वा) आपका (आ वहन्तु) आवाहन करते हैं, ताकि उनके (सोमपीतये) भक्तिरस को आप स्वीकार करें । (शतम्=सहस्रगुना सौ या सौ ।)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
२४६—आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
३ २ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि

जैसे कोई सम्राट् (मन्द्रैः) रथ को सुगमता से ले चलने वाले, तथा शोभा के लिए सिरों पर लगे (मयूररोमभिः) मोर-पंखों वाले (हरिभिः) घोड़ों द्वारा अपने राष्ट्र में (आयाहि) आता है, वैसे ही हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (मन्द्रैः) आनन्ददायी (हरिभिः) प्रत्याहार आदि साधनों से सम्पन्न उपासकों के हृदय-साम्राज्यों में (केचित्) कोई भी शक्तियां (त्वा) आपको (मा) नहीं (नियेमुः) रोक सकतीं । जैसे कि (पाशिनः) पाशधारी-शिकारी उड़ते पक्षी को (न) नहीं रोक सकते । अपितु (इव) जैसे कोई उद्यमी (धन्व) मरुभूमि को (अति) लांघ कर आ जाता है वैसे आप (तान्) उन सब विघ्न-बाधाओं को (प्रति) लांघ कर (इहि) आ जाइये ।

२ ३ १ १र ३ १ २ ३ १ २
२४७—त्वमङ्ग प्र शँसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
२उ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः

(अङ्ग) हे प्रिय ! (शविष्ठ) हे महाबलशाली परमेश्वर ! ! (त्वम्) आप (देवः) प्रकाशमान हैं और प्रकाश देने वाले हैं, आप बल और प्रकाश प्रदान करके (मर्त्यम्) उपासक-जन को (प्रशंसिषः) प्रशंसा का पात्र बनाइये । (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न कोई भी (मर्डिता) सुख और आनन्द देने वाला (न अस्ति) नहीं है । (इन्द्र) हे परमेश्वर ! इसीलिए मैं (ते) आपके प्रति (वचः) यह वचन (ब्रवीमि) कह रहा हूं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
२४८—त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
२ ३ १ २ ३ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं वृत्राणि हँस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (यशा) यशस्वरूप (असि) हैं। आप उपासक को (ऋजीषी) ऋजुमार्ग पर चलाते हैं। आप (शवसस्पतिः) बल के पति (त्वम्) आप (एक इत्) अकेले ही उपासक के राग-द्वेष-मोह आदि (वृत्राणि) वृत्रों का (हंसि) हनन करते हैं। (अप्रतीनि) ये वृत्र आपका मुकाबला नहीं कर सकते। ये वृत्र (पुरु) संख्या में बहुत हैं। आप (अनुत्तः) विना किसी से प्रेरणा पाए (चर्षणीधृतिः) सब प्रजाओं का धारण-पोषण कर रहे हैं।

[ऋजु+इष् (गतौ)

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २

२४९—इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये

(देवतातये) परमेश्वर देव सम्बन्धी उपासना-यज्ञों की सफलता के लिये, (इन्द्रम् इत्) परमेश्वर का ही (हवामहे) हम उपासक आह्वान करते हैं। (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञों के (प्रयति) प्रयत्न में (इन्द्रम्) परमेश्वर का ही हम आह्वान करते हैं। (वनिनः) मिलकर भक्ति करने वाले हम उपासक (समीके) देवासुर-संग्रामों में (इन्द्रम्) परमेश्वर का ही आह्वान करते हैं। (धनस्य) सम्पत्तियों की (सातये) प्राप्ति के लिये तथा उनके दान के लिये परमेश्वर का ही हम आह्वान करते हैं।

[वनिनः=वन=संभक्तौ। संभक्ति=मिलकर भक्ति। समीकम्=संग्राम (निघं० २।१७) (सातये)=षण्=दाने; षण्=संभक्तौ]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

२५० इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥८॥

(पुरुवसो) हे जगत् में परिपूर्ण होकर बसने वाले महाधनी परमेश्वर! (याः) जो (मम) मेरी (गिरः) स्तुति-वाणियां हैं, (इमाः) ये (त्वा) आपका (उ) ही (वर्धन्तु) बखान करती हैं। (शुचयः) शरीर-मन-आत्मा से शुद्ध पवित्र (विपश्चितः) और मेधावी उपासक (स्तोमैः) स्तुतिगानों द्वारा आपकी (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (अनूषत) स्तुतियां करते हैं।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

२५१—उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥९॥

(गिरः) वैदिक-स्तुति-वाणियाँ, और (त्ये) वे प्रसिद्ध (मधुमत्तमाः) अति मधुर (स्तोमासः) सामगान (उद्) ऊँचे स्वर में हे परमेश्वर! आपके प्रति (ईरते)

प्रेरित किये जाते हैं, जैसे कि (रथाः) विमान रूपी रथ (सत्राजितः) सदा विजय पाने के लिए, (धनसाः) तथा व्यापार द्वारा धन-प्राप्ति के लिये, (अक्षितोतयः) न क्षीण होने वाली रक्षा के लिए, (वाजयन्तः) तथा अन्न-बल-वेग की प्राप्ति के लिए (उद् ईरते) ऊँचे आकाश में प्रेरित किए जाते हैं। ये स्तुति-वाणियाँ और सामगान (सत्राजितः) देवासुर-संग्रामों में सदा विजय प्राप्त करने वाले, (अक्षितोतयः) न क्षीण होने वाली रक्षा प्रदान करने वाले, (धनसाः) आध्यात्मिक-धन प्राप्त कराने वाले, (वाजयन्तः) तथा शक्ति, ज्ञान और वेग प्राप्त कराने वाले हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २
२५२— यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१०॥

(यथा) जैसे (तृष्यन्) प्यासा (गौरः) मृग (अपाकृतम्) दूरस्थ (इरिणम्) जलाशय की ओर (तूयम्) शीघ्र (अव एति) आता है, और जल-पान करता है, वैसे ही हे परमेश्वर! (नः) हम उपासकों और आप में (सचा) परस्पर (आपित्वे) बन्धुत्वभाव (प्रपित्वे) प्राप्त हो जाने पर आप (तूयम्) शीघ्र (आ गहि) आइए, और (कण्वेषु) भक्तिरस के कणों को उपर्जित किए हुए उपासकों में वर्तमान भक्ति-रस के कणों का (सुपिब) उत्तमपान कीजिए।

[इरिणम्=इरा (जल; उणा. कोष २।२८), यथा:—इरावान्=समुद्र]

इति षष्ठी दशतिः ॥६॥ द्वितीयः खण्डः ॥२॥
[स्व० ११। उ० ७। धा०७२।खा॥]

दशति ७

(१—१०) १ भर्गः प्रागाथः; २, ८ रेभाः काश्यपः; ३ जमदग्निर्भार्गवः; ४, ९ मेधातिथिः काण्वः; (ऋ० मेध्यातिथिः काण्वः); ५, ६ नृमेधपुरुमेधा-वांगिरसौ; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० भरद्वाजः (ऋ० शंयु) बार्हस्पत्यः ॥इन्द्रः; ३ मित्रावरुणादित्याः ॥ बृहती ॥

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२५३—शग्ध्यू ३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

(शचीपते इन्द्र) हे शक्तियों के पति परमेश्वर! (विश्वाभिः) सब प्रकार की (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ आप हमें (सुशग्धि) उत्तमशक्ति प्रदान कीजए। आप (भगं न) मूर्त्तिमान् यश के सदृश हैं (यशसम्) आप यशः स्वरूप हैं, (वसुविदम्) आप सम्पत्तियों को प्राप्त हैं, और इन सम्पत्तियों के दाता हैं। (शूर) हे देवासुर-संग्रामों में असुरों को जीर्ण-शीर्ण करने वाले! हम उपासक (त्वा) आपके (अनु-चरामसि) अनुचर हैं, आपके दर्शाए मार्ग के अनुसार चल रहे हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
२५४—या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ १ २
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (स्वर्वान्) प्रकाशमान हैं, सुखों के भण्डार हैं। देवासुर-संग्रामों में आप (असुरेभ्यः) असुरों से (याः) जिन (भुजः) भंग भोग-शक्तियों का (आभरः) अपहरण करते हैं, उन द्वारा, (मघवन्) हे ऐश्वर्य वाले ! (अस्य) इस अपने (स्तोतारम्) उपासक को (इत्) अवश्य आप (वर्धय) बढ़ाइये। (च) तथा (त्वे ये) वे जो (वृक्तबर्हिषः) बाह्ययज्ञों का त्याग कर, आध्यात्मिक यज्ञों में तत्पर हैं, उन्हें भी आप बढ़ाइये।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
२५५—प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
वरूथ्ये ३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रँ राजसु गायत ॥ ३ ॥

(ऋतावसो) हे सत्य को धन समझने वाले उपासक ! (मित्राय) सबके साथ स्नेह करने वाले परमेश्वर के प्रति, उसकी (सचथ्यम्) सेवा के योग्य (छन्द्यम्) वेदोक्त (स्तोत्रं वचः) स्तुति-वचनों का (प्रगाय) भक्ति से गान किया कर, (अर्यम्णे) न्यायकारी परमेश्वर के प्रति, (प्र) भक्ति से स्तुति गान किया कर। (वरूथ्ये) आश्रयों में से (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ आश्रय रूप, तथा (राजसु) राजाओं में महाराज परमेश्वर के निमित्त, हे उपासको ! तुम मिलकर (गायत) स्तुतिगान किया करो।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२५६—अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (आयवः) उपासक जन, (पूर्वपीतये) अपनी पूर्ण-रक्षा के लिए, (स्तोमेभिः) सामगानों द्वारा (त्वा) आपका (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (गृणन्त) स्तुति-गान करते हैं। (समीचीनासः) सम्यक् रूप से शिल्पों को सिद्ध करने वाले (ऋभवः) कारीगर लोग, (सम्) इकट्ठे मिल कर, आप (पूर्व्यम्) अनादि का (अस्वरन्) स्वरपूर्वक गान करते हैं। (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने वाले क्षत्रिय लोग, आप अनादि का स्वर-पूर्वक गान करते हैं।

[पूर्वपीतये = पूर्व (पूरणे) + पीति (पा रक्षणे)]

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
२५७—प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
वृत्रँ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥

(मरुतः) हे मितभाषी तथा प्राणायाम के अभ्यासी उपासको! (वः) तुम्हारा उपासनीय जो (इन्द्राय) परमेश्वर है, जो कि (बृहते) महान् है, उसके प्रति (ब्रह्म) ब्रह्म-सम्बन्धी सामगानों को (प्र अर्चत) भक्ति-पूर्वक अर्चनारूप में भेंट किया करो। वह (वृत्रहा) पाप-और-अज्ञान का नाशक परमेश्वर (वृत्रम्) पाप-और-अज्ञानरूपी वृत्रों का (हनति) हनन करता है। वह (वज्रेण) ज्ञान-प्रदान रूपी वज्र के द्वारा पापों-और-अज्ञानों का हनन करता है। यह ज्ञान-रूपी वज्र (शतपर्वणा) सैंकड़ों धाराओं वाले वज्र के समान है। वह परमेश्वर (शतक्रतुः) सैंकड़ों प्रकार के कर्मों, संकल्पों, तथा प्रज्ञाओं वाला है।

[मरुतः=ऋत्विजः (निघं० ३।१८), अर्थात् उपासना-यज्ञ के ऋत्विक्। मरुतः=मा+रुतः। मितराविणः (निरु० ११।२।१३)]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
२५८—बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥

(मरुतः) हे मितभाषी तथा प्राणायाम के अभ्यासी उपासको! (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति, तुम (बृहत्) महा+सामगान (गायत) गाया करो, जो महा+सामगान कि (वृत्रहन्तमम्) पापों-और-अज्ञानों का अतिशय रूप में हनन करता है, और (येन) जिस महा-सामगान द्वारा (ऋतावृधः) सत्य के अनुष्ठानों द्वारा बढ़ने वाले उपासक, अपने में, (जागृवि ज्योतिः) सदा जागरूक ज्योतिः स्वरूप (देवम्) परमेश्वर देव को (अजनयन्) प्रकट करते है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
२५९—इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥७॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (नः) हमें (क्रतुम्) कर्मशक्ति, संकल्पशक्ति और प्रज्ञा (आभर) प्रदान कीजिए, (यथा) जैसे कि (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के प्रति ये शक्तियाँ प्रदान करता है। (पुरुहूत) हे बहुत नामों द्वारा स्मरणीय! (अस्मिन्) इस जीवन की (यामनि) घड़ी में, आप, (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दीजिए, ताकि (जीवाः) वर्तमान जीवन में ही हम (ज्योतिः) ज्योतिः स्वरूप आपको (अशीमहि) प्राप्त हो सकें।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२६०—मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक् ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! आप (नः) हमारा (परावृणक्) परित्याग (न) न कीजिए। (नः) आप-और-हम में जो (सधमाद्ये) पारस्परिक प्रसन्नता हो गई

है उसमें आप (भव) शामिल हूजिए । (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (ऊती) रक्षारूप हैं। (त्वम् इत्) आप ही (नः) हमारे (आप्यम्) प्रापणीय हैं, बन्धु हैं। इसलिए (इन्द्र) हे परमेश्वर! आप (नः) हमारा (मा परावृणक्) परित्याग न कीजिए।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
२६१—वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥

हे परमेश्वर! (वयम्) हमने (त्वा) आपके निमित्त (सुतावन्तः) भक्ति-रस का निष्पादन किया है। (आपः) जल (न) जैसे सागर की ओर बहते हैं वैसे ही हम भक्तिरस में आपकी ओर बह रहे हैं। (वृक्तबर्हिषः) यज्ञों में बिछाए कुशासनों की तरह हमने आपके लिए हृदयासन बिछाए हैं। (वृत्रहन्) हे पापनाशी! (पवित्रस्य) पवित्र करने वाले भक्तिरस के (प्रस्रवणेषु) प्रवाहों में निमग्न हुए आपके (स्तोतारः) स्तोता (परि आसत) चारों ओर भक्ति में बैठे हुए हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
२६२—यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ ९र ३ १ २
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या॥१०॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (नाहुषीषु) सामाजिक बन्धनों में बन्धी सुसंगठित प्रजाओं में (यत्) जो (ओजः) ओज होता है, (च) और (कृष्टिषु) कृषिकारों में जो (नृम्णम्) धन तथा बल होता है, (यद्वा) या (पञ्चक्षितीनाम्) विस्तृत राष्ट्रों में जो (द्युम्नम्) यश और अन्न होता है उसे आप हम उपासकों को (आभर) प्राप्त कराइये; तथा (सत्रा) साथ ही (विश्वानि) सब प्रकार के (पौंस्या) पौरुष-और-वृद्धियाँ हमें प्राप्त कराइये।

[नाहुषीषु=नह बन्धने। नहुषाः=मनुष्याः (निघं० २।३)। नृम्णम्=बलम् (निरु० ११।१।९); धन, (निघं० २।१०)। द्युम्नम् द्योततेः, यशो वा अन्नं वा (निरु० ५।१।५)]

इति सप्तमी दशतिः ॥७॥ तृतीयः खण्डः ॥३॥

[स्व० १०। उ १। धा० ६२। पा ॥]

दशति ८

(१-१०) १ (ऋ० मेध्यातिथिः) काण्वः; २ रेभः काश्यपः; ३ वत्सः (ऋ० वशोऽश्व्यः); ४ भरद्वाजः (शंयुः) बार्हस्पत्यः; ५ नृमेध आंगिरसः; ६ पुरुहन्मा आंगिरसः; ७ नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; १० कलिः प्रागाथः ॥ इन्द्रः ॥ बृहत्यः ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
२६३—सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१॥

(सत्यम्) सत्य है कि आप (इत्था) इस प्रकार काम्य पदार्थों की (वृषा इत्) वर्षा अवश्य करते हैं। (वृषजूतिः) तथा सत्य है कि वर्षा करने वाले पदार्थों में आप प्रेरणाएँ देते रहते हैं। इस प्रकार (नः) हमारी आप (अविता) रक्षा करते हैं। (उग्र) हे नियमों में दृढ़ रहने वाले प्रभो ! (वृषा) आप ही वर्षा करने वाले हैं। (श्रुतः) आपकी ही यह प्रसिद्धि है। (परावति) दूर-दूर के प्रदेशों में भी आप (हि) ही (वृषा) काम्य पदार्थों की वर्षा करते हैं। (शृण्विषे) वेदों में ऐसा आपके सम्बन्ध में सुना जाता है और (अर्वावति) समीप के प्रदेशों में भी आप ही (वृषा) काम्य पदार्थों की वर्षा करते हैं (श्रुतः) यह भी सुना गया है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
२६४—यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
१ २ ३ २ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥२॥

(शक्र) हे शक्तिशाली ! आप (यत्) चूंकि (परावति) दूर से दूर देश में भी (असि) विद्यमान हैं, और (वृत्रहन) हे पापों का हनन करने वाले ! (यद्) चूंकि आप (अर्वावति) समीप से समीप देश में भी (असि) विद्यमान हैं, (अतः) इसलिए (द्युगत्) द्युलोक में भी पहुँचे हुए (इन्द्र) हे परमेश्वर (केशिभिः) आपके स्वरूप पर प्रकाश डालने वाली (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा, यह उपासक (त्वा) आपकी (आ विवासति) पूर्ण रूप से सेवा करता है, और आपके निमित्त (सुतावान्) निष्पन्न भक्तिरस की भेंटें लिए हुए है।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
२६५—अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥

हे नवीन उपासको ! (व) तुम्हारे हित के लिये,—(अन्धसः) आत्मिक-अन्न रूप "भक्तिरस" के (मदेषु) आनन्दों में, मैं उपासक, वेदों की (गिरा) स्तुति-वाणियों द्वारा, (इन्द्रम्) परमेश्वर का (गाय) गान करता हूं, जो परमेश्वर (वीरम्) वीर है, तथा सर्व-प्रेरक है, (नाम) नामी है, (श्रुत्यम्) श्रुतियों में विश्रुत, (महाविचेतसम्) महाप्रज्ञानी है, तथा (शाकिनम्) शक्तिशाली है। (यथा वचः) श्रुतियों में जैसे वचन परमेश्वर के सम्बन्ध में हैं, तदनुसार, तुम सब भी परमेश्वर का (अभि गाय) गान सर्वत्र किया करो।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
२६६—इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
छदिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ४ ॥

(छर्दिः) शरीर-गृह (त्रिधातु) वात-पित्त-कफ तीन धातुओं अर्थात् तत्त्वों वाला है, तथा (त्रिवरूथम्) स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन तीन आवरणों वाला है। (मघवद्भ्यः) आध्यात्मिकविभूतियों से सम्पन्न योगियों के लिये (च) और (मह्यम्) आध्यात्मिक विभूतियों से सम्पन्न मेरे लिये (इन्द्र) हे परमेश्वर! आप अपना (शरणम्) आश्रय (यच्छ) प्रदान कीजिये, ताकि (स्वस्तये) हम सबका कल्याण हो सके, तथा (एभ्यः) इन सबसे (दिद्युम्) मृत्यु रूपी चमकते वज्र को (यावय) पृथक् कीजिये, जन्म-मरण की परम्परा से हमें मुक्त कीजिये।

[छर्दिः=गृह (निघं० ३।४।), दिद्यु=दिद्युत्=वज्रनाम (निघं० २।२०)।]

१ २ ३ २ ३ १ २र

२६७—श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥५॥

हे मनुष्यो! जैसे तुम (सूर्यम्) सूर्य का (श्रायन्तः) आश्रय लेते हुए सूर्य के ताप और प्रकाश का सभी भोग करते हो, वैसे ही तुम सब मिलकर (इन्द्रस्य) परमेश्वर की दीं (विश्वा) सब (वसूनि) सम्पत्तियों का,—जो सम्पत्तियाँ कि (जाता उ) उत्पन्न हुई हैं, तथा (जनिमानि) जो उत्पन्न होंगी,—(भक्षत) भोग किया करो, ताकि तुम सब (ओजसा) ओज से सम्पन्न हो सको। (न) जैसे कि सन्तानें पिता से प्राप्त (प्रति) अपने अपने (भागम्) दायभाग का भोग तथा उसका (दीधिमः) धारण करती हैं वैसे ही हम सब भी परमात्म-पिता से प्राप्त प्रतिनियत सम्पत्तियों का भोग तथा (दीधिमः) धारण किया करें।

२ ३१२ ३ २र ३ १ २

२६८—न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः।

१ २ ३ ३१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥६॥

(दीर्घायो) हे दीर्घ आयु वाले वृद्ध! (मर्त्यः) मनुष्य चाहे कितनी भी आयु वाला क्यों न हो जाय, परन्तु जब तक वह (अदेवः) परमेश्वर-देव से विमुख रहता है, तब तक वह (तत् इषम्) उस अभीष्ट (सीम्) सीमा को, लक्ष्य को, अर्थात् परमेश्वर को, (आप न) प्राप्त नहीं हो पाता। परन्तु (एतग्वाचित्) इसे ही अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होने के उद्देश्य वाला, और (एतशः) इसमें ही मस्ती से सोने वाला (यः) जो मनुष्य, जब अपनी शक्तियों को (युयोजते) योग से युक्त कर लेता है, तब (इन्द्रः) परमेश्वर उसके निमित्त अपने (हरी) दो अश्वों को (युयोजते) जोत लेता है, अर्थात् ऋक्-और-साम रूपी दो अश्वों द्वारा उस उपासक के प्रति पहुँच जाता है। अथवा परमेश्वर तब उस उपासक की ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी दो अश्वों को योगयुक्त कर देता है।

[एतग्वा=एतत्+गम+वनिन्। एतशः=एतस्मिन् शेते। हरी=ऋक्-सामे वै हरी (शत ४।४ ३।६)]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२६९—आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रँ समत्सु भूषत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥७॥

हे उपासको ! (नः) हमारे (विश्वासु) समस्त (समत्सु) देवासुर-संग्रामों में, सहायक रूप में (हव्यम्) आह्वान करने योग्य (इन्द्रम्) परमेश्वर को, तुम सब (आ भूषत) सत्कृत किया करो। (ऋचीषम) हे समग्र-ऋचाओं में समाए हुए परमेश्वर ! (ब्रह्माणि) ब्रह्मप्रतिपादित स्तोत्र, तथा (सवनानि) निष्पादित भक्ति-रस, (उप) आपके लिये उपस्थित हैं। (वृत्रहन्) हे पाप-और-अज्ञान रूपी वृत्रों का हनन करने वाले ! (परमज्याः) आपकी ज्या अर्थात् धनुष की डोरी परमशक्ति-शाली है, वृत्रों के विनाश करने में सर्वश्रेष्ठ है।

१ २र ३२उ ३ १ २ ३ २
२७०—तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
३ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अवमम्) नीचे की (वसु) सम्पत्ति अर्थात् पृथिवी की सम्पत्ति (तव इत्) आपकी ही है। (त्वम्) आप ही (मध्यमम्) मध्यलोक अर्थात् अन्तरिक्ष-लोक की (वसु) सम्पत्ति को (पुष्यसि) परिपुष्ट करते हैं। आप ही (परमस्य) दूरस्थ द्युलोक की (विश्वस्य) समग्र-सम्पत्ति के (सत्रा) वास्तव में (राजसि) राजा हैं। (गोषु) इन्द्रियों के विषय क्षेत्र में रमने वाला (न किः) कोई भी व्यक्ति आपको नहीं (वृण्वते) वर सकता, अर्थात् हे परमेश्वर ! आप बाह्य इन्द्रियों के विषय नहीं हैं।

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
२७१—क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९॥

हे परमेश्वर ! (क्व) किस उपासक के हृदय में आप (इयथ) आते हैं ? (क्व) किस उपासक के हृदय में आप (इत् असि) निश्चय से वास करते हैं ? (पुरुत्रा चित्) बहुत उपासकों मे (ते) आपका (मनः) मन लगा हुआ है। हे देवासुर-सग्रामों में असुरों के साथ (युध्म) युद्ध करने वाले ! (खजकृत्) हे आकाश में उत्पन्न तारों की सृष्टि करने वाले । (पुरन्दर) हे आसुरी भावों के गढ़ों को तोड़ देने वाले परमेश्वर ! (अलर्षि) आप उपासकों के भक्तिरसों को विभूषित करते हैं। इसलिये (गायत्राः) गायत्री आदि छन्दों द्वारा गाने वाले उपासक आपका (प्र अगासिषुः) भक्ति-पूर्वक गान करते रहे हैं।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
२७२—वयमेनमिदा ह्योपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥१०॥

(इह) इस उपासना-यज्ञ में (वयम्) हमने (एनम् इत्) इस परमेश्वर को ही, (ह्यः) पहिले दिनों में, भक्तिरस (अपीपेम) पिलाया है, उसके प्रति भक्तिरस की भेंट की है। वह परमेश्वर (वज्रिणम्) वज्र वाला है, ज्ञान-वज्र वाला है। (अद्य उ) आज भी हे उपासक! (सवने) इस उपासना-यज्ञ में (सुतम्) उत्पादित भक्तिरस को (तस्मै) उस परमेश्वर के प्रति (आभर) भेंट में ला। हे उपासको! तुम सब (नूनम्) निश्चयपूर्वक, उस परमेश्वर की (भूषत) शोभा को सामगानों द्वारा बढ़ाओ, जबकि तुमने वेदों द्वारा उसका (श्रुते) श्रवण कर लिया है।

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥
[स्व० १४ । उ० १ । धा० ७४ । ती ॥]

दशति ९

(१-१०) १, ६ पुरुहन्मा आंगिरसः; २ भर्गः प्रागाथः; ३ इरिम्बिठिः काण्वः; ४ जमदग्निर्भार्गवः; ५, ७ देवातिथिः काण्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १० मेध्यः काण्वः ॥ इन्द्रः (ऋ० ३ वास्तोष्पतिर्वा ४ सूर्यः; ९ इन्द्राग्नी) ॥ बृहती ॥

१ २र ३ २उ ३ १२ ३ १ २
२७३— यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

(यः) जो परमेश्वर (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों का (राजा) राजा है। (रथेभिः) सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र रूपी रथों द्वारा (याता) मानो गति कर रहा है, (अध्रिगुः) जिसकी गति को कोई रोक नहीं सकता, (यः) जो (विश्वासाम्) सब (पृतनानाम्) आसुरी सेनाओं को (तरुता) परास्त करता, तथा (वृत्रहा) पापवृत्तों का हनन करता है, उस (ज्येष्ठम्) सबसे ज्येष्ठ परमेश्वर की (गृणे) मैं स्तुति करता हूं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२७४— यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
१ २ ३ २ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (यतः) जहाँ-जहाँ से हम (भयामहे) भयभीत होते हैं (ततः) वहाँ-वहाँ से (नः) हमें (अभयम्) भयरहित (कृधि) कीजिये। (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली! (शग्धि) हमें शक्ति प्रदान कीजिये। (तत्) वह शक्तिप्रदान करना (तव) आपका स्वभाव है। वह शक्ति-प्रदान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये हो। आप हमारी (द्विषः) द्वेषभावनाओं का (विजहि) पूर्ण हनन कीजिये। (मृधः) संग्रामकारी आसुरी भावनाओं का (विजहि) पूर्ण हनन कीजिये।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
२७५— वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाँ सत्रँ सोम्यानाम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ।। ३ ।।

(वास्तोष्पते) जिसमें सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र वस रहे हैं ऐसे जगद्गृह के हे स्वामी ! आप इस जगद्गृह के (ध्रुवा) सुदृढ़ (स्थूणा) स्तम्भ हैं। (सोम्यानाम्) भक्तिरस के सम्पादन करने वालों की आप (अंसत्रम्) कवच हैं। (द्रप्सः) सूर्य जैसे अन्धकार का या मेघस्तरों का (भेत्ता) भेदन करता है, वैसे ही परमेश्वर (शश्वतीनाम्) अनादिकाल से आई (पुराम्) शरीर-परम्परा का (भेत्ता) भेदन, मोक्षरूप में, करता है। (इन्द्रः) परमेश्वर (मुनीनाम् सखा) मौनव्रती-ज्ञानी-ध्यानी मुनियों का सखा है।

[वास्तुर्वसतेर्निवास कर्मणः, तस्य पाता वा पालयिता वा (निरु० १०।२।१६)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२७६— बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँअसि ।। ४ ।।

(सूर्य) हे सूर्यों के सूर्य ! (बट्) सत्य है कि आप (महान् असि) महान् हैं। (आदित्य) हे आदित्यों के आदित्य ! (बट्) सत्य है कि आप (महान् असि) महान् हैं। (महःते सतः) यतः आप वस्तुतः महान् है अतः आपकी ही (महिमा) महिमा सर्वत्र है। (पनिष्टम) हे सर्वातिशायिनी-स्तुति वाले ! (देव) देवाधिदेव ! आप अपनी (मह्ना) महिमा के कारण (महान् असि) महान् है।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २
२७७— अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ।। ५ ।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यद्) जब उपासक (ते सखा) आपका सखा हो जाता है, तब वह (अश्वी) मन का नियन्ता हो जाता है, (रथी) शरीररूपी रथ का स्वामी हो जाता है, (सुरूपः) तथा उत्तम स्वरूप वाला हो जाता है, वह (गोमान्) वेद-वाणियों का द्रष्टा बन जाता, तथा इन्द्रिय संयमी हो जाता है। वह (वयसा) अपनी आयु में ही शीघ्र (श्वात्रभाजा) तथा तीव्रसंवेगी क्रिया द्वारा (सचते) आपके साथ सम्बन्ध पैदा कर लेता है, और सदा (चन्द्रैः) चान्द सितारों से जड़े रथों द्वारा (सभाम्) समाजों तथा सभों में (उप याति) उपस्थित होता है।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ २
२७८— यद्द्याव इन्द्र ते शतँ शतं भूमीरुत स्युः ।
१ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रँ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।२।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यद्) यदि (शतम्) सैंकड़ों (द्यावः) द्युलोक हों, (उत) और (शतम्) सैंकड़ों (भूमीः) पृथिवियां (स्युः) हों, और साथ ही चाहे (सहस्रसूर्याः) हजारों सूर्य हो, वे (ते) आपकी (न, अनु अष्ट) व्याप्ति की समीपता तक नहीं पहुंच सकते। (जातम्) उत्पन्न समग्र जगत् और (रोदसी) द्युलोक-तथा-भूलोक मिल कर भी, (त्वा) आपकी (न अनु अष्ट) व्याप्ति की समीपता तक नहीं पहुंच सकते। आप इन सबके प्रति (वज्रिन्) वज्रधारी हैं, इन सबके नियामक हैं।

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २ २ ३ २ ३ १ २

२७९— यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३१ २

सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥

(प्रशर्ध इन्द्र) हे पराभव करने वाले परमेश्वर ! (यद) यद्यपि आप (प्राक्) पूर्व में, (अपाक्) पश्चिम में, (उदक् वा) उत्तर में, (न्यक्) और दक्षिण में, (सिमा) सर्वत्र, (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (हूयसे) आहूत होते हैं, इस प्रकार (नृषूतः पुरू) मनुष्यों द्वारा बहुत प्रेरित होते हुए भी आप (आनवे) प्राणसंयमी उपासक में (असि) प्रकट होते हैं, तथा (तुर्वशे) इन्द्रियों को शीघ्र अपने वश में कर लेने वाले उपासक में (असि) प्रकट होते हैं।

[प्रशर्ध=प्र + शृधु (प्रसहने)। आनवे=अन (प्राणने)]

१ २र ३ १ २र

२८०— कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥८॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वसो) हे विश्ववासी ! (कः) कौन (मर्त्यः) मरण-धर्मा मनुष्य (तं, त्वा) उस आपको (आदधर्षति) दबा सकता है ? (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली ! (पार्ये) पार लगाने वाले, (दिवि) ज्ञानप्रकाश में उत्पन्न हुई, (ते) आपके प्रति (श्रद्धा हि) श्रद्धा ही, उपासक को (वाजम्) आध्यात्मिक बल (सिषासति) प्रदान कर सकती है, क्योंकि (वाजी) आप ही बलों के स्वामी हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

२८१— इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।

२ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९॥

(इन्द्राग्नी) हे परम-ऐश्वर्यवान् तथा जगत् के नेता प्रभो ! (इयम्) यह श्रद्धा (मन्त्र २८०) (अपात्) पैरों से रहित है, तब भी उपासक के हृदय में (पूर्वा) पहिले ही (आगात्) आ विराजती है, जब कि पैरों वाले सर्वसाधारण जन ब्रह्म-मुहूर्त में अभी सो रहे होते हैं। (शिरः हित्वा) इस श्रद्धा का सिर नहीं है, तब भी यह श्रद्धा उपासक की (जिह्वया) जिह्वा द्वारा आपका नाम (रारपत्) रटाती है, आपके स्तोत्रों का पाठ कराती है, और आपके गान गवाती है, और उपासक के

जीवन में (त्रिंशत् पदा) दिन-रात के ३० मुहूर्त्तों में (नि अक्रमीत्) नितरां विराजमान रहती है।

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२८२—इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः॥ १०॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! हमारे (नेदीयः) अत्यन्त निकट अर्थात इस हृदय-स्थल में (इत्) अवश्य आप (आइहि) आइये, प्रकट हूजिये। आप (ऊतिभिः) रक्षा के ऐसे विधि-विधानों के संग आइये कि हमें आत्मरक्षार्थ अपनी (मितमेधाभिः) परिमित बुद्धि ही लगानी पड़े. हमें आत्मरक्षार्थ बहुत चिन्ता न करनी पड़े। (शंतम) हे अत्यन्त शान्त ! आप अपनी (शंतमाभिः) अत्यन्त शान्त (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के संग (आ) आइये। (सु, आपे) हे उत्तमबन्धु ! (स्वापिभिः) उत्तमबन्धुत्व को निभाने वाली अपनी अत्यन्त शान्त इच्छाओं के संग (आ) आइये।

इति नवमी दशतिः॥ ९॥ इति पञ्चमः खण्डः॥ ५॥

[स्व १६। उ० ५। धा ७२। ला॥]

दशति १०

(१-१०) १ नृमेध आंगिरसः; २, ३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ४ भरद्वाजः (ऋ०शंयुः) बार्हस्पत्यः, ५ परुच्छेपो दैवोदासिः, ६ वामदेवो गौतमः; ७ मेध्यातिथिः काण्वः; ८ भर्गः प्रागाथः; ९, १० मेधातिथी-मेध्यातिथी—मेध्यातिथी काण्वौ॥
इन्द्रः (५ ऋ० आश्विनौ)॥ बृहती॥

३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १२
२८३—इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम्॥१॥

हे उपासको ! (वः) तुम अपनी (ऊती) रक्षा के लिये परमेश्वर को (इत) प्राप्त होओ, जो कि (अजरम्) जरा रहित है, (प्रहेतारम्) जो सबको प्रेरणाएँ देता है परन्तु किसी से (अप्रहितम्) स्वयं प्रेरणा नहीं पाता, (आशुम्) जो व्यापक है, (जेतारम्) विजेता है, (हेतारम्) गति तथा वृद्धि देने वाला है, (रथीतमम्) शरीर-रूपी-रथों के रथी अर्थात् स्वामी जो जीवात्माएँ हैं उनमें जो सर्वश्रेष्ठ रथी है, वस्तुतः शरीर-रथों का स्वामी है, (अतूर्तम्) जिसकी हिंसा नहीं हो सकती, तथा जो (तुग्रियावृधम्) सन्तानों वाले गृहस्थियों में सन्तानपालन योग्य दया-कृपा आदि भावनाओं को बढ़ाता है।

[तुग्रिया=तुक्=अपत्य (निघं० २।२)+र+इयाद्]

१ २र ३१२ ३ २उ ३ १ २र
२८४—मो षुत्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।
३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रु धि ।।२।।

हे परमेश्वर ! (वाघतः) आप को प्राप्त कराने वाले सांसारिक पदार्थ, (अस्मत) हमसे (त्वा) आपको (आरे) परे (मा उ) न रखें, अपितु ये पदार्थ आपकी (निरीरमन्) आनन्दमयी सत्ता का हमें निरन्तर अनुभव कराते रहें। अभी आप (अस्मत्) हमसे (आरात) दूर से हैं; (तात्) उस दूरी से भी आप (नः) हमारे (सधमादम) परस्पर की प्रसन्नता में (आ गहि) आइये, और (इह वा) यहीं हमारे हृदयों में (सन्) विराजमान होते हुए हमारी स्तुति-प्रार्थनाओं को (उप श्रु धि) समीपता से सुनिए। [संसार में प्राकृतिक दृढ नियमों द्वारा नियन्ता का, संसार के कार्यत्व की दृष्टि से उसके कर्त्ता का, ज्ञान की दृष्टि से ज्ञानदाता परम-गुरु का, तथा कर्मफल की दृष्टि से न्यायकारी परमेश्वर का, और सांसारिक पदार्थों द्वारा अनुभूत सुखमयी भावनाओं द्वारा परमेश्वर के आनन्दमय स्वरूप का भान होता है। इस प्रकार सांसारिक पदार्थ भी अपनी सत्ता द्वारा परमेश्वर की सत्ता का बोध कराते हैं। [वाघतः=वह् (प्रापणे)। आरात्=तद् दूरे तद्वन्तिके (यजु० ४०।५)]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२८५–सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २र३१ २र
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ।। ३ ।।

पापों के प्रति (वज्रिणे) वज्रधारी, (सोमपाव्ने) तथा भक्तिरस का पान करने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये हे उपासको ! तुम (सोमम्) भक्तिरस का (आ सुनोत) निष्पादन किया करो, उसके नाम पर (पक्तीः) पाकों को (पचता) पकाया करो [और उनका दान किया करो]। इस प्रकार (अवसे) आत्मरक्षा के लिए परमेश्वर को (आ कृणुध्वम्) अपना कर लो। वह (पृणत् इत्) सबकी पालना करता है, और (पृणते) पालना करने वाले व्यक्ति के लिए (मयः) वह सुखमय और आनन्दमय होता है।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
२८६—यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तँ हूमहे वयम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ।। ४ ।।

(यः) जो (सत्राहा) सदा आसुरी भावों का हनन करता, (विचर्षणिः) तथा सबका द्रष्टा है (तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर का (वयम) हम (हूमहे) आह्वान करते हैं। (सहस्रमन्यो) हे हजारों पापों के प्रति मन्युरूप ! (तुविनृम्ण) हे बहुधनी तथा बहुबली ! (सत्पते) हे सच्चे पति ! (समत्सु) देवासुर-संग्रामों में (नः) हमारी (आ वृधे) पूर्णवृद्धि के लिए (भव) आप हों।

१ २ ३ २ ३ १ २
२८७— शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २३ २उ ३ २ ३ २ ३ २
मा वाँ रातिरुपदसत्कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥

(शचीवसू) हे प्रज्ञाओं तथा आध्यात्मिक-सम्पत्तियों के स्वामी ! आप (शचीभिः) सद्बुद्धियों के प्रदान के द्वारा (नः) हमें (दिवा नक्तम्) दिन और रात (दिशस्यतम्) जीवनमार्ग का निर्देश करते रहिए। (वाम्) आपका (रातिः) दिया यह दान (मा, उपदसत्) कभी नष्ट न हो, और आपके प्रति (अस्मत्) हमसे दिया गया (रातिः) भक्तिरस का दान भी (मा उपदसत्) कभी नष्ट न हो।

३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
२८८— यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
१ २र ३ १२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥ ६ ॥

परमेश्वर की (स्तोता) स्तुति करने वाला (मर्त्यः) मनुष्य, (यदा कदा च) जब कभी भी समय मिले, उस (मीढुषे) सुखवर्षी परमेश्वर की (जरेत) स्तुति किया करे। (आत्) स्तुति के अनन्तर उस (वरुणम्) पापनिवारक परमेश्वर की अपनी (विपा) बुद्धि द्वारा, और (गिरा) वाणी द्वारा, (इत् वन्देत) अवश्य वन्दना किया करे, उसका अभिवादन किया करे, जो परमेश्वर कि (विव्रतानाम्) विविध मार्गों के व्रती सूर्य, चन्द्र, ग्रहोपग्रह तथा नक्षत्रों का (धर्त्तारम्) धारण करने वाला है।

३ १ २र ३ २ ३ १ २
२८९ —पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यः संमिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥७॥

(मेध्यातिथे) उपासनीय परमेश्वर जिसके हृदय-गृह का अतिथि बन गया है ऐसे हे उपासक ! तू परमेश्वर से प्राप्त (अन्धसः) आनन्द-रस-रूपी अन्न की (मदे) मस्ती में, उस (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए, (गाः) अपनी इन्द्रियों की, विषयों से, (पाहि) रक्षा किया कर, (यः) जो परमेश्वर कि (हर्योः) ऋक् की वाणियों और साम के गीतों में (संमिश्लः) घुला-मिला है, (यः) जो हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूप और न्याय के लिये (वज्री) वज्रधारी है।

[हर्योः="ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" (श० ४।४।३।६)]

३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
२९०— उभयँ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २
सत्राच्या मघवान्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारे (अर्वाक्) अभिमुख होकर हमारे (इदम्) इन (उभयम्) दोनों प्रकार के (वचः) स्तुति-और-प्रार्थना के वचनों का (शृणवत्)

श्रवण करे, (च) और वह (मघवान्) ऐश्वर्यशाली तथा (शविष्ठः) अतिशय बल-शाली परमेश्वर, (सध्राच्या) सदा हमारी ओर झुकी हुई अपनी करुणामयी (धिया) बुद्धि के साथ, (सोमपीतये) भक्तिरस के पान के लिए (आ गमत्) आए।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

२९१— महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९॥

(अद्रिवः) हे पर्वतों, मेघों तथा सूर्यादि के स्वामी! (वज्रिवः) हे न्याय-वज्रधारी! (शतामघ) हे अनगिनत सम्पत्तियों के स्वामी! (त्वा) मैं आपको प्राप्त हुआ हूं। (न) न (शताय) सैंकड़ों, (न) न (सहस्राय) हजारों, (न) न (अयुताय) लाखों प्रलोभनों के होते मैं (परादीयसे) आपका परित्याग करता हूं। (च, न) और न (महे शुल्काय) बड़े से बड़े मूल्य अर्थात् प्रलोभन पर मैं आपका परित्याग करता हूं।

[अद्रिः=Mountain, Thunder-bolt, Sun (आप्टे), मेघ (निघं० १।१०)]

१ २ ३ २३२उ ३ १२

२९२— वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः।

३ १ २ ३ १२ ३ २३ १ २

माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! आप (मे) मेरे (पितुः) पिता से अधिक (वस्यान्) ऐश्वर्यवान् (असि) हैं, (उत) और (अभुञ्जतः) स्वयं भोग न करने वाले और अन्यों को भोग न कराने वाले मेरे कंजूस अतएव धनवान् (भ्रातुः) भाई से भी अधिक धनवान् हैं। मेरे लिये (मे) मेरी (माता) माता (च) और आप दोनों ही (समा) बराबर हैं। आप दोनों मेरे (छदयथः) भोजनाच्छादन की सुव्यवस्था करते और मेरे कष्टों को दूर करते हैं। हे मेरे हृदय में (वसो) वसे हुए परमेश्वर! (वसुत्वनाय) प्राकृतिक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए, तथा (राधसे) आराधना रूपी आध्यात्मिक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए, आप मेरे लिये वसुरूप हैं, श्रेष्ठ धन रूप हैं।

द्वितीय अर्ध प्रपाठक समाप्त। तृतीय प्रपाठक समाप्त।

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ [स्व० १५। उ० ४। धा० ७६। भू० ॥] इति तृतीयपाठके द्वितीयोऽर्धः, तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः।

दशति १

(१-१०) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ६, ७ वामदेवो गौतमः; ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, विश्वामित्र इत्येके; ४ नोधा गौतमः; ५ मेधातिथिः (ऋ० मेध्यातिथिः) काण्वः; ८ श्रुष्टिगुः काण्वः; ९ मेध्यातिथिः (मेधातिथिर्वा) काण्वः, १० नृमेध आंगिरसः ॥ इन्द्रः, ७ बहु ॥ बृहती ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

२९३— इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१॥

(दध्याशिरः) धारणा-ध्यान आदि योगाङ्गों से व्याप्त (इमे) ये (सोमासः) भक्तिरस, (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये, (सुन्विरे) उत्पन्न किये गये हैं। (वज्रहस्त) हे आसुरी भावों के प्रति वज्रधारी ! आप (तान्) उन भक्तिरसों की ओर (आयाहि) आइये, (मदाय) अपनी प्रसन्नता के लिये, और (पीतये) भक्तिरस की स्वीकृति के लिये। (हरिभ्याम्) ऋक् और साम की स्तुतियों और सामगानों द्वारा (ओके) इस हृदय-गृह में आइये।

[हरिभ्याम्=ऋक्-सामे वा इन्द्रस्य हरी (मै० ३।१०।६)। दध्याशिरः= दध् धारणे, या ध्यै चिन्तायाम्+आ+अशूङ=व्याप्तौ। यथा:—दध्यङ्= दधि+अञ्च्, प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा, प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा (निरु० १२।४।३६), तथा दधिक्राः=दधि (दधत्)+क्रामति (निरु० २।७।२८)]

३ १ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

२९४— इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (इमे) ये (सोमासः) भक्तिरस—जिनमें कि (उक्थिनः) वैदिक भक्ति-सक्तों द्वारा स्तवन किया जा रहा है,—आपकी (मदाय) प्रसन्नता के लिये (चिकित्रे) जाने गए हैं। हमारे (मधोः) मधुर भक्तिरसों का (पपानः) पान करते हुए या रक्षा करते हुए आप (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियों और प्रार्थना-वाणियों को (उप) प्रेम से (शृणु) सुनिये। (गिर्वणः) हे वेद की वाणियों द्वारा सम्यक् भजन करने योग्य ! हमारे (स्तोत्राय) स्तोत्रों अर्थात साम-गानों के प्रतिफल रूप में आप हमें (रास्व) आध्यात्मिक सम्पत्ति प्रदान कीजिये।

१ २ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १२

२९५— आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १२

इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ।। ३ ।।

(अद्य) इस शुभ दिन में मैं (त्वा इन्द्रम्) आप परमेश्वर का (आ हुवे) आह्वान करता हूं. जो परमेश्वर कि (धेनुम्) दूध देने वाली गौ के समान (सबर्दुघाम्) अमृतरूपी दूध देने वाला है, जो (गायत्रवेपसम्) गायत्र आदि सामगानों के वेपनों का अनुभव करने वाला है, जो भक्तों द्वारा (सुदुघाम्) सुगमता से दोहने योग्य (अन्याम्) एक विलक्षण धेनुरूप है, तथा जो परमेश्वर (इषम्) चाही गई वर्षा के समान (उरुधाराम्) बहुत धाराओं में सुखों का बरसाने वाला है, और (अरंकृतम्) शीघ्र फलदाता है।

[सबर्=Sap (अंग्रेजी भाषा), Sapor (लेटिन)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २

२९६— न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।

१ २र ३ १ २र३ २ ३ २ ३ १ २र

यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ।।४।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (बृहन्तः) बड़े-बड़े तथा (वीडवः) बीहड़ (अद्रयः) पर्वतसमान बाधाएं भी, (त्वा) आपके रास्ते में, (वरन्त न) रुकावट नहीं बन सकतीं। (मावते) मेरे जैसे (स्तुवते) स्तोता को आप (शिक्षसि) शिक्षा रूप में (यत्) जो (वसु) ज्ञान-सम्पत् देते हैं, (ते) आपके (तत्) उस दान को (न किः) कोई भी शक्ति नहीं (आ, मिनाति) नष्ट कर सकती।

१ १ ३२उ ३ १ २ ३ १ २र

२९७— क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ।। ५ ।

(सुते) भक्ति-रस के उत्पन्न हो जाने पर हे परमेश्वर ! उपासक और आप (सचा) साथ-साथ आनन्द रस और भक्तिरस का (पिबन्तम्) पान करते हैं (ईम्) ऐसे प्रभु को (कः) कौन (वेद) जान सकता है ? उपासक (कत्) कितनी (वयः) आयु को (दधे) धारण करता हुआ अर्थात् कितनी आयु तक आपको भक्तिरस की भेंट दे सकता है ? और आप उसे उसकी किस आयु तक आनन्दरस पिला सकते हैं: —इसे भी कौन जान सकता है ? हे परमेश्वर ! आप (अयम्) वे हैं (यः) जो कि (मन्दानः) प्रसन्न होकर (ओजसा) अपने ओज द्वारा आसुरी भावों के (पुरः) गढ़ों को (बिभिनत्ति) तोड़-फोड़ देते है, जैसे कि (सुशिप्री) तेजस्वी मुख वाला सेनापति, (अन्धसः) अन्न से भरे शत्रु के (पुरः) किलों और नगरों को तोड़-फोड़ देता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
२९८—यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्माकमँशुं मघवन्पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) चूँकि आप (शासः) शासक हैं, इसलिये (अव्रतम्) यम-नियम आदि व्रतों से रहित आसुरी भावों को हमारे (सदसः परि) हृदय-गृह के कोने-कोने से (परिच्यावय) पूर्णतया च्युत कर दीजिये। (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली ! आप द्वारा (पुरुस्पृहम्) बहुत चाहे गए, (अस्माकम्) हमारे भक्ति-रस के (अंशुम्) अंश को, आपके (वसव्ये) वसने योग्य मेरे हृदय-गृह में (अधि आ वर्धय) खूब बढ़ाइये।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२९९—त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
२ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥ ७ ॥

(त्वष्टा) जगत् का कारीगर, (पर्जन्यः) जनसमुदाय का पालक और सुखों से भरपूर करने वाला, (ब्रह्मणस्पतिः) वेद-और-ब्रह्माण्ड का स्वामी, (अदितिः) अविनश्वर तथा देवों की माता अर्थात् परमेश्वर, तथा (दैव्य वचः) परमेश्वर-देव का दिया वचन अर्थात् आश्वासन—(पुत्रैः भ्रातृभिः) हमारे पुत्रों तथा भाई-बन्धुओं समेत (नः) हमारी (पातु) रक्षा करते हैं, (नु) अवश्य रक्षा करते हैं। (वचः) वह दैव्य वचन अर्थात् आश्वासन (दुष्टरम्) टाला नहीं जा सकता, (त्रामणम्) अपितु सदा रक्षा करता है।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३००—कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
२ ३१ २र २ ३ २उ ३ १ २ ३१ २
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्यपृच्यते ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (कदाचन) कभी भी (स्तरी) किसी की हिंसा करने वाले (न) नहीं (असि) हैं। आप (दाशुषे) समर्पक के प्रति (सश्चसि) सदा सुरक्षा दान करते हैं। (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली ! (उप उप इत् नु) समर्पक के समीप, और समर्पक के अवश्य समीप, (भूयः इत् नु) बार-बार और बहुमात्रा में, (ते देवस्य) आप-देव का (दानम्) दान (पृच्यते) मिलता रहता है।

३ १ २र ३ २ ३ १ २
३०१—युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वृत्रहन्तम) हे आसुरी भावों का अतिशय हनन करने वाले ! (हरी) हमारे ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी घोड़, जो कि (परावतः)

दूर-दूर के विषयों में विचरते हैं, उन्हें आप उन विषयों से हटा कर हमारे शरीर के ही साथ (आ युङ्क्ष्व) जोते रखिये। (मघवन् उग्र) हे ऐश्वर्यशाली! हे उग्र दृढ़व्रती! (सोमपीतये) भक्तिरस को स्वीकार करने के लिये, आप (अर्वाचीनः) हमारी ओर, अपनी (ऋष्वेभिः) महान् शक्तियों के साथ (आ गहि) आइये।

[ऋष्वेभिः महद्भिः (निघं० ३।३)]

२ ३ १ २र ३ १ २
३०२— त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः।
१ २ ३ १ २ ३१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०॥

(वज्रिन्) हे पाप-वृत्रों के प्रति वज्रधारी परमेश्वर! (भूर्णयः) पृथिवी-निवासी (नरः) नर-नारियाँ, (आ ह्यः) अभी तक, (त्वाम् इत्) आपकी ही (अपीप्यन्) बड़ाइयां करते रहे हैं। (इन्द्र) हे शक्तिशाली परमेश्वर! (सः) वह-आप (स्तोमवाहसः) मुझ स्तुतिकर्त्ता की स्तुतियों को (इह) इसी जीवन में (उप-श्रुधि) समीपता से अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए सुनिये, और किसी (स्वसरम्) शुभ-दिन में, (इह) मेरे इस जीवन में, (आ गहि) आप प्रकट हूजिये।

[भूर्णयः=भूर्णि=The earth (आपटे)]

दशति २

(१—१०) १, २, ७, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ३ अश्विनौ वैवस्वतौ, ४ प्रस्कण्वः काण्वः ५ मेधातिथिः-मेध्यातिथी काण्वौ; ६ नृमेध आंगिरसः, १० नोधाः गौतमः ॥ इन्द्रः १; उषा २; ३ (ऋ० ४) अश्विनौ ॥ बृहती ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
३०३— प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

(दिवः) द्युलोक की (दुहिता) पुत्री अर्थात् उषा के समान वर्तमान "ज्योतिष्मती" आध्यात्मिक चित्त वृत्ति ना मैंने (प्रति, उ) प्रत्यक्ष (अदर्शि) दर्शन कर लिया है। यह ज्योतिष्मती—चित्तवृत्ति (आयती) आती हुई (उच्छन्ती) मेरे अज्ञानान्धकार को दूर कर रही है यह मेरे (दिवः, दुहिता) मस्तिष्क से प्रकट हुई है। (मही) ज्योतिष्मती चित्तवृत्ति महाशक्ति है। इसने मुझे, (चक्षुषा) दिव्य-चक्षु देकर मेरे (तमः) अज्ञानान्धकार के पर्दे को (अप, उ, वृणुते) हटा दिया है। इसने मेरे भीतर (ज्योतिः) ज्योतिः (कृणोति) पैदा कर दी है, यह (सूनरी) ज्योति प्रियरूपा ऋतरूपा है, ऋतम्भरा प्रज्ञा का पूर्वरूप है।

[ज्योतिः="मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्" (योग ३।३२); तथा "ऋतम्भरा प्रज्ञा" (योग १।४९)]

१ २ २ ३ १ २ ३ १ २

३०४— इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।

३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ॥२॥

(शचीवसू) हे प्रज्ञानमय तथा आध्यात्मिक विभूतियों वाले परमेश्वर ! (अश्विना) आपके ये दोनों स्वरूप, सूर्य और चन्द्र के सदृश, सर्वत्र प्रकाशमान हैं। (दिविष्टयः) प्रज्ञा तथा दिव्य विभूतियों को चाहने वाली (इमा) ये उपासक प्रजाएँ, (वाम् उ) आपके दोनों स्वरूपों का (हवन्ते) आह्वान कर रही हैं। आपके दोनों स्वरूप (उस्रा) किरणों के सदृश हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। (अयम्) यह मैं उपासक भी, (अवसे) अपनी रक्षा के लिये, (वाम्) आपके दोनों स्वरूपों का (अह्वे) आह्वान करता हूं। हे परमेश्वर ! आप इन दोनों स्वरूपों में (विशं विशम्) प्रत्येक योगिजन को (हि) ही (गच्छथः) प्राप्त होते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

३०५— कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २३ ३ ३ २३ १ २

घ्नता वामश्मया क्षयमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥

(अश्विना) सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशमान, प्रज्ञानमय और आध्यात्मिक विभूतियों वाले हे परमेश्वर ! (कुष्ठः) पृथिवीवासी (कः) कौन मनुष्य आपके (वाम्) दोनों स्वरूपों का आह्वान करता है ? (मन्त्र ३०४); (देवा) हे दिव्य प्रकाश वाले परमेश्वर ! जो (मर्त्यः) मनुष्य अपने आपको (तपानः) तपाता है, तपश्चर्या करता है, वह आप का आह्वान करता है। आसुरी भावनाओं का (घ्नता) हनन करने वाली, तथा (अश्मया) पत्थर की तरह पीस देने वाली (अशुना) प्रज्ञानमयी किरण द्वारा, जो उपासक, (इत्थम् क्षयमाणः) आसुरी भावनाओं का इस प्रकार क्षय करता रहता है, (यथा) जैसे कि (आद्वन्) अन्नभोजी व्यक्ति (अश्मया) पत्थर की चक्की द्वारा अन्न को पीसता है वह (वाम्) आप के दोनों स्वरूपों का आह्वान कर सकता है। [कुष्ठः=कु (पृथिवी)+स्थः (स्थित)]

२ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

३०६— अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।

२ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥४॥

(दिविष्टिषु) दिव्य आध्यात्मिक प्रज्ञाओं और विभूतियों को प्राप्त करने की इच्छाओं में, (अयम्) यह (सोमः) भक्तिरस, आपके (वाम्) दोनों स्वरूपों के प्रति भेंट के लिये (सुतः) तैयार है, जो कि (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर है। (अश्विना) सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशमान उपर्युक्त दोनों स्वरूपों वाले हे परमेश्वर ! आप (तिरः अह्न्यम्) प्रतिदिन निष्पादित इस भक्तिरस को (पिबतम्) स्वीकृत कीजिये। और (दाशुषे) समर्पक के प्रति (रत्नानि) अध्यात्मिक रत्न (धत्तम्) प्रदान कीजिये!

[तिरः=प्राप्त (निरु० ३।४।२०) अह्न्यम्=अहनि भवम्]

२ ३ १२३१२३२३ १२३१ २
३०७—आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
१२३१ २र ३१ २र३ २
भूर्णि मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं याचिषत् ।। ५ ।।

हे परमेश्वर ! (सोमस्य) भक्ति-रस से सनी हुई, और आप पर (ज्या) जय पा लेने वाली (गल्दया) प्रार्थना-वाणियों द्वारा, (अहम्) मैं (सदा) सदा (त्वा) आपसे (आ, याचन्) याचनाएँ करता रहा हूं। मैंने (सवनेषु) उपासना-यज्ञों में प्रार्थनाओं द्वारा, आपको कभी भी (न चुक्रुधम्) क्रुद्ध नहीं किया। क्योंकि (कः) कौन है जो कि (ईशानम्) ईश्वर से (या,चिषत् न) याचना नहीं करता ? आप ही तो (भूर्णिम्) भरण-पोषण करने वाले, और सदा (मृगम्) ढूंढ़ने और पाने योग्य हैं।

[गल्दा=वाक् (निघं० १।११)। मृगम्=मृग् अन्वेषणे।]

३ २ ३२ ३ २उ ३१ २
३०८—अध्वर्यो द्रावया त्वँसोममिन्द्रः पिपासति ।
१२ ३१२ ३१२३२३ १ २ ३२
उपो नून युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ।।६।।

(अध्वर्यो) हे अहिंसामय उपासना-यज्ञ के रचाने वाले उपासक ! (त्वम्) तू अपने (सोमम्) भक्तिरस को (आ द्रावय) बहा दे। (इन्द्र) परमेश्वर उसे (पिपासति) स्वीकार करना चाहता है। देख ! उसने तेरे (उप उ) समीप होकर, तेरे (हरी) ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी (वृषणा) बलवान् घोड़ों को, (नूनम्) निश्चय से, तेरे साथ (युयुजे) योग विधि से युक्त कर दिया है। (च) और देख ! वह (वृत्रहा) पाप-और-अज्ञान रूपी वृत्रों का हनन करने वाला परमेश्वर, तेरे हृदय में (आ, जगाम) आ ही विराजा है।

३२३२उ ३२३ २३ १२
३०९—अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
३ २३१२ ३१२३१२ ३१२
पुरूवसुर्हि मघवन्बभूविथ भरेभरे च हव्यः ।।७।।

(ज्यायः) हे सबसे ज्येष्ठ (इन्द्र) परमेश्वर ! शक्तियों और गुणों की दृष्टि से आपसे (कनीयसः) बहुत छोटे तथा (अभीषतः) अभीष्ट सिद्धि चाहने वाले मुझे, (तत्) वह प्रसिद्ध आध्यात्मिक धन अर्थात मोक्ष (आभर) प्रदान कीजिये। (मघवन्) हे आध्यात्मिक धनशाली ! (हि) आप ही (पुरूवसुः) इस धन के बहुधनी (बभूविथ) सदा से रहे हैं। आप ही (भरे भरे च) प्रत्येक देवासुर-संग्राम में शक्ति प्रदान के लिये (हव्यः) बुलाए जाते हैं, या आप ही (भरे भरे) प्रत्येक भरण-पोषण के व्यवहार में (हव्यः) बुलाए जाते हैं।

१२३ १२३ २३१२३१ २र
३१०—यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २३१२ २१ २३१२
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रँसिषम ।।८।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यावतः) जितने ऐश्वर्य के (त्वम्) आप अधीश्वर हैं, (यत्) यदि (एतावत्) इतने ऐश्वर्य का (अहम्) मैं (ईशीय) अधीश्वर बन जाऊँ, तो मैं आपके (स्तोतारम्) स्तोता का (इत्) ही (दधिषे) धारण-पोषण करूं। (रदावसो) हे सम्पत्तियों के देने वाले ! मैं (पापत्वाय) पापकर्म के लिये, (न रंसिषम्) आपकी दी सम्पत्ति में रमण न करूं।

[रदावसो = रा (दाने) + दा + वसु। सम्पत्तियों का अत्यधिक दाता।]

१२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २

३११—त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।

३ १ २ ३ ३ १ २ ३१२ ३ १ २ ३ २

अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥९॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (प्रतूर्तिषु) देवासुर-संग्रामों में (स्पृधः) स्पर्धा आदि सब कुभावनाओं को (अभि असि) पराभूत करते, (अशस्तिहा) अप्रशस्त भावनाओं का हनन करते, तथा सद्गुणों को (जनिता) जन्म देते हैं। (त्वम्) आप (वृत्रतूः असि) आत्मा पर घेरा डालने वाली कुवासनाओं के नाशक है। हे परमेश्वर ! (तरुष्यतः) हमारी हिंसक वृत्तियों को आप (तूर्य) विनष्ट कीजिये।

[तूर्तिः, तूर, तूर्य और तरुष्यतः इन पदों में हिंसार्थक "तुर्वी" धातु का प्रयोग हुआ है।]

१ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

३१२ प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि।

१ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २

न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥१०॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यः) जो आप, (प्ररिरिक्षे) संसार से नितान्त अतिरिक्त अर्थात् भिन्न हैं, वे आप (दिवः) द्युलोक के (सदोभ्यः) घरों अर्थात् सूर्य, नक्षत्र आदि से भी (परि) परे विद्यमान हैं। (पार्थिवम् रजः) पृथिवीलोक तो (त्वा) आपकी व्याप्ति का (न विव्याच) मुकाबला नहीं कर सकता। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप तो (अति विश्वम्) विश्व से भी परे विद्यमान होकर (ओजसा) निजशक्ति के कारण समग्र विश्व का (ववक्षिथ) वहन कर रहे हैं।

दशति ३

(१—१०) १, २, ६, वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ३ गातुरात्रेयः, ४ पृथुर्वैन्यः; ५ सप्तगुराङ्गिरसः; ७ गौरिवीतिः शाक्त्यः; ८ वेनो भार्गवः; ९ बृहस्पतिर्नकुलो वा; १० सुहोत्रो भारद्वाजः ॥ इन्द्रः, (ऋ० ५ इन्द्री वैकुण्ठः)

१ २ ३ १ २र ३ २क २र ३ १ २ ३ १२

३१३—असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्द्रो जनुषेमुवोच।

१ २ ३ १ २र ३ २३ १ २ ३ १ २

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥१॥

(गो ऋजीकम्) इन्द्रियों को ऋजुमार्गगामी अर्थात् सत्यमार्गगामी बनाने वाला, (देवम्) दिव्य (अन्धः) आध्यात्मिक अन्न अर्थात् भक्ति-रस (असावि) निष्पन्न हुआ है। (अस्मिन्) इस भक्ति-रस में (इन्द्रः) परमेश्वर (जनुषा) स्वभाव से ही (नि उवोच) सम्बद्ध है। (हर्यश्व) हे विषयहारी इन्द्रियाश्वों के स्वामी! हम उपासक (यज्ञैः) याज्ञिय कर्मों द्वारा (त्वा) आपको हृदयों में (बोधामसि) उद्बुद्ध करते हैं। (अन्धसः) सोमरस-रूपी-अन्न से (मदेषु) तृप्त होकर आप, (नः) हमारी (स्तोमम्) स्तुति-प्रार्थनाओं को, (बोध) पहचानिये।

[गो ऋजीकम्=गो (इन्द्रियां)+ऋजु+क। उवोच=उच समवाये]

१ २ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २
३१४—योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि।
१ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥२॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (ते) आपके (सदने) बैठने के निमित्त हमने हृदयों को आपका (योनिः) घर (अकारि) कर दिया है। (नृभिः) हे उपासकों द्वारा (पुरुहूत) बहुत बुलाए गए परमेश्वर! (तम्) उन हृदय गृहों में आप (आ प्र याहि) शीघ्र पधारिये। (यथा) ताकि आप (नः) हमारे (अविता) रक्षक (असः) हो जायं, (वृधः चित्) और हमारी वृद्धियां करें। आप हमें (वसूनि) आध्यात्मिक-सम्पत्तियां (ददः) प्रदान कीजिये, (च) और हमारे (सोमैः) भक्ति रसों द्वारा (ममदः) आनन्दित हूजिये।

१ २३२ ३ १ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
३१५—अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥३॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! आपने हम में भक्तिरस का (उत्सम्) स्रोत (अदर्दः) खोल दिया है, (उत) और आपने हमारी (खानि) इन्द्रियों को (वि असृजः) रचा है। हमारे प्रेम और भक्ति के (अर्णवान्) समुद्रों को—जो कि अभी तक (बद्बधानान्) बंधे पड़े थे—(त्वम्) आपने (अरम्णाः) तरंगित कर दिया है। हे परमेश्वर! भक्तिरस के बहाव के मार्ग में बाधकरूप में खड़े (महान्तं पर्वतम्) बड़े पर्वत को (यत्) जो आपने (वि वः) तोड़ गिराया है, इससे आपने (धाराः) भक्तिरस की धाराएँ (विसृजत्) बहा दी हैं, और आपने (दानवान्) दानवी-तथा-आसुरी-भावनाओं को (अवहन्) मार गिराया है। [महान्तं पर्वतम्= अविद्या; जन्मजन्मान्तर से प्राप्त अविद्या, अर्थात् विवेकज्ञान का अभाव]

[अरम्णाः=रमु क्रीडायाम्। अवहन्=अव हन्]

३ १२ ३१२ ३ १२ ३ १२
३१६—सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम्।
१ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २ ३ १ २
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्यामात्वोताः ॥४॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! हमने (सुष्वानासः) भक्तिरस को उत्पन्न किया है, इस भक्तिरस में हम (त्वा) आपकी (स्तुमसि) स्तुति करते हैं। (तुविनृम्ण) हे बहुधनी तथा हे बहुबली ! हम आपके प्रति अपनी (वाजम्) शक्तियों को (चित्) भी (सनिष्यन्त) दानरूप में समर्पित कर रहे हैं। (नः) हमें आप (सुवितम्) सुगति (आ भर) प्रदान कीजिये, (यस्य) जिस सुगति की कि हमें (कोना) कामना है। (त्वोताः) आप द्वारा रक्षा पाए हुए हम, अपनी (तना) तनुओं अर्थात् शारीरिक शक्तियों द्वारा, और (त्मना) आत्मिक-शक्तियों द्वारा आसुरी-भावनाओं का (सह्याम) पराभव करें।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३१७—जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम्।
२ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विद्मा हि त्वा गोपतिँ शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणँ रयिं दाः ॥ ५ ॥

(वसूनां वसुपते) सब सम्पत्तियों के स्वामी (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वसूयवः) आत्मिक सम्पत्तियां चाहते हुए हम, (ते) आपके (दक्षिणम्) उत्साहवर्धक तथा दान-शील (हस्तम्) हाथ का (जगृह्म) आश्रय लेते हैं। (शूर) हे पराक्रमी ! आप (गोनाम्) समग्र पृथिवियों के (गोपतिम्) पति हैं, समग्र (गोनाम्) वेदवाणियों के पति हैं, (गोनाम्) समग्र इन्द्रियों के (गोपतिम्) पति हैं,—ऐसा (हि) ही हम (त्वा) आप को (विद्म) जानते हैं। (अस्मभ्यम्) हम उपासकों को आप (चित्रम्) विचित्र तथा (वृषणम्) आनन्दवर्षी (रयिम्) आध्यात्मिक सम्पत्ति (दाः) प्रदान कीजिये।

[दक्षिणम्=दक्षतेः उत्साहकर्मणः, दाशतेर्वा दानकर्मणः (निरु. १।३।७)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १
३१८—इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥

(नेमधिता) अल्पकालिक ध्यान में, जब व्युत्थान-और-निरोध वृत्तियों में परस्पर संग्राम चल रहा हो, तब, (नरः) उपासक जन, सहायतार्थ, (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हवन्ते) आह्वान करते हैं, (यत्) जबकि (पार्याः) पार करने योग्य अर्थात् निरोध करने योग्य (ताः) उन (धियः) व्युत्थान वृत्तियों का (युनजते) उपासक-जन योगविधियों द्वारा निरोध करते हैं। जब उपासकों में (श्रवसः) योगज-यश की प्राप्ति के लिये, (कामे) कामना जागरित हो जाए, तब, (नृषाता) उपासक-जनों को शक्ति प्रदान करने में, (शूरः) हे परमेश्वर ! आप अपना पराक्रम दर्शाइये, और (त्वम्) आप (नः) हमें (गोमति व्रजे) स्तोतृजनों-के-संघ का (आ भज) भागी बनाइये।

[नेमधिता=नेम (अर्धनाम; निरु. ३।४।२०)+धि (धारणे), अर्थात् धारणा-वृत्ति के काल में। गोमति=गौः (स्तोता, निघं० ३।१६)]

१२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

३१९—वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।

१२ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २र ३ २ऽ २ ३ १ २ ३ २

अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान्

॥ ७ ॥

(प्रियमेधाः) उपासना-यज्ञ में प्रीति रखने वाले, (ऋषयः) ऋषिकोटि के उपासक (नाधमानाः) याचना-प्रार्थना करते हुए, (इन्द्रम्) परमेश्वर के (उप) समीप (सेदुः) उपासना मे समाधिस्थ होते हैं। वे (सुपर्णाः) उड़ानें लेने वाले (वयः) पक्षियों के सदृश, परमेश्वर में उडानें लिया करते हैं, और परमेश्वर के प्रति कहा करते हैं कि हे परमेश्वर! हमारे (ध्वान्तम्) अज्ञानान्धकार के परदे को (अप, ऊर्णुहि) हटा दीजिये, हमारी (चक्षुः) आध्यात्मिक-दृष्टि को (पूर्धि) पूर्ण कीजिये, (अस्मान्) हमें (मुमग्धि) मक्त कर दीजिये, हम पक्षियों की (इव) तरह (निधया) संसार-जाल में (बद्धान्) बंधे पड़े हैं।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

३२०—नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तँ हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।

१ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८॥

हे परमेश्वर! (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) आपकी कामना करते हुए उपासक, (नाके) दुःख रहित-आनन्दमयी अवस्था में, (त्वा) आपका (अभि अचक्षत) प्रत्यक्ष दर्शन कर लेते हैं। आप जो कि (उप) उपासना में (पतन्तम्) हृदयाकाश में मानो उड़ानें ले रहे होते हैं, जो आप कि (हिरण्यपक्षम्) सुवर्णवर्णी सूर्य-नक्षत्रादि के पंखरूप हैं, अर्थात् जिस आपकी सहायता से ये मानो आकाश में उड़ से रहे हैं, जो आपकि (वरुणस्य) आवरण करने वाली अज्ञान-रात्रि के (दूतम्) परितापक हैं, (यमस्य) यम नियमों का पालन करने वाले उपासक के (योनौ) हृदय-गृह में रहते हुए (शकुनम्) उसे शक्ति प्रदान करते हैं, तथा (भुरण्युम्) उसका भरण-पोषण करते हैं।

[वारुणी=रात्रिः दूतम्=दू परितापे]

१ २ ३ ९ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २

३२१—ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः।

(ब्रह्म) ब्रह्म (जज्ञानम्) ज्ञानमय है, (प्रथमम्) मुख्य-शक्ति है, (पुरस्तात्) अनादि है। (वेनः) कामना करते हुए ब्रह्म ने, जगत् की (सीमतः) सीमा में, (सुरुचः) उत्तम दीप्तियों वाले नक्षत्र-समूहों को (वि आवः) अनावृत किया है। (बुध्न्या) संसार की जड़ में रहने वाले और (विष्ठाः) विविध स्थानों में स्थित नक्षत्रगण, (अस्य) इस ब्रह्म की (उपमाः) उपमारूप हैं। (सः) उस ब्रह्म ने (सतः) स्थूल-जगत् (च) और (असतः) सूक्ष्म-जगत् की योनि अर्थात् प्रकृति को (वि वः) विवृत किया है।

[उपमाः=नक्षत्राणि रूपम् (यजु० ३१।२२)]

१२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
३२२—अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचाँस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१०॥

(महे वीराय) महावीर तथा महाप्रेरक, (तवसे) बलशाली, (तुराय) वेगशाली, (विरप्शिने) सबसे महान् (वज्रिणे) पापों के प्रति वज्रधारी, (स्थविराय) कूटस्थ (अस्मै) इस परमेश्वर के लिये, (अस्मै) निश्चय से इसी परमेश्वर के लिये, उपासक, अपने २ (वचांसि) स्तुति-वचनों को (तक्षुः) घड़ २ कर तैयार करते हैं, जो स्तुति-वचन कि (अपूर्व्या) अपूर्व रचना करने वाले होते हैं, (पुरुतमानि) विविध स्वरूपों वाले, तथा (शन्तमानि) अत्यन्त शान्तिप्रद होते हैं।

[तक्षुः=तक्षा अर्थात् बढ़ई जैसे लकड़ी को घड़ कर उसे नाना सुन्दर २ आकृतियों में परिवर्तित कर देता है, इसी प्रकार उपासक परमेश्वरीय स्तुति-वचनों को घड़ते हैं।]

दशतिः ४

(१—६) १, २, ४ द्युतानो मारुतः (ऋ० तिरश्चीराङ्गिरसः): ३ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ५ वामदेवो गौतमः; ६, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ९ गौरिवीतिः शाक्त्यः॥ इन्द्रः॥ त्रिष्टुप् (६ ऋ० विराट्)॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
३२३—अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
२ ३ २ ३ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१॥

योगाङ्गों के अभ्यास द्वारा चित्त में प्रकट हुई (अंशुमतीम्) प्रकाशमयी या ज्योतिमयी सात्त्विक-शुक्ल-चित्तवृत्तिको, बीच२ में (कृष्णः) तामसिक चित्त-वृत्तियाँ (द्रप्सः) बिन्दुरूपों में अर्थात् सूक्ष्म रूपों में (ईयानः) आती रहती हैं, और चित्त में (दशभिः सहस्रैः) अनगिनत रूपों में (अव अतिष्ठत) आ ठहरती हैं। (धमन्तम्) साँप की तरह फुंकारती हुई (तम् स्नीहितिम्) उस सूक्ष्मरूपमयी हिंस्र कृष्ण-चित्तवृत्ति को (नृमणाः इन्द्रः) उपासकों के लिये उपकारी मन वाला परमेश्वर, (शच्या) निज-शक्ति द्वारा (अप आ अवत्) अलग कर देता है, (अध) तदनन्तर उन्हें (द्राः) भगा देता है।

[द्रप्सः=स्तोको वै द्रप्सः गो० २।२।१२) Drops। स्नीहितिम्=स्नेहति बधकर्मा (निघं० २।१९) दशभिः सहस्रैः—सहस्र शब्द "अनगिनत" अर्थ का सूचक है। जैसे कि सहस्रांशु, सहस्ररश्मि, सहस्रशृङ्ग आदि शब्दों में,—जो कि सूर्यवाचक हैं—सूर्य की किरणों के सम्बन्ध में सहस्र शब्द का प्रयोग होता है। सूर्य जब उदित होता है तब इस की अनगिनत किरणें दसों दिशाओं में फैल जाती हैं। ४ मुख्य दिशाएं, ४ अवान्तर दिशाएँ अर्थात् उपदिशाएँ, तथा दो ध्रुवा और ऊर्ध्वा दिशाएँ,

— ये दस दिशाएँ हैं। इन दिशाओं की दृष्टि से सूर्य की किरणें और भी अधिक अनगिनत हो जाती हैं। "दशभिः सहस्रैः" का अभिप्राय है,—अनगिनत, असंख्यात। इस सम्बन्ध में बौद्ध-साहित्य में भी एक प्रमाण मिला है। बौद्ध आचार्य आर्यसंघ ने अपने तिब्बतीय-उपदेशों में "दशभिः सहस्रैः" की चर्चा की है, जिसका कि अंग्रेजी अनुवाद निम्नलिखित है :—

"Hold firm! Thou rearest now the middle portal, the gate of woe, with its Ten Thousand snares" (Talks on the path of occultism, Vol II, The Voice of the Silence, by Annie Besant, C.W. Leadbeater, 1964 edition, Page, 323)।

"Ten Thousand snares"; "कृष्णाः द्रप्सः दशभिः सहस्रैः" का अनुवाद प्रतीत होता है। इसी प्रकार "षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि" मन्त्र संख्या ११०५ में भी 'षष्टिं सहस्रा" द्वारा अर्थ अनगिनत अर्थात् असंख्यात ही समझना चाहिये। यदि ११०५ मन्त्र में चारों वेदों के लगभग २० हजार मन्त्रों के अर्थत्रय की दृष्टि से ६० हजार अर्थ लिया जाय तो मन्त्र संख्या ३२३ में "दशभिः सहस्रैः" द्वारा ऋग्वेद के लगभग १० हजार मन्त्रों में उपदिष्ट सद्भावों के प्रतिद्वन्द्वी असद्भावों का ग्रहण करना भी अनभीष्ट न होगा।

३१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ९र
३२४—वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः।
३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १२
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥२॥

(इन्द्र) हे आत्मा! (विश्वे) सब (देवाः) इन्द्रियाँ, जो सखा बन गयी थीं, वे, (वृत्रस्य) पापवृत्र रूपी सांप की (श्वसथात्) फुंकार (ईषमाणाः) भाग रहे हैं, और उन्होंने (त्वा) आपको हमसे (अजहुः) जुदा कर दिया है। परन्तु (मरुद्भिः) प्राणायाम आदि साधनों द्वारा जब हमारा (ते) आपके साथ (सख्यम्) सखिभाव (अस्तु) हो जाता है, (अथ) तदनन्तर पाप-वृत्रों की (इमाः विश्वाः) इन सब (पृतनाः) सेनाओं पर (जयासि) आप विजय प्राप्त करा देते हैं। [वृत्र को अहिः (सांप) भी कहते हैं "अहिवन्तु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादाश्च" (निरु. २।२।१६)

३ १ २ ३ १ २र ३ १ ९र ३ १ २ २ १ २
३२५—विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥३॥

(बहूनाम्) बहुतों के (समने) जीवित रहते (विधुम्) शत्रुओं को भगा देने वाले, (दद्राणम्) बहुधनी, तथा (युवानं सन्तम्) युवा व्यक्ति को भी, (पलितः) पुराण-पुरुष परमेश्वर (जगार) निगल जाता है। इसका रहस्य जानने के लिये (देवस्य) परमेश्वरदेव के (काव्यम्) वेद-काव्य को (पश्य) देख। (महित्वा) परमेश्वरदेव की महिमा के कारण जो (अद्य) आज (ममार) मरा है, (सः) वह (ह्यः) कल अभी (समान) प्राणों समेत था, जीवित था।

[समने=सम्+अन् (प्राणने) । समान=सम्+आ+अन् (प्राणने)। शक्तिशाली युवा व्यक्ति की भी मृत्यु का दृश्य दर्शाकर, बार२ की मृत्यु से बचने के लिये, उपासना के निमित्त, प्रेरणा दी गई है]

२ ३ २ ३ २ २ १२ ३ १ २ ३ १ २
३२६—त्वँ ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
३१ २ ३र ३ १ २र ३ २ ३ १ २
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो रणं धाः ॥४॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्यत् ह) यह प्रसिद्ध है कि (त्वम्) आप जब (जायमानः) उपासक के हृदय में प्रकट होते हैं, तब आप (सप्तभ्यः अशत्रुभ्यः) सात पाप जो कि कभी आपके शत्रु नहीं हुए [अपितु जो उपासक के शत्रु होते हैं] उनके भी आप (शत्रुः अभवः) शत्रु हो जाते हैं। हे परमेश्वर ! (गूढे) प्रकृति के गर्भ में छिपे (द्यावापृथिवी) द्युलोक-और-पृथिवीलोक को भी आपने ही (अन्वविन्दः)प्रकट किया है, और (विभुमद्भ्यः) आप विभु की अधीनता में रहने वाले (भुवनेभ्यः) लोकलोकान्तरों में भी आपने ही (रणम्) रमणीयता (धाः) स्थापित की है।

[सप्तभ्यः=सात पाप हैं (१) स्तेय, (२) तल्पारोहण, (३) ब्रह्महत्या, (४) भ्रूणहत्या, (५) सुरापान, (६) दुष्कृत-कर्मों का पुनः पुनः करना, (७) पाप करने पर उसे छिपाने के लिए अनृत-भाषण। "सप्तमर्यादाः कवयः ततक्षुः" (ऋ० १०।५।६) पर निरुक्त भाष्य (६।५।२७) ये सात पाप ईश्वर के कभी शत्रु नहीं बनते, परमेश्वर इनसे अलिप्त है। उपासक ही इनसे लिप्त था।]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
३२७—मेंडि न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभँ स्थिरप्स्नुम् ।
३ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥५॥

(मेंडि न) वेदवाणी के सदृश (वज्रिणम्) वज्रधारी, (भृष्टिमन्तम्) पापों को भूनने वाले, (पुरुधस्मानम्) पापों का पूर्ण क्षय करने वाले, (वृषभम्) सच्चे उपासक पर सुखों की वर्षा करने वाले, (स्थिरप्स्नुम्) सदा स्थिर रूप से आनन्द-स्वरूप, (द्युक्षम्) प्रकाश में निवास करने वाले अर्थात् सदा प्रकाशमान, (वृत्रहणं) विघ्नों तथा बाधाओं का हनन करने वाले, (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आपका (गृणीषे) मैं स्तुति-गान करता हूं। (दुवस्युः) मैं उपासक आपकी परिचर्या करने वाला हूं, (अर्यः) आप मेरे स्वामी हैं। (तरुषीः करोषि) आप हिंसक कामादि सेनाओं को विनष्ट करते हैं।

[मेडि = वेदवाणी (निघ० १।११)। वेदवाणी ज्ञानवज्र देकर पापों को विनष्ट करती है। धस्मानम्=दस् उपक्षये। करोषि=कृञ् हिंसायाम्, छान्दस प्रयोग]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
३२८—प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥६॥

हे उपासको ! (वः) अपनी वृद्धि के लिये, तुम, (महे) पूजनीय तथा महान् और (प्रचेतसे) सर्वज्ञ परमेश्वर के प्रति, (सुमतिम्) सुमतियों को (प्रभरध्वम्) उपहाररूप में भेंट किया करो और भेंट के लिये सुमतियों को (प्रकृणुध्वम्) और उत्कृष्ट बनाया करो। हे परमेश्वर ! आप (चर्षणिप्राः) प्रजाओं की पालना करते और उन्हें सुख सामग्री से भरपूर करते हैं। आप (पूर्वी) पूर्वकाल से आ रही (विशः) प्रजाओं में (प्रचर) विचर रहे हैं।

[चर्षणिप्राः=चर्षणि= मनुष्य (निघं० २।३) + प्राः (पालनपूरणयोः)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १२ ३ १ २

३२९—शुनँ हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।

३ १ २ ३ २३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥७॥

(अस्मिन्) इस (भरे) देवासुर-संग्राम में (वाजसातौ) शक्ति की प्राप्ति के निमित्त, हम उपासक (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हुवेम) आह्वान करते हैं। जो परमेश्वर (शुनम्) सुख-स्वरूप है (मघवानम्) सब प्रकार की सम्पत्तियों का स्वामी है, (नृतमम्) संसार का सर्वश्रेष्ठ नेता है, हमारी प्रार्थनाओं को (शृण्वन्तम्) सुनता है, (उग्रम्) असुरों के प्रति उग्र है, (समत्सु) देवासुर संग्राम में हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए, (वृत्राणि) पाप वृत्रों का (घ्नन्तम्) हनन करता है, और (धनानि) आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक धनों पर (सञ्जितम्) विजय पाए हुए है।

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

३३०—उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रँ समर्ये महया वसिष्ठ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचाँसि ॥८॥

हे उपासको ! तुम (श्रवस्या) श्रवण के योग्य, तथा (ब्रह्माणि) ब्रह्म के प्रतिपादक वेदमन्त्रों का (उद् उ) उच्च स्वरों में (ऐरत) गान किया करो। (वसिष्ठ) हे प्राणों के संयम मे बसने वाले श्रेष्ठ उपासक ! तू (समर्ये) देवासुर-समर में विजय के निमित्त, (इन्द्रम्) परमेश्वर की (महया) महिमा का गान किया कर, (यः) जिस परमेश्वर ने कि अपने (श्रवसा) महायश द्वारा (विश्वानि) सब भुवनों को (आततान) फैलाया है। वह (मे) मेरे (वचांसि) प्रार्थना-वचनों को (उप) समीप मे होता हुआ (श्रोता) सुनता है, (ईवतः) जो मैं कि उस परमेश्वर तक पहुंच गया हूं।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र

३३१—चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात्।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १२

पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

(अस्य) इस परमेश्वर का (यत्) जो (चक्रम्) नियमचक्र (अप्सु) मेघीय-जलो में, (आ) तथा सर्वत्र, (निषत्तम्) नियतरूप मे स्थित है, (उत उ)

और इस चक्र द्वारा वह परमेश्वर (अस्मै) इस प्रजाजन के लिये, (तत् मधु) उस मधुर जल को (चच्छद्यात्) खोल देता है, और वह जल (पृथिव्याम्) पृथिवी में समुद्ररूप में (अतिषितम्) अति खुले (ऊधः) मुहाने के रूप में विद्यमान रहता, (यत्) और जो (पयः) दूध-रूप में (गोषु) गौवों में (अदधाः) विद्यमान रहता, और (पयः) रस रूप में (ओषधीषु) ओषधियों में विद्यमान रहता है,[इस परमेश्वर के प्रति उच्च स्वर में मन्त्रगान किया करो (३३०)]

दशति ५

(१—१०) १ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः; (ऋ० गर्गो भारद्वाजः); ३ विमद ऐन्द्रः; वसुकृद्वा वासुक्रः (ऋ० प्राजापत्यो वा); ४-६, ६ वामदेवो गौतमः (६ ऋ० यमी वैवस्वती) ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ८ रेणुर्वैश्वामित्रः; १० गोतमो राहूगणः ।। इन्द्रः ऋ० १ तार्क्ष्यः; ७ पर्वतेन्द्रौः यमो ६ वैवस्वतः ।। त्रिष्टुप् ।।

२ ३ १ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ २ २३ १ २
३३२—त्यमू षु वाजिनं देवजूतँ सहोवानं तरुतारँ रथानाम् ।
१ २ ३ १ २ २३ ३ २ ३ १ २३ १ २
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुँ स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ।।१।।

(स्वस्तये) हम अपने कल्याण के लिये, (इह) इस वर्तमान जीवन में, (त्यम् उ) उस ही प्रसिद्ध परमेश्वर का, (सु आ हुवेम) उत्तम विधि से आह्वान करते हैं. जो परमेश्वर कि (वाजिनम्) अन्नों-ज्ञानों-और शक्तियों का स्वामी है, (देवजूतम्) सूर्य आदि देवों में प्रेरणा दे रहा है, (सहोवानम्) सहनशील है, (रथानाम्) हमारे शरीर-रथों को (तरुतारम्) चलाने वाला है, जो (अरिष्टनेमिम्) संसार-चक्र पर अटूट नेमि के रूप में है, (पृतनाजम्) आसुरी भावों की सेनाओं पर जो विजय पाए हुए हैं, (आशुम्) जो शीघ्र कार्य सम्पादन कर देता है, तथा जो (तार्क्ष्यम्) महाकाश में व्यापक है ।

३ २३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३१ २
३३३—त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रँ हवेहवे सुहवँ शूरमिन्द्रम् ।
३२३ ३ १ २ ३१ २२ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदँ हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ।।२।।

(त्रातारम्) पालक (इन्द्रम्) परमेश्वर का; (अवितारम्) तृप्तिदायक (इन्द्रम्) परमेश्वर का, (हवेहवे) प्रत्येक पुकार पर (सुहवम्) सुगमता से बुलाए जाने वाले (शूरम् इन्द्रम्) शूरवीर परमेश्वर का, (शक्रम्) शक्तिशाली (पुरुहूतम्) बहुत नामों द्वारा स्मरण किये गए (इन्द्रम्) परमेश्वर का. (नुहुवे) मैं अवश्य आह्वान करता हूं। वह (मघवा) सम्पत्-शाली (इन्द्रः) परमेश्वर (इदं हविः) हमारे इस आत्म-समर्पण को (वेतु) स्वीकार करे ।

१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ऽ १ २
३३४—यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्या३ विव्रतानाम्।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३र ३ १ २ ३ १ २र
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा।
॥ ३ ॥

हम उपासक (इन्द्रम्) परमेश्वर का (यजामहे) यजन करते हैं अर्थात् उस देव की पूजा करते, उसका सत्संग करते, उसके प्रति सर्व व समर्पित करते हैं। वह परमेश्वर जो कि (वज्रदक्षिणम्) न्याय का वज्र धारण कर सबकी वृद्धि कर रहा है, जो (विव्रतानाम्) विरुद्ध २ कर्त्तव्यों वाले (हरीणाम्) इन्द्रियाश्वों में समन्वय पैदा करने वाला मानो (रथ्यम्) सारथि है, वह सूर्य की (श्मश्रुभिः) किरणों द्वारा संसार में (प्र वि दोधुवत्) रोगों की निवृत्ति करता, और (ऊर्ध्वधाः) ऊर्ध्व के द्युलोक में नक्षत्र-समूहों का धारण-पोषण करने वाला (भुवत्) हुआ है। वह अपनी (सेनाभिः) नानाविध शक्ति-सेनाओं द्वारा, (विराधसा) धनैश्वर्य का अपहरण करके, पापी-जनों में (भयमानः) भय जागरित करता है।

३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २३ १ ३ १ २
३३५—सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम्।
२ ३ २ ३ १ २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः
॥ ४ ॥

हम (इन्द्रम्) परमेश्वर का यजन (मन्त्र ३३४) करते हैं, अर्थात् उसकी पूजा, उसका सत्संग तथा उसके प्रति अपने आपको समर्पित करते हैं, जो परमेश्वर कि (सत्राहणम्) सत्य द्वारा असत्य का हनन करता, (दाधृषिम्) पापों का घर्षण करता, (तुम्रम्) तुमुल अर्थात् महान् और (महाम) महामहिम है, (अपारम्) जिसका कोई पारावार नहीं, (वृषभम्) जो आनन्द-रस-वर्षी है, (सुवज्रम्) जो न्याय का उत्तम वज्र धारण किए हुए है, (यः) जो (वृत्रम) पाप वृत्रों का (हन्ता) हनन करता, (उत) और (वाजम्) शक्तियों का (सनिता) दाता है, जो (मघानि) ऐश्वर्यों का (दाता) है, (मघवा) ऐश्वर्यवान् है, और (सुराधाः) कार्यों का सुसाधक है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १२ ३ १ २ ३ १ २
३३६—यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥५॥

जिसकी (मर्त.) मृत्यु अवश्यभावी है ऐसा (यः) जो आसुरी-भाव (नः) हम उपासकों का (वनुष्यन्) नाश चाहता हुआ (अभिदाति) हमारी जड़ काटता है, जो (मन्यमानः) अभिमान (वा) या (तुरः) हिंसावृत्ति, (वा) या (उगणाः) समूह रूप में उठी हुई अन्य पाप वृत्तियां हम उपासकों की जड़ काटती हैं, (इन्द्र) हे परमेश्वर! (तम्) उस २ का (क्षिधी) आप क्षय कीजिये। (वृषमणः इन्द्र) हे आनन्दवर्षी-मन वाले परमेश्वर! (त्वोताः) आप द्वारा सुरक्षित हम भी, (शवसा

युधा वा) अपने बल द्वारा, तथा प्रतिपक्ष-भावना रूपी युद्ध द्वारा, (तम्) उस २ दुर्भावना का (अभीष्याम) पराभव करते हैं।

[अभिदाति=अभि+दाप् (लवणे)]

२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
३३७—यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते।
१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
यँ शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥

(वृत्रेषु) नाना पाप जब बुद्धि पर आवरण डाल देते हैं तब, (क्षितयः) उपासक-जन, एक दूसरे से (स्पर्धमानाः) बढ़-चढ़ कर सहायता के लिये, (यम्) जिसका (हवन्ते) आह्वान करते हैं, (युक्तेषु) योगयुक्त योगियों में (तुरयन्तः) तीव्र संवेगी योगीजन सहायता के लिये, (यम्) जिसका आह्वान करते हैं, (शूरसातौ) नाशक-असुरों के नाश में शक्ति-प्राप्ति के निमित्त, (यम्) अभ्यासी जिसका आह्वान करते हैं, (अपाम्) जलों और जलों द्वारा प्राप्त होने वाली (उपज्मन्) उपज के निमित्त, किसान प्रजाजन (यम्) जिसका आह्वान करते हैं, तथा (विप्रासः) मेधावी लोग मेधा की प्राप्ति के निमित्त, (यम्) जिसकी (वाजयन्ते) अर्चना करते और आह्वान करते हैं—(सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है, वह परमेश्वर है।

[वाजयति=अर्चति कर्मा (निघं. ३।१४)]

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
३३८—इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतँ सुवीराः।
३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ २ १ २र ३ १२
वीतँ हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥

(इन्द्रापर्वता) परमैश्वर्यवान् तथा मेघवत् आनन्दरस वर्षी परमात्मन्! इस (बृहता) महान् (रथेन) संसार-रूपी रथ द्वारा आप हमें (वामीः) श्रेष्ठ तथा मनोहर (इषः) अभीष्ट-फलों को (आ, वहतम्) प्राप्त कराइये, और हमें (सुवीराः) उत्तम वीर सन्तानें प्रदान कीजिये। (देवा) उपर्युक्त दो शक्तियों के भण्डार हे प्रभो! हमारे (अध्वरेषु) हिंसा-रहित उपासना-यज्ञों में आप हमारे (हव्यानि) भक्तिमय समर्पणों को (वीतम्) स्वीकार कीजिये। (गीर्भिः) वेद की स्तुति-वाणियों द्वारा और (इडया) हमारी लौकिक-स्तुतियों द्वारा आप (मदन्ता) प्रसन्न होकर हमें (वर्धेथाम्) बढ़ाइये।

[पर्वत=मेघ (निघं. १।१०)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
३३९—इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात्।

१ २र ३ २ ३ १॒२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम्
॥ ८ ॥

(इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति, उपासक, (सगरस्य) रात्रि के (बुध्नात्) प्रबोध काल से (गिरः) वैदिक-स्तुतियों को (प्रैरयत्) प्रेरित करता है, (अनिशितसर्गाः) जिन वैदिक-स्तुतियों पर कभी निशा नहीं आती, अर्थात जिनका कभी विनाश नहीं होता। वह उपासक उसी काल से अपने (अपः) सत्कर्मों को भी परमेश्वर के प्रति (प्रैरयत्) समर्पित करता है। परमेश्वर वह है (यः) जिसने कि अपनी (शचीभिः) शक्तियों द्वारा (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी-और-द्युलोक को (विष्वक्) सब ओर से (तस्तम्भ) थामा हुआ है, (इव) जैसे कि (अक्षेण) धुरा के द्वारा (चक्रियौ) रथ के दो चक्रों की दो नाभियों को परस्पर थामा जाता है।

[सगर=रात्रि (मोनिअर विलियम्स)। सगर=जो सब को निगीर्ण कर लेती है, निगल जाती है=रात्रि। अनिशितसर्गाः=अ+निशा+इतच्+सर्ग (सृष्टि)।]

२ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
३४०—आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः
३ १ २र ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पितुर्नपातमा दधीत वेधाऽस्मिन्क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥

हे परमेश्वर! हम उपासक आपके (सखायः) सखा हैं, अपने (सख्या) सखिभाव द्वारा हम (त्वा) आपको अपनी ओर (आववृत्युः) आवर्जित करते हैं, अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। आप (पुरुचित्) चिरकाल से हम से (तिरः) अन्तर्हित थे, अब आप हमारे (अर्णवान्) हृदय-समुद्र में (जगम्याः) आए हैं, प्रकट हुए हैं। आप (वेधाः) विधियों और जगत् का विधान करते हैं। आप हमारी ऐसी रक्षा और पालना कीजिये जैसे (पितुर्नपातम्) पिता अपनी सन्तानों की (आ दधीत) रक्षा और पालना पूर्ण रूप से करता है। आप हमारे (अस्मिन्) इस (क्षये) निवास-स्थान में, हृदय में (प्रतराम्) खूब (दीद्यानः) प्रदीप्त हूजिए।

२ ३ १ ३ ३ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
३४१—को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो
३ २
दुर्हृणायून्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्
॥ १० ॥

(कः) कौन है जो कि (अद्य) आज अर्थात् वर्तमान-काल में (ऋतस्य) सत्य की (धुरि) धुरा में (गाः) वाणियों को (युङ्क्ते) जोतता है अर्थात् सत्य का

प्रचार करता है, ऐसे व्यक्ति दुर्लभ हैं। ऐसी सत्य वाणियों को जो कि (शिमीवतः) कर्मवाली हों अर्थात् वक्ता अपनी कथित वाणी अनुरूप कर्म भी करता हो, तथा जो सत्य वाणियाँ कि (भामिनः) वास्तविकता को प्रकाशित करती हों, और जिनके बोलने में वक्ता (दुर्हृणायून्) लज्जा अनुभव न करता हो। ऐसी सत्यवाणियां केवल (एषाम्) इन उपासकों के (आसन्) मुखों में होती है, जिन उपासकों के कि (अप्सुवाहः) रस-रक्तों में इन सत्य-वाणियों का प्रवाह बह रहा होता है। ऐसी सत्य वाणियां परिणाम में (मयोभून्) उल्लास और आनन्द देने वाली होती हैं। (यः) जो व्यक्ति (एषाम्) इन सत्य वाणियों का (भृत्याम् ऋणधत्) सेवक बन जाता है, (सः) वह ही वास्तव में (जीवात्) जीवित है, अन्य व्यक्ति तो मृतवत् हैं।

[ऋणद्धि=परिचरणकर्मा (निघं. ३।५)]

इती पञ्चमी दशतिः ॥५॥ एकादशः खण्डः ॥११॥ [स्व० १८। उ० ४। घा० ८६। ६॥]

इति त्रिष्टुप् समाप्ता ॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

दशतिः ६

(१-१०) १ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; २ जेता माधुच्छन्दसः; ३, ६, गोतमो राहुगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५, ८ तिरश्चीराङ्गिरसः; ७ नीपातिथिः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० तिरश्चीरांगिरसः शयुर्वार्हस्पत्यो वा ॥ ॥ इन्द्रः ॥ अनुष्टुप् ॥

१२ ३१ २र ३२३१२
३४२—गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३१२ ३२३१२
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वँशमिव येमिरे ॥ १ ॥

(शतक्रतो) हे असंख्यात कर्मों और ज्ञानों से युक्त परमेश्वर ! (इव) जैसे (ब्रह्माणः) वेदों को पढ़कर उत्तम२ कर्म करने वाले मनुष्य, अपने (वंशम्) वंश को प्रशस्त-गणों से युक्त करके, (उद्येमिरे) उद्यमयुक्त करते हैं, वैसे ही (गायत्रिणः) प्रशंसा करने योग्य छन्द-राग आदि पढ़े हुए ईश्वरोपासक पुरुष, (त्व) आपकी (गायन्ति) सामवेदादि के गानों से प्रशंसा करते हैं, (अर्किणः) तथा जो वेदों के मंत्रों को पढ़ने के नित्य अभ्यासी हैं वे, सब मनुष्यों के द्वारा (अर्कम्) पूजने योग्य (त्वा) आपका (अर्चन्ति) नित्य पूजन करते हैं।

[महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदीय मंत्र के आधार पर अर्थ किया है।]

२३१ २ ३१२ ३१२
३४३—इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३१२ ३२३ १ २३ १२३१२
रथीतमँ रथीनां वाजानाँ सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥

वेदों की (विश्वाः) सब (गिरः) वाणियां (इन्द्रम्) परमेश्वर के गुणों का

(अवीवृधन्) बखान करती हैं, जो परमेश्वर कि (समुद्रव्यचसम्) समुद्रों और महाकाश में व्याप्त है, (रथीनाम्) रथियों में (रथीतमम्) महारथी है, जो (वाजानाम्) अन्नों-वलों-वेगों और ज्ञान का (पतिम्) पति है, जो (सत्पतिम्) सच्चा पति है।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
३४४—इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने॥ ३॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! आप (सुतम्) निष्पादित (इमम्) इस भक्ति-रस को (पिब) स्वीकार कीजिये। यह भक्ति-रस (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ रस है, यह मर्त्य को (अमर्त्यम्) अमर्त्य करता, और जीवन में (मदम्) हर्ष, उल्लास और तृप्ति पैदा करता है। (ऋतस्य) सच्चाई के इस (सादने) गृह में अर्थात् मेरे इस सत्यमय जीवन में, (शुक्रस्य) विशुद्ध भक्ति-रस की (धाराः) धाराएँ (त्वा अभि) आपके प्रति (अक्षरन्) बह निकली हैं।

१ २ ३२उ ३ १ २
३४५—यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्याऽऽ भर॥ ४॥

(चित्र) हे आश्चर्यस्वरूप! (अद्रिवः इन्द्र) हे पर्वतों और मेघों के स्वामी परमेश्वर! (इह) इस जीवन में (यत्) जो आपने (मे) मुझको (त्वादातम् नास्ति) नहीं दिया है (तत्) वह (राधः) आराधना-धन है। (विदद्वसो) हे सब धनों को प्राप्त परमेश्वर! (नः) हमें (तत्) वह (राधः) आराधना-धन (आ भर) दीजिये, इतना दीजिये जैसे कि कोई दानी (उभया हस्त्या) दोनों हाथों से भर कर दान देता है।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
३४६—श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि॥ ५॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (यः) जो उपासक (तिरश्च्याः) अन्तर्ध्यानी होकर भक्तिरस का चयन करता और इस भक्तिरस द्वारा (त्वा) आपकी (सपर्यति) परिचर्या करता है, इस (सुवीर्यस्य) ऊर्ध्वरेता (गोमतः) तथा इन्द्रिय-संयमी की (हवम्) पुकार को (श्रुधि) आप सुनिये, और उसे (रायः) आध्यात्मिक विभूतियों से (पूर्धि) भरपूर कर दीजिये, (महान् असि) आप महान् है।

[तिरश्च्याः=तिरः ((अन्तर्धौ)+चिञ् (चयने)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३४७—असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ ३ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियँ रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥६॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) आपके लिये, (सोमः) भक्तिरस (असावि) तैयार हो चुका है। (शविष्ठ) हे महाबली ! (धृष्णो) हे आसुरी भावों का पराभव करने वाले ! (आगहि) हृदय में प्रकट हूजिये। (त्वा) आपके साथ हमारी (इन्द्रियम्) मनरूपी-इन्द्रिय, योगविधि द्वारा, (आ) पूर्णरूप से (पृणक्तु) सम्पृक्त हो जाए सम्बद्ध हो जाए, (न) जैसे कि (सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) रश्मियों द्वारा (रजः) पृथिवी लोक के साथ सम्पृक्त हुआ२ है, सम्बद्ध हुआ२ है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
३४८—एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।
२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (हरिभिः) विषयों से हरण करने वाली ऋक्-और साम की स्तुतियो द्वारा आप (आ याहि) आइये, हृदय मे प्रकट हूजिये। (कण्वस्य) आपकी भक्ति के रसीले कणों तथा परापरा-विद्या के ज्ञान-कणों का जो उपासक उपार्जन करता है, उसकी (सुष्टुतिम्) उत्तम-स्तुति को आप (उप) समीप होकर सुनिये। (दिवावसो) हे परमेश्वर के प्रकाश के साथ रहने वाले उपासक ! (अमुष्य) उस (दिवः) प्रकाशमय द्युलोक का जो (शासतः) शासक है, उसके (दिवम्) प्रकाश की ओर तू (यय) जा।

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
३४९—आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे वेद वाणियों द्वारा सम्यक् भजने योग्य परमेश्वर ! हम में (सुतेषु) भक्तिरस उत्पन्न हुए २ हैं। हमारी (गिरः) स्तुति वाणियाँ (त्वा) आप के लिये (आ तस्थुः) उपस्थित हैं, आपकी प्रतीक्षा में हैं, (इव) जैसे कि (रथीः) रथ का स्वामी, रथ तैयार कर, किसी के आगमन की प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। हमारी (गावः) स्तुति-वाणियाँ (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (त्वा) आपको (समनूषत) सम्यक् स्तुतियां कर रही हैं (न) जैसे कि (धेनवः) दूध पिलाने वाली गोएँ अपने (वत्सम्) बछड़ों की ओर हम्भारती हैं।

[गावः=गौः वाक् (निघं. १।११)]

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
३५०—एतोन्विन्द्रँ स्तवाम शुद्धँ शुद्धेन साम्ना।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाँसँ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ ९ ॥

हे उपासको! (नु) शीघ्र (एत उ) आओ। हम मिल कर (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें। परमेश्वर (शुद्धम्) शुद्ध पवित्र है। (शुद्धेन) स्वर-ताल लय आदि की दृष्टि से विशुद्ध (साम्ना) सामगानों द्वारा हम परमेश्वर की स्तुतियाँ करें। (शुद्धैः) शुद्ध (उक्थैः) ऋचाओं के द्वारा हम शुद्ध पवित्र परमेश्वर की स्तुतियां करें। वह परमेश्वर शुद्ध सामगानों और शुद्ध ऋक्-पाठों द्वारा हमारी (वावृध्वांसम्) वृद्धि करता है। वह शुद्ध सामगानों और शुद्ध ऋक्-पाठों द्वारा (ममत्तु) प्रसन्न होता और (आशीर्वान्) आशीर्वाद देने को तैयार हो जाता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

३५१—यो रयिं वो रयिन्तमो वो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥

हे उपासको! (रयिन्तमः) समग्र सम्पत्तियों का (यः) जो स्वामी है वह (वः) तुम्हें योग-सम्पत्ति प्रदान करे, तथा (यः) जो (द्युम्नवत्तमः) यशों का यशस्पति है वह (द्युम्नैः) यशों द्वारा तुम्हें यशस्वी बनाए। हम में (सोमः) भक्ति-रस (सुतः) उत्पन्न हुआ हुआ है, (इन्द्र) हे परमेश्वर! (सः) वह (ते) आपके लिये (अस्ति) है। (स्वधापते) हे भक्तिरस-रूपी-अन्न के स्वामी! यह भक्ति-रस आपको (मदः) प्रसन्न करे।

[स्वधा=अन्नम् (निघं. २।७)]

॥ इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [स्व० ४। उ० ४ धा० ५४ ।।घी।।

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

दशति ७

(१-८) १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ वामदेवो गौतमः, शाकपूतो वाः; ३ प्रियमेध आङ्गिरसः; ४ प्रगाथः काण्वः; ५ श्यावाश्व आत्रेयः; ६ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; ८ जेता माधुच्छन्दसः ॥ इन्द्रः; ५ मरुतः; ७ दधिक्रा वा ॥ अनुष्टुप् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

३५२—प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥

(पिपीषते) तुम्हारी वृद्धि चाहने वाले तथा तुम्हारे भक्तिरस को पीने की इच्छा वाले (विदुषे) सर्वज्ञ, (अरङ्गमाय) गतिरहित होते हुए भी (जग्मये)

सर्वगत, (अपश्चात् अध्वने) शक्तिप्रदान के मार्ग में पीछे न हटने वाले (अस्मै) इस परमेश्वर के लिए, हे उपासक! तू (विश्वानि) अपने सर्वस्व को (भर) समर्पित कर दे। (नरः) और हे नर-नारियो! (प्रति) तुम में से भी प्रत्येक इस परमेश्वर के लिए अपने अपने सर्वस्व को समर्पित करे।

[पिपीषते=प्यायी वृद्धौ (प्यायः पी) तथा पा (पाने)। अरंगमाय=अलं गमाय।]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

३५३—आ नो वयो वयः शयं महान्तं गह्वरेष्ठां महान्तं पूर्विनेष्ठाम्।

३२उ ३ १२

उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

हे उपासक! (नः) हमारे (वयः वयः) प्रत्येक के जीवन में (शयम्) प्रसुप्त शक्ति के रूप में रमे हुए, (महान्तम्) महान्, (गह्वरेष्ठाम्) हृदय की गुहा में स्थित, (महान्तम्) सबसे महान्, और (पूर्विजेष्ठाम्) पूर्वकृत कर्मों के अधिष्ठाता परमेश्वर के प्रति, (आ भर) भक्ति की भेंट लाया कर (३५२)। हे उपासक! इस भेंट के लिए तू (उग्रं वचः) उग्र-वचनों का प्रयोग (अपावधीः) त्याग दे।

[मन्त्र में "आ" के साथ "भर" का अन्वय, मन्त्र ३५२ से होता है।]

१ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

३५४—आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रँ शविष्ठ सत्पतिम् ॥ ३ ॥

(यथा) जैसे व्यक्ति अपनी (ऊतये) रक्षा और (सुम्नाय) सुख के लिये, अपने (रथम्) शरीर-रथ को गतिमान् करता है, वैसे ही (शविष्ठ) हे बलिष्ठ परमेश्वर! हम उपासक जन, अपनी रक्षा और सुख के लिये (त्वा इन्द्रम्) आप परमेश्वर को (आ वर्तयामसि) अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं। आप (तुविकूर्मिम्) बहुत क्रियाशील हैं, (ऋतीषहम्) आर्तियों और कष्टों को पराभूत करते, और (सत्पतिम्) सच्चे पति हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

३५५—स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥

(सः) वह परमेश्वर (महोनाम्) संसार की महाशक्तियों में (पूर्व्यः) अनादिकाल की महाशक्ति है। वह उपासक की उपासना की (वेनः) कामना करता है। (क्रतुभिः) उपासक के यथार्थ ज्ञान, सत्कर्मों, तथा सत्संकल्पों द्वारा वह (आनजे) उपासक में प्रकट होता है। (यस्य द्वारा) जिस साक्षात्कारी उपासक के द्वारा वह (मनुः पिता) मेधावी तथा सर्व का पिता परमेश्वर, (देवेषु) उपासक देवों में (धियः) सद्बुद्धियां तथा सत्कर्म (आनजे) अभिव्यक्त कराता है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
३५६—यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
१ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवाँसि कृण्वते ॥ ५ ॥

सत्यज्ञान और सत्कर्म (यत् इ) जब ही (आशवः) तीव्रसंवेगी होकर (भ्राजमानाः) उपासकों में चमक उठते हैं, तब ये उपासकों के (रथेषु) शरीर-रूपी रथों में उस परमेश्वर का (आ वहन्ति) आवाहन करते हैं, तदनन्तर ये उपासक (मदिरम्) हर्षोत्पादक तथा (मधु) मधुर आनन्द रस का (पिबन्तः) पान करते हुए, (तत्र) उन अपने जीवनों में (श्रवांसि) यशस्वी-कर्मों को (कृण्वते) करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
३५७—त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वासाहं नरँ शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥ ६ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारे ज्ञान के लिए, मैं (त्यम् उ) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर का (गृणीषे) वर्णन करता हूं, कि जो परमेश्वर उपासक को (अप्रहणम्) मृत्यु के प्रहारों से बचाता है, (शवसः पतिम्) बलों का पति है, (विश्वासाहम्) सब विघ्न-बाधाओं को परास्त करता, तथा (नरम्) संसार का नायक है, (शचिष्ठम्) सत्य ज्ञानों और सत्कर्मों में स्थित है, (विश्ववेदसम्) विश्व-वेत्ता तथा समग्र-सम्पत्तियों का स्वामी है।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
३५८—दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुरभि नो मुखा करत्प्र न आयूँषि तारिषत् ॥ ७ ॥

(दधिक्राव्णः) जगद्धारक तथा जगत्कर्त्ता (जिष्णोः) सर्वविजयी, (अश्वस्य) सर्वव्यापक, तथा (वाजिनः) बलशाली परमेश्वर की (अकारिषम्) स्तुतियां मैंने की हैं। स्तुति-वचनों की सुगन्ध द्वारा परमेश्वर (नः) हमारे (मुखा) मुखों को (सुरभि करत्) सुरभित करता रहे, और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (प्रतारिषत्) बढ़ाए।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
३५९—पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥ ८ ॥

(इन्द्रः) वह परमेश्वर हृदय में (अजायत) प्रकट हुआ है। वह कर्मों के अनुसार प्राणियों के (पुराम्) शरीरों को (भिन्दुः) तोड़ता और रचता है। शक्ति की दृष्टि से (युवा) सदा युवा अर्थात् समर्थ है, (कविः) वेद-काव्यों का कवि है। (अमितौजाः) अपरिमित ओज वाला है। (विश्वस्य) विश्व का, तथा विश्व की

(कर्मणः धर्ता) विविध क्रियाओं का धारक है। (वज्री) वह न्याय-वज्र को धारण किए है, और (पुरुष्टुतः) महास्तुति वाला है।

[धर्ता=धारण करने वाला]

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [स्व० ५। उ० २। धा० ४५ ॥ पु ॥]

दशति ८

१२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
३६०—प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे।
३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हें (त्रिष्टुभम्) तीन प्रकार से थामने वाली अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक, तथा आधिभौतिक दृष्टि से थामने वाली (इषम्) अपनी अभिलाषाओं को, (वन्दद्वीराय) धर्मवीरों द्वारा वन्दित, तथा (इन्दवे) चन्द्र समान आह्लादकारी परमेश्वर के प्रति, (प्र प्र) पूर्णतया समर्पित कर दो। (मेधसातये) पूर्ण समर्पण रूपी यज्ञ की सफलता के लिए परमेश्वर, (पुरन्ध्या धिया) शरीर-पुरों का धारण-पोषण करने वाली प्रज्ञा के प्रदान द्वारा, (वः) तुम्हें (विवासति) इन शरीरों में वास के योग्य करता है।

३ १२ ३ २ ३ २ ३ २ ३२ ३ १ २
३६१—कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति।
२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥

(स्वर्विदः) स्वर्गीय-आनन्द को प्राप्त हुए (धीराः) ध्यानी-उपासक, (निचाय्य) पूर्ण रूप से निश्चय करके, (यौ) जिन "दो तत्त्वों" के सम्बन्ध में (इति) यह (आहुः) कहते हैं कि—"ये दो तत्त्व" (कश्यपस्य) सर्वद्रष्टा परमेश्वर के (सयुजौ) सदा संगी हैं, तथा (ययोः) जिन "दो तत्त्वों" के आश्रय यह (विश्वम् अपि) विश्व भी स्थित है—वे दो तत्त्व हैं (व्रतं यज्ञम्) "व्रत और यज्ञ" अर्थात् व्रतनिष्ठ होना, तथा यज्ञ-भावना का होना।

[कश्यपस्य=पश्यतीति कश्यपः। "कश्यपः पश्यको भवति, यत् सर्वं परिपश्यति' (तै. आ. १।८।८)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३६२—अर्चता प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत।
१ २ ३ २ ३२उ ३ २ ३क २र
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥

(नरः) हे उपासना-यज्ञ के नायको ! तुम परमेश्वर की (अर्चत) अर्चना किया करो, (प्र अर्चत) भक्ति-पूर्वक अर्चना किया करो। (प्रियमेधासः, हे उपासना-यज्ञ के प्रेमियो ! परमेश्वर की (अर्चत) अर्चना किया करो। (उत) और

तुम्हारे (पुत्रकाः) छोटे पुत्र भी परमेश्वर की (अर्चन्तु) अर्चना किया करें। (इत्) जैसे तुम अपनी (पुरम्) देह की अर्चना किया करते हो वैसे ही तुम (धृष्णु) पापों को पराभूत करने वाले परमेश्वर की (अर्चत) अर्चना किया करो।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
३६३—उक्थमिन्द्राय शँस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे।
३ १ २र ३ १ २ ३१२ ३ १ २
शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत्सख्येषु च ॥ ४॥

(पुरुनिःषिधे) हे उपासको! पापों को पूर्णरूप से हटाने के लिये, (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति, (उक्थम्) वैदिक-सूक्त (शंस्यम्) उच्चारण करने चाहियें। (यथा) ताकि (शक्रः) शक्तिशाली परमेश्वर (नः) हमारे (सुतेषु) पुत्रों में, (च) और हमारे (सख्येषु) सखाओं में (रारणत्) विशेष प्रेरणाएँ देवें। ये वैदिक-सूक्त हम सबकी (वर्धनम्) वृद्धि के लिये हैं।

[रारणत्=रण् गतौ, तथा रण् [शब्दे]

३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
३६४—विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः।
१२ ३ २ ३ १ २३ १ २
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५॥

मैं उपासक (ऊती) अपनी रक्षा के लिए, अपने (एवैः) आचरणों और व्यवहारों द्वारा, परमेश्वर का (हुवे) आह्वान करता हूं, जो कि (विश्वानरस्य) सब नर-नारियों का (पतिम्) रक्षक है, (अनानतस्य) न झुकने वाले (शवसः) बल का पति है, (च) और (चर्षणीनाम्) सभी मनुष्यों का पति है, तथा हमारे (रथानाम्) शरीर-रथों का पति है। हे उपासको! (वः) तुम्हारी रक्षा के लिये भी मैं उसका आह्वान करता हूं।

[एवैः=अयनैः (निरु० १२।३।२३); इण् गतौ।]

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
३६५—स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः।
३ १ २र३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अँहो न तरति ॥ ६॥

हे उपासक! (सः) वह परमेश्वर (घ) ही सच्चा पति है (यः) जो कि (धिया) ज्ञान और कर्म की शिक्षा द्वारा (ते) तेरा (नरः) नेता अर्थात् मार्ग-दर्शक बना है। वह परमेश्वर (मर्तस्य) उस उपासक का नेता बनता है कि जो उपासक आध्यात्मिक (दिवः) प्रकाश-सम्पन्न है तथा (शमतः) शान्त-स्वरूप है। (बृहतः) महान् तथा (दिवः) प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर की (ऊती) रक्षा पाकर (सः) वह उपासक, उपासना-मार्ग के (द्विषः) विघ्न-बाधा रूपी शत्रुओं के नद को (तरति) तर जाता है, (न) जैसे कि वह (अंहः) पाप रूपी नद को तर जाता है।

३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
३६६—विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नँ सुदत्र मँहय ॥ ७ ॥

(शतक्रतो) हे असंख्यात कर्मों तथा प्रज्ञाओं वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! (विभोः) सर्वत्र फैले हुए (ते) आपके (राधसः) धन-सम्पत् का (रातिः) दान भी (विभ्वी) सर्वत्र फैला हुआ है। (अथा) इसलिये हे (विश्वचर्षणे) विश्व-द्रष्टा ! (सुदत्र) तथा हे उत्तम दानी ! और उत्तम पालक ! (नः) हमें (द्युम्नम्) यशस्वी ऐश्वर्य (मंहय) प्रदान कीजिये ।

[सुदत्र=सु+दा+त्र ।

१२ ३ १ २ २ १ २र
३६७—वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

(अर्जुनि) हे धर्मोपार्जन में प्रेरणा देने वाली तथा शुभ्र प्रकाशमयी (उषः) उषा ! जब तू (दिवः) द्युलोक के (अन्तेभ्यः) प्रान्त-भागों से आकर, (परि) चारों ओर फैलती है, तदनन्तर (ऋतून् अनु) ऋतु अनुसार, (ते) वे (वयः) उड़ने वाले (पतत्रिणः) पक्षी (चित्) और (द्विपात् चतुष्पात्) दुपाए तथा चौपाए (प्रारन्) अपने अपने कर्मों को प्रारम्भ करते हैं ।

[इस मंत्र में उपासक, उषा की चमक में, परमेश्वर की विभूति को अनुभव कर रहा है। प्रारन्=प्र+ऋ (अर्) गतौ ।]

३ १ २र २ २ ३ २ ३ १ २ ३र ३ २
३६८—अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १२
कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥

(देवाः) हे चमकीले तारागणो ! (अमी) यह जो तुम (दिवः) द्युलोक के (आ) सर्वत्र (रोचने) चमकीले आकाश में, (मध्ये) मध्य मध्य में, (स्थन) विद्यमान हो, बताओ ! कि वह (कत्) कौन सी शक्ति है जो कि (वः) तुम में (ऋतम्) नियामक-रूप में कार्य कर रही है ! वह (कत्) कौन सी (अमृतम्) अमर-शक्ति है जो कि तुम्हें अमर सा बना रही है ! तथा यह भी बताओ कि वह (का) कौन सी (प्रत्ना) पुरातन शक्ति है जिसके प्रति (वः) तुम्हारी (आहुतिः) आत्माहुति हुई हुई है ?

[उपासक जब रात्रि में द्युलोक की ओर दृष्टि फैलाता है तब वह चमकते नक्षत्रों में, परमेश्वर की विभूति का भान पाकर, इस प्रकार के स्वाभविक प्रश्न करता है ।]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
३६९—ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
१ २र ३ २ ३१२
वि ते सदसि राजंसो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥ १० ॥

हम उपासक (ऋचम्) ऋग्वेद और (साम) सामवेद का (यजामहे) स्वाध्याय-यज्ञ करते हैं, (याभ्याम्) जिस ऋग्वेद और सामवेद द्वारा विद्वान् लोग अपने (कर्माणि) कर्त्तव्य कर्मों का (कृण्वते) अनुष्ठान करते हैं। (ते) वे ऋग्वेद और सामवेद (सदसि) सभाओं और ज्ञान-गोष्ठियों में (राजतः) शोभायमान होते हैं, और (देवेषु) विद्वानों में (यज्ञम) याज्ञिक-कर्मों को (वक्षतः) प्रवाहित करते हैं।

[मंत्र में यह दर्शाया है कि मंत्र ३६८ के प्रश्नों के उत्तर के लिये वेदों का स्वाध्याय करो।]

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ इत्यनुष्टुभः ॥

[स्व० ७ । उ० ३ । धा० ५४ । जी ॥]

दशति ९

(१—११) १ रेभः काश्यपः; २ सुवेदाः शैलूषिः; ३ वामदेवो गौतमः; ४, ७, ८ सव्य आङ्गिरसः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ कृष्ण आङ्गिरसः; ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १० मेधातिथिः काण्वः (ऋ० मान्धाता यौवनाश्वः); ११ कुत्स आङ्गिरस; ॥ इन्द्रः; ९ द्यावापृथिवी ॥ जगती; १ अति जगती; १० महापङ्क्तिः ॥

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३७०—विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च
३ १ २
राजसे ।
२ ३ १२ २ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरस तरस्विनम् ॥१॥

(नरः) उपासना-पद्धति के नेता लोग, अपने (सजूः) साथी (इन्द्रम्) परमेश्वर को, प्रथम तो (ततक्षुः) आभासिक प्रतीति के रूप में प्रकटित करते हैं, (च) और फिर (जजनुः) प्रत्यक्ष-प्रतीति के रूप में (राजसे) विराजमान होने के लिए, प्रकटित करते हैं। उस परमेश्वर को प्रकटित करते हैं जो कि (विश्वाः पृतनाः) काम-क्रोधादि की सब सेनाओं को (अभिभूतरम्) परास्त कर देता, और अपने इस (क्रत्वे) काम के लिये (वरे स्थेमनि) श्रेष्ठ स्थान हृदय में स्थित रहता है, तथा जो कि कामादि को (आ मुरीम्) पूर्ण रूप में मार डालता, (उग्रम्) और उग्र है, (ओजिष्ठम्) अत्यन्त ओज वाला, (तरस्विनम्) बल वाला, तथा (तरसम्) बल-स्वरूप है।

१ २ ३ १२ ३ २उ ३ २रउ ३ १ २ ३ २ ३ २
३७१—श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः ।
३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ २ १
उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते शुष्मात्पृथिवी
२
चिदद्रिवः ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! काम-क्रोधादि पर जब आपका (प्रथमाय) प्रथम (मन्यवे) प्रकोप गिरता है, तब मैं (ते) आपके इस प्रथम प्रकोप के प्रति (श्रत्) श्रद्धामयी भावना को (दधामि) हृदय में धारण करता हूं, तथा तब भी श्रद्धामयी भावना को धारण करता हूं जबकि (नर्यम्) नर-नारी में वसने वाले काम क्रोधादि रूपी (दस्युम्) दस्यु का आप (अहन्) हनन कर देते हैं, और उपासक के प्रति नया (अपः) कर्म-मार्ग (विवेः) खोल देते हैं। (अद्रिवः) हे पापों को खा जाने वाली शक्तियों के स्वामी ! (ते) आपके (शुष्मात्) बल से (भ्यसात्) भयभीत होकर (उभे) दोनों (रोदसी) भूलोक और द्युलोक (त्वा अनु) आपकी आज्ञा के अनुसार (धावताम्) दौड़ रहे हैं, और (पृथिवी चित्) पृथिवी भी आपके बल से भयभीत होकर सूर्य के चारों ओर दौड़ लगा रही है।

[अद्रिः=अत्तेर्वा स्यात् (निरु. ४।१।४)]

३ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ २ २र ३ १ २
३७२—समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥ ३ ॥

(विश्वाः) हे सब उपासक प्रजाओ ! (यः) जो परमेश्वर अपने (ओजसा) ओज के कारण (दिवः) द्युलोक का (पतिम्) पति है, उसे तुम (समेत) सम्मिलित उपासना द्वारा प्राप्त होओ। उस परमेश्व को प्राप्त होओ (यः) जो कि (एक इत्) एक होता हुआ भी (जनानाम्) भिन्न भिन्न उपासकों के हृदय-गृहों का एक ही समय में (अतिथिः) अतिथि (भूः) बनगी है। (सः) वह (पूर्व्यः) पूर्व काल से विद्यमान सनातन परमेश्वर, (आजिगीषन्तम्) कामादि पर विजय चाहने वाले (नूतनम्) नवीन उपासक को भी, (वर्तनीः अनु) नवजीवन के नये मार्ग पर (वावृते) प्रवृत्त कर देता है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
३७३—इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो
१ २
वचः ॥ ४ ॥

(पुरुष्टुत) हे विविध नामों द्वारा स्तुति पाए हुए (इन्द्र) परमेश्वर ! (इमे) ये (वयम्) हम (ते) आपके हैं, (ते) आपके ही है। (प्रभूवसो) हे प्रभूत सम्पत्ति-

शाली ! हम वे हैं, (ये) जो कि (त्वा) आपका (आरभ्य) अवलम्ब लेकर (चरामसि) विचरते हैं। (गिर्वणः) हे वेद-वाणियों द्वारा सम्यक् भजने योग्य ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न कोई भी शक्ति (गिरः) वेद-वाणियों का (न हि सघत्) मुख्य विषय नहीं है। वेद-वाणियों द्वारा किये गए (नः) हमारे (तत् वचः) स्तुति-वचनों को आप (हर्य) चाहना पूर्वक अपनाइये, जैसे कि आप (क्षोणीः) नाना भूमियों और लोक-लोकान्तरों को चाहना पूर्वक अपना रहे हैं।

[सघत्=षगे (संवरणे) ?] संवरण=Covering; या सम्यक् वरण करना, वरना।

[आरभ्य=आलभ्य।]

३ १२ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३क २र

३७४—चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।

३ १ २ ३ १ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वावृधानं पुरुहूतँ सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ ५ ॥

(बृहतीः गिरः) वेद की सर्वोत्कृष्ट वाणियां (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अभि) साक्षात् (अनूषत) स्तुतियाँ कर रही हैं, जो परमेश्वर (चर्षणीधृतम्) समग्र प्रजा का धारण-पोषण करता, (मघवानम्) ऐश्वर्यशाली, (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वावृधानम्) सदा बढ़ाने वाला तथा गुणों में बढ़ा-चढ़ा है। (सुवृक्तिभिः पुरुहूतम्) दोषवर्जित वेदवाणियों द्वारा जिसका नाना नामों द्वारा आह्वान होता, (अमर्त्यम्) जो मर्त्य का चोला धारण नहीं करता, और अमर है, और (दिवे दिवे) प्रतिदिन (जरमाणम्) जिसकी स्तुतियाँ गाई जाती हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १२

३७५—अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३१२

परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ ६ ॥

हे उपासको (वः विश्वाः मतयः) तुम सबकी मतियां, जो कि (स्वर्युवः) स्वर्गीय-जीवन चाहती हैं, (सध्रीचीः) जिनका एकमात्र लक्ष्य परमेश्वर है, (उशतीः) जो परमेश्वर-प्राप्ति की कामना वाली हैं,—वे तुम्हारी मतियां, (ऊतये) रक्षा के लिये, (अच्छ) प्रत्यक्ष रूप में, (इन्द्रम्) परमेश्वर की ही (अनूषत) स्तुतियाँ किया करें, (न) जैसे कि गरीब प्रजाजन, (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये, (मघवानं मर्त्यम्) धनवान् मनुष्य की स्तुति-प्रशंसा करते हैं। तथा (यथा) जैसे (जनयः) पत्नियाँ अपने (शुन्ध्युम्) शुद्धाचारी (पतिम्) पति का (परिष्वजन्त) आलिंगन करती हैं, वैसे तुम परमेश्वर का ही आलिंगन किया करो।

[अभिप्राय यह है कि पति-पत्नी में जैसे पारस्परिक प्रेम और निकटता होती है, तथा धनवान् से धन-प्राप्ति के लिये, प्रार्थी में, धनवान् के प्रति जितनी नम्रता होती है, वैसा प्रेम और वैसी निकटता तथा नम्र भाव उपासक में परमेश्वर के प्रति होना चाहिये।]

३२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

३७६—अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र

यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मँहिष्ठमभि विप्रमर्चत

॥ ७ ॥

हे उपासको ! (त्यम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर के (अभि) अभिमुख होकर तुम उसे (गीर्भिः) स्तुति-वाणियों द्वारा (मदत) प्रसन्न किया करो। (मेषम्) जो परमेश्वर आनन्दरस-वर्षी है, (पुरूहूतम्) नाना नामों द्वारा जिसका आह्वान किया जाता है, (ऋग्मियम्) ऋचाओं का जो निर्माण करने वाला तथा ऋचाओं में जो रमा हुआ है, (वस्वः अर्णवम्) जो सम्पत्तियों का सागर है, (द्यावः) सूर्य की किरणों के (न) सदृश (यस्य) जिसकी (वस्वः) सम्पत्तियां (भुजे) सबके पालन और खानपान के लिये, मनुष्य समुदाय में, (विचरन्ति) विचर रही हैं, उस (मंहिष्ठम्) महादानी और (विप्रम्) परिपूर्ण प्रभु को तुम (अभि) साक्षात् (अर्चत) अर्चना किया करो। [विप्रम्=वि+प्रा (पूरणे)। मेषम=मिषु सेचने]

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १२ ३१ २र

३७७—त्यँ सु मेषं महया स्वर्विदँ शतं यस्य सुभुवः साकमीरते।
२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २

अत्यं न वाजँ हवनस्यदँ रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः

॥ ८ ॥

(मेषम्) आनन्दरस वर्षी (स्वर्विदम्) चमकीले द्युलोक में भी विद्यमान, तथा (शतम्, सैंकड़ों (सुभुवः) उत्तमोत्तम लोकलोकान्तर (यस्य साकम्) जिसके सहारे (ईरते) गति कर रहे हैं—(त्यम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर की हे उपासक ! तू (सुमहय) उत्तम महिमा गाया कर। मैं उपासक (अवसे) रक्षा के लिये, (सुवृक्तिभिः) दोष वर्जित वैदिक-स्तुतियों द्वारा (इन्द्रम्) परमेश्वर को (आववृत्याम्) अपनी ओर प्रवृत्त करता हूँ, झुकाता हूं, (न) जैसे कि (वाजम्) शक्तिशाली और (अत्यम्) वेगवान् अश्व को, तथा (हवनस्यदम्) बुलाने पर शीघ्र आ जाने वाले (रथम्) रथ को, रथ-का-स्वामी अपनी ओर बुला लेता है।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २

३७८—घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा

॥ ९ ॥

(घृतवती) प्रकाश वाले तथा घी आदि भोग्य वस्तुओं से भरपूर, (भुवनानाम्)

उत्पन्न पदार्थों के (अभिश्रिया) आश्रयभूत, (उर्वी) सबके आच्छादक, और (पृथ्वी) परिमाण में विस्तृत, (मधुदुघे) मधुर अर्थात् रसीले पदार्थों के दाता, (सुपेशसा) उत्तम तथा सुन्दर रूपों वाले, (अजरे) जरारहित, तथा (भूरिरेतस) बड़ी-शक्ति वाले, (द्यावापृथिवी) द्युलोक-और-पृथिवी लोक,—(वरुणस्य) श्रेष्ठ तथा वरण करने योग्य परमेश्वर की (धर्मणा) धारण-शक्ति द्वारा, (विष्कभिते) थामे हुए हैं।

[घृतवती=घृत (घृ दीप्तौ)]

३१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
३७९—उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनाँ सम्राजं चर्षणीनाम्।
३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥ १०॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (यद्) जो आप (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक-और-भूलोक में (आ) सब ओर (पप्राथ) भरपूर हो रहे हैं, (इव) जैसे कि (उषाः) उषा इनमें भरपूर हो जाती है, इसलिये आप (महीनाम्) महा-शक्तियों में (महान्तम्) सर्वोपरि महाशक्ति हैं, (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (सम्राजम्) सम्राट् हैं। (देवी) दिव्यगुणों वाली भक्तिमयी सात्विक-चित्तवृत्ति आपकी (जनित्री) जननी है, (त्वा) जो कि आपको (अजीजनत्) जन्म देती है, प्रकट करती है। (भद्रा) कल्याण करने वाली और सुख देने वाली भक्तिमयी सात्विक-चित्तवृत्ति आपकी (जनित्री) जननी है, (अजीजनत्) जो कि आपको जन्म देती है, प्रकट करती है।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३८०—प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तँ सख्याय हुवेमहि॥ ११॥

हे उपासको! (मन्दिने) तुम परमानन्द-स्वरूप-परमेश्वर के प्रति (प्र अर्चत) अर्चना में (वचः) स्तुति वचन भेंट किया करो, (पितुमत्) साथ ही अन्न आदि भोग्य पदार्थों का भी दान उसके नाम पर किया करो। (यः) जो परमेश्वर कि (ऋजिश्वना) ऋजुमार्ग अर्थात् सत्य-के-मार्ग द्वारा हममें व्याप्त होकर, (कृष्णगर्भाः) कृष्णवर्णी काम-क्रोध आदि भावों-और-कर्मों की जन्मदायिनी कृष्ण-चित्तवृत्तियों का (निरहन्) पूर्ण-हनन कर देता है। (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले हम उपासक, परमेश्वर के साथ (सख्याय) मैत्रीभाव में रहने के लिये, उस परमेश्वर का (हुवेमहि) आह्वान करते हैं, जो परमेश्वर कि (वृषणम्) सुखों की और सुख-दायी पदार्थों की वर्षा करता है, और जो (वज्रदक्षिणम्) आसुरी भावनाओं और कर्मों पर वज्र चलाने में दक्ष है, तथा (मरुत्वन्तम्) उपासकों का एकमात्र स्वामी है।

[मरुतः=ऋत्विजः अर्थात् उपासना-यज्ञों के रचयिता उपासक (निघं. ३।१८)]

इति नवम दशतिः ॥ ९ ॥ तृतीयः खण्ड ॥ ३ ॥ [स्व० १४ । उ० ७ । धा० ९३ । वि ॥]

॥ इति जगत्यः ॥

दशति १०

(१—१०) १ नारदः काण्वः; २, ३, गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; ४ पर्वतः काण्वः; ५—७, १० विश्वमना वैयश्वः; ८ नृमेध आङ्गिरसः; ९ गोतमो राहूगणः ॥ इन्द्रः ॥ उष्णिक् ॥

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३क २र
३८१—इन्द्रं सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सोमेषु) भक्तिरसों के (सुतेषु) उत्पन्न होने पर आप हमारे (क्रतुम्) ज्ञानों संकल्पों और कर्मों को (पुनीषे) ऐसा पवित्र कर देते हैं, जैसे कि उनके स्वरूप (उक्थ्यम्) वैदिक-सूक्तों में कहे गए हैं। इनके पवित्र हो जाने पर मैं (वृधस्य) बढ़े हुए (दक्षस्य) बल को (विदे) प्राप्त करता हूँ। (सः) वह परमेश्वर (हि) निश्चय से (महान्) महान् है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
३८२—तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रं गीर्भिस्तवीषमा विवासत ॥ २ ॥

(तम् उ) उस ही (इन्द्रम्) परमेश्वर का (अभि) प्रत्यक्षरूप में तुम (प्रगायत) खूब गान किया करो, जो कि (पुरुहूतम्) बहुत नामों द्वारा पुकारा गया है, तथा जिसकी वेदों में (पुरुष्टुतम्) बहुत स्तुति की गई है। (गीर्भिः) वेद-वाणियों द्वारा उसकी स्तुति किया करो, तथा उस (तविषम्) बलस्वरूप और महान् की (आ विवासत) परिचर्या किया करो।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
३८३—तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
२ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥

(अद्रिवः) हे अविदीर्ण अर्थात् अनश्वर शक्तियों के स्वामी ! हम (ते) आपके (तं मद्रम्) उस अर्चनीय स्वरूप के (गृणीमसि) गान गाते हैं, जो अर्चनीय

स्वरूप कि (वृषणम्) सब पर सुखों की वर्षा करता, (पृक्षु) हमारे साथ संपृक्त हुए कामक्रोध आदि का (सासहिम्) पराभव करता, (उ) और (लोककृत्नुम्) लोक-लोकान्तरों की रचना करता, तथा (हरिश्रियम्) प्रत्याहार सम्पन्न उपासक का आश्रय बनता है। [मदम् मदति अर्चतिकर्मा (निघं. ३।१४)]

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
३८४—यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (विष्णवि) सूर्य में (यत्) जो (सोमम्) भक्तिरस है उसका आप (मन्दसे) आनन्द लेते हैं। (त्रिते) तीसरे लोक अर्थात् द्युलोक में (यत्) जो भक्तिरस है उसका आप (मन्दसे) आनन्द लेते हैं, (वा) तथा (आप्त्ये) जल-वाले लोक अर्थात् पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक में (यत्) जो भक्तिरस है उसका आप (मन्दसे) आनन्द लेते हैं। (मरुत्सु) वायुओं और मानसूनों में (यद् वा) जो भक्तिरस है उसका आप (मन्दसे) आनन्द लेते हैं। इस तरह आनन्द लेते हैं जैसे कि (इन्दुभिः) चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्नाओं द्वारा प्रजाजन आनन्द लेते हैं।

[इस मन्त्र में यह दर्शाया है कि सभी संसार आपके प्रति आत्म-समर्पण किए हुए है। संसार के एक एक पदार्थ में मानो भक्तिरस उमड़ रहा है ! यथाः— "तस्याम् : सर्वे यातवः उप प्रशिषमासते (अथर्व. १३।३।४।२७) अर्थात् ब्रह्माण्ड के सभी गतिमान् पिण्ड उस परमेश्वर के उत्तम शासन की उपासना कर रहे हैं, अर्थात् अपने आपको उसके प्रति समर्पित कर रहे हैं। तथा "यस्य विश्व उपासते प्रशिषम् (यजुः २५।१३); अर्थात् संसार के सभी पदार्थ जिस के प्रशासन की उपासना करते हैं]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २
३८५—एदु मधोर्मदिन्तरँ सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
३२उ ३ १ २र ३ १ २
एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥

(अध्वर्यो) हे हिंसारहित उपासना-यज्ञ के नेता उसासक ! तू उपासना में (अन्धसः) अन्नमय शरीर से उत्पन्न, (मधोः) तथा मधु से भी (मदिन्तरम्) अधिक प्रसन्नतादायक, भक्तिरस को, (इत् उ) अवश्य (आ सिञ्च) परमेश्वर पर न्यौछावर कर। (एव हि) इस विधि से ही (वीरः) प्रेरक परमेश्वर (स्तवते) उपासक को जीवन मार्ग का उपदेश देता है, और (सदावृधः) उपासक की सदा वृद्धि करता है।

[वीरः=वि+ईर् (गतौ)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
३८६—एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१ २र ३ २
प्र राधाँसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥

हे उपासको ! (इन्दुम्) चन्द्रसम शान्ति देने वाले भक्तिरस को (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति (आ सिञ्चत) तुम समर्पित किया करो। परमेश्वर (मधु) मधुर (सोम्यम्) भक्तिरस को (पिबाति) स्वीकार करता है। तदनन्तर वह अपनी (महित्वना) महिमा के द्वारा, उपासकों को (राधांसि) आध्यात्मिक सम्पत्तियाँ (प्रचोदयते) प्रदान करता है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
३८७—एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
३ १ २र ३ २उ ३ २
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ ७ ॥

(सखायः) हे मैत्री-भावना वाले उपासको ! (एत उ) आओ, (नु) ताकि हम मिलकर (स्तोम्यम्) स्तुतियोग्य तथा (नरम्) संसार के नेता (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें, (यः) जो परमेश्वर (एकः) एक है, और (एक इत्) अकेला ही (विश्वाः) सब ([1] कृष्टीः) उपासकों के प्रति (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (अस्ति) प्रकट होता रहता है। [कृष्टयः=मनुष्य (निघं. २।३)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
३८८—इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
३ १२ ३१ २ ३१२
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥

हे उपासको ! (विप्राय) विशेष रूप में सर्वत्र परिपूर्ण (बृहते) सबसे बड़े (ब्रह्मकृते) संसार-और-वेदों के कर्त्ता, (विपश्चिते) मेधावी, तथा (पनस्यवे) स्तुति चाहने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये, (बृहत् साम) महा-सामगान (गायत) मिलकर गाया करो !

[विप्राय=वि+प्रा (पूरणे)। ब्रह्म=वेद और प्रकृति।]

२उ ३ २ ३ १२३ २ ३ १ २ ३ १ २
३८९—य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

(यः) जो (एक इत्) अकेला (दाशुषे) आत्मसमर्पक (मर्ताय) उपासक के प्रति (वसु) आध्यात्मिक-विभूतियों का (विदयते) विशेष रूप में दान करता है (अङ्ग) हे प्रिय उपासक ! वह (इन्द्रः) परमेश्वर है। वह (ईशानः) जगत् का अधीश्वर है। वह (अप्रतिष्कुतः) कहीं से भी प्रतिरोध या रुकावट अनुभव नहीं करता।

---

(१) कृष्टीः=जीवनों में कर्मबीजों को बोने वाले मनुष्य।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
३९०—सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १० ॥

(सखायः) हे सर्वभूत-मैत्री की भावना वाले उपासको ! (वज्रिणे) न्यायवज्रधारी, (नृतमाय) सब संसार के सर्वोत्तम नेता, (धृष्णवे) आसुरी भावों का पराभव करने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति, हम सब मिल कर (ब्रह्म) ब्रह्म-प्रतिपादक वेदमन्त्रों का (आ शिषामहे) उच्चारण और गान करते हैं । हे उपासको ! (वः) तुम्हारे कल्याण के लिये मैं (ऊ) भी, तुम्हारा शिक्षा-गुरु, परमेश्वर की (सु स्तुषे) स्तुतियाँ उत्तम प्रकार से करता हूँ ।

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [स्व० १० । उ० ४ । धा० ६२ । खा ॥] इति चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, चतुर्थः प्रपाठकश्च समाप्त ॥

चतुर्थ प्रपाठक का द्वितीय अर्धप्रपाठक समाप्त । चतुर्थ प्रपाठक समाप्त ।
अथ पंचमः प्रपाठकः ।

दशति १

(१—८) १ प्रगाथो घौरः काण्वः; २ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ नृमेध आङ्गिरसः; ४ पर्वतः काण्व; ५, ७ इरिम्बिठिः काण्वः; ६ विश्वमना वैयश्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः; ५, ७, आदित्यः; ॥ उष्णिक् ८ विराडुष्णिक् ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
३९१—गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
१ २र ३ १ २र
यद्धँ सि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) आपके (तत्) उस (शवः) बल की मैं (गृणे) स्तुति करता हूँ, जो बल कि सबके लिये (उपमाम्) उपमारूप है । मैं इसलिए आपके बल की स्तुति करता हूँ ताकि (देवतातये) दिव्य-गुणों और दिव्य भावनाओं का मुझमें तथा सर्वत्र विस्तार हो सके । (शचीपते) के प्रज्ञा-वाणी-और शक्ति के पति ! (यत्) चूंकि आप अपने (ओजसा) ओज द्वारा (वृत्रम्) पापवृत्र का (हंसि) हनन करते हैं, इसलिये मैं आपकी स्तुति करता हूँ ।

२ ३ १ २र३ २ ३ १ २ ३ १ २
३९२—यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
३ १ २र ३ १ २र
अयँ स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (दिवोदासाय) आपका "दिव्य" प्रकाश पाने के हेतु जो उपासक आपका "दास' बन चुका है, उस उपासक के उपकार के लिये, उस

उपासक के उपकार के लिये (यस्य) जिस के कि भक्तिरस की (मदे) प्रसन्नता में आकर, आप (त्यत्) उस प्रसिद्ध (शम्बरम्) शान्ति-का-आवरण करने वाले पाप-वृत्र की (रन्धयन्) हिंसा करते हैं। (अयंसः) यह वह (सोमः) भक्तिरस (ते) आपके लिये (सुतः) निष्पादित हो चुका है, (पिब) इसे स्वीकार कीजिये।

[शम्बरम्=शम् (शान्ति)+वरम् (वरम् आवरकम्)]

१ २ ३ १ २
३९३—एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः॥ ३॥

(प्रिय) हे प्रिय! (सत्राजित्) हे सत्य पर विजय पाए हुए! (अगोह्य) हे न छिप सकने वाले (इन्द्र) परमेश्वर! आप (नः) हमें (आ गधि) प्राप्त हूजिये। आप (गिरिः) पर्वत की (न) भांति दृढ़, अचल, तथा (विश्वत) सब और (पृथुः) महा-विस्तार वाले हैं और (दिवः) द्युलोक के (पतिः) पति हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३९४—य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति।
२ ३ २ ३ २रऽ २ ३ १ २
येना हँ्सि न्या३त्रिणं तमीमहे॥ ४॥

(शविष्ठ) हे अतिशय बलशाली (इन्द्र) परमेश्वर! आप (सोपातमः) भक्तिरस के अत्यन्त इच्छुक हैं। भक्तिरस के स्वीकार कर लेने पर आपमें (यः) जो (मदः) प्रसन्नता होती है, वह प्रसन्नता आपको हमारे प्रति (चेति) सचेत बना देती है, जिससे कि आप (अत्रिणम्) "हमें खा जाने वाले हमारे पापों" का (निहंसि) पूर्ण-हनन कर देते हैं, (तम्) आपकी उस प्रसन्नता को (ईमहे) हम चाहते हैं।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३९५—तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे।
१ २ ३ १ २
आदित्यासः समहसः कृणोतन॥ ५॥

(समहसः) हे तेजस्वी (आदित्यासः) आदित्य-कोटि के विद्वानो! आप कृपा-पूर्वक, (नः) हमारे (तुचे) पुत्रों और (तुनाय) पौत्रों के लिये, (तत् सु) वह सदुपदेश (कृणोतन) दीजिये, जिससे (जीवसे) जीने के लिये उन्हें (द्राघीयः आयुः) दीर्घ आयु प्राप्त हो सके।

[आदित्य ब्रह्मचारियों की आयु ३८० वर्षों तक सम्भव है। इतनी आयु की यहां सम्भावना की गई है!]

२ ३ १ २र ३ १ २ २ १ २
३६६—वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

(वज्रहस्त) आसुरी-भावनाओं पर वज्रपात करने वाले हे परमेश्वर ! (निर्ऋतीनाम्) कष्टदायी काम-क्रोध आदि का (परिवृजम्) परिहार करना (वेत्थ-हि) आप ही जानते हैं। (इव) जैसे (परिपदाम्) चारों ओर से आक्रमण करने वाले रोग कृमियों को, (शुन्ध्युः) शोधक सूर्य, (अहरहः) प्रतिदिन हटाकर, संसार को शुद्ध करता रहता है, वैसे आप उपासक की दुर्वासनाओं को हटाकर उसे दिन-प्रतिदिन शुद्ध करते रहते हैं।

[शुन्ध्युः=आदित्य (निरु० ४।२।१५)।]

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
३६७—अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ ७ ॥

हे आदित्य कोटि के विद्वानो ! (नः) हम से (अमीवाम्) रोग को (अप सेधत) दूर कीजिए, (स्रिधम्) हमारा शोषण करने वाली कमजोरियों और दुराचारों को (अप) दूर कीजिये, हमारी (दुर्मतिम्) दुर्मतियों को (अप) दूर कीजिये, (नः) हमें (अंहसः) पापों से (युयोतन) पृथक् कीजिये।

[स्रिधम्=स्रिवु शोषणे]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३६८—पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ पंचमः खण्डः ॥ इत्युष्णिहः ।

[स्व० ५ । उ० २ । धा० ५१ । फ ॥]

दशतिः २

(१—१०) सौभरिः काण्वः; ७, ८ नृमेध आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ३, ६ मरुतः ॥ ककुप् ॥

(हर्यश्व) हे सूर्य के सदृश प्रकाश देने वाले, तथा अग्नि के सदृश पाप-पुंजों को भस्म करने वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! (यं सोमम्) जिस भक्तिरस को (अद्रिः) पर्वतवत् स्थिर-चित्तवृत्ति वाले उपासक ने, (ते) आपके प्रति, भेंट के लिये (सुषाव) निष्पन्न किया है, उसे आप (पिब) स्वीकार कीजिये । वह भक्तिरस (त्वा) आपको (मन्दतु) प्रसादित करे । (सोतुः) अश्व को प्रेरणा देने वाले अश्वारोही की (बाहुभ्याम्) बाहुओं द्वारा; (न) जैसे (अर्वा) अश्व (सुयतः) ठीक वश में हो जाता है, वैसे आप उपासक की भक्ति द्वारा उपासक के (सुयतः) वशवर्ती हो जाते हैं ।

[हर्यश्व=हरिश्च असौ अश्वश्च तत्सम्बुद्धौ । हरिः=सूर्य (उणादि कोष; ४।११९), अश्वः=वह्निः ,(उणा. कोष; १।१५१), वैदिक पुस्तकालय, अजमेर ।]

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
३९९—अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (जनुषा) स्वभाव से ही (अभ्रातृव्यः) शत्रु-रहित हैं, अजातशत्रु हैं, तथा भ्राता आदि के सांसारिक सम्बन्धों से रहित हैं । आप का कोई (अना) नेता नहीं, आप मानुषाकृति के नहीं, आपका कोई (अनापिः) सांसारिक बन्धु नहीं । आप (सनात् असि) सनातन हैं । जब उपासक अपने आसुरी-भावों के साथ स्वयं युद्ध करता है तब इस (युधा) युद्ध के कारण (इत्) ही, उस उपासक के साथ आप (आपित्वम्) बन्धुत्व (इच्छसे) चाहते हैं ।

[अना=अ+नृ (नेता; मनुष्य)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २
४००—यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
१ २३ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥

हे उपासको ! (यः) जो परमेश्वर (नः) हम सबके लिये, (पुरा) अनादि काल से, (इदम् इदम्) अमुक अमुक उत्तमोत्तम (वस्यः) वस्तुएँ (प्र आनिनाय) लाता रहा है, (वः) तुम्हारे ज्ञान के लिये (तम्) उस परमेश्वर का मैं (स्तुषे) कथन करता हूँ । (सखायः) हे सर्वभूतमैत्री की भावनाओं वाले उपासको ! तुम्हारी (ऊतये) रक्षा के लिये मैं उस (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ।

१ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४०१—आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।
३ १ २
दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥

हे प्रजाजनो ! उपासना-मार्ग की ओर (आ गन्त) आओ, ताकि उपासना-मार्ग से रहित होकर तुम (रिषण्यत मा) नष्ट न होओ। तुम उपासना-मार्ग को (समन्यवः) जानकर, इस मार्ग पर (प्रस्थावनः) अच्छी प्रकार चलो, इस मार्ग से (अप स्थात मा) मत हटो, तुम (दृढ़ा चित्) दृढ़ होकर (यमयिष्णवः) यम-नियमों का पालन करो, और अपने आप को नियन्त्रण में रखो।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
४०२—आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते।
१ २
सोमँ सोमपते पिब ॥ ४ ॥

हे परमेश्वर ! आप (आ याहि) आइये, हमारे हृदयों में प्रकट हूजिये। हे हमारे (अश्वपते) मनों और इन्द्रियों के पति ! (उर्वरापते) हे हमारी उपजाऊ भूमि के पति ! (इन्दवे) चन्द्रसम शीतल प्रकाशवाले आपके लिये, (अयम्) यह भक्तिरस तैयार है। (सोमपते) हे भक्तिरस के पति ! आप (सोमम्) भक्तिरस को (पिब) स्वीकार कीजिये।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३१२
४०३—त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि।
३ १ २र ३ १ २
सँ स्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥

(वृषभ) हे आनन्दरस की वर्षा करने वाले परमेश्वर ! (त्वया) आप (युजा) साथी की सहायता से (स्वित् हि) ही, (वयम्) हम उपासक (प्रति) प्रतिद्वन्द्विता में (श्वसन्तम्) फुंकारते हुए आसुरी-साँप को, (ब्रुवीमहि) उत्तर दे सकते हैं, उसका मुकाबिला कर सकते हैं, जबकि हम (गोमतः) स्तुतियों के स्वामी (जनस्य) तथा जगत्पिता आपके (संस्थे) स्थिति स्थान-हृदय में आपका ध्यान करते हैं।

१ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
४०४—गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥

(गावः) वेद-वाणियां और (चित्) चेतन-प्रभु (ह) निश्चय से (समन्यवः) ज्ञान-दीप्ति से सम्पन्न हैं। इसलिये (मरुतः) हे मनुष्यों ! (सजात्येन) एक ही प्रभु से जन्म लेने के कारण तुम सब (सबन्धवः) परस्पर सम्बन्धी हो। इसलिये (मिथः) तुम सब मिलकर (ककुभः) ककुभ् आदि छन्दों से युक्त वेदवाणियों के ज्ञान-रसों का (रिहते) आस्वादन किया करो।

[रिह=लिह् (आस्वादने)। मरुतः=ऋत्विजः (निघं. ३।१८)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४०५—त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णꣳ शतक्रतो विचर्षणे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥

(शतक्रतो) हे असंख्यात कर्मों वाले ! (विचर्षण) विश्वद्रष्टा ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम्) आप (नः) हमें (ओजः) ओज (आभर) दीजिये, (नृम्णम्) यश और धन दीजिये । हमें (वीरम्) वीर-सन्तानें (आ) दीजिये, जो कि (पृतनासहम्) काम-क्रोधादि की सेनाओं को परास्त कर सकें ।

२ ३क २र ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४०६—अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे वेदवाणियों द्वारा भजने योग्य ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (अधा) अब हममें (त्वा) आपके प्रति (कामः) कामना जागरित हुई है । इसलिये (त्वा) आपको हम (उप ईमहे) प्राप्त होते हैं, आपके साथ हम अपना (ससृग्महे) संसर्ग करते हैं । (इव) जैसे जलचर प्राणी (उदभिः) जलों के साथ (उद् आ ग्मन्तः) सदा संसर्ग करते हैं, या (इव) जैसे (उदा) उदक (उदभिः) उदक के साथ (ग्मन्तः) एक-रस होकर मिल जाते हैं ।

[उदा=उदानि, उदकानि]

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
४०७—सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे प्रवक्षणे ।
३ १ २र
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥

(गोश्रीते) वेदवाणियों द्वारा परिपक्व, (मधौ) मधुर, (मदिरे) तृप्ति-दायक और (प्रवक्षणे) प्रवाह रूप में बहने वाले भक्तिरस के उत्पन्न हो जाने पर, हम उपासक, (ते) आपके आश्रय में (सीदन्तः) बैठते हैं । (यथा) जैसे कि (वयः) पक्षीगण वृक्ष आदि आश्रय पर आ बैठते हैं । तब (इन्द्र) हे परमेश्वर ! हम (त्वा) आपकी (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (नोनुमः) वार-वार स्तुतियां करते हैं ।

[नोनुमः=नु स्तुतौ]

३ २३ १ २ ३ २क ३ १ २ ३ १ २
४०८—वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रिञ् चित्रꣳ हवामहे ॥ १० ॥

(अपूर्व्य) हे अपूर्व-शक्ति वाले तथा अनादि ! (वज्रिन्) तथा पापों के प्रति वज्रधारी परमेश्वर ! (वयम्) हम उपासक (त्वाम्) आपके प्रति, भक्ति की भेंट

(भरन्तः) लाते हुए, (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते हैं, (चित्रम्) तथा अद्भुत स्वरूप वाले आपका, (हवामहे) हम उपासक आह्वान करते हैं। (न) जैसे कि (अवस्यवः) अन्न चाहने वाले संसारी व्यक्ति (कत् चित्) किसी (स्थूरम्) धन से परिपुष्ट व्यक्ति का आह्वान करते हैं।

अवस्यवः=अवः=रक्षा; तथा अवः=अन्न (निघं. २।७)]

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ इति ककुभः ॥

[स्व० २ । उ० २ । धा० ४१ । छ ॥]

दशतिः ३

(१—१०) १—८ गोतमो (सम्मदो वा) राहूगणः; ९ त्रितः आप्त्यः

(ऋ० कुत्स आंगिरसो वा); १० अवस्युरात्रेयः ॥ इन्द्रः;

९ विश्वेदेवाः; १० अश्विनौ ॥ पंक्तिः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
४०९—स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु
३ १ २
स्वराज्यम् ॥ १ ॥

(या) जो शुक्ल सात्त्विक-चित्त वृत्तियां (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (सयावरीः) सदा विचरती, और (वृष्णा) आनन्दरस वर्षी परमेश्वर के साथ रह कर (मदन्ति) सदा तृप्त रहती, तथा (वस्वीः) परमेश्वर का सदा सहवास करती हैं, वे (गौर्यः) शुक्ल सात्त्विक—चित्तवृत्तियाँ,—(स्वादोः) स्वादु, (विषूवतः) सांसारिक स्वादों से विलक्षण, (मधोः) मधुर आनन्दरस का (पिबन्ति) पान करती हैं, (इत्था) यह सत्य है। हे उपासक ! तू इस प्रकार (स्वराज्यम् अनु) अपने आत्मिक-राज्य को लक्ष्य बना कर (शोभथाः) शोभा को प्राप्त हो।

[इत्था=सत्य (निघं. ३।१०)]

३ १उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
४१०—इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २३ १ २
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु
३ १ २
स्वराज्यम् ॥ २ ॥

(हि) वास्तव में (सोमः) भक्तिरस (इत्) ही (इत्था) ऐसा है जो कि

(मदः) आनन्द देने वाला है, हर्ष देने वाला है, और तृप्ति देने वाला है। भक्तिरस के होने पर (ब्रह्म) परमेश्वर उपासक की (वर्धनम् चकार) वृद्धि करता है। (शविष्ठ) हे महाबली। (वज्रिन्) हे आसुरी-वृत्तियों के प्रति वज्रधारी परमेश्वर! अपने (ओजसा) स्वाभाविक ओज के द्वारा, आप (पृथिव्याः) समग्र पृथिवी से (अहिम्) पाप-सांप को (निः शशाः) निकाल भगाइये, जबकि उपासक (स्वराज्यम्) अपनी आत्मा-के-राज्य को (अनु) लक्ष्य बनाकर आपकी (अर्चन्) अर्चनाएँ करते हैं।

[निः शशः=निः+शश् (प्लुत गतौ)]

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
४११—इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
२र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३॥

(नृभिः) नर-नारियों द्वारा उपासित (इन्द्रः) परमेश्वर, उनके (वृत्रहा) पाप-वृत्रों का हनन करता, और उपासकों की (वावृधे) वृद्धि करता है, और उन्हें (मदाय) आनन्द तथा (शवसे) बल के प्रदान के लिये सदा तत्पर रहता है। (तम्) उस (ऊतिम्) रक्षक परमेश्वर का (इत्) ही हम (हवामहे) आह्वान करते हैं (महत्सु) बड़े और (अर्भे) छोटे (आजिषु) देवासुर-संग्रामों में। (सः) वह (वाजेषु) बल-ज्ञान-और शक्ति प्रदान कर (नः) हमारी (प्र अविषत्) विशेष रक्षा करता है।

२ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३क २र
४१२—इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोनुत्तं वज्रिन्वीर्यम्।
२र ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

(अद्रिवः) हे पाप-भक्षक! (वज्रिन्) हे आसुरी-भावनाओं के प्रति वज्रधारी! (इन्द्र) परमेश्वर! हम उपासक (तुभ्यम् इत्) आपके प्रति ही भक्ति की भेंट लाते हैं, चूंकि आपका (वीर्यम्) सामर्थ्य (अनुत्तम्) किसी द्वारा प्रेर्य नहीं है, स्वाभाविक है, निजी है। (यद् ह) जिस स्वाभाविक सामर्थ्य द्वारा आप, (मायिनम्) छल-कपट से युक्त, और प्रकृति के वशवर्ती हुए, (मृगम्) मृग-तृष्णाओं में भटकते हुए व्यक्ति का, आप (मायया) निज सामर्थ्य द्वारा, (अवधीः) विनाश करते हैं; और उसकी रक्षा करते हैं जो कि (स्वराज्यम्) आत्मिक-राज्य को (अनु) लक्ष्य बनाकर (अर्चन्) आपकी अर्चना करता है।

१ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
४१३—प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यँसते।
१ २ ३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र नृम्णँ हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप उपासक के प्रति (प्रेहि) शीघ्र आइये, उसके (अभीहि) समक्ष प्रकट हूजिये, उसकी आसुरी-भावनाओं का (धृष्णुहि) पराभव कीजिये। (ते)आपका (वज्रः) घातक वज्र (नियंसते, न) रोका नहीं जा सकता। (ते) आपका (शवः) बल (हि) ही उपासक के लिये (नृम्णम्) धन-और-बल रूप है। आप उपासक के (वृत्रम्) पाप-वृत्र का (हनः) हनन कीजिये, उपासक के (आपः) कर्मों पर (जय) विजय प्राप्त कीजिये, जो उपासक कि (स्वराज्यम्) आत्मिक-राज्य को (अनु) लक्ष्य बनाकर, आपकी (अर्चन्) अर्चना करता रहता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

४१४—यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कँ् हनः कं वसौ दधोऽस्माँ् इन्द्र वसौ दधः ॥ ६ ॥

(यद्) जब (आजयः) देवासुर-संग्राम, जीवन में (उदीरते) उठते हैं, तब, (धृष्णवे) असुरों का धर्षण अर्थात् पराभव करने वाले उपासक के लिये, हे परमेश्वर ! आप (धनम्) आत्मिक-बल-रूपी-धन (धीयते) प्रदान करते हैं। (मदच्युता) जिनसे मद चू रहा है ऐसे ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी दो प्रकार के (हरी) घोड़ों को आप,—(धृष्णवे) असुरों का पराभव करने वाले उपासक के लिये,—(युङ्क्ष्वा) योग युक्त कर देते हैं। आप (कम्) किसी का अर्थात् असुरों का तो (हनः) हनन करते हैं और (कम्) किसी को अर्थात् देवों को (वसौ) आत्मिक-सम्पत्ति में (दधः) स्थापित करते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (अस्मान्) हम उपासकों को (वसौ) सम्पत्ति में (दधः) स्थापित कीजिये।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

४१५—अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते

१ २

हरी ॥ ७ ॥

उपासक, हम गृहस्थों के (अक्षन्) समीप आए हैं, उन्होंने हमारे (अक्षन्) भोजन-सत्कार को स्वीकार किया है, और वे (अमीमदन्त) तृप्त हुए हैं। उन (प्रियाः) प्रिय उपासकों ने सदुपदेशों द्वारा हम गृहस्थों की विघ्न-बाधाओं को (अव-अधूषत) दूर कर दिया है। (स्वभानवः) वे उपासक स्वात्म-प्रकाश से प्रकाशित हैं। इन्होंने (नविष्ठया) अति प्रशंसित नवीन (मती) मतियों द्वारा हमारे लिए ज्ञानों का (अस्तोषत) कथन किया है। इसलिये (इन्द्र) हे परमेश्वर ! हमारे ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी (हरी) घोड़ों को,—जो कि विषयों में हरण करते हैं,—(योजा) योगविधि से युक्त कर दीजिये। ये दोनों प्रकार की इन्द्रिएं (ते) आपके प्रति सुपुर्द हैं।

[अक्षन् = अशूङ् व्याप्तौ, तथा अश् भोजने]

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
४१६—उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥

(मघवन्) हे सम्पत्तिशाली प्रभो ! आप हमारे (उप उ) अत्यन्त समीप हैं। आप हमारी (गिरः) प्रार्थनाओं की वाणियों को (सु शृणुही) सम्यक् प्रकार से सुनिये (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! आप "तथाऽस्तु" द्वारा हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार कीजिये। मारी प्रार्थनाओं को (अ—तथा इव) अन्तथा की तरह अस्वीकृत न कीजिये। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (नः) हमारी वाणियों को (कदा) कब (सूनृतावतः) प्रिय-और-सत्यमयी (करः) बनाएँगे। (इत्) निश्चय से आपके प्रति (अर्थयासे) हमारी यह प्रार्थना है। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! हमारी ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी (हरी) घोड़ों को,—जो कि विषयों में हरण करने वाले हैं,—कब (य जा) योगयुक्त करेंगे। ये दोनों प्रकार की इन्द्रियां (ते) आपको (नु) ही समर्पित हैं।

३ १ २ ३ २ऽ१ २र ३ १ २ ३ २
४१७—चन्द्रमा अप्स्वांऽ३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥

हे उपासको ! जिस प्रकार (चन्द्रमा) आह्लाद-और-प्रकाश का देने वाला चन्द्रमा, (अप्सु) जलों के स्थान पृथिवी और (दिवि) प्रकाश-के-स्थान द्युलोक के (अन्तः) मध्यवर्ती आकाश में, (सुपर्णः) उड़ता हुआ सा, (आ धावते) दौड़ता है, इसी प्रकार आह्लाद और प्रकाश का देने वाला मन, (अप्सु) जलाधार निचले शरीर भाग और (दिवि) प्रकाश के स्थान शिरोभाग के (अन्तः) मध्यवर्ती हृदयाकाश में, (सुपर्णः) उड़ता हुआ सा, (आ धावते) दौड़ता है। हे उपासक ! (वः) तुम्हारे मन की (पदम्) गति को, (हिरण्यनेमयः) सुवर्णमयी धारावाली (विद्युतः) बिजुलियां भी (न विन्दन्ति) नहीं प्राप्त कर सकतीं, उसकी गति का मुकाबिला नहीं कर सकतीं मेरे मन की स्वयं यही अवस्था है, (मे) मेरे मन की (अस्य) इस अवस्था को (रोदसी) द्युलोक वासी-तथा-पृथिवी वासी सभी (वित्तम्) जानते हैं।

[चन्द्रमा = मन । "चन्द्रमा मनसो जातः" यजु. ३१।१२)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४१८—प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम
३ १ २
श्रुतं हवम् ॥ १० ॥

(अश्विनौ) हे पति-पत्नी रूप सद्‌गृहस्थियो ! (प्रियतमम्) तुम्हारे अत्यन्त प्रय, (वृषणम्) सुखवर्षी, (वसुवाहनम्) अभ्युदय-और-निःश्रेयस की सम्पत्तियों का वहन करने वाले, प्राप्त कराने वाले, (रथम्) शरीर रथों को,—(ऋषिः) एकर्षि परमेश्वर (प्रतिभूषति) सुन्दर रूपों तथा सुन्दर आकृतियों द्वारा विभूषित करता है, तथा वही एकर्षि परमेश्वर (स्तोता) जीवन-सम्बन्धी आदर्शों का कथन करता हुआ (स्तोमेभिः) वैदिक-मंत्रों द्वारा (वाम्) तुम्हारे मनों और आत्माओं को यथार्थ-ज्ञान और मोक्ष के प्रदान द्वारा (प्रतिभूषति) विभूषित करता है । इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विभूतियों को प्राप्त कर तुम दोनों (माध्वी) मधुर रूप बन जाओ, सब के प्रिय बन जाओ,—(मम) मेरे इस (हवम्) कथन को (श्रुतम्) तुम दोनों ध्यान से सुनो !

[अश्विना=द्युलोक—पृथिवीलोक । आधिभौतिक दृष्टि में पिता-और-माता या नर-और-नारी । यथा:—"द्यौरहं पृथिवी त्वम् । ताविह सं भवाव प्रजामा जनयाव है" (अथर्व. १४।२।७१)]

इति तृतीया दशतिः ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

[स्व० १३ । उ० ५ धा० ७५ । णु ॥]

दशतिः ४

(१—८) १, ७, वसुश्रुव आत्रेयः; २, ४ विमद ऐन्द्रः (ऋ० प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः); ३ सत्यश्रवा आत्रेयः; ५, ६ गोतमो राहूगणः; ८ अंहोमुग्वामदेव्यः; (ऋ० कुल्मलबर्हिषः शैलूषिर्वा;) ॥ अग्निः; ३ उषाः; ४ सोमः; ५, ६ इन्द्रः; ८ विश्वेदेवाः ॥ पंक्तिः; ८ बृहती ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
४१९—आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर
॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप नेता ! (ते) आपके (द्युमन्तम्) द्युतिमान् और (अजरम्) जीर्ण न होने वाले स्वरूप को, हम उपासक, अपने हृदयों में (आ इधीमहि) पूर्णरूप से प्रदीप्त करते हैं। (यत् ह) जो (ते) आपकी (स्या) वह (समित्) सम्यक्-प्रदीप्त हुई हुई द्युति (द्यवि) द्युलोक में (दीदयति) दमक रही है, वह आपकी द्युति (पनीयसी) अधिक-स्तुति के योग्य है। (देव) हे देव ! (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के प्रति, अपनी वह (इषम्) अभीष्ट द्युति (आ भर) प्रकट कीजिये।

१ २र ३ १ २
४२०—आग्नि न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे
॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! हम उपासक, (स्ववृक्तिभिः) अपनी दोषवर्जित स्तुतियों द्वारा (त्वा-होतारम्) आप दानी का (आ वृणीमहे) पूर्णरूप में वरण करते हैं, (अग्निं न) आप अग्नि के सदृश प्रकाशमान हैं, और प्रसुप्त शक्ति रूप में (शीरम्) जगत् और हृदयों में शयन कर रहे हैं। (पावक शोचिषम्) आपकी चमक पवित्र करती है। (मदे) भक्तिरस की मस्ती में (विवः) आप अपने स्वरूप को प्रकट कीजिये। (यज्ञेषु) उपासना-यज्ञों में हमने आपके लिये (स्तीर्णबर्हिषम्) हृदयासन बिछा दिए हैं। (विवक्षसे) आप मंत्रों के प्रवक्ता हैं, और संसार का वहन कर रहे हैं।

[विवक्षसे=वक्तेर्वा, वहतेर्वा, साभ्यासात् (निरु. ३।३।१३)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
४२१—महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते
॥ ३ ॥

(उषः) हे आध्यात्मिक उषा ! (दिवित्मती) तू दिव्य प्रकाश वाली है। (महे) बड़ी (राये) आध्यात्मिक-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये, तू (नः) हमें (अद्य) आज (बोधय) बोधयुक्त कर, (यथा) जैसे कि तू अनादि काल से (नः) हम उपासकों को (अबोधयः) बोधयुक्त करती रही है। (अश्वसूनृते) हे व्यापक-प्रेम और व्यापक-सत्य का सन्देश देने वाली, (सुजाते) तथा सौभाग्य से उत्पन्न हुई आध्यात्मिक उषा ! (सत्य श्रवसि) सत्य की कीर्ति वाले और (वाय्ये) आध्यात्मिक कर्मपट के बुनने वाले मुझ उपासक में तू बोध प्रकट कर।

[दिवित्मती=दिव् (प्रकाश)+इत् (प्राप्त)+मती (वाली)। वाय्ये=वेञ्, तन्तुसन्ताने। अश्व=अशूङ् व्याप्तौ। उषा=आध्यात्मिक उषा=उपासक में प्रकट हुई परमेश्वरीय—ज्योति की प्रथम झलक]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १ २र
४२२—भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥

हे आध्यात्मिक उषा ! तू (नः) हमारे प्रति (भद्रं मनः) भद्र-मन, (दक्षम्) भद्र-बल (उत) और (क्रतुम्) भद्र-संकल्प तथा भद्र-प्रज्ञा (अपि वातय) प्रेरित कर। हम उपासक (ते) तेरे (सख्ये) सखिभाव में हों। (वि वः) तू मेरे अज्ञान के पर्दे को हटा। हे आध्यात्मिक उषा ! आध्यात्मिक (अन्धसः) अन्न की (मदे) मस्ती में हमें (रणा) तू रमण करा, (न) जैसे कि (गावः) गौएं (यवसे) हरे घास में रमण करती हैं। हे आध्यात्मिक उषा ! तू उपासक के प्रति (विवक्षसे) आध्यात्मिक तत्त्वों का कथन करती है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १२
४२३—क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥

हे परमेश्वर ! आप (क्रत्वा) कर्मों, संकल्पों और प्रज्ञा की दृष्टि से (महान्) महान् हैं। आप जब हमें (अनुष्वधम्) आध्यात्मिक-अन्न अर्थात् आनन्द-रस देते हैं, तब उसके पश्चात्, हममें (भीमः) भीम अर्थात् दृढ़ (शवः) बल (आवावृते) आ प्रकट होता है। जो उपासक आपकी (उपाकयोः) समीपता चाहता है उसे (श्रिये) श्री-सम्पत्ति देने के लिये, आप (ऋष्वः) सर्वोच्च शक्ति हैं, जैसे (शिप्री) तेजस्वी और सुन्दर मुखवाला (हरिवान्) अश्वारोही क्षत्रिय राजा, सेवक को सम्पत्ति-दान करने में सर्वोच्च शक्ति वाला होता है। जैसे वह राजा प्रजा की रक्षा के लिये अपने (हस्तयोः) हाथों में (आयसम्) लोहमय (वज्रम्) शस्त्र (निदधे) धारण करता है, वैसे आप अति दृढ़ न्याय-वज्र को धारण किये हुए हैं।

[उपाकयोः=उप+अक् (गतौ)+क्यच्+षष्ठी विभक्ति, एक वचन) उपाके=अन्तिक नाम (निघं. २।१६)]

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४२४—स धा तं वृषणँ रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३
यः पात्रँ हारियोजनं पूर्णमिन्द्राचिकेतति योजा न्विन्द्रं ते
१ २
हरी ॥ ६ ॥

(सः) वह उपासक (घ) निश्चय से (तम्) उस (रथम्) शरीर-रथ का (अधि-तिष्ठाति) अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी बन जाता है (यः) जो उपासक कि इस तत्त्व को चकेतति) ठीक प्रकार जान लेता है कि भक्ति-रस से (पूर्णम्) भरा यह (पात्रम्) मन-रूपी-पात्र (हारियोजनम्) मनोहरी परमेश्वर के साथ जोड़ पैदा कर देता है। ऐसे उपासक के लिये यह शरीर-रथ,—(गोविदम्) जिसमें कि इन्द्रिय-रूपी बैल जुते हुए हैं—(वृषभम्) सुखों की वर्षा करने लगता है। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूपी (हरी) बैलों को मेरे शरीर-रथ के साथ (योजा) आप ही जोतिए और चलाइये। ये दोनों प्रकार के बैल अब (ते) आपके प्रति समर्पित हो चुके हैं।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

४२५—अग्नि तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषँ स्तोतृभ्य आ

२

भर ॥ ७ ॥

(यः) जो परमेश्वर (वसुः) सबमें बसा हुआ है (तम्) उसे मैं उपासक (अग्निम्) "अग्नि" (मन्ये) मानता हूँ। (यम्) जिस परमेश्वर में कि अपने अपने काल में (धेनवः) दुधार गौएँ (अस्तं यन्ति) अस्त अर्थात् लीन हो जातीं; (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े (अस्तं यन्ति) अस्त अर्थात् लीन हो जाते, (वाजिनः) शक्तिशाली (नित्यासः) नित्य समझे गए पदार्थ भी (अस्तं यन्ति) अस्त हो जाते हैं। हे परमेश्वर ! आप (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के प्रति (इषम्) अभीष्ट-आध्यात्मिक अन्न (आ भर) भरपूर मात्रा में प्रदान कीजिये।

[सामवेद के आग्नेय-काण्ड में "अग्नि" पद द्वारा परमात्मा के "अग्रणी स्वरूप" का वर्णन हुआ है और ऐन्द्रकाण्ड में इन्द्र पद द्वारा उसके परमैश्वर्यवान् रूप का वर्णन हैं। इस मंत्र द्वारा यह दर्शाया है कि "अग्नि और इन्द्र" एक ही परमात्मा के दो नाम हैं। अस्तं यन्ति=समाप्त हो जाते, विनष्ट हो जाते]

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

४२६—न तमँहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ अष्टम खण्डः ॥ ८ ॥

[स्व० ७। उ० ३। धा० ५७। जे ॥]

इति पंक्तयः ॥

दशतिः ५

(१—१०) ऋण-त्रसदस्यु; (ऋ० १, ३—५, १० आग्नेयो धिष्ण्या ऐश्वराः; २, ६, न्यरुणस्त्रैवृष्णाः; त्रसदस्युः पौरुकुत्सः) ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ वामदेवो गौतमः ।। पवमानः सोमः; ७ मरुतः; ८ अग्निः ९ वाजिनः ।। द्विपदा विराट्; ८ पदपंक्तिः; ९ पुरउष्णिक्; २, ६ त्रिपदा अनुष्टुप्पिपीलिकामध्या ।।

(देवासः) हे दिव्य उपासको ! (तम्) उस (मर्त्यम्) मरणधर्मा उपासक को (न अंहः) न पाप (अष्ट) व्यापता और (न) न (दुरितम्) दुर्गति व्यापती है, (यम्) जिस उपासक को कि परमेश्वर की तीन शक्तियां, (सजोषसः) मिल कर, (द्विषः) राग-द्वेष के नद से (अति नर्यात) पार कर देती हैं, अर्थात् परमेश्वर की (अर्यमा) न्यायकारित्व-शक्ति, (मित्रः) मैत्री शक्ति, और (वरुणः) पाप-निवारक श्रेष्ठ शक्ति ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
४२७—परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ।। १ ।।

(सोम) हे भक्तिरस ! तू (स्वादुः) मधुर रूप है, तू (परि) सांसारिक-बन्धनों को त्याग कर, (मित्राय) सबके साथ स्नेह करने वाले, (पूष्णे) सबकी पुष्टि करने वाले, (भगाय) भगवान् के लिये, (प्रधन्व) शीघ्र प्रवाहित हो जा ।

[परि=अपपरी वर्जने । भगाय=अर्शाद् यच्, अर्थात् ६ भागों से सम्पन्न भगवान्]

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४२८—पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ।। २ ।।

हे भक्तिरस ! (परि) सांसारिक-बन्धनों को त्याग कर, (वाजसातये) आध्यात्मिक-बल की प्राप्ति के निमित्त तू, परमेश्वर के लिये, (सु) अच्छे प्रकार (उ) अवश्य (प्र धन्व) शीघ्रता से प्रवाहित हो जा । हे भक्तिरस ! तू (परि) सांसारिक-बन्धनों को त्याग कर, (वृत्राणि) पाप-वृत्रों का (सक्षणिः) पराभव करता है । (द्विषः) द्वेष-नद को (तरध्यै) तैर जाने के लिये तू (ईरसे) हमें प्राप्त होता है, (ऋणया न) जैसे कि ऋण-यापन करने वाला अधमर्णी, ऋण चुकाने के लिये, उत्तमर्णी को प्राप्त होता है ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
४२९—पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानाँ विश्वाभि धाम ॥३॥

(सोम) हे भक्तिरस ! तू हमें (पवस्व) पवित्र कर; तू (महान्) महाशक्ति है; तू (समुद्रः) समुद्र-रूप में मुझमें उमड़; तू हमारा (पिता) रक्षक है, (देवनाम्) दिव्य-इन्द्रियों के (विश्वा) सब (धाम अभि) धामों में तू फैल जा।

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
४३०—पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजो धनाय ॥ ४ ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! तू हमें (पवस्व) पवित्र कर, हमें (महे दक्षाय) महाशक्ति प्रदान करने के लिये। (वाजी) तू बल का दाता है। तू हमें (धनाय) आध्यात्मिक-धन प्रदान कर। (निक्तः) शुद्ध और परिपुष्ट (अश्वः न) अश्व के सदृश हे भक्तिरस ! तू (निक्तः) शुद्ध है और उपासना के लिये परिपुष्टावस्था को, परिपक्वावस्था को प्राप्त है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
४३१—इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ ५ ॥

(इन्दुः) चन्द्रमा की तरह उपासक में शान्त प्रकाश उत्पन्न करने वाला प्रशान्त भक्तिरस (पविष्ट) हमें पवित्र करता है। यह भक्तिरस (चारुः) रमणीय और रुचिकर है। जहां (अपाम्) रक्त-रूपी-जलों की (उपस्थे) उपस्थित है उस हृदय में यह भक्तिरस उपस्थित होकर (मदाय) हर्ष और तृप्ति प्रकट करता है। यह हममें (कविः) कवित्व शक्ति को जागरित करता, और हमें (भगाय) भजनीय परमेश्वर की ओर ले जाता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४३२—अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! (सुतं त्वा अनु) तेरे प्रकट हो जाने के अनन्तर (मदामसि) हम आनन्द और हर्ष अनुभव करते हैं, और हम (सपर्यराज्ये) सच्चे-स्वामी अर्थात् परमेश्वर के (महे) बड़े राज्य में विचरने लगते हैं। (पवमान) हे हमारे जीवनों को पवित्र करने वाले भक्तिरस ! (वाजान् अभि) शक्ति-ज्ञान-बल-और वेग देने के निमित्त तू हमारे रस रस में (प्र गाहसे) अवगाहन कर !

२ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
४३३—क ई व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥

(के ईम्) कौन ऐसे (नरः) नर-नारियाँ हैं ? जो कि (व्यक्ताः) छल-कपट से रहित स्पष्ट अर्थात् सत्य व्यवहारों वाले हों ? (सनीडाः) जैसे पक्षी एक घोंसले में प्रेम-पूर्वक रहते हैं, वैसे जो पृथिवी-रूपी-घर में प्रेम पूर्वक रहते हों ?; (रुद्रस्य) जो सबको पापहारी ईश्वर की (मर्याः) सन्तानें समझते हों ?; तथा (स्वश्वाः) जिनके मन और इन्द्रियां स्वच्छ हों।

[अर्थात् ऐसे नर-नारी दुर्लभ हैं। नरः=नरश्च नार्यश्च ते (एकशेष)। नीड=गृह (निघं० ३।४)]

२ ३ २३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४३४—अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्।
३ १ २ ३ १ ३
ऋध्यामा त ओहैः॥ ८॥

(अग्ने) हे आगे बढ़ाने वाले जगन्नेता ! (अद्य) आज हम मिल कर, (ते) आपके (स्तोमैः) स्तुति-मन्त्रों द्वारा,—जो स्तुति-मन्त्र कि (ओहैः) हमें आप तक बहा ले जाते हैं,—(तम्) उस साम-गान को गाते हैं, जो सामगान कि (अश्वं न) अश्व के सदृश हमारे अभीष्टों को सिद्ध करता, और जो (क्रतुं न), अन्य सत्कर्मों के सदृश (भद्रम्) सुख देता, और कल्याणकारी होता, तथा (हृदिस्पृशम्) हृदय-स्पर्शी है। इस द्वारा (ऋध्याम) हम सब ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त हों।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
४३५—आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सवम्।
३ १ २
स्वर्गां अर्वन्तो जयत॥ ९॥

(मर्य्याः) मनुष्यमात्र का उपकार करने वाले उपासक, (आविः) स्पष्टरूप में, (वाजिनः) शक्ति-शाली परमेश्वर की (वाजम्) शक्ति को (आ अग्मन्) प्राप्त कर लेते हैं, और उस (सवितुः देवस्य) उत्पादक-और-प्रेरक परमेश्वर-देव की (सवम्) प्रेरणा को प्राप्त कर लेते हैं। हे उपासको ! तुम (अर्वन्तः) प्रगतिशील होकर पापों का विनाश करते हुए, (स्वर्गान्) स्वर्गीय-जीवनों पर (जयत) विजय पा लो।

[मर्य्याः=मर्येभ्यो हिताः। अर्वन्तः=ऋ गतिरेषणयोः]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ १ ३ २
४३६—पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महां अवीनामनुपूर्व्यः॥ १०॥

(सोम) भक्तिरस ! तू हमारे जीवनों को (पवस्व) पवित्र कर। तू (द्युम्नी) मनों में द्युति उत्पन्न करता, हमें यश देता, और हमारे लिये सच्चा धन है। (सुधारः) तेरी रसधारा श्रेष्ठ है। (महान्) तू एक महाशक्ति है। (अवीनाम्) रक्षा करने वाली शक्तियों में तू (अपूर्व्यः) अपूर्व शक्ति है।

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

[स्व ८। उ० २। घा० ३५। ठु ॥

इति पञ्चम प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

दशतिः ६

(१—१०) त्रसदस्युः; संवर्त आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ६ विश्वेदेवाः;
७ उषाः ॥ द्विपदा विराट् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४३७—विश्वतोदावन्विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥

(विश्वतोदावन्) हे सब ओर से दान देने वाले परमेश्वर ! (विश्वतः) सब प्रकार के दानों द्वारा (नः) हमें (आभर) आप भर दीजिये । आप वह हैं (यम्) जिस (शविष्ठम्) धनिक (त्वा) आपको (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं ।

[शवः=धन (निघं. २।१०)। ईमहे=ईङ् (गतौ)]

३२ ३ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
४३८—एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥

(उपासक कहता है कि)—(एषः) यह प्रत्यक्ष-दृष्ट-परमेश्वर ही (ब्रह्मा) ब्रह्मा है, (ऋत्वियः) जो कि ऋतुओं को रचा रहा है, जो कि हर ऋतु में उपासकों को प्रकट होता रहता है । यही (इन्द्रः नाम) इन्द्र नाम से (श्रुतः) वेदों में सुना गया है । (गृणे) इसकी मैं स्तुति करता हूं ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
४३९—ब्रह्माण इन्द्र महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ३ ॥

(ब्रह्माणः) चारों वेदों के विद्वान् तथा ब्रह्म के उपासक,—(इन्द्रम्) परमेश्वर की (महयन्तः) महिमा गाते हुए, (अर्कैः) वेदमन्त्रों द्वारा, (अवर्धयन्) इसी के गुणों का बढ़ २ कर गान करते हैं, ताकि उपासकों की (अहये) सर्प-वृत्तियों अर्थात् कुटिल-वृत्तियों का (हन्तवा उ) हनन हो सके ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४४०—अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥ ४ ॥

हे परमेश्वर ! (अनवः) आपकी स्तुति न करने वाले नास्तिक-मनुष्य भी, (ते) आपकी महिमा को जानकर, (रथम्) अपने शरीर-रथों को (तक्षुः) साध कर तय्यार कर लेते हैं, ताकि (अश्वाय) अश्वस्थानापन्न होकर उनके शरीररथों का आप वहन करें । (पुरुहूत) हे बहुत स्तुति वाले परमेश्वर ! आपकी प्राप्ति के लिये, यह उपासक, (त्वष्टा) त्वष्टा बनकर (द्युमन्तम्) चमकीले (वज्रम्) वीर्य-वज्र को तय्यार करता है ताकि इस वीर्य-वज्र द्वारा उसके पाप-सांप की आप हत्या कर सकें (४३९) ।

[अनवः=मनुष्यनम (निघं.२।३) । तथा अ+नु (स्तुतौ)+बहुवचन=नास्तिक । त्वष्टा=रेतः सिक्तं वै त्वाष्टः (कौ० १६।६) । त्वष्टा वै सिक्तं रेतो विकरोति (श० ब्रा० १।६।२।१०) वज्रम्=वीर्यं वै वज्रः (श० ब्रा० ७।३।१।१६) मन्त्र ४३६ और ४४० में परस्पर सम्बन्ध है ।]

२ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र . २ १ २ ३ १
४४१—शं पदं मघं रयीषिणो न काममव्रतो हिनोति न

२ ३ २
स्पृशद्रयिम् ।। ५ ।।

उपासक जब (रयीषिणः) सम्पद्रूप—परमेश्वर की प्राप्ति की उत्कट इच्छा वाले होते हैं, तभी वे (मघम्) सर्वश्रेष्ठ सम्पद्रूप, (शं पदम्) प्रापणीय प्रशान्त—परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं । (अव्रतः) अव्रती-व्यक्ति (कामम्) अपनी इस कामना को (हिनोति न) पूरा नहीं कर पाता, और (रयिम्) इस सम्पत् का (स्पृशत् न) स्पर्श भी नहीं कर सकता ।

[पदम्=परमेश्वर । यथा "सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति" (कठ० अ० १। ब२। ख—१५)]

१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४४२—सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ।। ६ ।।

(गावः) उपासक लोग (सदा शुचयः) सदा मन-वचन-कर्म से शुद्ध-पवित्र तथा निर्मल हो जाते हैं । वे गौओं के सदृश (विश्वधायसः) विश्व का पालन-पोषण करते हैं, (सदा) वे सदा (देवाः) दिव्य गुणों से सम्पन्न होते, और (अरेपसः) पापों से रहित हो जाते हैं ।

[गावः =स्तोतारः (निघं. ३।१६)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
४४३—आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ।। ७ ।।

हे उपासक ! तू (वनसा) परमेश्वर की ओर सच्ची-भक्ति (सह) के साथ (आयाहि) आ । (यत्) जैसे कि (गावः) गौएँ (ऊधभिः) दूध भरे मुहानों के साथ (वर्तनिम्) मार्ग पर चलती हुई (सचन्त) अपने-अपने घरों की ओर आ जाती हैं ।

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
४४४—उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ।। ८ ।।

(मधुमति) मधुमती चित्त वृत्ति वाले चित्त में,—(प्रक्षे) जिसमें कि व्युत्थान—वृत्तियों का प्रकर्षरूप में क्षय हो चुका है—(क्षियन्तः) निवास करते हुए हम योगीजन, (रयिम्) परमेश्वर-रूपी-महाधन को (पुष्येम) परिपुष्ट करते हैं,

इसलिये (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) आपके (धीमहे) हम उपासक आपका ही ध्यान करते रहते हैं।

[योग की "मधुमती" अवस्था निर्वितर्क-समाधि से ऊँची अवस्था है। अथवा मधुमति=मधुर भक्तिरस वाले चित्त में]

१२ ३२३१२ ३१ २र ३२उ ३ १ २र
४४५—अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९॥

(मरुतः) प्राणायाम के अभ्यासी उपासक, (स्वर्काः) उत्तम-अर्चना के साधन भूत वैदिक स्तोत्रों से सम्पन्न होकर, जब (अर्कम्) अर्चनीय परमेश्वर की (अर्चन्ति) अर्चनाएँ करते हैं, तब परमेश्वर (आ स्तोभति) उपासकों को पूरी सहायता देता है। वह परमेश्वर (श्रुतः) वेद-विश्रुत हैं। (युवा) सदा प्रौढ़ शक्ति सम्पन्न है, अजर है, अमर है। (सः) वह ही (इन्द्रः) इन्द्र पदवाच्य है।

[मरुतः=प्राणा वै मारुताः (श० ब्रा० ९।३।१।७।)]

२ ३ १ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
४४६—प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

हे उपासक ! तुम (वृत्रहन्तमाय) पाप-वृत्रों के पूर्णनाशक, (विप्राय) परिपूर्ण तथा मेधावी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये, (गाथम्) सामगान (गायत) गाया करो, (यं वः) जिन तुम्हारे सामगानों को कि वह (जुजोषते) प्रीतिपूर्वक चाहता है।

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [स्व० ७। उ० २। घा० ४२। ष्ठा ॥]

दशतिः ७

(१—१०) १ पृषध्रः काण्वः; २, ३, ४ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा; ५ संवर्त आंगिरसः; ६ भुवन आप्त्यः; साधनो वा भौवनः; ७ कवष ऐलूषः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ आत्रेयः; १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ अग्निः; ५ उषाः; ६, ७, ९ विश्वेदेवाः; ३, ४, ८, १० इन्द्रः ॥ द्विपदा विराट्; १० एकपदा ॥

१२ ३१ २र ३२उ ३१२
४४७—अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् सुमद्रथः ॥ १ ॥

(चिकितिः) यथार्थज्ञानी (अग्निः) जगन्नेता ने (अचेति) हम उपासकों को यथार्थज्ञानी कर दिया है। तथा (न) जैसे (हव्यवाड्) हव्यों अर्थात् आहुतियों का वहन करने वाली यज्ञिय-अग्नि हव्यों का वहन करती है वैसे ही जगन्नेता (सुमद्रथः) स्वयं हमारे शरीर-रथों का वहन करने लगा है, अर्थात् हमारे शरीर में वही प्रेरक प्रेरणाएँ देने लगा है।

[सुमत्=स्वयम् (निरु. ६।४।२२)]

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२ २र
४४८—अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे जगन्नेता परमेश्वर ! (त्वम्) आप (अन्तमः) हमारे सबसे अधिक समीप हैं, (उत) और (त्राता) रक्षक हैं, (शिवः) कल्याण करने वाले हैं, आप ही हमारे लिये (वरुथ्यः) सबसे अधिक वरण करने योग्य, तथा हमारे हृदयगृहवासी (भुवः) हुए हैं।

२ ३ २ ३ २ ३१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४४९—भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

प्रातःकाल का (भगः) सूर्य, (न) जैसे उषा की छटा में नानाविध रंगों में (चित्रः) चित्रित होता है, वैसे ही (अग्निः) जगन्नेता परमेश्वर, संसार की विविध छटाओं में नानाविध रूपों में चित्रित हो रहा है। वह परमेश्वर (महोनाम्) महान् आत्माओं के (रत्नम्) आध्यात्मिक-रत्न अर्थात् मोक्ष-रत्न को (दधाति) हम उपासकों में भी स्थापित करता है।

१ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २र ३ २ ३ २
४५०—विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदि वेह नूनम् ॥ ४ ॥

(विश्वस्य) समग्र जगत् के (प्रस्तोभ) थामने वाले हे परमेश्वर ! (सन्) आप सदा विद्यमान हैं। (यद् इव वा) जैसे कि आप (पुरः) पूर्वकालों में समग्र जगत् को थामते रहे हैं, वैसे (नूनम्) निश्चय से, आप (इह) इस वर्तमान काल में भी समग्र जगत् को थाम रहे हैं।

[स्तोभ=ष्टुभु स्तम्भने। वा=समुच्चये (निरु. १।२।५)]

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४५१—उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिँ सुजातता ॥ ५ ॥

जैसे (उषाः) प्रातःकाल की उषा, अपनी (स्वसुः) बहिन रात्री के (तमः) अन्धकार को (अप वर्तयति) हटा देती और अपने (वर्तनिम्) मार्ग पर (सम्वर्तयति) सम्यक् रूप में आगे-आगे बढ़ती जाती है, और इसीलिये इसका (सुजातता) जन्म उत्तम है, धन्य है, वैसे ही जीवन के आध्यात्मिक—हृदयाकाश में प्रकट हुई (उषाः) प्राथमिक आध्यात्मिक ज्योति, अभ्यासी के अन्धकार को हटा देती, और अपने मार्ग पर सम्यक् रूप में आगे-आगे बढ़ती जाती है, ऐसी आध्यात्मिक ज्योति का जन्म उत्तम है, धन्य है।

[उषाः=आध्यात्मिक उषा=उपासक के हृदय में प्रकट हुई परमेश्वरीय ज्योति की प्रथम झलक]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
४५२—इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ ६ ॥

हम उपासक (इमा भुवना) इन शारीरिक-भुवनों को,—पैरों, जङ्घाओं, उदर, छाती, हृदय, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों तथा मस्तिष्क को,—(सीषधेम) सिद्ध करना चाहते हैं, इन सबकी साधना करना चाहते हैं,—(इन्द्रः) परमेश्वर (च) और (विश्वे च देवाः) सब दिव्य उपासक-गुरु, हमारी इस साधना को सफल, (नु) शीघ्रता से (कम्) और सुखपूर्वक करें।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
४५३—वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ७ ॥

समुद्र से निकले हुए (विसृतयः) विविध नदी-नद (यथा) जैसे (पथा) विविध-मार्गों द्वारा फिर समुद्र में (यन्तु) जा मिलते हैं, वैसे ही (इन्द्र) हे परमेश्वर! (त्वत्) आपसे प्राप्त हुए (रातयः) दान, समर्पण द्वारा, आपमें ही (यन्तु) फिर लीन हो जाते हैं।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४५४—अया वाजं देवहितँ सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥

(अया) इस प्रकार (देवहितम्) देवाधिदेव परमेश्वर द्वारा दिए गए (वाजम्) बल-ज्ञान-वेग आदि को (सनेम) हम प्राप्त करते रहें, और (मदेम) आनन्दित रहें, (शतहिमाः) सौ वर्षों तक जीते रहें, और (सुवीराः) उत्तम-धर्मवीर सन्तानें प्राप्त करते रहें।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४५५—ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाःपीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९॥

(मित्रः) सबका मित्र, (वरुणः) वरणीय तथा सर्वश्रेष्ठ, और पापों से निवारण करने वाला परमेश्वर,—(ऊर्जा) बल और प्राणशक्ति के प्रदान द्वारा, (इडाः) समस्त भूभागों को (पिन्वत) परिपुष्ट करे। (इन्द्र) हे परमेश्वर! (नः) हम सबके लिये, आप (पीवरीम्) परिपुष्ट (इषम्) अन्न (कृणुहि) प्रदान कीजिये।

[इडाः=पृथिवी (निघं० १।१)। इषम्=अन्नम् (निघं० २।७)]

२ ३ १ २
४५६—इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य) विश्व का (राजति) राजा है।

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ इति एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [स्व० ५। उ०४। धा० ४१ ॥ भ ॥]

दशतिः ८

(१—१०) १, १० गृत्समदः शौनकः; २ गौरांगिरसः; ३, ५, ९, परुच्छेपो दैवोदासिः; ४ रेभः काश्यशः; ६ एवयामरुदात्रेयः; ७ अनागतः पारुच्छेपिः; ८ नकुलः ॥ १, ३, ४, १० इन्द्रः; २ सूर्यः; ५ विश्वेदेवाः; ६ मरुतः; ७ पवमानः सोमः ८ सविता; ९ अग्निः ॥ १, १० अष्टिः (१० अतिशक्वरी वा); ३, ५, ७—९ अत्यष्टिः; २, ४, ६, अतिजगती (अष्टिर्वा ?) ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
४५७—त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना
३ १ २ ३ २
सुतं यथावशम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुँ सैनँ सश्चद्देवो देवँ सत्य
२र ३ १ २र
इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १॥

(त्रिकद्रुकेषु) पृथिवी के तीन स्थानों अर्थात् जल-स्थल-पर्वत में, अथवा पार्थिव-शरीर के तीन स्थानों अर्थात् शरीर-मन-आत्मा में, (विष्णुना सुतम्) व्यापक परमेश्वर की कृपा द्वारा प्रकट हुए (सोमम्) भक्तिरस को, (महिषः) महान् तथा (तुविशुष्मः) महाबली परमेश्वर (यथावशम्) यथेष्ट (अपिबत्) स्वीकार करता है, और (तृम्पत) सदा तृप्त भी परमेश्वर उस द्वारा तृप्ति अनुभव करता है, जैसे कि कोई (महिषः) महापुरुष सेवारूप में उपस्थित की गई (यवाशिरम्) दूध में पकाई जौ की लप्सी को यथेच्छ स्वीकार करता, और उस द्वारा तृप्त होता है। (सः) वह भक्तिरस,— (महाम्) महान् और (उरुम्) सर्वव्यापक (इम्) इस परमेश्वर को (ममाद) हर्षित तथा प्रसन्न करता है, और परमेश्वर उपासक के (महिकर्म) महाकर्म [मोक्ष] को (कर्तवे) करने के लिये सन्नद्ध हो जाता है। (सः) वह (इन्दुः देवः) ज्ञान-प्रकाशक दिव्य-भक्तिरस (सत्यः) आध्यात्मिक-जीवन का एक सत्य तत्त्व है, जो कि (सत्यम्) सदा-सत् (इन्द्रम्) परमेश्वर को (सश्चत्) सक्रिय कर देता है।

[त्रिकद्रुकेषु=कद्रू=पृथिवी "इयं पृथिवी वै कद्रूः" (तै सं. ६।१।६।१)। त्रिकद्रूक=पृथिवी के तीन स्थान। कद्रू=कुत्सित गति वाली। पृथिवी सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करती है, परन्तु इसका परिभ्रमण अनुभूत नहीं होता। इसलिये इसे कद्रू कहा है, अर्थात् कुत्सित-गति वाली। इन्दुः="इन्धतेर्वा स्यात् दीप्तिकर्मणः" (निरु. १०।४।४१)। सश्चति=गतिकर्मा (निघं. २।१४)।]

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
४५८—अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
३ १ २ २
मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥

(अयम्) यह परमेश्वर (सहस्रमानवः) हजारों मनुष्यों का स्वामी है। (कवीनाम्) कवियों को (दृशः) प्रातिभ-दृष्टि देता, (मतिः) तथा ज्ञानस्वरूप है। (ज्योतिः) यह ज्योतिर्मय तथा (विधर्म) विविध-जगत् का धारक है। (ब्रध्नः) सूर्यसम प्रकाशी है। उपासकों के प्रति (समीचीः) सुन्दर (उषसः) आध्यात्मिक-उषाओं को (समैरयत्) प्रेरित करता है। उपासक-जन आध्यात्मिक-उषाओं को प्राप्त कर (अरेपसः) पापों से रहित हो जाते, और (स्वसरे) किसी शुभ-दिन में (गोः) वेद-वाणी के (चिता) यथार्थ-ज्ञान द्वारा (सचेतसः) यथार्थ-ज्ञानी बन जाते, और (मन्युमन्तः) ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित हो जाते हैं।

[मन्युमन्तः=मन्यतेः कान्तिकर्मा (निघं. २।६)। (चिता) चित्+तृतीयैकवचन। ब्रध्नः=सूर्य (तैत्ति. ३।९।४।१)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
४५९—एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।
१ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! आप (नः) हम उपासकों के (उप) समीप (आयाहि) हो जाइये। (न) जैसे (अयम्) कोई श्रद्धालु, (परावतः) दूर देश से आकर, (विदथानि इव) मानो यज्ञों में उपस्थित होता है, वैसे ही आप हमारे भक्ति-यज्ञों में (अच्छा) प्रकट हूजिये। (सत्पतिः) आप सच्चे पति हैं, (अस्ता) पापों और कष्टों को दूर करते हैं। (राजा इव) मनुष्य-राजा के सदृश आप (सत्पतिः) सच्चे पति हैं, सच्चे रक्षक हैं। (सुतेषु) भक्तिरसों के निष्पन्न हो जाने पर हम उपासक (प्रयस्वन्तः) भक्ति-रस की भेंट वाले (त्वा) आपका (आ हवामहे) आह्वान करते हैं, (न) जैसे कि (पुत्रासः) पुत्र (पितरम्) पिता का आह्वान करते हैं। (वाजसातये) बल-वेग-ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये हम आपका आह्वान करते हैं। (मंहिष्ठम्) आप महादानी आपका, (वाजसातये) बल-वेग-ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये हम आह्वान करते हैं।

[प्रयस्वन्तः:=प्रयस् (अन्न, निघं. २।७)+मतुम्]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३१ २ ३
४६०—तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रँ सत्रा दधानमप्रतिष्कुतँ
१ २ ३ १ २
श्रवाँसि भूरि ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मँहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा
३ १ २ ३ २
सुपथा कृणोतु वज्री ।। ४ ।।

(तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर का (जोहवीमि) वार-वार और श्रद्धापूर्ण-भक्ति से मैं आह्वान करता हूँ। (मघवानम्) जो परमेश्वर ऐश्वर्यों का स्वामी है, (उग्रम्) नियमों में उग्र है, जो (सत्रा) सत्य है, और जो (भूरि) बहुत (श्रवांसि) धनों और यशों को (दधानम्) धारण करता, (अप्रतिष्कुतम्) और विरोधी शक्तियों द्वारा झुकाया नहीं जा सकता, (मंहिष्ठम्) पूजनीय और महादानी है,—उसका मैं आह्वान करता हूँ। (यज्ञियः) वह यज्ञ-कर्मों में एकमात्र पूजनीय-देव है। वह (राये) आध्यात्मिक-और सांसारिक सम्पत्तियों के प्रदान के लिये (गीर्भिः) स्तुति-प्रार्थना की वाणियों द्वारा (आ ववर्त) उपासकों की ओर आकृष्ट हो जाता है। वह (नः) हमारे (विश्वा श्रवांसि) सब प्रकार की सम्पत्तियों और यशों को (सुपथा) सुपथ द्वारा प्रापणीय (कृणोतु) करे, और कुपथों पर (वज्री) वज्र-प्रहार करे।

[सुपथा;—"अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान्" (यजु॰ ४०।१६)।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
४६१—अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो
३ १ २ ३ १ २
दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
१ २ ३ २ ३ २ २३ १ २ ३ २ ३ १ २
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ।। ५ ।।

हे परमेश्वर! (अस्तु) अच्छा, (श्रौषट्) मेरी प्रार्थनाओं को आप सुनिये। मैं (नु) निश्चय से (अग्निम्) आप जगन्नेता परमेश्वर को (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मों द्वारा सदा अपने (पुरः) सामने (आ दधे) रखता हूँ। (त्यत्) उस प्रसिद्ध (दिव्यं शर्धः) दिव्य-बलस्वरूप परमेश्वर का हम सब (वृणीमहे) वरण करते हैं। वह (इन्द्रवायू) परमैश्वर्यवान् है, और सबको गति तथा प्राण प्रदान करता है। (वृणीमहे) उसका हम सब वरण करते हैं। (यद् ह) और जब (नाभा) शरीर की नाभि में मन को (सन्दाय) बान्ध कर, उस (नव्यसे) सदा-नवीन तथा स्तुत्य और (विवस्वते) सूर्यसम प्रकाशी परमेश्वर की प्राप्ति के लिये उपासक,

(धीतयः) धारणा-ध्यान आदि (कणाः) कर्मों को (उपयन्ति) उपायरूप में प्राप्त करते हैं, (अध) तदनन्तर ही (नूनम्) निश्चय से हमारे धारणा-ध्यान आदि कर्म (प्र) शीघ्रता से हमें परमेश्वर के (अच्छ) समक्ष (उपयन्ति) ले जाते हैं, (न) जैसे कि धारणा-ध्यान आदि कर्म उपासक को (देवान् अच्छ) दिव्य गुणों के समीप ले जाते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४६२—प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।
१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ १
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय
१ २
शवसे ॥ ६ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारी (मतयः) मतियां परमेश्वर के प्रति (प्रयन्तु) प्रयाण करें—जो परमेश्वर (महे) महान् है, (विष्णवे) सर्वत्र व्यापक है, (मरुत्वते) तथा प्राणों का स्वामी है। मतियां (प्र) उसके प्रति प्रयाण करें जो कि (शर्धाय) बलस्वरूप है। (प्र) उसके प्रति प्रयाण करें जो कि (यज्यवे) उपासना-कर्मों को चाहता है, (सुखादये) सुखों का आदि स्रोत, (तवसे) गति-स्वरूप और वृद्धि प्रदाता है, (भन्ददिष्टये) हमारे अभीष्टों को कल्याणमय और सुखदायी बनाता है, (धुनिव्रताय) पापों को कंपा देने के व्रतवाला है, (शवसे) और शक्तिस्वरूप है। जिस उपासक ने (गिरिजाः) वेद की वाणियों में जन्म लिया है, अर्थात् वेदोपदेशों के अनुसार जो द्विजन्मा बन गया है, वह उपासक (मरुत्) प्राणस्वरूप होकर (एवया) इस प्रकार परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है।

[विष्णवे=विष्लृ व्याप्तौ। मरुत्=प्राण। उपासक, समाधि में, जब शरीर और इन्द्रियों से निश्चेष्ट हो जाता है, केवल श्वास-प्रश्वास ही नासिका में गतिशील रहते हैं, उस समय उपासक मानो प्राणस्वरूप सा हो रहा होता है। सुखादये=सुख+आदि+चतुर्थी विभक्ति]

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
४६३—अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥

(सयुग्वभिः) योगसाधनों से सम्पन्न उपासक, (हरिण्या) मनोहारिणी (अया) इस (रुचा) परमेश्वरीय—दीप्ति द्वारा, (पुनानः) अपने को पवित्र करता हुआ, (विश्वा) सब प्रकार की (द्वेषांसि) द्वेषभावनाओं से (तरति) तर जाता है। तदनन्तर (सयुग्वभिः) योगसाधनाओं से सम्पन्न उपासक, (सूरः न) सूर्य के सदृश अन्यों को भी प्रकाश देने लगता है। (यद्) जब उपासक की (पृष्ठस्य) पृष्ठ-वंश की सुषुम्ना में (धारा) प्रकाशधारा (रोचते) चमकने लगती है तब (पुनानः) उपासक अपने को और अधिक पवित्र कर, (अरुषः) रोष आदि दुर्गुणों से अलग होकर, (हरिः) प्रत्याहार-साधना पर विजय पा लेता है। हे उपासक! तब तू (ऋक्वभिः) ऋचामय-वेदों द्वारा, (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) सात छन्दों से युक्त ऋचामय-वेदों द्वारा, (विश्वारूपा) परमेश्वर के समग्र रूपों को स्वरूपों को (परियासि) तू जान लेता है।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४६४—अभि त्यं देवँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवँ
३ २ ३ १ ३ २ ३ १
रत्नधामभि प्रियं मतिम्।
३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
१ २ ३ १ २ ३ १ २
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥ ८॥

मैं उपासक (त्यम्) उस (देवम्) देवाधिदेव की (अभिअर्चामि) अभ्यर्चना करता हूँ, जो (ओण्योः) द्युलोक-और-भूलोक को (सवितारम्) उत्पन्न करता और उनमें प्रेरणाएं देता, जो (कविक्रतुम्) कवियों की कवित्वशक्ति से सम्पन्न, और (सत्यसवम्) सदा सत्य प्रेरणाएँ देता, जो (रत्नधाम्) रत्नों और रमणीय गुणों को धारण करता, (अभिप्रियम्) सब प्रकार से प्रियरूप, तथा (मतिम्) ज्ञानस्वरूप है, तथा (ऊर्ध्वा) ऊपर की ओर नक्षत्रों में (यस्य) जिसकी (भाः) प्रभा (अमतिः) मापी नहीं जा सकती, और जिस परमेश्वर की (सवीमनि) प्रेरणा में वह नक्षत्र-प्रभा (अदिद्युतत्) चमक रही है, (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण चमकने वाले नाना सूर्य-और-नक्षत्र जिसके हाथ के खेल हैं, उसने इन सबका (अमिमीत) निर्माण किया है। वह (सुक्रतुः) उत्तम संकल्पों वाला, सुकर्मी है। (कृपा) अपनी कृपा से उसने जगत् में (स्वः) सुख की मात्रा उत्पन्न की हुई है।

[ओण्योः=दयावापृथिव्योः (निघं. ३।३०)]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
४६५—अग्निँ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुँ सहसो
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
१ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः॥ ९॥

मैं उपासक (अग्निम्) जगन्नेता परमेश्वर को ही (होता) दाता (मन्ये) मानता हूँ, जो कि (वसोः) अभ्युदय और निःश्रेयस रूपी सम्पत्तियों का (दास्वन्तम्) दाता है, (सहसः) जो आध्यात्मिक शक्ति से (सूनुम्) प्रकट होता, (जातवेदसम्) वेदों का जन्मदाता है, तथा (विप्रं न) बुद्धिमानों के सदृश (जातवेदसम्) वेदों का ज्ञाता है। (यः) जो (देवः) अर्थात् परमेश्वर (ऊर्ध्वया) ऊपर के (देवाच्या) चमकते नक्षत्रों में पहुंची हुई अपनी (कृपा) कृपा या सामर्थ्य के कारण (स्वध्वरः) स्वध्वर कहा जाता है अर्थात् उत्तम प्रकार से संसार-यज्ञ का रचाने वाला कहा जाता है, वह (आजुह्वानस्य) आहुतिरूप में डाले गए (सर्पिषः घृतस्य) पिछले-घी की (शुक्रशोचिषः) चमकती ज्योति की (विभ्राष्टिम्) विशेष चमक के सदृश, चमक वाला है।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

४६६—तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥

(नृतः) संसार का नाच नचाने वाले (इन्द्र) परमेश्वर! (तव) आपका (त्यत्) वह (नर्यम्) मनुष्य हितकारी (प्रथमम्) श्रेष्ठ (अपः) कर्म है [जो कि आपने मनुष्यों को वेद-ज्ञान दिया है] यह श्रेष्ठ कर्म अर्थात् वेद-ज्ञान (प्रवाच्यं कृतम्) प्रवचन के योग्य है; (दिवि) द्युलोक में नक्षत्रों की रचना आपने (पूर्व्यम्) यथापूर्व की है, वह भी आपका श्रेष्ठ कर्म है जो कि प्रवचन के योग्य है। अन्तरिक्ष में (देवस्य) दिव्य-विद्युत् के (शवसा) बल द्वारा (यः) जो आप (अपः) मेघ वृत्र के (असुम्) जलरूपी प्राण को (प्रारिणाः) हरते हैं और परिणाम स्वरूप में (अपः) जलवर्षण (रिणन्) करते हैं,— यह भी आपका श्रेष्ठ कर्म है जो कि प्रवचन के योग्य है। आप (ओजसा) निज ओज द्वारा (विश्वम्) सब (अदेवम्) अदेव-शक्ति अर्थात् आसुरी—भावनाओं का (अभिभुवः) पराभव करते हैं, आप (ऊर्जम्) बल और प्राण प्रदान करते, और (इषम्) अभीष्ट सुख (विदेत्) प्रदान करते हैं, यह भी आपका श्रेष्ठ कर्म है जो कि प्रवचन के योग्य है। (शतक्रतुः) आप सैंकड़ों प्रकार के कर्मों वाले हैं, यह सब सांसारिक नाच है जिसे कि आप नचा रहे हैं।

ऐन्द्र काण्ड समाप्त

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [स्व० ३ । उ० ६ । धा० १० । ट ॥] इत्यैन्द्रं पर्वं काण्डं वा समाप्तम्

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥



(३)

अथ पावमानं काण्डं, आरण्यकालं, महानाम्न्यार्चिकम्

अथ पञ्चमोऽध्यायः

दशतिः ९

(१—१०) १, ४ अमहीयुराङ्गिरसः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वाः; ५ त्रित आप्त्यः; ६ कश्यपो मारीचः; ७ जमदग्निर्भार्गवः; ८ दृढच्युत आगस्त्यः; ९ १० असितः काश्यपो देवलो वा ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
४६७—उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उग्रँ शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

हे भक्तिरस ! (अन्धसः) इस अन्नमय शरीर से (ते) तेरा (जातम्) जन्म उच्या) सर्वोच्च (दिवि) मस्तिष्क में हुआ है। (दिवि) मस्तिष्क में तेरी (सत्) सत्ता हुई है। (भूमी) भूमि अर्थात् शरीर के निचले हिस्सों में उस भक्तिरस का (आदद) आदान हुआ है, संचार हुआ है। [अर्थात् मस्तिष्क में पहले भक्तिरस का विचार उठता है, फिर वह भक्तिरस कर्मेन्द्रियों मे संचारित होता है] वह भक्तिरस शनैः-शनैः(उग्रम्) प्रबल होता जाता है। वह फिर (शर्म) शान्तिप्रदान करता, और (श्रवः) महाकीर्ति देता है।

[अन्धस्=अन्न (निघं. २।७)। दिवि=दिवं यश्चक्रे मूर्धानम् (अथर्व० १०।७।३२) तथा "मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधिशीर्षतः" (अथर्व० १०।२।२६)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४६८—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥

(सोम) हे प्रेरणा देने वाले भक्तिरस ! तू (स्वादिष्ठया) अत्यन्त स्वादु और (मदिष्ठता) हर्ष तथा तृप्ति देने वाली (धारया) धारा में (पवस्व) प्रवाहित हो जा। हे भक्तिरस ! तू (इन्द्राय) परमेश्वर की (पातवे) स्वीकृति के लिये (सुतः) प्रकट किया गया है, या तू (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (सुतः) प्रकट किया गया है, ताकि परमेश्वर हमारी (पातवे) रक्षा करे।

[पातवे=पा (पाने, रक्षणे)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
४६९—वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥

हे भक्तिरस ! तू (मत्सरः) हर्ष का सरोवर है, सुख-शान्ति की (वृषः) वर्षा करता है, और (मरुत्वते) प्राणों के स्वामी परमेश्वर के लिये प्रकट हुआ है, तू (धारया) अपनी बहती धारा द्वारा (पवस्व) मेरे अंग-अंग में प्रवाहित हो जा (ओजसा) तू अपने प्रभाव द्वारा उपासक में (विश्वा) सब सद्गुणों का (दधानः) आधान करता है। [मत्सरः=मद्+सरस्]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४७०—यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥ ४ ॥

हे भक्तिरस ! (ते) तुझ से प्राप्त जो (मदः) आध्यात्मिक मस्ती है वह (वरेण्यः) वरने योग्य तथा सर्वश्रेष्ठ है। (तेन) उस मस्ती के साथ तू (पवस्व) मुझमें प्रवाहित हो जा। यह मस्ती (अन्धसा) उपासकों के लिये आध्यात्मिक अन्न है। यह मस्ती (देवावीः) जब परमेश्वर-देव तक पहुंचती है तव यह मस्ती (अघशंसहा) पाप की प्रंशसा करने की भावना का हनन कर देती है।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४७१—तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
१ २ ३ १ २
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥

भक्तिरस में लीन उपासक के मुख से (तिस्रः) तीनों (वाचः) वाणियाँ अर्थात् गद्य, पद्य और गीतिरूप वाणियाँ, स्तुति के निमित्त (उदीरते) उच्च स्वर में उच्चरित होती हैं, तब (हरिः) मनोहरी प्रभु उपासक का (कनिक्रदत्) आह्वान करता हुआ सा (एति) आ प्रकट होता है। जिस प्रकार कि बछड़ों को देखकर (धेनवः) दूधभरे थने वाली (गावः) गौएं (मिमन्ति) हम्भार उठती हैं।
[तिस्रः वाचः=सम्भवतः अ, उ, म् रूपी "ओ३म्" की तीन ध्वनियां]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ १ २
४७२—इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

(इन्दो) चन्द्रमा की तरह शान्तिदायक हे भक्तिरस ! तू (मधुमत्तमः)

अत्यन्त (पवस्व) मधुर है। (पवस्व) मुझ में तू प्रवाहित हो, तथा मुझे पवित्र कर, ताकि (मरुत्वते) प्राणों के स्वामी (इन्द्राय) परमेश्वर को मैं प्राप्त हो सकूं, और (अर्कस्य) सूर्य की (योनिम्) अर्थात् माता रूप परमेश्वर की गोद में (आसदम्) मैं बैठ सकूं।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
४७३—असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।
३ २उ ३ १ २
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥

उपासक के (मदाय) हर्ष के लिये, (अंशुः) ज्योतिः ((असावि) प्रकट हो गई है। यह ज्योतिः उपासक के (अप्सु) प्राणों और कर्मों में (दक्षः) बल और उत्साह रूप है, (गिरिष्ठाः) जिसका कि वर्णन वेदवाणी में है। (श्येनः) श्येन पक्षी जैसे अपने आश्रय पर आ बैठता है, वैसे ही उपासक (योनिम्) जगन्माता की गोदी में (आ सदत्) आ बैठा है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४७४—पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥

(हरे) हे इन्द्रियों को विषयों से हरने वाले भक्तिरस ! (पवस्व) तू हमें पवित्र कर। (देवेभ्यः) दिव्य व्यक्तियों के लिये (पीतये) तू पेय है, (दक्षसाधनः) तू शक्ति और वृद्धि का साधन है। तू (मरुद्भ्यः) मेरी प्राणशक्तियों, तथा (वायवे) श्वास-प्रश्वास के लिये, अर्थात् जीवन के लिये (मदः) आनन्ददायी है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
४७५—परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥

(सोमः) प्रेरणा देने वाला भक्तिरस, (पवित्रे) पवित्रात्मा में (परि अक्षरत्) प्रवाहित होता है। यह उसके मुख से (स्वानः) भक्ति-संगीत की ध्वनियों को जागरित करता, तथा उसकी (गिरिष्ठाः) वाणी में भक्तिरस स्थित हो जाता है। हे भक्तिरस ! (मदेषु) मस्तियों से तू हमारी (सर्वधाः) सब शक्तियों का धारण-पोषण करता (असि) है।

[स्वन्=To sing (आपटे)]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २उ ३क २र ३ २
४७६—परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः।
३ १ २ ३ १ २
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥

भक्तिरस मानो (दिवः) द्युलोक के, (प्रिया) प्रिय लगने वाले (वयांसि) नक्षत्र रूप पक्षिगणों में भी, (परि) चारों ओर उमड़ रहा है। (नप्त्योः) न पतन होने वाले, न गिरने वाले द्युलोक और भूलोक में भी (परिहितः) सर्वत्र स्थित है। भक्तिरस भक्त में (कविः) कवित्व शक्ति प्रदान करता, तथा (कविक्रतुः) कवियों की सी प्रज्ञाशक्ति और कर्मशक्ति प्रदान करता है, और (स्वानैः) भक्ति की संगीत ध्वनियों के साथ उपासक को (याति) प्राप्त होता है।

[स्वन् = To sing (आपटे)। नप्त्यौ = द्यावापृथिवी नाम (निघं. ३।३०) वयांसि = "तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते"। तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह (अथर्व० १३।३।४।२७,२८) उप आसते = उपासना कर रहे हैं]

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[स्व० ६। उ० ३ धा० ४२। गा ॥]

दशतिः १०

(१—१०) १ (कविर्मेधावी) श्यावाश्व आत्रेयः; २ त्रित आप्त्यः; ३, ८ अमहीयुराङ्गिरसः; ४ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ५, ६ कश्यपो मारीचः; ७ निध्रुविः काश्यपः, ९, १०, असितः काश्यपो देवलो वा ॥
पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४७७—प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्।
३ २ ३ १ २
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

(मदच्युतः) हर्ष-आनन्द-तृप्ति की वर्षा करने वाले, तथा (सोमासः) प्रेरणाएँ देने वाले भक्तिरस (नः) हम (मघोनाम्) आध्यात्मिक-सम्पत्तिशाली उपासकों के (श्रवसे) श्रवण-मनन के लिये सदा हों। इन भक्तिरसों ने (सुताः) निष्पन्न होकर, (विदथे) विवेक ज्ञान की ओर (प्र अक्रमुः) पग बढ़ाए हैं।

[अक्रमुः—क्रमु (पादविक्षेपे)]

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४७८—प्र सोमासो विपश्चितोपो नयन्त ऊर्मयः।
१ २ ३ १ २
वनानि महिषा इव ॥ २ ॥

हमारे आध्यात्मिक जीवनों में (विपःचितः) आध्यात्मिक वेपनों का चयन करने वाले, अर्थात् (ऊर्मयः) आध्यात्मिक लहरों को पैदा करने वाले (सोमासः) भक्तिरस, हमें भक्ति-मार्ग पर (प्र नयन्ते) आगे-आगे ले जाते हैं, (इव) जैसे कि (ऊर्मयः) वायु की लहरें (अपः) जलों को आगे आगे धकेल ले जाती हैं, या

(महिषाः) महायोगी मरुद्गण (वनानि) जल भरे बादलों को आगे-आगे धकेल लिये जाते हैं।

[वनम्=उदक (निघं. १।१२)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

४७९—पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।

२ ३ २ ३ १ २

विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

चन्द्रसम शान्तिदायक हे भक्तिरस! (पवस्व) हमें पवित्र कर। (वृषा) तू शान्ति की वर्षा करता हैं। (सुतः) तू उत्पन्न होकर (नः) हमें (जने) मनुष्य-समाज में (यशसः कृधि) यशस्वी बना। और (विश्वा द्विषः) सब प्रकार की हमारी द्वेष-भावनाओं को (अपजहि) दूर कर दे।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

४८०—वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।

१ २ ३ १ २

पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥

हे भक्तिरस! तू (हि) निश्चय से (वृषाअसि) सुखों की वर्षा करता है। (भानुना द्युमन्तम्) निज प्रकाश के द्वारा तू प्रकाश से सम्पन्न है। (त्वा) तेरा (हवामहे) हम आह्वान करते हैं। (पवमान) हे पवित्र करने वाले! (स्वर्दृशम्) तू मोक्ष-सुख का मार्ग दर्शाता है।

१ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २

४८१—इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः।

३ १ २र ३ १ २

सृजदश्वँ रथीरिव ॥ ५ ॥

(इन्दुः) भक्तिरस हमें (पविष्ट) पवित्र बना देता है, हममें नई (चेतनः) चेतना भर देता है, यह हमारी (प्रियः) प्रिय वस्तु है, यह (कवीनाम्) कवियों में (मतिः) नवीन मति जागरित कर देता हैं। यह (अश्वम्) मन को उपासना के लिये (सृजत्) तैयार कर देता है, (इव) जैसे कि (रथीः) सारथि, यात्रा के लिये, अश्व को तैयार करता है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

४८२—असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।

३ १ २ ३ १ २र

शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥

हम उपासकों में, (सोमासः) प्रेरणा देने वाले भक्तिरस, (प्र असृक्षत) तीव्रमात्रा में निष्पन्न हो गए हैं। ये (आशवः) वेग (शुक्रासः) और शक्ति देते, (वाजिनः) उत्साह और उद्यम देते, (गव्या) वाणी में शक्ति देते, (अश्वया) मन में शक्ति देते और (वीरया) धर्म-वीरता भर देते हैं।

[गव्या=(गो+या) प्रापणे। अश्वया; वीरया=अश्व+या=प्रापणे); वीर+या प्रापणे]

१२ ३१ २३१ २र ३१२
४८३—पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः।
३१ २र३१२
वायुमा रोह धर्मणा॥ ७॥

(देव) हे दिव्य भक्तिरस ! तू (आयुषग्) मेरी समग्र आयु का संगी बनकर (पवस्व) मुझमें प्रवाहित हो, और मुझे पवित्र करता रह। (ते) तेरी (मदः) मस्ती (इन्द्रं गच्छतु) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा को भी व्याप्त कर ले। हे भक्ति-रस ! तू अपने (धर्मणा) स्वभाव से मेरे (वायुम्) प्राणों और श्वास-उच्छ्वासों का (आरोह) अधिष्ठाता बन, शासक बन।

[आयुषग्=आयुस्+अक् (गतौ), या आयु+सज्]

१२ ३२३ ३१ २र३२
४८४—पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।
१२ ३२ ३२
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत्॥ ८॥

(पवमानः) पवित्र करने वाले भक्तिरस ने, (दिवः) द्युलोक में (तन्यतुम्) फ़ैली हुई, (चित्रम्) चित्र विचित्र रंगों वाली (तन्यतुम्) विस्तृत उषा के (न) सदृश प्रकाशमान, (वैश्वानरम्) विश्वनेत्री (बृहत् ज्योतिः) महा ज्योति परमेश्वर को हममें (अजीजनत्) प्रकट कर दिया है।

१२ ३२३ १२३ १२ ३१२ ३२
४८५—परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा।
१२ ३ १२
मधो अर्षन्ति धारया॥ ६॥

(इन्दवः) चन्द्रमा के सदृश शान्तिदायक भक्तिरस, योगमार्ग में प्रकट होने वाली (स्वानासः) दिव्य ध्वनियों को, जागरित कर देते हैं, परमेश्वर की (बर्हणा) महती (गिरा) वेदवाणी के गानों द्वारा, ये भक्तिरस, (मदाय) हर्ष-आनन्द को प्रकट करते हैं, जबकि ये भक्तिरस (मधोः) मधुर (धारया) धारारूप में (परि अर्षन्ति) सब ओर प्रवाहित हो जाते हैं।

[स्वानासः=श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमात् दिव्यं श्रोत्रम् (योग ३।४१)]

२३ १२ ३१ २र३ १२र ३२
४८६—परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः।
३१ २र३ १२
कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम्॥ १०॥

भक्तिरस (परि) समग्र जीवन में (असिष्यदत्) वेग से प्रवाहित हो गया हैं। इसने भक्ति में (कविः) कवित्व शक्ति निष्पन्न कर दी है। यह (सिन्धोः) हृदय समुद्र की (ऊर्मौ) लहरों पर (अधिश्रितः) सवार हो गया है। (पुरुस्पृहम्) पूर्ण स्पृहा के योग्य, (कारुम्) जगत् के कारीगर परमेश्वर को इसने हममें (बिभ्रत्) धारित कर दिया है।

इति दशमी दशतिः ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ [स्व० ११ । उ० ना । धा० ४६ । हो ॥]

इति पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः, पञ्चमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

दशतिः १

अथ षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

(१—१०) १, ८, २ अमहीयुरांगिरसः; २ बृहन्मतिराङ्गिरसः; ३ जमदग्निर्भार्गवः; ४ प्रभूवसुरांगिरसः; ५ मेध्यातिथिः काण्वः, ६, ७ निध्रुविः काश्यपः, १० उचथ्य आंगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

४८७—उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।

१ २ ३ १ २

इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

(सुजातम्) सम्यक् विधि से निष्पादित, (अप्तुरं) प्राणों के प्रेरक, (भङ्गम्) अशान्तिभंजक, (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा (परिष्कृतम्) परिमार्जित, (इन्दुम्) चन्द्र समशीतल भक्तिरस को, (देवाः) दिव्यगुणी उपासक, (उप उ) उपासना विधि द्वारा, (अयासिषुः) प्राप्त होते हैं।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

४८८—पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥

(पुनानः) जीवन को पवित्र करता हुआ, (विचर्षणिः) विशिष्ट-दृष्टि अर्थात् योगज अध्यात्म-दृष्टि का निष्पादक भक्तिरस, (विश्वाः) सब (मृधः) उपासना विरोधी शक्तियों को, (अभि अक्रमीत्) साक्षात् पददलित कर देता है। यानी लोग (धीतिभिः) ध्यानवृत्तियों द्वारा, (विप्रम्) समग्र जीवन में भरपूर हुए भक्तिरस को (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं।

[विप्रम्=वि+प्रा (पूरणे)]

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २उ

४८९—आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।

२ ३ १ २

इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥

(सुतः) उत्पन्न हुआ भक्तिरस (कलशम्) शरीर घट में (आविशन्) संचरित होता हुआ, (विश्वाः) सब प्रकार की (श्रियः) श्री सम्पत् को (अभि अर्षन्) साक्षात् प्राप्त कराता है, (इन्दुः) जबकि चन्द्रसम शीतल भक्तिरस (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति (धीयते) समर्पित कर दिया जाता है।

१२३ २३ १२ ३१२ ३क२र ३२

४६०—असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।

१ २ ३ १ २

कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥

(पवित्रे) पवित्र मन में (सुतः) उत्पन्न हुआ भक्तिरस, (चम्वोः) सिर से पैर तक (असर्जि) प्रकट हो गया है। (यथा) जैसे कि (रथ्यः) रथ का वहन करने वाला अश्व, रथ में (वाजी) वेग प्रदान करता है, वैसे भक्तिरस ने (कार्ष्मन्) कर्मबीजों की भूमि शरीर में, (न्यक्रमीत्) एक निश्चित आक्रमण कर दिया है।

[चम्वोः का अर्थ है द्युलोक और पृथिवीलोक। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि में द्युलोक सिर है, और पृथिवि-लोक पैर है। यथाः—"शीर्ष्णोद्यौः समवर्तत पद्भ्यां भूमिः" (यजु० ३१।१३)]

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

४६१—प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा आयासो अक्रमुः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

(न) जैसे (गावः) सूर्य किरणें (भूर्णयः) पृथिवी में एक नेतृशक्ति रूप हैं, (त्वेषाः) प्रकाशमान तथा (अयासः) गतिशील हैं; वे (यद्) जब (प्र) उग्ररूप में (अक्रमुः) आक्रमण करती हैं, तो पृथिवी की (कृष्णां त्वचम्) काली त्वचा अर्थात् अन्धकार को (अप हनन्तः) नष्ट कर देती हैं, वैसे ही भक्तिरस के प्रवाह जब (अक्रमुः) आक्रमण करते हैं तो वे चित्त के (कृष्णां त्वचम्) तामसिक आवरण को हटा देते हैं। ये प्रवाह (भूर्णयः) पृथिवी में एक नेतृ शक्ति रूप हैं, (त्वेषाः) ज्योतिष्मती वृत्ति और (अयासः) प्रयत्नशीलता के उत्पादक हैं।

[ज्योतिष्मती वृत्ती=विशोका वा ज्योतिष्मती (योग १।३६)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

४६२—अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।

३ १ २र ३ १ २

नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥

(सोम) हे प्रेरक भक्तिरस! (मृधः) तू उपासना की विरोधी शक्तियों को (अपघ्नन्) हटाता हुआ (पवसे) बहता है, और उपासकों को पवित्र करता है, (क्रतुवित्) तू प्रज्ञालोक को प्रकट करता, तथा कर्मयोग में प्रवृत्त करता है। तू (मत्सरः) उल्लास और हर्ष का सरोवर है, (अदेवयुं जनम्) और परमेश्वर देव

को न चाहने वाले व्यक्ति को (तुदस्व) परे रखता, उसे प्राप्त नहीं होता। [प्रज्ञा-लोक=तज्जयात् प्रज्ञालोकः (योग ३।५), अर्थात् संयम पर विजय द्वारा प्रज्ञालोक प्रकट होता है]

[क्रतुः=प्रज्ञा (निघं. ३।६); कर्म (निघं २।१)]

३१ २३ १२३ २३ २३१२
४६३—अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः।
३ १ २र ३२
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

हे भक्तिरस ! तू (अया) इस (धारया) धारा में (पवस्व) प्रवाहित हो जा और हमें पवित्र कर, (यया) जिस धारा द्वारा कि तूने (सूर्यम्) सौर चक्र को (अरोचयः) चमका दिया है। तू (मानुषीः) मनुष्यों के (अप) कर्मों को (हिन्वानः) प्रगति प्रदान करता, तथा उन्हें बढ़ाता है।

[अपः=कर्म (निघं. २।६)। सूर्यम्=सौर चक्र=Solar plexus= मणिपूर—चक्र। यह स्नायु-चक्र नाभि के पीछे सुषुम्ना दण्ड में होता है। योग दर्शन में इसे नाभि—चक्र कहा है। नाभिचक्र में संयम करने से शरीर की आभ्यन्तरिक नस नाड़ियों तथा अंङ्ग प्रत्यङ्गों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। "नाभिचक्रे कायव्यूह ज्ञानम् (योग ३।२६]। या सम्भवतः सूर्यपद द्वारा "सहसार—चक्र" का वर्णन हो]

१२ ३२उ ३ १ २ ३२३१२
४६४—स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे।
३ १ २३२ ३२
वव्रिवाँसं महीरपः ॥ ८ ॥

हे भक्तिरस ! (सः) वह तू (पवस्वः) मुझमें प्रवाहित हो जा, और मुझे पवित्र कर, (यः) जिस तूने कि (इन्द्रम्) जीवात्मा को (आविथ) घेर कर उसकी रक्षा की है, जिस जीवात्मा ने कि (त्राय वृहन्तवे) पापवृत्रों की हत्या के लिये, (महीः अपः) महा व्रतों का (वव्रिवासम्) वरण किया है।

३ २ ३१ २र ३ १२ ३ २३२
४६५—अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा।
३१२ ३ १२र
अवाहन्नवतीर्नव ॥ ६ ॥

(इन्द्रो) हे चन्द्रसमशीतल भक्तिरस ! (अया) इस (वीती) व्याप्ति से तू (परि) सर्वत्र मेरे अंग अंग में (आ) पूर्णरूप में (स्रव) प्रवाहित हो जा। तदन्तर (मदेषु) आनन्दमयी वृत्तियों के प्रकट हो जाने पर (यः ते) जो तेरा रसांश (नवतीः) सांसारिक सुखों की स्तुति करने वाली (नव) नित्य नई-नई चित्तवृत्तियों

को (अगाहन्) नष्ट कर देता है, निरुद्ध कर देता है, या जो तेरा रसांश मेरी ६६ वर्षों की आयु में (अवाहन्) बहता रहता है।

[नवतीः=नु (स्तुतौ)+शतृ+ङीप्। नव=नई। अवाहन्=अव+आ (या, अह)+हन्; तथा अ+वह्। एक वर्ष के लगभग मातृगर्भ में और ६६ वर्ष जन्म के बाद=१०० वर्ष]

१२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

४६६—परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अंधसा।

३ १ २ ३ २ ३ २

स्वानो अर्ष पवित्र आ॥ १०॥

भक्तिरस (अन्धसा) शारीरिक अन्न रूपी साधन द्वारा या अन्नमय शरीर द्वारा, (वाजम्) नई शक्ति को (नः) हममें (परिभरत्) सब प्रकार से भर देवे, जो नई शक्ति कि (द्युक्षम्) प्रकाश में हमारा निवास कराती, (सनद्रयिम्) और हमें आध्यात्मिक सम्पत्ति प्रदान कराती है। (स्वानः) हे भक्तिरस ! तू अन्तर्नाद प्रकट करता हुआ, (पवित्रे) हमारे पवित्र जीवन में, (आ अर्ष) पूर्णरूप में प्रवाहित हो जा।

[द्युक्षम्=द्यु (प्रकाश)+क्ष (क्षि निवासे)। सनद्रीयम्=सनत्=षणु (दाने)+रीयम्]

इति प्रथमा दशतिः॥ १॥ तृतीयः खण्डः॥ ३॥

[स्व० ६। उ० ६। धा० ३५। तु॥]

दशतिः २

(१—१४) १ मेधातिथिः काण्वः? २, ७ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३ उचथ्य आंगिरसः; ४ अवत्सारः काश्यपः; ५ निध्रुविः काश्यपः; ६, १० असितः काश्यपो देवलो वा; ८, ६ कश्यपो मारीचः; ११ कविर्भार्गवः; १२ जमदग्निर्भार्गवः; १३ अयास्य आंगिरसः; १४ अमहीयुरांगिरसः॥ पवमानः सोमः॥ गायत्री॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २र ३ २

४६७—अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।

१ २र

सं सूर्येण दिद्युते॥ १॥

(वृषा) सुख शान्ति की वर्षा करने वाला, (हरिः) दुःख हर्ता, (महान्) महाशक्तिरूप, (मित्रो न) तथा मित्र के समान उपकारी, (दर्शतः) दर्शनी भक्तिरस,—(सूर्येण) सूर्य चक्र की जागृति के साथ (संदिद्युते) सम्यक् प्रकार से चमकता है।[सूर्येण (४६३)]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
४६८—आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥

हे भक्तिरस !, (मयोभुवम्) मोक्षसुखदायी, (वह्निम्) प्रभु तक पहुँचाने वाले, (पान्तं) रक्षा करने वाले, (पुरुस्पृहम्) तथा बहुत भक्तों द्वारा चाहे गए, (ते) तेरे (दक्षम्) बल को (अद्य) आज हम (आ वृणीमहे) पूर्णेच्छा से चाहते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
४६९—अध्वर्यो अद्रिभिः सुतँ सोमं पवित्र आ नय ।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

(अध्वर्यो) हे हिंसारहित उपासनायज्ञ को रचाने वाले उपासक ! (अद्रिभिः) पर्वत मेघ आदि के दिव्य दृश्यों द्वारा (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) भक्तिरस को, (पवित्रे) अपने पवित्र जीवन में (आ नय) तू ला । (इन्द्राय) और परमेश्वर की (पातवे) स्वीकृति के लिये, (पुनाहि) इस भक्तिरस को पवित्र कर ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
५००—तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

(सः) वह उपासक (तरत्) पाप-नद से तर जाता है, (मन्दी) और आनन्दित हो जाता है, जबकि (अन्धसः) आध्यात्मिक अन्न से (सुतस्य) उत्पन्न हुए भक्तिरस की (धारा) धारा (धावति) उसमें दौड़ लगाती जाती है । (तरत् सः) वह उपासक अवश्य पाप नद से तर जाता है, (मन्दी) और आनन्दित हो जाता है, (धावति) और मानो उपासना मार्ग पर दौड़ लगाता है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५०१—आ पवस्व सहस्रिणँ रयिँ सोम सुवीर्यम् ।
३ १ २र
अस्मे श्रवाँसि धारय ॥ ५ ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! तू हमें (रयिम्) ऐसी आध्यात्मिक सम्पत्ति (आ पवस्व) प्रदान कर, जो कि (सहस्रिणम्) सांसारिक सम्पत्तियों से हजारों गुणा श्रेष्ठ है, (सुवीर्यम्) और उत्तम बलशाली है, और हे भक्तिरस ! (अस्मे) हममें (श्रवाँसि) दिव्य-श्रावण आदि अनुभूतियां (धारय) स्थापित कर ।

श्रवाँसि=ततः प्रातिभ "श्रावण" स्पर्शनादशस्वादवार्ताः जायन्ते (योग. ३।३६)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
५०२—अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
३ १ २ ३ १ २
रुचे जनन्त सूयम् ॥ ६ ॥

(प्रत्नासः) पुरातन (आयवः) उपासक लोग भक्तिरस द्वारा, (अनु) अनुक्रम से, (नवीयः पदम्) योग की नई-नई सीढ़ी पर (अक्रमुः) पग बढ़ाते रहे हैं, और (रुचे) आन्तरिक प्रकाश की प्राप्ति के लिये, वे (सूर्यम्) आध्यात्मिक सूर्य को (जनन्त) जन्म देते रहे हैं। [सूर्यम्=(मंत्र ४६३)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
५०३—अर्षा सोम द्युमत्तमोभि द्रोणानि रोरुवत् ।
२ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन्ययोनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥

(सोम) भक्तिरस के रसिक हे उपासक ! तू (वनेषु) वनों में (योनौ) जगत् की योनिरूप जगदम्बा की गोद में (आसीदन्) बैठ कर, (द्युमत्तमः) अत्युज्ज्वल अन्तः ज्योति को प्राप्त करके, (द्रोणानि) राष्ट्रों को (रोरुवत्) प्रभु के नामों से गुञ्जाता हुआ, (अभिअर्ष) सर्वत्र भ्रमण कर।

[द्रोणानि=राष्ट्रं द्रोणकलशः (तां ६।६।१)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५०४—वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
१ ३ १ २
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥

(सोम) हे भक्तिरस के रसिक ! (वृषा) तू आध्यात्मिक उपदेशों की वर्षा करता है, (द्युमान् असि) तू आध्यात्मिक द्युति से द्युतिमान् है। (देव) हे दिव्य गुणों वाले ! (वृषा) तू आध्यात्मिक उपदेशों की अवश्य वर्षा करता है (वृषव्रतः) उपदेशों की वर्षा करना,—यह तेरा व्रत है। (वृषा) उपदेशों की वर्षा करता हुआ तू (धर्माणि) संसार में धर्मकर्मों की (दध्रिषे) स्थापना करता है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५०५—इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
१ २ ३ १ २र
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥

(इन्दो) चन्द्रसमशीतल हे भक्तिरस ! (मनीषिभिः) मनः संयमी उपासक शिरोमणियों द्वारा (मृज्यमानः) विशुद्ध किया गया तू, (इषे) उपासक की अभीष्ट सिद्धि के लिये, उसमें (धारया) धारा रूप में (पवस्व) प्रवाहित हो जा। (रुचा) और अपनी रुचिकर धारा द्वारा, प्रवाह द्वारा, तू (गाः) उपासक की इन्द्रियों में भी

(अभि इहि) प्राप्त हो जा, अर्थात् उपासक की प्रत्येक इन्द्रिय भक्तिरस से आप्लावित हो जाए।

[गौः=इन्द्रिय (उणा. कोष. २।६७), वैदिक पुस्तकालय, अजमेर]

३ १ २ ३ १२३ १२ ३२
५०६—मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः।
२ ३१२ ३२
अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥

(सोम) हे भक्तिरस! तू (वृषा) शान्ति की वर्षा करता, (देवयुः) और महादेव प्रभु की ओर ले जाता है। तू (मन्द्रया धारया) आनन्दमयी धारा रूप में (पवस्व) हममें प्रवाहित हो, और हमें पवित्र कर। और (अव्याः) रक्षक-महाप्रभु कीं,—(वारेभिः) विघ्न बाधाओं का निवारण करने वाली शक्तियों के साथ, (अस्मयुः) हमें प्राप्त हो।

[देवयुः, अस्मयुः=देव+या (प्रापणे); अस्म+या (प्रापणे); अथवा व्यच्]

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र
५०७—अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः।
३ १ २र
मन्दान इद्वृषायसे ॥ ११ ॥

(सोम) हे भक्तिरस! (अया) इस (सुकृत्यया) उत्तम कर्मयोग की क्रियाओं द्वारा (महान् सन्) तू पहले ही महान् है, बढ़ा हुआ है, (अभ्यवर्धथाः) अब तू और भी बढ़। (मन्दानः इत्) सदा आनन्द देता हुआ तू (वृषायसे) आनन्द की झड़ी लगा दे।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
५०८—अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति।
३ १ २र ३ २
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥

(अयं) यह भक्तिरस (विचर्षणिः) प्रभु का विशेष दर्शन कराता है, (हितः) हितकारी है, (पवमानः) पवित्र करता, (चेतति) तथा सचेत करता है। (बृहत्) और बड़े (आप्यम्) बन्धुत्व की ओर (हिन्वानः) प्रेरित करता है।

[बृहत् आप्यम्="वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श की ओर"]

१ २ ३ १ २र ३ १ २र
५०९—प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि।
३ २ ३ २ ३ १ २
अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥

(इन्दो) हे आध्यात्मिक प्रकाश देने वाले भक्तिरस ! (नः) हमें (महे तुने) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने के लिये, अथवा हमारी, महान् वृद्धि के लिये तू हममें (ऊर्मि न) लहर का रूप (बिभ्रत्) धारण करके, (प्र अर्षसि) बह रहा है। (अयास्यः) बिना प्रयास के तू हमें (देवान् अभि अर्षसि) दिव्य गुणों की ओर ले जाता है, या दिव्यगुण प्राप्त कराता है।

[तना=धननाम (निघं २।१०), अथवा "तुने"=वृद्धि के लिये तु=वृद्धौ]

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

५१०—अपघ्नन्पवते मृधोप सोमो अराव्णः।

२ ३ १ २ ३ २

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥

(सोमः) भक्तिरस (मृधः) विघ्न-बाधाओं को (अपघ्नन्) दूर हटाता हुआ, तथा (अराव्णः) अदान भावनाओं को (अप) दूर करता हुआ, (पवते) प्रवाहित हो रहा है, और हमें पवित्र कर रहा है। और (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (निष्कृतम्) विशुद्ध स्वरूप को (गच्छन्) प्राप्त कराता है।

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [स्व० १५। उ० २। धा० ५७। फो।] इति गायत्र्यः ॥

दशतिः ३

(१—१२) सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः,) पवमानः सोमः ॥ बृहती ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

५११—पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! (पुनानः) तू उपासकों को पवित्र करता हुआ, (अपः वसानः) और उनके कर्मों में बसता हुआ, (धारया अर्षसि) निरन्तर धारा प्रवाह में बह रहा है। (रत्नधाः) तू रमणीय-गुण धारण कराता हुआ, तथा उनका पोषण करता हुआ (उत्सः) निरन्तर बहने वाला स्रोत बना है। (देवः) तू दिव्य-गुणों वाला, (हिरण्ययः) तथा हृदय को भाने वाला है। तू (ऋतस्य) सत्य नियमों की (योनिम्) निर्माण शक्ति रूप जगदम्बा की गोद में (आ सीदसि) आ विराजा है।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २

५१२—परीतो षिञ्चता सुतँ सोमो य उत्तमँ हविः।

३ १ २र ३ २ऽ २उ ३ १ ३ २ ३ १ २

दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

हे उपासकों! तुम (सुतम्) उत्पन्न भक्तिरस को, (इतः) अपने जीवनों से (परिषिञ्चत) सबके जीवनों में सींच दो। (यः) जो (सोमः) भक्तिरस कि (उत्तमं हविः) उपासना यज्ञ में सर्वोत्तम हवि है, प्रभु को समर्पित करने की सर्वोत्तम हवि है। (यः) जो भक्तिरस (अप्सु) बाह्य-कर्मों तथा (अन्तः) आभ्यन्तर कर्मों में (दधन्वान्) बसा हुआ होकर, (नर्यः) नर-नारियों का हितकर होता है। (सोमम्) तथा जिस भक्तिरस को उपासकों ने (अद्रिभिः) पर्वतों-मेघों आदि के दृश्यों द्वारा (आसुषाव) उत्पन्न किया है, अर्थात् इन दृश्यों की दिव्य विभूतियों को अनुभव कर, इन विभूतियों के स्वामी का अनुमान कर, उसकी उपासना के निमित्त भक्तिरस का अवलम्ब लिया है।

१ २ ३ १ १र ३ १ २र ३ १ २
५१३—आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ ३ ॥

(सोम) हे भक्तिरस! तू (स्वानः) उपासक में अन्तर्नाद उत्पन्न करता है; (अद्रिभिः) पर्वतों-मेघों आदि दिव्य दृश्यों द्वारा तू उत्पन्न होता है; (मंत्र ५१२)। (वाराणि) विघ्न बाधाओं का निवारण करने वाली (अव्यया=अव्ययानि) रक्षक प्रभु की अविनश्वर शक्तियों को प्राप्त कर, (तिरः) तू विघ्न-बाधाओं को तिरस्कृत कर देता है। (जनः न) जैसे जनता (पुरि) नगर में प्रविष्ट होती है वैसे भक्तिरस (चम्वोः) मानों द्युलोक और भूलोक में (आ विशन्) भरपूर हुआ हुआ है। (हरिः) हे भक्तिरस! तू क्लेशापहारी है, (वनेषु) वनों में, वानप्रस्थियों में (सदः दध्रिषे) हे भक्तिरस! तूने निवास किया है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५१४—प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।
३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अँशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छाकोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

(सोम) हे भक्तिरस! (देववीतये) परमेश्वर देव के प्रति समर्पित होने के लिये, (अंशोः) प्रकाशमय परमेश्वर के (पयसा) आनन्दरस की प्राप्ति द्वारा (प्र पिप्ये) तू खूब बढ़ता है, (न) जैसे कि (सिन्धुः) वहता नद (अर्णसा) वर्षाजल द्वारा खूब बढ़ता है। (मदिरो न) जैसे आनन्दोल्लसित व्यक्ति (जागृविः) परमेश्वर के दर्शन के लिये सदा जागरूक रहता है, वैसे तू भी उपासक में सदा जागरूक रह। (मधुश्चुतम्) और मधुर आनन्द रस के बहाने वाले (कोशम्) आनन्दमय-कोश को, तू (अच्छ) प्राप्त हो जाता है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
५१५—सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ५ ॥

(सोमः) भक्तिरस (उ) निश्चय से (स्वानः) अन्तर्नाद उत्पन्न करता है। भक्तिरस के (सोतृभिः) निष्पादक उपासकों द्वारा भक्तिरस प्रादुर्भूत होता, और माता की (स्नुभिः) प्रस्तुत दुग्ध धाराओं के समान जगदम्बा की (अवीनाम्) रक्षक शक्तियों द्वारा परिपुष्ट होता है। (इव) जैसे अश्वारोही (हरिता) हरण करने वाली तेज (अश्वया) घोड़ी के द्वारा (अधियाति) अधिक वेग से जाता है, वैसे भक्तिरस के (हरिता धारया) तेज प्रवाह द्वारा उपासक (अधि याति) परमेश्वर की ओर अधिक वेग से बढ़ता हैं। निश्चय से भक्तिरस की (मन्द्रया धारया) आनन्द रस मयी धारा के द्वारा उपासक (अधि याति) परमेश्वर की ओर अधिक वेग से बढ़ता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५१६—तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥ ६ ॥

(सोम) हे भक्तिरस के स्वामी! (इन्दो) हे चन्द्रसमशीतलप्रकाशी प्रभो! (अहम्) मैं उपासक (तव) आपके (सख्ये) सखिभाव में, (दिवे दिवे) प्रतिदिन, (रारण) रमण करता हूँ, या आपके गुणों का गान करता रहता हूँ। (बभ्रो) हे धारक तथा पोषक प्रभो! मेरी भक्ति के मार्ग में (पुरूणि) बहुत से विघ्न (नि चिरन्ति) निश्चित विचरते हैं, (माम्) मेरी उन विघ्नों से (अव) रक्षा कीजिये। (तान् परिधीन्) उन विघ्नों के घेरों से (अति इहि) मुझे पार कर दीजिये।

[रारण=रमु क्रीडायाम्; यारण शब्दे]

३ १ २ ३ १ २र
५१७—मृज्यामनः सुहस्त्या समुद्रे वाचमि न्वसि।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ ७ ॥

(सुहस्त्य) बिना हाथों के सुन्दर हस्तकौशल वाले हे प्रभो! (मृज्यमानः) भक्ति द्वारा मांजे जाकर आप, (समुद्रे) हृदय समुद्र में, (वाचम्) अपनी प्रेरणामयी वाणी को (इन्वसि) प्रेरित करते हैं। (पवमान) हे पवित्र करने वाले प्रभो! (पिशङ्गम्) शरीर के अवयव-अवयव में व्याप्त, (पुरुस्पृहम्) अति स्पृहणीय, (बहुलं रयिम्) मात्रा में प्रभूत, आनन्दरस रूपी सम्पत्ति (अभ्यर्षसि) आप प्रदान करते हैं। [पिशङ्गम्=पिश अवयवे+गम्]

३ १ २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
५१८—अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥

(सोमासः) भक्तिरस से सम्पन्न, (मनीषिणः) मन का संयम करने वाले,

(मत्सरासः) हर्ष के सरोवर, (मदच्युतः) तथा हर्ष की वर्षा करने वाले (आयवः) उपासक जन, (समुद्रस्य) हृदय समुद्र की (विष्टपे अधि) शोक सन्ताप से रहित गुफ़ा में, (मद्यम्) हर्षोत्पादक (मदम्) मस्ती को (अभि पवन्ते) प्रवाहित करते हैं।

३ १ २३ १२३२ ३ २३ १२ ३२
५१९—पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः।
१ २र ३१ २३१ २
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ॥ ९ ॥

(सोम) हे भक्तिरस से सम्पन्न उपासक ! (पुनानः) भक्तिरस द्वारा अपने आपको तथा अन्यों को पवित्र करता हुआ तू, (जागृविः) उपासना के लिये सदा सावधान रह। (अव्याः) रक्षिका—जगदम्बा की (वारैः) विघ्न निवारक श्रेष्ठ रक्षाओं द्वारा, (परि प्रियः) तू सबका प्रिय बना है। (त्वम्) तू (विप्रः) मेघावी (अभवः) हो गया है। (अङ्गिरस्तम) हे प्राणविद्यावेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ ! तू (नः) हमारे (यज्ञम्) उपासना यज्ञों को (मध्वः) मधुर भक्तिरस से (मिमिक्ष) सींच।

[अङ्गिराः=प्राणः (शत० ६।१।२।२८)]

१ २ ३ २३ १२ ३१२ ३२
५२०—इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः।
३ १२३१ २र ३ १२ ३१२
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥

(सुतः) अंग-अंग में उत्पन्न हुआ (मदः) हर्षप्रद (सोमः) भक्तिरस, (मरुत्वते) मरुतों अर्थात् प्राणों के स्वामी (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति (पवते) प्रवाहित हुआ है। यह भक्तिरस (सहस्रधारः) हजारों उपासकों का आधार है। (अव्यम्) रक्षक परमेश्वर की रचनाओं में (अति अर्षति) भक्तिरस सर्वश्रेष्ठ रचना हैं। (आयवः) उपासक जन (तं ईम्) उस भक्तिरस को (मृजन्ति) शुद्ध, पवित्र करते हैं।

१२ ३१२३१ २र ३ १२
५२१—पवस्व वाजसातमोभि विश्वानि वार्या।
१ २३१२३१ २र ३१२ ३२
त्वँ समुद्रः प्रथमे विधर्मे देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ ११ ॥

हे भक्तिरस ! (विश्वानि वार्या अभि) सब श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति को लक्ष्य में रख कर (पवस्व) तू हममें प्रवाहित हो जा। (वाजसातमः) शक्ति देने में तू सर्वश्रेष्ठ है। (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ, (विधर्मन्) तथा विविध अङ्गों का धारण पोषण करने वाले हृदय में, (त्वम्) तू (समुद्रः) समुद्ररूप में उमड़ा हुआ है। (सोम) हे भक्तिरस ! (देवेभ्यः) दिव्यगुणी उपासकों के लिये तू (मत्सरः) आनन्द बहाने वाला है।

१२ ३२३२३ १२
५२२—पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया।
३११ ३१२३१ २र ३२३१ २र
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयाँसि च ॥१२॥

(पवमानाः) पवित्र करने वाले भक्तिरसों ने, (अति धारया) वेगवती धाराओं द्वारा, प्रवाहों द्वारा, (पवित्रम्) सबसे पवित्र परमेश्वर को (असृक्षत) प्रकट कर दिया है। (मरुत्वन्तः) भक्तिरस, प्राणशक्ति प्रदान करते, (मत्सराः) आनन्द रस धारा बहाते, (इन्द्रियाः) तथा परमेश्वर को प्रिय हैं, (हयाः) और प्रगतिदायक हैं। भक्तिरसों ने (मेधाम् प्रयांसि च) मेधाशक्ति और प्रयत्नशक्ति को (अभि असृक्षत) प्रकट कर दिया है।

[इन्द्रियाः=इन्द्रस्य प्रियाः। हयाः (गतौ)]

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ इति बृहत्यः ॥

स्व० १९। उ० ३। धा ९१। द॥

दशति ४

(१—१०) १, ९ उशना काव्यः; २ वृषगणो वासिष्ठः, ३; ७ पराशरः शाक्त्यः; ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ५; १० प्रतर्दनो देवोदासिः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः ॥ त्रिष्टुप ॥

२ २र३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
५२३—प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा वर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१

हे उपासक! (तु प्र द्रव) अब तो तू तीव्रसंवेगी बन, (कोशम्) हृदय-कोश में (परि नि षीद) तू पूर्णतया स्थित हो जा। (पुनानः) अपने आप को पवित्र करता हुआ तू, (नृभिः) उपासना के नेताओं द्वारा, (वाजम्) शक्ति (अभि अर्ष) प्राप्त कर। (न) अश्वसेवक, (वाजिनं अश्वम्) वेग वाले अश्व को, (मर्जयन्तः) साफ सुथरा करके, (अच्छ) गन्तव्य देश की ओर (रशनाभिः) लगामों द्वारा (नयन्ति) ले जाते हैं, वैसे उपासना के नेता लोग (वाजिनम्) तुझ तीव्रसंवेगी को, (यर्जयन्तः) मार्जन विधि द्वारा शुद्ध पवित्र करके, (बर्हिः अच्छ) हृदयाकाश की ओर, (रशनाभिः) स्तुति प्रार्थना की वाणियों द्वारा (नयन्ति) ले जाते हैं।

[बर्हिः=आकाश (निघं.१।३)। रशना=वाणी; Tongue (आपटे)]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
५२४—प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
१ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥

(उशना) प्रजासुख की कामना वाला प्रभु (न) जैसे (काव्यम्) अपने वेद-काव्य का (प्र ब्रवाणः) प्रवचन करता हुआ (देवानाम्) सृष्टि के दिव्य पदार्थों की (जनिमा) उत्पत्तियों का (वि वक्ति) विवेक पूर्वक कथन करता है, वैसे उपासक वेदकाव्य का प्रवचन करता हुआ सृष्टि के दिव्य पदार्थों का उपदेश करता है। (महिव्रतः) महाव्रतधारी, (शुचिबन्धुः) पवित्र प्रभु का बन्धु, (पावकः) अन्यों को

अपने उपदेशों द्वारा पवित्र करता हुआ, (पदा) वैदिक पदों द्वारा (रेभन्) नाद करता हुआ (अभ्येति) उपासक सर्वत्र आता जाता है, (वराहः) जैसे कि मेघ, आकाश को देखकर गुञ्जाता हुआ और वर्षा करता हुआ, आता जाता है।

३ १ २र २ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
५२५—तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥

(वह्निः) अग्नि के सदृश ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित उपासक, (तिस्रः वाचः) ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन करने वाली तीन प्रकार की वैदिक वाणिय-अर्थात् ऋक्, यजुः, साम, अथर्व को (प्र ईरयति) प्रचारित करता है, और (ऋतस्य) सत्य की (धीतिम्) धारणा और (ब्रह्मणः मनीषाम्) ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान क प्रचार करता है। (गावः) जैसे गौएँ (गोपतिम्) अपने गोस्वामी की शरण में (यन्ति) जाती हैं, वैसे (मतयः) मननशील उपासक (पृच्छमानाः) परस्पर रहस्य ज्ञान को पूछते हुए, (वावशानाः) और उसका उपदेश देते हुए (सोमम्) उत्पादक प्रभु को (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २
५२६—अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥

(अस्य) इस प्रभु की (हेमना) वृद्धिकारक (प्रेषा) प्रेरणाओं द्वारा (पूयमानः) पवित्र होता हुआ (देवः) दिव्य उपासक, (देवेभिः) अन्य दिव्य उपासकों के साथ मिल कर, उन के भक्तिरसों के साथ (रसम्) अपने भक्तिरस का (समपृक्त) मेल करता है, संतुलन करता है। (सुतः) नवीन आध्यात्मिक जीवन वाला उपासक (रेभन्) प्रभु के भक्तिगान गाता हुआ, (पवित्रम्) पवित्र प्रभु को (पर्येति) पूर्णतया प्राप्त कर लेता हैं। और (इव) जैसे गोस्वामी (पिता) निर्मित (पशुमन्ति सद्म) गोशाला में (पर्येति) स्वेच्छा पूर्वक जाता है, वैसे (होता) उपासनायज्ञ में आत्माहुति देने वाला उपासक, स्वेच्छया, जब चाहे (पर्येति) प्रभु के पास पूर्णतया पहुंच जाता है।

[हेमना=हि वृद्धौ]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
५२७—सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २उ
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

(सोमः) जगदुत्पादक प्रभु की (पवते) सर्वत्र गति है। वह (मतीनां

जनिता) वेद द्वारा ज्ञानों का उत्पादक है, (दिवः जनिता) द्युलोक का उत्पादक है, (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का उत्पादक है, (अग्नेः जनिता) अग्नि का उत्पादक है, (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक है, (इन्द्रस्य जनिता) बिजली का उत्पादक है, (उत) और (विष्णोः) यज्ञकर्मों का (जनिता) उत्पादक है।

[पवते =गतिकर्मा (निघं. २।१४)। विष्णुः=यज्ञः (ऐतरेय ब्रा० १।१५); यज्ञकर्म का अभिप्राय है "बिना स्वार्थ के परोपकार"; देवकोटि के लोगों की पूजा, सत्संग तथा दान]

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

५२८—अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ ६ ॥

(त्रिपृष्ठम्) तीनों लोकों की पीठों पर सवार, (वृषणम्) सुखों की तथा सुखसाधनों की वर्षा करने वाले, (वयोधाम्) जीवन प्रदाता, (अङ्गोषिणम्) अंग-अंग में उष्णता देने वाले, परमेश्वर का (वाणीः अभि अवावशन्त) वेदवाणियां वार-वार प्रत्यक्ष वर्णन कर रही हैं। (वना =वनानि) मेघीय जलों में (वसानः) बसा हुआ (वरुणः) विद्युत् (न) जैसे (सिन्धुः) जलों का स्पन्दन करती है, जलों की वर्षा करती है, वैसे (रत्नधाः) रमणीय पदार्थों का धारण पोषण करने वाला प्रभु (वार्याणि) वरणीय श्रेष्ठ पदार्थों का (वि दयते) विविध दान कर रहा है।

[वनम्=उदक (निघं. १।१२)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

५२९—अक्रांत्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥

(समुद्रः) सद्गुणरूपी रत्नों के समुद्र, (भुवनस्य) लोक लोकान्तरों के (गोपाः) रक्षक प्रभु ने, (प्रजाः जनयन्) प्रजाओं को जन्म देते हुए, (प्रथमे विधर्मन्) विविध जगत् के धारक विस्तृत आकाश में (अक्रान्) पग बढ़ाया है। (अव्ये) सूर्य से उत्पन्न हुए (पवित्रे) पवित्र भूमण्डल में, (अधि सानः) सर्वाधिक दान करता हुआ, (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु, (वृषा) सुखों की वर्षा कर रहा है। वह प्रभु (स्वानः) ऋषियों के हृदयों में वेदों का नाद करता है, (अद्रिः) पर्वतवत् अचल है, (बृहत् वावृधे) प्रजाजनों को अधिकाधिक बढ़ाता है।

[प्रथमे=प्रथ् विस्तारे। सानः=षणु दाने। अव्ये=अवि (सूर्य), अथर्व. १०।८।३१ सोमः=षु प्रसवे। स्वानः=स्वन् शब्दे (आपटे)]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

५३०—कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥

(हरिः) प्रत्याहार साधना सम्पन्न उपासक, (सृज्यमानः) योग साधनाओं द्वारा नवोत्पन्न होता हुआ, (वनस्य जठरे) और वन के पेट में (आ सीदन्) आसन जमा कर (पुनानः) अपने आप को पवित्र करता हुआ, (कनिक्रन्ति) प्रभु का आह्वान् करता है। (नृभिः) उपासक नेताओं द्वारा (यतः) यम नियमों में जकड़ा गया उपासक, (गाम्) अपनी वाणी को (निर्णिजं कृणुते) विशुद्ध करता है, सत्य भाषण द्वारा विशुद्ध करता है। (अतः) इसलिये हे अन्य उपासको ! तुम भी (स्वधाभिः) आत्मा का धारण और पोषण करने वाले योग साधनों द्वारा, (मतिम्) अपनी मती को (जनयत) योग साधना के लिये तय्यार करो।

३२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५३१—एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९॥

(इन्द्र) हे जीवात्मन् ! (मधुमान्) मधुर, (वृषा) और सुखों की वर्षा करने वाला (एषः) यह (स्यः) वह (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु, (वृष्णः ते) भक्तिरस की वर्षा करने वाले तेरे (पवित्रे) पवित्र हृदय में (परिअक्षाः) परिपूर्ण रूप में व्याप्त है। प्रभु (सहस्रदाः) हजारों सुखसाधन देता है, (शतदाः) शतगुणित हजारों सुखसाधन देता है, (भूरिदावा) अगणित सुखसाधन देता है। (वाजी) शक्तिशाली प्रभु (शश्वत्तमम्) शाश्वतिक (बर्हिः) आकाश में (अस्थात) व्याप्त है।

[एषः स्यः=समीप हृदय में रहने वाला, और दूर से दूर आकाश में व्याप्त। मधुमान्=आनन्दरस वाला, आनन्दमय]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
५३२—पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१०॥

(सोम) हे जगदुत्पादक ! (पवस्व) आप मुझे प्राप्त हूजिए। (मधुमान्) आप मधुर-आनन्दरसमय हैं, (ऋतावा) सत्यनिष्ठ हैं, (अपः) कर्मबन्धनों के देता हैं, (अव्ये) आप द्वारा रक्षणीय भूमण्डल में आप (अधिसानः) अधिकाधिक सुख सामग्री प्रदान कर रहे हैं। हे प्रभो ! (घृतवन्ति) घृतसेवन द्वारा परिपुष्ट (द्रोणानि) मेरे प्राणों में (अवरोह) अवतरण कीजिए, (मदिन्तमः) आप तृप्तिदायक हैं, (मत्सरः) आनन्दरस बहाते हैं, (इन्द्रपानः) जीवात्मा के रक्षक हैं।

[अपः=कर्म (निघं.२।१) वसानः=छेदने, अपहरणे(चुरादि)। सानः=षण् दाने। अव्ये=अवरक्षणे। द्रोणानि=प्राणा वै द्रोण कलशः (मैं०४।५।९) मदिन्तमः =मद तृप्तियोगे। प्रभु के दर्शन पाकर कामनायें तृप्त हो जाती हैं, सांसारिक कामनाएं क्षीण हो जाती हैं।]

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[स्व० १८ । उ० ३ । धा० ८७ । डे ॥]

दशतिः ५

(१—१२) १ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २, १० पराशरः शाक्त्यः; ३ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः; ४ वशिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५ कर्णश्रुद्वासिष्ठः; ६ नोधा गोतमः; ७ कण्डो घौरः; ८ मन्युर्वासिष्टः; ९ कुत्स आङ्गिरसः; ११ कश्यपो मारीचः; १२ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः

॥ त्रिष्टुप् ॥

१ २३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
५३३—प्र सेनानीः शूरो अग्ने रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
३२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १२ ३ १ २
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिस्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते
॥ १ ॥

(गव्यन्) शत्रुओं की भूमियों को चाहता हुआ (शूरः सेनानीः) शूरवीर सेनापति जैसे (रथानाम्) राथारोही-सैनिकों के (अग्रे प्र एति) आगे आगे चलता है, तब (अस्य सेना) इसकी सेना (हर्षते) हर्ष प्राप्त करती है, वैसे (गव्यन्) उपासकों को चाहता हुआ प्रभु, उपासकों के देवासुर संग्रामों में, (रथानाम्) शरीर रथियों अर्थात् आत्माओं का जब (अग्रे प्र एति) अगुआ बनता है, तब (अस्य) इस प्रभु की (सेना) उपासक-सेना (हर्षते) हर्ष को प्राप्त करती है। उस समय (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु, (सखिभ्यः) उपासक-सखाओं के लिए, (भद्रान्) कल्याणकारी (इन्द्रहवान्) अपने शक्तिशाली आह्वान (कृण्वन्) करता हुआ, (रभसानि) उपासकों के भंगुर (वस्त्रा) शरीर-रूपी वस्त्रों को (आ दत्ते) हर लेता है, उन्हें मोक्ष प्रदान करता है।

[रथानाम्=रथारोही। "आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु"
(कठ. अ १। वल्ली ३। खं. ३)
गव्यन्=गौ=भूमि (निघं. १।१); गौ=स्तोता (निघं. ३।१६)]

२ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
५३४—प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येतष्यव्यम् ।
१२ ३१२३ १ २ १ २ ३२३१२ ३ २
पवमान पवसे धाम गोनां जनयंत्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ २ ॥

हे उपासक ! (ते) तेरे चित्त में (मधुमतीः धाराः) मधुर अर्थात् आनन्द-रसमयी धारायें (प्र असृग्रन्) प्रवाहित होती हैं (यत्) जब कि तू (अव्यं वारम्) पार्थिव भोगों के (वारम्) घेरे को (अत्येषि) लाँघ जाता है, और (पूतः) पवित्र हो जाता है। तब (पवमान्) हे पवित्र करने वाले प्रभो ! आप (गोनाम्) इंद्रियों के (धाम) धामों को (पवसे) पूर्णतया पवित्र कर देते हैं, (सूर्यम्) और आध्यात्मिक-सूर्य को (जनयन्) प्रकट करते हुए, उसे (अर्कैः) ज्योतिर्मयी किरणों से (अपिन्वः) भरपूर कर देते हैं।

[मधुमती:=आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में चित्तवृत्तियाँ मधुर आनन्द-रसमयी धाराओं में प्रवाहित होने लगती है (योग १।४०)। अव्यम्=अविसम्बन्धी अवि=पृथिवी "इयं पृथिवी वा अविः इयं हीमाः सर्वाः प्रजा अवति" (श० ब्रा० ६।१।२।३३) यथा अवनि (निघं १।१) वारम्=आवरण करने वाला अर्थात् घेरा। धाम=स्थान। शरीर के बाहिरी हिस्से पर इन्द्रियों की स्थिति दीखती है, परन्तु इनके मूल मस्तिक में नाना केन्द्र हैं। इन मूलों की पवित्रता हो जाती है। सूर्यम्=ब्रह्म साक्षात्कार से पूर्व ध्याता को ध्यान में कई दृश्य दिखाई देते हैं, जिनमें सूर्य भी दिखाई देता है। यथा:--नीहार, धूम अर्क (सूर्य) अनिल (वायु) अनल (अग्नि), जुगनु या तारे, विद्युत, समटिक, चन्द्रमा (श्वेता०उप०अ०२।खं०११)।

१ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २र
५३५—प्र गायताभ्यर्चाम देवांत्सोमं हिनोत महते धनाय।

३ १ २ ३ ३ २ ३२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥

हे उपासकों! तुम (देवान्) प्रभु के द्रव्य गुणकर्मों का (प्रगायत) खूब गान किया करो (अभ्यर्चाम) हम तुम्हारे योगगुरु भी प्रभु के दिव्य गुणकर्मों का स्तुति गान करते हैं। (महते धनाय) मोक्षरूपी महाधन की प्राप्ति के लिए (सोमम्) जगदुत्पादक प्रभु को (हिनोत) स्तुति प्रार्थनाओं द्वारा प्रेरित किया करो। (अव्यं-वारम्) पार्थिव भोगों के घेरे को (अति) अतिक्रमण किया हुआ (स्वादुः) आनन्दरसमय प्रभु (पवताम्) तुम्हें प्राप्त हो, और (इन्दुः) चन्द्रसम शीतल प्रकाश वाला (देवः) प्रभु-देव (कलशम्) तुम्हारे दृश्य कलशों में (आसीदतु) आ विराजे।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
५३६—प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥

हे उपासकों! (प्रहिन्वानः) तुम्हें प्रगति देता हुआ तथा तुम्हें योगपथ पर बढ़ाता हुआ, (रोदस्योः) द्युलोक-और-भूलोक का (जनिता) जन्मदाता प्रभु, (वाजं सनिषम्) संवेग प्रदान करता हुआ (अयासीत्) तुम्हें प्राप्त होता है, (न) जैसे कि (रथः) रथ, रथ स्वामी को, वेग प्रदान करता हुआ, प्राप्त होता है। वह प्रभु आसुरी-भावों के हनन के निमित्त (आयुधा सं शिशानः) आयुधों को तेज करता हुआ, और मानो अपने (हस्तयोः) हाथों में (विश्वा वसु) सब प्रकार की आध्यात्मिक सम्पत्तियों को (आ दधानः) लेकर (इन्द्रम्) प्रत्येक योगमार्गी जीवात्मा को (गच्छन्) प्राप्त होता है।

[हिन्वान्: हि (गति, वृद्धि)। इन्द्रम्=इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
५३७—तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥

(यत् ई) जब ही (वेनतः) प्रभु की कामना वाले (मनसः) मनस्वी उपासक की (वाक्) स्तुति प्रार्थनाओं की वाणियां,—(ज्येष्ठस्य धर्मन्) ज्येष्ठ ब्रह्म के, अवस्थान रूप तथा (द्युक्षोः) सिर से लेकर पैरों तक के (अनीके कलशे) प्राण-भूत हृदय-कलश में (तक्षत्) प्रभु को अभिव्यक्त रूप में प्रकट कर देती हैं, (आत्) तदनन्तर (वरम्) वरणीय (जुष्टम्) सेवनीय (पतिम्) रक्षक, (इन्दुम्) चन्द्र सम शीतल प्रकाश वाले (इम्) इस प्रभु को,—(आ वावशानाः) खूब स्तुति प्रार्थनाएँ करते हुए, (गावः) स्तुति गानों के गाने वाले उपासक,—(आयन्) पा लेते हैं।

[तक्षत्=जैसे बढ़ई, लकड़ी को घड़कर, कुर्सी आदि के रूप में, लकड़ी को अभिव्यक्त कर देता हैं, वैसे स्तुति-प्रार्थनाओं की वाणियां, अनभिव्यक्त प्रभु को, अभिव्यक्त कर देती हैं,। द्युक्षोः=सिर द्युलोक है, और "क्ष" अर्थात् भूमि पैर है। "यस्य भूमिः प्रमा (पाद) अन्तरिक्षमुतोदरं, दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" (अथर्व १०।७।३२)। अनीके=अन् प्राणवे]।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
५३८—साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥

(धीरस्य) ध्यानी की (दश धीतयः) दस-शक्तियां, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों की ५ ज्ञान शक्तियाँ तथा कर्मेन्द्रियों की ५ कर्मशक्तियां, (मर्जयन्त) जब मार्जन विधि द्वारा शुद्ध हो जाती हैं, और (धनुत्रीः) प्रणव रूपी धनुष की सहायता से सब का त्राण करने लगती हैं और जब ये (स्वसारः) बहिनों के सदृश (साकम्) एक साथ हो कर (उक्षः) प्रभु के प्रति अपने ज्ञानों-और-कर्मों को सींचतीं हैं, समर्पित करती हैं, तब (सूर्यस्य) आध्यात्मिक-सूर्य का (जाः) जन्मदाता (हरिः) क्लेशहारी प्रभु (पर्य-द्रवत्) परिद्रवित हो जाता है, दयार्द्र हृदय हो जाता है, और (द्रोणम्) हृदय-गृह में (वाजी) शीघ्रता से (ननक्षे) प्रकट हो जाता है, (अत्यो न) जैसे कि वेगवान् अश्व उद्दिष्टस्थान में शीघ्रता से पहुँच जाता है।

[धीरस्य=धीराः ध्यानवन्तः (निरु. ४।२।६)। धनुत्री="प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा" (मुण्ड. २।२।४)। सूर्यस्य (मन्त्र संख्या ५३४)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र
५३९—अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥

(इव) जैसे घुड़-दौड़ में, (वाजिनि) घोड़े में, (धियः) उसके दौड़ रूपी कर्म (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हुए आगे-आगे बढ़ते हैं, तथा (न) जैसे (सूरे) सूर्य के उदय होने पर, (विशः) प्रजाजन अपने-अपने कामों में (स्पर्धन्ते) होड़ लगाते हैं, वैसे (यत्) जब (अस्मिन्) इस उपासक में (शुभ धियः) शुभ कर्म (अधिस्पर्धन्ते) मानो स्पर्धा करते हुए से बढ़ते हैं, तब (कवीयान्) प्रभु की महिमा गाने वाले उपासक-कवि की चाहना करता हुआ प्रभु (अपः) उपासक के इन शुभकर्मों को (वृणानः) स्वीकार करता हुआ, (पवते) उपासक की ओर बढ़ता है, (न) जैसे कि (पशु वर्धनाय) अपने पशु की वृद्धि के लिये, पशुस्वामी का (मन्म) मन (व्रजम्) पशुशाला की ओर बढ़ता है। [मन्म=मनः (निरु. ६।४।२२), सुमत् शब्द की व्याख्या में]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
५४०—इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥

(गोन्योघाः) पृथिवी में सुख सामग्री की बाढ़ लाने वाला (इन्दुः) चन्द्र सम शीतल प्रकाश वाला, (वाजी) बलवान् (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु (मदाय) जीवात्मा के हर्ष के लिए (इन्द्रे) जीवात्मा में (सहः इन्वन्) सहन शक्ति तथा बाधक शक्तियों को पराभव करने का बल प्राप्त कराता हुआ, (पवते) उपासक की ओर गति करता है। प्रभु, उपासक के (रक्षः) राक्षसी-भावों का (हन्ति) हनन करता है, (अरातिम्) उसकी अदान भावनाओं को (परि बाधते) पूर्णतया हटाता है। (वृजनस्य राजा) और बलों का राजा प्रभु (वरिवः) आध्यात्मिक विभूतियाँ (कृण्वन्) प्रदान करता है।

[गोन्योघाः=गोति (पृथिवी में) + ओघा (बाढ़ लाने वाला)। ओघाः =ओघस्। इन्वन्=गतिकर्मा (निघं. २।१४)। वरिवस्=धन (निघं. २।१०)।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५४१—अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९॥

(इन्दो) चन्द्रसम शीतल हे प्रभो! (अया) इस (पवा) धारा के रूप में आप, (एनावसूनि) इन आध्यात्मिक-सम्पत्तियों को (पवस्व) उपासक के प्रति बहाइये और (मांश्चत्वे) मांस के बने चार खानों वाले (सरसि) हृदय सरोवर में (प्रधन्व) शीघ्रता से प्राप्त हो जाइये। (यस्य) जिस प्रभु का (ब्रध्नः चित्) महान् सूर्य, जैसे प्रकाश को स्वाश्रय में (धात्) धारण करता है, और (न) जिस प्रकार (वातः) वायु (जूतिम्) वेग को स्वाश्रय में (धात्) धारण करती है वैसे (पुरुमेधाः चित्) महामेधावी प्रभु भी, (तकवे) योग मार्ग पर प्रगति प्रदान के लिए, (नरम्) प्रत्येक उपासक नर-नारी को स्वाश्रय में (धात्) धारण करता है।

[ब्रध्नः sun (आपटे)। तकवे=तकतिः गतिकर्मा (निघं. २।१४)]

३१ २र ३१२ ३१ २र ३२
५४२—महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोवृणीत देवान् ।
१२३ २३१२ ३१ २र ३२३ २ ३१२
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोजनयत्सूर्यें ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥

(**महिषः**) महामहिम (**सोमः**) जगदुत्पादक प्रभु ने (**तत्**) वह (**महत्**) महाकर्म (**चकार**) किया है, (**यत्**) जोकि (**अपाम्**) जगत् के कर्मों के (**गर्भः**) गर्भ रूप उत्पादक प्रभु ने (**देवान्**) उपासकों के दिव्य कर्मों को (**अवृणीत**) वर लिया है, स्वीकृत कर लिया है, तथा (**पवमानः**) पावक प्रभु ने (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**ओजः**)बल और शक्ति (**अदधात्**) स्थापित की है, और (**इन्दु**) चन्द्रसम शीतल वाले प्रभु ने (**सूर्ये**) आध्यात्मिक तथा सौरमण्डल के सूर्य में (**ज्योतिः अदधात्**) ज्योति स्थापित की है।

[अयाम्=कर्म (निघं. २।१)। गर्भः=जगत् में सूर्य' चन्द्र, तारा आदि की गतियों का मूल कारण। देवान्—"शुभः धियः", तथा "अपोवृणानः" (मन्त्र संख्या ५३६)। सूर्ये इन्दुः=इस द्वारा यह न समझना चाहिये कि आधिदैविक दृष्टि में इन शब्दों का यह अभिप्राय है कि इन्दु अर्थात् चन्द्रमा ने सूर्य में ज्योति स्थापित की है। वेद में स्पष्ट कहा है कि सूर्य की रश्मियां चन्द्रमा के घर जाकर उसे प्रदीप्त करती हैं। यथा "अत्रा ह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ (ऋ. १/८४/१५), तथा (निरुक्त ४/४/२५ २।५।६), तथा "सुषुम्णः सूर्यरश्मिः चन्द्रमा गन्धर्वः" (यजु १८/४०)]

१२३२ ३२३ २३२ २२ ३१२ ३१ २३२
५४३—असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
२३ १२३ २३२३ १२ ३२३ २ ३१२३१२
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥

(**यथा**) जैसे कि पूर्व मन्त्रों में कहा है कि (**रथ्ये आजौ**) शरीर रथ में होने वाले, देवासुर संग्राम में, जब (**धिया**) ध्यान विधि द्वारा (**मनोता**) मन में ओत-प्रोत (**प्रथमा**) सर्वश्रेष्ठ (**मनीषा**) प्रज्ञा, अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा, (**असर्जि**) प्रकट होती है, तब (**अव्ये**) रक्षायोग्य भूमण्डल में (**अधि सानः**) अधिकाधिक भोग सामग्री देने वाला (**वक्वा**) वेद प्रवक्ता प्रभु (**असर्जि**) प्रकट हो जाता है। और तब ध्याता की (**दश**) दस ऐन्द्रियिक शक्तियों, (**स्वसारः**) बहिनों के सदृश एक साथ होकर, (**सदनेषु**) जीवात्मा के वास के कोशों में, (**वह्निम्**) जगद्दाहक प्रभु को, (**अच्छ**) स्पष्ट रूप में (**मृजन्ति**) विशुद्ध रूप में प्रकट कर देती हैं।

[मनीषी=मेधावी (निघं ०३।१५), अतः मनीषा=मेधा, प्रज्ञा। रथ्ये="आत्मनं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु" (कठ० अ. १।ब. ३।खं. ३)। दश=५ ज्ञानेन्द्रियाँ और ५ कर्मेन्द्रियां जो कि पहले जीवात्मा को संसारी बना रही थीं, अब वे ही १० इन्द्रियां संसार से विमुख होकर, संसार में परमेश्वरीय विभू-

तियों का दर्शन कराती हुई, जगद्ग्राहक परमेश्वर को प्रकट कराने में लग जाती हैं। सदनेषु=जीवात्मा के ५ सदन कहे हैं। ये हैं अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, और आनन्दमय कोश।

३२ ३२३२३१ ३ १२३१ २ ३ २ ३१ २
५४४—अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशंतम् ॥ १२॥

(अपाम्) जलों की (ऊर्मयः इव इत्) तरंगों के समान ही, (मनीषाः) उपासकों की प्रज्ञाएँ, (तर्तुराणाः) शीघ्र गति से, (सोमम् अच्छ) जगदुत्पादक प्रभु के प्रति जाकर उसे (प्र ईरते) प्रेरित करती हैं, वे प्रज्ञाएं (नमस्यन्ती !) प्रभु को नमस्कार करती हुई, (उपयन्ति च) परमेश्वर के समीप पहुंचती हैं, (संयन्ति च) और उससे जा मिलती हैं, (आविशन्ति च) और उसमें प्रविष्ट हो जाती हैं। वे प्रज्ञाएं जो कि (उशन्तम्) उपासक की कामना करते हुए प्रभु की (उशन्ति) कामना कर रही हैं।

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७॥ [स्व० १९। उ० ३। धा० ८२। दा ॥] इति त्रिष्टुभः॥ इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ६॥

प्रपाठक ६ का प्रथमार्घ प्रपाठक समाप्त

दशति ६

(१—९) १ अन्धीगुः श्यावाश्विः; २ नहुषो मानवः; ३ ययातिर्नाहुषः; ४ मनुः सांवरणः; ५,८, अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिष्वा भारद्वाजश्च; ६. ७, रेभसूनू काश्यपौ; ९ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा॥ पवमानः सोमः अनुष्टुप्; ७ बृहती॥ अथ षष्ठम् प्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः॥ ६॥

३१२ ३ १ २ ३१२ ३१२
५४५—पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३क २र
अप श्वानँ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १॥

(सखायः) हे उपासक मित्रों ! (पुरः जिती) संमुख स्थित विजय द्वारा (वः) तुम्हारे अपने (अन्धसः) अन्नमय-मनों से (सुताय) प्रकट हुए (मादयित्नवे) आनन्द प्रद प्रभु की प्राप्ति के लिए, तुम (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी जीभ वाली लोभी (श्वानम्) कुतिया को, अत्यन्त लोभ वाली वृत्ति को, (अपश्नथिष्ठन्) नष्ट करो। [अन्धसः=अन्नमयं हि सोम्य मनः (छान्दो० अ ६।खं ५।४)।

३ २ ३ २ १ २उ ३ १ २ ३ २ २
५४६—अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
१ २ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ।। २ ।।

(सोमः) जगदुत्पादक प्रभु (पुनानः) उपासक को पवित्र करता हुआ (अर्षति) उस के हृदय में प्रकट होता है। (अयम्) यह प्रभु (पूषा) सब की पुष्टि करता, (रयिः) वास्तविक सम्पत्तिरूप (भगः) भजनीय है, और (भूमनः विश्वस्य) विविध सत्ता वाले विश्व का (पतिः) स्वामी है। इसने ही (रोदसी उभे) द्युलोक और भूलोक इन दोनों को (व्यख्यत्) प्रकट किया है।

३ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५४७—सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ।। ३ ।।

(मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर, (मन्दिनः) तृप्तिदायक (सोमा) प्रशान्त भक्ति रस, (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति समर्पण के लिए (सुतासः) प्रकट हुए हैं। (पवित्रवन्तः) पवित्र हृदय से प्रकट होकर ये (अक्षरन्) परमेश्वर के प्रति प्रवाहित हुए हैं। हे उपासकों ! (वः) तुम्हारे (मदाः) तृप्तिकारक भक्तिरस (देवान्) तुम्हारी इन्द्रियों को भी (गच्छन्तु) प्राप्त हों, और उन्हें ये तृप्त कर दें।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५४८—सोमाः पवन्त इन्दवोस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ।। ४ ।।

(सोमाः) प्रशान्त भक्ति रस (पवन्ते) प्रवाहित हो रहे हैं। (इन्दव) ये ज्ञान दीप्ति को प्रकट करते, (अस्मभ्यम्) हमें (गातुवित्तमाः) जीवन का मार्ग दर्शाते, (मित्राः) हमारे मित्र रूप, (स्वानाः:) भक्ति गानों को गुञ्जाते, (अरेपसः) हमें पापकर्मों से पृथक् करते, (स्वाध्यः) श्रेष्ठ-ध्यान में सहायक होते (स्वर्विदः) और सुख पहुंचाते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५४९—अभी नो वाजसातमँ् रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ।। ५ ।।

(इन्दो) हे प्रकाशमय प्रभो ! (नः) हमें (रयिम्) ऐसी आध्यात्मिक-

सम्पत्ति (अभि अर्ष) प्राप्त कराइये, जो कि (वाज सातमम्) अत्यन्त आत्मिक बल प्रदान करे, (शत स्पृहम) सैंकड़ों उपासकों द्वारा चाहने योग्य हो, (सहस्र भर्णसम्) हजारों के भरण-पोषण में जो हमें प्रेरित करे, (तुविद्युम्नम्) महायशस्करी हो, तथा (विभासहम्) अपनी प्रभा से अन्य सम्पत्तियों का पराभव करे, उन्हें नीचा दिखाए।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
५५०—अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातँ रिहन्ति मातरः॥ ६॥

(अद्रुहः) द्रोह भावनाओं से रहित उपासक, (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (प्रियं काम्यम्) प्रिय और अभीष्ठ मार्ग की (अभि नवन्ते) सब प्रकार से प्रशंसा करते, और (रिहन्ति) उस मार्ग पर चलने का आस्वादन लेते हैं, (न) जैसे कि (मातरः) माताएँ (जातं वत्सम्) नवोत्पन्न पुत्र की, (पूर्वे आयुनि) उसके शैशव काल में (अभि नवन्ते) प्रशंसा करतीं, और (रिहन्ति) उसे चूमती और प्यार करती हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५५१—आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौँस्यम्।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः॥ ७॥

(महीयुवः) महती प्रभु शक्ति को चाहने वाले, (विपाम् अग्रे) मेधावियों में अग्रगण्य उपासक, (हर्यताय) कामना के योग्य, (धृष्णवे) पापधर्षक प्रभु की प्राप्ति के लिये, (पौंस्यम्) बलशाली (धनुः) प्रणबन्धनुष् को (आ तवन्ति) सदा ताने रखते हैं, विघ्नों के विनाश के लिये ! (शुक्राः) ये उपासक शुद्ध पवित्र हो कर-(निर्णिजे) शुद् पवित्र, (असुराय) तथा प्राण शक्ति और प्रज्ञा के प्रदाता प्रभु के लिये, (वि यन्ति) विशेष यातनाएँ करते रहते हैं।

[धनुः=(मन्त्र संख्या ५३८)। यन्ति=याचना (निघं० ३।१९)। असुर=प्राण और प्रज्ञा का दाता। असु=प्राण और प्रज्ञा (निरु० १०।३।३४)]

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
५५२—परि त्यँ हर्यतँ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति॥ ८॥

उपासक लोग, (वारेण) तामसिक-और-राजसिक चित्तवृत्तियों के निवारण द्वारा, उनके निरोध द्वारा, (त्यम्) उस (हर्यतम्) कान्तिमय, (हरिम्) क्लेशहर्त्ता (बभ्रुम्) सब का भरण-पोषण करने वाले प्रभु को (पुनन्ति) विशुद्ध रूप में प्रकट कर लेते हैं, (यः) जो प्रभु कि (मदेन सह) उपासक के लिये मस्तानी आनन्दमात्रा

के साथ, (विश्वान् देवान्) सभी उपासक देवों को, (इत्) ही (परि गच्छति) प्राप्त होता है।

[इत=एव (निरु० ११।४।४६, पथ्या शब्द की व्याख्या में)]

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २र
५५३—प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
अप श्वानमराधसँ हता मखं न भृगवः॥ ६॥

(अन्धसः) शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अन्न को (सुन्वानाय) उत्पन्न करने वाले प्रभु के लिये, (मर्तः) जो मनुष्य (तद्वचः) उसके स्तुति वचनों का उच्चारण (न प्र वष्ट) नहीं करना चाहता, उस (अराधसम्) आराधना हीन (श्वानम्) कुत्ते को, (अप हता) अपनी संगति से परे रखो, (न) जैसे कि (भृगवः) ध्यान साधना में परिपक्व उपासक, (मखम्) चंचल वृत्तियों वाले राजसी व्यक्तियों को, अपनी संगति से परे रखते हैं।

[श्वानम्=लोभी, कामी और स्वजाति के व्यक्ति को कुत्ता कहा है। मखम्=मखि गतौ=चञ्चल, राजसी मनुष्य]

इति षष्ठी दशतिः॥ ६॥ अष्टमः खण्डः॥ ८॥
[स्व० १०। उ० ५। धा० ६१। म॥]
इत्यनुष्टुभः (एका बृहती)

दशतिः ७

(१—१२) १—३. ५ कविर्भार्गवः; ४, ६ सिकता निवावरी; ७ रेणुर्वैश्वामित्रः; ८ वेनोभार्गवः; ९ वसुर्भारद्वाजः; १० वत्सप्रिर्भालन्दः; ११ गृत्समदः; शौनकः; १२ पवित्र आङ्गिरसः॥ पवमानः सोमः॥ जगती॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३
५५४—अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु
१ २
वर्धते।
१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः
॥ १॥

(चनोहितः) शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अन्नों द्वारा हित करने वाला (यह्वः) महान् प्रभु (येषु) जिन उपासकों में (अधि वर्धते) अधिक रूप में

वृद्धि को प्राप्त होता है, अधिकाधिक स्पष्ट रूप में प्रकट होता है, (अभि) उनके प्रति, महान् प्रभु (प्रियाणि नामानि) प्रिय आनन्द रसों को (पर्वते) प्रवाहित कर देता है, या अपने प्रिय नाना नामों के रहस्यार्थों को प्रकट कर देता है। (बृहन्) वह ब्रह्म, (विचक्षणः) जो कि विविध संसार का द्रष्टा है, (बृहतः सूर्यस्य) महा-परिमाण वाले सूर्य के, (विश्वञ्चं रथम्) अपनी किरणों को सर्वत्र फैलाने वाले रथ पर (आरुहत्) चढ़ा हुआ है, सवार है, उसका नियन्ता है। [योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म (यजु० ४०।१७)]

३ १२ ३ १२३ २ ३१२ ३२३२३१२
५५५—अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः।
१ २ ३ २ ३२३ १२ ३ १ २ ३ १२ ३
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो
१२
धियः॥ २॥

(अचोदसः) बिना किसी प्रेरक के अर्थात् स्वतः प्रवृत्त, (स्वाना सः) भक्तिमय गीतों को गुञ्जाते हुए (हरयः) सांसारिक विषयों से चिन्ता को हटाते हुए, (इन्दवः) तथा ज्ञान-प्रकाश करते हुए (नः) हमारे भक्तिरस, (देवेषु) दिव्य-उपासकों में (बृहत्) बहुमात्रा में (प्रधन्वन्तु) प्रवाहित हों। (चित्) तथा (अश्नानाः) सांसारिक भोगों को भुगाने वाली (नः) हमारी (इषयः) एषणाएं और (अरातयः) अदान की भावनाएं (नः) हमारे लिये (अर्यः=अरयः) शत्रुरूप (सन्तु) हो जांय। (इषयः) और आध्यात्मिक-एषणाएं (नः) हमें (धियः) आध्यात्मिक प्रज्ञाएं (विसनिषन्तु) विशेष रूप में प्रदान करें।

सांसारिक भोग जब तक हमें मित्ररूप में प्रकट होते हैं, तभी तक इन भोगों को हम भोगते रहते हैं। इन्हें हम जब शत्रुरूप में समझने लगते हैं तब इन भोगों से हमें छुटकारा मिल जाता है।]

३ २उ ३ १२ ३१ २३२ ३ १२३ १२
५५६—एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः।
३ २ १२ ३१२ ३ १२ ३१ २ ३ १२ ३१२
अभ्यृ३तस्य सदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः
॥ ३॥

(एषः) यह (मधुमान्) मधुर आनन्दरस वाला प्रभु, (कोशे) हृदयकोश में (प्र अचिक्रदत्) स्थित हुआ, उपासक का बार बार आह्वान करता है। (इन्द्रस्य) इंद्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा का (वज्रः) यह प्रभु वज्ररूप है, जीवात्मा परमा-नन्दरूपी वज्र द्वारा पाप-वृत्ति का विनाश करता है। यह प्रभु (वपुषः) अविद्या-ग्रन्थि के छेदन करने वालों में (वपुष्टमः) सर्वश्रेष्ठ छेदन करने वाला है। (ऋतस्य) सत्य स्वरूप परमात्मा के ज्ञानदुग्ध को (सदुघाः) उत्तम प्रकार से दोहने वाली,

(घृतश्चुतः) ज्ञान-घृत के स्रोत-रूप (वाश्राः) वैदिक वाणियां, (अभि अर्षन्ति) परमात्मा का ही वर्णन करती हुई इस तक पहुँचती है, जैसे कि (पयसा) दूधभरी (धेनवः) दुधार गौएं, (वाश्राः) हम्भारती हुई, गोस्वामी को पहुँचती है, या बछड़ों की ओर पहुँचती हैं। [वपुषः=वप् (छेदने)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
५५७—प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतँ सखा सख्युर्न प्र मिनाति
३ १ २
सङ्गिरम्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा
॥ ४ ॥

(इन्दुः) चन्द्रसम शीतल प्रकाश वाला परमेश्वर, (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा के (निष्कृतम्) पापमयी भावनाओं से रहित, स्वच्छ हृदय में (प्र उ अयासीत्) अवश्य प्रयाण करता है। (सखा) यह सखा (सख्युः) अपने सखा जीवात्मा को दिये (सङ्गिरय्) प्रतिज्ञा वचनों को (न) नहीं (मिनाति) विनष्ट करती न ही वचन भंग करता। (इव) जैसे कि (मर्यः) गृहस्थी-पुरुष (युवतिभिः) पत्नी नौ-जवान पुत्रियों और वहिनों के साथ (सम् अर्षति) प्रेम से मिलता है वैसे (सोमः) सौम्य प्रकृति वाला प्रशान्त-परमात्मा, (शतयामन् पथा) सैकड़ों विधियों से, (कलशे) हृदय-कोश में (सम अर्षति) प्रेम से जीवात्मा को मिलता है।

[सङ्गिरम्=वैदिक मन्त्रों द्वारा परमात्मा ने जो वचन जीवात्मा को दिये हैं उनका पालन परमात्मा करता है। सखा=जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों आपस में सखा हैं। यथा "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिपस्वजोत" (अथर्व० ९।९।२०)।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
५५८—धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः।
१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजाँसि कृणुषे नदीष्वा
॥ ५ ॥

(दिवः धर्ता) द्युलोक का धारण करने वाला परमात्मा (पवते) सर्वगत है। (कृत्व्य) यह अविद्या ग्रन्थि का छेदन-भेदन करता, (रसः) आनन्द रसमय (देवानाम्) उपासक-देवों का (दक्षः) एक मात्र बल है, तथा (नृभि) उपासक नेताओं द्वारा (अनुमाद्यः)निरन्तर प्रसादनीय है। यह (सृजानः) सृष्टि को उत्पन्न करता और (हरिः)क्लेश हर्ता है। (सत्विभिः) बालों की दृष्टि से यह (अत्यो न) अश्व के सदृश्य है (वृथा) वरण विधि द्वारा हे परमेश्वर ! आप (नदीषु) प्राणियों की नस नाड़ियों में (पाजांसि) बलों को (आकृणुषे) प्रकट करते हैं।

[वृथा=वृ (वरणे) +था (थाल्) "प्रकारवचने थाल्" (अष्टा०५।३।६९)। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्" (कठ०अ०१।ब२।खं०२२)]

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १
५५९—वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोष-
३ १
सां दिवः।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्राणा सिंधूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्म-
३ १ २
नीषिभिः॥ ६॥

(विचक्षणः) सर्वदृष्टा प्रभु (मतीनां वृषा) सन्मतियों की वर्षा करता हुआ (पवते) पवित्र करता है। (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु (अह्नाम्,उषसां,दिवः) दिनों, उषाओं, और द्युलोकों को (प्रतरीता) आकाशीय-समुद्र में तैराने वाला जहाज है। (सिन्धुनाम्) जलीय-समुद्रों तथा हृदय-समुद्रों का (प्राणा) प्राणरूप है। (मनीषिभिः) मन की गतियों के स्वामी महा योगियों की सहायता से (इन्द्रस्य) जीवात्मा के (हार्दि) हृदय प्रवेश में (आविशन्) प्रवेश प्राप्त परमात्मा, (कलशान् जीवात्मा के पांचों कोशों को (अचिक्रदत्) ॐ को जय द्वारा गुञ्जा देता है।

१उ२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५६०—त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत॥७॥

(सप्तधेनवः) मुख्य छन्दों वाली वेदवाणियां, (अस्मै) इस उपासक के लिए (परमे व्योमन्) श्रेष्ठ हृदयाकाश में स्थिति परमात्मा से (त्रि) दिन-रात में तीन बार (सत्याम्) सत्य (आशिरम्) आशीर्वाद (दुदुहरे) दोहती हैं, इसे प्राप्त करती हैं। (यद्) और जब (ऋतैं) सत्यानुष्ठानों द्वारा (अवर्धत) जीवात्मा योगमार्ग में वृद्धि पाता है, तब (निर्णिजे) चित्त के रजोगुण और तमोगुण को हटाकर अत्यन्त शुद्धि के लिए, इस जीवात्मा के (अन्या) अन्य (चत्वारि भुवनानि) चार भुवनों को (चारूणि चक्रे) परमात्मा सुचारु कर देता है।

त्रिः=संध्योपासना के दो सन्धिकाल नियत हैं, प्रातः सन्धि और सायं सन्धि। परन्तु योगाभ्यास के लिये वेद ने रात्रिकाल को अधिक उपयुक्त माना है। क्योंकि रात्रि काल शान्त काल होता है। अथर्ववेद में कहा है "ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति" (अथर्व० १९।४८।५), अर्थात् "जो रात्रि में अनुष्ठान करते हैं, और प्राणियों के सोए हुए जो अनुष्ठान के लिये जागते रहते हैं।" इस अभिप्राय का श्लोक गीता में भी है "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जाग्रति संयमी"।

निरुक्त में मध्य रात्रि और सूर्योदय के बीच के काल को अश्विनी का काल कहा है। यथा:—तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात् प्रकाशीभावस्यानु विष्टम्भमनु तमोभागो हि मध्यमः, ज्योतिर्भाग आदित्यः" (१२।१।१)। तथा ऋग्वेद में कहा है कि सूर्योदय काल से जितने पूर्वकाल में जो अभ्यासी योगाभ्यास करता है वह उसी दृष्टि से अधिकाधिक श्रेष्ठ फल का भागी होता है, "पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान्" (ऋ० ५।७७।२)। यजमानः का अर्थ है "योगयज्ञ करने वाला"। अथर्ववेद में कहा है "नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नायत् परमस्ति भूतम्" (१०।७।३१)। अर्थात् जो अजन्मा जीवात्मा, उषाकाल और सूर्योदय से पहिले नाना नामों द्वारा परमात्मा (स्कम्भ) का आह्वान करता है, नाना नामों द्वारा उसकी स्तुति करता है, वह ही सर्वप्रथम उस स्वराज्य अर्थात् आत्मिक-राज्य को प्राप्त होता है, जिससे कि बढ़िया कोई वस्तु नहीं।

धेनवः सत्यामाशिरम्=वेद वाणियों को अधेनु कहा है जब कि व्यक्ति मन्त्रों का केवल जप ही करता है, और न इनके अर्थों को जानता, और न उन अर्थों के अनुसार आचरण ही करता है। परन्तु वेद वाणियां उसके लिये धेनु हैं, दुधार गौएँ हैं, दूध देने वाली गौएँ हैं जो कि मन्त्र जप के साथ २ मन्त्रों के अर्थों को जान कर, विचार कर, तदनुकूल आचरण भी करता है। आध्यात्मिक दृष्टि में मन्त्रों का फल है "आध्यात्मिक तत्त्वों का ज्ञान और मोक्ष। निरुक्त में लिखा है कि "अर्थं वाचः पुष्पफलमाह"। याज्ञदैवते पुष्पफले दैवताध्यात्मे वा" (१।६।१९) अतः "सत्याशीर्वाद" है आध्यात्मिक तत्त्वों का परितान और मोक्ष। धेनु=वाक् (नि घं० १।११)।

चत्वारि भुवना=जीवात्मा के निवास के लिए ४ भुवन हैं,—शरीर, इन्द्रियाँ, हृदय, और मस्तिष्क।]

१ २   ३ १ २ ३   १ २ ३ १   २र   ३ १ २   ३ २
५६१—इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।

२ ३ १ २   ३ २ ३   १ २   ३ २ ३ १ २
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ ८ ॥

(सोम) हे जगदुत्पादक प्रभो! (सुषुतः) प्रकट हुये आप, (इन्द्राय) जीवात्मा के लिये, (परिस्रव) आनन्द रस धारा रूप में प्रवाहित हो जाइये। ताकि (रक्षसा सह) राक्षसी भावों और राक्षसी कर्मों के साथ (अमीवा) उपासक का अनिक्ष्या रोग (अप भवतु) दूर हो जाय। हे प्रभो! (द्वयाविनः) दुविधा में पड़े संशयवृत्ति वाले लोग, (ते रसस्य) आपके आनन्द रस की (मा मत्सत्) मस्ती नहीं पाते। (इन्दवः) ज्ञानदीप्ति के देने वाले भक्ति रस, (इह) हमारे इस जीवन में, हमें (द्रविण स्वन्तः) सत्ता धन अर्थात् प्रभु दर्शन और मोक्ष प्रदान करें।

१२ ३ १ २ ३२उ ३ २३ १२ ३ २ ३१
५६२—असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा

२र
अभिक्रदत् ।

३ २उ ३१२३१२ ३ १ २र३१२३१२
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥

(अरुषः) रोष से रहित अर्थात् प्रेम करने वाला, (हरिः) अविद्या और क्लेश का हरण करने वाला, (वृषा) आनन्दरस बरसाने वाला (सोम) जगदुत्पादक प्रभु (असावि) प्रकट हुआ है। (राजा इव) सौरमण्डल के राजा सूर्य के सदृश (दस्मः) दर्शनीय हैं। दर्शन देकर प्रभु (गाः) वेदवाणियों का (अभि) साक्षात् रूप में (अचिक्रदत्) उपदेश देता है। हे प्रभो! (पुनानः) उपासक को पवित्र करते हुए आप,—(अव्ययम्) विनष्ट न होने वाले अर्थात् अनादिकाल से आए हुए (वारम्) उपासक के अविद्या रूपी घेरे को, (अति) लाँघ कर, (एषि) उपासक को प्राप्त हो जाते हैं, (न श्येनः) और जैसे बाज-पक्षी अपने (योनिम्) स्थान में (आसदत्) आ बैठता है, वैसे आप (घृतवन्तम) स्नेहमय या प्रकाशमय (योनिम्) हृदय-गृह में आ विराजते हैं।

[घृतवन्तम् =घृत शब्द का द्योतक है। घृत का अर्थ प्रकाश भी है घृ दीप्ता। ध्यान प्रकर्ष द्वारा हृदय में नानाविध प्रकट होते हैं (योग १।३६)। गौः=वाक् (नि घं० १।११)

२३२उ ३ १२ ३२३१ २ ३ २ ३ २उ ३१२
५६३—प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः।
३१ २ ३१२३ १२ ३१२३१२ ३१२
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे
॥ १० ॥

(मधुमन्तः) मधुर (इन्दवः) तथा ज्ञान दीप्तिदायक भक्तिरस, (देवम् अच्छ) प्रभु देव के प्रति, उपासकों से (प्र असिष्यदन्तं) प्रकर्ष रूप में प्रवाहित हुए हैं, (न) जैसे कि (धेनवः) मोक्ष रूपी-दुग्ध देने वाली (गावः) वेद-मन्त्रों की स्तुति वाणियां (आ) प्रभु के प्रति, उपासकों से (प्र असिष्यदन्त) प्रकर्षरूप में प्रवाहित हुई हैं। (बर्हिषदः) ध्यान द्वारा हृदयाकाश में स्थिति (वचनावन्तः) और स्तुति बंधनों का गान करते हुए योगी (निर्णिजीर) दोषरहित विशुद्ध (परिसुतम्) उत्पन्न भक्तिरस को (धिरे) धारण करते हैं, जैसे कि (उस्रिया) गौएं (ऊधभिः) अपने ऊधों द्वारा (निर्णिजम्) विशुद्ध दूध को (धिरे) धारण करती हैं [उस्रियाः=गौएं (नि घं० २।११)]

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
५६४—अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुँ रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सिन्धोरुऽच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणँ हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ ११ ॥

(हिरणपावाः) सुवर्ण की तरह विशुद्ध हुआ उपासक, (क्रतुम्) कर्मशील तथा प्रज्ञानी प्रभु को (अञ्जते) अभिव्यक्त करते, (व्यञ्जते) विशिष्ट स्वरूपों में प्रकट करते, (समञ्जते) उसके साथ अपना मेल करते, (रिहन्ति) आनन्दरस रूप में उसका आस्वादन करते, और (मध्वा) अपने मधुर-भक्तिरसों द्वारा उसे (अभ्यञ्जते) मानो लीप देते हैं। (सिन्धोः) हृदय सिन्धु की (उच्छ्वासे) भक्ति भरी उच्छालों में (पतयन्तम्) सहसा प्रकट होते हुए, (पशुम्) सर्वदृष्टा प्रभु को उपासक, (अप्सु) अपने प्राणों में (गृभ्णते) ग्रहण कर लेते हैं।

[व्यञ्जते=परमात्मा के नाना नाम हैं; यथा, अग्नि, इन्दु, पवमान, पूषा, ब्रह्म आदि। प्रत्येक नाम से परमात्मा का एक-एक विशिष्ट गुण प्रतीत होता है। इन विशिष्ट गुणों के कारण परमात्मा के कई विशिष्ट स्वरूप हैं। सिन्धु=हृदय (अथर्व० १०।२।११)। पशुम्=पश्यतीति पशु।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
५६५—पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
१ २ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १२ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्माण्ड और वेद के स्वामी! (ते) आपका (पवित्रम्) पवित्र ब्रह्माण्ड तथा वेद अर्थात् वैदिक ज्ञान (विततम्) फैला हुआ है। (प्रभुः) आप उनके प्रभु हैं। (गात्राणि) उपासकों के अंग प्रत्यंगों में तथा ब्रह्माण्ड के अंग प्रत्यंगों में आप (विश्वतः) पूर्णरूप में (पर्येषि) व्याप्त हैं। (अतप्ततनूः) जिसने अपने आप को तपश्चर्या द्वारा नहीं तपाया, न ही परिपक्व किया, (आमः) इसलिए जो कहा है, परिपक्व है, वह (तद्) उस आप ब्रह्म को (न) नहीं (अश्नुते) पाता। (शृतास इत्) परिपक्व उपासक ही, (वहन्तः) अपने शरीर-रथों में आपका वहन करते हुए, (तत्) उस आपको (सम् आशत्) सम्यक् रूप में प्राप्त करते हैं।

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [स्व० १९। उ० ४। धा० १३५। ऐ ॥] इति जगत्यः ॥

दशतिः ८

(१—१२) १, ७, ११ अग्निश्चाक्षुषः; २ चक्षुर्मानवः; ३, ४, ६, १० पर्वतनारदौ काण्वौ (३, १० शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा) ५ त्रित आप्त्यः, ६ मनुराप्सवः; ८, १२ द्वित आप्त्यः;
।। पावमानः सोमः ।। उष्णिक् ।।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
५६६—इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ।। १ ।।

(हरयः) इन्द्रियों को विषयों से हरने वाले, (इन्दवः) ज्ञानदीप्त से सामान्त, (स्वर्विद) आत्मिक शांति प्रदायी, (सुताः) ऐश्वर्य शाली (इमे) यह भक्तिरस (जातासः) उत्पन्न होकर, (श्रुष्ठे) शीघ्र ही, (वृषणम्) आनन्दरस वर्षी (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अच्छ) ओर (यन्तु) पहुंचते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५६७—प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्युमन्तँ शुष्ममा भर स्वर्विदम् ।। २ ।।

(इन्दो) ज्ञानदीप्ति से सम्पन्न (सोम) हे मेरे भक्तिरस ! (जागृविः) तू सदा जगता रह, मुझ में कभी विलुप्त न हो, (परिस्रव) तू मेरे समग्र शरीर में प्रवाहित होजा, (इन्द्राय प्रधन्व) परमेश्वर के लिए आगे बढ़ । और तू (द्युमन्तम्) तेज सम्पन्न तथा (स्वर्विदम्) आंतरिक शान्तिदायक (शुभम्) आत्मिक बल को, (आभर) परमेश्वर से ले आ ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
५६८—सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ।। ३ ।।

(सखायः) हे उपासक मित्रों ! (आनिषीदत) उपासना यज्ञ में आइये और और बैठिये, (पुनानाय) पवित्र करने वाले परमात्मा के निमित्त (प्रगायत) सुन्दर सामगान कीजिये, (श्रिये) परमात्मा की शोभा बढ़ाने के लिए (यज्ञै) उपासनायज्ञों द्वारा इसे (परिभूषत) सब प्रकार से सत्कृत कीजिये, इसकी प्रशंसा कीजिये, (न) जैसे कि (शिशुम्) नवजात सन्तान की प्रशंसा की जाती है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
५६९—तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ।। ४ ।।

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (वः) अपने (मदाय) हर्ष के लिए तुम, (तं पुनानम्) पवित्र करने वाले उस परमात्मा के (अभि गायत) गीत गाओ । (न) जैसे (हव्यैः) नाना विधि अन्नों के द्वारा (शिशुम्) शिशु को (स्वदयन्त) तृप्त करते हैं, प्रसन्न करते हैं, वैसे (गूर्तिभिः) योग साधनों में परिश्रमों द्वारा, परमात्मा को प्रसन्न करो । [गूर्ति=गूर उदयमने] ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
५७०—प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वनृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ।। ५ ।।

(प्राणा) ब्रह्माण्ड का प्राण, (महीनाम्) वेदवाणियों में प्रशंसित परमात्मा, (ऋतस्य) वेद द्वारा यथार्थ ज्ञान के (दीधितिम्) प्रकाश को (हिन्वन्) प्रेरित करता हुआ और बढ़ाता हुआ, (अध) और (द्विता) दो विभागों में विभक्त (विश्वा प्रिया) समग्र प्रिय वस्तुओं में (परि) पूर्ण रूप से व्याप्त हुआ (भुवत्) स्थित है ।

[शिशुः=शंसनीयो भवति (निरु० १०।४।३९) । द्विता=सांसारिक पदार्थ बद्ध-जीवात्माओं को प्रिय हैं, तथा आध्यात्मिक-मोक्ष आदि उपासकों को प्रिय हैं । महीनाम्=वाक्=वेदवाणी (नि घं० १।११) ।

१ २ ३ १ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५७१—पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
२ ३ २ ३ १ २
आ कलशं मधुमांत्सोम नः सदः ।। ६ ।।

(इन्दो) चन्द्र सम शीतल प्रकाश वाले हे परमात्मन् ! आप, (देववीतये) हम में दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये, (धाराभिः) अपनी आनन्द रसमयी धाराओं तथा (ओजसा) अपने तेज के साथ (पवस्व) हमें प्राप्त कीजिये । (सोम) हे जगदुत्पादक ! (मधुमान्) आप मधुर रूप हैं, आप (नः) हमारे (कलशम्) हृदय-कोशों में (आ सदः) आ विराजिये ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
५७२—सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ।। ७ ।।

(सोमः) जगदुत्पादक परमात्मा, (ऊर्मिणा) अपनी आनन्द रसमयी तरंगों द्वारा (पुनानः) उपासकों को पवित्र करता हुआ, उनके (अव्यम्) पार्थिव भोगरूपी (वारम्) आवरणों को (वि धावति) विगत कर देता है। (वाचः) वेदवाणियों का (अग्रे) मुख्य रूप में प्रतिपाद्य परमात्मा, (पवमानः) उपासकों को पवित्र करता हुआ, (कनिक्रदत्) उन्हें अपने समीप बार-बार बुलाता है।

[अव्यम्=अवि sun (आपटे); अवि=रवि (अथर्व० १०।८।३१), यथा—"अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता। तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः"। अव्यम्=अवि अर्थात् सूर्य द्वारा उत्पन्न पृथिवी, या पृथिवी के भोग। वि धावति=वि+धाव् (गतौ), विगतं करोति। कनिक्रदत्=क्रद् आह्वाने।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५७३—प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

(पुनानाय) पवित्र करने वाले, (वेधसे) जगत् के विधाता, (सोमाय) जगदुत्पादक प्रभु के लिये, (वचः) स्तुति-प्रार्थनावचनों का (प्र उच्यते) प्रवचन किया जाता है कि हे प्रभो! (मतिभिः) स्तुति वचनों और निज मतियों द्वारा (जुजोषते) बार बार आपकी सेवा करने वाले के लिये, आप (भृतिं न) भृति के रूप में, नौकरी के रूप में, समुचित फल (आभर) प्रदान कीजिये। [मति=वाक् (श० ८।१।२।७)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २
५७४—गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥

(सुदक्ष) हे उत्तम बल वाले (इन्दो) चन्द्रसम शीतल प्रकाशी प्रभो! (सुतः) साक्षात् हुए आप (नः) हम उपासकों को (गोमत्) जैसे गौएं दूध देती हैं वैसे आत्मिक ज्ञान (अश्ववत्) और जैसे अश्व वेग देते हैं वैसे योग मार्ग में संवेग (धनिव) प्राप्त कराइये (च) और (नः) हमारी (गोषु) इन्द्रियों में (शुचिं वर्णम्) पवित्रता का रंग (धारय) भर दीजिये।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
५७५—अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥

(अस्मभ्यम्) हमारे कल्याण के लिये, (वाणीः) वेदवाणियां, (वसुविदं त्वा) आध्यात्मिक धन के प्रदाता आपकी (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुतियां कर रही हैं। (गोभिः) इन वैदिक वाणियों द्वारा हम, (ते वर्णम्) आपके स्वरूप को, (अभि वासयामसि) अपने में बसाते हैं।

[गोभिः=वाग्भिः (निघं० १।११)।

१२ ३२उ ३२३ १२ ३१ २
५७६—पवते हर्यतो हरिरति ह्वराँ्सि रँ्ह्या ।
३क२र ३१२ ३२३१२
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ।। ११ ।।

(हरिः) क्लेशहारी प्रभु (हर्यतः) हम उपासकों की सदा कामना करता है, और (ह्वराँसि) कुटिलता आदि बाधकों को (अति) हटा कर, (रंह्या) शीघ्रता से (पवते) प्राप्त हो जाता है। हे प्रभो ! (स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओं को (वीरवत् यशः) धर्मवीर होने का यश (अभ्यर्ष) प्राप्त कराइये।

२३१२ ३२३ १२ ३१ २
५७७—परि कोशं मधुश्चुतँ् सोमः पुनानो अर्षति ।
३२उ ३१२ ३१२
अभि वाणीर्ऋँषीणाँ् सप्तानूषत ।। १२ ।।

(मधुश्चुतम्) मधुर भक्ति रस के प्रवाह वाले (कोशम्) हृदय-कोश को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु, (परि अर्षति) हृदय-कोश को घेर लेता है। (ऋषीणाम्) ऋषियों की (सप्तवाणीः) सात-छन्दों से युक्त वेद-वाणियां, (अभि अनूषत) प्रभु की साक्षात् स्तुतियां करती हैं।

ऋषीणाम् = चार ऋषि जिन द्वारा वेद वाणियाँ मानुष-सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकट हुई हैं]

इत्यष्टमी दशतिः ।। ८ ।। दशमः खण्डः ।। १० ।। [स्व० ८ । उ० ३ ।
धा० ४६ । ठ ।।]

दशति ९

(१—८) १ गौरवीतिः शाक्त्यः; २ उर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः; ३, ८ ऋजिश्वा भारद्वाजः; ४ कृतयशा आंगिरसः; ५ ऋणंचयो राजर्षिः; ६ शक्तिर्वासिष्ठः; ७ ऊरुरांगिरसः ।। पवमानः सोमः ।।
ककुप्, ५ यवमध्या गायत्री ।।

१२३१२ ३१२ ३१२३ १२
५७८—पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
१२३१२३ १२
महि द्युक्षतमो मदः ।। १ ।।

(सोम) हे जगदुत्पादक प्रभो ! (इन्द्राय) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा को (पवस्व) आप पवित्र कीजिये। आप (मधुमत्तमः) अति-मधुर-स्वरूप हैं,

(क्रतुवित्तमः) जीवात्मा को प्रज्ञा, संकल्प-शक्ति और सत्कर्मों के प्रदान में सर्वश्रेष्ठ हैं (मदः) हर्षप्रद, (महि) महान् तथा पूजनीय, (द्युक्षतमः) ज्योति के निवास के भण्डार (मदः) और आनन्द-स्वरूप हैं।

[द्युक्षतमः=द्यु (ज्योतिः)+क्ष(निवास)+तमप्]

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
५७९—अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
१ २र ३ १ २
वि कोशं मध्यमं युवः ॥ २ ॥

(इषस्पते) उपासकों के अभीष्टों के हे स्वामी! (देव) तथा हे प्रकाश-स्वरूप प्रभो!, (देवयुम) आप-देव को चाहने वाले उपासक को, (बृहद् द्युम्नम्) महा आध्यात्मिक धन अर्थात् मोक्ष, और (यशः) एतत्सम्बन्धी महायश (दीदिहि) प्रदान कराइये, और उसके (मध्यमं कोशम्) मध्य के कोश को अर्थात् मन को (वियुव) विशेष रूप में अपने साथ मिश्रित कीजिये, मिला लीजिये।

[दीदिह=दा (दाने)। कोशम्=अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश,—इनमें मनोमय कोश मध्य का कोश है। वियुव=वि (विशेष रूप में)+युव (मिश्रणे)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
५८०—आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥

(आ सोत) हे उपासको! अपने में भक्तिरसों को पैदा करो, और (स्तोमम्) स्तुति योग्य, (अप्तुरम्) प्राण प्रेरक, (रजस्तुरम्) रजोगुणध्वंसक (वनप्रक्षम्) शारीरिक रसों में वसे हुए, (उदप्रुतम्) आनन्दरस से, आप्लुत हुए प्रभु को (परि षिञ्चत) सब प्रकार से भक्तिरसों द्वारा स्नान करा दो, (अश्वं न) जैसे कि अश्व को जलों द्वारा स्नान कराया जाता है।

तुरम्=तुर (त्वरणे); तथा तुर्वी (हिंसार्थः)। वन=जल (निघं० १।१२)। प्रक्षम्=प्र+क्ष (क्षि निवासे)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
५८१—एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम्।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥

(एतम्) इस हृदयवासी (त्यम्) और उस ब्रह्माण्डवासी, (मदच्युतम्) सांसारिक मस्ती से च्युत करने वाले, (सहस्रधारम्) हजारों ताराओं का धारण-पोषण करने वाले, (वृषभम्) आनन्दरसवर्षी, (दिवोदुहम्) द्युलोक से प्रकाश को

दोहने वाले, (विश्वा वसूनि विभ्रतम्) सब सम्पत्तियों के स्वामी को, भक्तिरसों से सींच दो (मन्त्र सं० ५८०)।

१ २ ३ ३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
५८२—स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥

(सः) वह परमात्मा (सुन्वे) भक्तिरसों द्वारा प्रकट किया जाता है (मंत्र सं०५८०), (यः) जोकि (वसूनाम्) सांसारिक सम्पत्तियों का और (यः रायाम्) जो आध्यात्मिक सम्पत्तियों का (यः) और जो (इडानाम्) वैदिक वाणियों का (आ नेता) पहुंचाने वाला है, (यः) और जो (सुक्षितीनाम्) निवास योग्य उत्तमोत्तम भूमियों का (सोमः) उत्पादक है।

[इडा=वाक् (निघं. १।११)।

२ ऽ१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५८३—त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥

(पवमान्) हे पवित्र करने वाले (अङ्ग) प्रिय परमात्मन्! (त्वं हि) आप ही (द्युमत्तमः) अतिशय ज्ञान प्रकाश वाले हैं। आप (अमृतत्वाय) मुमुक्षुजनों के मोक्ष के लिए, (दैव्यम्) अपने दिव्य स्वरूप की तथा (जनिमानि) जन्म-मरण व्यवस्थाओं की (घोषयन्) घोषणाएँ वेदों द्वारा करते रहते हैं।

३ १ २र ३ २ २ १ २ ३ १ ३
५८४—एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः।
१ २ ३ २ ३ १ २
क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥

(एषः) यह हृदयवासी और (स्यः) वह ब्रह्माण्डवासी प्रभु, (अव्याः) पार्थिव भोगों के (वारेभिः) निवारणों द्वारा (सुतः) प्रकट होकर, (धारया) आनन्द रसमयी धारारूप से (पवते) प्राप्त होता है, (मदिन्तमः) यह ही अर्चनाओं का महापात्र है। प्रभु (अपाम्) जलों की (ऊर्मिः) लहरों के (इव) समान (क्रीडन्) क्रीड़ा सी कर रहा है।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
५८५—य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज।
१ ३ १ २ ३ १ २
ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥

(यः) जो परमात्मा (उस्रियाः गाः) उषाकाल की रश्मियों को, (ओजसा) अपने पराक्रम द्वारा, (निः अकृन्तत्) सूर्य से काट निकालता है (अपि) तथा (अश्मनि अन्तः) फैले हुए मेघ में स्थित (याः गाः) जो जल हैं उन्हें, जो परमात्मा मेघों से (निःअकृन्तत्)काट गिराता है, तथा हे परमात्मन्! जो आप (गव्यं व्रजम्) पार्थिव-मण्डल को, (अश्व्यम् व्रजम्) और सौरमण्डल को (अभि तत्निषे) हमारे सन्मुख फैला रहे हैं, (धृष्णो) हे पाप धर्षक ! वह आप, (गव्यम्) हमारे इन्द्रियगत तथा (अश्व्यम्) मनोगत (व्रजम्) विकार समूहों को (आरुज) विनष्ट कीजिये, (इव) जैसे कि (वर्मी)कवचधारी सेनापति शत्रुओं का विनाश करता है। (ओ३म्) हे रक्षक ! तथा (धृष्णो) पापधर्षक परमात्मन् ! आप हमारे इन्द्रियगत तथा मनोगत विकार समूहों को (आ रुज) विनष्ट कीजिये, (इव) जैसे कि (वर्मी) कवचधारी सेनापति शत्रुओं का विनाश करता है।

[उस्रा=morning, down (आपटे)। गाः=रश्मियां (निरु०२।२।६) गाः=जलम् (उणा० २।६७, दयानन्द); गो=पृथिवी (निघं १।१); गो=इन्द्रियम् (उणा. २।६७ दयानन्द)। अश्मनि=मेघे (निघं०१।१०)। अश्व= आदित्य (निरु० ४।४।२७)। अश्व—मन "दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेदप्रमत्तः' (श्वेता २।९)। तथा "श्वेताश्वतरोपनिषद्—इस नाम में अश्व का अर्थ है—मन।

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [स्व० ७। उ० १। धा० ४३। चि ॥ इत्युष्णिक्ककुभः ॥ इति षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः षष्ठप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्रपाठक ६ का द्वितीयार्ध समाप्त।



अथ आरण्यं काण्डम्

अथ षष्ठोऽध्यायः।

दशतिः १

(१—९) शंयुर्बार्हस्पत्यः (भरद्वाजः); २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३, ६ वामदेवो गौतमः; ४ शुनः शेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा; ५ कुत्स आंगिरसः (गृत्समदः); ७, ८ अमहीयुरांगिरसः; ९ आत्मा ॥ इन्द्रः; ४ वरुणः; ५, ७, ८ पवमानः सोमः, ६ विश्वेदेवाः; ९ अन्नम् ॥ १ बृहती २, ४, ५, ९ त्रिष्टुप्; ३, ७—८ गायत्री; ६ एकपाज्जगती ॥

२ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५८६—इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
१ २र ३ १ २ ३ १र २र
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हमें (श्रवः) ऐसा यश (आभर) दीजिये, जो कि (ज्येष्ठम्) सर्वश्रेष्ठ हो, (ओजिष्ठम्) शक्तिदायक हो, (पुपुरि) हमें योग-मार्ग पर आगे आगे ले जाने वाला हो, (यद्) जिसे कि (दिधृक्षेम) हम धारण करने की इच्छा कर रहे हैं। (वज्रहस्त) अपने न्यायवज्र द्वारा पापों का हनन करने वाले ! (सुशिप्र) तथा उपासकों के चेहरों में कांति प्रदान करके उन्हें ब्राह्मी तेज से सम्पन्न करने वाले ! आप (रोदसी) भूलोक और द्युलोक (उभे) दोनों में (पप्राः) भरपूर हुए हैं ।

[पुपुरि=पुर अग्रगमने (चुरादि)। हस्तः=हन्तेः (निरु० १।३।७)। सुशिप्र=शिप्रे हनू नासिके वा (निरु०६।४।१६), सु (शोभने) शिप्रे हनू नासिके यस्मात्, अर्थात् मुखाकृति को शोभायमान करने वाला]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र १उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
५८७—इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥ २ ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (राजा) राजा है (जगतः) समग्र जगत का, और (चर्षणीनाम्) सभी मनुष्यों का (अधिक्षमा) पृथिवी में (यद्) जो (विश्वरूपम्) विविध प्रकार का धन (अस्य) इस परमेश्वर का है, (ततः) उस विविध धन से, परमेश्वर (दाशुषे) आत्मसमर्पक के प्रति, (वसूनि) नाना-विध धन (ददाति) दे रहा है। वह (उपस्तुतम्) मनोवांछित (राधः) आराधना-रूप धन (चित्) भी (अर्वाक्) आत्म-समर्पक की ओर (चोदत्) प्रेरित करता है ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३क २र १ २ ३ १ २ ३ २
५८८—यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनँ स्वः। इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥

(रजोयुजः) लोकलोकान्तरों में परस्पर सम्बन्ध जोड़ने वाले (यस्य इन्द्रस्य) जिस परमेश्वर का, (आ) सर्वत्र फैला हुआ (इदम्) यह (रन्त्यम्) रमणीय (बृहत्) महा ब्रह्माण्ड है, वह ही (तुजे) सर्वपालक परोपकारी (जने) मुमुक्षु मनुष्य में, (वनम्) उस द्वारा प्रार्थित (बृहत् स्वः) महासुख अर्थात् मोक्षसुख प्रदान करता है।

[रजांसि=लोकाः (निरु०४।३।१९)। तुज=पालने]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २उ ३ १ २र ३ १ २
५८९—उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमँ श्रथाय ।
१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥

(वरुण) हे वरने योग्य श्रेष्ठ प्रभो !' (अस्मत्) हमसे (उत्तमं पाशम्) हमारे उत्तम बन्धन को (उद् श्रथाय) ढीला कर दीजिये, (मध्यमं पाशम्) बीच के बन्धन को (वि श्रथाय) अलग कर दीजिये, (अधमं पाशम्) अधम बंधन को (अव श्रथाय) खोल दीजिये। (आदित्य) हे आदित्यसम अविद्यान्धकार निवारक प्रभो ! (अथ) अब (तव व्रते वयम्) आप द्वारा दर्शाये वैदिक-व्रतों में रहते हुए हम, (अनागसः) पाप रहित होकर, (अदितये) चिर स्थायी मोक्ष, या अखण्ड-रूप आपकी प्राप्ति के योग्य (स्याम) हो जायं।

[उत्तम पाश=योग की वह उच्च भूमि, जिसमें केवल "अस्मिता वृत्ति" रह जाती है, शेष वृत्तियों का निरोध हो जाता है। "अस्मिता वृत्ति का अभिप्राय हैं केवल "हूं" इतने मात्र का बोध। यह बोध कारण-शरीर में होता है। कारण-शरीर का अभिप्राय है "सत्वगुणमय चित्त। यह उत्तम पाश है। मध्यमपाश= मानसिक वासनायें। अधमपाश=स्थूल शरीर और उसके भोग]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
५९०—त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्।
१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

(सोम) हे जगदुत्पादक! (पवमानेन) पवित्र करने वाले, (त्वया) आपकी सहायता द्वारा, (भरे) देवासुर-संग्राम में (कृतम्) प्राप्त विजयों का (शश्वत्) सदा (वयम्) हम (वि चिनुयाम) विशेष रूप में चयन करते रहें, उन की संख्या बढ़ाते रहें। (मित्रः) हमारे मित्र, (वरुणः) आचार्य, (अदितिः) पृथिवी वासी समग्र प्रजाएँ (सिन्धुः) हमारे हृदय, (पृथिवी) पृथिवीवत् अन्नदाता माताएँ (उत) और (द्यौः) ज्ञान प्रकाश प्रदाता पितृवर्ग (नः) हमारी (तत्) उन विजयों की (मामहन्ताम्) प्रशंसा करें।

[वरुण=आचार्य "आचार्यो मृत्युः वरुणः" (अथर्व० ११।५।१४)। अदिति=पृथिवी (निघं०१।१)। सिन्धु=हृदय-समुद्र (अथर्व० १०।२।११)। पृथिवी, द्यौः=माता, पिता (अथर्व. १४।२।७१)।

३ १ २र ३ २उ ३ २
५९१—इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥ ६ ॥

देवासुर-संग्रामों में विजय पाने वाले हे उपासको ! इस विजय के निमित्त, (वृषणम्) सुखवर्षी (इमम्) इस (माम् इत्) मुझ परमेश्वर को ही (एकम् कृणुत) तुम अपना एकमात्र सहायक बनाओ।

[वृषणम्=असुरों पर वाण वर्षा करने वाले मुझको,—यह अर्थ भी उपपन्न है। क्योंकि संग्राम का वर्णन है।]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५९२—स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
३ १ २र
वरिवोवित्परिस्रव ॥ ७ ॥

(सः) वह आप हे प्रभो! (यज्यवे) योग-यज्ञ करने वाले, (वरुणाय) पापों का निवारण करने वाले (इन्द्राय) जीवात्मा के प्रति, और (नः) हमारे (मरुद्भ्यः) प्राणों के हित (परिस्रव) आनन्दरस धारा रूप में पूर्ण रूप से प्रवाहित हो जाइये। (वरिवोवित्) आप श्रेष्ठ मोक्षधन प्राप्त कराते हैं।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
५९३—एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
१ २
सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥

(मानुषाणाम्) मनुष्य सम्बन्धी (एना) इन (विश्वानि द्युम्नानि) सब धनों को, (अर्ये) ब्रह्माण्ड के स्वामी में, (आ) पूर्णरूप से (सिषासन्तः) समर्पित करने की इच्छा करने वाले हम उपासक, (वनामहे) प्रभु की भक्ति करते हैं।

विश्वानि=सांसारिक धन और आध्यात्मिक धन, श्रद्धा, विभूतियां आदि। वनामहे=वन संभक्तिः, सम्यक् भक्ति]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५९४—अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।
२ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ९ ॥

परमात्मा कहता है कि "(अहम्) मैं (ऋतस्य) सत्यज्ञान का (प्रथमजाः) सर्वप्रथम जन्मदाता (अस्मि) हूं, (देवेभ्यः) सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि दिव्य पदार्थों से (पूर्वम्) मैं पहले का हूं। (अमृतस्य) मोक्ष का (नाम) नमाने वाला हूं, देने वाला हूं। (यः) जो मेरा भक्त (मा) मेरे प्रति (ददाति) आत्मसमर्पण करता है (स इत्) वह ही (एवम्) इस प्रकार अर्थात् समर्पण की विधि से (आवत्) मुझे प्राप्त हो जाता है, उसका (अहम्) मैं (अन्नम्) आध्यात्मिक-अन्न बन जाता हूं। और जो केवल (अन्नम्) प्राकृतिक-अन्न को (अदन्तम्) खाता रहता है उसे (अद्मि) मैं खा जाता हूं, अर्थात् भोगनिरत व्यक्ति विनाश को प्राप्त हो जाता है।"

[आवत्=अव (प्राप्ति)]

इति प्रथमा दशतिः॥ प्रथमः खण्डः॥ १॥

दशतिः २

(१—७) श्रुतकक्ष आङ्गिरसः; २ पवित्र आङ्गिरसः; ३, ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ५ प्रथो वासिष्ठः; ६ गृत्समदः सौनकः; ७ नृमेघपुरुमेघावांगिरसौ ॥ इन्द्रः, २ पवमानः सोमः, ५ विश्वे देवाः; ६ वायुः ॥ गायत्री, २ जगती, ५ त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप् ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
५९५—त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥

हे परमात्मन् ! आपने (कृष्णासु) तामसिक, (च रोहिणीषु) और राजसिक, तथा (परुष्णीषु) सात्त्विक चित्तवृत्तियों में, (रुशत्) चमकीला (पयः) ज्ञानदुग्ध (अधारयः) स्थापित किया है।

[तीनों प्रकार की चित्तवृत्तियों में सत्त्वगुण निहित रहता है। इसी सत्त्वगुण की न्यूनता और अधिकता में ज्ञान की न्यूनता और अधिकता होती है। सत्त्वगुण प्रकाशमय है। "रुशत्पयः" अर्थात् चमकीला ज्ञानदुग्ध. सत्त्वगुण का परिणामरूप है। योगाभ्यास में तामसिक और राजसिक वृत्तियों का निरोध कर सात्त्विक चित्त-वृत्तियों को जगाना होता है। अन्त में इन सात्त्विक वृत्तियों का भी निरोध करके कैवल्यावस्था और मोक्ष पाना होता है। परमात्मा ने सब के चित्तों में इस सत्त्वगुण की स्थापना कर रखी है। इस सत्त्वगुण की अधिक जागृति मनुष्य के अभ्यास और वैराग्य पर निर्भर करती है] परुष्णी का अर्थ "भास्वती" भी है, अर्थात् चमकीली (निरु. ९।३।२५)।

परु=पृ (पालने) + ष्णा (शौचे) अर्थात् वह सात्त्विक वृत्ति जो कि योगी की पालना करती है, और अत्यन्त शुचि है, चमकीली है, प्रज्ञावती है। उपनिषद् में तमोगुण को कृष्ण, रजोगुण को लोहित, तथा सत्त्वगुण को शुक्ल कहा है। यथाः "अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः (श्वेता० ४।५)। रोहिणी=लोहिनी=लोहित। परुष्णी=शुक्ल, भास्वतीवृत्ति]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
५९६—अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ २ ॥

(अग्रियः) सर्वमुख्य, (पृश्निः) आदित्य-सदृश स्वप्रकाशी परमात्मा ने (उषसः) आध्यात्मिक आरम्भिक-प्रज्ञालोक को, तथा प्राकृतिक-उषाओं को (अरूरुचत्) चमकाया है। (उक्षाः) ज्ञानरस सींचने वाले परमेश्वर ने (मिमेति[1])

(१) मीमयतिः=शब्द कर्मा (निरु० २।२।६)।

मानुष-सृष्टि के प्रारम्भ में वैदिकनाद किया है। (वाजयुः भुवनेषु) भुवनों में इसी ने ही बल प्रदान किया है। (अस्य) इसकी दी (मायया१) प्रज्ञा द्वारा योगी जन तथा अन्य विद्वान्, (मायाविनः) प्रज्ञा वाले (ममिरे) बनते हैं। (नृचक्षसः) सब नर-नारियों की समुन्नति की दृष्टि वाले, (पितरः) तथा सब का पालन करने वाले योगीजन, इस परमात्मा को मानो (गर्भम्) गर्भरूप में अपने हृदयों तथा मनों में (आदधुः) धारण करते हैं।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५९७—इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥

(इन्द्र इत्) परमेश्वर ही (वचोयुजा) परमेश्वरीय आज्ञाओं द्वारा कार्यों में नियुक्त होने वाले (हर्योः) ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय रूपी अश्वों का (सचा) संगी बन कर (आ सम्मिश्लः) पूर्णरूप में उनमें मिश्रित हो जाता है। (इन्द्रः) तब परमेश्वर (वज्री) आसुरी भावनाओं पर वज्र-प्रहार करता है, तदनन्तर वह (हिरण्ययः) हितकारी और रमणीय प्रतीत होने लगता है।

[वचोयुजा=वचोयुजोः]

२ ३ १ २ ३ १ २
५९८—इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

(इन्द्रः) हे परमेश्वर! (वाजेषु) देवासुर-संग्रामों में आप (नः) हमारी (अव) रक्षा कीजिये, (च) और (सहस्र प्रधनेषु) ऐसे हजारों संग्रामों में आप हमारी रक्षा कीजिये। (उग्र) आसुरी भावों-और-कर्मों के हनन में उग्ररूप हे परमेश्वर! (उग्राभिः ऊतिभिः) आप अपनी उग्र रक्षाओं द्वारा हमारी रक्षा कीजिये।

[वाजे=संग्राम (निघं. २।१७)। प्रधने=संग्राम (निघं० २।१७) की टिप्पणी नं० १३; वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, अजमेर द्वारा प्रकाशित। सहस्र=मनुष्य-जीवन में, रात-दिन में, आसुरी भावनाएँ कई बार आती हैं। इस दृष्टि से सहस्र शब्द प्रयुक्त हुआ है]

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
५९९—प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठाः ॥ ५ ॥

१—माया=प्रज्ञा (निघं ३।९)।

(यस्य) जिस परमेश्वर के (नाम) नाम हैं,—प्रथ और सप्रथ। (यत्) जो (आनुष्टुभस्य हविषः) श्रेष्ठ हवियों में (हविः) सर्वश्रेष्ठ हवि है, उस (धातुः) विधाता (द्युतानात्) ज्ञान-प्रकाश का विस्तार करने वाले, तथा द्युलोक का विस्तार करने वाले, (सवितुः) सर्वप्रेरक (विष्णोः) तथा सर्वव्यापक परमेश्वर से,—(वसिष्ठः) प्राण-संयमी योगी, (रथन्तरम्) शरीर-रथ द्वारा भवसागर से तैराने का ज्ञान (आ जभार) प्राप्त करता है।

[प्रथः = विस्तारे, विस्तार वाला। सप्रथः=विस्तार वाले आकाश आदि का स्वामी। आनुष्टुभस्य=अनु+स्तुभ् (Praise आप्टे)। हविः="यत्पुरुषेण हविषा देवाः यज्ञमतन्वत" (यजु० ३१।१४), तथा "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" (यजु० ३१।१६), अर्थात् उपासना में यज्ञ-स्वरूप परमेश्वर को ही हवि जानो, अर्थात् ध्यान में, जीवात्माग्नि में, परमेश्वर को हवि जानकर, उस हवि को अग्निरूप कर, उसे प्रकाशित करो। इसी भाव को ही "यज्ञेन यज्ञमयजन्त" द्वारा भी प्रकट किया है, अर्थात् ध्यानयज्ञ में परमेश्वर-रूपी हवि द्वारा परमेश्वरीय-यज्ञ किया जाता है। वसिष्ठः="वसिष्ठः ऋषिः प्राणं गृह्णामि" (यजु० १३।५४)। रथन्तरम्=रथ (शरीर)+तर (तैरना)। "तर" शब्द के भाव में योग में "तारक" शब्द आया है। यथा—तारकं सर्व-विषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजज्ञानम्" (योग ३।५४) यह तारक-ज्ञान विवेकज ज्ञान है जो कि आत्मा और चित्त में परस्पर भेद साक्षात्कार द्वारा उत्पन्न होता है। यह विवेकज ज्ञान "तारक" है, योगी को भवसागर से तैरा देता है]

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
६००—नियुत्वान्वायवा गह्ययँ शुक्रो अयामि ते।
१ २ ३ २ ३ २
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥

(वायो) हे वायुवत् प्राणाधार! आप (नियुत्वान्) हजारों-लाखों शक्तियों के स्वामी हैं; (आ गहि) आप मेरे हृदय में प्रकट हूजिये। (अयम्) यह (शुक्रः) शुद्ध-पवित्र (ते) तेरा मैं उपासक (अयामि) आपको प्राप्त होता हूं। (गन्तासि) आप पहुंचते हैं, प्रकट होते हैं, (सुन्वतः) भक्तिरस-वाले उपासक के (गृहम्) हृदय-गृह में।

१ २र ३ १ २ ३ १ २
६०१—यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥

(अपूर्व्य) हे अनादि! तथा (मघवन्) ऐश्वर्यशाली प्रभो! आप (वृत्र-हत्याय) पाप-वृत्रों की हत्या के लिये (यत्) जब (जायथाः) प्रकट होते हैं, (तत्) तब हमें ज्ञात होता है कि आपने ही (पृथिवीम्) पृथिवी को (अप्रथयः) फैलाया है, (उत उ) और आपने ही (दिवम्) द्युलोक को (अस्तभ्नाः) थाम रखा है।

इति द्वितीया दशतिः ॥ द्वितीय खण्डः ॥ २ ॥

दशतिः ३

(१—१३) १, ५, ७, १० वामदेवो गौतमः; २, ३, गौतमो राहूगणः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ गृत्समदः शौनकः ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ ऋजिश्वा भारद्वाजः; ११ हिरण्यस्तूप आंगिरसः; १२, १३ विश्वामित्रो गाथिनः (१२ ब्रह्म) ।। १ प्रजापतिः; २, ३ सोमः; ४, ५, ८, १३ अग्निः; ६ अपांनपात्; ७ रात्रिः; ९ विश्वेदेवाः; १० लिंगोक्ता; ११ इन्द्रः; १२ आत्मा अग्निर्वा ।। त्रिष्टुप्; ४ गायत्री; ८, ९ जगती; १० महापंक्तिः ।।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
६०२—मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृँहतु ।। १ ।।

(परमेष्ठी) जीवात्मरूपी-परम-स्थान में निवास करने वाला, (प्रजापतिः) सब उत्पन्न पदार्थों का स्वामी (मयि) मुझमें (वर्चः) ब्राह्म तेज, (अथो) और (यशः) तत्सम्बन्धी यश, (अथो) और (यज्ञस्य) ध्यान-यज्ञ का (यत्) जो (पयः) सार है, अर्थात् मोक्ष है,—उन्हें (दृंहतु) मुझमें दृढ़ रूप में स्थापित करे, (इव) जैसे उसने (दिवि) द्युलोक में, (द्याम्) चमकते सूर्य को तथा तारामण्डल को दृढ़रूप में स्थापित किया हुआ है ।

[परमेष्ठी="ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः रमेष्ठिनम्" (अथर्व. १०।७।१७) अर्थात् पुरुषवासी ब्रह्म परमेष्ठी है]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
६०३—सं ते पयाँसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाँस्युत्तमानि धिष्व ।। २ ।।

(सोम) हे जगदुत्पादक ! (ते) आप के दिये (पयांसि) सारमय मोक्षरूपी फल (सं यन्तु) हम सब उपासकों को प्राप्त हों, (वाजाः) शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक बल (सम्) हम सब उपासकों को प्राप्त हों, (वृषण्यानि) वीर्य-

शक्तियाँ (सम्) हम सब उपासकों को प्राप्त हों, (अभिमातिषाहः) आप अभिमान-वृत्तियों तथा अभिमानियों का पराभव करते हैं। हे प्रभो! आप (अमृताय) अमृत जीवात्मा की (आप्यायमानः) सदा वृद्धि करते हैं। (दिवि) प्रतिदिन आप हमें (उत्तमानि श्रवांसि) उपर्युक्त उत्तम यश (धिष्व) प्रदान कीजिये।

दिवि=दिव् (A day, आपटे); दिवस। दिवेदिवे=अहर्नाम (निघं० १।९)]

२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
६०४—त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
१ २र ३ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ३ ॥

(सोम) हे जगदुत्पादक! (त्वम्) आपने (इमा विश्वाः ओषधीः) इन सब ओषधियों को, (त्वम्) आपने (अपः) नाना विधि प्राणों को, (त्वम्) आपने (गाः) गौ आदि पशुओं को (अजनयः) पैदा किया है। (त्वम्) आपने (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ तनोः) फैलाया है, (त्वम्) आपने (ज्योतिषा) सूर्य-रूपी ज्योति के द्वारा (तमः) अन्धकार को (वि ववर्थ) हटाया है।

[अध्यात्म में ओषधीः="काम क्रोध आदि दोषों को निगल जाने वाली सात्त्विक चित्तवृत्तियां, या सन्ताप पैदा करने वाले काम क्रोध आदि का पान करने वाली, निगल जाने वाली सात्त्विक चित्तवृत्तियाँ; ओषधयः दोषं धयन्तीति वा, ओषद् धयन्तीति वा" (निरु० ९।३।२७)। अपः=प्राण। ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि (निरु० १२।४।३८, "सप्तऋषयः" (पदों व्याख्या में)। गाः=वाणियां तथा वेदवाणियाँ (निघं० १।११)। अन्तरिक्षम्=हृदयाकाश। तमः=अज्ञानान्धकार, अविद्या]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
६०५—अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
१ २ ३ १ २
होतारँ रत्न धातमम् ॥ ४ ॥

(अग्निम्) प्रकाश-स्वरूप सर्वाग्रणी परमात्मा की (ईडे) मैं उपासक स्तुति करता हूं, और उसी से प्रार्थना करता हूं जो कि (पुरोहितम्) मेरे सन्मुख हृदय में निहित है, (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ में (देवम्) जो उपास्यदेव हैं (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में यजन-योग्य हैं, (होतारम्) दानी, और (रत्नधातमम्) रमणीय गुण कर्मों को धारण करता और धारण कराता है।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
६०६—ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन्।
१ २ ३ २ १क२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ ३
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥ ५ ॥

(ते) वे उपासक, (गोनाम्) वेदवाणियों में वर्णित (प्रथमं नाम) मुख्य-नाम "ओ३म्" का (मन्वत) मनन करते हैं, (त्रिः सप्त) ३×७ अर्थात् वेदों के २१ छन्द (नाम) ओ३म् नाम को (परमम्) परम-नाम (जानत्) जानते हैं वा जनाते हैं। (ताः क्षाः) वे क्षिति-निवासी-प्रजाएं (जानतीः) ओ३म् नाम को ही मुख्य नाम जानती हुई (अभ्यनूषत) ओ३म्-जपद्वारा परमात्मा की साक्षात् स्तुतियां करती हैं, इस प्रकार (गावः) स्तोता लोग, (यशसा) स्वकीय यश द्वारा (अरुणीः) सूर्य की किरणों के समान (आविर्भुवन्) सुशोभित होते हैं।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क२र

६०७—समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

तम् शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः॥ ६॥

जैसे (अन्याः नद्यः) कई नदियां (समानम्) एक सी (ऊर्वम्) विस्तृत समुद्र में (सं यन्ति) जा समाती हैं, (अन्याः) तथा अन्य कई नदियाँ (उपयन्ति) समुद्र की ओर जाती हुई बीच में ही रह जाती हैं, (पृणन्ति) परन्तु ये सब नदियाँ उसी समुद्र के प्रति 'आत्म समर्पण की हुई होती हैं, इसी प्रकार (शुचयः) शुद्ध पवित्र (आपः) कई आप्त प्रजाएं, (तम् उ) उसी (शुचिम्) शुद्ध पवित्र, (दीदिवांसम्) प्रकाशमान, (अपां न पातम्) आप्त प्रजाजनों को मार्गच्युत न होने देने वाले परमात्मा को, प्राप्त हो जाती हैं, और कई (उप यन्ति) उसकी उपासना तक ही रह जाती हैं। परन्तु ये सब प्रजाएँ (समानं ऊर्वम्) उसी एक विभु परमात्मा की ओर ही प्रयाण कर रही होती हैं।

[अथर्ववेद में भी इसी प्रकार की भावनाओं का वर्णन है। यथाः "यत्र प्रेप्सन्तीरभि यन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि" (१०।७।६), "कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः। किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदाचन" (१०।७।३७)। पृणन्ति= दानकर्मा (निघं० ३।२०)]

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

६०८—आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतूंत्समीर्त्सति।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री॥ ७॥

(रात्री) अज्ञान-रात्री, (युवतिः) अपनी यौवनावस्था में, (आ प्रागात्) पूर्ण-रूप में हमें प्राप्त हुई थी, परन्तु अब यह अज्ञान-रात्री (भद्रा) हमें सुखदायिनी और कल्याणकारी (अभूत्) हो गई है, क्योंकि यह (अह्नः) ज्ञान-दिन के (केतून्) प्रकाशों को (सम् ईर्त्संति) सम्यक् रूप में प्रेरित करना चाह रही है। अज्ञान-रात्री जो कि (विश्वस्य जगतः) सब प्राणी-जगत् को (निवेशनी) आराम में सुला रही है, वह हम उपासकों के लिए अब (भद्रा) सुखदायिनी और कल्याणकारिणी (अभूत्) हो गई है।

३२ ३३ २ १२ ३२३ ३ २ ३१२ ३१२ ३१
६०६—प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जात-
२
वेदसे ।
३ १२ ३१ २र३ २३ १२ ३ १२३१२
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये
॥ ८ ॥

हे अध्यात्म गुरो ! (नः विदथा) हमारे ज्ञान के लिए,—(प्रक्षस्य) पापक्षयकारी, (वृष्णः) सुखवर्षी, (अरुषस्य) रोषरहित अर्थात् स्नेही परमात्मा के (महः) दिव्य तेजोरूप का, आप, (नू) शीघ्र (प्र वचः) प्रवचन कीजिए। (जातवेदसे) सर्वज्ञ वेदवक्ता, (वैश्वानराय) सब नर-नारियों के हितकर्त्ता, (नव्यसे) नव प्रकटित, (अग्नये) सर्वाग्रणी परमात्मा के लिये, (मतिः) हमारी मतियाँ, (शुचिः सोम इव) पवित्र भक्ति रसों के सदृश (पवते) प्रवाहित हो रही हैं।

१ २ ३ १ २र ३२३१र २र ३१र २र ३ १ २
६१०—विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
२ ३ १ २ ३१२ ३२उ ३ १ २
मा वो वचाँसि परिचक्षाणि वोचँ सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम
॥ ९ ॥

उपासक कहता है कि (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य-उपासक, (रोदसी उभे) तथा सर्व साधारण स्त्री-और-पुरुष दोनों, (अपां न पात् च) और आप्त पुरुषों और स्त्रियों को अपने अपने ध्येय से विमुख न होने देने वाला परमात्मा, (मम) मेरे (यज्ञम्) अध्यात्म-यज्ञ-विषयक (मन्म) विचारों को (शृण्वन्तु) सुनें कि हे महानुभावो ! (वः) आपके (वचांसि) सदुपदेश-वचन (परिचक्ष्याणि) प्रत्याख्यान के योग्य हैं, अर्थात् अग्राह्य हैं, यह (मा वोचम्) मैं कभी न कहूं, अपितु तदनुसार मैं चलूं, ताकि (सुम्नेषु) प्रसन्नचित्त होकर (वः) आप सब के (अन्तमाः) समीप रहते हुए हम उपासक (मदेम) सदा हर्ष को प्राप्त हों।

१२ ३ १२ २ १र २र ३२
६११—यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
२३१२ ३१२ ३१२
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
३ २ २ ३२३ १२ ३ १ २
यशसा३स्याः सँसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥

उपासक-शिष्य कहता है कि (द्यावा पृथिवी) सभी स्त्री-पुरुष (मा) मेरे लिये (यशः) यश के कारण बनें, (इन्द्रबृहस्पती) परमेश्वर और वेदवाणी का गुरु

(मा) मेरे लिये (यशः) यश के कारण वनें, (भगस्य) धर्म, श्री, ज्ञान और वैराग्य का (यशः) यश (विन्दतु) मुझे प्राप्त हो, (मा) मुझे (यशः) अध्यातम यश (प्रति मुच्यताम्) प्राप्त हो। (यशसा अहम्) यश से संवलित मैं, (अस्याः) इस (संसदः) मनुष्य-समाज का, (प्र वदिता) अध्यात्म-ज्ञान का प्रवक्ता (स्याम्) होऊं, बनूं।

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
६१२—इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ ११ ॥

प्रवदिता (६११) कहता है कि (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (वीर्याणि) वीर-कर्मों का (नु) निश्चय से (प्र वोचम्) प्रवचन करता हूं, (यानि) जिन (प्रथमानि) श्रेष्ठ वीर-कर्मों को (वज्री) आसुरी भावों पर वज्र प्रहार करने वाले परमेश्वर ने (चकार) किया है। (अहिम्) उसने पाप-सांप का (अहन्) हनन किया है, (अनु) तदनु (अपः) पाप-कर्मों का (ततर्द) विनाश किया है, और (पर्वतानाम्) पंचपर्वा-अविद्या और उसके दुष्परिणामों की (वक्षणाः) वृद्धियों को (प्र अभिनत्) छिन्न-भिन्न कर दिया है।

[पंचपर्वा अविद्या=अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश। इसके परिणाम=जाति, आयु, और भोग। वक्षणाः=वक्ष् (To grow, आपटे)।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
६१३—अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥ १२ ॥

परमात्मा स्वयं अपने सम्बन्ध में क्या कहता है,—इसका प्रवचन प्रवदिता (६११) करता है कि "मैं (अग्निः अस्मि) सब का अग्रणी हूं आगे-आगे उन्नति पथ पर ले जाने वाला नेता हूँ, (जन्मना) स्वभाव से ही (जातवेदाः) विद्या-सम्पन्न, वेद प्रवक्ता, तथा प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान हूं, (घृतम्) दीप्तिमान् सूर्य (मे) मानो मेरी (चक्षुः) आंख हैं, (अमृतम्) वेदज्ञानामृत (मे आसन्) मेरे मुख में है, अर्थात् उसका मैं प्रवक्ता हूं, (त्रिधातुः) तीनों लोकों का धारण-पोषण करता हूं, (अर्कः) सूर्यवत् तेजस्वी हूं, तथा अर्चनीय हूं, (रजसः) लोक लोकान्तरों का (विमानः) निर्माता हूं, (अजस्रम्) अक्षय्य (ज्योतिः) ज्योतिरूप हूं, (सर्वं हविः अस्मि) सब हवियों में सर्वश्रेष्ठ हवि हूं।

[घृतम्=घृ (दीप्तौ)। "चक्षोः सूर्यः अजायत" (यजु० ३१।१२) अर्कः=सूर्य, तथा अर्चनीय : सर्वं हविः=मंन्त्र संख्या (५९९)]

२ ३ २ ३ १ २र ३ १२ २र ३ १ २र ३ १ २
६१४—पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ १३ ॥

(विपः) मेधावी (अग्निः) सर्वाग्रणी प्रभु (वेः) उड़ते हुए पक्षी के (अग्रं पदम्) अगले कदम की (पाति) रक्षा करता है । (यह्वः) महान् प्रभु (सूर्यस्य) सूर्य की (चरणम्) गतिविधियों की (पाति) रक्षा करता है (अग्निः) सर्वाग्रणी प्रभु (नाभा) नाभि बन्धन में आने वाले अर्थात् जन्म धारण करने वाले (सप्तशीर्षाणम्) सातशक्तिओं के शिरोभूत जीवात्मा की (पाति) रक्षा करता है । (ऋष्वः) सर्वगत प्रभु (देवानाम्) दिव्य-उपासकों के (उपमादम्) हर्ष और प्रसन्नता की (पाति) रक्षा करता है ।

[वेः="वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्" (ऋ० १।२५।७), वि=पक्षी । यह्वः, ऋष्वः=महत् (निघं ३।३) । सप्तशीर्षाणम्=५ ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, विद्या,—इन सातों का शिरोभूत जीवात्मा]

इति तृतीया दशतिः ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

दशतिः ४

(१—१२) वामदेवो गौतमः ३—७ नारायणः ॥ १—२ अग्निः; ३—७ पुरुषः; ८ द्यावापृथिवी; ९—११ इन्द्रः; १२ गावः ॥ अनुष्टुप्; १—२ पंक्तिः; ८, ११, १२ त्रिष्टुप् ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
६१५—भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥ १ ॥

(समिधान) हे प्रकाशमान (दीदिवः) जाज्वल्यमान, (अग्ने) सर्वनेता प्रभो! (जिह्वा) हमारी जिह्वाएँ, (भ्राजन्ति) आपके गुणों का प्रकाश करती हुई, (आसनि अन्तः) हमारे मुखों के भीतर (चरति) विचर रही हैं, (सः त्वम्) उस आपने (अग्ने) हे सर्वनायक ! (वसुवित्) तथा हे वसाने योग्य सद्गुणों के प्रदाता ! (पयसा) अध्यात्मज्ञानरूपी-दुग्ध के साथ-साथ (रयिम्) अध्यात्म सम्पत्ति, और (वर्चः) ब्रह्म-तेज (नः अदाः) हमें दे दिया है, ताकि हम (दृशे) आप का दर्शन कर सकें ।

३ १ २र ३ १ २र
६१६—वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥ २ ॥

हे प्रभो ! (वसन्तः) आप की वसन्त ऋतु (इत् नु) अवश्य (रन्त्यः) रमणीय है, (ग्रीष्मः) ग्रीष्म ऋतु (इत् नु) अवश्य (रन्त्यः) रमणीय है। (वर्षाणि) वर्षा ऋतु, (अनु) तथा तत्पश्चात् (शरदःहेमन्तःशिशिरः) ये तीनों ऋतुएँ (इत् नु) अवश्य (रन्त्यः) रमणीय हैं।

[प्रभु ने प्राणियों के उपकार के लिएसृष्टि रचना की है। प्रभु, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, तथा दयालु हैं। इसलिए इसकी रचना दोषरहित है। ऋतुएँ भी अपने-अपने विशेष गुणों वाली हैं, और ये विशेषगुण प्राणियों के लिए लाभकारी हैं। इसलिये धारणा यही होनी चाहिये कि सब ऋतुएँ रमणीय हैं। ऋतुनिन्दा, नास्तिकता है। इसीलिए उपनिषद् में कहा है कि "ऋतु न निन्द्यात् सद् व्रतम्" (छान्दो० अ०२।खं. १६।२)]

३ १ २   ३   १ २   ३ २ ३ १ २
६१७—सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
१र   २र   ३ १ २   ३ १   २   ३   २
स भूमिꣳ सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ ३ ॥

(पुरुषः) ब्रह्माण्ड पुरी में बसा परमात्मा, (सहस्रशीर्षाः) मानो हजारों सिरों वाला है, सर्वज्ञ है। (सहस्राक्षः) मानो हजारों आँखों वाला हैं, सर्वद्ष्टा है। (सहस्रपात्) मानो हजारों पैरों वाला हैं, सर्वगत है। (सः) वह परमात्मा (भूमिम्) भूमण्डल को (सर्वतः) सब ओर से, अन्दर तथा बाहिर (वृत्वा) घेरकर (अति) और भूमि को लांघकर(दशाङ्गुलम्)दस अंगों वाले ब्रह्माण्ड में (अतिष्ठत्) स्थित है।

[सिर का विशेष गुण है "ज्ञान।" आंख का विशेष गुण है "प्रत्यक्ष दर्शन" पैरों का विशेष गुण है "गति।" दस अंग= ५ स्थूल भूत, ५ सूक्ष्म भूत। इन्हीं से समग्र ब्रह्माण्ड बना है। पुरुष=पुर+वस् (उस्+उष्)]

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३   २ ३ १ २ ३ १ २
६१८—त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
१ ३   २ ३क   २र   ३ २   ३ २
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥ ४ ॥

(पुरुषः) ब्रह्माण्ड-पुरी में बसा परमात्मा (त्रिपाद्) अपने तीन अंशों के रूप में (ऊर्ध्वः) संसार से पृथक् हुआ (उत् एत्) प्रकाशित हो रहा है, और (अस्य) इस का (पादः) एक अंश (इह) इस जगत् में (पुनः) बार-बार (अभवत्) उत्पत्ति-प्रलय के चक्र से (अभवत्) प्रकट होता रहता है। (ततः) उत्पत्ति के बाद (अशनानशने) साशन अर्थात् खाने वाले चेतन, और अनशन अर्थात् न खाने वाले जड़, इन दोनों के (अभि) प्रति, (विष्वङ्) व्याप्त होकर, (वि अक्रमत) अपना विक्रम दर्शा रहा है।

१२ ३२उ ३२३२उ ३ १ २
६१९—पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
१२ ३ १२३१२ ३१२३१२ ३२
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।। ५ ।।

(यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ, (च, यत्) और जो (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला, और जो (इदम्) यह वर्तमान जगत् है, (सर्वम्) इस सब के प्रति, (पुरुष एव) ब्रह्माण्ड निवासी परमात्मा ही, अपना विक्रम दर्शा रहा है (मन्त्र ६१८)। (सर्वा भूतानि) सर्व पृथिवी आदि चराचर जगत् (अस्य) इस परमात्मा का (पादः) एक अंश मात्र है, और (अस्य) इस जगत्स्रष्टा के (त्रिपाद्) तीन अंश, (अमृतम्) जिनका कि जगत् के मरण-जन्म के साथ सम्बन्ध नहीं, वे, (दिवि) इसके अपने द्योतनात्मक स्वरूप में विद्यमान रहते हैं।

[अभिप्राय यह है कि तीनों-कालों में होने वाला चराचर जगत्, परमात्मा के एक-चतुर्थांश में ही रहता है, अपितु परमात्मा के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता, और इस परमात्मा के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्ष स्वरूप में सदैव रहते हैं। इस कथन से परमात्मा का अनन्तपन नहीं बिगड़ता, किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है (दया० यजु० ३१।३)]

१२ ३ २उ ३ १ २ ३ १२
६२०—तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
३ १२३१ २र ३ १ २र ३ १२
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।। ६ ।।

(तावान्) वह दृश्य-अदृश्य ब्रह्माण्ड (अस्य) इस परमात्मा के (महिमा) केवल महत्त्व का सूचक है। (पूरुषः) ब्रह्माण्डपुरीवासी परमात्मा तो (ततः) उस ब्रह्माण्ड से (ज्यायान्) बहुत बड़ा है। (उत) और वह परमात्मा (अमृतत्वस्य) जीवात्माओं के मोक्षसुख का भी (ईशानः) अधीश्वर है, (यद्) जो मोक्षसुख कि (अन्नेन) अन्नमय शरीर के आधार पर (अति रोहति) प्ररोहित होता है।

[जीवात्मा के ५ कोश हैं,—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। बिना अन्नमय कोश में आये जीवात्मा को, मुक्ति प्राप्त नहीं होती]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२
६२१—ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
२ ३१ २र ३ २उ ३१२ ३२
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।। ७ ।।

(ततः) उस परमात्मा से (विराट्) विशेष रूप-में-प्रदीप्त-अण्डाकार गोला उत्पन्न हुआ, और इस (विराजः) विराट् का (अधि) अधिष्ठाता (पूरुषः) ब्रह्माण्ड निवासी परमात्मा था। (जातः) उत्पन्न होकर (सः) वह गोला, (अति) बहुत (अरिच्यत) टुकड़ों, खण्डों में विभक्त हुआ। (पश्चात्) पीछे (भूमिम्) भूमि को (अथो) और तत्पश्चात् (पुरः) जीवात्माओं की पुरियों अर्थात् देहों को परमात्मा ने उत्पन्न किया।

["तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्" (मनु.)। इस विराट् को मनुस्मृति में "हैम-अण्ड" कहा है, अर्थात् सुवर्णसदृश प्रदीप्त या रंग वाला अण्डाकार गोला, जो कि सूर्यसदृश प्रभा वाला था। इसी दृष्टि से "ब्रह्माण्ड" शब्द में अण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्रह्माण्ड का अर्थ है "बड़ा अण्डा", या ब्रह्म द्वारा उत्पादित अण्डाकार गोला। वर्तमान वैज्ञानिक इसे "NEBULA" कहते हैं। Nebula शब्द "नभस्" का रूपान्तर है जिसका अर्थ है "Fog Vapour" (आप्टे)। सृष्टि की उत्पत्ति में वर्तमान वैज्ञानिक Nebular Hypothesis को मानते हैं। इसके सम्बन्ध में लिखा है "This is the theory of laplace and sir us Herschel that nebulae forms the earliest stage in the formation of stars and Plants"।

१ ३ ३ १ २ ३

६२२—मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ

१ २र ३ १ २ ३ १ २र

ये अप्रथेथाममितमभि योजनम्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः॥ ८॥

(द्यावा पृथिवी) हे स्त्रीवर्ग-और-पुरुषवर्ग! (वाम्) तुम दोनों वर्गों के लिए, (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक, (सुभोज-सौ) सम्यक् रूप में भोजनाच्छादन और पालन-पोषण कर सकते हैं, ऐसा (मन्ये) मैं मानता हूं, (ये) जो द्युलोक और पृथिवीलोक (अमितम्) अपरिमित (योजनम्) विस्तार में (अप्रथेथाम्) फैले हुए हैं। (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक स्वभावतः (स्योने) सुखदायी हैं। (ते) वे दोनों (अंहसः) भोजनादि की सामग्री के अभाव से हुई हत्याओं से (नः) हमें (मुञ्चतम्) बचाते हैं।

[आस्तिक व्यक्ति का उपर्युक्त यह विश्वास है कि भोजनाच्छादन के उत्पादक साधनों तथा उत्पन्न पदार्थों का समुचित वितरण, और परोपकार की भावनाओं का यदि सदुपयोग हो तो सृष्टि में भोजनाच्छादन की कोई कमी नहीं]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

६२३—हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तन्त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः॥ ९॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (हरी) ऋचाएं-और-सामगान (ते) आपके दिये देन हैं, (श्मश्रूणि) शरीर में आश्रय पाई हुई शक्तियां (ते) आपके दिये देन हैं, (उत उ) और (ते) आपके दिये (हरी) ऋचाएं-और-सामगान (हरितौ) हमारे अज्ञान और अज्ञानजन्य कष्टों का हरण करने वाले हैं। (वनर्गवः) वानप्रस्थी उपासक (कवयः पुरुषासः) कवि पुरुष (तं त्वा) उस आप की ही (स्तुवन्ति) स्तुतियाँ गाते हैं।

[हरी="ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" (ऐ० ब्रा० २।२४)। ऋक् का अर्थ है "ऋचाएं", और साम का अर्थ है "गान"। इन दो के आधार पर भक्तिगान होते

हैं। श्मश्रूणि=श्म=शरीरम् (निरु० ३।१।५)। श्मनि श्रितानि श्मश्रूणि (निरु० ३।१।५)। वनर्गवः=वनगामिनः (निरु० ३।३।१४)]

२उ ३ १२ ३२३१ ३१२३२
६२४—यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत।
३२ ३१२३२ ३१२ ३ १२
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि॥ १०॥

(हिरण्यस्य) हिरण्य का (यत्) जो (वर्चः) तेज है, (यद् वा) और जो (वर्चः) तेज (गवाम्) गौओं, सूर्यरश्मियों, और वेदवाणियों का है, (उत) तथा जो (वर्चः) तेज (सत्यस्य ब्रह्मणः) सत्य स्वरूप ब्रह्म का है, (तेन) उस तेज के साथ, (मा) मैं तथा हम सब, (संसृजामसि) अपने आप का संसर्ग करते हैं।

[हिरण्यस्य=सुवर्ण हितकर है, रमणीय है "हिरण्यं हितरमणं भवति" (निरु० २।३।१०)। तथा "हिरण्यमस्तृतं भव" (मं० ब्रा० १।५।१८; तथा आश्व. १।१५।३), अर्थात् तू अटूट-सुवर्ण हो जा। इस प्रकार व्यक्ति सब का हितकर हो, गुणों में रमणीय हो, और अपने व्रतों में अटूट हो। गवाम्=वह गौओं के सदृश ज्ञान दुग्ध प्रदान करे, और वेदवाणियों के सदृश यथार्थ ज्ञान का उपदेश करे। ब्रह्मणः=सत्यस्वरूप ब्रह्म के सदृश सत्यस्वरूप हो, सत्यव्रतधारी हो]।

२३१२ ३ ३ २१२३क २३१२
६२५—सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन्।
२३१ ३ १ २र ३ १२३२३ १२ ३१२
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः॥ ११॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (नः) हमें (तत्) वह (सहः) कामादि शत्रुओं का पराभव करने वाला (ओजः) बल (दद्धि) दीजिये। (विरप्शिन्) हे महान् परमेश्वर! आप (अस्य महतः) इस महाबल के (ईशे हि) निश्चय से अधीश्वर हैं। (क्रतुम्) क्रियाशक्ति, संकल्पशक्ति, और प्रज्ञालोक प्रदान कीजिए, (न) तदनुकूल (नृम्णम्) आध्यात्मिक विभूतियाँ, (च) और (स्थविरं वाजम्) स्थायी बल प्रदान कीजिए, तथा (वृत्रेषु) पापवृत्रों के सम्बन्ध में (शत्रून्) उन पाप शत्रुओं को (सहना) पराभव करने वाले (नः) हमें (कृधि) कीजिए।

३१२ ३१२ ३२३१ २ ३२३. १२
६२६—सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः।
३२३२३१२ ३२ ३१ २र ३२ ३१२
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणः इहस्त॥ १२॥

हे माताओं! तुम (सहर्षभाः) श्रेष्ठ-पतियों के साथ, (सहवत्साः) तथा बच्चों के साथ, (उदेत) इस गृहजीवन में अभ्युदय प्राप्त किया करो, और (विश्वा रूपाणि) मन्त्र ६२५ में कहे गए सुन्दर सद्गुणों को (बिभ्रतीः) धारण करती हुई (द्व्यूध्नीः) दोनों छातियों में भरे दूध वाली बनो। (वः) तुम्हारे लिए (अयं लोकः)

यह गृहस्थ-लोक अर्थात् गृह (उरु पृथु) लम्बा, चौड़ा और अच्छा ऊँचा हो, अर्थात् घर परिमाण में बड़ा (अस्तु) हो। (इमाः) ये (आपः) जल तथा (सु प्रपाणाः) सुन्दर प्रपाएं तुम्हारे घर में हों। (इह) इस गृहस्थजीवन में (स्त) तुम बनी रहो।

[अभिप्राय यह है कि स्त्रियाँ गृहस्थ-जीवन व्यतीत करती हुई अभ्युदय और निःश्रेयस का उपार्जन करती रहें। इनका वानप्रस्थ प्रयाण आवश्यक नहीं। (देखो अथर्व० १४।१।२२)। ऋषभ=The best or most excellent (आप्टे), यथा-पुरुषर्षभ]

इति चतुर्थी दशतिः ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

दशतिः ५

(१—१४) शतं वैखानसाः; २ विभ्राट् सौर्यः; ३ कुत्स आङ्गिरसः; ४—६ सार्पराज्ञीः; ७—१४ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ सूर्यः; १ अग्निः पवमानः; ४—६ आत्मा वा ॥ गायत्री; २ जगती; ३ त्रिष्टुप् ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
६२७—अग्न आयूँषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
३ १ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

(अग्ने:) हे प्रकाशमयी सर्वाग्रण ! (आयूँषि) हमारे जीवनों को (पवस्व) पवित्र कीजिये, (च) और (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) वल तथा प्राण शक्ति, और (इषम्) आध्यात्मिक अभीष्ट अर्थात् मोक्ष (आसुव) प्रेरित कीजिए। (दुच्छुनाम्) कुत्तों की-सी बुरी प्रवृत्तियों को (आरे) हमसे दूर (बाधस्व) कीजिये।

[दुच्छुनाम्=दुः शुनाम्]

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६२८—विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि
२र
राजति ॥ २ ॥

(विभ्राट्) विशिष्ट-दीप्ति-सम्पन्न परमात्मा, (बृहत्) उमड़े हुए हमारे (मधु सोम्यम्) मधुर भक्तिरसों का (पिबतु) पान करे, और (यज्ञपतौ) आत्मयाजी में (अविह्रुतम्) छल-कपट-कुटिलता से रहित (आयुः) जीवन (दधत्) स्थापित करे। (वातजूतः) प्राणायाम-विधिपूर्वक प्रेरित (यः) जो परमात्मा, (त्मना) अपने स्वभाव से ही, (प्रजाः) प्रजाओं की (अभि रक्षति) रक्षा करता और (पिपर्त्ति) उनका पालन-पोषण करता है, वह (बहुधा) नानारूपों में (वि राजति) विराजमान है।

३ २ ३२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

६२९—चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३ ॥

(देवानाम्) उपासक देवों का (अनीकम्) प्राणभूत (चित्रम्) एक विचित्र सूर्य,—सूर्यों का सूर्य,—(उदगात्) हृदयाकाश में उदित हुआ है। यह (मित्रस्य) वर्षा द्वारा स्निग्ध करने वाले द्युलोकी-सूर्य की, (वरुणस्य) पृथिवी पर आवरण डालने वाले वायुमण्डल की, तथा (अग्नेः) पार्थिव-अग्नि की (चक्षुः) मानो आँख हैं, उन्हें अपना-अपना मार्ग दर्शा रहा है। यह महासूर्य (द्यावा पृथिवी, अन्तरिक्षम्) द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष में (आ प्राः) भरपूर हुआ-हुआ है। (सूर्यः) यह महासूर्य (जगतः) जङ्गम चेतन (च) और (तस्थुषः) स्थिर जड़ जगत् की (आत्मा) आत्मा है। [अनीकम्=अन प्राणने]

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

६३०—आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।

३ १ २ ३ १ २

पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥

(अयम्) यह (गौः) स्तुतिगान करने वाला उपासक, (पृश्निः) जिसके साथ प्रज्ञालोक का सम्बन्ध हो गया है, (पुरः) योग की अगली-अगली भूमियों की ओर (आ अक्रमीत) कदम बढ़ाता जाता है, और (मातरं पितरं) मातृरूप और पितृ-रूप प्रभु की ओर,—जो प्रभु कि (स्वः) प्रकाशमय है,—(प्रयन्) प्रयाण करता हुआ, (असदत्) उसमें स्थित हो जाता है। [गौः=स्तोता (निघं० ३।१६)]

३ १ २ ३ ३२ ३ १ २ ३ २

६३१—अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।

२र ३ १ २र

व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥

(अस्य) इस प्रभु की (रोचना) दीप्ति, (प्राणात् अपानती) उपासक में प्राणापान क्रिया को करती हुई, (अस्य) इस उपासक के (अन्तः) भीतर (चरति) विचरती रहती है, जब कि (महिषः) महान् प्रभु (दिवम्) उपासक में प्रकाश (व्यख्यत्) प्रकट करता है।

[प्राणादपानती=परिपक्वध्यानी, ध्यानावस्था में, निश्चेष्ट होता हैं, और उसकी इन्द्रियाँ सर्वथा निरुद्धावस्था में हो जाती हैं, केवल उस समय प्राणापान क्रिया ही हो रही होती है। [प्राणान् (इन्द्रियाणि) प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत (श्वेता० २।९)]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

६३२—त्रिँ्शद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥

(वाक्) स्तोता की स्तुतिवाणी, (पतङ्गाय) आदित्यवर्णी प्रभु के लिए, स्तोता द्वारा (धीयते) धारित और पोषित की जाती है, और (प्रति वस्तोः) प्रति-दिन, (द्युभिः अह) सूर्य के प्रकाश से ही, (त्रिंशत् धाम) दिन के ३० मुहूर्तों में (वि राजति) उपासक में विराजमान रहती है ।

[पतङ्ग=सूर्य (आप्टे) । वस्तोः=दिन (निघं० १।९) ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

६३३—अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।

१ २ ३ १ २

सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥

(यथा) जैसे (त्ये) वे (तायवः) चोर, सूर्योदय के होते, (अप यन्ति) छिप जाते हैं, वैसे जब (नक्षत्रा) नक्षत्र (अक्तुभिः) रात्रियों समेत (अपयन्ति) छिप जाते हैं, तब से (विश्वचक्षसे) विश्वद्रष्टा (सूराय) सूर्यों-के-सूर्य के लिए, दिन के ३० मुहूर्तों में, उपासक में स्तुति-वाणी विराजमान रहती हैं (मन्त्र ६३२ के साथ अन्वय) ।

[अभिप्राय यह है कि दिन में चित्तवृत्तियों के व्युत्थान के कारणों के रहते भी सच्चे उपासक की चित्तवृत्तियों में, परमात्मा की स्तुति ही विराजमान रहती है]

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

६३४—अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ् अनु ।

१ २ ३ १ २

भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥

(केतवः) परमात्मा को जताने वाली, (अस्य) इस परमात्म-सूर्य की (रश्मयः) रश्मियाँ, (जनान् अनु) उपासक-जनों को (अनु) निरन्तर (अदृश्रन्) दृष्टिगोचर होती रहती हैं, (यथा) जैसे कि (भ्राजन्तः) जाज्वल्यमान (अग्नयः) प्राकृतिक अग्नियाँ सर्वसाधारण जनों को दृष्टिगोचर होती हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

६३५—तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।

२ ३ १ २ ३ २

विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥

(सूर्य) हे सूर्यों-के-सूर्य ! आप (तरणिः) भवसागर से तैराने में नौका रूप हैं, (विश्वदर्शतः) विश्वद्रष्टा हैं, (ज्योतिष्कृत् असि) सूर्य, नक्षत्र आदि बाह्य

ज्योतियों, और मूर्द्धज्योति, विशोका ज्योतिष्मती तथा प्रज्ञालोक आदि आभ्यन्तरिक ज्योतियों को प्रकट करने वाले हैं, आप (विश्वम्) सब प्रकार की (रोचनम्) ज्योतियों को (आ भासि) प्रकाशित कर रहे हैं।

[मूर्द्धज्योतिः (योग ३।३२), विशोका ज्योतिष्मती (योग १।३६), प्रज्ञालोक (योग ३।५)]

३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २२ ३ १२
६३६—प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।
३ २उ ३क २२३ २
प्रत्यङ् विश्वँ स्वर्दृशे॥ १०॥

हे सूर्यों के सूर्य! (६३५) आप (देवानां विशः) विद्वान् प्रजाजनों में (प्रत्यङ्) पहुंचे हुए (उदेषि) उनमें उदित हो रहे हैं, आप (मानुषान्) साधारण मनुष्यों में भी (प्रत्यङ्) पहुंचे हुए उनमें उदित हो रहे हैं, (विश्वम्) सब (स्वः) स्वर्गीय जीवन वाले व्यक्तियों में (प्रत्यङ्) पहुंचे हुए आप उनमें उदित हो रहे हैं, (दृशे) ताकि वे आपका दर्शन कर सकें।

१२ ३ १२ ३२ ३ २३ १२
६३७—येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु।
१ २ ३ १२
त्वं वरुण पश्यसि॥ ११॥

(पावक) सब के शोधक! (वरुण) वरणीय वा अनिष्ट के रोकने वाले! सूर्य! वा परमात्मन्! (जनान्) प्राणियों का (भुरण्यन्तम्) धारण का पोषण करते हुए इस लोकत्रय को (येन) जिस (चक्षसा) प्रकाश से (अनु) क्रमपूर्वक (पश्यसि) आप प्रकाशित करते वा देखते हैं [उस प्रकाश की हम प्रशंसा करते हैं] यह अध्यहारवाक्य जानिये। यद्वा—अगली ऋचा में "उदेषि" क्रिया से अन्वय करके [उस प्रकाश से आप उदय को प्राप्त होते हैं] यह अर्थ जानिये॥ यास्क मुनि ने निरुक्त में इस मन्त्र के अगले पीछले दोनों मन्त्रों को मिला कर तीनों की व्याख्या जो कुछ की है वह निरुक्त अ० १२ के २२। २३। २४। २५ खण्डों के प्रमाण संस्कृतभाष्य में संपूर्ण उद्धृत हैं, वहीं देखिये यजु० ३३। ३२ और ऋ० १ ५०। में भी॥ ११॥

१ २२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
६३८—उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः।
२ ३ १ २
पश्यञ्जन्मानि सूर्य॥ १२॥

(पावक) हे पवित्र करने वाले! (वरुण) तथा हे पापों से निवारण करने वाले वरणीय प्रभो! (त्वम्) आप (येन चक्षसा) जिस कृपा दृष्टि से (जनान् अनु) जन समुदाय के (भुरण्यन्तम्) भरण-पोषण करने वाले परोपकारी व्यक्ति को (पश्यसि) देखते हैं—

उसी कृपा दृष्टि से (सूर्य) हे सूर्यों-के-सूर्य! आप (जन्मानि) जन्म-मरण व्यवस्था में बंधे समग्र प्राणियों को (पश्यन्) देख रहे हैं। और उसी कृपा दृष्टि से आप (द्याम्) द्युलोक, (रजः) अन्तरिक्ष लोक, और (पृथु) विस्तृत पृथिवीलोक के

प्रति (उद् एषि) उदित हो रहे हैं, और (अक्तुभिः) रात्रियों समेत (अहा) दिनों का (मिमानः) निर्माण कर रहे हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

६३९—अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्र्यः।

१ २ . ३ १ २

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥

(सूरः) प्रेरक तथा मेधावी परमात्मा ने (सप्त) सात (शुन्ध्युवः) शोधक-शक्तियों को (अयुक्त) शरीर में नियुक्त किया है, जो कि (रथस्य) रमणीय-शरीर को (नप्त्र्यः) पाप कर्मों में पतित होने से बचाती है। (स्वयुक्तिभिः) स्वयं नियुक्त की हुई (ताभिः) उन सात शक्तियों के साथ, समन्वय में, परमेश्वर, शरीर में (याति) विचरता है।

[सप्त शुन्ध्युवः=५ ज्ञानेन्द्रियां, १ मन, १ बुद्धि। ये सात शक्तियाँ परमात्मा ने शरीर में दी हैं जो कि सर्वोत्कृष्ट हैं। जब ये शक्तियाँ उपासना आदि साधनों द्वारा शुद्ध हो जाती हैं तब ये शरीर को पाप-कर्मों में पतित नहीं होने देतीं। मानो परमेश्वर तब इन शक्तियों के साथ समन्वय में होकर शरीर का शासन करता है]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

३४०—सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।

३ १ २

शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥

(विचक्षणः) हे विविध जगत् के द्रष्टा! (देव सूर्य) तथा दिव्य गुणों वाले सूर्यों-के-सूर्य परमात्मन्! (सप्त) ये सात शक्तियाँ (६३९) जब (हरितः) प्रत्याहार साधना द्वारा इन्द्रियों को विषयों से हर लेती हैं, हटा देती हैं, तब ये सात शक्तियाँ (त्वा शोचिष्केशम्) पवित्र रश्मियों वाले सूर्य के सदृश वर्तमान आदित्यवर्णी आप का, (रथे) शरीर-रथ में रथस्वामी रूप में (वहन्ति) वहन करती हैं।

[आदित्यवर्णी="वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्" (यजु० ३१।१८) शोचिष्केशम्="केशाः रश्मयः, काशनाद्वा, प्रकाशनाद्वा" (निरु० १२।३।२५)]

इति पंचमी दशतिः ॥ पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

षष्ठ प्रपाठकः आरण्य-काण्डं, पूर्वार्चिक समाप्तम् ॥



अथ महानाम्न्यार्चिकः

(१—१०) प्रजापतिः ।। इन्द्रस्त्रैलोक्यात्मा ।। त्रिकं=[१ प्रथमं द्विपदा+ (२) ततस्त्रयः शाक्वराः पादाः+ (३) तत उपसर्गौं+ (४) उभयं (शाक्वरोपसर्गौं)+(५) ततः शाक्व रास्त्रयः पादाः [(६) उपसर्गः ।]

महानाम्न्यार्चिक का अर्थ है "महानाम वाले प्रभु के सम्बन्ध में ऋचाओं का समूह"।

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
६४१—विदा मघवन् विदा गातुमनुशँ्सिषो दिशः ।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ।। १ ।।

(मघवन्) हे आध्यात्मिक धन के स्वामी ! (विदाः) आप आध्यात्मिक-विभूतियों के वेत्ता हैं, (गातुम्) सामवेद के गानों का (विदाः) हमें ज्ञान दीजिये; (दिशः) जीवन की दिशा का (अनुशंसिषः) अनुशासन कीजिये। (पुरूवसो) हे विभूतियों के महाधनी ! (पूर्वीणां शचीनां पते) पूर्वकाल से चली आई अनादि वेद-वाणियों के हे पति ! (शिक्षा) हमें वेदवाणियों की यथार्थ शिक्षा दीजिये ।।

३ २उ ३ १ २ ३ २ २
६४२—आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३न्नाँ्शुः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इष ।। २ ।।

(इन्द्र) हे परमैश्वर्य वाले ! आप (स्वः) आदित्य के (न) सदृश (अंशुः) ज्ञान-ज्योति से प्रकाशमान हैं। (प्रचेतन) हे महाचेतन ! (त्वम्) आप (आभिः) इन मन्त्रोक्त (अभिष्टिभिः) अभीष्टों के दान द्वारा (नः प्रचेतय) हमें सचेत कर दीजिये, कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विवेचक कर दीजिये, ताकि हम (इषे) अभीष्ट (द्युम्नाय) मोक्षधन को प्राप्त हों।

३ २उ ३ २ ३ १ २र
६४३—एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
शविष्ठः वज्रिन्नृञ्जसे मँ्हिष्ठ वजिन्नृञ्जस ।
१ २ ३ २ ३ १ २
आ याहि पिब मत्स्व ।। ३ ।।

(वज्रिवः) हे पापमयी चित्तवृत्तियों के प्रति वज्रधारी ! (राये) आध्यात्मिक सम्पत्तियों के प्रदान के लिये, (वाजाय) और आध्यात्मिक बलों के प्रदान के लिये आप (एव हि) निश्चय से ही (शक्रः) सशक्त हैं। (शविष्ठः) हे आध्यात्मिक बलों के स्वामी ! (वज्रिन्) हे पापमयी चित्तवृत्तियों के प्रति वज्रधारी !

(ऋञ्जसे) आप प्रसन्न हूजिये। (मंहिष्ठ) हे महा महिमा वाले! (वज्रिन्द) हे पापमयी चित्त वृत्तियों के प्रति वज्रधारी! (ऋञ्जसे) आप प्रसन्न हूजिये। (आ याहि) दर्शन दीजिये, (पिब) हमारे भक्ति रसों का पान कीजिये, (मत्स्व) और हर्षित हूजिये।

३ २ ३२ ३२३ २३ १ २ ३ २ ३२ ३ १२
६४४—विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु।
१ २ ३ २३ १ २२ ३ १२
मँहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥

हे प्रभो (राये) आध्यात्मिक सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिये (सुवीर्यम्) हमें उत्तम वीर्यशक्ति (विदाः) प्रदान कीजिये, आप (वाजानाम्) बलों के (पतिः) स्वामी हैं। (वशान्) आपके वंशगत आज्ञापालक उपासकों को (अनुभवः) अपने दर्शनों की अनुभूति प्रदान कीजिए, या उनकी इच्छाओं को, अभिलाषाओं को पहिचानिए। (वज्रिवः) हे पापों के प्रति वज्रधारी! (ऋञ्जसे) प्रसन्न हूजिये, (यः) जो आप (शूराणाम्) शूरवीरों में (शविष्ठः) महाबली हैं।

१र २र
६४५—यो मँहिष्ठो मघोनामँ शुर्न शोचिः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३र २र
चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥ ५ ॥

(यः) जो परमेश्वर (मघोनाम्) धनवानों में (मंहिष्ठः) महादानी है, वह (अंशुः न) सूर्य के सदृश (शोचिः) कान्तिमान् हैं। (चिकित्वः) हे सर्वज्ञ! (विदे) अपनी प्राप्ति के लिए (नः) हमें (अभि नय) अपनी ओर ले आ, हमें स्वाभिमुख करदे। (इन्द्रः) परमेश्वर परमैश्वर्यवान् हैं। अतः हे उपासक! (तम् उ) उस परमैश्वर्यवान् की ही (स्तुहि) तू स्तुति किया कर।

२ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६४६—ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥ ६ ॥

(हि) क्योंकि (शक्रः) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर (ईशे) सर्वाधीश हैं, इस लिए (तम्) उसे (ऊतये) रक्षा के लिए (हवामहे) हम पुकारते हैं। (जेतारम्) वह सदा विजयी है, (अपराजितम्) वह किसी द्वारा पराजित नहीं होता। (सः) वह जगदीश्वर (नः) हमें (द्विषः) राग-द्वेष से (अति) छुड़ाकर (स्वः सत्) सुख प्रदान करता है। वह (क्रतुः) स्वभाविकी क्रियाशक्ति-तथा-प्रज्ञा वाला है, (छन्दः) स्वच्छन्द है, (ऋतम्) सत्यस्वरूप है, (बृहत्) सर्वतो महान् है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६४७—इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ॥ ७ ॥

(धनस्य) आत्मिक धन की (सातये) प्राप्ति के लिए हम (इन्द्रम्) आत्मिक ऐश्वर्य के स्वामी परमेश्वर को (हवामहे) पुकारते हैं, (जेतारम्) जो कि सदा विजयी है, (अपराजितम्) और किसी द्वारा पराजित नहीं होता। (सः) वह परमेश्वर (नः) हमें (द्विषः) राग-द्वेष स (अति) छुड़ाकर (स्व सत्) सुख प्रदान करता है। (सः) वह (नः) हमें (द्विषः) राग-द्वेष से (अति) छुड़ाकर (स्वः सत्) सुख प्रदान करता है।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
६४८—पूर्वस्य यत्ते अद्रिवो ऽशुर्मदाय।
३ १ २र ३ १ २
सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते।
३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥ ८ ॥

(अद्रिवः) हे धर्ममेघ के स्वामी! (पूर्वस्य ते) अनादि काल से वर्तमान आप की (यत्) जो (अंशुः) ज्योति है वह (मदाय) मस्ती देने वाली है। (वसो) हे हृदयवासी! (नः) हमें (सुम्ने) उस मस्ती के सुख में (आधेहि) स्थापित कीजिये। (शविष्ठ) हे बलिष्ठ! (पूर्तिः) हम याग सम्पत् की सम्पूर्णता (शस्यते) चाहते हैं। (शक्रः) आप सर्वशक्तिमान् (हि) निश्चय से (वशी) इसके स्वामी हैं। (तत्) इसलिये (नूनम्) निश्चय से (नव्यम्) स्तुतियोग्य आपके प्रति (संन्यसे) मैं अपने आपको समर्पित करता हूं।

३ १र २र ३ १ २
६४९—प्रभो जनस्य वृत्रहन् त्समर्येषु ब्रवावहै।
२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥

(जनस्य) सब जनों के (प्रभो) हे स्वामीः, (वृत्रहन्) हे पापवृत्रों के हननकर्त्ता! (समर्येषु) एक ही मनुष्य जाति वाले सब मनुष्यों में, (ब्रवावहै) हम आध्यात्मिक गुरु-शिष्य आपका प्रवचन करते हैं। (यः) जो आप (शूरः) शूरवीर हैं, और (गोषु) सब भुवनों में (गच्छति) व्यापक हो रहे हैं, वे आप (सखा) सब के सखा हैं, (सुशेवः) सबको उत्तम सुख देते हैं, (अद्वयुः) अद्वितीय हैं, आपके समान और कोई दूसरा नहीं।

३ २ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
६५०—एवाह्यॆ ऽ३ऽ३ऽ३ व। एवा ह्यग्ने। एवाहीन्द्र। एवा हि पूषन्।
३ १ २र ३ १ २र
एवा हि देवाः ॐ एवाहि देवाः ॥ १० ॥

हे वृत्रहन् (एव) निश्चय से, (एव) दृढ़ निश्चय से, (हि) केवल आप ही सखा, सुशेव, और अद्वितीय हैं। (एवा) निश्चय से इस प्रकार (अग्ने) हे प्रकाश-स्वरूप जगन्नेता! आप ही सखा, सुशेव और अद्वितीय हैं। (एव) निश्चय से (इन्द्र)

हे परम ऐश्वर्य वाले ! आप ही सखा, सुशेव और अद्वितीय हैं। (देवाः) नाना दिव्य नामों वाले हे प्रभो ! (एव) निश्चय से आप ही सखा, सुशेव और अद्वितीय हैं।

[गातु=song (आप्टे)। शची= वाक् (निघं. १।११) द्युम्न=धन (निघं. २।१०) सुवीर्यम्=श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् (योग १।२०) में वीर्यशक्ति को योग का साधन माना है। वाज=बल (निघं. २।९)। स्वर्षद्=स्वः+सद् (गतौ), गतेः त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गतिः प्राप्तिश्च। अद्रि=मेघ (निघं.१।१०) योग की अन्तिम भूमि को "धर्ममेघ समाधि" कहते हैं (योग ४।२९), जब कि वृत्तियों का निरोध रूपी धर्म, मेघ के समान, चित्त में छा जाता है। समर्येषु=स+मर्य (मनुष्य)। "अग्ने, इन्द्र" पदों द्वारा आग्नेयपर्व और ऐन्द्र पर्व के देवताओं को सूचित करके, "पूषन् तथा देवाः" पदों द्वारा भी यह सूचित किया है कि उपासना प्रकरण में सब दैवतनाम उपास्य-प्रभु के वाचक हैं।]

अथ पञ्च पुरीषपदानि ॥ इति महानाम्न्यार्चिकः ॥



अथ (उत्तरसंहिता) उत्तरार्चिकः।

अथ प्रथमोऽध्यायः

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

सूक्तः १

(१—२३) १ असितः काश्यपो देवलो वा; २ कश्यपो मारीचः ३ शतं वैखानसः; ४, २१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५, ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ५ जमदग्निर्वा; ६ इरिम्बिठिः काण्वः; ८ अमहीयुरांगिरसः; ९ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १० उशना काव्यः; ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १२ वामदेवो गौतमः; १३ नोधा गौतमः; १४ कलिः प्रागाथः; १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १६ गौरवीतिः शाक्त्यः; १७ अग्निश्चाक्षुषः; १८ अन्धीगुः श्यावाश्विः; १९ कविर्भार्गवः; २० शंयुर्बार्हस्पत्यः; (तृणपाणिः) २२ सोभरिः काण्वः; २३ नृमेध आंगिरसः ॥ १—३, ८—१०, १५—१९ पवमानः सोमः; ४, २०, २१ अग्निः; ५ मित्रावरुणौ; ७ इन्द्राग्नी; ६; ११—१४, २२—२३ इन्द्रः ॥ १—८, १२ (१—२), १५, १८ (२—३), २१ गायत्री; ९, ११, १३, १४, २० प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतो बृहती); १० त्रिष्टुप्; १२ (३) पादनिचृत्; १६, २२ काकुभः प्रगाथः=(विषमा ककुप् समा सतो बृहती) १७ उष्णिक्, १८ (१) अनुष्टुप्; १९ जगती; २३ (१) ककुप्, (२) उष्णिक्, (३) पुर उष्णिक् ॥

१ २ ३ १२ ३१२
६५१—उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
३ २ ३ १ २र
अभि देवाँ् इयक्षते ॥ १ ॥

(नरः) हे नर-नारियों ! (पवमानाय) पवित्र करने वाले, (इन्दवे) चन्द्र-सम शीतल प्रकाश वाले, (देवान् अभि) दिव्य-उपासकों को लक्ष्य करके (इयक्षते) इन के उपासना-यज्ञों को सिद्ध करने की इच्छा वाले (अस्मै) इस परमात्मा के निमित्त (उप गायत) उपासना विधि से सामगान किया करो ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
६५२—अभि ते मधुना पयोथर्वाणो अशिश्रयुः ।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवं देवाय देवयुः ॥ २ ॥

(ते) वे (अथर्वाणः) स्थिर चित्तवृत्तिवाले योगी-जन,—(देवाय) परमात्म-देव की प्राप्ति के लिये, (देवयुः) परमात्म-देव को चाहने वाले (देवं पयः) अपने दिव्य भक्तिरस-रूपी दुग्ध को, (मधुना) परमेश्वर के मधुर आनन्दरस के साथ (अभि अशिश्रयुः) साक्षात् मिश्रित करते हैं ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
६५३—स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
१ २ ३ १ २
शँ् राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥ १ (ती) ॥

(राजन्) हे भूमण्डल के सम्राट् ! (सः) वे आप, (ओषधीभ्यः) ओषधियों के सेवन से प्राप्त होने वाली (शम्) शान्ति (नः) हमारे लिये (पवस्व) प्रवाहित कीजिये; (गवे) गौओं और इन्द्रियों के लिये (शम्) शान्ति प्रवाहित कीजिये, (जनाय) सब जनों के लिये (शम्) शान्ति प्रवाहित कीजिये, (अर्वते) अश्व और मन के लिये (शम्) शान्ति प्रवाहित कीजिये ।

सूक्त २

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
६५४—दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
१ २ ३ १ २र
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥

हे परमात्मन् ! आप की (रुचा) रुचिकर (दविद्युतत्या) विस्तृत द्युति के कारण, और (परिष्टोभन्त्या) सब प्रकार से प्रशंसित तथा सहारा देने वाली (कृपा) कृपा के कारण, (सोमाः) हमारे भक्तिरस (शुक्राः) चमक उठे हैं, (गवाशिरः)

और वे हमारी इन्द्रियों के साथ मिश्रित हो गए हैं, अर्थात् हमारी इन्द्रियाँ भी भक्तिरस से आप्लुत हो गई हैं।

३ २ ३१२३१ २र ३क २र
६५५—हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्।
१२ ३१२
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २ ॥

(हेतृभिः) प्रेरणा देने वाले आध्यात्मिक गुरुओं द्वारा (हिन्वानः) प्रेरित हुआ भक्तिरस (हितः) हितकर होता है, और भक्तिरस (वाजी) प्रबल होकर (वाजम्) बल (आ अक्रमीत्) प्राप्त करता है, (यथा) जैसे कि (वनुषः) वानप्रस्थी अभ्यासी (सीदन्तः) भक्तिरस में आसन जमा कर आध्यात्मिक—बल प्राप्त करते हैं।

[वनुषः=वन+वस् (उस्,उष्)+प्रथमा बहुवचन। या "वम् (सेभक्ति) भक्ति की उषा वाले", प्रकाश वाले"]

३ १ २ ३१२ ३ २ ३—१२
६५६—ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे।
१२३ १२३२
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३ ॥ ॥ २ (थि) ॥

(सोम) हे जगदुत्पादक तथा प्रेरक! (कवे) हे वेदकाव्यों के कवि! आप (दिवा) प्रतिदिन (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये, (संजग्मानः) हमारे साथ उपासना में संगत होते हैं, तब आप (ऋधक्) हमारी वृद्धि करते हैं। आप (दृशं) हमारी आध्यात्मिक-दृष्टि के लिए (सूर्यः) आध्यात्मिक-सूर्य के रूप में (पवस्व) प्रकट होते रहिये।

सूक्त ३

१२ ३ २३ १२
६५७—पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
१२ ३ १२३ १२
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १ ॥

(कवे) हे वेदकाव्यों के कवि, तथा (वाजिन्) बलशाली प्रभो! (पवमानस्यते) पवित्र करने वाले आप की (सर्गाः) आनन्दरसमयी धाराएँ (असृक्षत) हमारी ओर प्रवाहित हो रही हैं, (न) जैसे कि (अर्वन्तः) प्रेरणा देने वाली सूर्य-किरणें हमारी ओर प्रवाहित होती हैं। आप की आनन्दरसमयी धाराएँ उपासक के लिये (श्रवस्यवः) आध्यात्मिक-अन्न रूप हैं।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६५८—अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये।
१२ ३१२
अवावशन्त धीतयः ॥ २ ॥

(वारे) दुःखनिवारक, (अव्यये) अविनश्वर प्रभु में स्थिर होकर, मुझ उपासक ने (अच्छ) प्रभु के प्रति, (मधुश्चुतम्) मधुर भक्तिरस स्रावी (कोषम्) हृदय रूपी कोश को (असृग्रम्) खोल दिया है, जिसे कि (वीतयः) ध्यानी लोग (अवावशन्त) चाहा करते हैं।

१ २ ३ २उ ३ १ ३ २ १ २ ३ १ २

६५९—अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ ३ ॥ ॥ ३ (कौ) ॥

(इन्दवः) चन्द्र किरणों के सदृश शीतल हमारे भक्तिरस, (समुद्रम्, अच्छ) आनन्दरस सागर, तथा (ऋतस्य योनिम्) सच्चाई के घर की ओर (आ अग्मन्) प्रवृत्तहुए हैं, (न) जैसे कि (धेनवः गावः) दुधार गौएँ (अस्तम्) गोशाला की ओर प्रवृत्त होती हैं।

[योनि=गृहनाम (निघं० ३।४)]

सूक्त ४

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

६६०—अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।

१ २र ३ १ २

नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! (आ याहि) मुझ उपासक में प्रकट हूजिये, (वीतये) मुझे प्रगति देने के लिये, तथा (हव्यदातये) दानयोग्य और उपभोग योग्य पदार्थों के देने के लिये। (गृणानः) आप गुरुवत् मार्गोपदेश करते हैं। (होता) आप सब के दाता हैं। (बर्हिषि) मेरे हृदयासन पर (नि सत्सि) सदा विराजमान रहिये।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

६६१—तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।

३ १ २

बृहच्छोचा यविष्ठय ॥ २ ॥

(अङ्गिरः) अंगों और शरीर के रसरूप हे प्रभो! (तं त्वा) आप को, (समिद्भिः) समिधाओं द्वारा, (घृतेन) तथा घृत द्वारा (वर्धयामसि) हम उपासक बढ़ाते हैं, हृदयों में आप की अधिकाधिक अभिव्यक्ति करते हैं। (यविष्ठय) सदा-युवा रहने वाले प्रभो! (बृहत् शोच) हम में खूब प्रकाशित हूजिये।

[समिद्भि=आध्यात्मिक-यज्ञ में २१ समिधाएँ होती हैं। यथा:+अन्तः करण, ५ सूक्ष्मभूत, ५ स्थूलभूत, ५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां। घृतः=वीर्यशक्ति। "रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन्" (अथर्व० ११।८।२९)]

१ २३२३२ ३१ २
६६२—स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।
३१२ ३१२
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥

(देव) हे दिव्यगुणयुक्त, (अग्ने) प्रकाशमान प्रभो ! (सः) वे आप, (नः अच्छ) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम-वीरता (विवाससि) प्रदान कीजिये,—जो कि (पृथु) व्यापिनी हो, अर्थात् बहुतों का उपकार करने वाली हो, (श्रवाय्यम्) सुनने के योग्य अर्थात् प्रशंसनीय हो, तथा (बृहत्) वृद्धिदायक हो ।

सूक्त ५

१ २ ३१ २र
६६३—आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजा्ँसि सुक्रतू ॥ १ ॥

(मित्रवरुणा) प्रभु के मित्र और पापनिवारक स्वरूप, (नः) हमारे (गव्यूतिम्) ऐन्द्रियिक मार्गों को, (घृतैः) ज्ञान दीप्तियों द्वारा (उक्षतम्) सींच दें । (सुक्रतू) हमारे संकल्पों और कर्मों को उत्तम बनाने वाले वे दोनों स्वरूप (रजांसि) सब लोकों को (मध्वा) अपने मधुर आनन्दरस द्वारा सींचें ।

३ १ २ ३१२ ३१ २र
६६४—उरुश्ँसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।
३ २
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ २ ॥

(उरुशंसा) बहुत प्रशंसनीय, (नमोवृधा) नमस्कारों द्वारा बढ़ाने वाले, प्रभु के मित्र और पापनिवारक स्वरूप, (६६३) (दक्षस्य) निज बल की (मह्ना) महिमा से (राजथः) चमक रहे हैं, राज्य कर रहे हैं । ये दोनों स्वरूप, (द्राघिष्ठाभिः) दीर्घकाल लगातार की गई स्तुतियों द्वारा, (शुचिव्रता) हमारे कर्मों और व्रतों को पवित्र कर देते हैं ।

३ २३१२ ३१२३१ २
६६५—गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
३१ २र
पात्ँ सोममृतावृधा ॥ ३ ॥ ॥५ (यि)॥

(जमदग्निना) जिस ने परमात्मज्योति को प्रकट कर लिया है उस द्वारा (गृणाना) प्रशंसित मित्र और वरुण स्वरूप, (ऋतस्य) सच्चाई से भरे (योनौ) उपासक के हृदय-गृह में (सीदतम्) निवास कर लेते हैं, और उपासक को (ऋतावृधा) उस के सत्यमार्ग पर बढ़ाते रहते हैं । परमात्मा के ये दोनों स्वरूप (सोमम्) उपासक के भक्तिरस की (पातम्) सुरक्षा करते रहते हैं ।

[जमदग्नयः=प्रज्वलिताग्नयः (निरु० ७।७।२५)]

सूक्त ६

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
६६६—आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
२उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (आ याहि) दर्शन दीजिये, (ते) आप के लिये (इमम्) इस (सोमम्) भक्तिरस को (सुषुमा) हमने तैय्यार किया है, (पिबा) स्वीकार कीजिये, (मम) मेरे (इदं बर्हिः) इस हृदयासन पर (आ सदः) आ विराजिये।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
६६७—आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
२ ३ १ २
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

(ब्रह्मयुजा) ब्रह्म के साथ योगयुक्त कराने वाले, (केशिना) तथा ब्रह्म का प्रकाश करने वाले (हरी) ऋग्वेद और सामवेद, (त्वा) हे परमेश्वर ! आप को (आ वहताम्) प्रकट करें, तव (उप) हमारे समीप होकर (नः) हमारी (ब्रह्माणि) ब्रह्मप्रतिपादक स्तुतियां (शृणु) सुनिये।

[हरी="ऋक्—सामे वा इंद्रस्य हरी" (शत. ४।४।३।६)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६६८—ब्रह्माणस्त्वा युजा वय्ँ सोमपामिन्द्र सोमिनः।
३ १ २
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ ॥६ (फौ) ॥

(ब्रह्माणः) ब्रह्मप्रतिपादक वेदों के स्वाध्यायी, (सोमिनः) भक्तिरस से सम्पन्न, (सुतावन्तः) पुत्र-पुत्रियों समेत, (वयम्) हम उपासक,—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सोमपाम्) भक्तिरस को स्वीकार करने वाले तथा उसकी रक्षा करने वाले (त्वा) आप को (हवामहे) पुकारते हैं, आप का आह्वान करते हैं,—(युजा) योगविधि के द्वारा।

सूक्त ७

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
६६९—इन्द्राग्नी आ गत्ँ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
३ १ २ ३ २ ३ २
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥

परमेश्वर के (इन्द्राग्नी) परमैश्वर्यवान् और सर्वाग्रणी रूप, (धियेषिता) हमारी ध्यानशक्ति द्वारा प्रेरित होकर, (गीर्भिः) वैदिक वाणियों द्वारा (सुतम्) निष्पादित भक्तिरस की ओर (आ गतम्) आवें, तथा (वरेण्यं नमः) श्रेष्ठ हृदयाकाश

में आ प्रकट हों, (अस्य) इस भक्तिरस को (पातम्) स्वीकार करें, और इस की रक्षा करें।

[अभिप्राय यह कि हमें परमेश्वर के इन दोनों स्वरूपों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाय, इन स्वरूपों का ज्ञान केवल स्वाध्याय तथा अनुमान पर ही आश्रित न हो]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
६७०—इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमँ सुतम् ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) परमैश्वर्यवान् तथा सर्वाग्रणी या सत्पथ पर ले चलने वाला प्रभु, (अया) इस योगक्रिया द्वारा (सुतम्) निष्पादित (इमम्) इस भक्तिरस को (पातम्) स्वीकार करे। (जरितुः) स्तोता का (यज्ञः) उपासना-यज्ञ, जोकि (सचा) सदा उस के साथ रहता है, और (चेतनः) जो उसे सचेत किये रहता है, वह (जिगाति) आप को समर्पणरूप में प्राप्त होता है।

[परमैश्वर्यवत्ता तथा सर्वाग्रणीत्व रूप, इन दो गुणों द्वारा व्यक्तिभेद मान कर मन्त्र में द्विवचन का प्रयोग हुआ है। इससे मन्त्र में दो देवों का वर्णन न समझ कर, इन दो गुणों वाले एक प्रभु का ही वर्णन समझना चाहिये]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६७१—इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे।
१ २र ३ १ २
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥ ॥७(ता)॥

(यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ की (जूत्या) प्रेरक शक्ति द्वारा, मैं उपासक, प्रभु के (इन्द्राग्नी) परमैश्वर्यवान् तथा सर्वाग्रणीत्व स्वरूपों का (वृणे) वरण करता हूँ। हे प्रभु! आप (कविच्छदा) वेदकाव्य के कवि हैं, और व्यापक होने से सर्वाच्छादक हैं। (इह) इस उपासना यज्ञ में (ता) वह दोनों रूपों वाले आप (सोमस्य) भक्ति-रस के पान द्वारा (तृम्पताम्) तृप्त हो जायें।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

सूक्त ८

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
६७२—उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उग्रँ शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

हे भक्तिरस! (अन्धसः) इस अन्नमय शरीर से (ते) तेरा (जातम्) जन्म पहिले (उच्चा) सर्वोच्च (दिवि) मस्तिष्क में हुआ है। (दिवि) मस्तिष्क रूपी द्युलोक में तेरी प्रथम (सत्) सत्ता होती है। फिर (भूमि) भूमिरूप शरीर के

निचले हिस्सों में उस भक्तिरस का (आ ददे) आदान होता है। वह भक्तिरस शनैः शनैः (उग्रम्) उग्र होता जाता है। तदनन्तर वस (महि शर्म) महासुख और (महि-श्रवः) महाकीर्ति प्रदान करता है।

[देखो मन्त्र ४६७]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

६७३—स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।

३ १ २र

वरिवोवित्परि स्रव ॥ २ ॥

(वरिवोवित्) हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी प्रभो ! (सः) वह आप, (नः) हम में से (इन्द्राय) प्रत्येक की आत्मा के लिये,—जो आत्मा कि (यज्यवे) उपासना-यज्ञ करता है, (वरुणाय) और अपने पापों का निवारण करता है, (परिस्रव) आनन्दरस रूप में प्रवाहित हो जाइये। और हमारे (मरुद्भ्यः) प्राणों में संचारित हो जाइये।

३ १ २र ३ २उ ३ १ ३ १ २

६७४—एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।

१ २

सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ ॥८(ठी)॥

हे प्रभो ! (अर्यः) आप सब के स्वामी हैं। हम आप के उपासक, (मानुषाणाम्) मनुष्योचित (एना) इन (विश्वानि द्युम्नानि) सब सम्पत्तियों को (सिषासन्तः) सब में न्यायपूर्वक बाँटते हुए (आ वनामहे) आप की सम्यक्-भक्ति करते हैं।

सूक्त ९

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

६७५—पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! तू (पुनानः) उपासक को पवित्र करता हुआ, और (धारया) अपनी धारा द्वारा (अपः) उपासक के कर्मों और प्राणों में (वसानः) रमा हुआ (अर्षसि) उपासक के जीवन में प्रवाहित होता है। (रत्नधाः) तू उपासक में रमणीय गुण स्थापना करता, और (ऋतस्य योनिम्) सच्चाई के परम आश्रय प्रभु में (सीदसि) जा स्थिर होता है। (उत्सः देवः) तू एक दिव्य स्रोत रूप है, (हिरण्ययः) हितकर और रमणीय है।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

६७६—दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नँ सधस्थमासदत्।

३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः

॥ २ ॥ ॥९ (लु) ॥

हे उपासक ! तू (दिव्यं मधु प्रियम्) दिव्य, मधुर और प्रिय (ऊधः) परमेश्वर रूपी मुहाने को (दुहानः) दोहता हुआ, (प्रत्नम्) पुरातन (सधस्थम्) तथा सब के आवास स्थान परमेश्वर में (आ सदत्) समाधिस्थ हो जाता हैं। तदनन्तर (वाजी) शक्तिशाली बन कर तू (आ पृच्छयम्) प्रष्टव्य (धरुणम्) तथा सर्वाधार परमेश्वर को (अर्षसि) प्राप्त हो जाता है। (नृभिः) तू उपासक नेताओं द्वारा शुद्ध पवित्र हो चुका है, और (विचक्षणः) विशिष्ट आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पन्न है।

सूक्त १०

१ २र उ २ ३; २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
६७७—प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा वर्हीं रशनाभिर्नयन्ति
॥ १ ॥

हे उपासक ! (तु प्र द्रव) तू प्रगतिशील बन, (कोशम्) हृदय-कोश में (परि निषीद) पूर्णतया स्थित हो जा (पुनानः) अपने आप को पवित्र करता हुआ, (नृभिः) उपासक नेताओं द्वारा (वाजम्) शक्ति (अभि अर्ष) प्राप्त कर। (न) जैसे अश्वसेवक (वाजिनं अश्वम्) शक्तिशाली अश्व को, (मर्जयन्तः) साफ-सुथरा कर के, (अच्छ) गन्तव्य देश की ओर (रशनाभिः) लगामों द्वारा (नयन्ति) ले जाते हैं, वैसे उपासना के नेता लोग (वाजिनम्) तुझ तीव्रसंवेगी को, (मर्जयन्तः) मार्जन-विधि द्वारा शुद्ध पवित्र करते हुए, (बर्हि अच्छ) हृदयाकाश की ओर, (रशनाभिः) स्तुति प्रार्थना की वाणियों द्वारा (नयन्ति) ले जाते हैं !

[हृदयाकाश में ध्यान लगाने का विधान किया गया है। रशना=रसना =वाणी]

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
६७८—स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः
॥ २ ॥

तदनन्तर (स्वायुधः) कामादि के विनाश में स्वयं आयुधरूप, (इन्दुः) चन्द्र-सदृश शीतल प्रकाश वाला (देवः) परमेश्वर देव, (अशस्तिहा) तेरे अप्रशस्त कर्मों का हनन करता, (वृजना) तथा तेरे बलों और शक्तियों की (रक्षमाणः) रक्षा करता है। वह (देवानाम्) सूर्यादि देवों का (पिता) पिता है। (जनिता) जन्मदाता है। (सुदक्षः) उत्तम बलशाली है। (दिवः) द्युलोक को (विष्टम्भः) थामता और (पृथिव्याः) पृथिवी का (धरुणः) धारण कर रहा है। (पवते) वह सर्वगत है और सब को पवित्र करता है।

२ ३ १ २ ३ १ ३२ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २
६७९—ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ऽ २ ३ २ ३ १ २
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्या३ँ गुह्यं नाम गोनाम्
॥ ३ ॥ ॥१० (डु) ॥

वह (ऋषिः) वेदकाव्यों का द्रष्टा, (विप्रः) मेधावी, (जनानाम्) उपासक जनों को (पुरएता) आगे-आगे ले जाता, (ऋभुः) बहुप्रकाशी, (धीरः) धीर वीर, (उशना) सब का हित चाहता है। (सः) वह (चित्) सच्चिदानन्द (काव्येन) वेदकाव्यों द्वारा (विवेद) विविध ज्ञानों को देता, (निहितम्) और हृदय-गुहा में विधिरूप में स्थित है। (यत्) जोकि (आसां गोनाम्) इन वेदवाणियों में (अपीच्यम्) छिपा हुआ (गुह्यं नाम) एक गुप्त नाम है।

[गौः=वाक् (निघं १।११)। वेदों में आपाततः नाना देवों का वर्णन प्रतीत होता है परन्तु उन नामों में छिपा हुआ परमेश्वर ही, साक्षात् तथा परम्परया वेदों द्वारा प्रतिपादित हुआ है]

॥ इति तृतीय खण्डः ॥ ३ ॥

सूक्त ११

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६८०—अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥

(शूर) हे शूरवीर परमेश्वर ! (त्वा अभि) आप के प्रति (नोनुमः) हम नत होते है, (इव) जैसे (अदुग्धाः) न दुही गई (धनेवः) दुधार-गौएँ बछड़ों के प्रति नत हो जाती हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (अस्य जगतः) इस जङ्गम जगत् के (ईषानम्) अधीश्वर हैं, (तस्थुषः) तथा स्थावर जगत् के (ईषानम्) अधीश्वर हैं। (ईस्वशम्) आदित्य सदृश आप ज्योतिः-स्वरूप हैं।

१ २२ ३ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २२
६८१—न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे
॥ २ ॥ ॥ ११ (यी)॥

हे परमेश्वर ! (त्वावान्) आप के तुल्य (अन्यः) अन्य कोई (दिव्यः न) दिव्य शक्ति नहीं है, (न पार्थिवः) न कोई पार्थिव शक्तिहै,(न जातः) आप के तुल्य न कोई हुआ है, (न जनिष्यते) और न कोई होगा। (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! (वाजिनः) आप द्वारा शक्ति प्राप्त किये हम, (अश्वायन्तः) मनोबल चाहते हुए और (गव्यन्तः) ऐन्द्रियिक बल चाहते हुए, (त्वा) आप का (हवामहे) सहारा मांगते हैं।

सूक्त १२

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ १ २
६८२—कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

(चित्रः) अद्भुत स्वरूप वाला परमेश्वर (कया) किस (ऊती) रक्षा-विधि द्वारा (नः) हमारा (सदावृधः सखा) सद वृद्धि करने वाला सखा(आ भुवत्) होवे? (उत्तर) सब के साथ (कया) सुखमय तथा (शचिष्ठया) उत्तमप्रज्ञा, उत्तमवाणी तथा उत्तमकर्म रूपी (वृता) वर्ताव द्वारा ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
६८३—कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

हे उपासक ! (कः) सुखस्वरूप प्रजापति, (सत्यः) जोकि सत्यस्वरूप है, और (मदानाम्) प्रसन्नता और हर्षदायक पदार्थों का (मंहिष्ठः) प्रभूत दान कर रहा है, वह तुझे (अन्धसः) प्राकृतिक और आध्यात्मिक अन्नों से (मत्सत्) प्रसन्न रखता है, और (दृढ़ा) सुदृढ़ (वसु) आध्यात्मिक सम्पत्तियां प्रदान करता है ताकि तू (आरुजे) कष्टों क्लेशों-अविद्या की कड़ियों को तोड़ सके ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २
६८४—अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् ।
३ १ २ ३ १ २
शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥ ॥१२(टा)॥

हे परमेश्वर ! (नः) हमारी आप (अभि) सब प्रकार से (सु अविता) सुरक्षा करते हैं, जब कि हम आप के (सखीनाम्) सखा बन जाते हैं, और आप के (जरितृणाम्) स्तोता बन जाते हैं । आप (शतम्) सैंकड़ों प्रकार से (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (भवासि) सन्नद्ध रहते हैं ।

[माता, पिता, बन्धु, सखा, मित्र, आदि नानारूपों में परमेश्वर हमारी रक्षा करता है]

सूक्त १३

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
६८५—तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारे (दस्मम्) दुःखों का क्षय करने वाले, (ऋतीषहम्) तुम्हारी आर्तियों अर्थात् पीड़ाओं का पराभव करने वाले, (वसोः) सम्पत्तियों और (अन्धसः) मन्त्रों से (मन्दानम्) तृप्त तथा प्रसन्न करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की (नवामहे) हम स्तुतियां करते हैं, (स्वसरेषु) प्रतिदिन (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा। तथा (न) जैसे (धेनवः) दुधार गौएँ (वत्सं अभि) वछड़ों के प्रति नत हो जाती हैं, वैसे हम परमेश्वर के प्रति सदा नत रहते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २

६८६—द्युक्षँ सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

क्षुमन्तं वाजँ शतिनँ सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे

॥ २ ॥ ॥१३ (ही) ॥

द्युति सम्पन्न तथा अविद्या का क्षय करने वाले, (सुदानुम्) भरपूर दान देने वाले, (तविषीभिः) नाना शक्तियों से (आवृतम्) घिरे हुए, (गिरिं न) मेघ के सदृश (पुरुभोजसम्) बहुत अन्न देने वाले तथा पालन करने वाले, (क्षुमन्तम्) वेदवाणी की सम्पत्ति वाले, (वाजम्) वलस्वरूप, (शतिनं सहस्रिणम्) सैंकड़ों और हजारों शक्तियों वाले, (गोमन्तम्) पृथिवी के स्वामी को (मक्षू) शीघ्र (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं।

[गिरिम्=मेघनाम (निघं० १।१०)। क्षुमन्तम्=क्षु (शब्दे), वैदिक शब्दों के स्वामी। गो=पृथिवी (निघं० १।१)। मक्षू=क्षिप्रनाम (निघं २।१५)]

सूक्त १४

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

६८७—तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रँ सबाध ऊतये।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

हे उपासको ! (सबाधः) विघ्नों और बाधाओं द्वारा सताए जाने पर (इन्द्रम्) तुम परमेश्वर का आश्रय लिया करो, जो परमेश्वर कि (तरोभिः) निज बलों द्वारा (वःविदद् वसुम्) तुम्हें सम्पत्तियां दे रहा है। (अध्वरे) हिंसा-रहित उपासना यज्ञ में (सुतसोमे) जब भक्तिरस प्रकट हो जाये तब (बृहद् गायन्तः) परमेश्वर का महागान करते हुए परमेश्वरीय सहारे की मांग किया करो, (हुवे) जैसे कि मैं तुम्हारा आध्यात्मिक गुरु उस के सहारे की मांग सदा करता हूं, (न) जैसे कि (भरम्) भरण-पोषण (कारिणम्) करने वाले स्वामी की मांग भृत्य करते हैं।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

६८८—न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३क २र

य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम्

॥ २ ॥ १४ (जु) ॥

(यम्) जिस (शिप्रम्) शान्त स्वरूप, रुद्ररूप तथा परिपूर्ण, (उक्थ्यम्) वैदिक सूक्तों द्वारा प्रशंसित परमेश्वर को, (दुध्राः) दुर्धर तथा सम्पत्तियों में बुरी तरह से तृप्त धनी (न वरन्ते) स्वीकार नहीं करते, और (अन्धसः) प्रभूत अन्न के (मदेषु) मदों में मस्त, (स्थिराः) हठी (मूराः) मूढ़ व्यक्ति (न) परमेश्वर को नहीं स्वीकार करते; और (यः) जो परमेश्वर (आदृत्य) आदर पूर्वक,—(शशमानाय) उद्यमी, (सुन्वते) भक्तिरस के रसिक, (जरित्रे) स्तोता के प्रति (दाता) दाता है,—उसे मैं पुकारता हूँ (हुवे, ६६७)

[शिप्रम्=शिः=calm, peace; तथा To sharpen (आपटे)+प्रा (पूरणे)। दुध्राः=दुर्+घर तथा दुर्+ध्रै (तृप्तौ)]

सूक्त १५

१२ ३ १२ ३ १२ ३ १२
६८९—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्य सोम धारया।
१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

(सोम) हे प्रेरणा देने वाले भक्तिरस ! तू (स्वादिष्ठया) अत्यन्त स्वादु (मदिष्ठया) और आनन्द तथा तृप्ति देने वाली (धारया) धारा द्वारा (पवस्व) मुझ में प्रवाहित हो जा। हे भक्तिरस ! तू (इन्द्राय पातवे) परमेश्वर द्वारा स्वीकृति के लिये (सुतः) निष्पादित किया गया है।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
६९०—रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते।
१२ ३ २ ३ १ २
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

(रक्षोहा) राक्षसी भावों और कर्मों का हनन करने वाला, (विश्वचर्षणिः) विश्व का द्रष्टा परमेश्वर, (अयोहते द्रोणे) लोह समान सुदृढ़ हृदय में, (अभि) प्रत्यक्ष रूप में, (आ सदत्) आ बैठता है, अर्थात् (सधस्थम्) जीवात्मा और परमात्मा के साथ-साथ बैठने के (योनिम्) स्थान में आ बैठता है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२
६९१—वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।
२ ३ १ २ ३ १ २
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥ ॥१५॥ (पौ)

हे परमेश्वर ! आप उपासक में (वरिवोधातमः) वरणीय आध्यात्मिक धन स्थापित करते हैं, (मंहिष्ठः भुवः) आप महादानी हुए हैं, (वृत्रहन्तमः) पाप-वृत्रों का हनन करते हैं। (मघोनाम्) आध्यात्मिक सम्पत्ति-शाली उपासकों के (राधः) मोक्षरूपी धन की (पर्षि) रक्षा तथा पूर्ति करते हैं।

सूक्त १६

१२३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

६९२—पवस्य मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१२ ३ १ २ ३ १ २

महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये तू मुझ में (पवस्व) प्रवाहित हो जा । (मधुमत्तमः) तू अत्यन्त मधुर है,(ऋतुवित्तमः) सात्विक संकल्पों, सात्विक कर्मों, तथा सात्विक प्रज्ञाओं को अतिशयरूप में प्राप्त कराता, (मदः) और तू एक विचित्र मस्ती है. (महि) तू एक महाशक्ति हैं, (द्युक्षतमः) परमेश्वरीय प्रकाश में निवास कराने में तू एकमात्र साधन है, (मदः) वास्तव में तू एक विचित्र मस्ती हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

६९३—यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः

॥ २ ॥ ॥ १६ (प) ॥

हे भक्तिरस ! तू वह है (यस्य ते) कि जिस तेरा (पीत्वा) पान कर के उपासक, (वृषभः) वर्षा करने वाले मेघ के समान (वृषायते) सब पर सुखों की वर्षा करता है । और (अस्य) इस भक्तिरस का (पीत्वा) पान कर के उपासक (स्वर्विदः) सुखों का लाभ करते हैं । (सः) वह तू (सु प्रकेतः) उत्तम प्रज्ञा प्रदान करता, और उपासक के (इषः) अभीष्टों को (अभ्यक्रमीत्) सिद्ध करता है, और (अच्छा वाजम्) उसे अच्छा वेग प्रदान करता है, (न) जैसे कि (एतशः) अश्व, अश्वारोही को, (वाजम्) वेग प्रदान करता है ।

सूक्त १७

२ ३र १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

६९४—इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

३ २ ३ २ ३ १ १ २ ३ १ २

श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

(हरयः) मन को विषयों से हरण करने वाले, हटा देने वाले, (स्वर्विदः) सुख प्राप्त कराने वाले, (श्रुष्टे जातासः) शीघ्र निष्पन्न हुए, (सुताः) ऐश्वर्यवान् (इमे इन्दवः) चन्द्र-किरणों के समान शीतल ये भक्तिरस,—(वृषणम्) आनन्दरस वर्षी (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अच्छ) ओर (यन्तु) प्रयाण करते हैं ।

३ १ २र ३ १ २र १ २

६९५—अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३र

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

(अयम्) यह (सोमः) भक्तिरस (सानसिः) शक्ति प्रदान करता है। (सुतः) निष्पादित भक्तिरस (भराय) भरण-पोषण करने वाले, (यथाविदे) यथार्थवेत्ता (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (पवते) प्रस्तुत होता है। (जैत्रस्य) इन्द्रियों पर विजय पाने वाले उपासक को (चेतति) सचेत बना देता है।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २

६९६—अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥ ॥ १७ (कि) ॥

उपासक जब (अस्य) इस भक्तिरस की (मदेषु) मस्तियों में मस्त हो जाता हैं, (इत्) तब ही (इन्द्रः) परमेश्वर (ग्राभम्) उपासक के अविद्यारूपी-ग्राह का (आ गृभ्णाति) पूर्ण रूप से निग्रह करता है, जो अविद्या रूपी-ग्राहकि (सान-सिम्) सुवर्ण के सदृश उपासक को लोभायमान कर रहा था। परमेश्वर इस ग्राह के हनन के निमित्त (वृषणं वज्रम्) शक्तिशाली वज्र (सं भरत्) धारण करता है। इस प्रकार परमेश्वर (अप्सु जित्) शारीरिक रसों और प्राणों में छिपी अविद्या पर विजय पाता है।

[सानसिः=gold (आपटे)। ग्राभ=ग्राह (crocodile, shark, आपटे), "हृग्रहोर्भः छन्दसि" द्वारा ग्राह=ग्राभ]

सूक्त १८

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

६९७—पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र

अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

(सखायः) हे उपासक मित्रो! (पुरःजिती) संमुख स्थित विषयों पर विजय द्वारा, (वः) अपने (अन्धसः) अन्नमय मनों से (सुताय) प्रकट हुए, (माद-यित्नवे) आनन्दप्रद प्रभु की प्राप्ति के लिये, तुम (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी जीभ वाली (श्वानम्ः) कुत्तिया को, अत्यन्त लोभमयी चित्तवृत्ति को, (अप श्नथिष्टन) नष्ट कर दो (मन्त्र सं० ५४५)।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

६९८—यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः।

१ ३ २ ३ १ २र

इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥

(यः) जो (इन्दुः) चन्द्रसमशीतल भक्तिरस (सुतः) निष्पादित होकर, (पावकया) पवित्र कारी (धारया) धारा के रूप में (परि प्रस्यन्दते) शरीर, मन और इन्द्रियों में सर्वत्र वेग से प्रवाहित होता है, वह (कृत्व्यः) उपासक के अभीष्ट को सिद्ध करता है, (न) जैसे कि (अश्वः) अश्व, अश्वारोही के कार्य को, सिद्ध करता है।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
६९९—तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥ ॥१८ (यि) ।

(विश्वाच्या धिया) विश्वव्यापी भावनाओं और कर्मों की सहायता से, (नरः) उपासक जन, (दुरोषम्) बुरी तरह कामादि को जला देने वाले (तं सोमम्) उस भक्तिरस को (अभि) प्राप्त कर के, (यज्ञाय) उपासना यज्ञ की सफलता के लिये, (अद्रयः) पर्वतवत् दृढ़संकल्पी (सन्तु) हों ।

[दुरोषम्=दुर्+ओष (उष् दाहे)]

सूक्त १९

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १उ ३ २ ३ १ २
७००—अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
१ २र ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

(चनोहितः) शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक अन्नों द्वारा हित करने वाला, (यह्वः) महान् प्रभु, (येषु) जिन उपासकों में (अधि वर्धते) अधिक रूप में निज प्रकाश द्वारा बढ़ता है, अधिकाधिक स्पष्टरूप में प्रकट होता जाता है, (अभि) उन के प्रति, (प्रियाणि नामानि) प्रिय आनन्दरसों को (पवते) प्रवाहित कर देता है, या अपने प्रिय नाना नामों के रहस्यार्थों को प्रकट कर देता है। (बृहन्) वह ब्रह्म, (विचक्षणः) जो कि विविध संसार का द्रष्टा है, (बृहतः सूर्यस्य) महा परिणाम वाले सूर्य के, (विश्वञ्चं रथम्) अपनी किरणों को सर्वत्र फैलने वाले रथ पर (आरुहत्) सवार हुआ-हुआ है, उस का नियन्ता है ।

[नामानि=नाम=उदक (निघं १।१२)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २उ
७०१—ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्य अदाभ्यः
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ऽ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥ २ ॥

(ऋतस्य जिह्वा) सच्ची वेदवाणी (मधु प्रियम्) मधु और प्रिय सत्य का (पवते) कथन करती है । (अस्याः) इस (धियः) ज्ञानमयी वाणी का (वक्ता) प्रवक्ता और (पतिः) स्वामी अर्थात् परमेश्वर (अदाभ्यः) दबाया नहीं जा सकता । जैसे (पित्रोः) माता-पिता का (पुत्रः) पुत्र (तृतीयम्) तीसरे (नाम) नाम को (दधाति) धारण करता है, माता-पिता के नामों से पृथक् नाम को धारण करता है, जोकि उस की प्रसिद्धि से पहिले (अपीच्यम्) छिपा रहता है, वैसे ही परमेश्वर जिस का कि स्वरूप द्युलोक और भूलोक रूपी माता-पिता से प्रकट होता है, वह भी एक छिपे नाम को धारण करता है, जिसे कि "तृतीय-धाम कहते हैं, जो धाम [तेज] कि (दिवः) द्युलोक को (अधिरोचनम्) खूब प्रकाशित कर रहा है ।

[तृतीयं नाम=यत्र देवा अमृतमानशानाः "तृतीये धामन्" अध्यैरयन्त (यजु० ३२।१०)। प्रकृति प्रथम धाम है, जीवात्मा द्वितीय धाम है, परमेश्वर तृतीय धाम है]

१२ ३२ ३१२ ३१२ ३२उ ३१ २३१२
७०२—अव द्युतानः कलशाँ अभिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये।
३२३१२ ३१२ ३१२ ३२३२३ १ २
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उपसो वि राजसि
॥ ३ ॥ ॥ १९ (दि) ॥

(नृभिः) उपासक नेताओं द्वारा (येमाणः) व्यापारित अर्थात् प्रेरित हुआ परमेश्वर, (कलशान्) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय केशों को, (अव द्युतानः) ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः प्रकाशित करता हुआ, (हिरण्यये कोशे) प्रकाशमय हृदय कोश में (आ अचिक्रदत्) नाद करता है। (ऋतस्य) परमेश्वर से सच्चाई को (दोहनाः) दोहने वाले उपासक, (अभि) साक्षात् रूप में (अनूषत) परमेश्वर की स्तुतियां करते हैं। (त्रिपृष्ठे अधि) हे परमेश्वर आप तीन लोकों की पीठों पर अध्यक्षरूप में सवार होकर (उषसः) आध्यात्मिक ज्योतियों को (वि राजसि) विशेष रूप में चमका रहे हैं।

[हिरण्यय कोशः=हृदय (अथर्व० १०।२।३०-३३) । येमाणः=यमो=परिवेषणे। आयामयति=व्यापारयति]

॥ इति पंचम खण्डः ॥ ५ ॥

सूक्त २०

३१२ ३१२ ३१२ ३ १२
७०३—यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
१२ २३ १२३२ ३ २३ १२ २र
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शँसिषम् ॥ १ ॥

हे उपासको! (अग्नये) प्रकाशस्वरुप जगन्नेता की प्राप्ति के लिये, (च) और (दक्षसे) उत्साह बल प्रगति और वृद्धि के लिये—(वः) तुम्हारे (यज्ञा-यज्ञा) प्रत्येक उपासना यज्ञ में सम्मिलित होकर, (वयम्) हम प्रजाजन, (गिरा-गिरा) वेद की नानाविध स्तुति वाणियों द्वारा,—(अमृतम्) अमर, (जातवेदसम्) तथा वेदोत्पादक सर्वज्ञ परमात्मा की (प्र शंशिसम्) प्रशंसा करते हैं, (प्र) बार-बार प्रशंसा करते हैं, (न) जैसे कि हम (प्रियं मित्रम्) प्यारे मित्र की प्रशंसा किया करते हैं।

३ १ २र३ २ ३ १२र ३१ २र ३१२
७०४— ऊर्जो नपातँस हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
२३१२ ३१ २र३२३२३२ ३१२
भुवाद्वजेष्ववीता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम्
॥ २ ॥ ॥२०॥ (यु) ॥

हे उपासक ! तू (उर्जः न पातम्) उत्साह और शक्ति को न देने वाले जगन्नेता को, (हिन) अपनी ओर प्रेरित कर, (अयम्) यह जगन्नेता तो (अस्मयुः) हमें चाहता ही है। (हव्यदातये) भोगयोग्य और दानयोग्य वस्तुओं के दाता के प्रति (दाशेम) हम अपने सर्वस्व समर्पित करें। (वाजेषु) नानाविध अन्नों और शक्तियों के प्रदान में यह (अविता भुवत्) हमारा रक्षक हुआ है, (वृधे भुवत्) और वर्धक हुआ है, (उत) और (तनूनाम्) हमारे देहों का रक्षक हुआ है।

सूक्त २१

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७०५—एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
३ १ २ ३ १ २
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप नेता ! (एहि) मेरे हृदय में प्रकट हूजिये, (उ) अवश्य प्रकट हूजिये। मैं (ते) आप के प्रति (इत्था गिरः) सत्य वेदवाणियों तथा (इतराः) तद्भिन्न लौकिक वाणियों का (सु ब्रवाणि) अच्छे प्रकार उच्चारण और गान करता हूं। आप (एभिः) इन स्तुतिवाणियों द्वारा (वर्धसि) ऐसे प्रफुल्लित हूजिये, जैसे कि (इन्दुभिः) चन्द्र-किरणों द्वारा समुद्र बढ़ता तथा प्रफुल्लित होता है।

२ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
७०६—यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्।
२ ३ १ २
तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥

हे जगन्नेता ! (यत्र क्व च) जिस किसी उपासक में (ते) आप का (मनः) मन लग जाता है, उस में, आप (उत्तरं दक्षम्) उत्तम बल (दधसे) स्थापित कर देते हैं, और उस के हृदय को आप (योनिम्) घर (कृणवसे) बना लेते हैं।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र
७०७—न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते।
२ ३ १ २
अथा दुवो वनवसे ॥ ३ ॥ ॥२१ (वी) ॥

(नेमानाम्) हे सब कालों के (पते) स्वामिन् ! आप का (पूर्त्तम्) भरा भण्डार (नहि अक्षिपत्) कभी कम नहीं होता, अपितु (पूर्तम् भुवत्) सदा भरपूर रहता है। (अथ) इस भण्डार में से दान के लिये आप हमारी (दुवः) सेवाएँ (वनवसे) स्वीकार कीजिये।

[दुवः=परिचरण कर्म (निघं. ३।५)। नेमानाम्=नेम (Period, time, season (आपटे)]

सूक्त २२

३ १ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
७०८—वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कश्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रिं चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

(अपूर्व्य) हे अपूर्वशक्ति वाले परमेश्वर ! (वयम्) हम उपासक, (त्वाम्) आप के प्रति (भरन्तः) भक्ति की भेंट लाते हुए, (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते हैं। (वज्रिन्) हे पापों के प्रति वज्रधारी ! (चित्रम्) अद्भुत स्वरूप वाले आप का (हवामहे) हम सदा आह्वान करते हैं, (न) जैसे कि (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले संसारी व्यक्ति (कच्चित्) किसी (स्थूरम्) महास्थिति वाले व्यक्ति का आश्रय लेते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
७०९—उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम वो नृषत् ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्
॥ २ ॥ ॥ २२ (च) ॥

हे परमेश्वर ! (कर्मन्) प्रत्येक कर्म में (ऊतये) रक्षा के लिये, हम (त्वा) आप के आश्रय में (उप) उपस्थित होते हैं। (यः) जो काम क्रोध आदि (नः धृषत्) हमारा घर्षण करता है, हमें आ दबाता है उसे (सः) वे (युवा) सदा युवा शक्ति वाले आप, (उग्रः) उग्ररूप होकर (चक्राम) पद-दलित करते हैं, और आप से शक्ति पाकर हम भी उसे पददलित करने लगते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सखायः) आप के सखा हम उपासक, (सानसिम्) सब के दाता (त्वाम् इत् हि) आप ही (अवितारम्) रक्षक का (ववृमहे) वरण करते हैं।

सूक्त २३

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७१०—अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ १ ॥

(गिर्वणः) हे वेदवाणियों द्वारा भजने योग्य (इन्द्र) परमेश्वर ! (अधा) अब हम में (हि) निश्चित रूप में (त्वा) आप के प्रति (कामः) कामना जागरित हुई है। इसलिये (त्वा) आप को हम (उप ईमहे) प्राप्त होते हैं। आप के साथ हम अपना (ससृग्महे) संसर्ग करते हैं, (इव) जैसे कि जलचर प्राणी (उदभिः) जलों के साथ (उद् आग्मन्तः) सदा संसर्ग करते हैं।

१ २र ३ २३१२ ३ १२
७११—वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
३ १ २ ३१२
वावृध्वा ्सं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

(शूर) हे शक्तिशाली ! तथा (अद्रिवः) न विदीर्ण होने वाले अमर परमेश्वर ! (ब्रह्माणि) ब्रह्मप्रतिपादक वेदमन्त्र, (दिवे दिवे) प्रतिदिन, (वावृध्वांसम्) सदा बढ़े हुए आप को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, (न) जैसे कि (यव्याभिः) जौ आदि को उपजाने वाली तथा समुद्र के साथ संगम करने वाली नदियों के द्वारा, सदा बढ़े (वाः) समुद्र के जल को, प्राकृतिक शक्तियां बढ़ाती हैं ।

[यव्याः=नदी (निघं. १।१३) नदी जल खेतों में जौ आदि उपजाता है, तथा महानदियां समुद्र में जा मिलती हैं, (यु मिश्रणे)। अभिप्राय यह कि जैसे सदा बढे समुद्र को नदियां नहीं बढ़ा सकतीं, परन्तु फिर भी अपने उद्गम स्थान समुद्र की ओर वे प्रयाण करती हैं, वैसे सदा बढे परमेश्वर को वेदवाणियां नहीं बढ़ा सकतीं, परन्तु वेदवाणियां परमेश्वर के गुणों का वर्णन करती हुई अपने उद्गम स्थान परमेश्वर की ओर ही प्रयाण कर रही हैं ।]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२३१ २र ३१२ ३१२
७१२—युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
३ १२ ३१२
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥ ॥ २३ (यि) ॥

(इषिरस्य) उपासकों के अभीष्टों को सिद्ध करने वाले परमेश्वर के (गाथया) स्तुतिगानों द्वारा उपासक, (हरी) ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को, (उरौ-रथे) अपने बहुमूल्य शरीर-रथों में, (उरुयुगे) बहुमूल्य योग साधना के निमित्त, (युञ्जन्ति) योगविधि से युक्त करते हैं। तदनन्तर ये द्विविध इन्द्रियां (वचोयुजा) वैदिक वचनों में उपदिष्ट साधनों द्वारा योगयुक्त हो जातीं; (इन्द्रवाहा) जीवात्मा तथा परमेश्वर का वाहन बन जातीं; (स्वर्विदा) और सच्चा सुख प्राप्त कराती हैं ।

[उरु=Excellent, precious, Valuable (आपटे)]

इति षष्ठ खण्डः ॥ ६ ॥

इति प्रथम प्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥१॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥१॥



अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

(१—२२) १, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; २, ८, १३—१५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ३ मेधातिथिः; काण्वः प्रियः मेधश्चाङ्गिरसः; ५ इरिम्बिठिः काण्वः; ६ कुसीदी काण्वः; ७ त्रिशोकः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ११ शुनःशेप आजीगर्तिः; १२ नारदः काण्वः; १६ अवत्सारः काश्यपः; १७ (१) शुनःशेप आजीगर्तिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; १७ (२—३) मेध्यातिथिः काण्वः; १८ (१, ३) असितः काश्यपो देवलो वा:; १८ (२) अमहीयुराङ्गिरसः; १९ त्रित आप्त्य;; २० सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः' २ कश्यपो मारीचः; ३ गौतमो राहूगणः; अत्रिभौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); २१ शावाश्व आत्रेयः; २२ (१—२) अग्निश्चाक्षुषः; २२ (३) प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ १—१२ इन्द्रः; १३ अग्निः; १४ उषो; १५ अश्विनौ; १६-२२ पवमानः सोमः ॥ १(२-३) —११; १६-१९, २१, गायत्री, १२, २२ (१—२) उष्णिक्ः १३-१५, २० प्रगाथः—(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १ (१), २२ (३) अनुष्टुप् ।

सूक्त १

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
७१३—पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वासाहँ शतक्रतुं मँहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारे दिये (अन्धसः) भक्तिरस रूपी अन्नरस को (अभि) समक्षरूप में (पान्तम्) स्वीकार करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की (आ) पूर्णतया (प्र गायत) सर्वोत्तम स्तुतियां गाया करो, जो परमेश्वर (विश्वासहम्) विश्वविजेता है, (शतक्रतुम्) सैंकड़ों प्रकार के कर्मों का करने वाला अर्थात् विश्वकर्मा तथा बहुप्रज्ञ है, (चर्षणीनाम्) मनुष्यों को (मंहिष्ठम्) सम्पत्तियां देने वाला तथा परमपूज्य है ।

[मंहिष्ठम्=मंहतिः दानकर्मा (निरु. १।३।७); मह=पूजायाम्]

३ १ २ ३ १ २ ३ २ऽ १ २
७१४—पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्या३ँ सनश्रुतम् ।
२ ३ १ २
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥

(पुरुहूतम्) बहुतों द्वारा पुकारे गए, (पुरुष्टुतम्) बहुस्तुत, (गाथान्यम्) वैदिक सामगानों के स्वामी, तथा (सनश्रुतम्) सदा से प्रसिद्ध परमेश्वर को,—(इन्द्र इति ब्रवीतन) इन्द्र कहा करो ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
७१५—इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः ।
३ १ २ ३ १ २
महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥ ॥ १ (वा) ॥

(इन्द्रः इत्) परमेश्वर ही (नः) हमें (महोनां वाजानम्) महाबलों का (दाता) दाता है, वही (नृतुः) सांसारिक नाच नचा रहा है या सब का नेता है, (महान्) सब से बड़ा (अभिज्ञ्) सर्वज्ञ तथा (आ यमत्) सब का नियन्त्रण कर रहा है ।

सूक्त २

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७१६—प्र व इन्द्राय मादनँ हर्यश्वाय गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (हर्यश्वाय) जिस ने शरीर रथ का वहन करने वाले दो प्रकार के इन्द्रिय घोड़े दिये हैं, तथा जो (वः) तुम्हारे (सोमपाव्ने) भक्तिरस का पान करता है, उस परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, (मादनम्) आनन्द दायक सामगान (प्र गायत) मिल कर गाया करो ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३२उ ३ १ २
७१७—शँसेदुक्थँ सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
३ २ ३ १ २
चकमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

(सुदानवे) उत्तमदानी तथा (सत्यराधसे) तथा सत्यधनी इन्द्र के प्रति, हे उपासक तू (उक्थम्) वैदिक सूक्तों का (शंस इत्) अवश्य उच्चारण किया कर, (यथा) जैसे कि (नरः) हम उपासना के नेता, (द्युक्षम्) प्रकाश में निवास करने वाले परमेश्वर के प्रति (चकृम) सूक्तगान करते हैं ।

१ २ ३ २उ ३ १ २
७१८—त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
त्वँ हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥ ॥ २ (गौ)॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (वाजयुः) शक्ति चाहते हैं; (शतक्रतो) हे अनन्त ज्ञानों वाले ! (त्वम्) आप हमारे लिये (गव्युः) ऐन्द्रियिक शक्तियां भी चाहते हैं; (वसो) हे सम्पत्तियों के स्वामी (त्वम्) आप हमारे लिये (हिरण्ययुः) सुवर्ण आदि विविध सम्पत्तियां भी चाहते हैं ।

सूक्त ३

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
७१९—वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
१ २ ३ १ २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप के ज्ञान-भण्डार में से (कण्वाः) ज्ञान कणों के अभिलाषी लोग, (उक्थेभिः) वैदिक सूक्तों द्वारा (जरन्ते) आप की स्तुति करते हैं। (वयम्) हम उपासक भी (त्वा) आप की ही स्तुतियां करते हैं। हम (त्वायवः) आप की प्राप्ति चाहते हैं। (तत् इत् अर्थाः) आप की प्राप्ति,—केवल यही हमारी चाहना है, यही हमारा प्रयोजन है ; हम आप के (सखायः) सखा हैं।

१ २ ३ १ २२ २ १ २ ३ २ ३ १ २
७२०—न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
१उ ३ १ २
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥

(वज्रिन्) हे न्यायवज्रधारी परमेश्वर ! (अपसः) कर्मयोग सम्बन्धी (नविष्टौ) नवीन-इष्टि [यज्ञ] में, (अन्यत्) आप से भिन्न किसी की (न घ ईम्) नहीं, निश्चय से नहीं, (आ पपन) मैं स्तुति करता हूं। (स्तोमैः) वैदिक मन्त्रों द्वारा मैं (तव इत्) आप की ही स्तुति करना (चिकेत) जानता हूं।

१ २ ३ ३ १ ३ २ ३ १ २र
७२१—इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
१ १ ३ २ ३ १ २
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥ ॥ ३ (पा) ॥

(देवाः) देवकोटि के उपासक (सुन्वन्तम्) भक्ति यज्ञ करने वाले उपासक को (इच्छन्ति) चाहते हैं, (स्वप्नाय) सुस्त और यज्ञविहीन व्यक्ति को (न स्पृहयन्ति) नहीं चाहते। देवकोटि के उपासक स्वयं (अतन्द्राः) सुस्ती और आलस्य से रहित होकर (प्रमादं यन्ति) उत्कृष्ट आनन्द को प्राप्त होते हैं।

सूक्त ४

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
७२२—इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

(मद्वने) आनन्दमय (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (सुतम्) भक्तिरस निष्पादित होता है। (नः) हमारी (गिरः) स्तुतिवाणियां (परिष्टोभन्तु) परमेश्वर की ही खूब स्तुतियां करें। (कारवः) और इन स्तुतियों के करने वाले (अर्कम्) अर्चनीय परमेश्वर की ही (अर्चन्तु) अर्चना किया करें।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
७२३—यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त सँसदः ।
१ २ ३ १ २
इन्द्रँ सुते हवामहे ॥ २ ॥

(यस्मिन्) जिस परमेश्वर में (विश्वाः) सब प्रकार की (श्रियः) शोभाएं तथा सम्पत्तियां (अधि) अधिष्ठित हैं, तथा जिस परमेश्वर के आश्रय (सप्त संसदः) सात लोक-लोकान्तर (रणन्ति) गति कर रहे हैं, उस परमेश्वर को (सुते) भक्तिरस उत्पन्न होने पर (हवामहे) हम पुकारते हैं।

[सप्त संसदः=भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्,—ये ७ लोक। रणन्ति=रण (गतौ)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७२४—त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
१ २र ३ १२
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ ॥ ४ (ला) ॥

(त्रिकद्रुकेषु) पृथिवी के तीन स्थानों अर्थात् जल, स्थल, पर्वत में, (देवासः) दिव्य उपासक, जिस (यज्ञम्) यजनीय (चेतनम्) चेतन परमेश्वर के उपासना-यज्ञ का (अत्नत) विस्तार करते हैं, (तम् इत्) उस ही परमेश्वर के गुणों का, (नः गिरः) हमारी स्तुतिवाणियां, (वर्धन्ति) बढ़-चढ़ कर वर्णन करती हैं।

[कद्रू=पृथिवी (शत० ३।६।२।६)

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

सूक्त ५

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७२५—अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (अयं सोमः) यह भक्तिरस (ते) आप के प्रति समर्पित है। (बर्हिषि अधि) उपासना-यज्ञ में या हृदयान्तरिक्ष में (निपूतः) नितरां पवित्र किया गया है। (एहि) आप आइये, प्रकट हूजिये, (ईम्) इस भक्तिरस के प्रति (द्रव) शीघ्र आइये, (अस्य) इस भक्तिरस का (पिब) पान कीजिये, इसे स्वीकार कीजिये।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
७२६—शाचिगो शाचिपूजनायँ रणाय ते सुतः ।
१ २ ३ १ २
आखण्डल प्र हूयसे ॥ २ ॥

(शाचिगो) हे अभिव्यक्त वेदवाणी वाले; **(शाचि पूजन)** हे अभिव्यक्त वेदवाणी द्वारा पूजनीय ! **(अयम्)** यह भक्तिरस **(ते)** आप के **(रणाय)** रण के लिये, हमारे आसुरी भावों के साथ युद्ध करने के लिये, **(सुतः)** निष्पादित किया गया है। **(आखण्डल)** दुर्वासनाओं को खण्ड-खण्ड करने वाले हे परमेश्वर ! **(प्र हूयसे)** इस रण के निमित्त आप भक्तिपूर्वक निमन्त्रित हैं।

शाचि=शच् व्यक्तायां वाचि। गो=वाक् (निघं० १।११)]

१ २ ३ १२ ३ १ २
७२७—यस्ते शृङ्गवृषो णपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः।
२र ३ १ २र
न्यस्मि दध्र आ मनः ॥ ३ ॥ ॥ ५ (वि) ॥

हे परमेश्वर ! **(शृङ्गवृषः)** जलती किरणों द्वारा वर्षा करने वाला, **(णपात्=न पात्)** निरालम्ब आकाश से न गिरने वाला, **(प्रणपात्)** कभी न गिरने वाला, **(कुण्डपाय्यः)** और जलभरे कुण्डों को पी जाने वाला, **(ते)** आप का **(यः)** जो पुत्र रूप सूर्य है, **(अस्मिन्)** इस की सुरक्षा में आप का **(मनः)** मन **(नि आ दध्रे)** पूर्णतया निहित है,—[ताकि यह गिर न पड़े]

[शृङ्ग=शृङ्गाणि=ज्वलतो नाम (निघं. १।१७) अथर्ववेद में सूर्य को "सहस्रशृङ्ग ! वृषभः" (४।५।१) कहा है। अतः शृङ्ग=जलती हुई सूर्यकिरणें]

सूक्त ६

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
७२८—आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय।
३ १ २र
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप **(तु)** अब तो **(नः)** हमारे, **(क्षुमन्तम्)** फुंकारते हुए तथा **(चित्रम्)** विचित्ररूप वाले **(ग्राभम्)** पाप-ग्राह को, **(अ संगृभाय)** पूर्णतया तथा सम्यक्तया पकड़ लीजिये, जैसे कि **(महाहस्ती)** बड़ा हाथी **(दक्षिणेन)** अपनी मजबूत सूंड द्वारा किसी वस्तु को पकड़ लेता है।

[क्षुमन्तम्=क्षु शब्दे। ग्राभम्=ग्राहम्, "हृग्रहोर्भः छन्दसि"]

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
७२९—विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम्।
३ १ २र
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! **(हि)** निश्चय से **(विद्म)** हम जानते हैं कि आप **(तुविकूर्मिम्)** बहुत प्रकार के कर्मों वाले हैं, **(तुविदेष्णम्)** महादानी, **(तुवीमघम्)** महाधनी, तथा **(अवोभिः)** रक्षाओं की दृष्टि से आप **(तुविमात्रम्)** बड़े परिमाण वाले हैं, सर्वव्यापक हैं।

१ २र ३ १ २र ३ १ २

७३०—न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।

३२उ ३ १ २

भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥ ॥ ६ (के) ॥

(शूर) हे पराक्रमी परमेश्वर ! (दित्सन्तम्) आप जब देना चाहते हैं, तब (त्वा) आप को, (हि) निश्चय से, (न देवाः वारयन्ते) न तो देव रोक सकते हैं, और (न मर्त्तासः) मनुष्य, (न) जैसे कि (भीमं गाम्) भयानक बैल को कोई रोक नहीं सकता ।

सूक्त ७

३ १ २ ३ २ ३ १ २

७३१—अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।

३ १ २ ३ १२

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

(वृषभ) हे शक्ति और बल की वर्षा करने वाले परमेश्वर ! (आ सुते) पूर्णतया भक्तिरस प्रकट हो जाने पर, मैं (पीतये) आप के स्वीकार के लिये, (सुतम्) उत्पन्न भक्तिरस को (त्वा अभि) आप के प्रति (सृजाभि) समर्पित करता हूं । आप उस द्वारा (तृम्प) तृप्त हूजिये, और मुझ में (मदम्) आनन्दरस (व्यश्नुहि) व्याप्त कर दीजिये, भर दीजिये ।

१ २ ३ १२३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

७३२—मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।

१ २ ३ १ २

मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥

हे उपासक ! (अविष्यवः) भोजनभट्ट (मूराः) मूढ़लोग, (त्वा) तुझे (मा आ दभन्) न दबा सकें, (मा उपहस्वानः) और न उपहास करने वाले तुझे दबा सकें, अर्थात् सांसारिक सम्पत्तियों के लोभ द्वारा, या उपासना मार्ग पर उपहास द्वारा तुझे उपासना मार्ग से च्युत न कर सकें । इसलिये तू (ब्रह्मद्विषम्) ब्रह्मोपासना के द्वेषी लोगों का (वनः) संग (मा कीम्) न किया कर ।

[अविष्यवः=अवः अन्न (निघं० २।७) अवः+इष् (इच्छायाम्)+यु +बहुवचन]

३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

७३३—इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे ।

१ २ ३ १ २र

सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥ ॥ ७ (या) ॥

हे नवीन उपासक ! (इह) इस उपासना-यज्ञ में, (गोपरीणसम् त्वा) अन्य उपासकों द्वारा घिरे हुए तुझ को,—वे अन्य उपासक, (महे राधसे) मोक्षरूपी महाधन की प्राप्ति के लिये, (मन्दन्तु) आध्यात्मिक अन्नों द्वारा तृप्त कर दें। इस निमित्त तू (पिब) तृषित सा होकर भक्तिरस का पान किया कर, (यथा) जैसे कि (गौरः) मृग, तृषित होकर, (सरः) सरोवर की ओर जाता और उस का जल-पान करता है।

[गोपरीणसम्—गो (स्तोता, निघं. ३।१६) + परि + नसतिः गतिकर्मा (निघं. २।१४)]

सूक्त ८

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
७३४—इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।
१ २ ३ १ २
अनाभयिन्ररिमा ते॥ १॥

(वसो) हे विश्ववासी ! (इदम्) यह भक्तिरस (अन्धः) आध्यात्मिक अन्न है, (सुतम्) जिसे कि हमने तैय्यार किया है। आप इसे (पिब) स्वीकार कीजिये, जैसे कि बुभुक्षित व्यक्ति (सुपूर्णम् उदरम्) खूब पेट भर कर दुग्ध आदि का पान करता है। (अनाभयिन्) हे सब ओर से भय रहित प्रभो ! हम उपासक (ते) आप के प्रति भक्तिरस (ररिमा) भेंट करते हैं।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
७३५—नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अश्वो न निक्तो नदीषु॥ २॥

हे उपासक ! (नृभिः) उपासक नेताओं द्वारा (धौतः) तू धोया गया है; (अश्नैः) आध्यात्मिक भूख द्वारा (सुतः) तू नवजीवन धारण किये हुए है; (अव्याः) रक्षक प्रभु की (वारैः) पाप-निवारक शक्तियों द्वारा (परिपूतः) पवित्र हो चुका है; तथा (नदीषु) नदियों में स्नान द्वारा (निक्तः) शुद्ध हुए अश्व के समान, प्रतिदिन स्नान द्वारा, तू शुद्ध हो चुका है।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७३६—तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे॥ ३॥ ॥ ८ (थौ)॥

हे उपासक ! (तम्) उस तुझ को, (ते) उन उपासक-नेताओं ने, (स्वादुम्) स्वानुकूल रूप से ग्रहण योग्य (अकर्म) कर दिया है, (यथा) जैसे कि (गोभिः) गोदुग्ध के साथ (यवम्) जौं के दलिये को (श्रीणन्तः) पकाते हुए गृहस्थी, जौ के दलिये को, स्वादु अर्थात् स्वानुकूल रूप में कर लेते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर !

(अस्मिन् सधमादे) इस पारस्परिक प्रसन्नता में हम **(त्वा)** आप को भक्तिरस भेंट करते हैं।

[सधमादेः=मन्त्र में उपासक तथा परमेश्वर की पारस्परिक प्रसन्नता का वर्णन है। उपासक तो भक्तिरस भेंट करता है, और परमेश्वर उपासक को आनन्दरस प्रदान करता है। इस आदान-प्रदान में इन दोनों की पारस्परिक प्रसन्नता होती है]

इति द्वितीयः खण्डः ।। २ ।।

सूक्त ९

३ १ २र ३ १ २
७३७ इदँ ह्यन्वोजसा सुतँ राधानां पते ।
२ ३ २ १ २
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ।। १ ।।

(राधानां पते) हे आराधनाओं के रक्षक प्रभो ! **(नु)** निश्चय से **(ओजसा हि)** आप के ही ओज द्वारा **(इदम्)** यह भक्तिरस **(सुतम्)** मुझ में प्रकट हुआ है। **(गिर्वणः)** हे स्तुतिवाणियों द्वारा भजनीय ! **(अस्य पिब तु)** आप इस का पान तो कीजिये, इसे स्वीकार तो कीजिये।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३क २र
७३८—यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।
१ २
स त्वा ममत्तु सोम्य ।। २ ।।

हे उपासक ! **(यः)** जो भक्तिरस **(ते)** तेरे **(स्वधाम्)** दृढ़-संकल्प के **(अनु)** अनुसार **(असत्)** प्रकट हुआ है, **(सुते)** उस के प्रकट हो जाने पर तू **(तन्वम्)** अपने शरीर को **(नि यच्छ)** नियन्त्रण में रख, **(सोम्य)** ताकि हे प्रिय ! **(सः)** वह भक्तिरस **(त्वा)** तुझे **(ममत्तु)** सानन्द रखे।

[स्वधा=one's own nature or determination; one's own will or pleasure (आपटे)]

१ २ ३ २उ ३ १२३ १२
७३९—प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
प्र बाहू शूर राधसा ।। ३ ।। ।। ९ (पी) ।।

हे उपासक ! **(राधसा)** आराधना के द्वारा यह भक्तिरस **(ते)** तेरी **(कुक्ष्योः)** दो कोखों के मध्य में वर्तमान तेरे हृदय में, तथा श्वास-प्रश्वास में, **(प्र अश्नोतु)** व्याप्त हो जाय। **(इन्द्र)** हे जीवात्मन् ! **(ब्रह्मणा)** ब्रह्म की कृपा से भक्तिरस तेरे **(शिरः)** विचारों में **(प्र)** व्याप्त हो जाय। **(शूर)** पापों के साथ लड़ने में हे शूरवीर उपासक ! भक्तिरस **(बाहू)** तेरी बाहुओं में **(प्र)** व्याप्त हो जाय, अर्थात् यह भक्तिरस तेरे अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त हो जाय।

सूक्त १०

२उ ३ १ २३१२३१ २र
७४०—आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
१२३१२
सखाय स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

(सखायः) हे मित्र उपासको ! आप लोग (तु) अवश्य (एत) आइयें, और (आ) सब ओर (नि षीदत) बैठ जाइये । और (इन्द्रम् अभि) परमेश्वर को लक्ष्य कर (प्र गायत) खूब सामगान कीजिये । आप लोग (स्तोमवाहसः) स्तुतिगानों के जानने वाले हैं ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
७४१—पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
२३ २३१ २३२
इन्द्रँ सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

हे मित्र उपासको ! (सोमे सुते) भक्तिरस के उत्पन्न हो जाने पर, (सचा) परस्पर मिल कर तुम, (पूरूणाम्) भरे-भण्डार वालों में (पुरूतमम्) सर्वाधिक भरे-भण्डार वाले, तथा (वार्याणाम्) वरणीय श्रेष्ठ पदार्थों के (ईशानम्) अधीश्वर (इन्द्रम्) परमेश्वर का, (प्र गायत ७४०) प्रकृष्टगान किया करो ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३.१ २र
७४२—स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या ।
२३१२३ १ २र
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥ १० (टी) ॥

(सः) वह परमेश्वर (घ) निश्चय से (नः) हमारी (योगे) योगसाधनों में (आ भुवत्) हमारा सहायक होता है; (सः) वह (राये) आध्यात्मिक सम्पत्तियों अर्थात् विभूतियों की प्राप्ति में हमारा सहायक हुआ है; (सः) वह (पुरन्ध्या) ध्यानजनित प्रज्ञालोकों की प्राप्ति में हमारा सहायक हुआ है; (सः)वह (वाजेभिः) बलों का प्रदान करता हुआ (नः) हमें (आ गमत्) प्राप्त होता है ।

सूक्त ११

१२ ३१२३१२
७४३—योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
१२३१२३१२
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

(योगे योगे) योगाभ्यास की भिन्न-भिन्न भूमियों में भिन्न-भिन्न योगक्रमों में (तवस्तरम्) गति और वृद्धि देने वाले, तथा (वाजे वाजे) योगक्रमों में

अभीष्ट नानाविध सामर्थ्यों की प्राप्ति में गति और वृद्धि देने वाले परमेश्वर का (हवामहे) हम आह्वान करते हैं। (सखायः) हम परमेश्वर के सखा बन चुके हैं, इसलिये (ऊतये) रक्षा के लिये, (इन्द्र) परमेश्वर का हम आह्वान करते हैं,

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
७४४—अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ २ ॥

पिता पुत्र के प्रति कहता है कि हे पुत्र! तेरे लिये मैं अपनी-अध्यात्म शक्ति द्वारा, (प्रत्नस्य) अनादि काल से माने गये (ओकसः) परमेश्वरीय गृह से, अर्थात् हृदय-गृह से, (तुविप्रतिम्) सर्वत्र परिपूर्ण (नरम्) जगन्नेता का (अनु हुवे) आनुकूल्य रूप से आह्वान करता हूँ, (यम्) जिस का (हुवे) आह्वान (पूर्वम्) पहिले (ते पिता) तेरे पिता ने कर लिया है।

[तुवि+प्रा (पूरणे); अथवा समग्र शक्तियों का अकेला प्रतिद्वन्द्वी]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७४५ - आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥॥ ११ (ला) ॥

वह परमेश्वर (घ) अवश्य (आ गमत्) आता है, दर्शन देता है, (यदि) यदि वह (श्रवत्) हमारी प्रार्थनाएँ सुन लेता है, स्वीकार कर लेता है। तब वह (सहस्रिणीभिः) हज़ारों रक्षासाधनों और हजारों शक्तियों की भेंट लेकर (नः) हमारे (हवम्) आह्वान पर (उप) उपस्थित हो जाता है।

सूक्त १२

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३क २र
७४६—इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (सोमेषु सुतेषु) भक्तिरसों के उत्पन्न हो जाने पर, आप (क्रतुम्) हमारी प्रज्ञाओं, संकल्पों, तथा कर्मों को (पुनीषे) पवित्र कर देते हैं, जैसा कि (उक्थ्यम्) वैदिक सूक्तों में कहा गया है। इन के पवित्र हो जाने पर मैं (वृधस्य) बढ़े हुए (दक्षस्य) बल को (विदे) प्राप्त कर लेता हूँ। (सः) वह परमेश्वर (हि) निश्चय से (महान्) महान् है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
७४७—स प्रथमे व्योमनि देवानाँ सदने वृधः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

(सः) वह परमेश्वर (देवानाम्) सूर्य, नक्षत्र आदि प्रकाशमान लोकों के (सदने) घर में, (प्रथमे व्योमनि) अर्थात् विस्तृत आकाश में व्यापक है। (वृधः) वह उपासकों को बढ़ाता, (सुपारः) उन्हें सुगमता से भवसागर से पार करता, (सुश्रुवस्तमः) सर्वाधिक उत्तमयशस्वी है, और (समप्सुजित्—अप्सु संजित्) शारीरिक रस-रक्त में प्रविष्ट कुवासनाओं पर सम्यक् विजय पाए हुए हैं।

१२ ३१२ ३२३१२ ३ १२
७४८—तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्।
१२ ३१ २र ३ १ २ ३ २
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥ ॥ १२ (वा) ॥

(वाजसातये) बल की प्राप्ति के लिये, तथा (भराय) भरण-पोषण के लिये, या देवासुर-संग्राम में आसुर शक्तियों के साथ संग्राम के लिये, (तम् उ) उस ही (शुष्मिणम्) बलशाली (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हुवे) मैं आह्वान करता हूँ, और प्रार्थना करता हूँ कि हे परमेश्वर! (सुम्ने) सुखप्रदान और (वृधे) वृद्धि के निमित्त, आप ही (नः) हमारे (अन्तमः सखा) अत्यन्त समीपवर्ती सखा (भव) हूजिये।

[भरः=संग्राम (निघं. २।१७)]

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सूक्त १३

३ १ २ ३ १ २र ३ १ १र ३ १ २
७४९—एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥

हे उपासको! (वः) तुम्हारे लिये मैं अर्थात् तुम्हारा अध्यात्म गुरु, (एना नमसा) इस नमस्कार-विधि द्वारा, (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता का (आ हुवे) आह्वान करता हूँ, जोकि (ऊर्जोनपातम्) उपासक की बलशक्ति और प्राण शक्ति को गिरने नहीं देता। जो (प्रियम्) प्रिय, (चेतिष्ठम्) ज्ञानदाता तथा चेतनामय, (अरतिम्) सर्वगत है, (स्वध्वरम्) अहिंसामय यज्ञिय कर्मों के सम्पादक में हमारा सहायक है, (विश्वस्य दूतम्) विश्व के कार्यो साधक और (अमृतम्) अमर हैं।

[ऊर्जोनपातम्=ऊर्ज् (बल प्राणनयोः)+न+ पातम् (पतन)। अरतिम् ऋ गतिप्रापणयोः]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
७५०—स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवँ राधो जनानाम्
॥ २ ॥ ॥ १३ (तु) ॥

(सः) वह जगन्नेता (अरुषा) चमकीले (विश्वभोजसा) तथा सर्वपालक सूर्य और चन्द्र को (योजते) संसार-रथ मे जोते हुए है। वह (स्वाहुतः) उपासक की आत्माहुतियां पा कर (द्रुद्रवत्) उपासक के प्रति द्रवित हो जाता है, वह (सुब्रह्मा) सब से बड़ा तथा ब्रह्मप्रतिपादक वेदों का उपदेष्टा है, (यज्ञः) यज्ञस्वरूप, (सुशमी) सुशान्त, तथा शम-दंम से सम्पन्न है, (वसूनां जनानाम्) सद्गुणों के निवासरूप उपासक जनों का (देवं राधः) एकमात्र दिव्य धन है।

सूक्त १४

१ २ ३ २ऽ १ २ ३ २ ३ २
७५१—प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

(दिवः) द्युलोक की (दुहिता) पुत्री उषा के समान वर्तमान "ज्योतिष्मती" आध्यात्मिक वृत्ति का मैं ने (प्रति अदर्शि) प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया है। यह "ज्योतिष्मती वृत्ति" (आयती) आती हुई (उच्छन्ती) मेरे अज्ञानान्धकार को दूर कर रही हैं, (दिवः दुहिता) मेरे मस्तिष्क से प्रकट हुई है। (मही) महाशक्तिरूप ज्योतिष्मती वृत्ति ने (चक्षुषा) मुझे दिव्य चक्षु देकर, मेरे (तमः) अज्ञानान्धकार के परदे को (अप वृणुते) हटा दिया है। इसने मुझ में (ज्योतिः कृणोति) ज्योति प्रकट कर दी है। (सूनरी) यह ज्योतिः प्रियरूपा है।

[ज्योतिष्मती=विशोका वा ज्योतिष्मती (योग १।३६) मूर्धज्योतिषि सिद्ध-दर्शनम् (योग ३।३२)। दिवः=मूर्धा (दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्; अथर्व. १०।७।३२)]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
७५२—उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि
॥ २ ॥ ॥ १४ (वा) ॥

(सचा) परमेश्वर का संगी (सूर्यः) सूर्य (उद्यन्) उदित होता हुआ (उस्रियाः) किरणों को (उद्) ऊपर की ओर आकाश में (सृजते) फैंकता है, तत्पश्चात् सूर्यरूपी (नक्षत्रम्) नक्षत्र (अर्चिवत्) ज्वालाओं से समन्वित हो जाता है। (उषः) हे उषा ! (तव) तेरे (च) और (सूर्यम्) सूर्य के (व्युषि इत्) सम्यक् चमक उठने पर ही, (भक्तेन) सदा से भजे गए परमेश्वर का (सं गमेमहि) हम संग करते हैं।

सूक्त १५

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७५३—इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥

(शचीवसू) हे परमेश्वर ! सर्वज्ञता और सम्पत्तिशालिता,—आप के ये दो स्वरूप हैं। (दिविष्टये) आध्यात्मिक प्रकाश चाहने के लिये (इमाः) ये उपासक प्रजाएं, (वाम्) आप के दोनों स्वरूपों का (हवन्ते) आह्वान करती हैं। आप के दोनों स्वरूप (उस्रा) किरणों के सदृश अज्ञानन्धकार तथा दारिद्रय को दूर करते, तथा (अश्विना) सूर्य और चन्द्र के सदृश आह्लादकारी हैं। (अयम्) यह मैं उपासक भी (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (वाम्) आप के दोनों स्वरूपों का (अह्वे) आह्वान करता हूँ। आप प्रत्येक उपासक के (विशं विशम्) प्रवेश-गृह अर्थात् हृदय को (गच्छथः) अपने दोनों स्वरूपों में प्राप्त होते हैं।

[शची=प्रज्ञा (निघं. ३।९)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७५४—युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथाँ सूनृतावते।
३ १२७ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाग्रथँ समनसा नि यच्छतं पिबतँ सोम्यं मधु
॥ २ ॥ ॥ १५ (चा)॥

हे सर्वज्ञता और सम्पत्ति शालिता स्वरूपों वाले परमेश्वर ! (युवम्) आप के ये दो स्वरूप हमें (चित्रं भोजनम्) चित्र-विचित्र अर्थात् नाना प्रकार के प्राकृतिक और आध्यात्मिक भोजन (ददथुः) देते हैं। (नरा) आप के ये दो स्वरूप हमारे जीवनों के नायक हैं, और (सूनृतावते) प्रिय सत्यवक्ता के लिये (चोदयेथाम्) प्रेरणादायक हैं। (समनसा) आप के इन दोनों स्वरूपों में समन्वय हैं। (रथम्) ये दोनों स्वरूप हमारे शरीर रथों को (नि यच्छतम्) नियमों में रखते हैं। इन दोनों स्वरूपों में (अर्वाक्) प्रत्यक्ष होकर आप (सोम्यं मधु) हमारे भक्तिरस के माधुर्य को (पिबतम्) स्वीकार करें।

इति चतुर्थीः खण्डः ॥४॥

सूक्त १६

३ १ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७५५—अस्य प्रत्नामनु द्युतँ शुक्रं दुदुहे अह्रयः।
१ २ ३ १ २र
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

(अह्रयः) उपासना में लज्जा अनुभव न करने वाले उपासक, (सहस्रसाम्) हजारों सुखों के दाता (ऋषिम्) एकर्षि परमेश्वर से, (प्रत्नाम्) अनादि परम्परा के (अनु) अनुसार प्राप्त (अस्य) इस परमेश्वर के (द्युतम्) वैदिक प्रकाश का, (दुदुहे) दोहन करते हैं, जो वैदिक प्रकाश कि (शुक्रम्) विशुद्ध है, निर्भ्रान्त है, तथा (पयः) जीवनों के लिये दुग्ध समान है।

[दुदुहे=दुह. धातु द्विकर्मक है। यथाः—गां दोग्धि पयः। इसी तरह "ऋष्टिद्युते दुदुहे"]

३ १ २र ३ २ ३ १ २र
७५६—अयँ सूर्य इवोपदृगयँ सराँसि धावति।
३ २ ३ २ ३ १ २र
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥

(अयम्) यह परमेश्वर (सूर्य इव) सूर्य के सदृश (उपदृक्) उपासना में दृष्टिगोचर होता है; यह परमेश्वर भक्तिरस के पान के लिये (सरांसि) उपासकों के हृदय-सरोवरों की ओर (धावति) दौड़ लगाता है, (सप्त प्रवतः) सात प्रवाहों तथा (दिवम्) मूर्धा को (आ धावति) पूर्णरूप में शुद्ध कर देता है।

[धावति=गति और शुद्धि। सप्त प्रवतः=५ ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि। दिवम्=मस्तिष्क, जो कि इन सात प्रवाहों का उद्गमस्थान है]

३१ २र ३ १ २र३ १२
७५७—अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि।
१२ ३१ २र
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ ॥ १६ (ते)॥

(अयम्) यह परमेश्वर (विश्वानि भुवना) सब भुवनों का (तिष्ठति) अधिष्ठाता है, (उपरि) सर्वोपरि शक्ति है, (पुनानः) सब को पवित्र करता है। (सोमः) यह जगदुत्पादक (देवः सूर्यः न) सूर्य के सदृश प्रकाशमान है, आदित्यवर्णी है।

सूक्त १७

३२ ३२३१२ ३२३१२ ३२
७५८—एष प्रत्नन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। प्रत्नेन
१२ ३१२
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥

(एषः देवः) यह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, (प्रत्नेन जन्मना) उपासकों के पुराने जन्मों के कारण, पुराने जन्मों के पवित्र संस्कारों के कारण, (देवेभ्यः) दिव्य उपासकों के हृदयों से (सुतः) प्रकट होता है। (हरिः) यह कष्टहर्त्ता (पवित्रे) पवित्र उपासक में (अर्षति) प्रकट होता है।

३२ ३२३१२ ३२ ३२३ १२
७५९—एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यः स्परि।
३१ २र
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥

(एषः देवः) यह प्रकाशमान परमेश्वर, (प्रत्नेन) सनातन (मन्मना) तथा मननीय वैदिक स्तोत्रों के कारण (कविः) कवि हैं, (देवेभ्यः परि) दिव्यकोटि के उपासकों से प्रत्यक्ष किया जाता है। (विप्रेण वावृधे) विप्र लोग इस की महिमा बढ़ाते हैं।

[परि (सुतः), मन्त्र ७५८ से]

३ २ ३१ २र ३२३ १२
७६०—दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे।
१२३१ २
क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥ ३ ॥ ॥ १७ (हा)॥

हे उपासक ! वेद-धेनु से (प्रत्नम्) सनातन (पयः) ज्ञानरूपी दुग्ध को (दुहानः) दोहन करता हुआ तू, (पवित्रे) उपासक के पवित्र पथ में, (परि षिच्यसे) दीक्षाभिषेक की विधि से प्रविष्ट किया गया है। तदनन्तर ओ३म् और वैदिक मन्त्रों का (क्रन्दन्) जप करता हुए तूने, (देवान्) अपने जीवन में, दिव्य विभूतियों को, (अजीजनः) जन्म दिया है।

सूक्त १८

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
७६१—उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे।
१ २ ३ २ ३ २
पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥

हे अभिषिक्त उपासक ! (अप तस्थुषः) मार्गभ्रष्ट लोग जब तेरी शरण में आवें तो उन्हें उपासना मार्ग में (शिक्ष) शिक्षित किया कर। (शत्रवे) और जो उपासना-मार्ग के शत्रु हैं उन्हें (भियसम् आधेहि) भय प्रदर्शन किया कर, अर्थात् उपासना-मार्ग को स्वीकार न करने पर जो जन्म-मरण आदि के भय हैं उन्हें दर्शाया कर। (पवमान) हे शरणागतों को पवित्र करने वाले ! इस प्रकार उन्हें (रयिम्) उपासना-धन (विदाः) दिया कर।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३
७६२—उपो षु जातमप्तुरम् ॥ २ ॥

(सुजातम्) सम्यक् विधि से निष्पादित, (अप्तुरम्) प्राणों के प्रेरक, (भङ्गम्) कामादि के भञ्जक, (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा (परिष्कृतम्) परिमार्जित, (इन्दुम्) चन्द्रसम शीतल भक्तिरस को, (देवाः) दिव्यगुणी उपासक (उप उ) उपासना विधि द्वारा (अयासिषुः) प्राप्त होते हैं।

१ २ ३
७६३—उपास्मै गायता नरः ॥ ३ ॥ ॥ १८ (वौ) ॥

(नरः) हे उपासना-के-नायको ! (अस्मै) इस (पवमानाय) पवित्र करने वाले, (इन्दवे) चन्द्रसम शीतल प्रकाश वाले, तथा (अभि) प्रत्यक्ष रूप में, (देवान् इयक्षते) उपासना-यज्ञ की विधि द्वारा, दिव्य विभूतियां प्राप्त करने वाले परमेश्वर के प्रति, (उप गायत) उपासना विधि से सामगान किया करो।

॥ इति पंचम खण्डः ॥५॥

सूक्त १९

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
७६४—प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः।
१ २ ३ १ २
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

हमारे आध्यात्मिक जीवनों में (विपः चितः) आध्यात्मिक-वेपनों का चयन करने वाले, अर्थात् (ऊर्मयः) आध्यात्मिक-लहरों को उत्पन्न करने वाले, (सोमासः) भक्तिरस, हमें उपासना-मार्ग में (प्र नयन्त) बहुत आगे ले जाते हैं, (इव) जैसे कि (ऊर्मयः) वायु की लहरें (अपः) जलों को (प्र नयन्त) आगे आगे धकेल ले जाती हैं, तथा (महिषाः) महावेगी मरुद्गण (वना) जल-भरे बादलों को आगे-आगे धकेल लिये जाते हैं। [वनम्=उदकम् (निघण्टु १।१२) ; वना= वनानि] ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

७६५—अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।

२ ३ १ २

वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥

(बभ्रवः) भरण-पोषण करने वाले (शुक्राः) सात्विक भक्तिरस, (ऋतस्य) जल की (धारया) धारा के समान, (द्रोणानि) हृदय-कलशों के प्रति (अभि) प्रत्यक्षरूप में (अक्षरन्) प्रवाहित हो गये हैं, और इन्होंने हम में (गोमन्त वाजम् अक्षरन्) वेदोपदिष्ट बल या ऐन्द्रियिक बल प्रवाहित किया है। [वाजः=बलनाम (निघंटु २।९) । (गो=वाक् (निघंटु १।११) । गो=इन्द्रियां (उणादि कोष २।६७ के भाष्य में "गौः पशुः इन्द्रियं, सुखं, किरणः, वज्रं, चन्द्रमा, भूमिः, वाणी, जलं वा", दयानन्द) । ऋतस्य=उदक नाम (निघण्टु १।१२,)]

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

७६६—सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

१ २ ३ १ २

सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥ ॥१९ (वि)॥

(सुताः सोमाः) निष्पादित भक्तिरस (अर्षन्तु) प्राप्त हों (इन्द्राय) परमेश्वर को, (वायवे) जोकि प्राणदाता है, (वरुणाय) पापों से निवारण करने वाला है, तथा जो (विष्णवे) सर्वव्यापक है। तथा भक्तिरस प्राप्त हों (मरुद्भ्यः) हमारे प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान वायुओं को ।

सूक्त २०

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

७६७—प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अँ्शोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१॥

(सोम) हे भक्तिरस ! (देववीतये) परमेश्वर-देव के प्रति समर्पित होने के लिये, —तू (अंशोः) प्रकाशमय-परमेश्वर के (पयसा) आनन्दरस द्वारा (प्र पिप्ये) खूब बढ़ता है, (न) जैसे कि (सिन्धुः) बहता-नद (अर्णसा) वर्षा-जल द्वारा खूब बढ़ता है। तथा (मदिरो न) आनन्दोल्लसित व्यक्ति जैसे (जागृविः) प्रभु के दर्शन

के लिये सदा जागरूक रहता है, वैसे हे भक्तिरस ! तू भी उपासक में सदा जागरूक रह, और (मधुश्चुतम्) मधुर-आनन्दरस के बहाने वाले (कोशम्) आनन्दमय कोश को (अच्छ) प्राप्त हो, अर्थात् भक्तिरस की उग्रता से जीवात्मा आनन्दमय कोश में पहुँच जाता है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

७६८—आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः

॥ २ ॥ ॥२० (रु) ॥

(प्रियः सूनुः) प्रिय पुत्र (न) जैसे मलों से रहित करके (मर्ज्यः) शुद्ध-पवित्र कर लिया जाता है, वैसे भक्तिरस भी शोधने के योग्य है। शुद्ध होकर भक्तिरस (अर्जुनः) शुभ्र अर्थात् रजस्तमम् के मल से रहित होकर और सात्विकरूप धारण कर (हर्यतः) परमेश्वर द्वारा स्पृहणीय हो जाता है। तत्पश्चात् सात्विक भक्तिरस (अत्के) शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में (आ अव्यत्) व्याप्त हो जाता है। (अपसः) कर्मयोगी उपासक (तम् ईम्) उस विशुद्ध भक्तिरस को (आ हिन्वन्ति) परमेश्वर के प्रति प्रेरित करते हैं, (यथा) जैसे कि मल्लाह (गभस्त्योः) सूर्य और चान्द के प्रकाशों में, अर्थात् दिन-रात, (रथम्) नौका-रथ को (नदीषु) नदियों में (आ हिन्वन्ति) सर्वत्र प्रेरित करते हैं।

[अत्के=अत्कः (शरीरावयवः; उणा० को० दयानन्द)। गभस्तयः=रश्मि-नाम (निघं० १।५)। मन्त्र में गभस्त्योः पद द्विवचन में है। अतः "सूर्य और चन्द्र के प्रकाश में" ऐसा अर्थ किया गया है]

सूक्त २१

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

७६९—प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्।

३ २ ३ १ २

सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

(मदच्युतः) हर्ष-आनन्द-तृप्ति की वर्षा करने वाले, (सोमासः) तथा प्रेरणा देने वाले भक्तिरस.—(मघोनाम्) आध्यात्मिक-सम्पत्तिशाली (नः) हम उपासकों के (श्रवसे) श्रवण-मनन के लिए हों। इन भक्तिरसों ने (सुताः) निष्पन्न होकर (विदथे) विवेक-ज्ञान की ओर (प्र अक्रमुः) कदम उठाया है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २

७७०—आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम्।

२ ३ १ २र

अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥

(आत्) तदनन्तर (यथा) जैसे (हंसः) हंस (गणम्) अपने हंस-गण का (अवीवशत्) संग चाहता है, वैसे परमेश्वर (विश्वस्य) सब उपासकों की (मतिम्) सात्त्विक मति का संग चाहता है। तथा (अत्यः) अश्व (न) जैसे (गोभिः) जलों द्वारा (अज्यते) कान्ति-सम्पन्न किया जाता है, वैसे परमेश्वर (गोभिः) वैदिक-स्तुतियों द्वारा (अज्यते) कान्ति-सम्पन्न किया जाता है।

[गो=जलम् (मन्त्र ७६५); तथा गो=वाणी (निघ० १।११)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

७७१—आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।

२ ३ १ २ ३ १ २

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ३ ॥ ॥ २१ (ली) ॥

(आत्) तदनन्तर (त्रितस्य) यौगिक-मेधा में तीर्णतम अर्थात् उच्चतम उपासक की चित्तवृत्तियां, जो कि पहिले (योषणः) उपासक की हिंसा करती रहती थीं, वे, अब, (अद्रिभिः) न विदीर्ण होने वाली रक्षा-विधियों के द्वारा, उपासक में (इन्दुम्) भक्तिरस (हिन्वन्ति) प्रेरित करती, और उसे बढ़ाती हैं, जो भक्तिरस कि (हरिम्) उपासक के क्लेशों का हरण कर देता है, ताकि (इन्द्राय पीतये) परमेश्वर भक्तिरस की रक्षा करे, और उसे स्वीकार करे।

[योषणः=यूष् हिंसायाम्। हरिम्=हृञ् हरणे। अद्रिभिः=अविद्रियाभिरूतिभिः (सायण)। त्रितस्य=तीर्णतमो मेधया (निरु० ४।१।६)]

सूक्त २२

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

७७२—अया पवस्व देवयु रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः।

२ ३ १ २

मधोर्धारा असृक्षत ॥ १ ॥

हे भक्तिरस! तू (देवयुः) परमेश्वर-देव की कामना कर रहा है। (रेभन्) परमेश्वर का जप कराता हुआ तू (अया) इस धारारूप में (पवस्व) मुझ में प्रवाहित हो जा। तू (विश्वतः) विश्वव्यापी (पवित्रम्) पतित पावन परमेश्वर को (पर्येषि) प्राप्त होता है। (मधोः धाराः) तू मधुर है, तेरी धाराएँ (असृक्षत) मुझमें प्रकट हो गई हैं।

१ २ ३ २र

७७३—पवते हर्यतो हरिः ॥ २ ॥

(हर्यतः) स्पृहता के योग्य, तथा (हरिः) क्लेशहारी भक्तिरस (रंह्या) वेग से, (ह्वरांसि) विघ्न-बाधाओं का (अति) अतिक्रमण करके, (पवते) प्रवाहित हो रहा है। हे भक्तिरस! तू (स्तोतृभ्यः) परमेश्वर की स्तुति करने वालों को (वीरवद्यशः) वीरोचित यश (अभ्यर्ष) प्रदान कर।

१ २ ३ १ २ र
७७४—प्र सुन्वानायान्धसो: ॥ ३ ॥ ॥ २२ (लि) ॥

(अन्धस:) शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अन्न को (सुन्वानाय) उत्पन्न करने वाले प्रभु के लिये, (मर्त:) जो मनुष्य (तद्वच:) उसके स्तुतिवचनों का उच्चारण (न प्रवष्ट) नहीं करना चाहता, उस (अराधसम्) आराधनाहीन (श्वानम्) कुत्ते को, (अपहत) अपनी संगति से परे रखो, (न) जैसे कि (भृगव:) ध्यान साधना में परिपक्व उपासक, (मखम्) चञ्चल वृत्तियों वाले राजसी व्यक्तियों को, अपनी संगति से परे रखते हैं। (मन्त्र संख्या ५५३)।

इति षष्ठ: खण्ड: ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्ध: प्रथमप्रपाठकश्च समाप्त: ॥
॥ इति द्वितीयोऽध्याय: ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्याय: ।

सूक्त १

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्ध: ॥ २ ॥

(१—१९) १ जमदग्निर्भार्गव:; २, ५, १५ अमहीयुराङ्गिरस:; ३ कश्यपो मारीच:; ४, १० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा: ६—७ मेधातिथि: काण्व:; ८ मधुच्छन्दा वैश्वमित्र:; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणि:; ११ उपमन्युर्वासिष्ठ:; १२ शंयुर्बार्हस्पत्य:; १३ बालखिल्या:; प्रस्कण्व: काण्व:; १४ नृमेध आङ्गिरस:; १६ नहुषो मानव:; १७ (१—२) सिकता निवावरी; १७ (३) पृश्नियोऽजा:; १८ श्रुतकक्ष: सुकक्षो वा आङ्गिरस:; १९ जेता माधुच्छन्दस:; ॥ १—५, १०—११, १५—१७ पवमान: सोम:; ६ अग्नि:; ७ मित्रावरुणौ; ८, १२—१४, १८—१९ इन्द्र:; ९ इन्द्राग्नी ॥ १—१०, १५, १८ गायत्री; ११ त्रिष्टुप; १२–१४ प्रगाथ:= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १६, १९ अनुष्टुप्; १० जगती ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
७७५—पवस्य वाचो अग्रिय: सोम चित्राभिरूतिभि: ।
३ १ २र ३ १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक तथा सर्वैश्वर्यवान् प्रभो! आप (वाच:) वेदवाणियों के (अग्रिय:) मुख्य विषय हैं। आप (चित्राभि:) आश्चर्यकारी (ऊतिभि:) रक्षाओं समेत (पवस्व) हमें प्राप्त हूजिये। (विश्वानि काव्या) सब वेदकाव्यों में (अभि) साक्षात् रूप में आप ही वर्णित हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
७७६—त्वँ समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।
१ २
पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥

(विश्वचर्षणे) हे विश्वद्रष्टा ! तथा समग्र प्रजाजनों के स्वामिन् ! (त्वम्) आप (अग्रियः) सर्वाग्रणी शक्ति हैं। आप (समुद्रियाः) पार्थिव समुद्र, अन्तरिक्षीय समुद्र, तथा हृदय-समुद्र के (अपः) जलों को, तथा (वाचः) वेदवाणियों को (ईरयन्) प्रेरित करते हुए (पवस्व) हमें प्राप्त हूजिये।

२ ३ १ २र ३ १ ३ १ २
७७७—तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।
१ २ ३ १ २
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥ ॥ १ (यी) ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, तथा सर्वैश्वर्यवान् प्रभो ! (कवे) हे वेदकाव्यों के कवि ! (इमा भुवना) ये समग्र भुवन (तुभ्यम्) आप (महिम्ने) महान् की महिमा के प्रदर्शन के लिये (तस्थिरे) स्थित हैं। (धेनवः) वेदवाणियां भी (तुभ्यम्) आप के वर्णन के लिये (धावन्ति) सक्रिय हो रही हैं।

[धेनुः=वाक् (निघं. १।११)]

सूक्त २

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
७७८—पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १ ॥

(इन्दो) चन्द्रसमान शान्तिप्रद हे भक्तिरस ! (पवस्व) हमें पवित्र कर, (वृषा) तू सुख-शान्ति की वर्षा करता है (सुतः) उत्पन्न होकर तू (नः) हमें (जने) मनुष्य-समाज में (यशसः कृधि) यशस्वी बना। तथा (नः) हमारी (विश्वा द्विषः) सब प्रकार की द्वेष-भावनाओं को (अपजहि) दूर कर दे। अभिप्राय यह कि सच्चे भक्त किसी के साथ द्वेषभावना नहीं रखते।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
७७९—यस्य ते सख्ये वयँ सासह्याम पृतन्यतः।
१ २ ३ १ २ ३ २
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥

(इन्दो) हे शीतल प्रकाश-वाले प्रभो ! (यस्य) जिस (ते) आप के (सख्ये) सखिभाव में वर्तमान (वयम्) हम उपासक, (पृतन्यतः) कामक्रोध आदि की सेना को (सासह्याम) सर्वथा पराभव कर देते हैं,—यह (तव) आप के ही (उत्तमे द्युम्ने) सर्वोत्तम यश के आधार पर है।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
७८०—या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे।
१ २ ३ २
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥ ॥ २ (ह) ॥

हे परमेश्वर ! (ते) आप के (या) जो (भीमानि) भयानक और (तिग्मानि) तेज (आयुधा) अस्त्र-शस्त्र (सन्ति) हैं, (धुर्वणे) जोकि हमारे कामादि का विनाश करने के लिये हैं, उन शस्त्रास्त्रों द्वारा (नः) हमें (समस्य) सब प्रकार की (निदः) लोक निन्दा से (रक्ष) बचाइये।

[धुर्वणे=धुर्वी हिंसार्थः+ल्युट्। श्रद्धा, भक्ति, यमनियम, जय, स्वाध्याय आदि आप के दर्शाए आयुध हैं।]

सूक्त ३

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७८१—वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः।
२ ३ १ २
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ १ ॥

(सोम) हे भक्तिरस के रसिक ! (वृषा) तू आध्यात्मिक उपदेशों की वर्षा करता है, (द्युमान् असि) तू आध्यात्मिक द्युति द्वारा द्युतिमान् है। (देव) हे दिव्यगुणों वाले ! (वृषा) तू अवश्य आध्यात्मिक उपदेशों की वर्षा करता है। (वृषव्रतः) उपदेशों की बर्षा करना तेरा व्रत है। (वृषा) उपदेशों की वर्षा करता हुआ तू (धर्माणि) संसार में धर्म-कर्मों की (दध्रिषे) स्थापना करता है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
७८२—वृष्णस्ते वृष्ण्यँ शवो वृषा वनं वृषा सुतः।
१ २र ३ १ २र
स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (वृष्णः ते) सुखों की वर्षा करने वाले आप के (शवः) बल (वृष्ण्यम्) सुखों की वर्षा करते हैं। (वनम्) आप का भजन (वृषा) सुखों की वर्षा करता है। (सुतः) आप प्रकट होकर (वृषा) सुखों की वर्षा करते हैं। (वृषन्) हे सुखों की वर्षा करने वाले ! (सः त्वम्) वह आप (वृषा इत् असि) सुखों की वर्षा करने वाले ही हैं।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
७८३—अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः।
१ २ ३ १ २र
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥३ (लु)॥

(अश्वः न) अश्व जैसे (चक्रदः) रथ-चक्र को गति देता है, वैसे हे प्रभो ! आप संसार-चक्र को गति प्रदान कर रहे हैं। (इन्दो) चन्द्रसम शीतल प्रकाश वाले ! तथा सुखवर्षी प्रभो ! आप हमारे साथ (गाः) गौओं का (सम्) संगम कीजिये, (अर्वतः सम्) अश्वों का संगम कीजिये। (राये) सम्पत्ति के लिये (नः) हमारे लिये (दुरः) दर्वाजे (वि वृधि) खोल दीजिये।

[चक्रम्=चरतेर्वा स्यात् (निरु. ४।४।२७); गाः=इन्द्रिय-शक्तियां, तथा अर्वतः=मानसिक शक्तियां]

सूक्त ४

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७८४—वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
१ २ ३ १ २
पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! आप (भानुना) चमकते सूर्य के द्वारा भी (वृषा असि) सुखों की वर्षा कर रहे हैं । (द्युमन्तम्) द्युतिमान् तथा (स्वर्दृशम्) सुख-शान्ति के मार्ग-दर्शक (त्वा) आप का ही सदा (हवामहे) हम आह्वान करते हैं ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७८५—यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।
१ २ ३ १ २
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (यद्) जब (आयुभिः) उपासकों द्वारा आप (अद्भिः) भक्तिरस से (परिषिच्यसे) खूब सींचे जाते हैं, तथा आप का स्वरूप (मर्मृज्यमानः) विशुद्धरूप में प्रकट होता है, और आप (द्रोणे) हृदय-गृह में (सधस्थम्) जीवात्मा के साथ बैठने अर्थात् सहवास को (अश्नुषे) प्राप्त करते हैं ।

[द्रोणे=दुरोणे (निघं. ३।४)]

१ २ ३ २ ३ १ २
७८६ आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
३ १ २ ३ १ २
इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ३ ॥ ॥ ४(लु) ॥

(स्वायुध) विघ्न-बाधाओं को हटाने के लिये उत्तम आयुधों वाले हे परमेश्वर ! आप (मन्दमानः) प्रसन्न होकर हमें (सुवीर्यम्) उत्तम शक्ति या सुवीरता (आ पवस्व) प्रदान कीजिये । (इन्दो) हे हमारे हृदयाकाशों के चान्द ! (इह) इन हमारे हृदयों में (उ) अवश्य आप (सु आ गहि) सुगमता से प्रकट हूजिये ।

सूक्त ५

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
७८७—पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
३ १ २र
सखित्वमा वृणीमहे ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (पवित्रम्) पवित्र हृदयों को अपने आनन्दरस से (अभ्युदन्तः) सींचते हुए, और (पवमानस्य) हमें पवित्र करते हुए (ते) आप के, (सखित्वम्) सखिभाव को, मैत्री को, (वयम्) हम उपासक(वृणीमहे) चाहते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२२
७८८—ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया।
१ २
तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (ते) आपकी (ये) जो (ऊर्मयः) आनन्दरस की लहरें, (धारया) सतत धारारूप में, (पवित्रम्) पवित्र-हृदय (अभि) की ओर (क्षरन्ति) प्रवाहित होती हैं; (ताभिः) उन धाराओं द्वारा (नः) हमें (मृडय) सुखी कीजिये।

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २
७८९—स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्।
१ २ ३ १ २
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥ ५ ॥ (ला)॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक प्रभो ! (पुनानः) पवित्र करते हुए (सः) वह आप, (नः) हमें (रयिम्) आध्यात्मिक विभूतियां (आ भर) प्राप्त कराइये, और (वीरवतीम् इषम्) धर्म-वीर बनने की हमारी अभिलाषाओं को (आ भर) पूर्ण कीजिये। आप (विश्वतः) विश्व के (ईशानः) अधीश्वर हैं।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

सूक्त ६

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७९०—अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

(दूतम्) कामादि के उत्तापक, (होतारम्) सब सुखों के दाता, (विश्ववेदसम्) विश्ववेत्ता, और (अस्य यज्ञस्य) इन हमारे उपासना यज्ञों को (सुक्रतुम्) सफल करने वाले, (अग्निम्) प्रकाश-स्वरूप जगन्नेता का (वृणीमहे) हम वरण करते हैं।

३ १२३ १ २ ३ १२ ३ १ २
७९१—अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्।
३ १ २ ३ २
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

उपासक लोग—(विश्पतिम्) प्रजापालक, (हव्यवाहम्) उपासकों को उनके

भोग्य हव्य पहुँचाने वाले, (पुरुप्रियम्) बहुत-प्रिय परमेश्वर को, (हवीमभिः) आह्वान-मन्त्रों द्वारा (सदा हवन्त) सदा पुकारते रहते हैं,—और उसे (अग्निम् अग्निम्) वार-वार "अग्नि" नाम से पुकारते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
७९२—अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे।
२ ३ १ २ ३ १ २
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥ ॥ ६(यौ) ॥

(अग्ने) हे जगन्नेता! (जज्ञानः) प्रकट हुए आप,—(वृक्तबर्हिषे) बाह्याग्नि का परित्याग किये अर्थात् आध्यात्मिक अग्नि के उपासक के लिये, (इह) उसके इसी जीवन में, (देवान्) दिव्य शक्तियाँ (आ वह) प्राप्त कराइये। आप ही (होता) इन शक्तियों के दाता है, (नः) और हमारे (ईड्यः) उपासनीय हैं।

[बर्हिः=Fire आपटे))]

सूक्त ७

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७९३—मित्रं वयँ हवामहे वरुणँ सोमपीतये।
२ ३ २ ३ १ २
या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥

(सोमपीतये) हमारे भक्तिरसों के पान के लिये तथा उन की सुरक्षा के लिये,—(वयम्) हम उपासक, परमेश्वर के (मित्रम्) मित्र स्वरूप का, तथा (वरुणम्) पाप-निवारक स्वरूप का (हवामहे) आह्वान करते हैं, (या=यौ) जो ये दोनों स्वरूप कि (पूतदक्षसा) उपासकों की शक्तियों को पवित्र करने वाले तथा उपासकों को प्रभावित तथा उन की वृद्धि करने वाले, (जाता=जातौ) प्रसिद्ध हुए हैं।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
७९४—ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती।
२ ३ १ २र
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥

(यौ मित्रावरुणा) परमेश्वर के जो मित्र और वरुण स्वरूप, (ऋतेन) सत्यमार्ग के उपदेश द्वारा, (ऋतावृधौ) सत्य के वर्धक हैं, और (ऋतस्य ज्योतिषः पती) सत्यरूपी ज्योति के स्वामी हैं, (ता) उन दोनों स्वरूपों का (हुवे) मैं आह्वान करता हूं।

[मित्र स्वरूप स्नेह का सूचक है, और वरुण अर्थात् पाप-निवारक-स्वरूप दण्ड का सूचक है। अधिक स्नेह से सन्तान बिगड़ती, और अधिक दण्ड से सन्तान विमुख हो जाती है। अतः स्नेहभावना से दण्ड का प्रयोग, सन्तानों को सुधारता है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
७९५—वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २
करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥ ॥ ७(वा) ॥

(वरुणः) पाप-निवारक-स्वरूप (अविता) रक्षा करने में (प्र भुवत्) समर्थ होता है, (मित्रः) और मित्र-स्वरूप (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार के रक्षा साधनों द्वारा (अविता प्र भुवत्) रक्षा करने में समर्थ होता है। परमेश्वर के ये दोनों स्वरूप (नः) हमें (सुराधसः) उपासना-यज्ञों के उत्तम साधक (करताम्) बना दें।

सूक्त ८

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
७९६—इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
२ ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

(गाथिनः) सामगान करने वाले (इन्द्रम् इत्) परमेश्वर का ही (बृहत्) महागान करते हैं, (अर्किणः) अर्चना करने वाले (अर्केभिः) ऋचाओं द्वारा (इन्द्रम्) परमेश्वर की ही अर्चनाएें करते हैं। (वाणीः) वेदों की समग्र वाणियां (इन्द्रम्) परमेश्वर की ही (अनूषत) स्तुतियां करती हैं।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७९७—इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
२ ३ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

(इन्द्रः इत्) परमेश्वर ही,—(वचोयुजा) परमेश्वरीय आज्ञाओं द्वारा कार्यों में नियुक्त होने वाले (हर्योः) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूपी अश्वों का (सचा) संगी बन कर,—जब (आ सम्मिश्लः) उनमें पूर्णतया मिश्रित हो जाता है, तब (इन्द्रः) परमेश्वर (वज्री) आसुरी भावनाओं पर वज्र-प्रहार करता है, (हिरण्ययः) तब वह हितकारी और रमणीय प्रतीत होने लगता है।

१ ३ १ २ ३ १ २
७९८—इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥३॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (उग्रः) आप रुद्ररूप होकर, (उग्राभिः ऊतिभिः) अपनी उग्र रक्षाओं द्वारा, (वाजेषु) आसुर-शक्तियों के साथ युद्ध करने के लिये (वाजेषु) शक्तियों की प्राप्ति के निमित्त (नः) हमारी (अव) रक्षा कीजिये। (च) और जब (सहस्रप्रधनेषु) ये युद्ध जीवन में हजारों वार भी आएँ, तब भी इन युद्धों में (नः अव) आप हमारी रक्षा कीजिये।

[सहस्रप्रधनेषुः—सहस्र का अर्थ है "हजार", और प्रधन का अर्थ है "प्रभूत-धन"। प्रभूतधन कमाने और धन का स्वार्थ प्रयोग=लोभवृत्ति का परिणाम है। यह लोभवृत्ति आसुरी वृत्ति है। परोपकार, त्याग, तथा सन्तोष,—ये दैवीवृत्तियां हैं। इन आसुरी तथा दैवी वृत्तियों में संग्राम दिन-रात हो रहा है। प्रभु से शक्ति की याचना की गई है कि हम दैवी वृत्तियों द्वारा आसुरी वृत्तियों पर विजय पा सकें। यह आध्यात्मिक दैवासुर संग्राम है]

२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
७९९—इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि।
२उ ३ १ २
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥ ॥ ८(खा) ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर ने (दीर्घाय चक्षसे) दीर्घकाल तक देखने के लिये, (दिवि) द्युलोक में (सूर्यम् आरोहयत्) सूर्य का आरोहण कर दिया है, और (गोभिः) सूर्य की किरणों द्वारा उस ने (अद्रिम्) मेघों को (वि ऐरयत्) विविध स्थानों में प्रेरित किया है। इसी प्रकार परमेश्वर ने (दीर्घाय चक्षसे) दीर्घ-दृष्टि अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान को देख सकने की दिव्यदृष्टि के लिये, (दिवि) मूर्धा में (सूर्यम्) सहस्रार चक्ररूपी (सूर्यम्) दिव्य सूर्य का आरोहन कर दिया है, और (गोभिः) वेदोपदिष्ट साधनों द्वारा (अद्रिम्) धर्म मेघ समाधि को (वि) विशेषतया (ऐरयत्) प्रेरित किया है।

[अद्रिम्=मेघ नाम् (निघं. १।१०)। धर्म मेघ समाधि (योग ४।२९)। यथाः—"प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः"]

सूक्त ९

१२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
८००—इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे।
३ १ २र ३ १ २
धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥

(इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् तथा (अग्ना—अग्नौ) प्रकाशमान जगन्नेता के निमित्त, (सुवृक्तिम्) पूर्णतया दोषवर्जित (वृहत् नमः) बहुत नमस्कारों को (एरयामहे) हम भेंट में प्रेरित करते हैं, (अवस्यवः) और रक्षा चाहते हुए हम, (धिया) सद्विचारों और सत्कर्मों से संवलित, (धेनाः) वैदिक स्तुतिवाणिओं की भेंटें देते हैं।

[इन्द्रे अग्ना=मन्त्र में इन्द्र को अग्नि, तथा अग्नि को इन्द्र कहा है। इस

लिये आध्यात्मिक दृष्टि में बहुदेवतावाद वेदाभिमत नहीं। आध्यात्मिक-दृष्टि का अभिप्राय है,—उपासना]

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
८०१—ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये।
३ २ ३ १ २
सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥

(शश्वन्तः) शाश्वत काल से (विप्रासः) मेधावी-उपासक (ऊतये) रक्षा के लिये, (ता हि) परमेश्वर के उन परमैश्वर्यवान् तथा जगन्नेतृत्व रूपों की (ईडते इत्था) स्तुतियां इसी प्रकार करते आए है; —जब कि वे (सबाधः) विघ्न बाधाओं से सताए गये हैं। (वाजसातये) विघ्न-बाधाओं के साथ लड़ने की शक्ति प्राप्त करने के लिये वे परमेश्वर के उपर्युक्त दोनों रूपों की स्तुतियां करते आए हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
८०२—ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे।
३ १ २ ३ १ २
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥ ॥ ६(हु) ॥

हे परमेश्वर ! (विपन्युवः) विशिष्ट भक्ति से स्तुतियां करने वाले, (प्रयस्वन्तः) योग के लिये प्रयास-शील, (सनिष्यवः) तथा आपके प्रति आत्म-समर्पण करने वाले हम उपासक,—(मेधसाता) आप के साथ संगम अर्थात् मेल प्राप्त करने के लिये,—(ता वाम्) आप के उन दोनों स्वरूपों का (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (हवामहे) आह्वान करते हैं।

[दो स्वरूप—इन्द्र स्वरूप और अग्नि स्वरूप। इन्द्र बल प्रदान करता है, और अग्नि मार्ग-प्रदर्शन करता है। मेधसाता—मेधृ (संगमे) + साता (षण् संभक्तौ)]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

सूक्त १०

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८०३—वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥

हे भक्तिरस ! तू (मत्सरः) आनन्द का सरोवर है। (वृषा) तू सुख-शान्ति की वर्षा करता, (च) और (मरुत्वते) प्राणों के स्वामी के लिये प्रकट हुआ है। तू (धारया) अपनी बहती धारा द्वारा (पवस्व) मुझे पवित्र कर। तू अपने (ओजसा) ओज द्वारा (विश्वा) सब सद्गुणों का, उपासक में (दधानः) आधान करता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
८०४—तं त्वा धर्तारमोण्यो३: पवमान स्वर्दृशम् ।
३ १ २र ३ १ २
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले !,—(ओण्योः धर्त्तारम्) द्युलोक और पृथिवी-लोक को धारण करने वाले, (स्वर्दृशम्) सुख का मार्ग दर्शाने वाले, (वाजिनम्) बलशाली (तं त्वा) उस आप को,—(वाजेषु) बलों की प्राप्ति के निमित्त, (हिन्वे) मैं प्रेरित करता हूँ ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
८०५—अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
२ ३ १ २
युजं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥ ॥ १०(ट) ॥

हे पवित्र करने वाले ! (८०४), आप (चित्तः) सचेत और (हरिः) क्लेशहारी हैं । (विपानया अया धारया) उपासकों के लिये विशेष-रूप में पान करने योग्य आनन्दरसमयी धारा द्वारा (पवस्व) मेरी ओर प्रवाहित हूजिये, और (युजम्) अपने सहयोगी उपासक को (वाजेषु) बलों की प्राप्ति के निमित्त (चोदय) प्रेरित कीजिये ।

सूक्त ११

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
८०६—वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥

(वृषा) सुखवर्षी और (शोणः) स्वभावतः क्रियाशील परमेश्वर ने, (गाः) वेदवाणियों का (अभि) साक्षात् (कनिक्रदत्) उपदेश दिया है । हे उपासक ! तू (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी-लोक और द्युलोक को (नदयन्) वेदवाणियों से गुञ्जाता हुआ (एषि) विचरता है । (इव) जैसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (वग्नुः) वाणी (आ शृण्वे) सर्वत्र सुनाई दे रही है, वैसे (आजौ) आध्यात्मिक देवासुर-संग्राम के निमित्त (इमां वाचम्) इस वेदवाणी का (प्रचोदयन्) प्रवचन करता हुआ तू (आ अर्षसि) सर्वत्र विचरता है ।

शोणः=शोणृ गतौ । वग्नुः=वाक् (निघं. १।११)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
८०७—रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ २ ॥

हे उपासक ! तू उपदेशों के कारण सबके लिये (रसाय्यः) रसीला बन गया है। (पयसा) वेदों के उपदेशरूपी दुग्ध द्वारा (पिन्वमानः) सबको सींचता हुआ, वेदों के (मधुमन्तम्) मधुर (अंशुम्) ज्ञानप्रकाश को (ईरयन्) फैलाता हुआ (एषि) तू विचरता है। (पवमान) हे पवित्र करने वाले उपासक ! (परिषिच्यमानः) भक्तिरस से पूर्णतया सींचा गया तू, (सोम) भक्तिरस-रूप हुआ हुआ (इन्द्राय) परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये, (सन्तनिं कृण्वन्) वेदों का सम्यक्-विस्तार करता हुआ (एषि) विचरता है।

[पिन्वमानः=पिवि सेचने सेवने च। सन्तनिम्=सम्+तनु(विस्तारे)]

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८०८—एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः
॥ ३ ॥ ॥ ११(रि) ॥

(सोम) हे उपासकः ! (मदिरः) सदा प्रसन्न तू, प्रजाजनों की (मदाय) प्रसन्नता और हर्ष के लिये, (एवा) इसी प्रकार (पवस्व) उन्हें पवित्र करता रह। तू (उदग्राभस्य) जलचरग्राह (crocodile) की तरह घातक दुर्व्यसन-ग्राह की (वधस्नुम्) वधकारी स्नायुओं को (नमयन्) कमजोर करता हुआ, और (परि) सब प्रकार से अपने (रुशन्तं वर्णम्) जाज्वल्यमान रूप को (भरमाणः) धारण करता हुआ, (परि सिक्तः) और भक्तिरस से सदा सींचा हुआ, (नः) हमें (गव्युः) वेद-वाणी का ज्ञानामृत पिलाता हुआ (अर्ष) विचरा कर। [रुशत्=वर्णनाम, रोचते-ज्वंलतिकर्मणः (निरु० ६।३।१३)]

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सूक्त १२

१ २र ३ १ २र ३ १ २
८०९—त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

(कारवः) हम कर्मयोगी, (वाजस्य) शक्तियों और ज्ञानों की (सातौ) प्राप्ति के लिये, (त्वाम् इत् हि) आप का ही (हवामहे) आह्वान करते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वृत्रेषु) जब पाप और अज्ञान के घेरे हमें घेर लेते हैं, हम पर आवरण डाल देते हैं, तब (त्वां सत्पतिम्) आप सच्चे पति का ही हम (हवामहे) आह्वान करते हैं। (नरः) नर-नारियाँ (अर्वतः) दुःखी होकर (काष्ठासु) दुःखों की पराकाष्ठाओं में (त्वाम्) आपका ही आह्वान करते हैं। [अर्वतः=ऋ(रेषणे); अर्व् (हिंसायाम्)]

१ . २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

८१०—स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

१ २र ३क २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

गामश्वँ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे

॥ २ ॥ ॥ १२ (फु) ॥

[धा० १० । उ० २ । स्व० ५]

(चित्र) हे आश्चर्यमयः !, (वज्रहस्त) हे न्यायवज्रधारी !, (अद्रिवः) हे मेघों तथा पर्वतों के स्वामी (इन्द्र) परमेश्वर ! (महः स्तवानः स त्वम्) वेदों द्वारा पदार्थों का बहु ज्ञान देने वाले वे आप, (धृष्णुया) सब बाधाओं को हटाकर (नः) हमें (गाम्) स्वस्थ-इन्द्रियां, तथा (रथ्यम्) शरीर-रथवाही (अश्वम्) बलिष्ठ मन (संकिर) प्रदान कीजिये, (न) जैसे कि आप (जिग्युषे) इन्द्रियों-और-मन के विजेता को (सत्रा) सदा (वाजम्) ऐन्द्रियिक-और-मानसिक बल प्रदान करते हैं ।

सूक्त १३

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

८११—अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ११ ३ १ २ ३ १ २

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

हे उपासको ! (यथाविदे) यथार्थज्ञान की प्राप्ति के लिये, (वः) तुम्हारे अभीष्टों को (सुराधसम्) उत्तम प्रकार से सिद्ध करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अभि) प्रत्यक्ष रूप में (प्र अर्च) खूब अर्चना किया करो ; (पुरुवसुः) सर्वत्र बसा हुआ (यः) जो (मघवा) सम्पत्तिशाली परमेश्वर कि (जारितृभ्यः) तुम स्तोताओं को (सहस्रेण इव) हजारों प्रकार से हजारों सम्पत्तियां (शिक्षति) दे रहा है, तथा हजारों मन्त्रों द्वारा नानाविध शिक्षाएं दे रहा है । [शिक्षतिः=दानकर्मा (निघं. ३।२०)]

३ १ ११ ३ १ २ ११ १ २र ३ १ २ ३ १ २

८१२—शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः

॥ २ ॥ ॥ १३ (हि) ॥

[धा० १६ । उ० ना० । स्व० ३]

(इव) जैसे पराक्रमी सेनानी (शतानीका=शतानीकानि) शत्रुओं की सैकड़ों सेनाओं की ओर (प्र जिगाति) शीघ्र गमन करता, और (धृष्णुया) अपनी धर्षण शक्ति द्वारा अर्थात् शत्रुओं को पराभव कर सकने की शक्ति द्वारा, (हन्ति) उनका हनन करता है, वैसे परमेश्वर (धृष्णुया) अपनी पराक्रमशक्ति द्वारा, (दाशुषे) आत्मसमर्पक व्यक्ति के लिए, उसके (वृत्राणि) पाप-वृत्रों का (हन्ति) हनन कर देता है । तथा (इव) जैसे (गिरेः) पर्वत से या मेघ से (रसाः) जल

(प्र पिन्विरे) प्रवाह से बहते हैं, वैसे (अस्य) इस (पुरुभोजसः) सर्वभोजी पालक के (दत्राणि) दान (प्र पिन्विरे) प्रवाहित हो रहे हैं।

सूक्त १४

२ ३ १ २र ३ १ २
८१३—त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥

(वज्रिन्) हे आसुरी भावनाओं के प्रति वज्रधारी (इन्द्र) परमेश्वर! (भूर्णयः) पृथिवी-वासी (नरः) नर-नारी उपासक, (ह्यः) भूतकाल में और (इदा =इदानीम्) इस वर्तमान काल में भी (त्वाम्) आपको ही (अपीप्यन्) बढ़ाते रहे हैं, आपकी ही बड़ाई करते आये हैं। हे परमेश्वर! (सः) वह आप (स्तोभवाहसः) स्तुतिकर्त्ताओं की स्तुतियों को (उप श्रुधि) ध्यानपूर्वक सुनिये, और (स्वसरम्) किसी शुभ दिन को लक्ष्य में रख कर (इह) यहां, हमारे हृदयों में, (आ गहि) दर्शन दीजिये। [भूर्णिः=Earth (आपटे)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८१४—मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥१॥ ॥१४(ल)॥
(घा० १६। उ० ना। स्व० १)

(सुशिप्रिन्) हे शान्त तथा परिपूर्ण!, (हरिवः) हे विषयों में हरण करने वाली इन्द्रियों के स्वामी!, (उक्थ्य) हे स्तुत्य!, (गिर्वणः) हे वेदवाणियों द्वारा भजनीय (इन्द्र) परमेश्वर; (मत्स्व) आप प्रसन्न हूजिये। (सुतेषु) भक्तिरसों के उत्पन्न हो जाने पर (तम्) उस परमेश्वर से ही (ईमहे) हम प्रार्थनाएँ करते हैं। हे प्रभो! (त्वया) आपकी कृपा से (वेधसः) आपके सेवक (भूषन्ति) शोभा पाते हैं, और (तव) आपके ही (श्रवांसि) यश (उपमानि) उपमाओं के योग्य हैं।

[शिप्रिन=शि (Calm+प्रा (पूरणे)+इन्। वेधसः=परिचारकाः (सायण)]

[सुशिप्रिन्=सु+शि (calm, आपटे)+प्रा (पूरणे) +इन्। निरुक्तकार ने "सृप्र" पद की व्याख्या के पश्चात् "सुशिप्र" पद की व्याख्या में लिखा है कि "सुशिप्रमेतेन व्याख्यातम्", अर्थात् "शिप्र" पद की वही व्याख्या है जो कि "सृप्र" पद की हुई है। "सृप" पद की व्याख्या में लिखा है कि "सृप्रः सर्पणात्", अर्थात् जो सर्पण करते हैं उन्हें "सृप्र" कहते हैं। अतः "शिप्र" का अर्थ भी होगा "सर्पण करने वाले"। पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारागण सभी सर्पण कर रहे हैं। अतः इन्हें "शिप्र" कहा जा सकता है। इनका स्वामी होने से परमेश्वर "शिप्री" कहा जा सकता है।

[२] "शिप्रे" द्विवचनान्त पद की व्याख्या में निरुक्तकार कहते हैं कि "शिप्रे हनू नासिके वा" (६।४।१६), अर्थात् दो जबाड़े या दो नासिकाछिद्र। इस अर्थ में मन्त्र में उपमा-वाची पद "इव, यथा, न" आदि लुप्त समझ कर अर्थ होगा सुन्दर मुख वाले व्यक्ति के सदृश सुन्दर। परमेश्वर को "सत्यं शिवं सुन्दरम्" कहा भी है।

[३] "शिप्र" शब्द "शिप्+र" द्वारा भी समझा जा सकता है। शिप्-और-शिपि में सारूप्य प्रतीत होता है। शिपि का अर्थ निरुक्तकार ने "रश्मयः" भी किया है (५।२।८)। अतः "सुशिप्र" का अर्थ हुआ "उत्तम रश्मियों वाला, अर्थात् शोभन प्रकाश वाला, या सूर्यादि रश्मियों वाले लोकों का स्वामी।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

सूक्त १५

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८१५—यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥ १ ॥

हे भक्तिरस ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) मद है, मस्ती है, वह (वरेण्यः) वरणीय है, सर्वश्रेष्ठ है। (तेन अन्धसा) वह उपासकों का आध्यात्मिक अन्न है, उस द्वारा तू हे भक्तिरस ! (देवावीः) परमात्मदेव तक पहुँचाता है, और (अघशंसहा) पापप्रशंसा की भावना का हनन करता है। (आ पवस्व) हे भक्तिरस ! तू आ, और हमें पवित्र कर।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८१६—जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे।
१ २ ३ १ २
गोषातिरश्वसा असि ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! आप हमारे (अमित्रियं वृत्रम्) अमित्र अर्थात् शत्रुरूप पाप-वृत्रों का (जघ्निः) हनन करते हैं, (वाजं सस्निः) इस निमित्त हमें आप बलप्रदान करते हैं, (दिवे दिवे) प्रतिदिन आप इस निमित्त बलप्रदान करते हैं। आप ने ही हमें (गोषातिः) इन्द्रियां दी हैं, आप ने ही हमें (अश्वसा असि) मन दिये हैं।

[सस्नि=षण् दाने ;]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
८१७—सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः।
१ २ ३ ३ २उ ३ २
सीदं च्छ्येनो न योनिमा ॥ ३ ॥ ॥ १५(चौ) ॥

(न) जैसे कि (सूपस्थाभिः) समीप उपस्थित (धेनुभिः) दुधार गौओं के साथ उन के बछड़े मिल जाते हैं, वैसे हे परमेश्वर ! जब आप हमारे साथ (संमिश्लः) सम्यक् मिश्रित से हो जाते हैं; हमारे जीवनों में घुल-मिल जाते हैं, तब आप (अरुषः भुवः) प्रकाशित हो जाते हैं। और (न) जैसे (श्येनः) बाज पक्षी (योनिम्) अपने निवासस्थान में (आ) आ बैठता है, वैसे आप (योनिम्) निजगृह अर्थात् हृदयों में (आ सीदस्) आ विराजते हैं।

[अरुषः=आ रोचमानः]

[बा० १२ उ० १। स्व० नास्ति]

सूक्त १६

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
८१८—अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे॥ १॥

(सोमः) जगदुत्पादक प्रभु (पुनानः) उपासक को पवित्र करता हुआ (अर्षति) उस के हृदय में प्रकट होता है। (अयम्) यह प्रभु (पूषा) सब की पुष्टि करता, (रयिः) वास्तविक सम्पत्तिरूप है, (भगः) भजनीय है, और (भूमनः विश्वस्य) सत्ता वाले महाविश्व का (पतिः) स्वामी है। इसने ही (रोदसी उभे) द्युलोक और भूलोक इन दोनों को (व्यख्यत्) प्रकट किया है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८१९—समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः।
१ २ ३ १ २र ३ १ २
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः॥ २॥

हे परमेश्वर ! आप के (प्रियाः) प्रिय तथा (घृष्वयः) पापों को कुचलने वाले (गावः) उपासक, (मदाय) आत्मतृप्ति और आनन्द की प्राप्ति के लिये, (सम्) मिल कर, (उ) निश्चय से, (अनूषत) आप की स्तुतियां करते हैं। (सोमासः) भक्तिरस से आप्लावित तथा (इन्दवः) चन्द्रमा के समान शान्त वे उपासक, (पवमानासः) सब को पवित्र करते हुए (पथः कृण्वते) जीवन-पथों का निर्देश करते हैं।

[गावः=गौः (स्तोता), निघं. ३।१६]

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
८२०—य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्।
१ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे॥ ३॥ ॥ १६(फु)॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! (ओजिष्ठः) अत्यन्त ओज

देने वाला (यः) जो (श्रवाय्यम्) सुप्रसिद्ध आनन्दरस है, (तम्) उसे आप हमें (आ भर) प्रदान कीजिये, (यः) जो आनन्दरस कि (पञ्च) सभी (कृष्टीः अभि) प्रजाजनों को अल्पाधिक मात्रा में प्राप्त है, और (येन) जिस ओजदायी आनन्दरस की प्राप्ति से (रयिम्) आप को ही सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति समझ कर, (वनामहे) हम आप का सदा भजन करते हैं।

[पञ्च=पच् विस्तारे। यथा "पञ्चास्य=शेर, अर्थात् विस्तृत मुख वाला, चौड़े मुख वाला]

[प्रा० १६। उ० २। स्व० ५]

सूक्त १७

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
८२१—वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः
॥ १ ॥

(विचक्षणः) सर्वद्रष्टा प्रभु (मतीनां वृषा) सन्मतियों की वर्षा करता हुआ (पवते) पवित्र करता है। (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु (अह्नाम्, उषसां, दिवः) दिनों, उषाओं, और द्युलोक को (प्र तरीतः) आकाशीय समुद्र में तैराने वाला जहाज है। (सिन्धूनाम्) जलीय समुद्रों तथा हृदय समुद्रों का (प्राणा) प्राण रूप है। (मनीषिभिः) मन की गतियों के स्वामी महायोगियों की सहायता से, (इन्द्रस्य) जीवात्मा के (हार्दि) हृदय-प्रदेश में (आविशन्) प्रवेश पाया हुआ परमात्मा, (कलशान्) जीवात्मा के पांचों कोशों को (अचिक्रदत्) ओ३म् के जप द्वारा या अन्तर्नाद द्वारा गुञ्जा देता है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
८२२—मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत्।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुँ सख्याय वर्धयन्
॥ २ ॥

(पूर्व्यः कविः) सर्वप्रथम कवि अर्थात् परमेश्वर, अपने वेदकाव्य द्वारा (पवते) पवित्र करता है। (मनीषिभिः) मन की गतियों के स्वामी (नृभिः) उपासक नेताओं द्वारा (यतः) संयम विधि से ध्यान किया गया परमेश्वर उनके (कोशान्) पञ्च कोशों में (परि) पूर्णतया (असिष्यदत्) आनन्दरस रूप में प्रस्रवित हो जाता है। तदनन्तर उपासक (त्रितस्य) तीनों लोकों में व्याप्त (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (नाम) ओ३म् नाम (जनयन्) जपता हुआ, और (मधु) अपने मधुर-भक्तिरस को (क्षरन्) परमेश्वर की ओर प्रवाहित करता हुआ, (सख्याय) परमेश्वर के सखिभाव

के लिये, उस की मैत्री के लिये, (वायुम्) अपनी प्राणशक्ति को, जीवनीय शक्ति को, (वर्धयन्) बढ़ाता है।

[त्रितस्य—त्रितः, त्रिस्थानः इन्द्रः (निरु. ९।३।२४)]

३१२३२ ३१२ ३१ २र ३ २
८२३—अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
३ २उ ३ १ २ ३२३ २ ३ १२३१२३ १२ ३२
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरँ सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः
॥ ३ ॥ ॥ १७(गी) ॥

(पुनानः) जगत् को पवित्र करते हुए (अयम्) इस परमेश्वर ने, (उषसः) उषाओं को (अरोचयत्) चमकाया है, और (सिन्धुभ्यः) नदियों के जलों द्वारा (लोककृत्) लोकोपकार करने वाला यह (अभवत्) हुआ है। (अयम्) यह (सोमः) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक और (मत्सरः) आनन्दरस का सरोवर परमेश्वर, (त्रिः सप्त) २१ छन्दों से युक्त वेदवाणी से (आशिरम्) ज्ञान-दुग्ध को (दुदुहानः) दोहाता हुआ, (हृदे) हृदय के लिये (चारु) रुचिकर हुआ-हुआ (पवते) हृदय में गति कर रहा है।

["त्रिः सप्त आशिरं दुदुहानः"—में दुह् धातु द्विकर्मक है। यथा="गां दोग्धि पयः" में।]

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [धा० ३६। उ० ३। स्व० ४]

सूक्त १८

३ १ २र ३२३१ २र३२३ १
८२४—एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
३२ ३२ ३ १२
एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

हे परमेश्वर! (एव हि) निश्चय से ही आप (वीरयुः) उपासना में वीरों की चाहना करते हैं। (एव) निश्चय से आप (शूरः) पराक्रम शील हैं, (उत) तो भी (स्थिरः) कूटस्थ और सदा रहने वाले अविचाली हैं। (एव) निश्चय से (ते) आप का (मनः) संकल्प (राध्यम्) हमें अपने जीवनों में सिद्ध करने योग्य हैं।

१२३१ २ ३१२ ३१ २
८२५—एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः।
१ २ ३ १२
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥

(तुवीमघ) हे महाधनी परमेश्वर ! (धातृभिः) प्रजाओं का धारण-पोषण करने वाले (विश्वेभिः) सब धनिकों द्वारा जो (रातिः) सम्पत्ति (धायि) धारण की हुई है, वह (एव) निश्चय से आप की ही दी हुई है। (अधा चित्) इस प्रकार भी (इन्द्र) हे परमेश्वर आप (नः) हमारे (सचा) संगी बने हुए हैं, हमारी सहायता कर रहे हैं।

२उ ३ १ २ ३ १ २र
८२६—मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भवो वाजानां पते।
१ २ ३२ ३ १ २
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥ ॥ १८(ति) ॥

(वाजानां पते) हे बलों के पति परमेश्वर ! आप बलों के प्रदान करने में (मा उ तन्द्रयुः) विलम्ब न कीजिये, अपितु (ब्रह्मा इव) चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्म के सदृश हमें ज्ञान का बल प्रदान कीजिये, और (गोमतः) वेदोपदिष्ट विधियों द्वारा (सुतस्य) निष्पादित भक्तिरस के आस्वादन द्वारा (सु मत्स्व) खूब तृप्त हूजिये।

[धा० १४। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १९

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८२७—इन्द्रं विश्वा अवीवृधंत्समुद्रव्यचसं गिरः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमँ् रथीनां वाजानाँ् सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

(विश्वा गिरः) वेदों की सब वाणियां (इन्द्रम्) परमेश्वर की ही (अवीवृधन्) बड़ाई कर रही हैं, जो परमेश्वर (समुद्रव्यचसम्) पार्थिव समुद्र, हृदय समुद्र तथा आकाशीय समुद्र में व्याप्त है, जो (रथीनाम्) रथियों में (रथीतमम्) महारथी है, जो (वाजानां पतिम्) समग्र बलों का पति है, और (सत्पतिम्) सच्चा पति है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २
८२८—सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम्॥ २ ॥

(शवसस्पते) हे बलों के पति (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते सख्ये) आप सखा के होते (वाजिनः) हम बलशाली हो जाते हैं; और (मा भेम) किसी से भयभीत नहीं होते। इसलिये हम (अभि) साक्षात् रूप में (त्वाम्) आप की ही (प्र नोनुमः) वार-वार सर्वोत्तम स्तुतियां करते हैं, जो आप कि (जेतारम्) सर्वविजयी हैं, और (अपराजितम्) कभी पराजित नहीं होते।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
८२९—पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्यूतयः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३॥ ॥१९(ली)॥

(पूर्वीः) अनादिकाल से, (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (रातयः) दान तथा (ऊतयः) रक्षाएँ, (न वि दस्यंति) कभी क्षीण नहीं हुई हैं। (यत्) क्योंकि आप, (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं को, (गोमतः) वेदोपदिष्ट (वाजस्य) बल, तथा वेदोपदिष्ट (मघम्) धन, ही (आ मंहते) देते हैं।

द्वितीय प्रपाठक का प्रथमार्ध प्रपाठक
समाप्त

[घा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ४]

॥ इति षष्ठ खण्डः ॥ ६ ॥ ॥द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥
इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥२॥

(१—१९) १ जमदग्निर्भार्गवः; २ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वाः ३ कविर्भार्गवः; ४ कश्यपो मारीचः; ५, मेधातिथिः काण्वः; ६—७ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ सप्तर्षयः (१ भारद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहुगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १० पराशरः शाक्त्यः; ११ पुरुहन्मा आङ्गिरसः; १२ मेध्यातिथि काण्वः; १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ त्रित आप्त्यः; १५ ययातिर्नाहुषः; १६ पवित्र आंगिरसः; १७ सोभरिः काण्वः; १८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १९ तिरश्चीरांगिरसौ ॥
१-४, ९, १०, १४-१६ पवमानः सोमः ५, १७ अग्निः; ६ मित्रावरुणौ ७ मरुतः; ७ (१, ३) इन्द्रश्चः ८ इन्द्राग्नी; ११-१३, १८-१९ इन्द्रः ॥ १-८, १४ गायत्री; ९(३) द्विपदा विराट्; १० त्रिष्टुप्: ९ (१-२) ११, १३ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १२ बृहती; १५, १९ अनुष्टुप्; १६ जगती, १७ प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); १८ उष्णिक् ॥

सूक्त १

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
८३०—एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
१ २ ३ १ २र
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

(एते) इन (इन्दवः) चन्द्रसमशान्त उपासकों ने (असृग्रम्) आत्मविसर्जन कर दिया है, और (तिरः) प्रकट हुए (पवित्रम्) पवित्र परमेश्वर की ओर (आशवः) शीघ्रता से बढ़े हैं, और परिणामस्वरूप में (विश्वानि सौभगा) सब प्रकार के सौभाग्यों को इन्होंने (अभि) प्रत्यक्षरूप में प्राप्त कर लिया है।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८३१—विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥

(वाजिनः) शक्तिशाली इन (८३०) उपासकों ने, अपने (पुरु) सम्पूर्ण (दुरिता) दुष्कर्मों का (विघ्नन्तः) हनन करते हुए, (तोकाय) अपनी सन्तानों के लिये भी जीवन मार्गों को (सुगाः) सुगम बना दिया है, और (अर्वतः) निन्दित व्यक्तियों को भी, (त्मना)) निज आत्मिक शक्ति द्वारा, (वाजिनः कृण्वन्तः) इन्हों ने शक्तिशाली कर दिया है।

[अर्वा=ऋ+वनिप् (उणादि ४।११); ऋच्छतीति अर्वा निन्द्यः (उणादि कोष, अजमेर)]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ २
८३२—कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इडामस्मभ्यँ्संयतम् ॥ ३ ॥ ॥ १(या) ॥

ये शक्तिशाली उपासक (८३१) (गवे) नवीन स्तोताओं को (वरिवः) आध्यात्मिक धन (कृण्वन्तः) प्रकट करते हुए, (सुष्टुतिम्) परमेश्वर की उत्तम-स्तुतियां (अभ्यर्षन्ति) करते रहते हैं, और (अस्मभ्यम्) हम प्रजाजनों के लिये (संयतम्) संयमरूपी (इडाम्) आध्यात्मिक अन्न (कृण्वन्तः) प्रदान करते हैं।

[गौः=स्तोता (निघं. ३।१६)]

[धा० ७। उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त २

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
८३३—राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥

(पवमानः) पवित्र करता हुआ, (राजा) जगत् का राजा परमेश्वर, (मनो अधि) मननशील उपासक में, (मेधाभिः) मेधाशक्तियों को साथ लेकर (ईयते) प्रकट होता है, और (अन्तरिक्षेण) उस के हृदयाकाश द्वारा (यातवे) उसे प्रगति देता है।

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
८३४—आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर।
३ २ १ १ २
सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर! (नः) हमें (सहः) सहन-शक्ति तथा (जुवः) प्रगतिशीलता (आ भर) प्रदान कीजिये, तथा (वर्चसे) ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति के लिये (रूपं न) एक नया-सा रूप प्रदान कीजिये, और (णः=नः) हमें (सुष्व) प्रेरित कीजिये (देववीतये) आप-देव की प्राप्ति के लिये।

१ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ १ २
८३५—आ न इन्द्रो शातग्विनं गवां पोषँ स्वश्व्यम्।
३ २ १ २ ३ १ २
वहा भगत्तिमूतये ॥ ३ ॥ ॥ २(ला) ॥

(इन्दो) चन्द्रसम प्रशान्त प्रकाश वाले हे परमेश्वर! (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (आ वह) हमें प्राप्त कराइये,—(शतग्विनम्) सैंकड़ों वेदवाणियों का ज्ञान, (गवां पोषम्) इन्द्रियों की पुष्टि, (स्वश्व्यम्) सात्विक मनोबल, तथा (भगत्तिम्) छः भगों का दान।

[भग=ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य]

[धा० १४। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ३

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
८३६—तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतँ सधस्थेषु महो दिवः।
१ २ ३ १ २
चारुँ सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

हे परमेश्वर! (नृम्णानि बिभ्रतम्) आध्यात्मिक ऐश्वर्यों और बलों को धारण करने वाले, (महः दिवः) महा-द्युलोक के (सधस्थेषु) साथ-साथ स्थित नक्षत्र-मण्डलों में (चारुम्) विचरने वाले तथा उन में सुचारु रूप देने वाले, (तं त्वा) उस आप को, (सुकृत्यया) सुकर्मों द्वारा (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
८३७—संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
३ १ २र ३ १ २
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥

(संवृक्तधृष्णुम्) धृष्णु अर्थात् हठीले कामक्रोध आदि को छिन्न-भिन्न करने वाले, (उक्थ्यम्) वैदिक सूक्तों में प्रशंसित, (महामहिव्रतम्) महतो महान् व्रतों वाले, (मदम्) आनन्द स्वरुप, (शतम्) सैंकड़ों मुमुक्षुओं की (पुरः) शरीर-परम्परा को (रुरुक्षिणम्) भग्न करने वाले परमेश्वर को (ईमहे ८३६) हम प्राप्त होते हैं ।

[रुरुक्षिणम्=रुजो भंगे; रुज हिंसायाम्; रूक्ष पारुष्ये]

१ २ ३ २ ३क २र३ १ २ ३ २
८३८—अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानँ सुक्रतो दिवः ।
३ १ २ ३ १ २
सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥

(सुक्रतो) हे सुकर्मा परमेश्वर ! (दिवः) द्युलोक के (राजानम्) राजा (त्वा) आप को (रयिः) सब प्रकार की सम्पत्ति (अभ्ययत्) प्राप्त है, (सुपर्णः) आप सुपालक हैं, (अव्यथी) आप हमें व्यथाओं से रहित करते हैं, (भरत्) सब का भरण-पोषण कर रहे हैं,—(अतः) इस लिये (ईमहे ८३६) हम आप की शरण में आते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
८३९—अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
३ १ २र
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥

(अधा) तथा हमारी (इन्द्रियम्) इन्द्रियों को (हिन्वानः) सत्प्रेरणाएँ देते हुए आप, (ज्यायः) महा (महित्वम्) महिमा को (आनशे) प्राप्त हैं । आप ही (अभिष्टिकृत्) हमारे अभीष्टों को साधते, (विचर्षणिः) तथा विविध मनुष्यों के स्वामी और विश्वद्रष्टा हैं, अतः (ईमहे ८३६) हम आप की शरण में आते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
८४०—विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणँ रजस्तुरम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ५ ॥ ॥ ३(हू) ॥

(विश्वस्मै इत्) सब ही प्रजाजनों को (स्वर्दृशे) सुख मार्ग दर्शाने के लिये जो (साधारणम्) साधारण परमेश्वर है, अर्थात् सब का एक ही प्रभु है, तथा (रजस्तुरम्) जो लोक-लोकान्तरों में गति प्रदान करता, (ऋतस्य) सत्यज्ञान का

(गोपाम्) रक्षक परमेश्वर है,—उस को (विः) जीवात्म-पक्षी (भरत्) अपने में धारण करता है।

[विः=जीवात्मा को पक्षी कहा है, यह जताने के लिये कि न जाने यह कब शरीर पिंजरे से निकल उड़े]

[धा० २६ । उ० नास्ति । स्व० ६]

सूक्त ४

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८४१—इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
१ २ ३ १ २र
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥

हे उपासक ! (मनीषिभिः) मनः-संयमी उपासक-शिरोमणियों द्वारा (मृज्यमानः) मार्जन विधि से मांजा गया तू, (इषे) अभीष्ट मोक्ष की प्राप्ति के लिये, (धारया) भक्तिरस की धारा द्वारा (पवस्व) परमेश्वर की ओर पग बढ़ा। (इन्दो) हे सौम्य ! (रुचा) और दिव्य दीप्ति से सम्पन्न होकर (गाः) नाना भूखण्डों में (अभि इहि) विचर।

[गाः=गौः (पृथिवी), निघं० १।१]

३ १ २र ३ २ ३ १ २
८४२—पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥

(गिर्वणः) हे वेदवाणियों द्वारा भजनीय परमेश्वर ! (पुनानः) पवित्र करते हुए आप, (जनाय) समग्र जनता के लिये, (वरिवः) सम्पत्तियां और (ऊर्जम्) बल तथा प्राणशक्ति (कृधि) प्रदान कीजिये (हरे) हे क्लेशहर्त्ता ! आप हमें (आशिरम्) परिपक्व वैदिक-ज्ञान रूपी दुग्ध (सृजानः) प्रदान कीजिये।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८४३—पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥ ३ ॥ ॥ ४(था) ॥

हे उपासक ! (देववीतये) परमेश्वर-देव की प्राप्ति के लिये, तू (पुनानः) अपने आप को पवित्र करता हुआ, (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (निष्कृतम्) स्वच्छ स्वरूप को (याहि) प्राप्त कर, और (वाजिभिः) शक्तिशाली उपासकों की कृपा से (द्युतानः) वर्चस्वी बन कर (हितः) सब का हितकारी बन।

इति प्रथमः खण्डः ॥१॥ [धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त ५

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८४४—अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
३ २ ३क २र
हव्यवाड्जुह्वास्यः ॥ १ ॥

(अग्निना) जीवात्मरूपी अग्नि के द्वारा, अर्थात् जीवात्मा में जब परमेश्वर-प्राप्ति की उग्र-अभिलाषा रूपी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है तब, (अग्निः) परमेश्वराग्नि (समिध्यते) जीवात्मा में प्रदीप्त होती है। परमेश्वराग्नि अर्थात् सर्वाग्रणी परमेश्वर (कविः) वेदकाव्यों का कवि हैं, (गृहपतिः) ब्रह्माण्ड-गृह का स्वामी है, (युवा) नित्य प्रौढशक्ति सम्पन्न है, (हव्यवाट्) दानयोग्य-और-भोगयोग्य पदार्थ प्राप्त कराता, (जुह्वास्यः) और सब के मुखों में इन पदार्थों की आहुतियाँ देता है।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८४५—यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
१ २ ३ १ २
तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥

(देव अग्ने) हे प्रदीप्त परमेश्वराग्नि ! (हविष्पतिः यः) भोगयोग्य पदार्थों का जो पति,—(दूतं त्वाम्) दुर्व्यसनों-के-परितापी आप की (सपर्यति) सेवा करता है, अर्थात् आप की प्रसन्नता के लिए भोग्य पदार्थों का दान करता है,—आप (तस्य) उस दाता के (प्राविता) पूर्ण-रक्षक (भव)होते हैं। (स्म)और ऐसे दानियों के पूर्ण रक्षक सदा से रहे हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८४६—यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।
१ २
तस्मै पावक मृडय ॥ ३ ॥ ॥ ५(रि) ॥

(हविष्मान् यः) दानयोग्य-और-भोगयोग्य पदार्थों का जो स्वामी, (देववीतये) आप देव की प्राप्ति के लिए, (अग्निम्) अग्निमय आपकी (आ विवासति) पूर्णरूप में सेवा करता है, अर्थात् आप की प्रसन्नता के लिए दान देता है, (पावक) हे पतितपावन ! (तस्मै) उसे आप (मृड) सुखी कीजिये।

[धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त ६

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८४७—मित्रँ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
धियं घृताचीँ साधन्ता ॥ १ ॥

(पूतदक्षम्) पवित्र बल वाले (मित्रम्) मित्र-स्वरूप अर्थात् स्नेही-रूप परमेश्वर का (हुवे) मैं आह्वान करता हूं [ताकि मैं भी सबके साथ स्नेह कर सकूं], तथा (रिशादसम्) घातक-पापों का अदन [भक्षण] करने वाले (वरुणम्) पाप-निवारक-स्वरूप परमेश्वर का (हुवे) मैं आह्वान करता हूं [ताकि मैं भी सबके पापों का निवारण कर सकूं]। परमेश्वर के ये दोनों स्वरूप मिलकर, (धियम्) उपासक के विचारों और कर्मों को (घृताचीम्) स्नेहसिक्त व्यवहारों वाले (साधन्ता) सिद्ध कर देते हैं, बना देते हैं। [मन्त्र में स्नेहभावनापूर्वक दण्डविधान का वर्णन हुआ है]

३ १२
८४८—ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।
१ २ ३ १ २
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥

परमेश्वर के (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण-रूप, परमेश्वर के (बृहन्तं-क्रतुम्) महान्-शासनकर्म में (आशाथे) व्याप्त हैं। परमेश्वर के ये दोनों रूप मिल कर (ऋतेन्) सत्यनियमों द्वारा (ऋतावृधौ) सत्य का वर्धन करते हैं, (ऋतस्पृशा) इन दोनों रूपों के साथ सत्य का सम्बन्ध है। [अभिप्राय यह है कि शासनकार्य में मैत्रीभावना पूर्वक दण्ड प्रयोग करना चाहिए। शासन में सत्य का परित्याग नहीं होना चाहिए। परन्तु प्रजा को सत्यमार्ग पर चलाने के लिए शासनों के लिए मित्ररूप और दण्डधररूप इन दोनों रूपों में समुचित समन्वय की अपेक्षा होनी चाहिए। अकेले-अकेले इन दो रूपों के साथ सच्चाई का पूरा सम्बन्ध नहीं होता, अपितु सच्चाई का आंशिक सम्बन्ध ही होता है। इस भाव को "ऋतस्पृशौ" द्वारा सूचित किया है। इन दोनों रूपों के साथ सच्चाई का पूर्ण सम्बन्ध तभी होता है जब कि इन दोनों रूपों को मिलाकर शासनकार्य किया जाय]

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
८४९—कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।
१ २ ३ १ २
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥ ॥ ६(ब) ॥

परमेश्वर के (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण--दोनों रूप (कवी) कवि हैं, इन दोनों रूपों का वर्णन वेदकाव्य में हुआ है। अतः इन दोनों रूपों का सम्बन्ध परमेश्वर की कवित्व शक्ति के साथ है। अतः परमेश्वर के ये दोनों रूप (नः) हम प्रजाजनों में (दक्षम्) बल, बुद्धि, चातुर्य और (अपसम्) सत्कर्म (दधाते) स्थापित करते हैं। परमेश्वर के शासनकर्म में इन दोनों रूपों की (तुविजाता) बहुत प्रसिद्धि है, परमेश्वर के शासन में इन दोनों रूपों का (उरुक्षया) सर्वत्र निवास है।

[धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त ७

१ २ ३ १ २र ३ १ २र
८५०—इन्द्रेथ सँ हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
३ १ २ ३ १ २
मन्दू समानवर्चसा ।। १ ।।

सच्चा बल और सच्ची कर्मशक्ति को प्राप्त करके (८४९) हे उपासक ! तू (अबिभ्युषा) निर्भय (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (संजग्मानः) संगति को प्राप्त हुआ, (हि) निश्चय से, (संदृक्षसे) अच्छा दृष्टिगोचर होता है। संगति प्राप्त हो जाने पर तुम दोनों अर्थात् तू और परमेश्वर (मन्दू) समान रूप से आनन्दयुक्त हो जाते हो, और (समान वर्चसा) समान कान्ति-वाले हो जाते हो।

[मन्त्र में जीवन्मुक्त का वर्णन है]

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८५१—आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
दधाना नाम यज्ञियम् ।। २ ।।

(आत्) इसके पश्चात् अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात्, (स्वधाम् अनु) स्वात्मनिहित-संचितसंस्कारों के अनुसार, मुक्तात्मा (पुनः) फिर (गर्भत्वम्) मातृ-गर्भ को (एरिरे) प्राप्त होते हैं, और (यज्ञियं नाम) नामकरण-यज्ञ से प्राप्त नये नामों को (दधानाः) धारण करते हैं,—(अह) यह निश्चित है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८५२—वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अविन्द उस्रिया अनु ।। ३ ।। ।। ७(ति) ।।

(इन्द्र) इन्द्रियों के प्रेरक हे जीवात्मन् ! (वीडुचित् आरुजत्नुभिः) बद्धमूल अविद्या का भी भेदन करने वाले, (वह्निभिः) अग्निसमान, कुसंस्कारों को, भस्मीभूत कर देने वाले योगि-गुरुओं की सहायता से, तू ने, (गुहा) हृदय-गुहा में विद्यमान (चित्) चेतन स्वरूप परमेश्वर की (उस्रियाः) प्रकाशमयी किरणों को (अनु, अविन्दः) प्राप्त कर लिया है।

[धा० १४ । उ० १ । स्व० ३]

सूक्त ८

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
८५३—ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
३ १ २र
इन्द्राग्नी न मर्धतः ।। १ ।।

(इन्द्राग्नी) इन्द्र अर्थात् परमेश्वर और अग्नि अर्थात् जीवात्मा (८४४) (न मर्धतः) नहीं विनष्ट होते। (ता हुवे) इन दोनों का मैं, अपने जीवन में, आह्वान करता हूं, (ययोः) जिन इन दो के कारण (इदं विश्वम्) यह विश्व (पुरा) पहिले (कृतम्) उत्पन्न हुआ था, और (पप्ने) पनप रहा है।

[मर्धतः=मर्द्धतिः वधकर्मा (निघं० २।१६)। जगत् उत्पन्न हुआ है जीवात्माओं के भोग तथा मोक्ष के लिए, इसलिए जगत् की उत्पत्ति में जीवात्मा भी कारण है, तथा कर्तृत्व दृष्टि से परमात्मा भी]

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८५४—उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे।
१ २ ३ १ २
ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) परमेश्वर और जीवात्मा (मृधः) विनाशकारी आसुर-शक्तियों का (विघनिना) हनन करते हैं, जबकि ये (उग्रा) उग्ररूप धारण कर लेते हैं, (हवामहे) जीवन में इन दोनों शक्तियों का हम आह्वानं करते हैं। (ईदृशे) ऐसा आह्वान होने पर (ता) वे दो शक्तियां (नः मृडातः) हमें सुखी रखती हैं।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
८५५—हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती।
१ २७ ३ २ ३ १ २
हथो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ ॥ ८(पी) ॥

हे दोनों शक्तियो! तुम दोनों (वृत्राणि) मिल कर पाप-वृत्रों का (हथः) हनन करती हो। तुम दोनों (आर्या=आर्यो) अधीश्वरी शक्तियां हो। (दासानि) उपक्षयकारी पापों का (हथः) हनन करते हो। (सत्पती) तुम दोनों सच्चे-रक्षक हो। तुम दोनों (द्विषः विश्वा) द्वेष आदि सभी दुर्भावनाओं को (अप हथः) दूर करते और विनष्ट करते हो। [आर्या=अरिः ईश्वरः (निरु०५।२।७); आर्यः=ईश्वर-पुत्रः (निरु० ६।५।२६)]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥ [धा० १० । उ० १ । स्व० ४]

सूक्त ६

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
८५६—अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ १ ॥

(सोमासः) भक्तिरस वाले, (मनीषिणः) मनों का संयम करने वाले, (मत्सरासः) हर्षोल्लास के सरोवर, (मदच्युतः) अन्यों पर हर्षोल्लास की वर्षा करने वाले (आयवः) उपासक-जन,—(समुद्रस्य) हृदय-समुद्र की (विष्टपे अधि)

शोक-सन्ताप शून्य गहराई में, (मदचम्) हर्षोल्लास उत्पादक (मदम्) आनन्दरस को (अभि पवन्ते) बहाते हैं। [आयवः=मनुष्य नाम (निघं० २।३)]

१२ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
८५७—तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत्॥ २॥

(बृहत् ऋतम्) बृहत्सत्य का मूर्त्तरुप, (देवः) प्रकाशमान, (राजा) देह-पुरी का राजा अर्थात् उपासक,—(ऊर्मिणा) भक्तिरस की लहरों द्वारा (पवमानः) औरों को पवित्र करता हुआ, (मित्रस्य वरुणस्य) स्नेही तथा पापनिवारक परमेश्वर के दर्शाए (धर्मणा) धर्म के अनुसार (बृहत्-ऋतम्) वृहत्सत्य को (हिन्वानः) बढ़ाता हुआ, (समुद्रम् तरत्) हृदय-समुद्र को तैर कर, (प्र अर्ष) मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। [जीवात्मा हैं हृदयवासी। "हृदय-समुद्र तैर जाना",—इसका अभिप्राय है "हृदय-समुद्र को छोड़ जाना", अर्थात् मृत्यु के पश्चात् जीवन्मुक्त का मोक्ष पा लेना]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र
८५८—नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रयः
॥ ३ ॥ ॥ ९(घु) ॥

जो उपासक,—(नृभिः) उपासक-नेताओं द्वारा (येमाणः) अपने आपको यमनियमों में नियन्त्रित करता रहा है, (हर्यतः) अतः जो कान्ति-सम्पन्न हो गया है, (विचक्षणः) जो सत्यासत्य का विवेकी है, (राजा) देह-पुरी का राजा बन गया है, (देवः) और दिव्यप्रकाश से सम्पन्न हो गया है, (समुद्रयः) जो हृदय-समुद्र का वासी था,—वह अब हृदय-समुद्र को तैर कर, मोक्ष प्राप्त कर चुका है (८५७)

[धा० १५। उ० नास्ति। स्व० ५]

सूक्त १०

३ १ २र ३ १ ३ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
८५९—तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः
॥ १ ॥

(वह्निः) अग्नि के सदृश ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित उपासक, (तिस्रः वाचः) ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन करने वाली, पद्य, गद्य और गीतिमयी वेद-की-तीन-वाणियों को (प्र ईरयति) प्रचारित करता है, और (ऋतस्य) सत्य की (धीतिम्) धारणा का तथा (ब्रह्मणः मनीषाम्) ब्राह्मी-अभिलाषा का प्रचार करता है। (गावः) जैसे गौएँ (गोपतिम्) अपने गोस्वामी की शरण में (यन्ति) जाती हैं वैसे (मतयः) मननशील उपासक, (पृच्छमानाः) परस्पर रहस्य-ज्ञान को

पूछते हुए, (वावशानाः) और उस को उपदेश देते हुए, (सोमम्) उत्पादक प्रभु को (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८६०—सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सोमः सुत ऋच्यते पवमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ २ ॥

(धनेवः) ज्ञान-दुग्ध पिलाने वाली (गावः) वेदवाणियां, (सोमम् वावशानाः) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर की कामना करती हैं। (विप्राः) मेधावी उपासक (मतिभिः) अपनी-अपनी मतियों के अनुसार (सोमम् पृच्छमानाः) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न करते रहते हैं, पूछ-ताछ करते रहते हैं। (सोमः) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर (पूयमानः) जब विशुद्ध रूप में (सुतः) साक्षात् प्रकट हो जाता है, तब वह (ऋच्यते) ऋचाओं द्वारा स्तुत होता है। (अर्काः) वेदमन्त्र,—जो कि (त्रिष्टुभः) त्रिविधरूप में परमेश्वर की स्तुतियां करते हैं,—(सोमे) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर में आश्रय पाये हुए,—उसी की (सं नवन्ते) सम्यक्-स्तुतियां कर रहे हैं।

[अर्कः=मन्त्रः। "अर्कः मन्त्रो भवति, यदनेनार्चन्ति" (निरु० ५।१।४)। त्रिष्टुभः=तीन प्रकार से स्तुतियां करने वाले। वेदों के अर्थ त्रिविध होते हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। त्रिविध अर्थों में, साक्षात् तथा परम्परया, परमेश्वर की ही स्तुति होती है]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८६१—एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ३ ॥ ॥ १०(पी) ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक प्रभो! (परिषिच्यमानः) हमारे भक्तिरसों से पूर्णतया सींचे गए आप (पूयमानः) विशुद्धरूप में प्रकट होकर, (नः) हमारे प्रति (स्वस्ति) कल्याण (आ पवस्व) प्रवाहित कीजिए; और (बृहता मदेन) महान् आनन्द के साथ (इन्द्रम्) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा में (आ विश) प्रवेश कीजिये, उसकी (वाचम्) वक्तृत्वशक्ति को या उसके स्तुतिवचनों को (वर्धय) बढ़ाइये, और (पुरंधिम्) उसमें बहुविध ज्ञान (जनय) प्रकट कीजिए।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥१३॥ [धा० ३० । उ० १ । स्व० ४]

सूक्त ११

१ २र २ ३ ३ १ २र ३
८६२—यद्याव इन्द्र ते शतँ शतं भूमीरुत स्युः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रँ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परम-ऐश्वर्यवान् (वज्रिन्) न्यायवज्रधारी प्रभो! (यद्) यदि (शतम्) सैकड़ों (द्यावः) द्युलोक हों, (उत) और (शतम्) सैकड़ों (भूमीः) भूमियां (स्युः) हों, और साथ ही चाहे (सहस्रं सूर्याः) हजारों सूर्य हों, तब भी ये सब (ते) आपकी (न, अनु, अष्ट) व्याप्ति की समीपता तक नहीं पहुँच सकते। (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक, तथा (आतम्) उत्पन्न समग्र ब्रह्माण्ड मिलकर भी (त्वा, न, अनु, अष्ट) आप की व्याप्ति की समीपता तक नहीं पहुँच सकते।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

८६३—आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः

॥ २ ॥ ॥ ११(ली) ॥

(वृषन्) हे सुखों की वर्षा करने वाले! (शविष्ठ) तथा सर्वाधिक बली प्रभो! आप ने (महिना) अपने बड़प्पन और (शवसा) बल के कारण (विश्वा वृष्ण्या) समग्र शक्तिशाली लोक-लोकान्तरों को (आ पप्राथ) सर्वत्र फैलाया है। (मघवन्) हे सकल ऐश्वर्यों वाले! (वज्रिन्) हे न्यायवज्रधारी! (गोमति व्रजे) इन्द्रियरूपी-गौओं की गोशाला में, अर्थात् शरीर में, (चित्राभिः ऊतिभिः) अपनी अद्भुत रक्षाओं द्वारा (अस्मां अव) हमारी रक्षा कीजिये।

[धा० १९। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त १२

३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २

८६४—वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

(वृत्रहन्) हे पापनाशक परमेश्वर! (पवित्रस्य) पवित्र देश के (प्रस्रवणेषु) झरनों में प्रवाहित (आपो न) जलों के सदृश (वृक्तबर्हिषः) विशुद्ध-हृदयों वाले, (सुतावन्तः) सन्तानों समेत (वयं स्तोतारः) सम उपासक, (त्वा) आप को लक्ष्य करके, (परि आसते) उपासना में सब ओर आसन जमाए बैठे हैं। [वृक्त=cleaned, cleared. purified (आपटे), वृजी वर्जने, अर्थात् पाप-वर्जित। बर्हिः=हृदयान्तरिक्ष। बर्हिः=अन्तरिक्ष (निघं० १।३)।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

८६५—स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

कदा सुतं तृषाण ओक आ गमदिन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥

(वसो) हे विश्ववासी! (सुते) भक्तिरस के प्रकट हो जाने पर, (निरेके) और चित्तों के सांसारिक वासनाओं से रिक्त हो जाने पर, शून्य हो जाने पर,

(उक्थिनः) वैदिक सूक्तों द्वारा स्तुति करने वाले (नरः) उपासक-नेता, (त्वा) आपके प्रति (स्वरन्ति) कहते हैं कि (इन्द्र) हे परमेश्वर! (सुतं तृषाणः) उत्पन्न भक्तिरस के प्यासे आप, (कदा) कब (ओके) उपासक के हृदय-गृह में (आगमः) आयेंगे, (इव) जैसे कि (वंसगः) उत्तम चाल वाला बैल, (तृषाणः) पिपासा-कुल हुआ-हुआ (स्वब्दी) अपने शब्द करता हुआ, गर्जता हुआ (सुतम्) प्रवाहित जलाशय की ओर आता है। [निरेके=नि+रिक्त। स्वब्दी=स्व+वदी]

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

८६६—कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्।

३ १ २ ३ १ २र

पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥ १२(छा)॥

(धृष्णो) हे पापधर्षक परमेश्वर ! (धृषत्) आपने हमारे पापों का धर्षण किया है। आप पापों के (सहस्रिणम्) हजारों (वाजम्) बालों को (आ दर्षि) पूर्णतया विदीर्ण कर देते हैं। (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली (विचर्षणे) विश्वद्रष्टा परमेश्वर ! (कण्वेभिः) मेधावी उपासकों द्वारा चाहे गए, (गोमन्तम्) प्रशस्त इन्द्रियों समेत (पिशङ्गरूपम्) सूर्यसदृश तेज, (मक्षू) शीघ्र (ईमहे) हम मांगते हैं, अर्थात् जैसे सूर्य अपने तेज द्वारा अन्धकार का नाश करता है, वैसे हम भी सबके अज्ञानान्धकारों का विनाश कर सकें।

[वा० २७। उ० २। स्व० २]

सूक्त १३

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

८६७—तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ १ ॥

(तरणिः) तारने वाला परमेश्वर (इत्) ही, (युजा) योगयुक्त (पुरन्ध्या) बुद्धि के प्रदान द्वारा, (वाजम्) शक्ति (सिषासति) के प्रदान की इच्छा करता है। हे उपासको ! मैं तुम्हारा योगगुरु, (पुरुहूतम्) बहुत नामों द्वारा स्तुत हुए (इन्द्रम्) परमेश्वर को, (गिरा) वेदवाणियों की प्रार्थनाओं द्वारा, (वः) तुम्हारे प्रति (आ नमे) झुकाता हूं, और उसे (सुद्रुवम्) तुम्हारी सहायता के लिए शीघ्र गति वाला करता हूं, (इव) जैसे कि (तष्टा) बढ़ई, रथ के पहिये पर (नेमिम्) हाल को चढ़ा कर, रथ को (सुद्रुवम्) शीघ्र गतिवाला कर देता है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

८६८—न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

सुशक्तिरिन्मघवं तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि

॥ १३ ॥॥ १२(धि) ॥

(द्रविणोदेषु) धनदाताओं के सम्बन्ध में [की गई स्तुति] (न शस्यते) प्रशस्तकर्म नहीं है, (दुष्टुतिः) वह स्तुति दुःस्तुति है, [अर्थात् स्तुति तो केवल परमेश्वर की होनी चाहिए जो कि धनिकों को धन दे रहा हूं] ! (स्रेधन्तम्) धनमद से अत्याचार करने वाले को (रयिः) वास्तविक-धन अर्थात् मोक्ष (न नशत्) नहीं प्राप्त होता। (मघवन्) हे सम्पत्तिशाली परमेश्वर ! (सुशक्तिः) उत्तमशक्तियों को पाकर मैं, उन शक्तियों का प्रयोग, (तुभ्यम्) आप की प्रसन्नता के लिए (इत्) ही करता हूं। (मावते) मेरे सदृश उपासक के लिए आप, वह (देष्णम्) धन प्रदान कीजिये, (यत्) जो कि (पार्ये) भवसागर से भी परे विद्यमान (दिवि) आप के दिव्यस्वरूप में सदा स्थित है, अर्थात् मोक्षधन, अनासक्ति, परोपकार आदि।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त १४

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८६९—तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।
१ २ ३ १ २
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ १ ॥

जब (हरिः) मनोहारी प्रभु (कनिक्रदत्) उपासक का आह्वान करता हुआ (एति) उपासक में प्रकट हो जाता है, तब भक्तिरस में लीन उपासक के मुख से (तिस्रः) तीनों (वाचः) वेदवाणियां, परमेश्वर की स्तुति के निमित्त, स्वभावतः (उदीरते) उच्चरित हो उठती हैं, जैसे कि बछड़ों को देखकर (धेनवः) दुधार (गावः) गौएं (मिमन्ति) हम्भार उठती हैं। [तिस्रः वाचः=गद्य, पद्य और गीतिमयी वेदवाणियां]

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८७०—अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः।
३ १ २ ३ १ २र
मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥ २ ॥

(ब्राह्मीः) ब्रह्म द्वारा प्रोक्त तीन (८६९) (यह्वीः) वैदिक महावाणियां, (ऋतस्य) सत्यधर्म की (मातरः) जन्मदात्री हैं। ये (मर्जयन्तीः) उपासकों को शुद्ध करती हैं, और (शिशुम्) अपनी शैशवावस्था में प्रकट हुए (दिवः) द्युतिसम्पन्न परमेश्वर की (अनूषत) स्तुतियां करती हैं।

[शिशुम्=परमेश्वर के प्रथम-प्रकट प्रकाश को शैशवावस्था का प्रकाश कहा है]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८७१—रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
१ २ ३ १ २
आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥ ॥ १४(टा) ॥

(रायः) ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान,—इन चार सम्पत्तियों के जो (चतुरः) चार (समुद्रान्) समुद्र हैं, चार वेद हैं, (सहस्रिणः) जिनमें कि हजारों मन्त्र हैं, उन्हें, (सोम) हे सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (विश्वतः) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमें (आ पवस्व) प्राप्त कराइये।

[घा० १८ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त १५

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८७२—सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ १ ॥

(मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर, (मन्दिनः) तृप्तिदायक (सोमाः) प्रशान्त भक्तिरस, (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति (सुतासः) प्रकट हुए हैं। (पवित्रवन्तः) पवित्र हृदयों से प्रकट होकर, ये (अक्षरन्) परमेश्वर के प्रति प्रवाहित हुये हैं। हे उपासको ! (वः) तुम्हारे (मदाः) तृप्तिकारक भक्तिरस, (देवान्) तुम्हारी इन्द्रियों को भी (गच्छन्तु) प्राप्त हों, ताकि तुम्हारी इन्द्रियां विषयों की ओर न जा कर सदा तृप्त रहें।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८७३—इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥ २ ॥

(इन्दुः) चन्द्रसमशीतल भक्तिरस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए ही (पवते) प्रवाहित होता है,—(इति) यह (देवासः) देवकोटि के उपासकों ने (अब्रुवन्) कहा है। तथा (वाचस्पतिः) वेदवाणियों का पति ही (मखस्यते) वेदवाणियों द्वारा यज्ञों में पूजा जाता है, और वही (विश्वस्य ओजसः) सब ओजों का (ईशानः) अधीश्वर है,—यह भी देवकोटि के उपासकों ने कहा है।

३ १ २ ३ १ २ ३ २
८७४—सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ३ ॥ ॥१५(लि) ॥

(समुद्रः) जैसे पार्थिव समुद्र (सहस्रधारः) हजारों नदी-धाराओं का स्वामी है, वैसे परमेश्वर वेदों की हजारों वाणियों का स्वामी है। इसी ने (वाचम्) वेद-वाणी को (ईङ्खयः) प्रेरित किया है। (पवते) जैसे पार्थिव-समुद्र मेघादि द्वारा जल देकर पृथिवी को (पवते) शुद्ध-पवित्र करता है, वैसे परमेश्वर वेदवाणी द्वारा पवित्र करता है। (सोमः) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर (रयीणाम्) प्राकृ-

तिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का (पतिः) स्वामी है, (दिवेदिवे)सदा (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (सखा) साथी है। [धारा=वाक् (निघं० १।११)]

[धा० २९। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त १६

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
८७५—पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥२॥

(ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्माण्ड-और-वेद के स्वामी! (ते) आपका (पवित्रम्) ब्रह्माण्ड-तथा-वेद [वैदिक-ज्ञान] (विततम्) फैला हुआ है। (प्रभुः) आप उनके स्वामी हैं। (गात्राणि) उपासकों के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में तथा ब्रह्माण्ड के अवयव-प्रत्यवयव में आप (विश्वतः) पूर्णरूप में (पर्येषि) व्याप्त हैं। (अतप्ततनूः) जिसने अपने आपको तपश्चर्या द्वारा नहीं तपाया, नहीं परिपक्व किया, (आमः) वह कच्चा है, अपरिपक्व है, वह (तद्) उस आप ब्रह्म को (न अश्नुते) नहीं पाता। (शृतास-इत्) परिपक्व-उपासक ही, (वहन्तः) अपने शरीर-रथों में आपका वहन करते हुए, (तत्) उस आपको (सम् आशत) सम्यक्रूप में प्राप्त करते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
८७६—तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥२॥

(तपोः) तपस्वी-उपासक को (पवित्रम्) पवित्र करने वाला परमेश्वर (दिवस्पदे) द्युलोक के सभी स्थानों में (विततम्) फैला हुआ है। (अस्य) इस परमेश्वर के (अर्चन्तः तन्तवः) प्रदीप्त-फैलाव अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि (व्यवस्थिरन्) व्यवस्था में स्थित हैं। (अस्य) इस परमेश्वर की (आशवः) सर्वत्र फैली हुई शक्तियां, (पवितारम्) अपने आपको पवित्र करने वाले उपासक की (अवन्ति) सदा रक्षा करती हैं। तदनन्तर उपासक (तेजसा) तेज से सम्पन्न होकर (दिवः पृष्ठम्) द्युलोक की पीठ पर (अधिरोहन्ति) आरोहण कर लेते हैं, या मस्तिष्क की पीठ पर योगध्यान द्वारा आरूढ़ हो जाते हैं, अर्थात् सहस्रार-चक्र में जा स्थित होते हैं [आशवः=अशूङ् व्याप्तौ]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८७७—अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥२॥॥ १६(टु)॥

(अग्रियः) सर्वमुख्य (पृश्निः) आदित्य सदृश स्वप्रकाशी परमेश्वर ने, (उषसः) आध्यात्मिक आरम्भिक-प्रज्ञालोकों को, तथा प्राकृतिक-उषाओं को (अरूरुचत्) चमकाया है। (उक्षाः) ज्ञान-रस सींचने वाले ने (मिमेति) मानुष-सृष्टि के प्रारम्भ में वैदिक-नाद किया है। (भुवनेषु वाजयुः) भुवनों में यही परमेश्वर शक्ति प्रदान कर रहा है। (अस्य) इसकी दी (मायया) प्रज्ञा द्वारा, योगी-जन तथा अन्य विद्वान् (मायिनः) प्रज्ञा वाले (ममिरे) बनते हैं। (नृचक्षसः) सब नर-नारियों की समुन्नति की दृष्टि वाले, (पितरः) तथा सबकी रक्षा करने वाले योगी जन, इस परमात्मा को, मानो (गर्भम्) गर्भरूप में अपने हृदयों तथा मनों में (आ दधुः) धारण करते हैं।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [धा० ३८। उ० १। स्व० ५]

सूक्त १७

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

८७८—प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।

३ १ २ ३ १ २

उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

(उप स्तुतासः) हे उपासना-विधि द्वारा स्तुति करने वालो ! (मंहिष्ठाय) महादानी, (ऋताव्ने) नियमों और विधियों के विधाता, (बृहते) महान्, तथा (शुक्र शोचिषे) निर्मल प्रकाश वाले, (अग्नये) जगन्नेता के लिये (प्र गायत) खूब साम गान किया करो।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

८७९—आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत्

॥ २ ॥ ॥ १७(या) ॥

(मघवा) ऐश्वर्यवान् तथा (द्युम्नी) यशस्वी परमेश्वर (आहुतः) उपासकों की आत्मसमर्पण की आहुतियां पाकर, (समिद्धः) उनके प्रति प्रकाशित होकर उन्हें (वीरवद् यशः) धर्मवीरों का यश (आ वंसते) प्रदान करता है। (अस्य) इस परमेश्वर की (सुमतिः) अनुग्रह-बुद्धि (कुवित्) वार-वार (नः) हम उपासकों को (भवीयसी) प्राप्त होती है, और परमेश्वर (वाजेभिः) शक्तियों का उपहार लेकर (अच्छा) उपासकों के समक्ष (आ गमत्) आता है।

[धा० १७। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त १८

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

८८०—तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्।

३ १ २ ३ १ २

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (ते) आपकी (तम्) उस (मदम्) प्रसन्नता की (गृणीमसि) हम प्रशंसा करते हैं, जिससे कि आप (वृषणम्) आनन्दरस की वर्षा करते हैं, तथा (अद्रिवः) हे मेघों के स्वामी ! (पृक्षु) अन्न की खेतियों पर वर्षा करते हैं, और हमारे पापों का (सासहिम्) पराभव करते हैं और (लोककत्नुम्) लोक-लोकान्तरों की रचना करते हैं। आप की प्रसन्नता (उ) वह है जो कि (हरिश्रियम्) प्रत्याहार आदि साधनों से सम्पन्न उपासकों का एक मात्र आश्रय है।

[पृक्षः=अन्न (निघं० २।७)]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८८१—येन ज्योतीँष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
३ २ ३ २ ३ २ १ १ २
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

भक्तिरस के पान से उत्पन्न (येन) जिस (मदेन ८८०) मस्ती के कारण हे परमेश्वर ! आपने (मनवे) मननाभ्यासी (आयवे) उपासकजन को (ज्योतींषि) ज्ञान-ज्योतियां (विवेदिथ) दी हैं, इसी मस्ती से (मन्दान.) प्रसन्न होकर, मेरे (अस्य) इस (बर्हिषः) उपासना-यज्ञ में आप (वि राजसि) विराजमान हूजिये।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
८८२—तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥ ॥ १८(ह) ॥

(उक्थिनः) वैदिक सूक्तों द्वारा आप की स्तुति करने वाले उपासक, (पूर्वथा) पूर्वकालों की तरह (अद्यचित्) आज भी (ते) आपकी (अनुष्टुवन्ति) निरन्तर स्तुतियाँ करते हैं। आप (दिवेदिवे) प्रतिदिन हम उपासकों के (अपः) कर्मों पर (जय) विजय पाये हुए हैं, जो कर्म कि (वृषपत्नीः) आप आनन्दरसवर्षी द्वारा सुरक्षा पाये हुये हैं। अर्थात् उपासकों के कर्म आपकी इच्छा के अधीन हो चुके हैं। [वृष+पत्नी (पा रक्षणे)]

[धा० २१ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १९

३ १ २र २ २उ ३ १ २ ३ १ २
८८३—श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (तिरश्च्याः) हृदय में प्राप्त हुए आपकी, या हृदय में अन्तर्हित हुए आप की पूजा करने वाले उपासक की, (हवम्) पुकार को (श्रुधि) आप सुनिये, तथा (यः) जो उपासक (त्वा) आप की (सपर्यति) परिचर्या करता है, उसकी पुकार को आप सुनिये। आप उसे ऐसी (रायः) सम्पत्ति से (पूर्धि) भर-

पूर कर दीजिये जिससे उसमें अपने कर्त्तव्यपालन में (सुवीर्यस्य) उत्तम-वीरता का संचार हो, और उसकी (गोमतः) इन्द्रियां प्रशस्त हो जायं। (महान्) आप महान् (असि) हैं।

[तिरश्ची = तिरः अञ्चति। तिरः = प्राप्तस्य (निरु० ३।४।२०)। तथा तिरः = अन्तर्हित, तथा, अञ्चु (गतिपूजनयो)]

१२ ३ १२ ३१२३१ २र
८८४—यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत्।
३ २ ३ १२ ३२३१ २ ३ १२
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्॥ २॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (यः) जो उपासक, (ते) आपके लिये (नवीयसीम्) सदा नवीन और (मन्द्राम्) आनन्ददायक (गिरम्) वेदवाणी को स्तुतिरूप में (अजीजनत्) प्रकट करता है, उसे (चिकित्वन्) हे यथार्थज्ञानी परमेश्वर! आप (मनसम्)) मननशक्ति, तथा (प्रत्नाम्) सनातनी (ऋतस्य पिप्युषीम्) और सच्चाई से भरी (धियम्) प्रज्ञा प्रदान करते हैं।

१२ ३ २उ ३ १२३ १२ ३२
८८५—तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः।
३१ २३ २ ३ १२
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे॥ ३॥॥ १६(फा)॥

(तम् उ इन्द्रम्) उस ही परमेश्वर की (ष्टवाम) हम स्तुतियां करते हैं, (यम्) जिसका कि वर्णन (गिरः उक्थानि) वैदिक-वाणियाँ तथा वैदिक-सूक्त (वावृधुः) बढ़-बढ़कर कर रहे हैं। (अस्य) इस परमेश्वर के (पुरूणि) नानाविध (पौंस्या) पुरुषार्थों का (सिषासन्तः) ज्ञान सबको देते हुये, (वनामहे) हम उपासक परमेश्वर का भजन करते हैं।

॥ इति षष्ठः खण्डः॥ ६॥ [घा० १५। उ० २। स्व० २]

इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः द्वितीयप्रपाठकश्च समाप्तः॥ २॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

★

अथ पञ्चमोऽध्यायः।

[१]

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः॥ ३॥

(१—२२) १ अकृष्टा माषाः; २ अमहीयुराङ्गिरसः; ३ मेध्यातिथिः काण्वः; ४, १२ बृहन्मतिराङ्गिरसः; ५ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ६ सुतंभर आत्रेयः; ७ गृत्समदः शौनकः; ८, २१ गोतमो राहूगणः; ९, १३ वसिष्ठो मैत्रा-

वरुणि:; १० दृढच्युत आगस्त्य:; ११ सप्तर्षय: (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्य:, २ कश्यपो मारीच: ३ गोतमो राहूगण:; ४ अत्रिर्भौम:; ५ विश्वामित्रो गाथिन:, ६ जमदग्नि-र्भार्गव:, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणि) १४ रेभ: काश्यप:; १५ पुरुहन्मा आङ्गिरस:; १६ असित: काश्यपो देवलो वा; १७ (१) शक्तिर्वासिष्ठ:, १७ (२) उरुरांगिरस:; १८ अग्निश्चाक्षुष:; १९ प्रतर्दनो दैवोदासि:; २० प्रयोगो भार्गव:; २१ पावकोऽग्नि-र्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहस: पुत्रावन्यतरो वा; २२, ।। १—५; १०—१२, १६—१९ पवमान: सोम:; ६, २० अग्नि:; ७ मित्रावरुणौ; ८, १३—१५, २१ इन्द्र:; ९ इन्द्राग्नी; २२ ।। १, ६ जगती; २—५, ७—१०, १२; १६, २० गायत्री; ११, १५ प्रगाथ:=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १३ विराट्: १४ (१) अति जगती, १४(२—३) उपरिष्टाद् बृहती; १७ काकुभ: प्रगाथ:=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); १८ उष्णिक् १९ त्रिष्टुप्; २१ अनुष्टुप् ।।

सूक्त १

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३१२३ १२
८८६—प्र त आश्विनी: पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि।
१ २र ३ १२ ३१२ ३१२ ३१२
प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधस:
।। १ ।।

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! जो कि (आश्विनी:) आज-कल की नहीं, अपितु जो सनातन हैं, (धेनव:) तथा जो ज्ञान-दुग्ध पिलाती और (दिव्या:) आप देव द्वारा प्रदत्त हैं, वे वेदवाणियां, (पयसा) अपने ज्ञान-दुग्ध के साथ, (धरीमणि) शरीर-धारक-हृदय में (असृग्रन्) प्रकट हुई हैं। (ऋषिषाण) हे ऋषियों द्वारा भजे गये परमेश्वर ! (ये) जो ऋषि कि (वेधस:) अपनी आत्माओं को शर [वाण] बना कर आपको वेधते हैं, और जो (त्वा) आप को (मृजन्ति) मार्जनविधि द्वारा विशुद्धरूप में प्रकट कर लेते हैं। (ते) वे ऋषि (अन्तरिक्षात्) अपने हृदयाकाशों से, (स्थाविरी:) सदा स्थिर रहने वाली वेदवाणियों का (प्र असृक्षत) साक्षात् कर लेते हैं।

[आश्विनी:=अ+श्व: (कल)। वेधस:=प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् (मुण्डक २, खं०२)]

३ २३ १२ ३ १२ ३१२ ३१ २र ३१२
८८७— उभयत: पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सत: परि यन्ति केतव:।
१२ ३२३ १२ ३२३२३ २३ १ २र ३१२
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरि: सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति
।। २ ।।

(उभयत:) सांसारिक-और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवनों को (पवमानस्य) पवित्र करने वाले, तथा (ध्रुवस्य सत:) ध्रुव-सत्ता वाले परमेश्वर की (केतव: रश्मय:) ज्ञानप्रद वैदिक-रश्मियां, (परि यन्ति) उपासकों के हृदयों में व्याप्त हो जाती हैं। (यद् ई) जब (हरि:) अविद्या का हरण करने वाला परमेश्वर, (पवित्रे अधि) पवित्र-हृदयों में, (मृज्यते) मार्जनविधि द्वारा स्वच्छन्दरूप में अर्थात्

प्रत्यक्ष रूप में प्रकट कर लिया जाता है, तब परमेश्वर की (सत्ता) स्थिति, (योनौ) हृदय-गृह में हो जाती है, और तब परमेश्वर (कलशेषु) उपासक के पांचों कोशों में (नि सीदति) स्थित हो जाता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
८८८—विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति
३ १ २
केतवः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि
॥ ३ ॥ ॥ १(वी)॥

(विश्वचक्षः) हे विश्वद्रष्टा ! (ते सतः प्रभोः) आप सत्स्वरूप प्रभु के, (ऋभ्वसः) बहुप्रकाशी (केतवः) ज्ञापक-चिह्न, (विश्वा धामानि) सब स्थानों में (परि यन्ति) फैले हुए हैं। (सोम) हे सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक प्रभो ! आप (व्यानशी) सर्वत्र व्याप्त हैं, (धर्मणा) वैदिक धर्म के उपदेशों द्वारा (पवसे) पवित्र करते हैं, (विश्वस्य पतिः) विश्व के स्वामी हैं, (भुवनस्य राजसि) ब्रह्माण्ड के राजा हैं।

[धा० ३५। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त २

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
८८९—पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।
१ २ ३ २ ३ २
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥

(पवमानः) पवित्र करने वाले परमेश्वर ने, (न) जैसे (दिवः) द्युलोक के (तन्यतुम्) फैले हुए (चित्रम्) चित्र-विचित्र नक्षत्र मण्डलों को (अजीजनत्) प्रकट किया है, वैसे उसने, (वैश्वानरं बृहत् ज्योतिः) सर्वहितकारिणी निज-महा-ज्योति को भी हम उपासकों में (अजीजनत्) प्रकट कर दिया है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
८९०—पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः।
२उ ३ १ २
वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥

(पवमान राजन्) पवित्र करने वाले हे ब्रह्माण्ड के राजा !, (मदः) मस्ताना बना देने वाला (तव) आपका (अदुच्छुनः) जो दुःखरहित सुखमय (रसः) आनन्दरस है, वह (अव्यम्) आप द्वारा सुरक्षित ब्रह्माण्ड के (वारम्) घेरों को (वि) विविधरूपों में (अर्षति) व्याप्त कर रहा है।

[अदुच्छुनः=अ+दुः+शुन (सुखम्)]

१२ ३२ ३ २३ १ २ ३२
८६१—पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् ।
२ ३ २ ३क २र ३ २
ज्योतिर्विश्व् स्वर्दृशे ॥ ३ ॥ १(पा) ॥

हे परमेश्वर! (पवमानस्य ते) पवित्र करने वाले आपका (द्युमान्) द्युतिसम्पन्न (रसः) आनन्दरस,—जो कि उपासकों का एकमात्र (दक्षः) बल है,—(वि राजति) वह सर्वत्र विराजमान हैं; (दृशे) आभ्यन्तर-दिव्यदृष्टि के लिये वह (विश्वं ज्योतिः) समग्र-ज्योतिरूप और (विश्वं स्वः) समग्र-सुखरूप है।

[धा २० । उ० १ स्व० २]

सूक्त ३

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १२
८६२—प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
१ २ ३ २उ ३ १२
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥

(भूर्णयः) पृथिवी में नेतृरूप, (अयासः) गतिशील (त्वेषाः) प्रदीप्त (गावः) सूर्य किरणें (न) जैसे (प्र अक्रमुः) पृथिवी की ओर बढ़ती हुई, (कृष्णां त्वचम्) पृथिवी की काली त्वचा अर्थात् अन्धकारमयी रात्रि को (अप घ्नतः) दूर करती हैं, इसी प्रकार (गावः) उपासक-नेता पृथिवी की काली त्वचा अर्थात् अज्ञानमयी अविद्या का विनाश करते हैं।

[गौः=स्तोता (निघं० ३।१६); गौः=रश्मियाँ (निरु० २।२।६)]

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
८६३—सुवितस्य वनामहेति सेतुं दुराय्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३
साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥

(सुवितस्य) सुगति की प्राप्ति के लिए,—(सेतुम्) संसार-नद के सेतु-रूप (दुराय्यम्) दुष्प्राप्य परमेश्वर की (अति वनामहे) हम अति स्तुतियां करते हैं, ताकि उसकी कृपा से, (अव्रतम्) व्रतों से च्युत कर देने वाले (दस्युम्) तथा जीवनों का विनाश करने वाले कामादि का (सासह्याम) हम पराभव कर सकें।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
८६४—शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

वर्षाकाल में जब (दिवि) आकाश में (विद्युतः) बिजुलियां (चरन्ति) विचरती हैं, तब (इव) जैसे (वृष्टेःस्वनः) वृष्टि का शब्द (शृण्वे) सुनाई देता है, वैसे ही (पवमानस्य) पवित्र करने वाले, (शुष्मिणः) शक्तिशाली परमेश्वर का (स्वनः) अन्तर्नाद (शृण्वे) मैं सुन रहा हूं।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
८९५—आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
१ २ ३ १ २
अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥

(इन्दो) जलवत् पवित्र करने वाले हे परमेश्वर, (सोम) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक हे प्रभो ! (गोमत्) प्रशस्त इन्द्रियों सहित, (हिरण्यवत्) सांसारिक-सम्पत्तियों सहित, (अश्ववत्) प्रबल मनों सहित, (वीरवत्) वीर सन्तानों सहित (महीम् इषम्) महाभीष्ट-मोक्ष (आ पवस्व) हमें प्राप्त कराइये ।

[इन्दु=उदक (निघं० १।१२)]

१ २ ३ २ ३ १ २र
८९६—पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

(विश्वचर्षणे) हे विश्वद्रष्टा परमेश्वर ! (पवस्व) आप सबको पवित्र कीजिये, (मही) महान् (रोदसी) द्युलोक-और-भूलोक को (आ पृण) पूर्ण रूप में सुख-सामग्री से भर दीजिए, (न) जैसे कि (उषाः) उषाओं को (सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) अपनी रश्मियों द्वारा भर देता है ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८९७—परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ ॥ ३(भी) ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर ! आप (शर्मयन्त्या) शान्तिप्रद (धारया) आनन्दरस मयी धारा द्वारा, आनन्दरस के प्रवाह द्वारा, (नः) हमें (विश्वतः) सब प्रकार से (विष्टपम्) ताप-संताप से पृथक् कर दीजिए, (इव) जैसे कि (रसा) नदी, नदी-तीरवासियों को, तृष्णा के ताप-संताप से रहित कर देती है ।

[धा० ३५ । उ० ४ । स्व० ४]

॥इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

सूक्त ४

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
८९८—आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥

(बृहन्मते) हे महामति परमेश्वर! आप, (प्रियेण धाम्ना) प्रिय निज-तेजों-समेत, उस उपासक में (आशु:) शीघ्र (परि अर्ष) व्याप्त हो जाते हैं, (यत्र) जिस उपासक में कि (देवाः) दिव्यगुण निवास करते हैं,— (इति) यह (ब्रुवन्) आप वेदों द्वारा उद्घोषित कर रहे हैं।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
८९९—परिकृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
३ २ ३ १ २र
पृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥

हे परमेश्वर! (अनिष्कृतम्) अपवित्र को (परिष्कृण्वन्) पवित्र करते हुए, तथा (जनाय) उपासक जनों के लिए (इषः) उनके अभीष्टों को (यातयन्) प्रयत्न द्वारा सफल करते हुये आप, (दिवः वृष्टिम्) आनन्दरस की दिव्य-वृष्टि (परि स्रव) सर्वत्र कीजिये।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
९००—अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
१ २ ३ १ २र
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ३ ॥

(अयम्) आनन्दरस की वर्षा करने वाला [८९९] यह, (सः) वह परमेश्वर है, (यः) जो कि, (रघुयामा) अपनी धीरी चाल से (पवित्रे) पवित्र उपासक में (आ) आता है, प्रकट होता है; और (सिन्धोः) हृदय समुद्र की (ऊर्मा) भक्ति-रसमयी लहरों में, (दिवः परि) अपने दिव्य स्वरूप से (व्यक्षरत्) आनन्दरस बहा देता है।

३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
९०१—सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
३ १ २ ३ १ २
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ४ ॥

(विचक्षाणः) उपासक की प्रत्येक चेष्टा का निरीक्षण करता हुआ, (विरोचयन्) इस प्रकार उपासक को सबके लिए विशेष-रुचिकर बनाता हुआ परमेश्वर, (त्विषिं आ दधानः) निज तेज को धारण किये हुए, (ओजसा) उपासक के लिये ओज की भेंट लेकर, (पवित्रे) पवित्र उपासक में (सुतः एति) प्रकट हुआ आता है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
९०२—आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

(सुतः) परमेश्वर जब प्रकट हो जाता है तब प्रतीत होने लगता है कि यह परमेश्वर ही (परावतः) दूर के, (अथ उ) और (अर्वावतः) समीप के, लोक-लोकान्तरों को (आ) सर्वत्र (विवासन्) वसा रहा है। (इन्द्राय) इसी परमेश्वर के प्रति (मधु) मधुर भक्तिरस (सिच्यते) सींचा जाता है।

३ १२ ३ १२ ३ १२
९०३—समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥ ॥४(जी)॥

(समीचीनाः) सम्यक् व्यवहारों वाले उपासक, (हरिम्) अविद्या और कष्टों के हर्त्ता परमेश्वर की (अनूषत) स्तुतियां करते हैं, और (अद्रिभिः) अपनी अखण्डित साधनाओं द्वारा (हिन्वन्ति) परमेश्वर को प्रेरित करते हैं, तथा (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति, (पीतये) स्वरक्षा के लिये, (इन्दुम्) चन्द्रसम प्रशान्त भक्तिरस (हिन्वन्ति) भेंट करते हैं।

[पीतये=पीतिः (पा रक्षणे)]

[धा० ३२ । उ० ३ । स्व० ४]

सूक्त ५

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
९०४—हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम्।
३ १ २र ३ १ २
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥

(स्वसारः) बहिनें जैसे अपने भाइयों को (हिन्वन्ति) अपनी ओर प्रेरित करती हैं, और (जामयः) पत्नियां जैसे (पतिम्) अपने-अपने पति को अपनी-अपनी ओर (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं, वैसे ही (महीयुवः) महाशक्ति-परमेश्वर को चाहने वाले, तथा (उस्रयः) किरणों के सदृश विशुद्ध और ज्ञान-प्रकाशों वाले, उपासक,—(सूरम्) सूर्यसम तेजस्वी परन्तु (इन्दुम्) चन्द्रसम शीतल परमेश्वर को, (हिन्वन्ति) अपनी ओर प्रेरित करते हैं, स्वाभिमुख कर लेते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
९०५—पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले ! तथा (रुचा रुचा) नानाविध दीप्तियों द्वारा (देव) प्रकाशमान परमेश्वर ! आप (देवेभ्यः) संसार की दिव्य-कृतियों से (सुतः) प्रकट हो रहे हैं। आप (वसूनि) वास योग्य (विश्वा) सब हृदयों में, (आ विश) आ प्रवेश पाइये।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
६०६—आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
३ १ २ ३ १ २
इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥ ॥ ५(ह)॥

(**पवमान**) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! (**देवेभ्यः**) दिव्य-उपासकों के प्रति, (**इषे**) उनके अभीष्ट-मोक्ष की प्राप्ति के लिये,—आप (**आ पवस्व**) प्रदान कीजिये,—(**सुष्टुतिम्**) वैदिक उत्तम-स्तुतियां, (**वृष्टिम्**) आनन्दरस की वर्षा, (**दुवः**) सेवाभावना, तथा (**संयतम्**) संयम ।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त ६

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
६०७—जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥

(**जनस्य**) समग्रजनों का (**गोपाः**) रक्षक, (**जागृविः**) सदा जागरूक, (**सुदक्षः**) उत्तम बलशाली (**अग्निः**) जगन्नेता परमेश्वर, (**नव्यसे सुविताय**) प्रशंसित कल्याण करने के लिए (**जनिष्ट**) प्रकट हो गया है । (**घृत-प्रतीकः**) घृताहुति द्वारा अभिव्यक्त पार्थिव अग्नि के सदृश (**द्युमत्**) द्युतिमान् तथा (**शुचिः**) पवित्र परमेश्वर, (**दिविस्पृशा**) द्युलोक में स्पर्श किये हुए (**बृहता**) महाप्रकाश के साथ वर्तमान होकर (**भरतेभ्यः**) सब का भरण-पोषण करने वाले उपासकों के प्रति (**विभाति**) विशेष प्रभा में प्रकट होता है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
६०८—त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दं चिछ्श्रियाणं वनेवने ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २ ॥

(**अग्ने**) हे प्रकाश-स्वरूप जगन्नेता ! (**अङ्गिरसः**) प्राणायाम के अभ्यासी उपासक (**त्वाम्**) आप को (**अन्वविन्दन्**) खोज पाते हैं, जो आप (**गुहाहितम्**) हृदय-की-गुफा में सदा निहित हैं। तथा (**वने वने**) वन वन में रहने वाले वानप्रस्थी (**शिश्रियाणम्**) आश्रय रूप आप को (**अन्वविन्दन्**) खोज पाते हैं । अरणियों द्वारा मथ कर प्रकट हुई प्राकृतिक-अग्नि के सदृश आप, ओ३म्-जप के अभ्यासरूपी-मथन द्वारा (**मथ्यमानः**) मथे गये (**सः**) वह आप (**जायसे**) प्रकट होते हैं । (**सहः**) आप सहनशील तथा बलस्वरूप हैं । (**अङ्गिरः**) हे अङ्ग-अङ्ग के रसरूप ! (**महत्**) आप महान्

हैं। प्राणायामाभ्यासी (त्वाम्) आप को (सहसः पुत्रम्) बल से प्रकट हुआ (आहुः) कहते हैं।

[बल का अभिप्राय है—प्राणायाम का बल]

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

९०९—यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रेण देवैः सरथँ स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ॥ ६ (वे) ॥

(यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ के (केतुम्) प्रज्ञापक, (प्रथमम्) सर्वमुख्य, (पुरोहितम्) सबके अग्रसर (अग्निम्) जगन्नेता परमेश्वर को, (नरः) उपासना-यज्ञ के नेता लोग, (त्रिषधस्थे) तीन नाड़ियों अर्थात् इडा-पिंगला-सुषुम्णा की जहां इकट्ठी स्थिति होती है उस आज्ञाचक्र में (समिन्धते) सम्यक्-प्रदीप्त करते हैं। (सः) वह परमेश्वर (इन्द्रेण देवैः) जीवात्मा और इन्द्रियों के साथ (सरथम्) एक ही शरीर-रथ में सदा स्थित है। (सः) वह (बर्हिषि) हृदयाकाश में (नि सीदन्) स्थित हुआ, (यजथाय) उपासना-यज्ञ रचाने के लिए, (होता) उपासक को शक्ति प्रदान करता है, (सुक्रतुः) वह ही उपासना-यज्ञ को उत्तम प्रकार से सिद्ध करता है।

[घा० ३०। उ० नास्तिः। स्व० ७]

सूक्त ७

३ १ २ ३ १ २र

९१०—अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।

२उ ३ १ २ ३ १ २

ममेदिह श्रुतँ हवम् ॥ १ ॥

(मित्रावरुणा) मित्र अर्थात् सहकारीरूप और वरुण अर्थात् पापनिवारकरूप —परमेश्वर के दोनों रूप हैं। (वाम्) इन दोनों रूपों में परमेश्वर के प्रति (अयं सोमः) यह भक्तिरस (सुतः) निष्पन्न हुआ है। ये दोनों रूप (ऋतावृधा) सत्य के वर्धक हैं। इन दोनों रूपों वाला परमेश्वर, (इह) ईस जीवन में (ममहवम्) मेरे आह्वान को (इत्) अवश्य (श्रुतम्) सुने,—ऐसी मेरी प्रार्थना है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

९११—राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे।

३ १ २

सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥

मित्र-और-वरुण-रूप अर्थात् ये दोनों रूप (राजानौ) मिलकर संसार पर राज्य कर रहे हैं, (अनभिद्रुष्टा) ये द्रोह से रहित हैं, (सहस्रस्थूणे) ये हजार खम्भों वाले (ध्रुवे) अचल (उत्तमे) सर्वोच्च (सदसि) स्थान में अर्थात् सहस्रार-चक्र में (आशाते) व्याप्त हो जाते हैं। [संसार में परमेश्वर के मित्ररूप और वरुणरूप का

राज्य है। परमेश्वर सब के साथ स्नेह करता, श्रेष्ठ कर्मियों को सुख प्रदान करता, यह परमेश्वर के मित्ररूप का परिचायक है। दुष्कर्मियों को दण्ड देकर उन्हें दुर्मार्ग से हटा कर सुमार्ग पर लाना,—परमेश्वर के मित्र-रूप तथा पापनिवारक वरुणरूप,—इन दोनों का परिचायक है। दुष्टों को दण्ड देना,—यह परमेश्वर की द्रोह-वृत्ति का परिचायक नहीं। न्यायाधीश दुष्टों को न्यायानुकूल जो दण्डविधान करता है वह न्यायाधीश की द्रोह-वृत्ति का परिणाम नहीं होता। अपितु इस दण्डविधान में दण्डित व्यक्ति के प्रति स्नेह भावना अन्तर्हित रहती है। सहस्रस्थूण-स्थान सहस्रार-चक्र का सूचक है। इसे सहस्रदल कमल भी कहते हैं। यह अन्य सब चक्रों में से सर्वोच्च चक्र है। इसका स्थान मस्तिष्क है। इसके ऊपर कोई अन्य चक्र नहीं। इस चक्र में जब योगी का चित्त ध्रुवरूप में, स्थिर रूप में, स्थित हो जाता है, तब योगी के योग की यह अन्तिमावस्था हो जाती है। योगी तब जीवन्मुक्त हो जाता है तब योगी मित्र और वरुण रूप होकर प्रजोपकार में रत हो जाता है। वह मैत्रीभावना से प्रजाजनों को पापमार्ग से हटाने में यत्नवान् हो जाता है]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
९१२—ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती।
१ २ ३ १ २
सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥ ॥ ७(पि) ॥

परमेश्वर के (ता) वे दोनों रूप (सम्राजा) संसार में सम्यक्-राज्य कर रहे हैं। इन रूपों में मित्ररूप की अभिव्यक्ति तब होती है जब कि व्यक्तियों में (घृतासुती) ब्रह्मचर्य-रूपी-आसव की आदत पड़ी हुई हो। परमेश्वर के ये दोनों रूप (आदित्या) मानो आदित्यस्वरूप हैं, जो कि आदित्य के सदृश संसार में चमक रहे हैं। (दानुनः पती) ये दोनों रूप सुख प्रदान के अधीश्वर हैं, और (अनवह्वरम्) अकुटिलता के साथ इन दोनों रूपों का (सचेते) सम्बन्ध हैं, अर्थात् इन दोनों रूपों के मेल से व्यक्ति कुटिलता आदि दुर्भावनाओं से रहित हो जाता है।

[घृतासुती=घृत (वीर्य)+आसुति (आसव)। यथा,—"रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमा विशन्" (अथर्व० ११।८।२९)! अर्थात् आज्य (घृत) रेतस् हैं, वीर्य है।]

सूक्त ८

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
९१३—इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।
३ १ २ ३ १ २र
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर जो कि (अप्रतिष्कुतः) किसी शक्ति से भी प्रतिरुद्ध नहीं हो सकता, (अस्थभिः) परास्त कर देने वाली अपनी शक्तियों द्वारा, (दधीचः) ध्यानी की (नवती) न वाली, (नव) ९ (वृत्राणि) आवरण डालने वाली पाप-वृत्तियों का (जघान) हनन कर देता है।

[विशेष व्याख्या के लिए देखो मन्त्र संख्या १७९]

३ १ २र ३ २उ ३ १२३१२

९१४—इच्छन्नश्वस्य यच्छिर पर्वतेष्वपश्रितम् ।

१२ ३ १ २

तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥

(अश्वस्य) अश्व का (यत्) जो (शिरः) सिर (पर्वतेषु) पर्वतों में (अपश्रितम्) आश्रित है, उस सिर को (इच्छन्) चाहते हुए उपासक ने, (तत्) उसे (शर्यणावति) शर्यणावत् में (विदत्) प्राप्त किया ।

[अश्व पद द्वारा मन का वर्णन हुआ है। मन शक्तिशाली इसलिये इसे अश्व कहा है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में मन को अश्व से उपमित किया है । यथा:—

प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ (२।९) ।

अश्वस्य शिरः—अश्व अर्थात् मन की शिरोभूत शक्ति है "बुद्धि" । मन को प्रेरणा मिलती है बुद्धि से । "मनसस्तु परा बुद्धिः" (कठ० १।३।१०), अर्थात् मन से उत्कृष्ट शक्ति है "बुद्धि" । उपनिषदों के एक अन्य रूपक में शरीर को रथ, इन्द्रियों को अश्व, मन को प्रग्रह अर्थात् लगाम, और बुद्धि को सारथी कहा है (कठ० १।३।३) । इससे भी यही प्रतीत होता है कि मन की अपेक्षा बुद्धि शिरोभूत है । सारथी के हाथ में लगाम होती है । बुद्धि के हाथ में मनरूपी लगाम है । "बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च" (कठ० १।३।३) । इसलिये अश्व अर्थात् मन का सिर है बुद्धि, जिस द्वारा कि मन में प्रेरणा होती है । सभी प्रेरणाएं सिर से हो रही हैं । बुद्धि द्वारा प्रेरणाएं मिलती हैं इसलिये बुद्धि को मन-का-सिर कहा है ।

पर्वतेषु:—यह बुद्धि सात्विक बुद्धि है, राजसी और तामसी नहीं । इसकी प्राप्ति योगाभ्यास द्वारा होती है । योगाभ्यास के लिये एकान्त और प्रशान्त स्थान चाहिये । इस सात्त्विक बुद्धि अर्थात् सात्विक-धी की प्राप्ति के लिये एकान्त प्रशान्त स्थानों में से पर्वतीय-गुफा आदि अधिक उपयुक्त माने हैं । यथाः—उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ।"

इस मन्त्र में सात्विक-धी अर्थात् सात्विक-बुद्धि की प्राप्ति के लिये "पर्वतीय उपह्वर" का वर्णन है । आपटे ने उपह्वर का अर्थ दिया है "A solitary or lonely place" । परन्तु उपह्वर शब्द में "ह्वर" का अर्थ है कुटिलता, अर्थात् टेड़ा-मेड़ापन । ह्वृ कौटिल्ये । अतः पर्वतों के टेड़े-मेड़े स्थानों का वर्णन "उपह्वर" द्वारा मन्त्र में हुआ है ।

अपाश्रितम्:—अप+आश्रितम् । अर्थात् हट कर आश्रय पाना । सात्विक बुद्धि की प्राप्ति के लिये सांसारिक-धन्धों से हट कर पर्वतीय प्रशान्त स्थानों का आश्रय लेना होता है ।

शर्यणावतिः—पर्वत आदि स्थानों में अभ्यास करते हुए सात्विक-धी या सात्विक.बुद्धि प्राप्त होती है । शर्यणावत् है हृदय । चित्त का स्थान है हृदय । यथाः— "हृदये चित्त संवित्" (योग० ३।३४) अर्थात् हृदय में ध्यान लगाने पर चित्त के स्वरूप का ज्ञान होता है । बुद्धि एक अंश है 'अन्तःकरण' का । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह "अन्तःकरण चतुष्टय" एक स्थानी है । हृदय में इन चारों का स्थान है । वैदिक साहित्य में "शर्यणावत्" को "सरः" अर्थात् तालाब कहा है, यथा"शर्यणावश्च वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्द्धे सरः स्यन्दते" अर्थात् शर्यणावत् तालाब है जोकि कुरुक्षेत्र

के जघनार्ध में बहता है। कुरुक्षेत्र है कर्मक्षेत्र शरीर, जिसमें कि कर्मों के बीज बोये जाते हैं। इसके अर्ध भाग में 'शर्यणावत् सरः' है हृदय, जिसमें कि रक्त सदा प्रस्रवित हो रहा है। यह रक्त-सरः है, रक्त का तालाब है। हृदय की राग-द्वेष की ग्रन्थियां जब विशीर्ण हो जाती हैं तब योगी को मोक्ष मिलता है। विशीर्ण होने के कारण हृदय को शर्यणावत् कहा है। शर्यणा = विशीर्ण होना। विशुद्ध सात्विक बुद्धि-प्रकाश में जब परमेश्वर का दर्शन हो जाता है तब यह हृदय-सरः अर्थात् हृदय-तालाब विशीर्ण हो जाता है। यथा—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ (मुण्ड० २।२)।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
९१५—अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे॥ ३॥ ॥ ८(टी) ॥

(अत्र अह) इस ही (चन्द्रमसो गृहे) चण्द्रमा [मन] के घर [हृदय] में,—योगी जनों ने,—(अमन्वत) माना है, (गौः) इन्द्रियों का (अपीच्यम्) अन्तर्हित होना, तथा (त्वष्टुः) कारीगर परमेश्वर का (अपीच्यम्) अन्तर्हित होना,—(इत्था) यह सत्य है। [इत्था=सत्यनाम (निघं०३।१०)। चन्द्रमसः गृहे—यजुर्वेद में चन्द्रमा को मन का प्रतिनिधि माना है। जैसे शरीर में मन है, वैसे ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा है। "चन्द्रमा मनसो जातः" (यजु० ३१।१२)। अतः आध्यात्मिक-दृष्टि में मन्त्र में "चन्द्रमसः" पद द्वारा मन का ग्रहण किया है। मन का घर है हृदय। यथा—"हृदये चित्तसंवित्" (योग० ३।३४)। अर्थात् "चित्त [मन] का ज्ञान" हृदय में होता है। गोः=गौ का अर्थ है इन्द्रियाँ। उणादि कोष २।६७ की व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि "गौः = पशुः, इन्द्रियं, सुखं, किरणः, वज्रं, चन्द्रमा, भूमिः, वाणी, जलं वा"। "गौ" अर्थात् इन्द्रियों और "चन्द्रमा" अर्थात् मन को जब हृदय में लीन किया जाता है, और "ओ३म्" के जप का अभ्यास किया जाता हैं, तब हृदय में लीन हुए "त्वष्टा" अर्थात् कारीगर परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है, और साथ ही इन्द्रियों पर विजय प्राप्त हो जाता है। यथाः—

त्रिरुन्नहं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥(श्वेता० उप०२।८)
[इस सम्बन्ध में देखो मन्त्र १४७]

इस प्रकार मन्त्र का अभिप्रेत अर्थ है कि "इस ही हृदय में इन्द्रियाँ, ध्यान द्वारा, अन्तर्हित होती हैं, और इसी हृदय में कारीगर परमेश्वर भी अन्तर्हित है,—यह योगीजन मानते हैं। अर्थात् इन्द्रियों को, और मन को, हृदय में अन्तर्हित कर, जब उसी हृदय में अन्तर्हित परमेश्वर का ध्यान ओ३म् के जप द्वारा किया जाता है, तब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है, और इन्द्रियविजय भी होता है।

[धा० १३। उ० २। स्व० ४]

सूक्त ९

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
९१६—इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः।
३ २ ३ १ २
अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि॥ १॥

(इन्द्राग्नी) हे राजन् तथा प्रधानमन्त्रिन् ! (वाम्) तुम दोनों के कार्य-वहन के लिये, (अस्य मन्मनः) इस मन्त्र समूह अर्थात् वेद की (इयम्) यह (पूर्व्य-स्तुतिः) सनातनी-स्तुतिवाणी, परमेश्वर से (अजनि) प्रकट हुई है, (इव) जैसे कि (वृष्टिः) वर्षा (अभ्रात्) मेघ से प्रकट होती है।

सूक्त ९ के मन्त्र १८ में इन्द्राग्नी को नरा=नरौ कहा है। इसलिये इस सूक्त में नर-स्तुति ही समझनी चाहिये। राजा को "इन्द्र" कहा है, वल की दृष्टि से; यथा "सर्वा बलकृतिरिन्द्रस्य (निरु०); तथा प्रधानमन्त्री को "अग्नि" कहा है, इसे ज्ञानाग्नि से सम्पन्न होना चाहिये]

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
९१७—शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः।
३ १ २ ३ १ २
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) हे राजन् ! तथा प्रधानमन्त्रिन्! दोनों (जरितुः) वृद्धप्रजाजनों के (हवम्) कथनों को (शृणुतम्) ध्यानपूर्वक सुना करो, (गिरः) और उनके कथनों का (वनतम्) भक्तिपूर्वक आदर किया करो। (ईशाना) तुम दोनों प्रजाजनों के अधीश्वर हो, (धियः) अपने राज्य में ज्ञानों तथा कर्मों की (पिप्यतम्) वृद्धि करते रहो।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
९१८—मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये।
१ २ ३ २
मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥ ॥ ९(चा) ॥

(नरा) हे राज्य के नेता (इन्द्राग्नी) राजन् ! तथा प्रधानमन्त्रिन् ! (नः) आप हमें (पापत्वाय) पाप के (रीरधतं मा) वशीभूत न होने दें, (अभिशस्तये) हिंसावृत्ति के (मा) वशीभूत न होने दें, (नः) हमें (निदे) निन्दा-वृत्ति के (मा) वशीभूत न होने दें। अर्थात् इन दुष्प्रवृत्तियों से आप हमारी सदा रक्षा कीजिये]
[रध्यतिः वशगमने (निरु० ६।६।३२)]

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥३॥ [धा० १२। उ० १। स्व० २]

सूक्त १०

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९१९—पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवे मदः।

(हरे) अविद्या और कष्टों का हरण करने वाले प्रभो! (पीतये) हमारी रक्षा के लिये, हमें (पवस्व) पवित्र कीजिये। आप (देवेभ्यः) इन्द्रियों के लिये, (वायवे)

प्राणशक्ति के लिये, तथा (मरुद्भ्यः) समग्र मनुष्य जाति के लिये (दक्षसाधनः) उनके बलों और वृद्धियों के साधन हैं।

[मरुत्=मनुष्यजातिः (उणादि १।९४) म० दयानन्द]

२ ३१ २ ३ १ २ ३२र ३ १ २ ३ २
९२०—सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः।
१ २ ३ १ २
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

(वृषा) आनन्दरसवर्षी, (कविः) वेदकाव्यों का कवि, (प्रियः) सर्वप्रिय परमात्मा (योनौ अधि) हृदय गृह में (देवैः) अपने दिव्यप्रकाशों के साथ (सं शोभते) सम्यक् शोभायमान होता है। (पवमानः) यह पवित्र करता है, और (अदाभ्यः) किसी शक्ति द्वारा दबाया नहीं जा सकता।

१ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २
९२१—पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत्।
१ २ ३ २ २र
धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ ॥ १०(ख) ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले प्रभो ! आप (धिया) विवेकप्रज्ञा के प्रदान द्वारा (हितः) हमारा हित करते हैं, और इस निमित्त आप (योनिम् अभि) हमारे हृदय-गृहों को लक्ष्य करके (कनिक्रदत्) हमें बार-बार उपदेश देते हैं। (धर्मणा) आप अपनी धारक-और-पोषक शक्ति द्वारा (वायुम्) हमारे श्वास-प्रश्वासों तथा प्राणों पर (आरुहः) आरूढ़ हो जाइये, उनके स्वामी बन जाइये।

[बा० ११। उ० २। स्व० १]

सूक्त ११

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९२२—तवाह्ँ सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥ १ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक !, (इन्दो) हे शीतल प्रकाशमान प्रभो !, (तव) आपके (सख्ये) सखिभाव में, (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रारण) मैं प्रसन्न रहता हूं। (बभ्रो) हे भरण-पोषण करने वाले ! (पुरूणि) नाना (नि) नीच शक्तियां (चरन्ति) विचर रहीं हैं, उनसे (माम्) मेरी (अव) रक्षा कीजिये। (तान् परिधीन्) जिन नीच शक्तियों ने मुझे घेर रखा है उन्हें (अति) हटा कर, आप (इहि) मेरी सहायता के लिए आइये।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९२३—तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२॥ ॥११(ति)

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक ! (बभ्रो) तथा सब का भरण-पोषण करने वाले प्रभो !, (नक्तम्) रात (उत) और (दिवा) दिन, (ते) आप के स्वरूप रूपी (ऊधनि) ऊधस् [मुहाने udder] में विद्यमान आनन्दरसरूपी दूध का (दुहानः) मैं दोहन कर रहा हूँ । (घृणा) दीप्ति द्वारा (अति तपन्तम्) अति प्रकाशमान (परः सूर्यम्) परम सूर्य आप को, मैं (पप्तिम) मानो उड़ कर पहुँच गया हूँ, (इव) जैसे कि (शकुनाः) पक्षी उड़ कर अपने निवास-स्थान पर पहुँच जाते हैं ।

[धा० १४ । उ० १ । स्व० ३]

सूक्त १२

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
९२४—पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः
३ २ ३ १ २ ३ १ २
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

(पुनानः) जीवन को पवित्र करता हुआ, (विचर्षणिः) विशिष्ट मनुष्यों अर्थात् उपासकों को प्राप्त होने वाला भक्तिरस, (विश्वाः) सब (मृधः) उपासना विरोधी शक्तियों को (अभि अक्रमीत्) साक्षात् पद-दलित कर देता है । ध्यानी उपासक (धीतिभिः) ध्यानवृत्तियों द्वारा, (विप्रम्) जीवन में भरपूर हुए भक्तिरस की (शुम्भन्ति) शोभा बढ़ाते हैं ।

[वि+चर्षणि=मनुष्यनाम (निघं. २।३) । विप्रम्=वि+प्रा (पूरणे)]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
९२५—आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ।
३ १ २र
ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥

(अरुणः) उदय होते हुए सूर्य के सदृश प्रकाशमान (इन्द्रः) परमेश्वर, उपासक के (योनिम्) हृदय-गृह में (आरुहत्) आरोहण करता है, फिर (वृषा) आनन्दरसवर्षी परमेश्वर (सुतम्) उपासक पुत्र को (गमत्) प्राप्त होता है, तदनन्तर परमेश्वर, उपासक के (ध्रुवे) निश्चल (सदसि) हृदय सदन में (सीदतु) ध्रुवरूप में बैठ जाता है ।

[अरुणः—आरोचमानः (निरु० ५।४।२१)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९२६—नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यँ सोम विश्वतः ।

१ २ ३ १ २

आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ ॥ १२(चा) ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक ! (इन्दो) और चन्द्र-सदृश शीतल प्रकाशमान प्रभो! (नः) हमें (नू) शीघ्र, (महाम्) सब से बड़ी, और (सहस्रिणम्) हजारों को सुख पहुँचाने वाली (रयिम्) मोक्षरूपी सम्पत्ति, (विश्वतः) सब प्रकार से, (आ पवस्व) प्रदान कीजिये ।

॥ इति चतुर्थ खण्डः ॥४॥ [धा० १२ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त १३

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९२७—पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा यं ते सुषाव हर्य्यश्वाद्रिः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सोतुर्बाहुभ्याँ सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (सोमम्) भक्तिरस को (पिब) स्वीकार कीजिये, भक्तिरस (त्वा) आप को (मन्दतु) प्रसन्न करे, (यम्) जिस भक्तिरस को उपासक ने (ते) आप की भेंट के लिये (सुषाव) निष्पन्न किया है। (हर्यश्व) हे विषय हारी इन्द्रियाश्वों के स्वामिन् ! (अद्रिः) आप पर्वतवत् कूटस्थ हैं। (सोतुः) अश्व को प्रेरणा देने वाले अश्वारोही की (बाहुभ्याम्) बाहुओं द्वारा (न) जैसे (अर्वा) अश्व (सुयतः) वश में हो जाता है, वैसे आप उपासक की भक्ति द्वारा उपासक के वशवर्ती हो जाते हैं।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९२८—यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हँसि ।

१ २र

स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

(हर्यश्व) विषयहारी इन्द्रियाश्वों के हे स्वामिन् ! (यः) जो (मदः) हर्षकारी तथा तृप्तिदायक, और (चारुः) रुचिकर भक्तिरस (युज्यः अस्ति) आप के ही योग्य है, (येन) जिस भक्तिरस को पा कर आप (वृत्राणि) उपासक के पापों का (हंसि) हनन कर देते हैं, (प्रभूवसो इन्द्र) हे प्रभूत धनी परमेश्वर ! (सः) वह भक्तिरस (त्वाम्) आप को (ममत्तु) प्रसन्न करे।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९२९—बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

३ १ २र ३ १ २

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ १३ ॥ (चा)॥

(मघवन्) हे सम्पत्ति शाली प्रभो ! (इमाम्) इस (वाचम्) मुखोच्चारित (मे) मेरी (सुष्टुतिम्) उत्तम स्तुति, को, आप (सु) अच्छे प्रकार (बोध) जान लीजिये, हृदयङ्गम कर लीजिये, (याम्) जिसे कि (वसिष्ठः) वसिष्ठ (ते) आपके प्रति (आ अर्चति) अर्चना रूप में सर्वथा भेंट कर रहा है। (सधमादे) पारस्परिक प्रसन्नता पैदा करने वाले उपासना यज्ञ में, (ब्रह्म) ब्रह्म प्रतिपादक वैदिक स्तुतियों को, आप (जुषस्व) प्रीति-पूर्वक स्वीकार कीजिये।

[वसिष्ठः="यद्वै नु श्रेष्ठः तेन वसिष्ठः, अथ यद् वस्तृतमो भवति तेनो एव वसिष्ठः" (शत. ८।१।१।६)। अर्थात् जो उपासक श्रेष्ठ है वह वसिष्ठ है, और जो उपासक परमेश्वर में ही वस रहा है वह वसिष्ठ है। सधमादे=उपासना-यज्ञ में उपासक भक्तिरस की भेंट देकर, और परमेश्वर आनन्दरस की भेंट देकर परस्पर प्रसन्न होते हैं]

[धा० १२। उ० १। स्व० २]

सूक्त १४

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९३०—विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

(विश्वाः पृतनाः) काम-क्रोध आदि की सब सेनाओं का (अभिभूतरम्) सर्वथा पराभव करने वाले, (सजूः) सदा उपासक के साथ रहने वाले, (वरे) श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थान-हृदय में बसे हुए, (आमुरीम्) काम-क्रोध आदि को पूर्णतया मार देने वाले, (उत) और (उग्रम्) उग्ररूप, (ओजिष्ठम्) अत्यन्त ओजस्वी, (तरस्विनम्) बलशाली तथा (तरसम्) बलस्वरूप (इन्द्रम्) परमेश्वर को,—(नरः) उपासना के नेता (क्रत्वे) उपासना-यज्ञ की सफलता के लिये, (ततक्षुः) पहिले मनोगत करते हैं, मानसिक ध्यान करते हैं, तत्पश्चात् उसे (जजनुः) प्रत्यक्ष रूप में जन्म देते हैं, प्रकट करते हैं।

[तक्ष्=To invent, form in the mind, (आप्टे)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

९३१—नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ २ ॥

(सुदीतयः) योगविधि के ज्ञान से सुप्रदीप्त, (अद्रुहः) द्रोह आदि भावनाओं से रहित, (तरस्विनः) योगाभ्यास में वेग वाले, (विप्राः) मेधावी उपासक योगी, (नेमिम्) ब्रह्माण्ड रथ के नेमिरूप, (मेषम्) आनन्दरसवर्षी परमेश्वर को (चक्षसा) अपनी अन्तर्दृष्टियों द्वारा प्रत्यक्ष कर लेते हैं। तथा हे नवीन उपासको !, वे योगी जन, (वः) तुम्हारे (कर्णे) कानों में (ऋक्वभिः) ऋचारूपी-मन्त्रों द्वारा, (सम्) सम्यक् रूप में (अभि स्वरे) उच्चारण-पूर्वक, तुम्हें दीक्षित करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
६३२—समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रँ सोमस्य पीतये ।
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः
॥ ३ ॥ ॥१४ (ची) ॥

(यद्) यतः (स्वः पतिः) सब सुखों का स्वामी, (ओजसा) अपनी शक्ति द्वारा और (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा (वृधे) उपासक की वृद्धि के लिये, (धृतव्रतः) व्रत धारण किये हुए है, इस लिये (रेभासः) स्तोता लोग, (सोमस्य) भक्तिरस की (पीतये) स्वीकृति के लिये, (इन्द्रम्) परमेश्वर की स्तुतियां (सम्) मिलकर(अस्वरन्) स्वर-पूर्वक करते हैं ।

[रेभः=स्तोतृनाम (निघं. ३।१६)]

[प्रा० २२ । उ० १ । स्व० ४]

सूक्त १५

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
६३३—यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

(यः) जो परमेश्वर (चर्षणीनाम् राजा) सब मनुष्यों का राजा है, (रथेभिः) जो शरीर-रथों द्वारा (याता) प्राप्त होता है, (अध्रिगुः) जिसकी गति को कोई रोक नहीं सकता, जो (विश्वासाम्) काम-क्रोध आदि की सब (पृतनानाम्) सेनाओं को (तरुता) परास्त करता, तथा (वृत्रहा) पापों का हनन करता है, उस (ज्येष्ठम्) सबसे बड़े परमेश्वर की (गृणे) मैं स्तुति करता हूं, उस के गुणों का वर्णन करता हूं ।

[रथेभिः=जब तक जीवात्मा शरीर में रहता है तभी तक योग-साधनाओं के कारण जीवात्मा परमेश्वर को पा सकता है। बिना शरीर, साधनाएँ नहीं की सकतीं, और न परमेश्वर ही पाया जा सकता है ।]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
६३४—इन्द्रं तँ शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २उ
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः
॥ २ ॥ ॥ १५ (चि) ॥

(पुरुहन्मन्) पापों का पूर्ण हनन करने वाले हे उपासक ! तू (अवसे) आत्मरक्षा के लिये, (तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर की (शुम्भ) शोभा को बढ़ा (यस्य) जिस तेरे (विधर्तरि) विधाता में कि (द्विता) दो प्रकार के गुण हैं,—

श्रेष्ठों पर अनुग्रह करना, तथा दुष्टों को दण्ड देना, या सृष्टि करना और प्रलय करना। (दर्शतः) दर्शनीय तथा (महान्) महान् परमेश्वर ने (वज्रः) न्यायवज्र (हस्तेन) अपने हाथ में (प्रतिधायि) रखा हुआ है। वह (सूर्यः न) सूर्य के समान (देवः) प्रकाशमान है।

[देवः=द्योतनात्]

॥ इति पंचमः खण्डः ॥५॥ [धा० १७। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १६

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २

९३५—परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः।

३ १२ ३ १ २

स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥

भक्तिरस मानो (प्रिया) प्रिय लगने वाले, (दिवः) द्युलोक के (वयांसि) नक्षत्र रूप पक्षिगणों में भी, (परि) चारों ओर (याति) उमड़ रहा है; (नप्त्योः) न पतन होने वाले, न गिरने वाले द्युलोक और भूलोक में भी (परिहितः) सर्वत्र स्थित है। भक्तिरस भक्त में (कविः) कवित्व शक्ति प्रदान करता है, (कविक्रतुः) कवियों की सी प्रज्ञा प्रदान करता, और (स्वानैः) संगीत-ध्वनियों के साथ (याति) प्राप्त होता है।

[नप्त्यौ=द्यावापृथिवी (निघं. ३।३०)]

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

९३६—स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥

जैसे (शुचिः) शुद्धाचारी, (जातः) सद्गुणों से प्रसिद्ध (सूनुः) पुत्र,—अपने (जाते) प्रथम से ही प्रसिद्ध, (ऋतावृधा) सत्यवर्धक, (मही) और गुणों से महान् (मातरा) माता-पिता को (अरोचयत्) और अधिक कीर्त्तिसम्पन्न कर देता है, वैसे विशुद्ध और (महान्) महागुणी भक्तिरस, (जातः) प्रकट होकर, उपासक को (अरोचयत्) चमका देता है, कीर्त्तिसम्पन्न कर देता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९३७—प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः।

३क२र ३ १ २

वीत्यर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥ ॥१६ (रि)॥

हे भक्तिरस! (प्र क्षयाय) दुर्गुणों का पूर्ण क्षय करने के लिये तू (पन्यसे) उपासकों द्वारा प्रशंसित है। (जुष्टः) परमेश्वर द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवित किया गया तू (जनाय) उपासक जन को (अद्रुहः) द्रोह आदि दुर्वृत्तियों से अलग कर देता है।

(पनिष्टये) परमेश्वर की स्तुति के अभिलाषी उपासक के लिये, (वीति) उस में व्याप्त हो जाने के लिये, तू उसे (प्र अर्ष) शीघ्र प्राप्त हो।

[घा० ३ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त १७

२ ३क १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९३८—त्वँ ह्य३ँङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले, (दैव्य) देवाधिदेव, (अङ्ग) प्रिय परमात्मन् ! (त्वं हि) आप ही (द्युमत्तमः) अतिशय ज्ञान-प्रकाश वाले हैं। आप (अमृतत्वाय) मुमुक्षुजनों के मोक्ष के लिये, (जनिमानि) जन्म-मरण-व्यवस्थाओं की (घोषयन्) घोषणा वेदों द्वारा करते रहते हैं।

३ २ १ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ २
९३९—येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णु ते येन विप्रास आपिरे ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
देवानाँ सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवाँस्याशत

॥ २ ॥ ॥ १७ (पौ) ॥

(येन) जिस परमेश्वर की कृपा से (दध्यङ्) ध्यानाभ्यासी (नवग्वा) नवीन स्तोता (अपोर्णु ते) अविद्या के परदे को हटा लेते हैं, (येन) जिस आप की कृपा से (विप्रासः) योगविद्यासम्पन्न उपासक (आपिरे) आप को प्राप्त कर लेते हैं, तथा (येन) जिस आप की कृपा से (देवानां सुम्ने) दिव्यगुणों की प्राप्ति के निमित्त उत्तम अभ्यास में रत व्यक्ति, (चारुणः) सर्वतः सुन्दर (अमृतस्य) आप अमर के (श्रवांसि) यशों को (आशत) सर्वत्र फैलाते हैं [वे आप (पुनानः) सब को पवित्र करते हैं (मन्त्र ९४०)]

[दध्यङ्=प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा, प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा (निरु० १२।४।३३)। (नवग्वा)=नव+गु (गौः—स्तोता, निघं. ३।१६)। सुम्ने=सु+म्ना (अभ्यासे)]

[घा० ११ । उ० १। स्व० नास्ति]

सूक्त १८

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
९४०—सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्ने वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥

(सोमः) जगदुत्पादक परमात्मा, (ऊर्मिणा) अपनी आनन्दरसमयी तरङ्गों द्वारा (पुनानः) उपासकों को पवित्र करता हुआ, उनके (अव्यम्) पार्थिव भोगरूपी

(वारम्) अवरणों को (वि धावति) विगत कर देता है। (वाचः) वेदवाणियों का (अग्रे) मुख्य प्रतिपाद्य परमात्मा (पवमानः) उपासकों को पवित्र करता हुआ, (कनिक्रदत्) उन्हें अपने समीप बार-बार बुलाता हैं।

३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९४१—धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम्।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन्॥ २॥

योगीजन (धीभिः) ध्यानयोग द्वारा, (वाजिनम्) बलशाली प्रभु का, (मृजन्ति) मार्जन-विधिपूर्वक साक्षात् करते हैं, जो प्रभु कि (अति अविम्) सूर्य से भी परे विद्यमान (वने) नक्षत्रों के वन में (क्रीढ़न्तम्) क्रीड़ा कर रहा है, रम रहा हैं। (मतयः) मननाभ्यासी योगी जन, (त्रिपृष्ठम्) तीनों लोकों की पीठों पर सवार परमात्मा की (अभि) प्रत्यक्षरूप में, (सम् अस्वरम्) मिलकर सस्वर स्तुतियां करते हैं।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
९४२—असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वांसप्तिर्न वाजयुः।
३ १ २र ३ १ २
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत्॥ ३॥ ॥१८ (फा)॥

परमेश्वर (कलशान्) जीवात्मा में पांचों कोशों में (असर्जि) प्रकट हो गया है, (मीढ्वान्) और उन में उसने आनन्दरस की वर्षा की है। वह (सप्तिः न) अश्व के सदृश (वाजयुः) बल को प्राप्त है, बलिष्ठ है। (पुनानः) वह उपासक को पवित्र करता, और उसमें (वाचम्) दैवी वाणी को (जनयन्) प्रकट करता हुआ, (असिष्यदत्) अपने आनन्दरसरूप में प्रवाहित होता है।

[धा० १०। उ० २ स्व० २]

सूक्त १९

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
९४३—सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥१॥

(सोमः) जगदुत्पादक प्रभु की (पवते) सर्वत्र गति है। वह वेद द्वारा (मतीनां जनिता) ज्ञानों का उत्पादक है, (दिवः जनिता) द्युलोक का उत्पादक है, (पृथिव्या जनिता) पृथिवी का उत्पादक है, (अग्नेः जनिता) अग्नि का उत्पादक है, (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक है, (इन्द्रस्य जनिता) बिजुली का उत्पादक है, (उत) और (विष्णोः जनिता) यज्ञकर्मों का उत्पादक है।

[विष्णुः=यज्ञः (ऐतरे० ब्रा० १।१५)]

३ २ ३१२ ३१ २३२उ ३१२ ३ २३१२
९४४—ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
३१ २र ३ १२ ३१२३ १२ ३२३१२३ १२
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥२॥

परमेश्वर (देवानाम्) वैदिक विद्वानों में (ब्रह्मा) ब्रह्मा-पदवी प्राप्त है, अर्थात् चारों वेदों का ज्ञाता है; (कवीनाम्) कवियों में (पदवीः) सर्वोत्तम कवि पद पाये हुए है, (विप्राणाम्) वेदज्ञाता ऋषियों में (ऋषिः) परमर्षि है, (मृगाणाम्) अन्वेषकों में (महिषः) महा अन्वेषक है, (गृध्राणाम्) ज्ञान प्राप्त कराने वाली इन्द्रियों में (श्येनः) आत्मा रूप है, (वनानाम्) पापों के जङ्गलों के काटने में (स्वधितिः) कुल्हाड़ा रूप है,—(सोमः) ऐसा सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक प्रभु, (रेभन्) उपासक में अन्तर्नाद करता हुआ, (पवित्रम्) पवित्र उपासक को (अति एति) सब बाधाओं का अतिक्रमण करके प्राप्त होता है।

[महिषः=महान्; श्येनः=आत्मा, श्यायतेः ज्ञानकर्मणः; गृध्राणाम्= गृध्यतेः ज्ञानकर्मणः; मृगानाम्=मृग अन्वेषणे (निरु० अ० १३ (१४) पा० २ (१) खं० ७२ (१४)]

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
९४५—प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिर स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।
३ १ २र ३२३१२३१ २ ३१ २र ३ २
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन्
॥ ३ ॥ ॥१९ (फू)॥

ऋषियों की (मनीषाः) बुद्धियों को (पवमानः) पवित्र करते हुए परमेश्वर ने (वाचः) ऋक् रूपी वाणियों को, (गिरः) गद्यरूपी वाणियों को, तथा (स्तोमान्) गीतिमयी वाणियों को (प्रावीविपत्) विशिष्ट वेपनों में प्रेरित किया है, (न) जैसे कि (सिन्धुः) नदी या समुद्र (ऊर्मिम्) लहरों को प्रेरित करते हैं। (अन्तः) अन्तर्यामी परमेश्वर, हमारे (इमा) इन (अवराणि) अश्रेष्ठ अर्थात् नीच (वृजना) पापों को (पश्यन्) देखता हुआ, । (आ तिष्ठति) हृदयों में स्थित है। (जानन्) सर्वज्ञ परमात्मा (गोषु) वेदवाणियों में (वृषभः) ज्ञान की वर्षा करता है।

[गौः=वाक् (निघं० १।११)]

[प्रा० ३० । उ० २ । स्व० ६]

सूक्त २०

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९४६—अग्नि वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
२ ३ २ ३ १ २
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारे (अध्वराणाम्) हिंसा रहित उपासना-यज्ञों को (वृधन्तम्) बढ़ाने वाले, (पुरूतमम्) पालक तथा परिपूर्ण (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप

परमेश्वर को,—(वः) तुम्हारे (सहस्वते) धर्म-साहसी (नप्त्रे) सन्तानों के लिये, (अच्छ) अभिमुख करता हूँ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
९४७—अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या।
३ २उ ३ १ २
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥

(त्वष्टा) बढ़ई (यथा) जैसे (तक्ष्या रूपा) घड़ने योग्य आकृतियां घड़ता है, (इव) इसी प्रकार (अयम्) यह जगन्नेता, (नः) हमें घड़ता हुआ, हमें (आ भुवत्) प्राप्त होता हैं, अर्थात् हमें घड़ कर नवजीवन प्रदान करता है। (अस्य) इस जगन्नेता के (क्रत्वा) इस कर्म द्वारा (यशस्वतः) हम यशस्वी बन जाते हैं।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
९४८—अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते।
२उ ३ १ २
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥ ॥२० (डा) ॥

(देवेषु) देवों में (अयम्) यह (अग्निः) जगन्नेता प्रभु, (विश्वाः) सब प्रकार की (श्रियः) सम्पत्तियों को, (अभि पत्यते) सम्पूर्णतया प्राप्त है, और (वाजैः) सब शक्तियों समेत (नः) हमें (उप आ गमत्) अत्यन्त समीपता से प्राप्त हुआ हुआ है।

[धा० ८। उ० ३। स्व० २]

सूक्त २१

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९४९—इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (सुतम्) निष्पादित (इमम्) इस भक्तिरस को (पिब) स्वीकार कीजिये। यह भक्तिरस (ज्येष्ठम्) बड़ा और श्रेष्ठ रस है, यह मर्त्य को (अमर्त्यम्) अमर बना देता है, और जीवन में (मदम्) हर्ष, उल्लास और तृप्ति पैदा करता है। (ऋतस्य) सच्चाई के (सादने) घर में अर्थात् मेरे सत्यमय जीवन में, (शुक्रस्य) विशुद्ध भक्तिरस की (धाराः) धाराएँ, (त्वा) आप के प्रति हे परमेश्वर ! (अभ्यक्षरन्) बह निकली हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९५०—न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वत् रथीतरः) आप से बढ़ कर शरीर-रथों का स्वामी (न किः) कोई नहीं है, (यत्) क्योंकि आप ही (हरी) हमारे दो प्रकार के इन्द्रियाश्वों का (यच्छसे) नियन्त्रण कर रहे हैं। (मज्मना) बल की दृष्टि से भी (त्वा अनु) आप के अनुरूप (न किः) कोई नहीं। (स्वश्वः) मन को सात्विक बनाने वाला भी (न किः) और कोई नहीं। (आनशे) आप सर्वत्र व्यापक हैं।

[आनशे = अशूङ् व्याप्तौ]

१ २ ३ १ २ ३ १ २
९५१—इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥३॥ २१ (र)॥

हे उपासको ! (नूनम्) निश्चय से तुम (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (अर्चत) अर्चनाएँ करो, (च) और (उक्थानि) वैदिक सूक्तों का (ब्रवीतन) गान करो। (इन्दवः) चन्द्रसमशीतल (सुतः) निष्पादित भक्तिरस (अमत्सुः) परमेश्वर को प्रसन्न करते हैं। परमेश्वर (ज्येष्ठ सहः) सर्वोच्च शक्ति है, इसलिये (नमस्यत) इसे नमस्कार किया करो।

[धा० ८। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त २२

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ ९ ३ १ २
९५२—इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! मेरे भक्तिरस का (जुषस्व) सेवन प्रेमपूर्वक कीजिये। (प्रवह) आनन्दरसरूप में मुझ में प्रवाहित हो जाइये। (शूर) हे पापों पर आक्रमण करने वाले ! (हरिह) हे विषयहारी वृत्तियों का हनन करने वाले ! (आ याहि) प्रकट हूजिये। (सुतस्य) उत्पन्न भक्तिरस का (पिब) पान कीजिये, (न) जैसे कि (चकानः) कामना करता हुआ (मतिः) मेधावी उपासक, (मधोः) आप के मधुर आनन्दरस का पान करता है। (मदाय) उपासक की मस्ती तथा हर्ष और तृप्ति के लिये आप (चारुः) रोचकरूप हैं।

[शूर = विक्रान्तौ ! मतिः = मेधावी (निघं० ३।१५)]

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
९५३—इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न।
३ २ ३ २ ३ २उ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

(न) जैसे भूखा व्यक्ति (नव्यम् जठरम्) भूखे पेट को भरता है, वैसे (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (अस्य) इस (सुतस्य) उपासक पुत्र की भूखी आत्मा को,— (दिवः) द्युलोक के (मधोः) मधुर जल (न) के समान वर्तमान, अपने मधुर आनन्दरस के प्रवाह द्वारा,—(पृणस्व) भरपूर कर दीजिये, जो आनन्दरस कि (स्वः) प्रकाशमान सूर्य के (न) सदृश दिव्य प्रकाश देता है। हे परमेश्वर ! (त्वा) आप को, उपासक की (मदाः) तृप्ति-कारक तथा हर्षोत्पादक (सुवाचः) उत्तम स्तुतियां, (उप अस्थुः) समर्पित की गई हैं।

[नव्यम्=नवीन, जिस में कि दैनिक अन्न अभी नहीं पड़ा, इसलिये जो भूखा है। अथवा नव्यम्=न+वी (अदने), अर्थात् अन्न-रहित। मन्त्र ९५२ से "प्रवहा" की अनुवृत्ति द्वारा "प्रवाह" अर्थ लिखा है। "प्रवहा" श्लिष्ट पद है। इसलिये प्रकरणानुसार इस के दो अर्थ हैं,—"प्रवह" और प्र+वह् (क्विप्)+तृतीयैकवचन; अर्थात् प्रवाह द्वारा। स्वः=आदित्यः, स्वृतो आसा (निरु. २।४।१४)

१ २ ३ २ ३ १२उ ३ १ २ ३ १२उ ३ २
९५४—इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य
॥ ३ ॥ ॥२२ (ङ) ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर, (मित्रः न) स्नेही मित्र के सदृश, (तुराषाट्) शीघ्र दुःखों का पराभव करता, (यतिः न) संयमी व्यक्ति के सदृश (वृत्रम्) पाप वृत्र का (जघान) हनन करता, तथा (भृगुः) परिपक्व ध्यानी के (न) सदृश (बलम्) कामादि के दलबल को (बिभेद) छिन्न-भिन्न करता है, और (सोमस्य मदे) भक्तिरस के आनन्द में आकर (शत्रून्) उपासक के सब शत्रुओं का (ससाहे) पराभव करता है।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [धा० ११ । उ० ५ । स्व० १]

इति तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥

इति पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[२]

अथ तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥३॥

(१—२३) १ (अकृष्टा माषादयः) त्रयः ऋषयः; कश्यपो मारीचः; ३, ४, १३ असितः काश्यपो देवलो वा, ५ अवत्सारः काश्यपः; ६, १६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ अरुणो वैतहव्यः; ८ उरुचक्रिरात्रेयः; ९ कुरुसुतिः काण्वः; १० भरद्वाजो वार्हस्पत्यः; ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वाः; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो वार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहुगणः; ४ अत्रि-

भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १४, १५, २३ गोतमो राहूगणः; १७ (१) ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः; १७ (२) कृतयशा आंगिरसः; १८ त्रित आप्त्यः; १९ रेभसूनू काश्यपौ; २० मन्युर्वासिष्ठः; २१ वसुश्रुत आत्रेयः; २२ नृमेध आंगिरसः ॥ १—६, ११-१३; १६-२० पवमानः सोमः ७, २१ अग्निः; ८ मित्रावरुणौ; ६, १४-१५, २२-२३ इन्द्रः, १० इन्द्राग्नी ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३, १६ गायत्री; १२ बृहती; १४, १५, २१ पंक्तिः; १७ काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतो बृहती); १८, २२ उष्णिक्; १९, २३ अनुष्टुप्; २० त्रिष्टुप् ॥

सूक्त १

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९५५—गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १
त्वँ सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम
२र
आसते ॥ १ ॥

(इन्दो) हे प्रकाशमय प्रभो ! आप ने हमें (गोवित्) इन्द्रियां प्रदान की हैं, (वसुवित्) सम्पत्तियां प्रदान की हैं, (हिरण्यवित्) सोना चान्दी तथा हितकर रमणीय वस्तुएँ दी हैं, (रेतोधाः) हमारे शरीरों में आप ने वीर्य शक्ति प्रदान की है, आप (भुवनेषु) समग्र भुवनों में (अर्पितः) व्याप्त हैं। (सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (त्वम्) आप (सुवीरः) विविध जगत् में उत्तम प्रेरणाएँ दे रहे (असि) हैं, आप (विश्ववित्) विश्ववेत्ता हैं, सर्वज्ञ हैं। (इमे नरः) ये नर नारियां (गिरा) वेदवाणियों द्वारा (तं त्वा) उस आपकी (उप आसते) उपासनाएँ करते हैं। (पवस्व) आप हमें पवित्र कर कीजिये।

[सुवीरः=सु+वि+ईर् (गतौ)]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
९५६—त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स नः पवस्य वसुमद्धिरण्यवद्वयँ स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥

पवस्व

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक प्रभो ! आप (विश्वतः नृचक्षाः असि) सर्वत्र विद्यमान नर-नारियों के द्रष्टा हैं, उन पर कृपादृष्टि रखते हैं। (पवमान) हे पवित्र करने वाले ! (वृषभ) तथा सुखों की वर्षा करने वाले ! (ता) उन सब प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध स्थानों में आप की (वि धावति) गति है। (सः) वे आप (नः) हमें (वसुमत्) श्रेष्ठ सम्पत्तियों से युक्त (हिरण्यवत्) तथा सुवर्ण आदि से युक्त धन (पवस्व) प्रदान कीजिये, ताकि (वयम्) हम (भुवनेषु) भुवनों में (जीवसे) जीने में (स्याम) समर्थ हो सकें।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
९५७—ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः।
१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः
॥ ३ ॥ ॥ १ (खी) ॥

(इन्दो) हे स्वच्छ प्रशान्त प्रकाश वाले परमेश्वर ! आप (ईशानः) शासन करते हुए (इमा भुवनानि) इन भुवनों में (ईयसे) विचर रहे हैं। आप ने (सुपर्ण्यः) उत्तम पालन करने वाली (हरितः) कष्ट तथा संतापहारी नदियों को भूमण्डल में (युजानः) जोत रखा है। (ते ताः) आप की वे नदियां हमारे लिये (मधुमत्) मधुर (घृतं पयः) घृत, दूध, तथा जल (क्षरन्तु) प्रवाहित करें, ताकि (सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक प्रभो ! (कृष्टयः) सब प्रजाएँ (तव) आप द्वारा दर्शाए (व्रते) अपने-अपने व्रतों में (तिष्ठन्तु) स्थित रहें।

[हरितः=नदी नाम (निघं. १।१३)]

[धा० ४१। उ० २। स्व० ४]

सूक्त २

१ २ ३ २ ३ १ २
९५८—पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत।
१ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥

(विश्ववित्) हे विश्ववेत्ता सर्वज्ञ परमेश्वर ! (पवमानस्य) पवित्र करने वाले (ते) आप की (सर्गाः) आनन्दरसमयी धाराएँ (प्र असृक्षत) प्रकट हुई हैं, (न) जैसे कि सूर्य से (रश्मयः) किरणें प्रकट होती हैं।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
९५९—केतुं कृण्वं दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि।
३ १ २
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक प्रभो ! (समुद्रः) आप ज्ञान-सागर हैं। आप (दिवः परि) अपने दिव्य स्वरूप से (केतुम्) वैदिक ज्ञान को (कृण्वन्) प्रकट करते हुए, (विश्वा रूपा) वस्तुओं के विविध स्वरूपों पर (अभ्यर्षसि) प्रकाश डाल रहे हैं, और इस प्रकार (पिन्वसे) आप हमें प्रीणित करते हैं, सन्तुष्ट करते हैं।

३ १ २र ३ १२ ३ १२
९६०—जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
१ २ ३ १ २र
क्रन्दं देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ ॥ २ (पा) ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले प्रभो ! (जज्ञानः) ऋषियों के हृदयों में प्रकट होकर, (विधर्मणि) धर्मकर्मों के विविध स्वरूपों को प्रकट करने के निमित्त, आप, उन के प्रति, (वाचम्) वेदवाणी (इष्यसि) प्रकट करते हैं, (क्रन्दन्) अन्तर्ध्वनियां करते हुए। आप (देवः) प्रकाशमान (सूर्यः न) सूर्य के सदृश ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित हैं।

[धा० १५। उ० १। स्व० २]

सूक्त ३

१ २र ३ १ २ ३ १ २
९६१—प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
३ २ ३ १ २
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥

(इन्दवः) चन्द्रसमशीतल (सोमासः) भक्तिरस, (पवमानासः) उपासकों को पवित्र करते हुए, (अप्सु) उपासकों के रस-रक्तों में (अधन्विषुः) प्रवाहित हुए हैं। (श्रीणानाः) ये भक्तिरस परिपक्व होकर, उपासकों को पाप कर्मों से (वृञ्जते) हटाते हैं।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
९६२—अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
३ १ २र
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

(गावः) वैदिक स्तुतिवाणियां, (पुनानाः) उपासकों को पवित्र करती हुईं, (इन्द्रम् अभि) परमेश्वर के प्रति (अधन्विषुः) प्रवाहित हुई हैं, (न) जैसे कि (प्रवता) निम्न प्रदेश से (यतीः) बहती हुई (आपः) नदियां [समुद्र को प्राप्त होती हैं], वैदिक स्तुतिवाणियों ने (इन्द्रम्) परमेश्वर को (आशत) व्याप्त कर लिया है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
९६३—प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
१ २ ३ १ २र
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥

(पवमान) हे अन्यों को पवित्र करने वाले (सोम) भक्तिरस सम्पन्न उपासक ! तू (प्र धन्वसि) सर्वत्र विचरता है, (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये तू (मादनः) प्रसन्नतादायक है (नृभिः) उपासक-नेताओं द्वारा (यतः) यम-नियमों में जकड़ा गया तू (विनीयसे) विनीत किया जाता है।

२ ३ १ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९६४—इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ।। ४ ।।

(इन्दो) हे चन्द्रसमशीतल स्वभाव वाले उपासक ! (यद्) जब तू (अद्रिभिः) अपने व्रतों में पर्वतों के समान अविचल गुरुओं द्वारा (सुत.) मानो नवजीवन धारण किया हुआ, (पवित्रम्) पतितपावन परमेश्वर के प्रति (परिदीयसे) समर्पित किया जाता है, तब तू (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (धाम्ने) ज्योति को प्राप्त करने में (अरम् =अलम्) समर्थ हो जाता है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९६५—त्वँ सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सस्निर्यो अनुमाद्यः ।। ५ ।।

(सोम) हे भक्तिरस से रसीले उपासक ! (यः) जो तू (सास्निः) विशुद्ध है, और (अनुमाद्यः) अन्यों द्वारा प्रसादनीय है, (त्वम्) वह तू भी (नृमादनः) सब नर-नारियों को उपदेशों द्वारा प्रसन्न तथा तृप्त कर, और (चर्षणीधृतिः) प्रजा का धारण-पोषण कर, (पवस्व) तू अपने आप को तथा सब को पवित्र कर ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९६६—पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः ।
१ २ ३ १ २र
शुचिः पावको अद्भुतः ।। ६ ।।

(वृत्रहन्तम) हे पापों का अतिशय हनन करने वाले उपासक ! तू (उक्थेभिः) वैदिक सूक्तियों द्वारा (पवस्व) अपने आप को तथा सब को पवित्र कर । (अनुमाद्यः) तू निरन्तर प्रसादनीय, (शुचिः) शुद्ध पवित्र, (पावकः) पवित्र करने वाला, (अद्भुतः) और अद्भुत स्वरूप वाला हो गया है ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ १ ३ १ २र
९६७—शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशँसहा ।। ७ ।। ३ (है) ।।

(शुचिः) जो स्वयं पवित्र है, वह ही (पावकः) अन्यों को पवित्र करता है,—(उच्यते) ऐसा कहा जाता है । (सोमः) भक्तिरस से रसीला उपासक, (सुतः) द्विजन्मारूप में पैदा होकर, (सः) वह (मधुमान्) मधुर विचारों और मधुर व्यवहारों वाला हो जाता है; (देवावीः) दिव्यगुणों से व्याप्त तथा (अघशंसहा) पाप की प्रशंसा की भावनाओं का हनन करने वाला हो जाता है ।

।। इति प्रथमः खण्डः ।।१।। [धा० ४१ । उ० नास्ति । स्व० ८]

सूक्त ४

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
९६८—प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत।
३ १ २र ३ १ २र
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः॥ १॥

(देववीतये) उपासकों को दिव्यगुण प्राप्त कराने के लिये, (कविः) वेद-काव्यों का कवि परमेश्वर (अव्याः) निज रक्षाशक्ति की (वारैः) पापनिवारक प्रवृत्तियों द्वारा (अव्यत) उपासक की रक्षा करता है। परमेश्वर (विश्वा स्पृधः) स्पर्धा आदि सब दुर्भावनाओं का (अभि) सामना करके, उन्हें (साह्वान्) पराभूत कर देता है।

१ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
९६९—स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति।
१ २ ३ १ २
पवमानः सहस्त्रिणम्॥ २॥

(पवमानः) पवित्र करता हुआ (स हि) वह ही परमेश्वर, (जरितृभ्यः) स्तोताओं के लिये, (गोमन्तम्) वेदोपदिष्ट (वाजम्) शक्तियां (आ इन्वति) सब प्रकार से प्रदान करता है, (सहस्त्रिणम्) तथा हजारों प्रकार की शक्तियां प्रदान करता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
९७०—परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती।
१ २ ३ १ २
स नः सोम श्रवो विदः॥ ३॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर! उपासक जब (विश्वानि) अपने सब पापों को (परि) परिवर्जित कर लेता है, तब उपासक के (मती) मनन द्वारा, तथा (चेतसा) चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा, (मृज्यसे) हे परमेश्वर! आप विशुद्ध रूप में प्रकट कर लिये जाते हैं, तब आप उपासक को (पवसे) प्राप्त होते हैं, और (सः) वह आप (नः) हम उपासकों को (श्रवः) यश (विदः) प्राप्त कराते हैं।

३क २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
९७१—अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवँ रयिम्।
१ २ ३ २ ३ १ २
इषँ स्तोतृभ्य आ भर॥ ४॥

हे परमेश्वर! (मघवद्भ्यः) आध्यात्मिक विभूतियों से सम्पन्न (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के लिये, (बृहद् यशः) महायश, (ध्रुवं रयिम्) स्थिर सम्पत्ति अर्थात्

मोक्ष (अभ्यर्ष) प्राप्त कराइये, तथा (इषम्) उनकी इच्छाओं को (आ भर) सफल कीजिये।

१ २र ३ १ २र ३ १ २
९७२—त्वँ राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ।
३ १ २
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर ! आप (राजा इव) मनुष्य-राजा के सदृश (सुव्रतः) उत्तम व्रतों वाले हैं, अर्थात् प्रजापालनरूपी उत्तम व्रत लिये हुए हैं। आप (गिरः) वेदवाणियों में (आ विवेशिथ) प्रवेश पाये हुए हैं, अर्थात् वेदवाणियां आप का वर्णन करती हैं। (वह्ने) हे संसार-भार का वहन करने वाले !, (अद्भुत) हे आश्चर्यरूप ! (पुनानः) आप जगत् को पवित्र कर रहे हैं।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९७३—स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः।
१ २ ३ १ २
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

(सः) वह परमेश्वर (वह्निः) संसार-भार का वहन कर रहा है। (अप्सु) जलों में विद्यमान विद्युत् के सदृश (दुष्टरः) अलंघ्य है, (मृज्यमानः) मार्जनविधि द्वारा विशुद्धरूप में प्रकट किया गया (गभस्त्योः) भासमान सूर्य और चन्द्र की रश्मियों के समान भासित होता है। (सोमः) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर (चमूषु) नाना द्युलोकों और भूलोकों में, अधिष्ठाता रूप में, (सीदति) स्थित है।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
९७४—क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि।
१ २ ३ २ ३ १ २
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

हे परमेश्वर ! संसार रूपी क्रीड़ा-क्षेत्र में आप (क्रीडुः) क्रीड़ा कर रहे हैं, (मखः न) यज्ञ के सदृश (मंहयुः) स्वास्थ्य, नीरोगता, वर्षाजल, स्वच्छ अन्न आदि सम्पत्तियां प्रदान कर रहे हैं। (सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक ! (पवित्रम्) पवित्र व्यक्ति को आप (गच्छसि) प्राप्त होते हैं। आप (स्तोत्रे) स्तोता को (सुवीर्यम्) उत्तक सामर्थ्य (दधत्) प्रदान करते हैं।

[धा० २१ । उ० १ । स्व० ६]

सूक्त ५

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९७५—यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परिस्रव।
१ २ ३ १ २
विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक प्रभो ! (अन्धसा) अपने आनन्दरस रूपी अन्न समेत (नः) हमें आप (पुष्टं पुष्टम्) परिपुष्ट (यवं यवम्) नाना विध जौं आदि (परिस्रव) प्रदान कीजिये, (च) और (विश्वा सौभागा) सब सौभाग्यों की (परिस्रव) वर्षा कीजिये ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

९७६—इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

(इन्दो) हे प्रकाशमय प्रभो ! (यथा) चूंकि सर्वत्र (तव) आप का ही (स्तवः) स्तवन होता है, और (यथा) चूंकि (अन्धसः) अन्नमय शरीर से (ते) आप को ही (जातम्) प्रकट किया जाता है, इस लिये (प्रिये बर्हिषि) इस प्रिय हृदयाकाश में आप (नि सदः) निरन्तर स्थित रहिये ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

९७७—उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।

३ १ २ ३ १ २

मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

(उत) तथा (सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक प्रभो ! आप (गोवित् अश्ववित्) हमारी इन्द्रियों और मनों की गतिविधि को जानते हैं, इसलिये आप (अन्धसा) अपने आनन्दरस रूपी अन्न के प्रदान द्वारा (नः) हमें (पवस्व) पवित्र कर दीजिये, हमारे जीवनों के (अहभिः) दिन (मक्षूतमेभिः) अत्यन्त शीघ्रता से गुजरते जा रहे हैं ।

[मक्षु=क्षिप्रनाम (निघं. २।१५)]

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

९७८—यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।

१ २

स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ ॥ ५ (हि) ॥

(यः) जो परमेश्वर (सहस्रजित्) हजारों लोक-लोकान्तरों पर विजय पाए हुए है, (सः) वह (जिनाति) सदा विजयी है, (न जीयते) उस पर कोई विजय नहीं पा सकता । वह हमारे आन्तरिक (शत्रुम्) शत्रु की (अभीत्य) ओर आ कर उसका (हन्ति) हनन करता है । हे परमेश्वर ! इस प्रकार आप (पवस्व) हमें पवित्र कीजिये ।

[वा० ११ उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त ६

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

९७९—यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।

१ २ ३ २ ३ १ २

ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥

(इन्दो) चन्द्रसमशीतल प्रकाश वाले हे प्रभो ! (याः) जो (ते) आप की (मधुश्चुतः) मधुभरी (धाराः) धाराएँ, (ऊतये) मेरी रक्षा के लिये, (असृग्रम्) प्रवाहित हो रही हैं, (ताभिः) उन धाराओं समेत आप (पवित्रम्) मेरे पवित्र हृदय में (आ सदः) आ विराजिये।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
९८०—सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

(सः) वह आप हे प्रभो ! (अव्यया) व्यय अर्थात् नष्ट न हो सकने वाली (वाराणि) विघ्न-बाधाओं को (तिरः) तिरस्कृत करके, (इन्द्राय पीतये) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के पानार्थ, (अर्ष) आनन्दरसधारारूप में प्रवाहित हूजिये, और (ऋतस्य) सच्चाई-भरे (योनिम्) हृदय-गृह में (आ सीदन्) आ विराजिये।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९८१—त्वँ सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः।
३ २ ३ १ २र
वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ३ ॥ ॥ ६ (हि) ॥

(सोम) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक हे प्रभो ! (त्वम्) आप (परि स्रव) आनन्दरसधारारूप में हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग में प्रवाहित हो जाइये। आप (अङ्गिरोभ्यः) प्राणायाम आदि के अभ्यासियों के लिये (स्वादिष्ठः) आनन्दरसरूप में अत्यन्त स्वादु हैं। आप (वरिवोवित्) उपासकों को आध्यात्मिक-सम्पत्तियां प्रदान करते हैं, और उन के लिये आप (घृतं पयः) घृत और दुग्धरूप हैं।

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त ७

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९८२—तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥ १ ॥

(वर्ष्यस्य) वर्षा करने वाले मेघ की (विद्युतः इव) बिजुलियों के सदृश, तथा (एतयः) आती हुई (उषसाम्) उषाओं के प्रकाशों के (इव) सदृश,—हे प्रभो ! (अग्नेः तव) अग्निमय आपकी (श्रियः) शोभाएँ (चिकित्रे) जानी जाती हैं, प्रकट होती हैं,—जब कि आप (ओषधीः) ओषधियों (च) और (वनानि) वनों के (अभि) प्रति (सृष्टः) अग्निरूप में प्रकट हुए, (स्वयम्) अपने आप (परि) उन सब को, (अन्नम्) अन्नरूप में, (आसनि) अपने आग्नेय-मुख में (चिनुषे) संचित कर लेते हैं।

[मन्त्र में प्रलय काल का वर्णन है]

१ २ ३ १उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
९८३—वातोपजूत इषितो वशाँ॒ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे।
१ २ ३ ३ २ऽ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते यतन्ते रथ्यो३यथा पृथक् शर्धाँ॒स्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निस्वरूप प्रभो! (वातोपजूतः) झंझावातों द्वारा प्रचण्ड हुई (इषितः) तथा ओषधियों और वनों को (९८२) प्राप्त हुई अग्नि के समान, (यद्) जब आप, उन ओषधियों और वनों को (वशान् अनु) यथेच्छ (अन्ना=अन्नानि) अन्न समझ कर, उनमें (तृषु) तृष्णापूर्वक (वेविषत्) व्याप्त हो जाते हैं, और उन पर आप (वि तिष्ठसे) अधिष्ठित हो जाते हैं, उन पर अपना स्वामित्व प्राप्त कर लेते हैं तब (अजरस्य) मानो युवाशक्ति से सम्पन्न होकर (धक्षतः) दहन करते हुए (ते) आप के (शर्धांसि) बल, (पृथक्) पृथक्-पृथक् नाना स्थलों में, (आ यतन्ते) पूर्णतया यत्नवान् प्रतीत होते हैं, (यथा) जैसे कि (रथ्यः) रथ-वहनयोग्य, परन्तु अनियन्त्रित बलशाली अश्व की चेष्टाएँ, उच्छृङ्खलित रूप में प्रतीत होती हैं।

[मन्त्र में प्रलयकाल का वर्णन है]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
९८४—मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निँ॒होतारं परिभूतरं मतिम्।
१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥ ३ ॥ ॥ ७ (बु) ॥

सृष्टिकाल में (मेधाकारम्) वेदों द्वारा ज्ञान देने वाले, (विदथस्य) उपासना-यज्ञों को (प्रसादनम्) सिद्ध करने वाले, (होतारम्) दानशील, (परिभूतरम्) विरोधी शक्तियों का पूर्णतया पराभव करने वाले, (मतिम्) सर्वज्ञ, (अर्भकस्य) थोड़ी भी समर्पित (हविषः) हवि को (समानम्) मानसहित स्वीकार करने वाले (त्वाम् अग्निम्) आप ज्ञानप्रदाता अग्नि को, जगन्नेता को, (वृणते) उपासक वरते हैं, (महः) तेजः स्वरूप (त्वाम्) आप को ही वरते हैं, (त्वत्) आप से (अन्यम्) भिन्न (न) किसी को नहीं वरते।

[मन्त्र ९८२ और ९८३ में प्रलय काल का, और मन्त्र ९८४ में सृष्टि के सर्जन काल का वर्णन हुआ है]

[धा० ३५। उ० ३। स्व० ५]

सूक्त ८

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
९८५—पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
२ ३ १ २ ३ २
मित्र वँ॒सि वाँ॒सुमतिम् ॥ १ ॥

(वरुण) हे अविद्या के निवारक, तथा (मित्र) स्नेह करने वाले परमेश्वर! आप के ये दो स्वरूप (पुरु उरुणा) महामेघ के सदृश सुखवर्षी हैं। (नूनम्) निश्चय से (वाम्) आप के दोनों स्वरूपों द्वारा (चित् हि)) ही (अवः) हमारी रक्षा (अस्ति) होती है : (वाम्) आपके दोनों स्वरूपों से प्राप्त (सुमतिम्) सुमति का (वंसि) मैं सेवन करूँ, और उसका दान करूँ।

[उरुणा=उरणकः=A cloud (आपटे)। अथवा उरुणा =आच्छादको (ऊर्णुञ् आच्छादने)=पापों से बचाने वाले। परमेश्वर स्नेह करता हुआ, ज्ञान प्रदान द्वारा, अविद्या का निवारण करता है। यह दर्शाने के लिये परमेश्वर के दोनों स्वरूपों का इकट्ठा वर्णन हुआ है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९८६—ता वाँ सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च।
३ १ २
वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (वाम्) आपके (ता) वे दोनों स्वरूपों, (सम्यक् अद्रुह्वाणा) हमें सम्यक् प्रकार से द्रोह आदि से रहित कर देते हैं, और हम (इषम्) अभीष्ट मोक्ष और आप के (धाम) तेज को (अश्याम) प्राप्त कर लेते हैं, और (वयम्) हम (वाम्) आप के (मित्राः) मित्र अर्थात् सखा (स्याम) बन जाते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
९८७—पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथाँ सुत्रात्रा साह्याम दस्यूँ
३ १ २
तनूभिः ॥ ३ ॥ ॥ ८ (य) ॥

(मित्रा) हे मित्र और वरुण स्वरूप परमेश्वर! आप के दोनों रूप, (पायुभिः) रक्षा-साधनों द्वारा, (नः) हमारी (पातम्) रक्षा करें (उत) तथा (सुत्रात्रा) उत्तम त्राण करने वाले आप के वे दोनों रूप (त्रायेथाम्) हमारा त्राण करें, ताकि हम (तनूभिः) स्वयं (दस्यून्) क्षयकारी पापों का (साह्याम) पराभव कर सकें।

["तनूभिः" द्वारा यह सूचित किया है कि हम इस वर्तमान तनुओं और शरीरों में रहते ही, पापों के पराभव द्वारा, अभीष्ट साधन करलें, ताकि भावी जन्म-परम्परा से छुटकारा पा सकें]

[धा० १२। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ९

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
९८८—उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः।
१ २ ३ २ ३ २
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे योगैश्वर्यसम्पन्न जीवात्मन् ! (चमू) सिर से पैर तक तेरे समग्र शरीर में (सुतम्) निष्पन्न (सोमम्) भक्तिरस को (पीत्वा) पीकर (ओजसा सह) और ओज से सम्पन्न होकर (उत्तिष्ठन्) अपना स्वयं उत्थान करते हुए तूने, (शिप्रे) कामादि शत्रुओं के चेहरों को, सिरों को, (अवेपयः) भय से कम्पा दिया है।

[आलंकारिक वर्णन है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

९८९—अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम्।

२ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे योगैश्वर्यसम्पन्न तथा (स्पर्धमान) कामादि शत्रुओं पर विजय की चाहना वाले जीवात्मन् ! (यद्) जब तू (दस्युहा) उपक्षयकारी कामादि का हनन करने वाला (अभवः) हो जाता है, तब (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और भूलोक अर्थात् इन दोनों लोकों के निवासी, (त्वा अनु) तुम्हारी शक्ति को लक्ष्य कर, (मदेताम्) हर्षित और प्रसन्न हो जाते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

९९०—वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम्।

२ ३ १ २ ३क २र

इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥ ३ ॥ ॥ ९ (ही) ॥

हे योगैश्वर्यसम्पन्न जीवात्मन् ! कामादि शत्रुओं का हनन करके तू यह उद्घोषित कर कि (अहम्) मैंने (अष्टापदीम्) आठ योगाङ्गों वाली, (नवस्रक्तिम्) नवीन-नवीन अलंकारों वाली, (ऋतावृधम्) तथा सत्यज्ञानवर्धक, (तन्वम्) विस्तृत (वाचम्) वेदवाणी को, (इन्द्रात्) परमेश्वर से (परि ममे) प्राप्त किया है।

["ममे" में "मा" धातु ज्ञानार्थक है। यथा प्रमा, प्रमाण, प्रमेय में]

[धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त १०

१ २ ३ २ ३ २ १ २र

९९१—इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत।

१ २ ३ २

पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) शक्ति और ज्ञान से सम्पन्न हे परमेश्वर ! (इमे) ये हमारे (स्तोमाः) स्तुतिगान (युवाम्) आप के इन दोनों रूपों की (अनूषत) स्तुति करते हैं। (शम्भुवा) आप के दोनों रूप शान्तिप्रद हैं। आप के दोनों रूपों के प्रति (सुतम्) निष्पन्न भक्तिरस भेंट है, (पिबतम्) इसे स्वीकार कीजिये।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
९९२—या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) शक्ति और ज्ञान से सम्पन्न हे परमेश्वर ! (वाम्) आप के दोनों स्वरूप (पुरुस्पृहा उ) बहुत वाञ्छनीय हैं, (नरा) और नेतृशक्तिरूप हैं। (दाशुषे) जिसने आप के प्रति आत्म समर्पण कर दिया है उस के लिये आप के (याः नियुतः) दिये जो हजारों प्रकार के सुख (सन्ति) हैं, (ताभिः) उन सुख-सामग्रियों के साथ आप (आगतम्) दोनों रूपों में उपासक के हृदय में आइये, प्रकट हूजिये ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
९९३—ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् ।
१ २ ३ २ ३
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥३ ॥ ॥ १० (हा) ॥

(नरा) नेतृरूपी (इन्द्राग्नी) शक्ति और ज्ञान से सम्पन्न हे परमेश्वर ! (इदम्) इस (सुतम्) निष्पन्न (सवनम्) भक्तिरस के (उप) निकट, (ताभिः) उन सुख-सामग्रियों समेत आप (सोमपीतये) भक्तिरसपान के लिये, (आगच्छतम्) आइये, दर्शन दीजिये ।

॥ इति तृतीयः खण्ड ॥ ३ ॥ [धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त ११

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
९९४—अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
२ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥

(सोम) सौम्य स्वभाव वाले हे परमेश्वर ! (द्युमत्तमः) प्रखर द्युति से सम्पन्न आप, (द्रोणानि) उपासकों के पञ्चकोशों को (रोरुवत्) भक्ति के सामगानों द्वारा गुञ्जाते हुए, (वनेषु) वनों में या जलों के समीप उपासना-रत उपासकों के (योनौ) हृदय-गृहों की (अभि) ओर (अर्ष) गति कीजिये, और उनमें (आ सीदन्) आ स्थित हूजिये, आ विराजिये ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९९५—अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
१ २ ३ १ २
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥

(अप्साः) सुन्दर रूप या कर्मशक्ति प्रदान करने वाले (सोमाः) भक्तिरस, —(इन्द्राय) परमैश्वर्यवान्, (वायवे) प्राणाधार, (वरुणाय) पापनिवारक,

(विष्णवे) सर्वव्यापक परमेश्वर के प्रति (अर्षन्तु) प्राप्त हों; तथा (मरुद्भ्यः) सभी उपासकों के उपकार के लिये हों।

[अप्सः=रूपनाम (निघं० ३।७); तथा अपः कर्मनाम (निघं० २।१) + षणु दाने। मरुतः=ऋत्विजः (निघं० ३।१८)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९९६—इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः।

१ २ ३ १ २

आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ ॥ ११ (ला) ॥

(सोम) हे सौम्य स्वभाव वाले परमेश्वर! (सहस्रिणम्) हजारों प्रकार के ऐश्वर्यों को (दधत्) धारण करते हुए आप, (विश्वतः) सब ओर से, (नः) हमारी (तोकाय) सन्तानों के लिये, (अस्मभ्यम्) और हम उपासकों के लिये, (इषम्) अभीष्ट सम्पत्तियों को (आ पवस्व) प्रवाहित कीजिये।

[धा० १४। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त १२

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

९९७—सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ १ ॥

(अवीनाम्) रक्षक-गुरुओं के सदा (स्नुभिः) प्रवाहित सदुपदेशों के कारण, (सोतृभिः) भक्तिरस के निष्पादक उपासकों के प्रयत्नों द्वारा, (स्वानः) निष्पन्न (सोमः) भक्तिरस, जब (अधि) अधिक मात्रा में प्रकट होता है, तब यह (इव) मानो (हरिता) परमेश्वर को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली (अश्वया) शीघ्रगामिनी (धारया) धारारूप में (याति) परमेश्वर की ओर प्रवाहित होने लगता है, (मन्द्रया) हर्षोत्पादक (धारया) धारारूप में (याति) प्रभु की ओर प्रयाण करता है।

१ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

९९८—अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते

॥ २ ॥ ॥ १२ (फ) ॥

(गोभिः) वैदिक स्तुतिवाणियों द्वारा (गोमान्) स्तुतियां करने वाला उपासक, जब उपासक के लिये (अनूपे) जलप्रधान देश में, अर्थात् नदियों के समीप (अक्षाः) निवास करता है, तब (सोमः) भक्तिरस (गोभिः) वेदवाणियों के ज्ञान-दुग्धों के साथ मिलकर (अक्षाः) क्षरित होने लगता है, प्रवाहित होने लगता है। तब (समुद्रम्) समुद्र के प्रति (न) जैसे नदियां स्वभावतः प्रवाहित होती हैं वैसे (संवरणानि) प्रभु की स्वीकृतियां उपासक के प्रति (अग्मन्) प्रवाहित होने लगती हैं, और उपासक

(मन्दी) प्रसन्न होकर (मदाय) प्रभु के आनन्दरस की प्राप्ति के लिये (तोशते) आन्तरिक कामक्रोधादि शत्रुओं का हनन कर देता है।

[अक्षा:="क्षियति निगम: पूर्व:, क्षरतिनिगम उत्तर:" (निरु० ५।१।३)। तोशते वधकर्मा (निघं० २।१९)]

[धा० १५। उ० २। स्व० १]

सूक्त १३

१ २ ३ २ ३क ३र ३ १ २र ३ १ २
९९९—यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु।
१ २ ३ १ २र
तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥

(सोम) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक हे प्रभो ! (चित्रम्) विचित्र, (उक्थ्यम्) वैदिक सूक्तों में प्रशंसित, (पार्थिवम्) पार्थिव जीवन सम्बन्धी (यत्) जो (दिव्यं वसु) दिव्यधन अर्थात् मोक्षधन है, उसे (नः) हमें (आ भर) प्रदान कीजिये, इस निमित्त आप हमें (पुनानः) पवित्र करते रहिये।

[शारीरिक जीवन का उद्देश्य है,—मोक्ष प्राप्ति]

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०००—वृषा पुनान आयूँषि स्तनयन्नधि बर्हिषि।
२ ३ २उ ३ १ २
हरिः सन्योनिमासदः ॥ २ ॥

हे प्रभो ! (वृषा) आप आनन्दरस की वर्षा करते हैं; (आयूँषि) हमारे जीवनों को (पुनानः) पवित्र करते हुए, तथा (बर्हिषि अधि) उपासना-यज्ञ में (स्तनयन्) दिव्य ध्वनीयों की गर्जना करते हुए, (हरिः सन्) क्लेशापहरण करने वाले आप, (योनिम्) हृदय-गृह में (आ सदः) स्थिर स्थित हो जाइये।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१००१—युवँ हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती।
३ १ २ ३ १ २
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ३ ॥ ॥ १३ (पु) ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! तू, (च) और (इन्द्रः) परमेश्वर, (युवम्) तुम दोनों मिल कर (स्वः पती) सुखों के स्वामी, तथा (गोपती) इन्द्रियों के स्वामी बने हो। (ईशाना) तुम दोनों, उपासनाओं के अधीश्वर हो। (धियः) हमारी सद्बुद्धियों और सत्कर्मों को तुम दोनों मिल कर (पिप्यतम्) समृद्ध करो।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [धा० १५। उ० १। स्व० ५]

सूक्त १४

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २र
१००२—इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ १
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्
॥ १ ॥

(नृभिः) नर-नारियों द्वारा उपासित (इन्द्रः) परमेश्वर, उपासकों के (वृत्रहा) पाप-वृत्रों का हनन करता, और उपासकों की (वावृधे) वृद्धि करता है, और उन्हें (मदाय) आनन्द तथा (शवसे) बल के प्रदान के लिये तत्पर रहता है। (तम्) उस (ऊतिम्) रक्षक का (इत्) ही (हवामहे) हम आह्वान करते हैं,— (महत्सु) बड़े और (अर्भे) छोटे (आजिषु) देवासुर संग्रामों में। (सः)वह परमेश्वर (वाजेषु) देवासुर संग्रामों में (नः) हम उपासकों की (प्र अविषत्) विशेष रक्षा करता है।

[महत्सु अर्भे=जब काम, क्रोध, मोह आदि इकट्ठे होकर आक्रमण करें तो यह बड़ा संग्राम है, और एकाध काम आदि आक्रमण करे तो यह छोटा संग्राम है। वाजे=संग्राम (निघं० २।१७)]

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
१००३—असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते
१ २
वसु ॥ २ ॥

(वीर) कामादि शत्रुओं के विनाश करने में वीरतासम्पन्न हे परमेश्वर! (सेन्यः) कामादि की सेना के प्रति अभियान योग्य आप (हि) ही (असि) हैं। (असि) आप ही हैं (भूरि) पूर्णरूप में (परादादिः) इन शत्रुओं को परे धकेलने वाले। (दभ्रस्य) छोटे उपासक के (वृधः) वर्धक (चित्) भी (असि) आप ही हैं। (यजमानाय) उपासना-यज्ञ के यजमानों को आप ही उपासना-यज्ञ करने की (शिक्षसि) शिक्षाएँ देते हैं। तथा (सुन्वते) भक्तिरस वाले उपासक के लिये (ते) आप का (भूरि वसु) प्रभूत धन है।

२ ३ १ २ ३ १ २
१००४—यदुदीरत आजयोः ॥ ३ ॥ ॥ १४ (खु) ॥

(यद्) जब (आजयः) देवासुर-संग्राम, जीवनों में (उदीरते) उठ खड़े होते हैं, तब (धृष्णवे) असुरों का घर्षण अर्थात् पराभव करने वाले उपासक के लिये हे परमेश्वर! आप (धनम्) आध्यात्मिक बल रूपी धन (धीयते) प्रदान करते हैं। (मदच्युता) जिन से सांसारिक मद चू रहा है ऐसे (हरी) हमारे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियरूपी अश्वों को आप ही (युंक्ष्वा) योगविधि द्वारा योगयुक्त करते हैं। आप

(कम्) किसी का अर्थात् असुरों का तो (हन:) हनन करते हैं, और (कम्) किसी को अर्थात् देवों को (वसौ) सम्पत्ति में (दध:) स्थापित करते हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (अस्मान्) हम उपासकों को (वसौ) सम्पत्ति में (दध:) स्थापित कीजिये।

(धा० २६। उ० २। स्व० ५)

सूक्त १५

३ २ ३ १ २३२३
१००५—स्वादोरित्था विषूवतो। ॥ १ ॥

(गौर्यः) शुक्ल अर्थात् सात्विक चित्तवृत्तियां,—(स्वादोः) स्वादु, (विषूवतः) सांसारिक स्वादों से विलक्षण (मधोः) तथा मधुर आनन्दरस का (पिबन्ति) पान करती हैं,—(इत्था) यह सत्य है, (याः) जो शुक्ल अर्थात् सात्विक चित्तवृत्तियां कि (इन्द्रेण) परमेश्वर के (सयावरीः) साथ विचरतीं, और (वृष्णा) आनन्दरसवर्षी परमेश्वर के साथ रह कर (मदन्ति) सदा तृप्त रहतीं, तथा (वस्वीः) परमेश्वर का सदा सहवास करती हैं। हे उपासक ! तू इस प्रकार (स्वराज्यम् अनु) अपने आत्मिक-राज्य को लक्ष्य बना कर (शोभथाः) शोभा को प्राप्त हो।

[आत्मिक-राज्य=शरीर, इन्द्रियों, मन पर आत्मा का राज्य]

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
१००६—ता अस्य पृशनायुवः सोमँ् श्रीणन्ति पृश्नयः।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रँ् हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु
३ १ २
स्वराज्यम् ॥ २ ॥

(अस्य) इस उपासक की (ताः) वे शुक्ल सात्विक चित्तवृत्तियां (पृशनायुवः) केवल ज्योतिर्मय आदित्यवर्णी परमेश्वर की ही कामना करती हैं। वे शुक्ल सात्विक चित्तवृत्तियां जो कि स्वयं (पृश्नयः) नानाविध ज्योतियों से सम्पन्न हैं, वे (सोमम्) इस उपासक के भक्तिरस का (श्रीणन्ति) परिपाक कर देती हैं। शुक्ल सात्विक चित्तवृत्तियां (इन्द्रस्य) परमेश्वर को (प्रियाः) प्रिय हैं, और (धेनवः) दुधार गौओं के सदृश आध्यात्मिक प्रज्ञा रूपी दुग्ध का पान करती हैं, और (सायकम्) कामादि का अन्त करने वाला (वज्रम्) ज्ञान-वज्र (हिन्वन्ति) प्रदान करती हैं। ये शुक्ल सात्विक चित्तवृत्तियां (स्वराज्यम्) उपासक के आत्मिक राज्य को (अनु) लक्ष्य कर (वस्वीः) उसके चित्त में बस जाती हैं, स्थिर हो जाती हैं।

[पृशनायुवः=पृश्निः+युवः। पृश्निः=आदित्यो भवति प्राश्नुत एनं वर्णः (निरु० २।४।१४)। परमेश्वर आदित्यवर्णी है यथा: "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" (यजु० ३१।१८) सायकम्=षो अन्तकर्मणि।]

१ १ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१००७—ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्
॥ ३ ॥ ॥ १५ (ब) ॥

(अस्य) इस उपासक की (ताः) वे शुक्ल सात्त्विक चित्तवृत्तियां, (प्रचेतसः) प्रज्ञा सम्पन्न होकर, (नमसा) नमस्कारों द्वारा, परमेश्वर की (सहः) पराभव शक्ति की (सपर्यन्ति) मानो पूजा करती हैं, और (अस्य) इस उपासक के (पुरूणि व्रतानि) नानाविध व्रतों को (सश्चिरे) प्रगति देती हैं, ताकि उपासक को परमेश्वर के सम्बन्ध में (पूर्वचित्तये) पूर्वानुभूतियां हो सकें। (स्वराज्यम्) उपासक के आत्मिक राज्य को (अनु) लक्ष्य करके शुक्ल सात्विक चित्तवृत्तियां उस के चित्त में (वस्वीः) वास कर लेती हैं, चित्त में स्थिर हो जाती हैं।

[सश्चिरे=सश्चति गतिकर्मा (निघं.२।१४)। पूर्वचित्तये=परमेश्वर के साक्षात् से पूर्व ध्यानी को कई प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूतियां होती हैं। यथाः— "नीहार धूम्रार्का निलानलानां खद्योत विद्युत्स्फटिक शशीनाम्। एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे" (श्वेता.अ.२,खं.११)। "पूर्वचित्तये" और "रूपाणि पुरः सराणि" में परस्पर भावसाम्य है]

॥ इति पंचमः खण्डः ॥५॥ [घा० । १५ उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १६

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
१००८—असाव्यꣳशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
३ २उ ३ १ २
श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥

उपासक के (मदाय) हर्ष के लिये (अंशुः) ज्योति (असावि) प्रकट हुई है। यह ज्योति उपासक के (अप्सु) प्राणों और कर्मों में (दक्षः) बल और उत्साह प्रदान करती है, (गिरिष्ठाः) जिस का कि वेदवाणी में वर्णन है। (श्येनः) बाजपक्षी (न) जैसे अपने आश्रय पर आ बैठता है, वैसे उपासक (योनिम्) जगन्माता की गोद में (आ सदत्) आ बैठा है।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
१००९—शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

(देववातम्) परमेश्वर-देव द्वारा प्रेरित, (अप्सु) कर्मरूपी जलों में (धौतम्) परिशोधित, (नृभिः) उपासक-नेताओं द्वारा (सुतम्) निष्पादित भक्ति-रस को, (गावः) स्तोतृवर्ग, (पयोभिः) वैदिक ज्ञान-दुग्ध के साथ मिश्रित कर, (स्वदन्ति) भक्तिरस का स्वाद लेते हैं।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१०१०—आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय ।
२ ३ १ २ ३ १ २
मधो रसꣳ सधमादे ॥ ३ ॥। १६ (चु) ॥

(आत्) तदनन्तर उपासक लोग, (अमृताय) अमर परमेश्वर तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिये, (सधमादे) उपासना-यज्ञ में, (हेतारम्) प्रेरणाप्रद (ईम् मधोः रसम्) इस मधुसमान मधुर भक्तिरस को (अशूशुभन्) अत्यन्त शुभ्र अर्थात् शोभ से युक्त करते हैं,(न) जैसे कि यात्रा के लिये यात्री,(हेतारम्)शीघ्र गामी (अश्वम्) अश्व को, (अशूशुभन्) साज-सामान से सुशोभित करते हैं।

[सधमादे=सधमाद=सहमदनम् (निरू० ७।७।३०) "सहमदन" का अभिप्राय "परस्पर मिलकर प्रसन्नता का अनुभव करना। उपासना-यज्ञ में परमेश्वर उपासक के भक्तिरस द्वारा प्रसन्न होता है, और उपासक परमेश्वरीय आनन्द-रस को प्राप्त कर प्रसन्न होता है]

[धा० १२। उ० १। स्व० ५]

सूक्त १७

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१०११—अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
१ २र ३ १ २
वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥

(इषस्पते) उपासकों के अभीष्ट मोक्ष के पति (देव) हे परमेश्वर देव! उपासना विषयक हमारे (द्युम्नम्) यश को, (बृहद् यशः) महायश के रूप में, (अभि) सर्वत्र (दिदीहि) चमका दीजिये, और (देवयुम्) आप देव के दर्शन को चाहने वाले मेरे (मध्यमं कोशम्) मध्यम कोश अर्थात् हृदय के बन्द कपाटों को (वि युव) खोल दीजिये।

[कोश पांच हैं। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, और आनन्दमय कोश। इन में मध्यम कोश है मनोमय कोश। मन का स्थान है हृदय। इसलिये मनोमय कोश हृदय है। योगदर्शन में कहा है कि "हृदये चित्त-संवित्" (३।३४), अर्थात् चित्त के स्वरूप का ज्ञान हृदय में संयम द्वारा होता है]

१ २ ३क २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
१०१२—आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १२
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः
॥ २ ॥॥ १७ (डा) ॥

(सुदक्ष) हे श्रेष्ठ बलशाली परमेश्वर! आप (चम्वोः) मष्तिष्क से पैरों तक समग्र शरीर में (सुतः) प्रकट होकर (आ वच्यस्व) हमें उपासना मार्ग का प्रवचन कीजिये। (विशाम्) प्रजाओं की रक्षा के भार का (वह्निः) वहन करने वाले (विश्पतिः) प्रजारक्षक राजा के (न) सदृश आप (विश्पतिः) प्रजाओं के रक्षक हैं। (दिवः) आकाश से (अपः) जल के (रीतिम्) प्रवाह की तरह आप अपने आनन्दरस की (वृष्टिम्) वर्षा (पवस्व) कीजिये। और (गविष्टये) इन्द्रिय संयम-

रूपी यज्ञ के कर्त्ता के लिये (धियः) सत्कर्मों-सद्बुद्धियों और ध्यानावस्थित को (जिन्वन्) प्रेरित कीजिये।

[धा० १८। उ० ३। स्व० २]

सूक्त १८

३ १ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१०१३—प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

हे परमेश्वर! (प्राणा=प्राणः) आप जगत् के प्राणस्वरूप हैं, (महीनाम्) प्रकाशमय सात्विक चित्तवृत्तियों के (शिशुः) शिशु हैं, उन द्वारा प्रकट होते हैं। (ऋतस्य) सत्यज्ञान के (दीधितिम्) प्रकाश को आप (हिन्वन्) उपासक में प्रेरित करते और बढाते हैं। (अध) तथा (विश्वा प्रिया) हमें प्रिय लगने वाले सब सांसारिक पदार्थों में आप, (द्विता) द्वैतरूप में, अर्थात् कर्त्ता और धर्त्तारूप में, (परि भुवत्) पूर्णतया व्याप्त हैं।

[अथवा "प्राणा"=प्राणानि। विश्वा प्रिया=विश्वानि प्रियाणि]

१ २ ३ १ २ ३ २ऽ १ २ ३ १ २र ३ २
१०१४—उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद्गुहा पदम्।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

(त्रितस्य) मेधा में तीर्णतम उपासक की (गुहा) हृदय-गुहा में, (पाष्योः) क्रियाशील जीवात्मा और परमेश्वर में (यद्) जो-जो (पदम्) निवास स्थान (उप अभक्त) पारस्परिक समीपता में बंटा हुआ हैं, उस अपने स्थान में रहता हुआ जीवात्मा,—(सप्त धामभिः) सात धामों में रहने वाले, (यज्ञस्य प्रियम्) उपासना यज्ञ के प्रिय परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।

[पाष्योः=यह पद संदिग्ध है। "पष्" धातु मान कर अर्थ किया गया है। स्वतन्त्र "पष्" धातु का अर्थ है,—गति। सप्तधाम=भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
१०१५—त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ॥ १८ (री) ॥

(त्रितस्य) मेधा में तीर्णतम उपासक की (पृष्ठेषु) पीठ की अस्थियों में (त्रीणि) तीन स्नायुएँ हैं, जोकि उपासक के लिये (रयिम्) सम्पद्रूप हैं। इन स्नायुओं में परमेश्वर, (धारया) धारारूप में, (प्रैरयत्) प्रेरणाएँ देता है। तदनन्तर

(सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों वाला परमेश्वर, (अस्य) इस उपासक की (योजना) योजनाओं और योगसाधनों को, (वि मिमीते) विशेषरूप में सिद्ध करता है।

[त्रीणि=इडा, पिंगला, सुषुम्णा]

[धा० ८ । उ० नास्तिः । स्व० ४]

सूक्त १९

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१०१६—पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ।। १ ।।

(सोम) हे भक्तिरस ! (सुतः) प्रकट होकर तू (वाजसातये) उपासक को बलप्रदान के लिये, (धारया) धाराप्रवाह रूप में (पवित्रे) उपासक के पवित्र हृदय में (पवस्व) प्रवाहित हो जा। (विष्णवे) व्यापक (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये, (देवेभ्यः) और दिव्य उपासकों के लिये, तू (मधुमत्तरः) अत्यन्त मधुर है।

१ २३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१०१७—त्वाँ रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ।। २ ।।

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! (अद्रुहः) द्रोह आदि भावनाओं से रहित (धीतयः) उपासक की ध्यान-वृत्तियां,— (विधर्मणि पवित्रे) विशेषतया आप को धारण करने वाले पवित्र हृदय में,—(हरिम्) क्लेशापहारी (त्वाम्) आप के दर्शन का (रिहन्ति) आस्वाद लेती हैं. (न) जैसे (मातरः) माताएँ (जातम्) नवजात (वत्सम्) शिशु के दर्शन का आस्वाद लेती हैं।

१ २र ३ १ २र
१०१८—त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ।।३।। १९ ।। ता ।।

(महिव्रत) हे महाव्रती परमेश्वर ! (त्वम्) आप (द्यां च पृथिवीं च) द्युलोक और पृथिवी लोक का, (अति) और उन से भी परे के लोकों का (जभ्रिषे) धारण-पोषण कर रहे हैं। आप (महित्वना) निजमहिमा द्वारा, (द्रापिम्) उपासक की कवच को, अर्थात् शरीर को, (प्रति अमुञ्चथाः) मुक्तावस्था में छुड़ा देते हैं।

[धा० २४ । उ० १। स्व० २]

सूक्त २०

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१०१९—इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा
॥ १ ॥

(इन्दुः) आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाशक, (वाजी) बलशाली, (गोन्योघाः) इन्द्रियों में अपना प्रवाह बहाने वाला (सोमः) भक्तिरस, (मदाय) जीवात्मा की तृप्ति के लिये, (इन्द्रे) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा में (सहः) बल (इन्वन्) प्रेरित करता हुआ (पवते) बहता है। (रक्षः) राक्षसी तामसिक भावों का (हन्ति) हनन करता है, (अरातिम्) अदान आदि राजसी भावों को (परि) पूर्णरूप में (बाधते) हटाता है, (वरिवः कृणोति) आध्यात्मिक-धन प्रदान करता है। यह (वृजनस्य) आध्यात्मिक बल का (राजा) राजा है।

[गोन्योघाः=गोनि (इन्द्रिय समह में)+ओघाः (आ+वह्+अस्)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१०२०—अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः।
२ ३ १ २ ५ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय॥२॥

(अध) तदनन्तर भक्तिरस (मध्वा धारया) मधुर धारा रूप में (पृचानः) समग्र देह में सम्पृक्त होकर, सम्पर्क कर के, (तिरः रोम) उपासक के रोम-रोम में (पवते) प्रवाहित हो जाता है। भक्तिरस (अद्रिदुग्धः) उपासक में ऐसे बरसता है जैसे कि मेघ से पानी। तब (इन्दुः) ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित जीवात्मा, (देवः) देव बन कर, (देवस्य) देवाधिदेव परमेश्वर के (सख्यम्) सखिभाव का (जुषाणः) प्रेम-पूर्वक सेवन करता हुआ, (मदाय) परमेश्वरीय प्रसन्नता के निमित्त, (मत्सरः) प्रसादक भक्तिरस को प्रवाहित करता है।

[अद्रिदुग्धः=अद्रि (मेघ; निघं० १।१०) + दुग्ध (मेघ से दोहा गया पानी)]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
१०२१—अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये
॥ ३ ॥ ॥ २० (पी) ॥

(पुनानः) पवित्र करता हुआ (देवः) देवाधिदेव परमेश्वर, (स्वेन) अपने (रसेन) आनन्दरस द्वारा (देवान्) दिव्य उपासकों को (पृञ्चन्) सम्पृक्त करता हुआ, (व्रतानि) इन के व्रतों को (अभि पवते) पवित्र करता रहता है। तव (इन्दुः)

ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित जीवात्मा, (ऋतुथा) समय-समय के अनुसार (धर्माणि) धर्मों की (वसानः) ओढ़नी ओढ़े हुए, (अव्ये) रक्षक प्रभु द्वारा रक्षणीय जगत् में (सानः) सदुपदेश देता हुआ, (दशः क्षिपः) १० विक्षेपों को, चित्त को बिक्षिप्त कर देने वाली चित्तवृत्तियों को, (अव्यत) हिंसित करता रहता है, हटाता रहता है।

[सानः=षणु दाने। क्षिपः=५ यमों और ५ नियमों की विरोधी भावनाएँ। यथाः—हिंसा, असत्य, चोरी, कामवासना, धनलोलुपता,—ये ५ भावनाएँ ५ यमों की विरोधी भावनाएँ हैं। इसी प्रकार अशुद्धि, सन्तोष का अभाव, तप का अभाव, स्वाध्याय का न करना, नास्तिकता, —ये ५ भावनाएँ ५ नियमों की विरोधी भावनाएँ हैं। ये १० भावनायें विक्षेप हैं। इन्हें योगदर्शन में "वितर्क" कहा है। यथाः=वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम् (२।३३) अव्यत=अव (हिंसायाम्)]

इति षष्ठः खण्डः ॥६॥ [धा० २० । उ० १ । स्व० ४]

सूक्त २१

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१०२२—आ ते अग्न इधीमही द्युमन्तं देवाजरम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषँ स्तोतृभ्य आ
२
भर ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप जगन्नेता! (ते) आप के (द्युमन्तम्) द्युतिमान् और (अजरम्) जीर्ण न होने वाले स्वरूप को हम उपासक अपने हृदयों में (आ इधीमहि) पूर्णतया प्रदीप्त करते हैं। (यत्) जो (ते) आप की (स्या) वह (समित्) सम्यक् प्रदीप्त हुई द्युति (द्यवि) द्युलोक में (दीदयति) चमक रही है वह द्युति, (पनीयसी) अधिक स्तुति के योग्य है। (देव) हे दिव्य प्रभो! (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के लिये (इषम्) अभीष्ट अपनी उस द्युति को (आ भर) प्रकट कीजिये।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१०२३—आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यँ हूयत इषँ स्तोतृभ्य
१ २
आ भर ॥ २ ॥

(ज्योतिष्पते) ज्योतियों के पति हे (अग्ने) प्रकाशमय जगन्नेता! (शुक्रस्य) पवित्र हुए उपासक की (हविः) आत्मसमर्पणरूपी हवि, (ऋचा) ऋचाओं में कथित विधि द्वारा (तुभ्यम्) आप के प्रति (आ हूयते) पूर्णतया समर्पित की गई है। (सुश्चन्द्र) हे सम्यक् आल्हाद देने वाले!, (विश्पते) हे प्रजाओं के पति!, (दस्म) हे अविद्या विनाशक!, (हव्यवाट्) हे समर्पित आत्म-हवि को स्वीकार करने वाले! आप (इषम्) अभीष्ट मोक्ष (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं को (आ भर) प्रदान कीजिये।

[चन्द्र=चदि आल्हादने]

१ २र ३ १ २ ३ १ २
१०२४—ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषँ स्तोतृभ्य आ भर
॥ ३ ॥ ॥ २१ (रा) ॥

(सुश्चन्द्र) हे सम्यक् आह्लादकारी !, (विश्पते) हे प्रजाओं के पति ! (दर्वी) विदीर्ण स्वभाव वाले द्युलोक-और-भूलोक, (उभे) इन दोनों को, आप अपने प्रलयाग्निरूपी (आसनि) मुख में, (आ) पूर्णरूप में (श्रीणीषे) पका कर पचा जाते हैं। (शवसस्पते) हे बलों के स्वामी! (उत उ) तथा (उक्थेषु) वैदिक सूक्तों के उच्चारण करने पर आप (नः)हमें, हमारे अभीष्टों द्वारा, (उत्पुपूर्याः) खूब ऊपर तक भर दीजिए, तथा (स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओं के प्रति (इषम्) अभीष्ट मोक्ष (आ भर) प्रदान कीजिए।

[आसनि—"अग्नि पश्चक्र आस्यम्" (अथर्व० १०।७।३३); "मुखादग्नि-रजायत" (यजु० ३१।१२)]

[धा० २८ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त २२

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
१०२५—इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥

हे उपासको ! (विप्राय) विशेषरूप में सर्वत्र परिपूर्ण, (बृहते) सर्वतो महान् (ब्रह्मकृते) संसार-और-वेदों के कर्त्ता, (विपश्चिते) मेधावी, तथा (पनस्यवे) स्तुति चाहने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए, (बृहत् साम) महा सामगान (गायत) मिल कर गाया करो।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
१०२६—त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वँ सूर्यमरोचयः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (अभिभूः असि) सांसारिक-और-आध्यात्मिक सब शक्तियों पर विजय पाए हुए हैं, (त्वम्) आपने (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) चमकाया है। (विश्वकर्मा) आप विश्व के कर्त्ता हैं, (विश्वदेवः) विश्व में एक मात्र उपास्य-देव हैं, या सब देवों के एकमात्र आश्रय हैं, (महान् असि) क्योंकि आप सबसे महान् हैं।

३ १ ३ १ २ ३ २ऽ १ २ ३ २ ३ २
१०२७—विभ्राजं ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनं दिवः ।
३ १ २ ३ १ २
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ २ ॥ ॥ २२ (ब) ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (ज्योतिषा) निज ज्योति द्वारा मेरे हृदय में (विभ्राजन्) चमकते हुए, (दिवः) द्युलोक के (स्वः) तपे हुए (रोचनम्) चमकीले सूर्य में भी (अगच्छः) प्राप्त हैं । (देवाः) दिव्य-उपासक, (ते) आप के (सख्याय) सखिभाव के लिए, (येमिरे) अपने आपको यम-नियमों में नियन्त्रित करते हैं ।

[स्वः="योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्" (यजु० ४०।१७)]

[घा० १५ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त २३

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ १
१०२८—असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियँ रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) आपके लिए (सोमः) भक्तिरस (असावि) प्रकट हो गया है । (शविष्ठ) हे महाबली !, (धृष्णो) हे आसुरी-भावों का पराभव करने वाले ! (आ गहि) हृदय में प्रकट हूजिये । (त्वा) आप के साथ (इन्द्रियम्) मेरी मन-रूपी-इन्द्रिय, योगविधि द्वारा, (आ पृणक्तु) पूर्णतया सम्पृक्त हो जाय, सम्बद्ध हो जाय, (न) जैसे कि (रश्मिभिः सूर्यः) रश्मियों वाला सूर्य (रजः) पृथिवी के साथ सम्बद्ध है ।

[पृथिवी का सूर्य के साथ दृढ़ सम्बन्ध है । पृथिवी दिन-रात सूर्य की परिक्रमा करती, और सूर्य से शक्ति पाती है । इसी प्रकार जीवात्मा का दृढ़ सम्बन्ध जब परमेश्वर के साथ हो जाता है, तो जीवात्मा की क्रियाशीलता का केन्द्र परमात्मा बन जाता है, और जीवात्मा सदा परमात्मा से शक्ति पाता रहता है ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०२९—आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाचीनँ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ २ ॥

(वृत्रहन्) हे पाप-वृत्रों का हनन करने वाले परमेश्वर ! (रथम्) मेरे शरीर-रथ में आप (आ तिष्ठ) आ विराजिए, इसके अधिष्ठाता बनिए । (ते) आपके निमित्त, (हरी) मेरे ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी अश्व, (ब्रह्मणा) वेदोक्त विधि द्वारा, (युक्ता) योगयुक्त हो चुके हैं (ग्रावा) सच्चा उपासक, (वग्नुना)

वेदोक्त प्रार्थनाओं द्वारा, (ते) आपके (मनः) मन को, (सु) अच्छे प्रकार (अर्वाचीनम्) स्वाभिमुख (कृणोतु) करता है।

[ग्रावा=गृणाति अर्चतिकर्मा (निघं० ३।१४)। वग्नु=वाक् (निघं० १।११), वच् धातु]

२ ३ १ २र ३ १ २
१०३०—इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्॥ ३॥ २३(पा)॥

वेदोक्त विधि द्वारा, योगयुक्त हुए (१०२६) (हरी) ज्ञानेन्द्रिय-और-कर्मेन्द्रिय रूपी अश्व,—(अप्रतिधृष्टशवसम्) अपराभूत शक्ति वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को,—(ऋषीणाम्) ऋषियों की (सुष्टुतीः) उत्तम स्तुतियों के (उप) समीप (च) तथा (मानुषाणाम्) मननशील मनुष्यों के (यज्ञम्) उपासना-यज्ञ के (उप) समीप (इत्) अवश्य (वहतः) प्राप्त करा देते हैं।

[अभिप्राय यह है कि योगविधि द्वारा किया गया इन्द्रिय-संयम, परमेश्वर को उपासक की ओर अवश्य झुका देता है, उपासना में चाहे वेदमन्त्रों का प्रयोग किया जाय, चाहे मानुषभाषा का प्रयोग किया जाय]

॥ इति सप्तमः खण्डः॥ ७॥ [दा० १०। उ० १। स्व० २]

इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः॥ ३॥

तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः॥ ३॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः।

[१]

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः॥ ४॥

(१—२४) १ (अकृष्टमाषादयः) त्रयः; २, ११ कश्यपो मारीचः; ३ मेधातिथिः काण्वः; ४ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः; ५ अवत्सारः काश्यपः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७, २१ कुत्स आङ्गिरसः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ त्रिशोकः काण्वः; १० श्यावाश्व आत्रेयः; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) १३ अमहीयुरांगिरसः; १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १६ (१, ३, २—पूर्वार्धः) मान्धाता यौवनाश्वः, १६ (२ उत्तरार्धः) गोधा ऋषिका; १७ असितः काश्यपो देवलो वा; १८ (१) ऋणंचयो राजर्षिः; १८ (२) शक्तिर्वा-

सिष्ठः; १९ पर्वतनारदौ काण्वौ; २० मनुः सांवरणः; २२ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा; २३ भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः ॥ १—६, ११—१३, १७—२१ पवमानः सोमः; ७, २२ अग्निः, ८ आदित्यः ६, १४—१६ इन्द्रः; १० इन्द्राग्नी; २३ विश्वे देवाः, २४ ॥ १, ७ जगती; २—६, ८—११ १३—१५, १७ गायत्री; १२ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १६ महापंक्तिः; १८ (१) यवमध्या गायत्री, १८ (२) सतो बृहती; १९ उष्णिक्; २० अनुष्टुप्; २१ त्रिष्टुप्; २२ द्विपदा विराट्: २३ द्विपदा त्रिष्टुप्, २४ ॥

सूक्त १

१०३१—ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नँ स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥

(यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ का (ज्योतिः) ज्योतिरूप परमेश्वर, (मधु प्रियम्) मधुर और प्रिय आनन्दरस (पवते) बहा रहा है । परमेश्वर (देवानाम्) प्रकाशमय सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र आदि का (जनिता पिता) जन्म-दाता और रक्षक है । (विभूवसुः) वह प्रभूत धनी है । (स्वधयोः) द्युलोक-और-भूलोक में (अपीच्यम्) छिपे हुए अर्थात् दृष्टिगोचर न होने वाले आनन्दरस रूपी (रत्नम्) रत्न को परमेश्वर अपने स्वरूप में (दधाति) धारण करता है, जो आनन्द रस (मदिन्तमः) उपासक में अत्यन्त हर्ष प्रकट करता, और (मत्सरः) आनन्द-सरोवर रूप है, वह (इन्द्रियः रसः) परमेश्वरीय-रस है ।

[स्वधे=द्यावापृथिवी नाम (निघं० ३।३०)]

१०३२—अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥

(वाजी) बलशाली परमेश्वर (अभिक्रन्दन्) अन्तर्नाद करता हुआ (कलशम्) उपासक के हृदय-कलश में (अर्षति) आता है। (सहस्रधारः) वह हजारों वेद-वाणियों का स्वामी है, तथा हजारों नक्षत्रों का धारण-पोषण कर रहा है, (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा है। (हरिः) अविद्या आदि क्लेशों का अर्परण करने वाला अपहरण परमेश्वर (मित्रस्य) सखा बने उपासक के (सदनेषु) हृदय-चक्र, आज्ञा-चक्र, सहस्रार-चक्र आदि में (सीदति) आसीन होता है। (वृषा) आनन्दवर्षी परमेश्वर (सिन्धुभिः) शरीर में बहती हुई (अविभिः) रक्षा करने वाली रस-रक्त आदि की नाड़ियों द्वारा, (मर्मृजानः) पवित्र कर रहा है।

[सहस्रधारः=धारा=वाक् नाम (निघं० १।११)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१०३३—अग्ने सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनँ स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥ ॥ १ (लु) ॥

हे परमेश्वर ! आप (पवमानः) पवित्रकारी हैं, (अग्रियः) सब के मुखिया हैं, (सिन्धूनाम्) बहती हुई नदियों को रास्ता दिखाने के लिए मानो आप उनके (अग्रे) आगे-आगे (अर्षसि) चलते हैं। (वाचः) वेदवाणियों के प्रकट होने से (अग्र) पहिले भी आप विद्यमान थे, तथा वेदवाणियों के मुख्य प्रतिपाद्य आप ही हैं। (गोषु) वेदवाणियों में आप ही (गच्छसि) साक्षात् और परम्परया व्याप्त हैं। उपासक के (अग्रे) संमुख आप ही हैं जो कि (वाजस्य) बल के (महत्-धनम्) महाधन को, अर्थात् बलरूपी-महाधन को (भजसे) धारण करते हैं। (स्वायुधः) कामादि के विनाश के लिए आप स्वयं-आयुध रूप हैं। (सोम) हे सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक ! (सोतृभिः) हृदयों में आपकी अभिव्यक्ति करने वाले उपासकों द्वारा आप ही (सूयसे) अभिव्यक्त किए जाते हैं।

[धा० २६। उ० नास्ति। स्व० ५]

सूक्त २

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

१०३४—असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।

३ १ २ ३ १ २र

शुक्रासो वीरयाशवः ॥ १ ॥

हम उपासकों में (सोमासः) प्रेरणा देने वाले भक्तिरस (प्र असृक्षत) तीव्र मात्रा में निष्पन्न हो गए हैं। (आशवः) ये भक्ति में वेग और (शुक्रासः) शक्ति देते, (वाजिनः) उत्साह और उद्यम देते, (गव्या) वाणी और इन्द्रियों में शक्ति देते, (अश्वया) मनमें शक्ति देते, (वीरया) और योगमार्ग पर चलने के लिए वीरता भर देते हैं।

[गव्या=गो (वाणी तथा इन्द्रियाँ)+या (प्रापणे)। अश्वया=अश्व (मन)+या (प्रापणे)। वीरया=वि ईर (गतौ)+या (प्रापणे)]

१ १ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१०३५—शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥

तदनन्तर उपासक, (ऋतायुभिः) सत्याभिलाषी गुरुजनों द्वारा, (शुम्भमानाः) सुशोभित कर दिए जाते हैं, और (गभस्त्योः) सूर्य-और-चांद की किरणों के सदृश (मृज्यमानाः) विशुद्ध कर दिए जाते हैं। उपासक तब (अव्यये) अविनश्वर परमेश्वर की नियत की गई (वारे) परिधि में (पवन्ते) विचरते हैं।

[ऋत=सत्य (निघं० ३।१०)। गभस्योः=गभस्तयः रश्मि नाम (निघं० १।५)]

१ १र ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०३६—ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा।
१ २ ३ १ २र
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥ ॥ २ (वी) ॥

(ते) वे (सोमाः) भक्तिरस के रसिक उपासक,—(दिव्यानि) द्युलोक सम्बन्धी, (पार्थिवा) पृथिवीलोक सम्बन्धी, (आन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्षलोक सम्बन्धी (विश्वा वसु) सब सम्पत्तियों के (दाशुषे) दाता परमेश्वर के लिए,—(पवन्ताम्) सर्वस्व समर्पित किया करें।

[घा० २०। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त ३

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१०३७—पवस्व देववीरति पवित्रँ सोम रँह्या।
१ २ ३ १ २र
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥

(सोम) हे भक्तिरस के रसिक उपासक! (देववीः) परमेश्वर-देव की कामना वाला तू (अति) सांसारिक मोह-माया को अतिक्रान्त करके, (रंह्या) शीघ्रता से (पवित्रम्) पवित्र परमेश्वर की ओर (पवस्व) प्रगति कर। (इन्दो) ज्ञान-प्रकाश वाले हे उपासक! (वृषा) अन्यों पर आध्यात्मिक-ज्ञान की वर्षा करने वाला होकर (इन्द्रम्) परमेश्वर में (आ विश) प्रवेश पा जा।

[देववीः=देव+वी (कान्ति, कामना)]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०३८—आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः।
१ २र ३ १ २
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

(इन्दो) हे ज्ञान-प्रदीप्ति प्रदीप्त उपासक ! तू (वृषा) आध्यात्मिक ज्ञानामृत की वर्षा करता हुआ, (प्सरः) आध्यात्मिक नया रूप धारण करके, (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त यशस्वी हुआ है ; (महि) पूजनीय और महान् परमेश्वर का (आ वच्यस्व) सर्वत्र प्रवचन कर, और (वर्णसिः) आध्यात्मिक-बलशाली बन कर, (योनिम्) मातृरूप जगदम्बा की गोद में (आ सदः) आ बैठ ।

[प्सरः=रूप नाम (निघं० ३।७) । वर्णसि=बल नाम (निघं० २।९)]

१२ ३२उ ३ १ २ ३१२ ३१२
१०३९—अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
३ १२ ३१२
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ।। ३ ।।

हे उपासक ! (सुतस्य) प्रकट हुए (वेधसः) जगद्-विधाता की, (प्रियं मधु) प्रिय मधु के समान प्रिय-और-मधुर (धारा) आनन्दरस धारा, (अधुक्षत) तेरे लिए दुग्ध-समान प्रवाहित हुई है । अतः हे उपासक ! (सुक्रतुः) सुकर्मा होकर तूने (अपः) आध्यात्मिक-कर्मों की ओढ़नी ओढ़ ली है ।

३१२ ३१ २र ३१२
१०४०—महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
१ २र ३१२
यद्गीर्भिर्वासयिष्यसे ।। ४ ।।

हे उपासक ! (यद्) जब तू (गीर्भिः) वेदवाणियों के उपदेशों द्वारा अपने आपको (वासयिष्यसे) सुवाहित कर लेगा, तब (महान्तम्) सद्गुणों से महान् बने (त्वा) तेरे प्रति, (महीः) आनन्दरस की महती-धाराएं (अनु अर्षन्ति) निरन्तर बहेंगी, जैसे कि (सिन्धवः) बहने वाले (महीः आपः) महा-जल-प्रवाह समुद्र की ओर (अनु अर्णन्ति) निरन्तर बहते रहते हैं ।

३ २३१ २ ३ २ ३१२ ३२
१०४१—समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
१ २ ३ १२ ३२
सोमः पवित्रे अस्मयुः ।। ५ ।।

(दिवः) द्युलोक का (विष्टम्भः) थामने वाला, (धरुणः) सर्वाधार, (सोमः) सर्व-प्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक, (समुद्रः) आनन्दरस-सागर परमेश्वर, (अप्सु) आनन्दरसों में आप्लुत उपासक को (मामृजे) सब प्रकार से शुद्ध कर देता है, और (पवित्रे) पवित्र हुए हृदय में अभिव्यक्त हो जाता है, (अस्मयुः) वह तो हमें चाहता ही है ।

१२ ३२३१२ ३२ ३१ २र३२
१०४२—अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
१ २र
सँ सूर्येण दिद्युते ।। ६ ।।

(वृषा) आनन्दरसवर्षी, (हरिः) क्लेशापहारी, (महान्) महतो महान्, (मित्रः न) मित्र के सदृश (दर्शतः) स्नेह-भरी दृष्टि से दर्शनीय परमेश्वर, (अचिक्रदत्) अन्तर्नाद प्रकट करता है। वह ही (सूर्येण) सूर्य के साथ (सं दिद्युते) सम्यक् चमक रहा है।

[सूर्येण:—जैसे व्यक्ति अपनी कृतियों द्वारा प्रकाशित होता है, वैसे परमेश्वर अपनी कृतियों अर्थात् सूर्य आदि द्वारा प्रकाशित हो रहा है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१०४३—गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

(इन्दो) चन्द्रसम आह्लाद-दायक हे परमेश्वर! (ते) आपके (ओजसा) प्रताप से (गिरः) हमारी वाणियां (मर्मृज्यन्ते) पूर्णतया विशुद्ध हो जाती हैं, अर्थात् प्रिय सत्यभाषिणी हो जाती हैं तब ये (अपस्युवः) आप की स्तुति-प्रार्थना करना चाहती हैं। (मदाय) हर्ष और आनन्द की प्राप्ति के लिए, उपासक की (याभिः) जिन प्रिय सत्यमयी वाणियों द्वारा आप (शुम्भसे) शोभा को प्राप्त करते हैं, अर्थात् जिन द्वारा आपकी शोभा के गान गाए जाते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१०४४—तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे।
२ ३ १ २ ३ २
तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥

हम उपासक (मदाय) आनन्दरस की प्राप्ति के लिए, (घृष्वये) पापों के घर्षण के लिए, तथा (तव) आप की (महे प्रशस्तये) महा-प्रशस्तियां गाने के लिए, (तम्) उस प्रसिद्ध तथा (लोककृत्नुम्) लोकलोकान्तरों के कर्त्ता (त्वा) आपके दर्शन की (ईमहे) याचना करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
१०४५—गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत।
३ २ ३ १ २ ३ २
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ९ ॥

(इन्दो) हे आह्लादकारी परमेश्वर! (गोषाः) आपने हमें इन्द्रियां-और वेदवाणियां दी है, (अश्वसाः) आपने ही बलशाली मन दिये हैं, (वाजसाः) आप ही अन्न और बल प्रदान करते हैं, (उत) और आप ही (नृषाः) उपासना के नायक सद्गुरु प्रदान करते (असि) हैं। आप (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ की (आत्मा) आत्मा हैं, (पूर्व्यः) तथा सनातन हैं।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१०४६—अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया।
३ १ २ ३ १ २
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ १० ॥ ॥ ३ (कै) ॥

(इन्दो) हे आनन्दप्रदाता परमेश्वर। (अस्मभ्यम्) हम उपासकों को आप (इन्द्रियम्) तृतीय नेत्र (पवस्व) प्रदान कीजिये; आप (मधोः) मधुर आनन्दरस को (धारया) धारारूप से हम पर बरसाईये, (इव) जैसे कि (वृष्टिमान्) वर्षा करने वाला (पर्जन्यः) मेघ, धारारूप में, जल बरसाता है।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [धा० ५१। उ० १। स्व० ८]

सूक्त ४

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०४७—सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले! (सोम) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर! आप (सना) दाता हैं, सनातन हैं, (च) और (जेषि) सर्वविजयी हैं। (नः) हमें (महि श्रवः) महायश रूपी (कृधि) कीजिये, (अथ) और (वस्यसः) आध्यात्मिक सम्पत्तियों के स्वामी कीजिये।

२ ३ २ ३ २ ३ २ऽ १ २ ३ १ २
१०४८—सना ज्योतिः सना स्व३र्विश्वा च सोम सौभगा।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर! आप अपनी (ज्योतिः) दिव्य ज्योति का दर्शन (सना) दीजिये, (स्वः) तथा सुख (सना) प्रदान कीजिये, और (विश्वा सौभगा) सब सौभग प्रदान कीजिये। (अथ) तथा (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ सम्पत्तियों से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

[सना=षणु दाने। सौभग=आध्यात्मिक ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य,—ये ६ भग हैं]

२ ३ १२ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
१०४९—सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर ! हमें (दक्षम्) बल, प्रगति, वृद्धि (सना) दीजिये, (उत) और (क्रतुम्) प्रज्ञा, क्रिया शक्ति, सत्संकल्प दीजिये। (मृधः) संग्रामकारी कामादि शत्रुओं का (अप जहि) विनाश कीजिये। (अथ) तथा (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ सम्पत्तियों से सम्पन्न कीजिये।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१०५०—पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥

(पवीतारः) हे पवित्र करने वाले गुरुजनो ! (इन्द्राय पातवे) परमेश्वर की स्वीकृति के लिये, हम उपासकों के (सोमम्) भक्तिरस को (पुनीतन) पवित्र करो। (अथ) और हे परमेश्वर ! तदनन्तर आप (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ आध्यात्मिक सम्पत्तियों से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

१०५१—त्वँ सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥

हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (तव) अपने (क्रत्वा) संकल्प तथा (तव) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा, (नः) हमें (सूर्ये) अपने दिव्य सूर्य-स्वरूप के (आ भज) भागी बनाइये। (अथ) तदनन्तर (नः) आप हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ आध्यात्मिक सम्पत्तियों से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१०५२—तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम्।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

हे परमेश्वर ! (तव) आप के (क्रत्वा) संकल्प तथा (तव) आपकी (ऊतिभिः) रक्षाओं के कारण, हम (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यम्) आप आदित्यवर्णी का (पश्येम) दर्शन करते रहें। (अथा) तदनन्तर आप (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ आध्यात्मिक सम्पत्तियों से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१०५३—अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसँ रयिम्।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक !, तथा (स्वायुध) पापों के निवारण में स्वयं आयुधरूप परमेश्वर ! (द्विबर्हसम्) बढ़ी हुई दो प्रकार की (रयिम्)

सम्पत्ति हमें (अभ्यर्ष) प्राप्त कराइये। (अथ) तदनन्तर आप (नः) हमें (वस्यसः) प्रभूत आत्मिक सम्पत्ति से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

[द्विबर्हसम् = शारीरिक और आध्यात्मिक; या अभ्युदय और निःश्रेयस; या परा और अपरा; या असम्भूति और सम्भूति]

३ २ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ २

१०५४—अभ्य३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः।

१ २ ३ १२

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

(वाजिन्) हे बलशाली परमेश्वर! (समत्सु) देवासुर-संग्रामों में (अनपच्युतः) न हारने वाले, अपितु आसुरी भावनाओं का (सासहिः) पराभव करने वाले आप (अभ्यर्ष) हमें प्राप्त हूजिये। (अथ) तदनन्तर आप (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ आत्मिक सम्पत्तियों से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

२ ३१२ ३१२ ३१२

१०५५—त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर! उपासक (विधर्मणि) आप के प्रति धारणा-ध्यान के विशिष्ट स्थान हृदय में, (यज्ञैः) उपासना यज्ञों की विधि द्वारा (त्वाम्) आप को (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं, आप के अधिकाधिक प्रकाश का लाभ करते हैं। (अथ) तदनन्तर आप (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ आत्मिक सम्पत्तियों से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१०५६—रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ ॥ ४ (घा) ॥

(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप (नः) हमें (चित्रम्) आश्चर्यकारी अद्भुत, (अश्विनम्) स्थिर रहने वाली, (विश्वायुम्) सर्वजनोपकारी (रयिम्) सम्पत्ति (आ भर) प्राप्त कराइये। (अथ) तदनन्तर आप (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ आत्मिक सम्पत्ति अर्थात् मोक्ष से सम्पन्न (कृधि) कीजिये।

[अश्विनम् = जो कल तक ही न रहे]

[घा० २२। उ० १। स्व० २]

सूक्त ५

१ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १२

१०५७—तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।

२ ३ २ ३ १ २

तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥

(सुतस्य) प्रकट हुए परमेश्वर की (अन्धसः) अन्नरूप (धारा) आनन्द-धारा जब प्रवाहित हो जाती है, तब (सः) वह उपासक (मन्दी) आनन्द से विभोर हुआ (धावति) मोक्ष की ओर दौड़ लगाता है, और भवसागर (तरत्) तैर जाता है।

[अन्धसः धारा=उपासक के लिये, परमेश्वरीय आनन्दरस धारा, आध्यात्मिक अन्न रूप है]

३ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
१०५८—उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः।
२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

(उस्रा) किरणों के सदृश प्रकाशमयी (देवी) दिव्यगुणी जगन्माता, (वसूनाम्) सम्पत्तियों में से, (मर्तस्य) उपासक की (अवसः) अन्न-सम्पत्ति को (वेद) जानती है [इसलिये वह आनन्दरस धारा को प्रवाहित करती हैं (मन्त्र १०५७)]। (तरत्स मन्दी धावति) पूर्ववत्।

[अवस्=अन्न नाम (निघं० २।७)]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१०५९—ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि च दद्महे।
२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

(ध्वस्रयोः) ध्वस्त अर्थात् विनष्ट होने वाले, और (पुरुषन्त्योः) पुरुष का अन्त कर देने वाले शारीरिक और मानसिक (सहस्राणि) हजारों भोगों को, (आ दद्महे) हम उपासक तिरस्कृत करते हैं। ऐसा उपासक (तरत्स मन्दी धावति) पूर्ववत्।

१ २र ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
१०६०—आ ययोस्त्रिँ शतं तना सहस्राणि च दद्महे।
२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ॥ ५ (हा) ॥

(ययोः) जिन शारीरिक और मानसिक भोगों के (तना) विस्तार (त्रिंशतम्) तीन सौ वर्षों की आयु तक चलते हैं, (च) और जो भोग (सहस्राणि) हजारों संख्या में विद्यमान हैं, हम उपासक उन सब का (आ दद्महे) तिरस्कार करते हैं। ऐसा उपासक (तरत्स मन्दी धावति) पूर्ववत्।

[त्रिंशतम्=वेदों में तीन सौ वर्षों तक की भी आयु का वर्णन है, और इसे "त्र्यायुष" शब्द द्वारा सूचित किया है। यथाः—त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं; यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्" (यजु० ३।६२)]

[धा० ६। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ६

३ १ २र ३१ २र ३ २
१०६१—एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे।
३ १ २ ३ १ २
मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥

(एते) ये (सोमाः) भक्तिरस, (महे शवसे) महाबल की प्राप्ति के लिये, (गृणानाः) परमेश्वर का स्तवन करते हुए, (मदिन्तमस्य) परमानन्द स्वरूप परमेश्वर की (धारया) आनन्दरस धारा के साथ (असृक्षत) संसर्ग करते हैं, मिश्रित हो जाते हैं। अर्थात् भक्तिरस और आनन्दरस का संमिश्रण हो जाता है। इसे मंत्रों में "सधमाद्य" कहा है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१०६२—अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि।
३ १ २ ३ १ २
सनद्वाजः परि स्रव ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (वीतये) मोक्ष की प्राप्ति के लिये, (गव्यानि) हमारी ऐन्द्रियिक (नृम्णा) शक्तियों को (पुनानः) पवित्र करते हुए आप, (अभि अर्षसि) हमें प्राप्त होते हैं। (सनद्वाजः) शक्ति प्रदान करते हुए आप, (परिस्रव) आनन्दरस-धारा रूप में हमारे समग्र शरीरों, मनों और आत्माओं में प्रवाहित होते रहिये।
[वाज.=बल (निघं० २।९)]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०६३—उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः।
३ २ ३ १ २
गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥ ॥ ६ (वि) ॥

(उत) तथा हे परमेश्वर ! (जमदग्निना) जिस ने अपने हृदय में अग्नि-स्वरूप आप को प्रज्वलित कर लिया है उस उपासक द्वारा, (गृणानः) आप हमें जीवनमार्ग का उपदेश देते हुए, (नः) हमें (परिष्टुभः) अति प्रशंसनीय (गोमतीः) इन्द्रिय सम्बन्धी (विश्वाः इषः) सब अभीष्ट (अर्ष) प्राप्त कराइये।

[गोमतीः इषः=उपासक, ध्यान में, जब बाह्य इन्द्रियों के विषयों से उपरत हो जाता है, तब ध्यानप्रकर्ष द्वारा उसे आन्तरिक इन्द्रिय-विषय प्रकट होने लगते हैं, जिनकी के अभिलाषा मन्त्र में प्रकट की गई है। इन आभ्यन्तर इन्द्रियविषयों को प्रातिभ-ज्ञान कहते हैं। यथाः="ततः प्रातिभ श्रावण वेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते" (योग ३।३६)। "ते व्युत्थाने सिद्धयः" (योग ३।३७) अर्थात् संयम के अभ्यास से श्रावण अर्थात् श्रवणेन्द्रिय की दिव्य और दूर के शब्द सुनने की योग्यता; वेदना अर्थात् त्वचा-इन्द्रिय की दिव्यस्पर्श जानने की योग्यता; आदर्श अर्थात् नेत्रे-न्द्रिय की दिव्यरूप देखने की योग्यता; आस्वाद अर्थात् रसनेन्द्रिय की दिव्यरस चखने की योग्यता; वार्ता अर्थात् घ्राणेन्द्रिय की दिव्यगन्ध सूंघने की योग्यता प्रकट

हो जाती है। इन योग्यताओं से जो ज्ञान होते हैं उन्हें प्रातिभज्ञान कहते हैं। प्रातिभ का अभिप्राय है "मन में अतीन्द्रिय, छिपी हुई, और दूरस्थ, अतीत और भविष्य वस्तुओं को जानने की योग्यता। ये प्रातिभज्ञान, व्युत्थितवृत्तिकचित्तों वाले योगियों के लिये, सिद्धिरूप हैं]

[घा० १५। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ७

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११६४—इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १॥

(अर्हते) पूजायोग्य, (जातवेदसे) वेद-प्रवक्ता परमेश्वर के लिये, (इमं स्तोमम्) इस सामगान को, (मनीषया) मनोभावना से, स्वेच्छा और श्रद्धापूर्वक, (सं महेम) हम मिलकर सत्कार रूप में भेंट करते हैं, (इव) जैसेकि कोई व्यक्ति किसी पूज्य व्यक्ति के प्रति, सत्कार रूप में, (रथम्) रमणीय रथ भेंट करता है। (अस्य) इस परमेश्वर के (संसदि) सत्सङ्ग में (नः) हमारी (प्रमतिः) सुमति (हि) निश्चय से (भद्रा) अधिक सुखदायिनी और कल्याणकारिणी हो जाती है। (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! (तव) आप के (सख्ये) सखिभाव में (वयम्) हम (मा रिषाम) दुःखी नहीं होते, कष्ट को प्राप्त नहीं होते।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१०६५—भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २॥

(अग्ने) हे अग्निस्वरूप परमेश्वर! (वयम्) हम उपासक, (पर्वणा पर्वणा) चित्त की प्रत्येक भूमि में, अवस्था में, (चितयन्तः) आप का चिन्तन करते हुए, (ते) आप के प्रति (इध्मम्) अपनी आत्मा को इध्मरूप में (भराम) समर्पित करते हैं, और अपनी नाना शक्तियों को (हवींषि) हविरूप में (कृणवाम) उपस्थित करते हैं। हे परमेश्वर! (जीवातवे) हमारे आध्यात्मिक जीवन के लिये, (धियः) हमारी बुद्धियों और कर्मों को, (साधय) योगसाधना के लिये (प्रतराम्) अत्यधिक साधना-मार्ग में लगाइये। (अग्ने) हे परमेश्वर! (तव) आप के (सख्ये) सखिभाव में रहते हुए (वयम्) हम (मा रिषाम) नष्ट नहीं होते।

[इध्मम्="अयं त इध्म आत्मा" (आश्व० १।१०।१२)]

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१०६६—शकेम त्वा समिधँ साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ८ १ २र ३ १ २र

त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यू३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा

३ १ ९र

वयं तव ॥ ३ ॥ ॥ ७ (छौ) ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! शक्ति दीजिये कि हम (त्वा) आपको (समिधम्) प्रदीप्त करने में, प्रकट करने में (शकेम) समर्थ हो सकें। (धियः) हमारी बुद्धियों और कर्मों को (साधय) साधना-मार्ग में लगाइये। (देवाः) दिव्य उपासक (त्वे) आप के अग्निस्वरूप में (आहुतं) आहुति की हुई (हविः) हवि अर्थात् अन्न (अदन्ति) खाते हैं। (आदित्यान्) योगविद्या में आदित्यसम प्रकाशी सिद्धों को (त्वम्) आप (आ वह) हमें प्राप्त कराइये, (तान् हि) उन्हें हम अवश्य (उश्मसि) चाहते हैं। (तव) आप के साथ (सख्ये) सखिभाव में (वयम्) हम (मा रिषेम) विनष्ट नहीं होते।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥ [धा० ३७ । उ० २ । स्व० १०]

सूक्त ८

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१०६७—प्रति वाँ सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।

३ १२ ३ १ २

अर्यमणँ रिशादसम् ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय होने पर मैं (प्रति) प्रतिदिन, (वाम्) आप के दो रूपों अर्थात् (मित्रम्) स्नेहकारीरूप और (वरुणम्) पाप-निवारक रूप की (गृणीषे) स्तुति करता हूँ। तथा (अर्यमणम्) आप के कामादि शत्रुओं के नियामक रूप की स्तुति करता हूँ। आप के ये तीनों रूप (रिशादशम्) हिंसा करने वाले कामादि के विनाशक हैं।

[अर्यमा=अरीन् नियच्छति (निरु० ११।३।२३)]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१०६८—राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे ।

३ १ २र ३ १ २

इयं विप्रा मेधसातये ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (हिरण्यया राया) हिरण्य आदि पार्थिव सम्पत्ति की प्राप्ति के साथ-साथ आप के उपर्युक्त तीनों रूपों की स्तुति करने की मेरी (इयं मतिः) यह मति बनी रहे, ताकि मैं (शवसे) बल को प्राप्त हो सकूँ जो बल कि अन्यों के लिये (अवृकाय) वृकरूप अर्थात् भेड़िये के रूप वाला न हो। (विप्राः) हे मेधावी उपासको ! (इयम्) यह मति (मेध सातये) उपासना-यज्ञ की सफलता के लिये है।

[पार्थिव सम्पत्ति की प्राप्ति के साथ-साथ आध्यात्मिक सम्पत्ति का भी संचय करते रहना चाहिये। अकेली पार्थिव सम्पत्ति व्यक्ति के लिये वृकरूप है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१०६९—ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह।
२ ३क २र
इषँ्स्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥ ॥ ८ (हा) ॥

(वरुण) हे पाप-निवारक (देव) परमेश्वर-देव ! हम उपासक (ते) आप के (स्याम) हो जायें। (मित्र) हे स्नेहकारी परमेश्वर-देव ! (सूरिभिः सह) अन्य सब विद्वान् उपासकों समेत हम (ते) आप के हो जायें। आपकी कृपा से हम (इषम्) अभीष्ट मोक्ष को तथा (स्वः) सांसारिक सुखों को (धीमहि) धारण करें।

[धा० ११। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ६

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१०७०—भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ॥१॥

हे परमेश्वर ! हमारी (विश्वाः) सब प्रकार की (द्विषः) द्वेष भावनाओं को (भिन्धि) छिन्न-भिन्न कर दीजिये। (बाधः) विघ्न बाधाओं को (परि) पूर्णतया (अप) पृथक् कर दीजिये। देवासुर संग्रामों में (मृधः) संग्रामकारी कामादि शत्रुओं का (जहि) पूर्ण ध्वंस कीजिये। और हमारा जो (स्पार्हम्) स्पृहणीय अर्थात् अभीप्सित (वसु) आध्यात्मिक धन है (तत्) वह हमें (आ भर) प्राप्त कराइये।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र३ २ ३ १ २
१०७१—यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! हमारी (यस्य ते) जिस आप के दिये (आनुषक्) निरन्तर (भूरेः दत्तस्य) प्रभूत दान को (विश्वम्) जगत् (वेदति) जानता है, उस दान में जो (स्पार्हम्) हम उपासकों का स्पृहणीय (वसु) मोक्षरूपी धन हैं, हमें तो आप (तत् आ भर) वही दीजिये।

२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २र ३ १ २
१०७२—यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम्।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥ ॥ ६ (चू) ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप ने (यत्) जो (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन अर्थात् दृढ़ता या वीरता (वीडौ) वीर योद्धा में (पराभृतम्) भर दी हैं, और (यत्) जो (वसु) धन अर्थात् मानसिक शक्ति (स्थिरे) स्थिर चित्तवृत्ति वाले योगी में भर दी है, तथा जो (वसु) धन अर्थात् प्रज्ञालोक (पर्शाने) मेघ अर्थात् धर्म मेघ समाधि के सम्बन्ध में भर दिया है (तत्) उस दृढ़ता वीरता, मानसिक शक्ति तथा प्रज्ञालोक को मुझ उपासक में भी (आ भर) भर दीजिये ।

[देखो मन्त्र संख्या २०७]

[प्रा० १२ । उ० १ । स्व० ६]

सूक्त १०

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०७३—यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।। १ ।।

(इन्द्राग्नी) हे बल और ज्ञान के भण्डार परमेश्वर ! आप के ये दो रूप (हि) निश्चय से (यज्ञस्य) उपासना यज्ञ के (ऋत्विजा) दो ऋत्विक् (स्थः) हैं। आप के दो रूप (वाजेषु) योगबलों की प्राप्ति में तथा (कर्मसु) योग सम्बन्धी क्रियाओं में (सस्नी) मानो हमारा स्नान करा देते हैं। हे परमेश्वर ! आप के दो रूप (तस्य) उस उपासना-यज्ञ के स्वरूप का (बोधतम्) बोध हमें कराएं ।

[योगाभ्यास के लिये शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की भी आवश्यकता है, और योगविधियों और योग-क्रियाओं के ज्ञान की भी आवश्यकता है। इसलिये परमेश्वर से बल और ज्ञान की प्रार्थना की गई है]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१०७४—तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।। २ ।।

(इन्द्राग्नी) हे बल और ज्ञान के भण्डार ! आप के दो रूप (तोशासा) कामादि विघ्नों का विनाश करते, (रथयावाना) शरीर रथों में प्रेरणाएं देते, (वृत्रहना) पाप-वृत्रोंका हनन करते, (अपराजिता) तथा इन कामों में पराजित नहीं होते। हे परमेश्वर ! आप के दोनों रूप मिल कर (तस्य) उस उपासना-यज्ञ के स्वरूप का (बोधतम्) बोध हमें कराएं ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१०७५—इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।। ३ ।। ।। १० (टा) ।।

(इन्द्राग्नी) हे बल और ज्ञान के भण्डार ! (नरः) उपासना-यज्ञ के नेता लोग ! (अद्रिभिः) पर्वतों में अभ्यास द्वारा, (वाम्) आप के दोनों रूपों से,—(इदं मदिरम्) इस मस्ताने और (मधु) मधुर आनन्दरस का (अधुक्षन्) दोहन करते हैं। हे परमेश्वर ! आप के दोनों रूप मिल कर (तस्य) उस उपासना-यज्ञ के स्वरूप का (बोधतम्) बोध हमें कराएं।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥३॥ [धा० ८। उ० १। स्व० २]

सूक्त ११

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
१०७६—इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम्। ॥ १ ॥

(इन्दो) चन्द्रसम आह्लाद देने वाले हे भक्तिरस ! तू (मरुत्वते) उपासना-यज्ञ के ऋत्विजों के स्वामी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (पवस्व) प्रवाहित हो जा। तू (मधुमत्तमः) परमेश्वर के लिये अति मधुर रूप है। ताकि मैं उपासक (अर्कस्य) वेद मन्त्रों और सूर्य की (योनिम्) जननी की गोद में (आ सदम्) आ बैठूं।

[मरुतः=ऋत्विजः (निघं० ३।१८)]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१०७७—तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम्।
१ २ ३ १ २
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥

हे भक्तिरस ! (धर्णसिम्) धारणा ध्यान तथा नम्रता पैदा करने वाले (तं त्वा) उस तुझ को, (वचोविदः) वेदवाणियों के वेत्ता (विप्रा आयवः) विप्र लोग, (परिष्कृण्वन्ति) परिष्कृत करते हैं। ये लोग (त्वा) तेरे स्वरूप का (सं मृजन्ति) सम्यक् मार्जन करते हैं, तुझे तमोगुण और रजोगुण के मलों से पृथक् करते हैं।

[धर्णसिम्=धृ धारणे, अवस्थाने+नसतिः नमतिकर्मा वा (निरु० ७।४।१७)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१०७८—रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे।
१ २ ३ १ २
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥ ११ ॥ (ल) ॥

(कवे) हे वेद-काव्यों के कवि परमेश्वर ! (पवमानस्य) पवित्र करने वाले (ते) आप के (रसम्) आनन्दरस का (पिबन्तु) पान किया करें,—(मित्रः) हमारे मित्रगण, (अर्यमा) शत्रुओं का नियमन करने वाले क्षत्रिय लोग, (वरुणः) पापों से निवारण करने वाले गुरुजन, (मरुतः) तथा सब प्रजाजन।

[मरुत्=म्रियते मारयति वा स मरुत् मनुष्य जातिः (उणा० कोष १।९४), वैदिक पुस्तकालय, अजमेर]

[धा० १४। उ० नास्ति। स्व०१]

सूक्त १२

३ १ २ ३ १ २र
१०७९—मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि॥ १॥

(सुहस्त्य) हाथों के विना भी सुन्दर हस्तकौशल वाले हे परमेश्वर! (मृज्यमानः) भक्तिरस रूपी जल द्वारा मानो शुद्धरूप में प्रकट किये गए आप, (समुद्र) उपासक के हृदय-समुद्र में (वाचम्) प्रेरणामयी वाणी (इन्वसि) प्रेरित करते हैं। (पवमान) हे पवित्र करने वाले! (पिशङ्गम्) शरीर के प्रत्येक अवयव में व्याप्त, (पुरुस्पृहम्) बहुत स्पृहणीय, तथा (बहुलम्) मात्रा में प्रभूत (रयिम्) आनन्दरस रूपी सम्पत्ति (अभि अर्षसि) हमें प्राप्त कराइये।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०८०—पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि
॥ २॥ ॥ १२ (ति) ॥

(पवमानः) स्वयं पवित्र तथा (पुनानः) अन्यों को पवित्र करता हुआ उपासक, (वारे) क्लेश निवारक (अव्यये) अविनश्वर परमेश्वर के आश्रम में रहता हुआ, (वने) वानप्रस्थी वन कर वनप्रदेशों में (अचिक्रदत्) ओ३म् नाद को गुञ्जाता हैं, और (वृषा उ) अन्य वानप्रस्थियों पर सदुपदेशों की वर्षा करता है। तदनन्तर (सोम) हे सर्वंप्रेरक तथा सर्वोत्पादक! (पवमान) तथा पवित्र करने वाले प्रभो! (गोभिः) वेदोक्त विधियों द्वारा (अञ्जानः) अभिव्यक्त हुए आप, (देवानाम्) दिव्य उपासकों के (निष्कृतम्) स्वच्छ पवित्र हृदयों में (अर्षसि) प्राप्त होते हैं।

[धा० २४। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १३

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०८१—एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्।
१ २ ३ १ २
समादित्येभिरख्यत॥ १॥

(सिन्धुमातरम्) जिस में रक्त स्पन्दन करता है ऐसा हृदय जिसकी माता है, (एतम्) ऐसे इस (त्यम्) प्रसिद्ध भक्तिरस को, (दश) ५ ज्ञानेन्द्रियां तथा ५

कर्मेन्द्रियां (मृजन्ति) शुद्ध कर देती हैं, (क्षिरः) जब कि ये १० इन्द्रियां अपनी पापमयी प्रवृत्तियों को फेंक देती हैं, दूर कर देती हैं,—(आदित्येभिः) आदित्य सदृश ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित उपासकों द्वारा, भक्तिरस की (सम् अख्यत) इस प्रकार सम्यक् व्याख्या की गई है।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

१०८२—समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।

१ २र ३ १ २

सँ सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

(सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) रश्मियों के प्रकट होने के साथ-साथ, (वायुना) प्राणायाम के अभ्यास से (पवित्रे) पवित्र हृदय में (सुतः) प्रकट हुआ भक्तिरस, (इन्द्रेण) परमेश्वर में (सम् एति) समा जाता है। (उत) और (आ) पूर्णतया (सम्) समा जाता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१०८३—स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।

१ २ ३ १ २र

चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥ ॥ १३ (टि) ॥

हे भक्तिरस! (सः) वह तू (नः) हमारे (भगाय) ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि के लिये, (वायवे) हमारी प्राणशक्ति तथा (पूष्णे) पुष्टि के लिये, (पवस्व) हम में प्रवाहित हो जा। (मधुमान्) तू मधुर है। (मित्रे) सर्वभूत मैत्री वाले, (वरुणे च) सर्वश्रेष्ठ उपासक में तू (चारुः) विशेष चमकता है।

॥ इति चतुर्थ खण्डः ॥४॥ [धा० ८। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १४

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१०८४—रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।

३ २ ३ २ ३ १ २

क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

(इन्द्रे) परमेश्वर जब (नः) हमारे (सधमादे) साथ मिलकर भक्तिरस और आनन्दरस के पारस्परिक भोग में प्रसन्न हो जाता है, तब (रेवतीः) आध्यात्मिक सम्पत्ति शाली वेद वाणियां (नः) हमें (तुविवाजाः) बहुत बलप्रदान करती हैं। (याभिः) जिन वेदवाणियों द्वारा, हम (क्षुमन्तः) अन्नभोगी उपासक (मदेम) आनन्द प्राप्त करते हैं। (देखो मन्त्र १५३)।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

१०८५—आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः।

३ २उ ३ २ ३क २र

ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ २ ॥

(धृष्णो) हे विघ्नविनाशक प्रभो ! (ईयानः) स्तोताओं के हृदय में आते हुए, प्रकट होते हुए आप, (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के उपकार के लिये, उन की आत्माओं को (त्मना) अपने स्वरूप के साथ (युक्तः) योगविधि द्वारा युक्त अर्थात् सम्बद्ध कर लेते हैं,—यह कार्य (त्वावान्) आप के ही योग्य हैं। (न) जैसे कि रथकार (चक्रयोः) रथ के दो चक्रों में (अक्षम्) धुरी डाल कर उन्हें परस्पर सम्बद्ध कर देता है, वैसे आप योग-साधना की धुरी डाल कर जीवात्माओं और अपने आप को (आ ऋणोः) परस्पर सम्बद्ध कर देते हैं,—(घ) यह निश्चित है।

[त्वावान्=युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्ये उपसंख्यानमिति वतुप्। आ ऋणोः=आ+ऋण् (गतौ)+उ (तनादि)+सिप्]

१ २र ३ १ २र ३ २
१०८६—आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम्।
३ २उ ३ १ २र
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ ॥ १४ (टी) ॥

(शतक्रतो) हे सैंकड़ों कर्मों वाले प्रभो ! (जरितृणाम्) स्तोताओं की (दुवः) सेवाओं या स्तुतियों और (कामम्) उनके अभीष्ट मोक्ष को (यद्) जब आप (शचीभिः) अपनी शक्तियों द्वारा (आ ऋणोः) परस्पर सम्बद्ध कर देते हैं, (न) जैसे कि (अक्षम्) धुरी, रथ के चक्रों को, परस्पर सम्बद्ध कर देती है,—तब आप (त्मना) अपने स्वरूप के साथ स्तोताओं की आत्माओं को (युक्तः) सम्बद्ध करते हैं (मन्त्र संख्या १०८५)।

[मन्त्र में जनसेवा और मोक्ष में कार्यकारण भाव सूचित किया है। जनता जनार्दन की निष्काम सेवा "कारण" है,—मोक्ष का। इस सेवा का अन्तिम फल है, —परमेश्वरीय आत्मा का स्तोताओं की आत्माओं के साथ मेल। यही मोक्ष है]

[प्रा० १८। उ० २। स्व० ४]

सूक्त १५

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१०८७—सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
३ २ ३ १ २
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

हम उपासक (ऊतये) रक्षा के लिये, (द्यविद्यवि) प्रतिदिन, (सुरूपकृत्नुम्) संसार में उत्तम-उत्तम रूपों और आकृतियों का निर्माण करने वाले, तथा उपासक के स्वरूप को श्रेष्ठ बना देने वाले परमेश्वर के प्रति (जुहूमसि) आत्म-समर्पणों की आहुतियाँ देते हैं, (इव) जैसे कि (गोदुहे) गौ को दोहने के लिये, (सुदुघाम्) सुगमता से दुही जाने वाली गौ के प्रति चारा देते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०८८—उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
३ २उ ३ २ ३ १ २
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

(सोमपाः) हे भक्तिरस को स्वीकार करने वाले परमेश्वर ! (नः) हमारे (सवना) भक्ति-यज्ञों में आप (उप आ गहि) प्रकट हूजिये, और (सोमस्य) भक्तिरस को (पिब) स्वीकार कीजिये। (रेवतः) आध्यात्मिक सम्पत्तियों के स्वामी आपका (मदः) दिया आनन्दरस (गोदाः) हमारी इन्द्रियों में शक्ति प्रदान करता है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१०८९—अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
२ ३ १ २ ३ १ २
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥ ॥ १५ (कौ) ॥

(अथ) तदनन्तर हे परमेश्वर ! (ते अन्तमानाम्) आप के अत्यन्त समीपवर्ती (सुमतीनाम्) सुमतिसम्पन्न उपासकों में रहते हुए हम, (विद्याम) आप को जान लें, और आपको प्राप्त कर लें। हे परमेश्वर (नः) हमारा आप (मा अतिख्यः) परित्याग न कीजिये, (आ गहि) हम में प्रकट हूजिये।

[धा० ११। उ० १। स्व० नास्ति]

सूक्त १६

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०९०—उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनाँ सम्राजं चर्षणीनाम्।
३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यद्) चूंकि आप (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और भूलोक में (आ) सब ओर (पप्राथ) भरपूर हो रहे हैं, (इव) जैसे कि (उषाः) उषा इन में भरपूर हो जाती हैं, इसलिये आप (महीनाम्) मह शक्तियों में (महान्तम्) सर्वोपरि महान् हैं, (चर्षणीनाम्) सब प्रजाजनों के (सम्राट्) सम्राट् हैं; (त्वाम्) आप को (देवी) दिव्यगुणों वाली, भक्तिमयी सात्त्विक चित्तवृत्तिरूप (जनित्री) जननी ने (अजीजनत्) जन्म दिया है, प्रकट किया है। (भद्रा) सुखदायिनी और कल्याणकारिणी भक्तिमयी सात्त्विक चित्तवृत्तिरूप (जनित्री) जननी ने (अजीजनत्) जन्म दिया है, प्रकट किया है।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०९१—दीर्घँ ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः।
३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥

(यथा) जैसे महावत, हाथी के नियन्त्रण के लिये, (दीर्घम् अंकुशम्) लम्बे अंकुश को धारण करता है वैसे (मन्तुमः) हे ज्ञानी (मघवन्) परमेश्वर ! आप, संसार के नियन्त्रण के लिये, (शक्तिम्) महाशक्ति को (बिभर्षि) धारण किये हुए हैं। और (यथा) जैसे (अजः) बकरा (पूर्वेण पदा) अपने अगले पाओं द्वारा (वयाम्) वृक्ष की शाखा को (यमः) नियन्त्रित कर लेता है, वैसे (अजः) अजन्मा आप, (पदा) अपने एक पाद द्वारा, संसार वृक्ष की (वयाम्) शाखा-प्रशाखाओं का (यमः) नियमन कर रहे हैं। (देव जनि०) पूर्ववत् [मन्त्र संख्या १०९०]।

[पदा=पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि (यजु० ३१।३, ४)]

१ २ ३ १ २र ३ २

१०९२—अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम्।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति।

३ १ २र ३ १ २र

देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥ १६(यौ) ॥

हे परमेश्वर ! (दुर्हणायतः) निर्लज्ज और क्रोधी (मर्त्तस्य) मनुष्य के (स्थिरम्) ढीठपन को आप (अव तनुहि) ढीला कर दीजिये, (स्म) ऐसा आप सदा करते रहे हैं। (यः) जो ऐसा व्यक्ति (अस्मान्) हम उपासकों को (अभिदासति) कष्ट पहुँचाता है (तम् ईम्) उसे आप (अधस्पदम् कृधि) ऐसे कुचलिये जैसे कोई वस्तु पैरों से कुचली जाती है। (देवी जनिः) पूर्ववत् (मन्त्र १०९०)।

[निर्लज्ज और ढीठ=जो कि उपासना का विरोधी है]

॥ इति पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥ [धा० ४२। उ० नास्ति। स्व० १०]

सूक्त १७

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

१०९३—परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्।

१ २ ३ १ २

मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥

(स्वानः) अन्तर्नाद करता हुआ, (गिरिष्ठाः) वेदवाणी में साक्षात् और परम्परया वर्णित, (सोमः) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर, (पवित्रे) पवित्र हृदय में (परि) सर्वत्र (अक्षरत्) आनन्दरस रूप में प्रथम क्षरित सा होता है, तदनन्तर प्रवाहित होता है। हे परमेश्वर ! आप (मदेषु) अपनी दी आनन्दमात्रा के आधार पर (सर्वधाः) सब का धारण-पोषण कर रहे (असि) हैं।

२ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र

१०९४—त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः।

१ २ ३ १ २

मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप मेधावी हैं, (त्वम्) आप (कविः) वेदकाव्यों के कवि हैं, आप (अन्धसः) अन्नमय कोश से (प्र जातम्) प्रकट हुए (मधु) मधुर रूप हैं। (मदेषु) अपनी दी आनन्दमात्रा के आधार पर आप (सवंधा असि) सब का धारण-पोषण कर रहे हैं।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१०९५—त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
१ २ २ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥ ॥ १७ (खा) ॥

हे परमेश्वर ! (सजोषसः) आप के साथ प्रीति रखने वाले आप के सेवक (देवासः) देवकोटि के (विश्वे) सब उपासक, (त्वे) आप में स्थित (मधु, [मन्त्र १०९४]) मधुर आनन्दरस का (पीतिम् आशत) पान करते हैं। (मदेषु) अपनी दी आनन्दमात्रा के आधार पर (सर्वधाः असि) आप सब का धारण-पोषण कर रहे हैं।

[धा० ११ । उ० २ । स्व० २]

सूक्त १८

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१०९६—स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥

(सः) वह (सोमः) सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर (सुन्वे) प्रकट हुआ है, (यः) जो कि (वसूनाम्) ८ वसुओं का (आ नेता) प्राप्त कराने वाला है, (यः) जो (रायाम्) सांसारिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का प्राप्त कराने वाला है, (यः) जो (इडानाम्) वेदवाणियों और नानाविध अन्नों का प्राप्त कराने वाला है, (यः) जो (सुक्षितीनाम्) उत्तमोत्तम तथा श्रेष्ठ महात्माओं, योगियों, सन्तों, तपस्वियों आदि का प्राप्त कराने वाला है।

[वसूनाम्:—पृथिवी, अग्नि; अन्तरिक्ष, वायु; द्युलोक, सूर्य; चन्द्रमा, नक्षत्र। इडा=वाक्; अन्न (निघं० १।११, तथा २।७)। क्षितयः=मनुष्यनाम (निघं० २।३)]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०९७—यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥१८(ली) ॥

हे परमेश्वर ! (यस्य ते) जिस आप के आनन्दरस का (इन्द्रः) सम्राट् (पिबात्) पान करता है, (यस्य ते) जिस आप के आनन्दरस का पान (मरुतः) वैश्य करते हैं, (यस्य ते) जिस आप के आनन्दरस का पान (अर्यम्णा) अरियों के नियमन करने वाले सेनापति के साथ मिलकर (भगः) भाग्यशाली प्रत्येक योद्धा करता है, या न्यायाधीश के साथ मिलकर धार्मिक लोग करते हैं, और (येन) जिस

आपके आनन्दरस के कारण (मित्रावरुणा) सर्वभूत मैत्री की भावना वाले तथा पापकृत्यों का निवारण करने वाले सदा आनन्दित रहते हैं, उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य-शाली परमेश्वर को, (महे अवसे) अपनी महा-रक्षा के निमित्त, (आ करामहे) हम उपासक स्वानुकूल करते हैं।

[वेद की शिक्षा है कि सभी प्रजाएँ तथा अधिकारी वर्ग, भक्तिरस की भेंट द्वारा, परमेश्वर को प्रसन्न कर, उस के आनन्दरस के भागी बनें, ताकि राज्य-शासन सुचारु रूप से हो सके।

[इन्द्रः="इन्द्रश्च सम्राट्, वरुणश्च राजा" (यजु० ८।३७)। मरुतः= मरुद्भ्यः वैश्यम् (यजु० ३०।५)]

[धा० ९। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त १९

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०९८—तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत।
१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः॥ १॥

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (वः) अपने (मदाय) हर्ष के लिये तुम (तं पुनानम्) पवित्र करने वाले उस परमेश्वर के, (अभि गायत) गीत गाओ। (न) जैसे कि (हव्यैः) नानाविध अन्नों द्वारा (शिशुम्) शिशु को (स्वदयन्त) तृप्त करते हैं, प्रसन्न करते हैं, वैसे (गूर्तिभिः) योगसाधनों में परिश्रमों द्वारा, उद्यमों द्वारा, परमात्मा को प्रसन्न करो।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०९९—सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते।
३ १ २र ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः॥ २॥

(इव) जैसे (मातृभिः) माताओं द्वारा (वत्सः) शिशु (सम् अज्यते) अलंकृत किया जाता है, वैसे (हिन्वानः) प्रेरणाप्रद और वृद्धिप्रदाता (इन्दुः) प्रकाशमय प्रभु (मतिभिः) गुणगानों द्वारा (परिष्कृतः) अलंकृत किया जाता है। (देवावीः) परमेश्वर देवकोटि के उपासकों की रक्षा करता और (मदः) आनन्दस्वरूप है।

[मतिभिः=स्तुतिभिः (सायण)]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
११००—अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः॥ ३॥॥ १९ (यि)॥

(अयम्) यह परमेश्वर (दक्षाय) प्रगति और वृद्धि के लिये (साधनः) साधनरूप है। (अयम्) यह (शर्धाय) बल के लिये तथा (वीतये) नवजीवन प्रदान

के लिये साधनरूप है। (अयम्) यह (सुतः) प्रकट होकर (देवेभ्यः) देवकोटि के उपासकों के लिये (मधुमत्तरः) अतिमधुर रूप है।

[धा० १७। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त २०

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११०१—सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १ ॥

(अस्मभ्यम्) हम नवीन उपासकों को,—(इन्दवः) चन्द्रमा के सदृश आह्लान तथा ज्ञान प्रकाश देने वाले, (गातुवित्तमाः) भक्तिमय सामगानों के यथार्थ नेत्ता, (मित्राः) सब के मित्र, (स्वानाः) धर्मोपदेश देने वाले, (अरेपसः) पापों से रहित (स्वाध्यः) आत्मचिन्तक, (स्वर्विदः) आनन्दमय प्रभु को प्राप्त हुए (सोमाः) भक्तिरस के रसिक गुरुजन—(पवन्ते) पवित्र करते हैं।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११०२—ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ २ ॥

(ते) वे (पूतासः) शरीर मन आत्मा से पवित्र, (विपश्चितः) मेधावी, (दध्याशिरः) धारणा ध्यान समाधि में परिपक्व, (सोमासः) भक्तिरस के रसिक उपासक, (सूरास न दर्शतासः) देखने में सूर्यों के सदृश (घृते) घृताहुति देने पर अग्नि के सदृश,(जिगत्नवः) इन्द्रिय विजयी तथा अपने व्रतों में (ध्रुवाः) दृढ़ निश्चय वाले होते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २र ३ २
११०३—सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥३॥२०॥ (वा) ॥

(वि अद्रिभिः) विविध पर्वतों में अभ्यास द्वारा (सुष्वाणासः) योगसिद्ध, (वसुविदः) यथार्थ आध्यात्मिक सम्पत्ति के अभिज्ञ योगीजन, (गोः) पृथिवी की (त्वचि अधि) परत पर (चिताना:) सब को सचेत करते हुए, हम उपासकों को (इषम्) हमारे अभीष्ट मोक्ष का (अस्वरन्) उपदेश देते हैं, और (सम्) मिलकर प्रभु की स्तुति का (अस्वरन्) गान (अभि) सर्वत्र करते हैं।

[धा० १०। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त २१

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११०४—अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ।१।

(इन्दो) चन्द्रसम शीतल हे प्रभो ! (अया) इस (पवा) धारा के रूप में आप (एना वसूनि) इन आध्यात्मिक सम्पत्तियों को (पवस्व) उपासक के प्रति बहाइये, और (माश्चत्वे) मांस के बने चार खानों वाले (सरसि) हृदय-सरोवर में (प्र धन्व) शीघ्रता से प्राप्त हो जाइये। (यस्य) जिस प्रभु का (ब्रध्नः चित्) महान् सूर्य, जैसे प्रकाश को स्वाश्रय में (धात्) धारण करता है, और (न) जिस प्रकार (वातः) वायु, (जूतिम्) वेग को स्वाश्रय में धारण करती है, वैसे (पुरुमेधाः चित्) महामेधावी प्रभु भी (तकवे) योगमार्ग पर प्रगति के लिये (नरम्) प्रत्येक उपासक नर-नारी को स्वाश्रय में (धात्) धारण करता है।

[ब्रध्नः=sun (आपटे)। तकवे=तकतिः गतिकर्मा (निघं० २।१४)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
११०५—उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
षष्टिँ सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ।।२।।

हे परमेश्वर ! आप (पवया) अपनी आनन्दरसमयी धारा द्वारा (पवस्व) हम में प्रवाहित हूजिये और हमें पवित्र कीजिये। (उत) तथा (श्रवाय्यस्य) श्रवण मनन योग्य आपके,—(तीर्थे) भवसागर से तैराने वाले,—(श्रुते अधि) वेद में प्रतिपादित जो (षष्टि सहस्रा) ६० हजार (नैगुतः) नैगम रत्न हैं, (एना वसूनि) इन उपदेश रत्नों को, आप (नः रणाय) हमारी रमणीयता के लिये प्रदान कीजिये, (न) जैसे कि कोई (पक्वं वृक्षम्) पके फलों वाले वृक्ष को (धूनवत्) कम्पा कर, (रणाय) वृक्ष के नीचे खड़े व्यक्ति की प्रसन्नता के लिये, उसे पके फल देता है।

[१९५६ में श्रीमती सार्वदेशिक सभा की ओर से दयानन्द वाटिका, दिल्ली में अनुसन्धान विभाग में मैं जब सामवेद पर लिख रहा था, तब मुझे "षष्टि सहस्रा" का अर्थ यह प्रतीत हुआ था कि चारों वेदों के लगभग २० हजार मन्त्र हैं, प्रत्येक मन्त्र के आध्यात्मिक, आधि दैविक और आधिभौतिक अर्थ स्वीकार करने पर नैगम रत्न ६० हजार हो जाते हैं। ऐसा ही सुझाव श्री पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड, आनन्द कुटीर, ज्वालापुर ने भी दिया है। जब तक और कोई उचित समाधान "षष्टि सहस्रा" का नहीं मिलता तब तक इसी समाधान को उत्तम समझना चाहिये। परन्तु इस समाधान में दो आपत्तियां प्रतीत होती हैं। एक यह कि चारों वेदों के मन्त्र २० हजार से अधिक हैं, दूसरी यह कि प्रत्येक मन्त्र के तीन-तीन अर्थ अवश्य हैं, —यह कथन सम्भवतः साध्यकोटि में प्रविष्ट है। किसी भी प्राचीन आचार्य ने अभी तक यह धारणा नहीं दर्शाई कि वेदों के प्रत्येक मन्त्र के तीन-तीन अर्थ होते हैं। वेद की उक्ति यथार्थ होनी चाहिये, काल्पनिक नहीं।

मेरी दृष्टि में "षष्टि सहस्रा" पद "असंख्येय" की भावना को प्रकट करते हैं। और इस "असंख्येय" अर्थ के ग्रहण में एक "सृष्टिगत घटना" भी प्रतीत होती है। दिन-रात, सप्ताह, मास के परिवर्तनों की अपेक्षया "ऋतु परिवर्त्तन" का प्रभाव जड़-चेतन पर अधिक अनुभूतिगम्य होता है। प्रत्येक ऋतु यतः दो मासों की होती है, इसलिए वेदों में एक वर्ष में ६ ऋतुएँ मानी हैं। वैदिक वर्ष ३६० दिनों का माना गया है। इसलिये प्रत्येक ऋतु ६० दिनों की होती है। सूर्य को सहस्रांशु, तथा सहस्ररश्मि, और सहस्रशृङ्ग भी कहा है। इस में सहस्र शब्द "नियत-सहस्रसंख्या" का वाचक नहीं अपितु अनियत "अधिक संख्या" का वाचक है। ६० दिनों में पृथिवी पर सहस्रांशु की कितनी किरणें पड़ती होंगी, - यह कहना असम्भव है। इन किरणों को असंख्येय ही कहा जा सकता है। वेदों के भी नैगम-रत्न असंख्येय हैं,— यह भावना "षष्टि सहस्रा" पदों द्वारा प्रतीत होती है। देखा जाय तो प्रत्येक मन्त्र में कई-कई उपदेश-रत्न हमें मिलते हैं। इस दृष्टि से "नैगम-रत्न" असंख्येय हैं,— यह समाधान मुझे अधिक सन्तोष-जनक प्रतीत होता है। "नैगुतो वसूनि"=नैगुता उ वसूनि=नैगुतानि उ वसूनि। निगुत्=नि+गु (शब्दे)+क्विप्+तुक्। निगुतः सम्बन्धीनि नैगुतानि। अर्थात् निगम सम्बद्धानि वसूनि। "घूनवत्" शब्द का प्रयोग यह दर्शाने के लिये किया गया है कि ऋषियों के हृदयों में, परमेश्वर ने एक प्रकार के विशेष कम्पनों के रूप में, वैदिक मन्त्रों का प्रकटन किया था। (धूञ् कम्पने)]
देखो मन्त्र संख्या ३२३; "दशभिः सहस्रैः"]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २र ३ १ २ ३ १ २
११०६—महीमे अस्य वृष नाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः
॥ ३ ॥ ॥ २१ (कि) ॥

(अस्य) इस परमेश्वर की (इमे) ये दो (मही) बड़ी शक्तियां हैं जोकि (शूषे) सुखदायी हैं, (वृष नाम) अर्थात् आनन्दरस की वर्षा करना, और उपासक को नम्र बनाना। ये दो शक्तियां,—(पृशने) जिस में परमेश्वरीय सम्पर्क हो चुका है ऐसे (माँश्चत्वे) मांस के बने चार खानों वाले हृदय में रहने वाले जीवात्मा का, (वधत्रे) जन्म-मृत्यु रूपी कष्ट परम्परा से, त्राण करती हैं। (निगुतः) निगम प्रोक्त (अमित्रान्) कामादि शत्रुओं को तो परमेश्वर (अस्वापयत्) सुला देता है, और निगम-प्रोक्त दया, दान, त्याग, उपासना, परोपकार आदि मित्र सद्भावनाओं को (स्नेहयत्) स्नेहपूर्वक जागरित करता है। परमेश्वर (अमित्रान्) अमित्र-भावनाओं को (अप) दूर करता है, और (अचितः) अज्ञान से उत्पन्न अन्य दुर्भावनाओं को भी (अप) दूर करता है, तथा इनकी विरोधी सद्भावनाओं को (अचेतः) सचेत कर देता है।

[शूषम्=सुखनाम (निघं० ३।६)]

इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ (धा० १६ । उ० १ । स्व० ३)

सूक्त २२

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
११०७—अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवा वरूथ्यः ।। १ ।।

(अग्ने) हे जगन्नेता ! (त्वम्) आप (नः) हमारे (अन्तमः) सबसे अधिक समीप हैं, (उत) और (त्राता) रक्षक हैं, (शिवः) कल्याण करने वाले हैं, (वरूथ्यः) और सर्वाधिक वरण करने योग्य तथा हमारे हृदय-गृहवासी (भुवः) हुए हैं।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११०८—वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ।। २ ।।

(अग्निः) जगन्नेता प्रभु (वसुः) सर्वत्र बसा हुआ है (वसुश्रवाः) वेदों में यह साक्षात् तथा परम्परया विश्रुत हुआ है। (द्युमत्तमः) परमेश्वर सर्वातिशायी प्रकाशमान है। हे परमेश्वर ! (नः अच्छ) हमें (नक्षि) आप प्राप्त हूजिये, (रयिम्) हमें आध्यात्मिक सम्पत्ति अर्थात् मोक्ष (दाः) प्रदान कीजिये।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११०९—तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः
।। ३ ।। ।। २२ (वा) ।।

(शोचिष्ठ) हे सर्वाधिक शुद्ध पवित्र !, (दीदिवः) हे अत्यन्त दीप्ति वाले! (सुम्नाय) हम अपने सुख और सौमनस्य के लिये, तथा (सखिभ्यः) अपने सखाओं के सुख और सौमनस्य के लिये, (नूनम्) निश्चय से, (तं त्वा ईमहे) आप से प्रार्थनाएँ करते हैं।

[ईमहे=याच्ञा (निघं० ३।१९)]

[धा० १५। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त २३

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१११०—इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।। १ ।।

हम उपासक (इमा) इन (भुवना) भुवनों अर्थात् पैरों, जङ्घाओं, उदर, छाती, हृदय, मस्तिष्क, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों आदि को,—(सीषधेम) सिद्ध करना चाहते हैं, इन सब की साधना करना चाहते हैं,—(इन्द्रः) परमेश्वर (च) और (विश्वे देवाः) सब दिव्य-उपासक गुरुजन, हमारी इस साधना को, (नु) शीघ्रता से (कम्) और सुखपूर्वक सफल करें।

३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
११११—यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ।। २।।

(इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारे (यज्ञम्) उपासना-यज्ञों को, (च तन्वम्) और हमारे शरीरों को, (प्रजां च) और हमारी सन्तानों को, (आदित्यैः सह) आदित्यसम तेजस्वी उपासकों के संगों द्वारा, (सीषधातु) सिद्ध करदे, योगसिद्ध बना दे।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१११२—आदित्यै रिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्
॥ ३ ॥ ॥ २३ (छा) ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (सगणः) आदित्य गणों और मरुद्गणों का स्वामी है। वह (आदित्यैः) आदित्य की किरणों द्वारा, तथा आदित्यसम तेजस्वी गुरुजनों द्वारा, और (मरुद्भिः) वायुओं, मानसूनों द्वारा, तथा उपासना यज्ञों को साधने वाले ऋत्विजों द्वारा (अस्मभ्यम्) हमें (भेषजा) शारीरिक-मानसिक-आत्मिक रोगों को दूर करने की ओषधियां (करत्) प्रदान करे।

[भेषजा=ओषधियां तथा सदुपदेश। मरुतः=ऋत्विजः (निघं० ३।१८)]
[धा० १२। उ० २। स्व० २]

सूक्त २४

१ २र

१११३-१५—प्र वोऽर्चोप ॥ १-३ ॥ ॥ २४ (य) ॥

हे उपासको! (वृत्रहन्तमाय) बुद्धि और आत्मा पर आवरण डालने वाले पापों का पूर्ण हनन करने वाले, (विप्राय) मेधावी तथा सर्वत्र परिपूर्ण (वः इन्द्राय) अपने परमैश्वर्यशाली परमेश्वर के प्रति, (गाथम्) भक्ति के सामगान (प्र गायत) खूब गाया करो, (यम्) जिन सामगानों को कि परमेश्वर (जुजोषते) प्रीति-पूर्वक स्वीकार करता है।

(सः इन्द्रः) वह परमेश्वर "इन्द्र" नाम वाला है, जो कि (श्रुतः) वेदविश्रुत है, (युवा) तत्त्वों के मिश्रण तथा विभाग द्वारा संसार की रचना और प्रलय करता और जिसकी शक्तियां सदा प्रौढ़ावस्था में रहती हैं, उस (अर्कम्) अर्चनीय परमेश्वर की (अर्चन्ति) अर्चनाएं करते हैं,—(स्वर्काः) उत्तम मन्त्रों वाले (मरुतः) उपासना यज्ञों के ऋत्विक् अर्थात् योगिजन। (आ स्तोभति) वह परमेश्वर वेदमन्त्रों द्वारा पदार्थों के गुणधर्मों का कथन करता है।

(मधुमति) जिस में परमेश्वर की मधुर आनन्द धारा प्रवाहित हो रही है उस (प्रक्षे) श्रेष्ठ निवास स्थान में अर्थात् हृदय में (क्षियन्तः) मग्न हुए हम उपासक, (इन्द्र) हे परमेश्वर! आप की कृपा से (रयिम्) आध्यात्मिक धन अर्थात् मोक्ष को (पुष्येम) परिपुष्ट करते हैं और (ते) आपका (धीमहे) ध्यान करते हैं।

[धा० २। उ० नास्ति। स्व० १]

इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ७ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अथाष्टमोऽध्यायः ।

[२]

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥४॥

(१-१४) १ (१-३) वृषगणो वासिष्ठः; १ (४-१२), २ (१-६) असितः काश्यपो देवलो वा; (१०-१२), ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३, ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४ यजत आत्रेयः, ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ सिकता निवावरी; ८ पुरुहन्मा आंगिरसः; ९ पर्वतनारदौ काण्वौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा; १० अग्नये धिष्ण्यो ऐश्वराः १२ वत्सः काण्वः; १३ नृमेध आंगिरसः; १४ अत्रिर्भौमः ॥ १-२, ७, ९-११ पवमानः सोमः; ३, १२ अग्निः; ४ मित्रावरुणौ; ५, ८, १३-१४ इन्द्रः; ६ इन्द्राग्नी ॥ (१-३,), ३ त्रिष्टुप्; १ (४-१२), २, ४-६, ११-१२ गायत्री; ७ जगती; ८ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतो बृहती); ९ उष्णिक्; १० द्विपदा विराट्; १३ (१-२) ककुप् १३ (३) पुर उष्णिक्; १४ अनुष्टुप् ॥

सूक्त १

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

१११६—प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१॥

(उशना) प्रजा के सुख की कामना वाला प्रभु (न) जैसे (काव्यम्) अपने वेदकाव्य का (प्र ब्रवाणः) प्रवचन करता हुआ, (देवानाम्) सृष्टि के दिव्यपदार्थों की (जनिमा) उत्पत्तियों का (वि वक्ति) विवेकपूर्वक कथन करता है, वैसे उपासक वेदकाव्य का प्रवचन करता हुआ, सृष्टि के दिव्य पदार्थों के यथार्थ स्वरूपों का कथन करता है। (महिव्रतः) महाव्रतधारी, (शुचिबन्धुः) पवित्र प्रभु का बन्धु, (पावकः) स्वयं पवित्र तथा अन्यों को उपदेशों द्वारा पवित्र करता है, और (पदा) वैदिक पदों द्वारा (रेभन्) नाद करता हुआ (अभ्येति) सर्वत्र आता-जाता है,—जैसे कि (वराहः) मेघ, आकाश को गुञ्जाता हुआ और वर्षा करता हुआ, आता-जाता है।

[वराहः=मेघ (निघं० १।१०)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

१११७—प्र हँ्सासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अङ्गोषिणं पवमानँ् सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥ २ ॥

(हंसासः) नीर-क्षीर विवेकी हंसों के सदृश सत्यानृत विवेकी परमहंस, (आमादः) गृह्याग्नि में न पके फलों और दूध आदि का सेवन करने वाले महात्मा, (वृषगणाः) गणों में रहकर उपदेशों की वर्षा करते हुए, (तं वग्नुम्) वेदवाणी के प्रवक्ता उस परमेश्वर को, (तृपलाः) शीघ्रता से, (अच्छ) साक्षात् (प्र अयासुः) प्राप्त हो जाते हैं। वे महात्मा (सखायः) सब के मित्र बन कर, (अङ्गोषिणम्) शरीरों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में उष्णता पैदा करने वाले, (पवमानम्) तथा पवित्र करने वाले, (दुर्मर्षम्) पापियों को क्षमा न करने वाले, अपितु उनके प्रति (वाणम्) वाण-स्वरूप प्रभु का (प्र वदन्ति) प्रकथन (साकम्) मिल कर करते हैं।

[वग्नुम्=वग् (वाक्, वेदवाणी)+नु(स्तुतौ)। तृपलाः=मानो तीन पलों में=शीघ्र]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २र

१११८—स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३॥

(उरुगायस्य) विस्तृत आकाशगृह में रहने वाले सूर्य की (गतिम्) गति को, सूर्य के साथ, (सः) वह परमेश्वर (योजते) जोते हुए हैं। (वृथा) विना निज-प्रयोजन के, मानो (क्रीडन्तम्) जगत् में क्रीड़ा सी करते हुए परमेश्वर के विस्तार का (न मिमते गावः) माप सूर्य की किरणें भी नहीं कर पातीं। (तिग्मशृङ्ग) तीव्रप्रकाश वाला परमेश्वर (परीणसम्) बहुविध जगत् को (कृणुते) उत्पन्न कर रहा है। (हरिः) यह क्लेशहारी है। (ऋजुः) ऋजु मार्ग अर्थात् सत्यमार्गगामी है। (दिवा) दिन में भी समाधि में (ददृशे) दृष्टिगोचर होता है, और (नक्तम्) रात में भी।

[परीणसम्=बहुनाम (निघं० ३।१)]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१११९—प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः।

१ २ ३ १ २

सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥

(सोमासः) भक्तिरस वाले उपासक, (रथाः इव) मेघों के सदृश (स्वानासः) उपदेशों में गर्जते हुए, तथा (अर्वन्तः न) गति देने वाले अश्वों के सदृश प्रजाजनों को प्रगतिपथ पर ले चलने वाले होकर (श्रवस्यवः) यश के भागी बनते हुए, (राये) और मोक्षधन की प्राप्ति के लिये (प्र अक्रमुः) आगे-आगे पग बढ़ाते रहते हैं।

[रथाः—ऋग्वेद १।८८।१ में "विद्युन्मद्भिः रथेभिः" द्वारा मेघों को भी रथ कहा है। अर्वन्तः=अर्वा का अर्थ निरुक्त में "ईरणवान्" किया है, अर्थात् "गति देने वाला" (निरु० १०।३।३०)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २र

११२०—हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।

१ २ ३ १ २

भरासः कारिणामिव ॥ ५ ॥

(इव) जैसे (रथाः) रथ, रथ-स्वामियों को प्रगति देते हैं, वैसे अपने उपदेशों द्वारा प्रजाजनों को (हिन्वानासः) प्रगति देते हुए उपासक, (गभस्त्योः) अपने पालन-पोषण के लिये प्रजाजनों के हाथों में (दधन्विरे) आश्रय पाते हैं, (इव) जैसे कि (भरासः) भरण-पोषण योग्य कैदी, (कारिणाम्) कारागार के अध्यक्षों के हाथों में, आश्रय पाते हैं।

[गभस्ती=बाहू (निघं० २।४)। कैदी सर्वथा अपने अध्यक्षों के हाथों निश्चित भरण-पोषण वाले हैं, इसलिये भरण-पोषण में ऐसी उपमा दी गई है]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

११२१—राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।

३ २उ ३ २ ३ १ २

यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥

(न) जैसे (राजानः) राजा लोग (प्रशस्तिभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (अञ्जते) प्रशंसा पाते हैं, वैसे (सोमासः) भक्तिरस सम्पन्न योगी (गोभिः) अपने स्तोतृवर्ग द्वारा (अञ्जते) शोभायमान होते हैं। (न) तथा जैसे (यज्ञः) वैदिक यज्ञकर्म (सप्त धातृभिः) यज्ञकर्मों के स्वरूपों का पोषण करने वाले ७ छन्दों वाले वैदिक मन्त्रों द्वारा (अञ्जते) अभिव्यक्त होते हैं, वैसे भक्तिरस सम्पन्न योगी, सात धारणा ध्यान आदि वाले ७ योगाङ्गों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं।

[गौः=स्तोतृनाम (निघं० ३।१६)। सात योगाङ्ग=यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। समाधिभी ध्यानरूप है,—ऐसा योग-दर्शन में कहा है (योग० ३।३)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

११२२—परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।

१ २ ३ १ २

मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥

(इन्दवः) ज्ञानदीप्ति से प्रदीप्त उपासक, (मदाय) प्रजाजनों के हर्ष के लिये, (बर्हणा गिरा) वृद्धिप्रद वेदवाणी द्वारा (स्वानासः) उपदेश देते हुए, (मधोः धारया) मधुर आनन्दरसमयी धारा के आश्रय (परि अर्षन्ति) सर्वत्र विचरते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

११२३—आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् ।

२ ३ २ ३ १ २

सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥

(विवस्वतः) सूर्य की (आपानासः) पान-स्थली अर्थात् समुद्र के सदृश गम्भीर, और (उषसः) उषा के सदृश (भगम्) ज्ञान प्रकाश को (जिन्वन्तः) प्रेरित करते हुए (सूराः) सूर्यसदृश तेजस्वी उपासक, (अण्वम्) वेदों के सूक्ष्म रहस्यों का (वि तन्वते) विस्तार करते हैं।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
११२४—अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥

(प्रत्नाः) पूर्ववर्ती (कारवः) स्तोताओं के सदृश ये (आयवः) उपासक जन, (वृष्णः) आनन्दरसवर्षी, और (हरसः) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर के (मतीनाम्) वैदिक ज्ञानों के (द्वारा) कपाटों को (अप ऋण्वन्ति) खोल देते हैं।

[कारुः=स्तोता (निघं० ३।१६)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११२५—समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः।
३ १ २र ३ १ २
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥

(समीचीनासः) सम्यक् आचारों और विचारों वाले, (जानयः) माताओं के सदृश स्नेह करने वाले, तथा (सप्त होतारः) सात होताओं के सदृश प्रजा-शरीर की (पिप्रतः) पालना करते हुए उपासक, (आशत) भूमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं, और (एकस्य) एक प्रभु की (पदं पिप्रतः) स्थानपूर्ति करते हैं।

[सप्त होतारः=मन्त्रों में इन्हें "सप्त ऋषयः" भी कहा है (यजु० ३४।५५) यथाः—५ ज्ञानेन्द्रियां, १ मन, और १ विद्या (निरु० १२।४।३६)। पिप्रतः=पृ पालन पूरणयोः]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
११२६—नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे।
३ १ २र ३ १ २
कवेरपत्यमा दुहे ॥ ११ ॥

मैं उपासक (नाभा) अपनी नाभि में, (नः नाभिम्) हम सब की नाभि परमेश्वर का (आ ददे) आधान करता हूँ, ताकि मैं (चक्षुषा) दिव्य दृष्टि पा कर (सूर्यम्) सूर्यों के सूर्य परमेश्वर का (दृशे) दर्शन पा सकूँ। (कवेः) वेद-काव्यों के कवि से (अपत्यम्) न पतन होने का (आ दुहे) मैं वर मांगता हूँ, अथवा मुझे अपना सच्चा पुत्र बनाले—यह वर मैं मांगता हूँ।

[नाभा नाभिम्:—योग दर्शन में नाभि में संयम का भी विधान है। यथा "नाभि चक्रे कायव्यूहज्ञानम्" (३।२९)। अर्थात् नाभिचक्र में संयम द्वारा शरीर

की समग्र रचना का ज्ञान हो जाता है। बच्चा जब मातृगर्भ में होता है तब उसका पालन-पोषण नाभि द्वारा ही हो रहा होता है, और इसी नाभिरूपी केन्द्र से बच्चे के समग्र शरीर में पोषण-तत्त्व पहुंच रहा होता है। अतः नाभि का सम्बन्ध शरीर के सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों के साथ है। इस नाभि-संयम द्वारा योगी को जब शरीर-रचना का पूर्णज्ञान हो जाता है, तब वह ऊपर के चक्रों में भी संयम करने लगता है। ऊपर के चक्र अर्थात् हृदय-चक्र, विशुद्ध चक्र आदि में से होता हुआ योगी आज्ञा-चक्र में जब संयम करता है, तब इसका तृतीय नेत्र खुल जाता है। इस तृतीय नेत्र को मन्त्र में "चक्षुषा" शब्द द्वारा निर्दिष्ट किया है। मन्त्र में परमेश्वर को "नाभि" कहा है। वह गजत् की नाभि है, गजद् योनि है। उसी द्वारा जगत् का पालन-पोषण हो रहा है]

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

११२७—अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।

१ २ ३ १ २

सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ ॥ ॥ १ ॥ (भै) ॥

(अध्वर्युभिः) हिंसारहित उपासना यज्ञ के नेताओं ने (अभि हितम्) कहा है कि (दिवः) प्रकाशमय प्रभु का (प्रियं पदम्) प्रिय स्थान (गुहा) हृदय-गुहा है। (सूरः) योग विद्या का विद्वान् उपासक, (चक्षसा) दिव्य दृष्टि द्वारा, (पश्यति) इस परमेश्वर का या इस रहस्य का साक्षात्कार कर लेता है।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥ [धा० ५७। उ० ४। स्व० ८]

सूक्त २

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

११२८—असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः।

३ १ २ ३ १ २

विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥

(धर्मन्) योगधर्म में विद्यमान, तथा (अस्य) इस योगधर्म की (योजना) योजनाओं अर्थात् विधियों के (विदानाः) ज्ञाता (इन्दवः) भक्तिरस वाले उपासक, (ऋतस्य पथा) योग प्रतिपादित सत्यपथ द्वारा, (सुश्रियः असृग्रम्) उत्तम शोभाओं से सम्पन्न हो जाते हैं।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ १र

११२९—प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते।

३ २ ३ २ ३ १ २

हविर्हविःषु वन्द्यः ॥ २ ॥

(अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ सर्वाग्रणी परमेश्वर (मधोः) मधुर भक्तिरस की (महीः) विशाल (धाराः अपः) धाराओं के जलों में (प्र विगाहते) खूब स्नान करता है, मानो डुबकियां लगाता है। (हविःषु) हमारी आत्म-समर्पणरूपी हवियों में (वन्द्यः) वही वन्दनीय है। (हविः) वह स्वयं हविरूप है।

[हविः=इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मन्त्र प्रकाश डालता है। यथाः—यत्पुरुषेण हविषा देवाः यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ (यजु० ३१।१४)। अभिप्राय यह कि ध्यान में प्रथम परमेश्वरीय भावनाओं को, और उस के स्वरूप को, जीवात्माग्नि में आहुत करना चाहिये। इस प्रक्रिया में परमेश्वर हविरूप है, और जीवात्मा अग्निरूप। ध्यानाभ्यास के प्रकर्ष से 'परमेश्वर रूपी हवि जब चमक उठती है, जैसे कि प्राकृतिक हवि को यज्ञियाग्नि में डालने से प्राकृतिक हवि चमक उठती है, तब परमात्मरूपी हवि अग्नि का रूप धारण कर लेती है, तब इस अग्नि के प्रति तीन ऋतुमय वर्ष, पूर्णरूप से लगा देना चाहिये, और इस अग्नि के प्रति वर्षकाल तथा अपने आप को, तथा अपनी समग्र शक्तियों को समर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार के उपासना-यज्ञ में एक बार तो परमेश्वर "हवि" बनता है और जीवात्मा अग्नि होता है। और दूसरी बार जीवात्मा और उस की शक्तियां "हवि" बनती हैं, और परमेश्वर अग्नि होता हैं। इस दृष्टि से मन्त्र में परमेश्वर को "हवि" कहा है]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
११३०—प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
सद्माभि सत्यो अध्वरः॥ ३॥

(वाचः) वेदवाणियों का (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ प्रतिपाद्य परमेश्वर (सत्यः) सत्यस्वरूप है, (अध्वरः) हिंसारहित है। (वने) वन में (युजा) योगसाधना द्वारा, (सद्म) हृदय-गृह की ओर (अभि) अभिमुख होता हैं, (वृषा उ) आनन्दरस की वर्षा करता, तथा (प्र अचिक्रदत्) उपासक को मार्गोपदेश करता है।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
११३१—परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति।
२र ३ १ २
स्वर्वाजी सिषासति॥ ४॥

(कविः) वेदकाव्यों का कवि परमेश्वर, (काव्या) वेदकाव्यों में, (परिअर्षति) सर्वत्र प्राप्त है, वर्णित हैं। (वाजी) बलवान् परमेश्वर (यत्) जब (नृम्णा) उपासक की शक्तियों को (पुनानः) पवित्र कर देता है, तब वह उपासक को (स्वः) दिव्य सुख (सिषासति) देने का अभिलाषी होता है।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
११३२—पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
यदीमृण्वन्ति वेधसः॥ ५॥

(वेधसः) विधियों के जानने वाले मेधावी उपासक जब (ईम्) इस परमेश्वर को (ऋण्वन्ति) स्वाभिमुख प्रेरित कर लेते हैं, तब (पवमानः) पवित्र करने वाला परमेश्वर, (स्पृधः) स्पर्धा, इर्ष्या आदि दुर्भावों का (अभि) स्पष्टतया (सीदति)

विनाश कर देता है, (इवा) जैसे कि (राजा) राजा, (स्पृधः विशः) राजपद की स्पर्धा करने वाले प्रजाजनों का, विनाश करता है।

[ऋण्वन्ति=प्रेरयन्ति (सायण)। स्पृधः विशः=Revolting subjects। सीदति=सद् विशरणे]

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
११३३—अव्या वारे परि प्रिया हरिर्वनेषु सीदति।
३ १ २ ३ २
रेभो वनुष्यते मती॥ ६॥

(अव्याः) रक्षक परमेश्वर द्वारा निर्दिष्ट, (वारे) पापनिवारक वैदिक परिधि में, केन्द्र बन कर रहने वाला उपासक, (परि प्रियः) सब का प्रिय बन कर, (वनेषु) वनों में (सीदति) आसन जमाता है, तब (हरिः) क्लेशहारी (रेभः) मार्गोपदेष्टा परमेश्वर, (मती) मनन-निदिध्यासन द्वारा, (वनुष्यते) सेवित होता है।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
११३४—स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति।
२ ३ १ २ ३ १ २
रणा यो अस्य धर्मणा॥ ७॥

(यः) जो उपासक (अस्य) इस परमेश्वर द्वारा प्रोक्त (धर्मणा) धर्म के सहारे (रणा) रमण करता है, (सः) वह (मदेन साकम्) आनन्द विभोर हुआ-हुआ (वायुम् इन्द्रम्) वायु, बिजुली (अश्विना) द्युलोक-पृथिवी लोक, सूर्य, चन्द्र, दिन-रात में (गच्छति) यथेच्छ विचरता है।

[अश्विना=द्यावापृथिव्यौ, अहोरात्रौ, सूर्याचन्द्रमसौ (निरु० १२।१।१)। मदेन वायुम्:—इस के लिये देखो (ऋ. १० १३६।१—७); यथाः—मुनयः वातरशनाः; वातस्यानु ध्राजिं यन्ति; उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम्; अन्तरिक्षेण पतति, उभौ समुद्रावा क्षेति; आदि]

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११३५—आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः।
३ १ २ ३ १ २
विदाना अस्य शक्मभिः॥ ८॥

(मित्रे) सर्वभूत मैत्री वाले, (वरुणे) श्रेष्ठ तथा पापों का स्वयं निवारण करने वाले, (भगे) धर्म-ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न उपासक में,—(मधोः) मधुर भक्ति रस की (ऊर्मयः) लहरें (आ) सदा (पवन्ते) प्रवाहित होती हैं। ये लहरें (अस्य) इस उपासक की (शक्मभिः) शक्तियों के अनुसार (विदानाः) इसे प्राप्त होती हैं।

[विदानाः=विद्लृ लाभे]

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
११३६—अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २
श्रवो वसूनि सञ्जितम् ।। ६ ।।

(रोदसी) द्युलोक की दैवी शक्तियां, तथा भूलोक की आधिभौतिक और आध्यात्मिक शक्तियां (अस्मभ्यम्) हम उपासकों को (रयिम्) आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य, (यशः) यश और (वसूनि) निवास योग्य साधन, (सं जितम्) अन्तरायों पर विजय पाने के रूप में प्राप्त कराएँ, ताकि हम (वाजस्य) शक्तिशाली (मध्वः) मधुर आनन्दरस के (सातये) भागी बन सकें।

२ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २
११३७—आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ।। १० ।।

हे परमेश्वर ! हम उपासक (अद्य) आज (ते) आप से (दक्षम्) योगमार्ग में प्रगति और वृद्धि (आ वृणीमहे) चाहते हैं जो कि (मयोभुवम्) सुखोत्पादक, (वह्निम्) हमें उद्देश्य की ओर ले लाने वाली, (आ पान्तम्) सब प्रकार से रक्षक तथा (पुरुस्पृहम्) बहुत अभीप्सित हैं।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
११३८—आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ।। ११ ।।

हे परमेश्वर ! (मन्द्रम्) आप आनन्द स्वरूप को (आ) हम चाहते हैं, (वरेण्यम्) वरण करने योग्य आप को (आ) हम चाहते हैं, (विप्रम्) मेधावी तथा सर्वत्र परिपूर्ण आप को (आ) हम चाहते हैं, (मनीषिणम्) मनस्वी आप को (आ) हम चाहते हैं, (पान्तम्) आप रक्षक को (आ) हम चाहते हैं, (पुरुस्पृहम्) बहुत अभीक्षित आप को (आ) हम चाहते हैं।

[मन्त्र ११३७ से "वृणीमहे" की अनुवृत्ति होती है। उपासक की सर्वोच्च कामना का वर्णन हुआ है। वह केवल प्रभुदर्शन ही चाहता है। [आ=आ वृणीमहे]

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
११३९—आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ।। १२ ।। २ (ण) ।।

(सुक्रतो) हमारे उपासना यज्ञों को सुलभ करने वाले हे परमेश्वर ! हम (रयिम्) सत्यस्वरूप आप को (आ) चाहते हैं, (सुचेतुनम्) उत्तम चेतनाप्रद आप

को (आ) हम चाहते हैं, (पान्तम्) रक्षक आप को (आ) हम चाहते हैं, (पुरुस्पृहम्) बहुत अभीप्सित आप को (आ) हम चाहते हैं, (तनूषु) इन्हीं वर्तमान शरीरों में आप को (आ) हम चाहते हैं।

["वृणीमहे" की अनुवृत्ति मन्त्र ११३७ से होती है। उपासक वर्तमान शरीरों में ही प्रभुदर्शन पाना चाहते हैं, ताकि अगले जन्म से वे छुटकारा पा सकें। [आ=आ वृणीमहे]

॥ इति द्वितीयः खण्ड ॥ २ ॥ [घा० ३८ । उ० ५ । स्व० ११]

सूक्त ३

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ २ ३ २

११४०—मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कविँ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

(दिवः) द्युलोक के (मूर्धानम्) शिरोभूत, (पृथिव्याः) पृथिवी के (अरतिम्) स्वामी, (वैश्वानरम्) सब नर-नारियों के नायक, (ऋते आ जातम्) सत्यनिष्ठ उपासक मे प्रकट होने वाले, (कविम्) वेदकाव्यों के कवि, (सम्राजम्) जगत् के सम्राट्, (जनानाम्) जनता के लिये, (अतिथिम्) अतिथिवत् पूजनीय, (नः) हम सब के (पात्रम्) रक्षक तथा त्राणकर्त्ता, (अग्निम्) ज्योतिर्मय प्रभु को, (देवाः) उपासक देव (आसन्) मुख में स्थित वाणियों द्वारा (जनयन्त) सर्वसाधारण प्रजाजन के लिये प्रकट करते हैं, उपदेश रूप में उस का ज्ञान देते हैं।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

११४१—त्वां विश्वे अमृतं जायमानँ शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ २ ॥

(अमृत) हे अमर परमेश्वर! (विश्वे देवाः) देवकोटि के सब उपासक, (जायमानं त्वा) प्रकट हो रहे आप के, (अभि) साक्षात् (सं नवन्ते) सम्मिलित स्तुतिगान करते हैं, (न) जैसे कि (जायमानं शिशुम्) नवोत्पन्न शिशु की स्तुतियां अर्थात् प्रशंसाएँ सम्बन्धी लोग करते हैं। (वैश्वानर) हे सब नर-नारियों के नायक! (यत्) जब आप (पित्रो) गृहस्थी नर-नारी उपासकों के हृदयों में (अदीदेः) चमक उठते हैं, तब उपासक (तव) आप की प्राप्ति के निमित्त किये गए (क्रतुभिः) उपासना-यज्ञों द्वारा, (अमृतत्वम्) मोक्ष को (आयन्) प्राप्त होते हैं।

[पित्रोः=गृहस्थी भी उपासना-यज्ञों द्वारा मोक्षलाभ कर सकते हैं,—यह भाव सूचित किया है]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
११४२—नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।
३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः
॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥ (कु) ॥

हे परमेश्वर ! (देवाः) देवकोटि के उपासक (अभि सं नवन्त) परस्पर मिल कर प्रकट हुए आप की स्तुतियां करते हैं, जो आप कि (यज्ञानां नाभिम्) सर्व श्रेष्ठ कर्मों के केन्द्र हैं, (रयीणाम्) सांसारिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों के (सदनम्) भण्डार हैं, (महाम्) महान् हैं, (आहावम्) आनन्दरस के आधार तथा सब द्वारा सहायता के लिये पुकारे गए, (वैश्वानरम्) सब नर-नारियों के नायक, (अध्वराणाम्) हिंसारहित श्रेष्ठ कर्मों के (रथ्यम्) संचालक, और (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञों के (केतुम्) संज्ञापक हैं।

[केतुम्=कित् संज्ञाने]

[धा० २६ । उ० १ । स्व० ५]

सूक्त ४

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
११४३—प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा।
१ २ ३ १ ३ २
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम सब के (मित्राय) मित्र, तथा (वरुणाय) पाप निवारक प्रभु के लिये, (विपा गिरा) वेपनमयी वाणी द्वारा अर्थात् सुस्वर और आलापमयी वाणी द्वारा (प्र गायत) श्रेष्ठ सामगान किया करो। (महिक्षत्रौ) परमेश्वर के ये दोनों रूप क्षतों से महात्राण करते हैं, ये दोनों रूप (बृहत् ऋतम्) महान् हैं, सत्यस्वरूप हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
११४४—सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

परमेश्वर के (मित्रः च, वरुणः च) मित्र और वरुण (या उभा) जो दो रूप हैं, वे (सम्राजा) संसार में राज्य कर रहे हैं, (घृतयोनी) घृतादि भोग्य पदार्थों के तथा प्रकाश के स्रोत हैं, (देवा) दिव्य हैं, (देवेषु) दिव्यगुणों में (प्रशस्ता) इन गुणों की भी प्रशंसा हुई है।

[संसार में राज्यशासन न केवल मैत्रीभावना द्वारा होता है, और न केवल

वारुणी भावना अर्थात् दण्डभावना द्वारा। अपितु इन दोनों भावनाओं का समन्वय सुशासन के लिये आवश्यक है]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
११४५—ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य।
१ २ ३ १ ३ १ २
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥ ॥४ (र) ॥

(ता) परमेश्वर के वे दो रूप (नः) हमें (पार्थिवस्य) अर्थात् आधिभौतिक और आधिदैविक, तथा (दिव्यस्य) आध्यात्मिक (महः रायः) महासम्पत्तियों के प्रदान में (शक्तम्) सशक्त हैं। (देवेषु) परमेश्वर के दिव्यगुणों में (वाम्) हे परमेश्वर ! आप क उपयुक्त दो रूप (महि क्षत्रम्) क्षतों से महारक्षा करते हैं।

[धा० १३। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ५

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
११४६—इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

(चित्रभानो) हे अद्भुत प्रभा वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! (आ याहि) आइये, हृदयों में प्रकट हूजिये। (इमे) ये उपासक (सुताः) पुत्र (त्वायुवः) आप की कामना वाले हैं। (अण्वीभिः) आप द्वारा दर्शाई सूक्ष्म-योगसाधनाओं द्वारा (तनाः) हमारी सन्तानें और हम (पूतासः) पवित्र हो चुके हैं।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
११४७—इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
२ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (आ याहि) आप हमारे हृदयों में प्रकट हूजिये। (धियेषितः) हम अपनी बुद्धियों और कर्मों द्वारा आप को चाहते हैं। (विप्रजूतः) हम विप्रों द्वारा आप प्रेरित किये गए हैं। (सुतावतः) पुत्रों वाले या भक्तिरस से सम्पन्न, (वाघतः) उपासना यज्ञ की धुरा का वहन करने वाले उपासकों के, (ब्रह्माणि) ब्रह्म प्रतिपादक वैदिक स्तोत्रों को, आप (उप) समीपता से सुनिये।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
११४८—इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
३ १ २ ३ १ २
सुते दधिश्व नश्चनः ॥ ३ ॥ ॥५(ही)॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (तूतुजानः) शीघ्र (आ याहि) प्रकट हूजिये। (हरि वः) हे ऋङ् मिश्रित साम द्वारा स्तुति वाले ! (ब्रह्माणि) ब्रह्मप्रतिपादक वैदिक सामगानों को (उप) समीप हो कर सुनिये। (सुते) भक्तिरस के प्रकट होने पर (नः) हमें (चनः) आध्यात्मिक प्रसाद दीजिये।

[हरि="ऋक् सामे वा इन्द्रस्य हरी" (शत. ४।४।३।६)]

[धा० १६। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त ६

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११४९—तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

हे उपासक ! तू (तम्) उस परमेश्वर को (ईडिष्व) स्तुति कर, (यः) जो मानो अग्निमय हो कर, प्रलय काल में, (अर्चिषा) ज्वालाओं द्वारा (विश्वा) सब (वना) वनों को (परिष्वजत्) लपेट लेता और (जिह्वया) ज्वाला-जिह्वा द्वारा (कृष्णा कृणोति) वनों को कोयला कर देता है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
११५०—य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥

(यः) जो (मर्त्यः) उपासक, (इद्धे) परमेश्वरीय प्रकाश प्राप्त कर लेने पर, (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सुम्नम्) आनन्दरस की, उस के सौमनस्य तथा उसकी सुमति की (आ विवासति) परिचर्यापूर्वक चाहना करता है,—(द्युम्नाय) आध्यात्मिक धन अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिये, (अपः सुतराः) उस के लिये भवसागर सुगमता से पार करने योग्य हो जाता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११५१—ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः।
१ २ ३ २ ३ १ २
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥ ॥ ६ (य) ॥

हे इन्द्र अर्थात् बलस्वरूप और अग्नि अर्थात् ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (ता) आप के ये दो स्वरूप (नः) हमारी (वाजवतीः) बलवती (इषः) आध्यात्मिक आकांक्षाओं को (आशून्) शीघ्र (पिपृतम्) पूर्ण करें, और (आशून् अर्वतः) हमारे चञ्चल इन्द्रियाश्वों को (पिपृतम्) नियन्त्रित करें। ताकि हम अपने जीवन-रथों में, (इन्द्रम् अग्निं च) परमेश्वर के बल स्वरूप और ज्ञान स्वरूप का (आ वोढवे) आवाहन कर सकें।

[जीवनों में बल और ज्ञान का समन्वय होना चाहिये]

सूक्त ७

१ २ ३ २३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र

११५२—प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति

३ १ २

सङ्गिरम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ १ ॥

(इन्द्रः) चन्द्रसमशीतल प्रकाश वाला परमेश्वर, (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा के (निष्कृतम्) पापों से रहित, स्वच्छ हृदय में (प्र उ अयासीत्) प्रकट होता है। (सखा) परमेश्वर सखा (सख्युः) अपने सखा जीवात्मा को दिये (सङ्गिरम्) प्रतिज्ञावचनों का (न मिनाति) भंग नहीं करता। (इव) जैसे (मर्यः) गृहस्थी-पुरुष (युवतिभिः) नौ-जवान पुत्रियों, बहिनों से (सम्) साथ (सम् अर्षति) प्रेम से मिलता है, वैसे (सोमः) सौम्य प्रकृति वाला प्रशान्त परमेश्वर, (शतयामना पथा) सैंकड़ों प्रकार से, (कलशे) हृदय-कोश में (सम् अर्षति) प्रेम से जीवात्मा को मिलता है।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

११५३—प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ २ २ २ ३ २ ३ १ २

हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२॥

हे उपासको ! (मन्द्रयुवः) आनन्दमय प्रभु की कामना करने वाली, (विपन्युवः) भक्तिपूर्ण स्तुतियों वाली, (पनस्युवः) परमेश्वर की अर्चना को चाहने वाली (वः) तुम्हारी (धियः) बुद्धियां, (वः) तुम्हारी (संवरणेषु) सम्यक्-रक्षाओं के निमित्त (प्र अक्रमुः) अग्रसर होती हैं। (स्तुभः) स्तोता लोग (हरिम्) क्लेशहारी, क्रीडन्तम्) तथा क्रीड़ाशील प्रभु की (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुतियां (इत्) अवश्य करते हैं और (अशिश्रयुः) उस का आश्रय लेते हैं, जैसे (धेनवः) दुधार गौएं (पयसा) अपने दूध द्वारा अपने बछड़ों का आश्रय बनती हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

११५४—आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान

३ १ २

ऊर्मिणा ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ॥७ (ठि)॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक, (इन्दो) हे चन्द्रसम शीतल, (पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! (नः) हमारी (पिप्युषीम्) बढ़ी हुई (इषम्) सांसारिक अभिलाषाओं को आप अपनी (ऊर्मिणा) आनन्दरस-लहरों द्वारा, (संयतम्) नियन्त्रित कीजिये, और उन्हें (आ पवस्व) पूर्णतया पवित्र कीजिये। (या) जो संयत और पवित्र हुई हमारी अभिलाषाएँ, (असश्चुषी) माया-ममता और छल-कपट से रहित होकर और आप की प्राप्ति के उद्देश्य से स्थिर होकर, (अहन् त्रिः) दिन-रात में तीन बार, आप के (क्षुमत्) अन्नमय, (वाजवत्) शक्तिमय, (मधुमत्) मधुर तथा (सुवीर्यम्) सुवीरता प्रदायी स्वरूप का, (नः) हमें (दोहते) दोहन करा देती हैं।

[असश्चुषी=अ=सश्चतिः (गतिकर्मा, निघं० २।१४)। सश्चत्=Trick, illusion (आपटे)। क्षुमत्=क्षु=अन्नम् (निघं० २।७)। परमेश्वर का स्वरूप-दर्शन, उपासकों के लिये, आध्यात्मिक अन्न है, जो कि उन की आध्यात्मिक भूख को शान्त करता है। त्रिः=प्रातः काल, सायंकाल, और अभ्यासियों के लिये रात्रि के १२ बजे के पश्चात् का काल (निरुक्त, अश्विनौ पद पर।]

[धा० २८। उ० २। स्व० ३]

सूक्त ८

२ ३ १ २र ३ २ ३१२ ३१२

११५५—न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥

(यः) जो परमेश्वर (सदावृधम्) सदा सब की वृद्धि (चकार) करता है, (विश्वगूर्तम्) विश्व जिस का उत्तम रूप है, (ऋभ्वसम्) महान् से महान् शक्तियों को भी जिस ने परास्त किया हुआ है, (अधृष्टम्) जो कभी किसी द्वारा पराभूत नहीं हुआ, अपितु जो (ओजसा) निज पराक्रम द्वारा (धृष्णुम्) सब का पराभव करता है, (तम्) उस परमेश्वर की पहुंच तक (नकिः) न कोई (यज्ञैः) यज्ञिय कर्मों द्वारा (नशत्) पहुंच पाया हैं, और न कोई (कर्मणा) अन्य किसी कर्म द्वारा पहुंच पाया है। (देखो मन्त्र २४३)

१२ ३१ २र ३१ २र ३१२३१२

११५६—अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः।

॥ २ ॥ ॥८(ही)॥

(अषाढम्) असत्य तेज वाले, (उग्रम्) नियमों में उग्र, (पृतनासु) काम-क्रोध आदि की सेनाओं के उपस्थित होने पर उन का (सासहिम्) पूर्ण पराभव करने वाले, (यस्मिन्) जिस के आश्रय (महीः) महान् लोक लोकान्तर (उरुज्रयः) महावेग से गति कर रहे हैं, (जायमाने) जिस के प्रकट होने पर (धेनवः) वेद-

वाणियां, स्तोताओं द्वारा (सं अनोनवुः) जिस की सम्यक् स्तुतियां करती हैं, तथा (स्यावः) नाना द्युलोक और (क्षामीः) नाना पृथिवियां जिस की सम्यक्-स्तुतियां कर रही हैं,—उस की पहुंच तक कोई नहीं पहुंच पाया (मन्त्र ११५५ से)। [धेनुः वाक् (निघं० १।११)]

।। इति चतुर्थः खण्डः ।। ४ ।। [धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त ६

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
११५७—सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २
शिशुं नः यज्ञैः परि भूषत श्रिये ।। १ ।।

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (आ निषीदत) उपासनायज्ञ में आइये और बैठिये, (पुनानाय) पवित्र करने वाले परमेश्वर के निमित्त (प्रगायत) सुन्दर साम-गान कीजिये । (श्रिये) परमेश्वर की शोभा बढ़ाने के लिये (यज्ञैः) उपासना-यज्ञों द्वारा इसे (परि भूषत) सब प्रकार से सत्कृत कीजिये, इस की प्रशंसा कीजिये, (न) जैसे कि (शिशुम्) नवजात बच्चे की प्रशंसा की जाती है ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११५८—समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
३ २क १ २ ३ १ २र
देवाव्य३मदमभि द्विशवसम् ।। २ ।।

हे उपासको ! तुम,—(गयसाधनम्) ब्रह्माण्डगृह के साधक, (देवाव्यम्) उपासक-देवों तथा सूर्य, चन्द्र आदि के रक्षक, (मदम्) आनन्दस्वरूप, (द्विशवसम्) निग्रह-अनुग्रह तथा सृष्टि-प्रलय के बलों वाले (इ) इस परमेश्वर को, अपने साथ (अभि) प्रत्यक्षतया (सं सृजत) सम्बद्ध कर लो, (न) जैसे कि (वत्सम्) शिशुओं को, उन की (मातृभिः) माताएं अपने साथ सदा सम्बद्ध रखती हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २
११५९—पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ।। ३ ।। ६ (पि) ।।

हे उपासको ! तुम अपने आप को (पुनात) पवित्र करो, (यथा) ताकि तुम—(शर्धाय) बल की प्राप्ति के लिये, तथा (वीतये) प्रगति के लिये (दक्ष-साधनम्) प्रगति और बलों के साधक परमेश्वर को, तथा (मित्राय) सर्वभूत मैत्री के लिये, और (वरुणाय) अपने पापों का स्वयं निवारण करने के लिये (शन्तमम्) शान्तिप्रदायक परमेश्वर को प्राप्त कर सको ।

[धा० १५ । उ० १ । स्व० ३]

सूक्त १०

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
११६०—प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १ ॥

उपासक (वाजी)परमेश्वर से बल पा कर, (सहस्रधारः) हजारों वेदवाणियों का स्वाध्याय कर, या हजारों शक्तियों को धारण कर, या हजारों प्रजाजनों का धारण-पोषण करता हुआ, (अव्यम्) रक्षक परमेश्वर के (पवित्रं वारम्) पवित्र घेरे में,—जोकि अभी तक उस के लिये (तिरः) तिरोहित था,—(वि प्र अक्षाः) प्रवेश पा जाता है।

[अक्षाः—अशूङ् व्याप्तौ] [धारा=वाक् (निघं० १।११)]

२ ३क ९र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
११६१—स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥२॥

(सः) वह उपासक (अद्भिः) नित्य स्नान द्वारा (मृजानः) शुद्ध हो कर, (गोभिः) तदनन्तर वेदवाणियों के स्वाध्याय द्वारा (श्रीणानः)परिपक्व बुद्धि होकर, (वाजी) परमेश्वर से बल पा कर, (सहस्ररेताः) हजारों शक्तियों से सम्पन्न हो जाता, (अक्षाः) और पापों का क्षय कर देता है।

[गोभिः=गौः वाक् (निघं. १।११)।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
११६२—प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥ १० (पु) ॥

(सोम) हे भक्तिरससम्पन्न उपासक ! तू (नृभिः) उपासक-नेताओं द्वारा (येमानः) यम-नियमों में बन्धा होकर, और (अद्रिभिः) पर्वतों में अभ्यास द्वारा (सुतः) नवजीवन धारण करके, (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (कुक्षा) गोद में (प्र याहि) शीघ्र प्रवेश पा जा।

[कुक्षा—अत्यन्त सुरक्षा का निर्देश किया है]

[धा० १५। उ० १। स्व० ५]

सूक्त ११

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
११६३—ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे।
१ ३ १ २ ३ १ २
ये वादः शर्यणावति ॥ १ ॥

(सुन्विरे) जिन्होंने उपासना यज्ञों में नवीन जन्म धारण किया है ऐसे (सोमासः) सौम्य स्वभाव वाले (ये) जो उपासक, (परावति) दूर देश में, और

(ये) जो (अर्वावति) समीप देश में, (वा, ये) अथवा जो (शर्यणावति) जीर्ण-शीर्ण होने वाले भूमण्डल के किसी भी स्थान में हों [अन्वय अगले मन्त्रों के साथ]।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र

११६४—य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्।

२ ३ १ २ ३ १ २

ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥

(ये) जो (आर्जीकेषु) ऋजु प्रदेशों में, (कृत्वसु) कटे-फटे पर्वतीय प्रदेशों में, (ये) जो (पस्त्यानाम्) घरों के (मध्ये) बीच में रहते, (वा, ये) अथवा जो (पञ्चसु जनेषु) पांच प्रकार के जनों में से चाहे कोई भी हों......[अन्वय अगले मन्त्र के साथ]

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

११६५—ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम्।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥ ११ ॥ (चि) ॥

(ते) वे (इन्दवः) चन्द्रसम शीतल (देवासः) दिव्य उपासक, (स्वानाः) गर्जते हुए, (दिवः परि) अपने दिव्य ज्ञान से, (नः) हम पर (आ) सर्वत्र (वृष्टिम्) उपदेशों की अमृत वर्षा (पवन्ताम्) करें, और हमें (सुवीर्यम्) उत्तम प्रेरणाएं तथा उत्तम शक्तियां प्रदान करें।

[पञ्चसु जनेषु=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा पतित (निषाद)]

॥ इति पंचमः खण्डः ॥५॥ [धा० । ७ उ० १ । स्व० ३]

सूक्त १२

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

११६६—आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्।

२ ३ १ २ ३ २

अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप सर्वाग्रणी! मैं उपासक, (गिरा) स्तुति-प्रार्थनाओं द्वारा, (त्वाम्) आप की ही (कामये) कामना करता हूँ। इस निमित्त (ते) आपका (वत्सः) यह उपासक पुत्र, (परमात् चित् सधस्थात्) दूर-दूर के स्थानों में भटकते हुए (मनः) मन को, वहां से हटा कर, (आ यमत्) पूर्णतया नियन्त्रित करता है और उसे आप के ध्यान में लगाता है।

३ २उ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

११६७—पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः।

३ १ २

समत्सु त्वा हवामहे ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (हि) निश्चय से, आप (युरुत्रा) सर्वत्र (सदृङ् असि) पक्षपात रहित समदृष्टि वाले हैं, (विश्वा. दिशः अनु) सब दिशाओं में (प्रभुः) आप की ही प्रभुता है। (समत्सु) देवासुर-संग्रामों में, सहायतार्थं, हम (त्वा) आप का (हवामहे) आह्वान करते हैं।

३ २ ३ १ २र ३ १ २
११६८—समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे।
१ २ ३ १ २
वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ३ ॥ ॥ १२ (ठा) ॥

(समत्सु) देवासुर-संग्रामों में (वाजयन्तः) बल चाहते हुए हम उपासक, (अवसे) आत्म रक्षार्थं, (त्वाम्) आप (अग्निम्) सर्वाग्रणी का (हवामहे) आह्वान करते हैं, (वाजेषु) इन संग्रामों में आप (चित्रराधसम्) अद्भुत धन प्रदान करते, या अद्भुत विधि से हमारे अभीष्टों को सिद्ध करते हैं।

[घा० १३ । उ० २। स्व० २]

सूक्त १३

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११६९—त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णँ शतक्रतो विचर्षणे।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥

(शतक्रतो) हे सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमन् ! (विचर्षणे) हे सर्वद्रष्टा (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम्) आप (नः) हमें (ओजः) तेज और (नृम्णम) आध्यात्मिक बल तथा धन (आ भर) प्रदान कीजिये, तथा (पृतनासहम्) कामादि शत्रु सेनाओं का पराभव करने वाले (वीरम्) वीर पुत्र (आ) प्रदान कीजिये।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११७०—त्वँ हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
१ २ ३ १ २
अथा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

(वसो) हे सर्ववासी प्रभो ! (त्वम्) आप (हि) ही (नः) हमारे (पिता बभूविथ) पिता हुए हैं, (शतक्रतो) हे सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमन् ! (त्वम्) आप ही हमारी (माता बभूविथ)माता हुई हैं। (अथा) इसलिये (ते) आप से ही (सुम्नम्) सुख की (आ ईमहे) याचना हम करते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २
११७१—त्वाँ शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत।
१ २ ३ १ २
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ॥१३॥ (ल) ॥

(शुष्मिन्) हे बलशालिन् !, (पुरुहूत) हे बहुत उपासकों द्वारा या बहुत नामों से पुकारे गए !, (सहस्कृत) हे साहस देने वाले ! (वाजयन्तम्) बलप्रदान करना चाहते हुए (त्वाम्) आप से, मैं (उप) विनयपूर्वक (ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ कि हे परमेश्वर ! (सः) वह आप (नः) हमे (सुवीर्यम्) उत्तम बल (रास्व) प्रदान कीजिये ।

[धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १४

१ २ ३ २उ ३ १ २
११७२—यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

(चित्र) हे आश्चर्यस्वरूप !, (अद्रिवः इन्द्र) हे पर्वतों-मेघों के स्वामी परमेश्वर ! (इह) इस जीवन में (यत्) जो (त्वादातं नास्ति) आप ने मुझ को नहीं दिया, (तत्) वह (राधः) आराधना रूपी धन है । (विदद्वसो) हे सब धनों को प्राप्त परमेश्वर ! (नः) हम उपासकों को (तत्) वह आराधना-धन (आ भर) दीजिये, इतना दीजिये जैसे कि कोई दानी (उभया हस्त्या) दोनों हाथों से भर कर दान देता है ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
११७३—यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) जिस धन को आप (वरेण्यम्) श्रेष्ठ तथा वरणीय (मन्यसे) मानते हैं, (तद्) वह (द्युक्षम्) दिव्य तथा जीवनोपयोगी आध्यात्मिक धन (आ भर) हमें प्रदान कीजिये ताकि (अकूपारस्य) पारावार रहित, तथा (दावनः) दानी (ते) आप के (तस्य) उस दान को (विद्याम्) हम पा लें ।

[दान=मोक्ष]

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २र ३ २
११७४—यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥ ॥१४(पी)॥

हे परमेश्वर ! (ते) आप का (यत्) जो (मनः) संकल्प (प्र राध्यम्) हमारे लिये प्रयत्नपूर्वक साध्य हैं, जो संकल्प कि (दिक्षु) दिग्दिगन्तरों में (श्रुतम् अस्ति) विश्रुत है, और (बृहत्) वृद्धिप्रद है, (तेन) उस संकल्प द्वारा, (अद्रिवः) हे पापों का विदारण करने वाले प्रभो !, आप (दृढा चित्) सुदृढ़ (वाजम्) और शक्तिशाली पाप को भी (आ दर्षि) पूर्णतया विदीर्ण कर, दीजिये, (सातये) ताकि हमें सुखशान्ति प्राप्त हो सके ।

इति षष्ठः खण्डः ॥६॥ [धा० २५ । उ० १ । स्व० ४]

इति चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥

चतुर्थ प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

[१]

अथ पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ५॥

(१—२०) १ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २, ३, ४ असितः काश्यपो देवलो वा; ५, ११ उचथ्य आंगिरसः; ६, ७, अमहीयुराङ्गिरसः; ८, १५ निध्रुविः काश्यपः; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० सुकक्ष आंगिरसः; १२ कविर्भार्गवः; १३ देवातिथिः काण्वः; १४ भर्गः प्रागाथः; १६ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १७ अग्नये घिष्ण्या ऐश्वराः; १८ उशना काव्यः; १९ नृमेध आंगिरसः; २० जेता माधुच्छन्दसः ॥१—८, ११—१२, १५—१७ पवमानः सोमः; ९, १८ अग्निः; १०, १३, १४, १९—२० इन्द्रः ॥ १—९ त्रिष्टुप्; २—८, १०-११, १५, १८ गायत्री; जगती १३, १४ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १६, २० अनुष्टुप्; १७ द्विपदा विराट्; १९ उष्णिक् ॥

सूक्त १

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

११७५—शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १ ॥

उपासक लोग,— (हर्यतम्) कामनायोग्य, (जज्ञानम्) तथा प्रकट हुए परमेश्वर के स्वरूप को, (मृजन्ति) मार्जन विधि द्वारा विशुद्धरूप में प्रकट करते हैं, जैसे कि माताएँ (जज्ञानं शिशुम्)नवजात बच्चे का मार्जन करती हैं। और (मरुतः) प्राणायामाभ्यासी, (गणेन) प्राणायामों की गणना अर्थात् संख्या द्वारा, (विप्रम्) मेधावी तथा परिपूर्ण परमेश्वर को (शुम्भन्ति) सुशोभितरूप में प्रदीप्त कर लेते हैं। (गीर्भिः) वेदवाणियों के कारण (कविः) कवि, अर्थात्(काव्येन) वेदकाव्य के कारण (कविः) कवि, (सोमः) सर्वप्रेरक और सर्वोत्पादक परमेश्वर, (रेभन् सन्) अमृतोपदेश करता हुआ, (अति) विघ्न बाधाओं को लाँघ कर, (पवित्रम् एति) पवित्र आत्मा को प्राप्त हो जाता है।

[गणेन=प्राणायाम,—देश, काल, और संख्या की दृष्टि से किया जाता है (योग० २।५०)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
११७६—ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति
२
ष्टुप् ॥ २ ॥

(यः) जो परमेश्वर (ऋषिमनाः) ऋषियों की उन्नति में कृतसंकल्प है, (ऋषिकृत्) जो उपासकों को ऋषि बनाता, (स्वर्षाः) सुखप्रदान करता, (सहस्रनीथः) हजारों का मार्गदर्शक, (कवीनाम्) कवियों में (पदवीः) सर्वोच्च कविपद को प्राप्त, (महिषः) सर्वमहान्, (तृतीयं धाम) "तृतीय-धाम",— इस नाम से प्रसिद्ध है, वह (सोमः) सर्वप्रेरक तथा सर्वव्यापक परमेश्वर (सिषासन्) सब प्रकार की सुखसामग्री के प्रदान की इच्छा रखता हुआ, (विराजम्) विराट् जगत् में (अनु) निरन्तर (राजति) प्रदीप्त हो रहा है । (ष्टुप्) वह स्तुति योग्य है ।

[ऋषिकृत्="यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्" (अथर्व० ४।३०।३) । तृतीयं धाम="यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त" (यजु० ३२।१०)]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३
११७७—चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि
१ २
बिभ्रत् ।
१ २ ३ १ १र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति
॥ ३ ॥ ॥१ (लु) ॥

(चमूषद्) द्युलोक और भूलोक में स्थित, (श्येनः) गुणकर्मों में शुभ अर्थात् सात्त्विक, तथा आदित्यवर्णी (शकुनः) शक्तिशाली, (विभृत्वा) जगद्विहारी, (गोविन्दुः) वेदवाणियां प्राप्त कराने वाला, (द्रप्सः) कुत्सित कर्मों का भक्षक, (आयुधानि बिभ्रत्) कुत्सित कर्मों के प्रति आयुध धारी, (अपाम् ऊर्मिम्) जलों की लहरों वाले (समुद्रं सचमानः) समुद्र में व्याप्त, तथा (महिषः) सर्वतोमहान् परमेश्वर (तुरीयं धाम) स्वयं अपने "तुरीय-धाम" का (विवक्ति) कथन वेदों में करता है ।

[चमू=द्यावापृथिवी (निघं० ३।३०) । श्येनः=The white calour (आपटे) । द्रप्सः=द्रा (गतिकुत्सन) +प्सा (भक्षणे) । अथवा विन्दुवत् सूक्ष्म (Drops) । तुरीयं धाम=मन्त्र ११७६ में तृतीय धाम का वर्णन है । महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य में लिखते हैं कि "(तृतीये) जीव और प्रकृति से विलक्षण (धामन्) आधार रूप जगदीश्वर में" (यजु० ३२।१०) । "तुरीय" का वर्णन माण्डूक्योपनिषद्

में "चतुर्थ पाद" शब्द द्वारा हुआ है (खण्ड ७)। यजुर्वेद में तुरीय स्वरूप का वर्णन "त्रिपादूर्ध्वः" पदों द्वारा हुआ है (३१।४)। श्येनः=निरुक्त में श्येन का अर्थ किया है "आदित्य" (१४।२।२६) अर्थात् "आदित्यवर्णी"]

[घा० २४। उ० नास्ति। स्व० ५]

सूक्त २

३ १ १र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
११७८—एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन्।
१ २ ३क २र
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १॥

(सोमाः) भक्ति सम्पन्न (एते) इन उपासकों ने (अभि) साक्षात् रूप में (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (प्रियं कामम्) प्रिय कामना को (अक्षरन्) पूर्ण किया है। और इन्होंने (अस्य) इस परमेश्वर की (वीर्यम्) प्रेरणाओं को (वर्धन्तः) बढ़ा लिया है, अर्थात् इन में परमेश्वरीय प्रेरणाएँ अधिकाधिक होने लग गई है।

[वीर्यम्=वि+ईर् (प्रेरणाएँ)+स्वार्थे प्रत्यय]

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
११७९—पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना।
१ २ ३ १ २
ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २॥

हे उपासको! आप लोग (पुनानासः) अपने आप को परमेश्वरीय प्रेरणाओं द्वारा पवित्र करते हुए, (चमूषदः) द्युलोक और भूलोक में स्थित हुए, (वायुम्) वायु अन्तरिक्ष, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा तक (गच्छन्तः) जाते हुए, (ते) वे आप (नः) हमें (सुवीर्यम्) उत्तमोत्तम प्रेरणाएँ (धत्त) दीजिये।

[देखो मन्त्र संख्या ११३४]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
११८०—इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवानां योनिमासदम् ॥ ३॥

(सोम) हे भक्तिसम्पन्न उपासक! तू (देवानाम्) सूर्य, चन्द्र आदि देवों की (योनिम्) जन्मदात्री जगन्माता की गोद में (आसदम्) बैठने के लिये, (पुनानः) अपने आप को पवित्र कर, और (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (राधसे) प्रसन्नता के लिये (हार्दि) उस की हार्दिक कामना को (चोदय) अपनी ओर प्रेरित कर।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
११८१—मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः।
२ ३ १ २
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४॥

हे उपासक ! (क्षिपः) चित्त के विक्षेपों को दूर करने वाले (दश) १० यम नियमों ने (त्वा) तुझे (मृजन्ति) मांजा है, शुद्ध कर दिया है, और (धीतयः) ज्ञानामृत पिलाने वाली (सप्त) सात छन्दों वाली वेदवाणियां (हिन्वन्ति) तुझे प्रेरणाएँ देती हैं तथा तेरी वृद्धि करती हैं। और (विप्राः) विप्रलोग (अनु अमादिषुः) तेरा अनुमोदन करते हैं।

[धीति=Drinking, sueking (आपटे)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र

११८२—देवेभ्यस्त्वा मदाय कँ सृजानमति मेष्यः।

१ २र

सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥

हे उपासक ! (देवेभ्यः) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये, (तमा) (मदाय) तेरी प्रसन्नता के लिये, (मेष्यः) भेड़ की सी भोगवासना के (कम्) ऐन्द्रियिक सुखों को (अति सृजानम्) परित्यक्त करते हुए (त्वा) मुझ को, हम विप्रलोग (मन्त्र ११८१), (गोभिः) वेदवाणियों के सदुपदेशों द्वारा (सं वासयामसि) सम्यक् सुवासित करते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

११८३—पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः।

२ ३ १ २

परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

(कलशेषु) ५ कोशों में अपने आप को (आ) पूर्णतया (पुनानः) पवित्र करता हुआ, (हरिः) और प्रत्याहार-साधना द्वारा इन्द्रियों को विषयों से हटाता हुआ उपासक (अरुषः) दीप्तिमान् हो जाता है। और (गव्यानि) वेदवाणियों में वर्णित (वस्त्राणि) नवीन वस्त्रों को (परि अव्यत) धारण कर लेता है।

[५ कोश=अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश। वस्त्राणि=शुद्ध हुए ये ५ कोश या पुनर्जन्म में नवप्राप्त ५ कोश]

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

११८४—मघोन आ पवस्य नो जहि विश्वा अप द्विषः।

२ ३ १ २ ३ १ १

इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥

(इन्दो) हे ज्ञान से प्रकाशित उपासक ! (मघोनः) उपासनाधन के धनिक (नः) हम उपासक गुरुओं की (आ पवस्व) ओर तू आ। और (विश्वाः) सब प्रकार की (द्विषः) द्वेष भावनाओं को तू (अप जहि) मार भगा। इस प्रकार (सखायम्) अपने सखा परमेश्वर में (आ विश) प्रवेश पा जा।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

११८५—नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतँ स्वर्विदम्।

३ १ २ ३ १ २र

भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥

हे परमेश्वर ! (वयम्) हम उपासक,—(नृचक्षसम्) सब नर-नारियों के निरीक्षक, (इन्द्रपीतम्) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्माओं द्वारा आनन्दरसरूप में पिये गए, (स्वर्विदम्) सुख प्रापक (त्वा) आप का (भक्षीमहि) भजन करें, और (प्रजाम्) द्विजन्मारूप में नवजन्म और (इषम्) अभीष्ट मोक्ष के (भक्षीमहि) भागी बनें।

[भक्षीमहि=भज् (सेवायाम्)+सन्। यथाः—भक्षत—विभक्षमाणाः=विभक्तुमिच्छन्तः (निरु० ६।२।८)]

३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ १ २र
११८६—वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि।
१ १ ३ १ २
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ९ ॥ ॥ २ (ति) ॥

हे परमेश्वर ! (दिवः) द्युलोक से (वृष्टिम्) वृष्टि के सदृश, आप (पृथिव्या अधि) समग्र पृथिवी पर, (द्युम्नम्) आध्यात्मिक धन को (परिस्रव) सर्वत्र प्रवाहित कीजिये। (सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक ! आप (पृत्सु) देवासुर-संग्रामों में (नः) हमें (सहः) असुरों को पराभव करने का बल (धाः) दीजिये।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [धा० ३९ । उ० १ । स्व० १३]

सूक्त ३

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११८७—सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः।
३ १ २र ३ २
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

(सोमः) भक्तिरससम्पन्न उपासक ! (पुनानः) सदुपदेशों द्वारा प्रजाजन को पवित्र करता हुआ, (सहस्रधारः) हजारों वेदवाणियों का ज्ञाता, (अत्यविः) सब का अतिरक्षक हो कर, (वायोः, इन्द्रस्य) वायु और बिजुली के (निष्कृतम्) स्वच्छ स्थान अन्तरिक्ष में भी (अर्षति) गति करता है। (देखो मन्त्र संख्या ११३४)

[धारा=वाक् (निघं० १।११)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
११८८—पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

(अवस्यवः) सब की रक्षा चाहने वाले हे उपासको !, (देववीतये) परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिये,—(पवमानम्) पवित्र करने वाले, (विप्रम्) सर्वत्र परिपूर्ण, (सुष्वाणम्) उत्तम नवजन्म देने वाले परमेश्वर के (अभि प्र गायत) प्रत्यक्ष स्तुतिगान किया करो।

[अभि=प्रत्यक्ष। प्रत्यक्षकृत स्तुतियों के सम्बन्ध में निरुक्तकार कहते हैं कि "अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगाः त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना" यथा "त्वमिन्द्र बलादधि", "वि न इन्द्र मृधो जहि" (७।१।१)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११८९—पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
३ २ ३ १ २
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

(सोमाः) भक्तिरससम्पन्न उपासक (सहस्रपाजसः) हजारों प्रकार के बलों से युक्त हो कर, (वाजसातये) प्रजाजनों को बल प्रदान करने के लिये, तथा उन्हें (देववीतये) परमेश्वर देव की प्राप्ति कराने के लिये, (गृणानाः) मार्गोपदेश करते हुए, (पवन्ते) विचरते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
११९०—उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
३ १ २ ३ १ २
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! (वाजसातये) आध्यात्मिक-बल की प्राप्ति के लिये, (नः) हमारी आप (बृहतीः इषः) महती-इच्छाओं को (पवस्व) सिद्ध कीजिये, (उत) तथा (द्युमत्) चमकती हुई अर्थात् यशोमयी (सुवीर्यम्) उत्तम धर्मवीरता (पवस्व) हमें प्रदान कीजिये।

[बृहतीः इषः=समाधि, ऋतम्भरा प्रज्ञा, विवेकज ज्ञान, मोक्ष आदि]

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११९१—अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
वि वारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥

(हेतृभिः) प्रेरक-अश्वारोहियों द्वारा (हियानाः) प्रेरित (अत्याः न) अश्वों के सदृश, (आशवः) शीघ्रगामी होकर ये उपासक, (वाजसातये) प्रजाजनों को बलप्रदान करने के लिये, (वारम्) पापनिवारक (अव्यम्) प्रापणीय-परमेश्वर सम्बन्धी (वि असृग्रम्) ज्ञानोपदेश करते हैं।

[अव्यम्=अव् (प्राप्तौ)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
११९२—ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥

(इन्दवः) ज्ञानप्रकाश से प्रदीप्त तथा चन्द्रसमशीतल स्वभावों वाले (ते देवासः) वे उपासक-देव, (स्वानाः) उपदेश देते हुए, (नः) हमें (रयिम्) आध्यात्मिक-

धन (आ पवन्ताम्) प्रदान करें जो कि (सहस्रिणम्) हजारों सांसारिक-धनों से श्रेष्ठ है, और जो उत्तम-धर्मवीर बनाता है।

३ १ २३ १२ ३ १ ३ २उ ३ १२
११९३—वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः।
३ १ २र
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

(इन्दवः) ज्ञानप्रकाश से प्रदीप्त तथा चन्द्रसम शीतल स्वभावों वाले उपासक (वाश्राः) उपदेश देते हुए, (अभि) हमारी ओर (अर्षन्ति) स्नेहमयी भावनाओं के साथ आते हैं, (न) जैसे कि (मातरः) माताएँ (वत्सम् अभि) पुत्रों के प्रति स्नेहमयी भावनाओं के साथ आती हैं, और वे उपासक हमें अपनी (गभस्त्योः) बाहुओं का (दधन्विरे) सहारा देते हैं।

[गभस्ती=बाहुनाम (निघं० २।४)]

२ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २
११९४—जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत्।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

(जुष्टः) प्रजाजनों द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवित, (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (मत्सरः) प्रसन्नता का मानो सरोवर, (पवमानः) प्रजाजनों को सदुपदेशों द्वारा पवित्र करता हुआ उपासक (कनिक्रदत्) उन्हें बार-बार उपदेश करता है। प्रजाजन ऐसे उपासक के प्रति कहते हैं कि आप सदुपदेशों द्वारा हमारे (विश्वाः) समग्र (द्विषः) द्वेष, राग, काम, क्रोध आदि शत्रुओं का (अप जहि) विनाश कर दीजिये।

३ २ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
११९५—अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः।
१ २ ३ १ २
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ ॥ ३ (वृ) ॥

प्रजाजन कहते हैं कि हे सच्चे उपासको—आप (स्वर्दृशः) सच्चे सुख का और सुखस्वरूप परमेश्वर का दर्शन कर चुके हैं, आप हमारी (अराव्णः) अदान तथा अदानजन्य दुर्भावनाओं का (अपघ्नन्तः) अपहनन करते हुए, (पवमानाः) इस प्रकार हमें पवित्र करते हुए, (ऋतस्य) सत्य और सत्यनियमों की (योनौ) योनि अर्थात् जगदम्बा की गोद में (सीदत) सदा विराजें।

[मन्त्र ११९४ और ११९५ का परस्पर समन्वय है]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ ७ ॥ [धा० ३९ । उ० ३ । स्व० ६]

सूक्त ४

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
११९६—सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया।
१ २ ३ १ २
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

(इन्दवः) चन्द्रसमशीतल (सोमाः) भक्तिरस (असृग्रम्) हम उपासकों में प्रकट हुए हैं। ये भक्तिरस (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमेश्वर की (धारया) वाणी के अनुसार (सुताः) प्रकट हुए हैं, ये (मधुमत्तमाः) अतिशय मधुर हैं, (इन्द्राय) और परमेश्वर के प्रति समर्पित हैं।

[धारा=वाक् (निघं० १।११)]

३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
११९७—अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रँ सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

(न) से (धेनवः गावः) दुधार-गौएँ (सोमस्य पीतये) दूध पिलाने के लिये (वत्सम्) अपने बछड़ों के प्रति हम्भारती हैं, वैसे (विप्राः गावः) मेधावी स्तोता, (इन्द्रम् अभि) परमेश्वर के समक्ष होकर उसके (अनूषत) स्तुतिगान करते हैं, ताकि वह (सोमस्य पीतये) भक्तिरस को स्वीकार करे।

[सोमः=दूध। यथा:—"सोमो दुग्धाभिरक्षाः" (ऋ० ९।१०७।९); अर्थात् दोही जाने वाली गौओं से सोम (दूध) क्षरित होता है। गावः=गौएँ; स्तोतारः (निघं० ३।१६)]

३ १२ ३ १२३१ २३१२ ३२
११९८—मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित्।
१ २ ३१ २र ३ २
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

(सोमः) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर! (मदच्युत्) उपासक को सांसारिक मद-मस्तियों से च्युत कर देता, हटा देता है। (विपश्चित्) मेधावी परमेश्वर (सादने) हृदय-सदन में, (सिन्धोः) हृदय-समुद्र की (ऊर्मा) भक्तिरसमयी लहरों में, (गौरी) चित्त की शुभ्र-शुक्ल वृत्तियों में (क्षेति) निवास करता और (अधि श्रितः) आश्रय पाता है।

३ १ २र ३ २ ३ १ २
११९९—दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते।
२ ३ २३१२ ३ २
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

(सोमः) भक्तिरससम्पन्न (यः) जो उपासक, (सुक्रतुः) उत्तम-संकल्पों, उत्तमकर्मों, तथा उत्तमप्रज्ञावाला, (कविः) तथा वेदकाव्य का कवि हो जाता है, वह (विचक्षणः) विशेष-द्रष्टा बन कर, (दिवः) द्युलोक के (नाभा) नाभिरूप अर्थात् जन्म दातृरूप परमेश्वर में, तथा (अव्याः वारे) उस परमेश्वर के दर्शाए घेरे में, अर्थात् वैदिक-परिधि में रहता हुआ (महीयते) महिमा को प्राप्त करता है।

[नाभा="जनः पुनातु नाभ्याम्" (सन्ध्या)। नाभि के साथ जनन का सम्बन्ध है]।

१ २र ३ १ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२००—यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।
२उ ३ १ २
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥

(यः) जो (सोमः) भक्तिरस सम्पन्न उपासक (कलशेषु) पाँच कोशों में (आ) आहित है, और (पवित्रे अन्तः) पवित्र-हृदय के भीतर (आहितः) आहित है, (इन्दुः) प्रकाशमान परमेश्वर (तम्) उसका (परिषस्वजे) पूर्ण-आलिङ्गन करता है।

२र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१२०१—प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
२ ३ १ २ ३ १ २
जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥

प्रकाशमान परमेश्वर [मन्त्र संख्या १२००], (समुद्रस्य) हृदय-समुद्र के (विष्टपि अधि) ताप-संताप पहित स्थान में आहित हुआ [मन्त्र संख्या १२००], (वाचम्) उपासक के स्तुतिवचनों को (प्र इष्यति) चाहता है, और (मधुश्चुतम्) मधुर भक्तिरसस्रावी (कोशम्) हृदय-कोश को (जिन्वन्) तृप्त कर देता है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
१२०२—नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् ।
३ १ २र ३ २
हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥

(नित्यस्तोत्रः) सदा प्रशंसित तथा नित्य वैदिक स्तोत्रों का स्वामी, (वनस्पतिः) और रश्मियों वाले सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों; तथा जलाधार समुद्रों-मेघों-नदियों; और वनों-वनस्पतियों का स्वामी परमेश्वर, (अन्तः) उपासकों के हृदयों के भीतर, (सबर्दुघाम्) मोक्षरूपी दुग्ध देने वाली (धेनाम्) वेदवाणी को प्रेषित करता है [प्र इष्यति, मन्त्र संख्या १२०१], इस प्रकार (मानुषा युजा) मनुष्यों के जोड़े पति-पत्नी या स्त्री-पुरुष की (हिन्वानः) वृद्धि करता है।

[वनस्पति=वनस्य पतिः। वनम्=रश्मि (निघं० १।५); उदक (निघं० १।१२); । सबर्=Sapor]

१ २ ३ २ ३ १ २
१२०३—आ पवमान धारया रयिँ सहस्रवर्चसम् ।
३ १ २ ३ १ २
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ८ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले (इन्दो) प्रकाशमय प्रभो ! आप (अस्मे) हमें (रयिम्) वह आध्यात्मिक-धन (आ धारय) प्रदान कीजिये, हम में स्थिर रूप में स्थापित कीजिये, जोकि (सहस्रवर्चसम्) हजारों दीप्तियों वाला है, और (स्वाभुवम्) स्व-स्थिति वाला है, जो किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखता।

[रयिम्=निर्दिष्ट "रयि" ऋतम्भरा प्रज्ञारूप, विवेकज ज्ञानरूप, तथा तारक ज्ञानरूप है। ऋतम्भरा प्रज्ञा (योग १।४८)। ऋत का अर्थ है "सत्य"; और 'भरा' का अर्थ है, "धारण करने वाली। यह प्रज्ञा सत्य ही को धारण करती हैं, इसमें भ्रान्ति अर्थात् विपरीतज्ञान का लेशमात्र भी नहीं होता। ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट और अतीन्द्रिय विषयों का प्रत्यक्षज्ञान हो जाता है।]

विवेकजज्ञान (योग ३।४९)। इसमें सर्व भावाधिष्ठातृत्व तथा सर्वज्ञातृत्व की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

तारकज्ञान (योग ३।५४)। इस में सब प्रकार के विषयों का ज्ञान, विषयों के स्थूल. सूक्ष्म आदि प्रत्येक भेद का ज्ञान, तथा क्रम की अपेक्षा के बिना एक क्षण में ही सब प्रकार के विषयों का ज्ञान हो जाता है।

इस सम्बन्ध में "तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्" (योग ४।३१) सूत्र भी विचारणीय है।

[स्वाभुवम्=इन्द्रिय-साधनों के बिना भी ऐन्द्रियिक ज्ञानों का हो जाना, (योग ३।४८; तथा ३।३६)]

३ २ ३ २ ३ २ ३क २उ ३ १ २र ३ २
१२०४—अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः।
१ २ ३ १ २
सोमो हिन्वे परावति ॥ ६ ॥ ॥ ४ (भे) ॥

जो (सोमः) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर (परावति) दूर देश में स्थित (दिवः) द्युलोक के (प्रियाः) प्रिय लगने वाले नक्षत्रों-तारागणों में (हिन्वे) प्रेरणाएँ दे रहा है, (सः) वह (कविः) क्रान्तदर्शी या वेदकाव्यों का कवि, (विप्रः) मेधावी तथा सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर, (धारया) धारणा-ध्यान द्वारा या वेदवाणी द्वारा (सुतः) प्रकट होता है।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [धा० ८० । उ० ४ । स्व० ७]

सूक्त ५

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१२०५—उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः।
३ १ २ ३ २
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

हे परमात्मन्! (ते) आप के (शुष्मासः) बल, वेदों में, (उद् ईरते) प्रख्यात हो रहे हैं, (इव) जैसे कि (सिन्धोः) समुद्र की (ऊर्मेः) महती लहर की (स्वनः) ध्वनियां प्रख्यात होती हैं। अतः आप (वाणस्य) वेदवाणी के (पविम्) पवित्र वचनों को (चोदय) हम में प्रेरित कीजिये।

[उद् ईरण=Expression (आपटे)। पविम्=वाक् (निघं० १।११)। वाणः=वाक् (निघं० १।११)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १२
१२०६—प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
२ ३ २ ३ १ २
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥

हे परमात्मन् (यत्) जब आप-रक्षक द्वारा (अव्ये) रक्षित, (सानवि) समुन्नत हृदय में, (एषि) आप प्रकट हो जाते हैं, तब (ते प्रसवे) आप की प्रेरणा पर, (मखस्युवः) उपासनायज्ञाभिलाषी के हृदय में, (तिस्रः वाचः) गद्य-पद्य-गीति में विभक्त वेदों की त्रिविध वाणियां (प्रदीरते) उठती हैं, प्रकट होती हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१२०७—अव्या वारैः परि प्रियँ हरिँ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
१ २ ३ १ २
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥

(अव्याः) रक्षक-प्रभु के (वारैः) अविद्या क्लेशों के निवारक, तथा (अद्रिभिः) न विदीर्ण होने वाले अर्थात् नित्य त्रिकालस्थायी मन्त्रों द्वारा, उपासक लोग, (परि हिन्वन्ति) प्रभु को प्रेरित करते हैं, जो प्रभु कि (प्रियम्) प्रिय है, (हरिम्) दुःखहारी है, (पवमानम्) पवित्र करने वाला, और (मधुश्चुतम्) मधुर आनन्दरस बहाने वाला है।

[अवि=रक्षक, अव् (रक्षणे)]

१ २ ३ २ ३ १ २
१२०८—आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

(मदिन्तम) हे आनन्दरसमय ! (कवे) तथा हे वेदकाव्यों के कवि ! आप (धारया) अपनी आनन्दरसधारा द्वारा, (पवित्रं) पवित्र हृदय में (आ पवस्व) आ प्रकट हूजिये, ताकि मैं, (अर्कस्य) वेदमन्त्रों और सूर्य की (योनिम्) योनिरूप आप में (आ सदम्) आ बैठूं।

[अर्कः=मन्त्रः यदनेनार्चन्ति (निरु० ५।१।४)। अर्क=सूर्य (आपटे)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१२०९—स पवस्य मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
१ २ ३ १ २
एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥ ॥ ५ (का) ॥

(मदिन्तम) परमेश्वर की आनन्दरसधारा द्वारा अतिशय आनन्द को प्राप्त हुए हे उपासक ! (सः) वह तू (अक्तुभिः) शान्त रात्रियों में उपासना द्वारा, तथा (गोभिः) वेदवाणियों के ज्ञान द्वारा, (अञ्जानः) प्रकाश को प्राप्त करके (पवस्व) अपने को पवित्र कर, और फिर (इन्द्रस्य) परमेश्वर के मानो (जठरे) पेट में

(आ विश) समा जा अथवा परमेश्वर के स्वरूप में तू ऐसे समा जा जैसे कि अन्न पेट में समा जाता है।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० ३१ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त ६

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
१२१०—अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
३ १२ ३ १ २र
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥

(इन्दो) हे चन्द्रसमान शीतल प्रकाश वाले प्रभो ! आप (अया) इस (वीती) व्याप्ति से (परिस्रव) उपासक में आनन्दरसमयी धारा में प्रवाहित हूजिये, कि (ते) आप के दिये (मदेषु) आनन्दरसों में (यः) जो उपासक तृप्ति पा ले, वह (नव नवतीः) ९९ वर्षों की आयु को (आ अवाहन्) पूर्णतया प्राप्त करले।

[वीती=वीत्या । वी (व्याप्तौ) । नव नवतीः=एक वर्ष गर्भावस्था का जीवन और जन्म के पश्चात् ९९ वर्ष=१०० वर्षों की सामान्य आयु। अवाहन्=हन् गतौ, प्राप्तौ]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१२११—पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

हे परमात्मन् ! (इत्थाधिये) यथार्थज्ञानी और सत्य का अनुष्ठान करने वाले, तथा (दिवोदासाय) द्युतिमान्-आप-के-दास के उपकार के लिये, आप ने, उस के (पुरः) सम्मुख, (सद्यः) शीघ्र ही, उस के (यदुम्) यातनादायक हिंस्र-संस्कारों को (अवाहन्) विनष्ट कर दिया है, जो कि (शम्बरम्) उस की शान्ति को रोके हुए थे, (अध) तथा (त्यम्) उन संस्कारों को भी विनष्ट कर दिया है जो कि (तुर्वशम्) उसकी हिंसा करते हुए उस में सोए हुए थे।

[इत्था=सत्यम् (निघं० ३।१०) । धिये=कर्म (निघं० २।१); प्रज्ञा (निघं० ३।९) । अवाहन्=अव+अद्+हन् (हिंसा, मन्त्र १२१०) । तुर्वशम्=(हिंसा)+श (शयन) यदुम्=यत=निकारे=हिंसायाम्]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१२१२—परि नो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥ ॥ ६ (हि) ॥

(अश्वविद्) हे मनों के जानने वाले (इन्दो) शीतल प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (नः) 'हमारे (अश्वम्) मनों में (परिक्षर) आनन्दरसमयरूप में आप प्रवाहित हो जाइये, तथा (गोमत्) हमारी इन्द्रियां प्रशस्त हों, (हिरण्यवत्) हमें हितकर और

रमणीय गुण प्राप्त हों",—इस प्रकार की हमारी (सहस्रिणीः) हजारों (इषः) इच्छाओं को पूर्ण कीजिये ।

["इन्द्रियाणि हयानाहुः" (कठ० १।३।४) में इन्द्रियों को "हय" अर्थात् अश्व कहा है। मन भी इन्द्रिय होने से अश्व है। तथा मन को अश्व से उपमित किया गया है। यथा—"दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः" (श्वेता० २।९)। हिरण्यम्=हितं च रमणीयं भवति (निरु० २।३।१०)]

[धा० ११। उ० नास्ति। स्व०३]

सूक्त ७

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
१२१३—अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
२ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

(सोमः) भक्तिरस सम्पन्न उपासक, (अराव्णः) अदान आदि आसुरी-वृत्तियों के (मृधः) संग्रामों को (अपघ्नन्) विनष्ट करता हुआ, (अप) उन्हें वार-वार विनष्ट करता हुआ, (पवते) अपने आप को पवित्र करता है, और (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (निष्कृतम्) विशुद्ध स्वरूप को (गच्छन्) प्राप्त हो जाता है।

३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २र
१२१४—महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले (इन्दो) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (नः) हमें (महः रायः) महाधन अर्थात् मोक्ष (आ भर) प्राप्त कराइये; (मृधः) कामादि शत्रुओं का (जहि) हनन कीजिये, तथा (वीरवत् यशः) धर्मवीरों का सा यश (रास्व) प्रदान कीजिये।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२१५—न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ ३
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥ ॥ ७ (खा) ॥

हे परमात्मन्! (यत्) जब आप (पुनानः) हमें पवित्र करते हुए, (मखस्यसे) हमारे उपासना-यज्ञों को सफल करना चाहते हैं, तब (राधः दित्सन्तम्) आध्यात्मिक-सम्पत्तियां प्रदान करने की इच्छा वाले (त्वा) आप को, (शतं चन) सैंकड़ों भी (ह्रुतः) बाधाएँ (न आमिनन्) नहीं रोक सकतीं।

[धा० ११। उ० २। स्व० २]

सूक्त ८

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२१६—अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
३ १ २र ३ २
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥

हे परमात्मन् ! आप अपनी (अया) इस (धारया) धारण-शक्ति के साथ (पवस्व) हमें प्राप्त हूजिये, (यया) जिस धारण-शक्ति द्वारा आप ने (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) निरन्तर चमकाया है। आप (मानुषीः) मनुष्यों के हितकर (अपः) कर्मों को (हिन्वानः) प्रेरित कीजिये और बढ़ाइये।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१२१७—अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥

(पवमानः) पवित्र करने वाले परमेश्वर ने, (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष द्वारा (यातवे) जाने-आने के लिये, (मनौ अधि) मनन-निदिध्यासन करने वाले योगी में, (एतशम्) योगशक्तिरूपी-अश्व को (अयुक्त) योग साधना द्वारा जोता है, जैसे कि अन्तरिक्ष द्वारा जाने-आने के लिये उस ने मानो, (सूरे) सूर्य में (एतशम्) अश्व को जोत रखा है।

[कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूल समापत्तेश्चाकाशगमनम् (योग ३।४२)]

३ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२१८—उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥ ॥ ८ (का) ॥

(उत) तथा (सूरः) जिस प्रेरक ने, (यातवे) जाने-आने के लिये, (रथे) शरीर-रथ में (हरितः) विषयों की ओर हरण करने वाले (त्याः) उन इन्द्रियाश्वों को (अयुक्त) जोत रखा है, (इन्द्रः) चन्द्रसम शीतल स्वभाव वाला योगी (इति ब्रुवन्) यह कहता है कि वह (इन्द्र) परमेश्वर है।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥ [धा० ११। उ० १। स्व० २]

सूक्त ९

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१२१९—अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥

हे उपासको ! (यजिष्ठम्) उपासना-यज्ञों को सफल बनाने वाले, (दूतम्) दुर्भावनाओं को दग्ध करने वाले, (अग्निं देवम्) अग्नि नाम वाले परमात्मदेव को, (वः अध्वरे) अपने हिंसारहित उपासना-यज्ञों में (कृणुध्वम्) अपना बना लो, (यः) जो अग्निदेव कि (अग्निभिः) सूर्य, नक्षत्र, तारागण आदि अग्निमय पिण्डों के साथ (सजोषाः) रम रहा है, (मर्त्येषु) जो मरणधर्मा पदार्थों में (निध्रुविः) सदा ध्रुवरूप में रहता, (ऋतावा) सत्यनिष्ठ, (तपुः) तपे सूर्यवत् तेजस्वी, (मूर्धा) जगत् का शिरोमणि, (घृतान्नः पावकः) तथा घृत जिस का अन्न है उस पार्थिवाग्नि के सदृश पवित्र करने वाला है। [दूतम्=परितापे]

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१२२०—प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

(यवसे) घास की उपस्थिति में, (अविष्यन्) उसे खाना चाहता हुआ (अश्वः) घोड़ा (न) जैसे (प्रोथत्) हिनहिनाता है, अपने नथनों द्वारा शब्द करता है, वैसे हे अग्निस्वरूप परमात्मन् ! (अविष्यन्) अत्तारूप में (यदा) जब आप (अविष्यन्) जगत् का भक्षण करना चाहते हुए, कालमेघ की घोर गर्जनाएँ करते हैं, और संसार-रूपी (महः संवरणात्) महती ओढ़नी से (वि) पृथक् हो कर (अस्थात्) स्थित होने लगते हैं (आत्) तब (अस्य) इस आप की (वातः) प्रबल वायु (अनु) निरन्तर (वाति) बहने लगती है, (शोचिः) और आग्नेय ज्वालाएँ चमकने लगती हैं, (अध) तदनन्तर (ते व्रजनम्) आप संसार से कूच कर जाते हैं, (कृष्णम्) और काली महारात्री (अस्ति) छा जाती है।

[मन्त्र में महाप्रलय का वर्णन है। अविष्यन्=अव् भक्षणे]

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१२२१—उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥ ॥ ९ (टी) ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! (नवजातस्य) नए सृष्टिकाल में नवीनरूप में प्रकट हुए (यस्य) जिस (वृष्णः) सुखवर्षी (ते) आप के, (अजराः) जरा रहित (इधानाः) चमकते हुए तारागण, (उद्) ऊपर द्युलोक में (चरन्ति) विचर रहे हैं, उस (द्याम् अच्छ) द्युलोक के प्रति आप, (अरुषः धूमः) चमकते हुए धूम के रूप में (एषि) प्रथम प्रकट होते हैं, और (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! तदनन्तर जब चमकते तारागण प्रकट होते हैं तब (दूतः) मानो सन्देशहर बन कर (देवान्) उन चमकते नक्षत्रों के प्रति (सम्) उन में समन्वय पैदा करते हुए (ईयसे) आप विचरते हैं।

[धूम=vapour, cloud, mist, haize, (आपटे)। मन्त्र में "अरुषः

धूमः" शब्द Nabula के निर्देशक हैं। इसे विराट् भी कहा गया है (यजु. ३१।५)। देखो मन्त्र संख्या ६२१)]

[धा० १८। उ० १। स्व० ४)

सूक्त १०

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
१२२२—तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।
१ २र ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत्॥ १॥

(तम् इन्द्रम्) उस परमेश्वर को, हम उपासक, (वाजयामसि) अपनी ओर प्रेरित करते हैं, हम अपने (महे वृत्राय) महा पाप वृत्रों के (हन्तवे) हनन के लिये। (सः) वह (वृषा) सुखवर्षी परमेश्वर (वृषभः) वास्तव में सुखवर्षी (भुवत्) हुआ है।

२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ २
१२२३—इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः।
३ २ ३ २उ ३ २
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥ २॥

(सः इन्द्रः) वह परमेश्वर (दामने) शक्तिप्रदान के निमित्त (कृतः) प्रेरित कर लिया गया है, (सः) वह (ओजिष्ठः) अतिशय ओजस्वी है, (बले) बल की प्राप्ति के निमित्त (हितः) उपासक का हितचिन्तक हैं। (द्युम्नी) यशस्वी है, (श्लोकी) वैदिक श्लोकों का, मन्त्रों का स्वामी है। (सः सोम्यः) वह सौम्य स्वभाव वाला है।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१२२४—गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः।
३ २ ३ १ २र
ववक्ष उग्रो अस्तृतः॥ ३॥॥ १० (छ)॥

वह परमेश्वर पापवृत्र के लिये (वज्रः न) वज्र समान है, (गिरा) स्तुति-वाणियों द्वारा (सम्भृतः) अपनाया जाता है, (सबलः) बलशाली है, (अनपच्युतः) नियमों में अटल है, कूटस्थ है, (अस्तृतः) अविनाशी है, (उग्रः) उग्ररूप हो कर दृढ़ता से (ववक्षे) संसार-भार का वहन कर रहा है।

॥ इति षष्ठः खण्डः॥६॥ [धा० १७। उ० २। स्व० ७]

सूक्त ११

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
१२२५—अध्वर्यो अद्रिभिः सुतँ सोमं पवित्र आ नय।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे॥ १॥

(अध्वर्यो) अहिंसामय उपासना-यज्ञ के हे यजमान ! तू, (अद्रिभिः) आदरणीय तथा उपासना-विधियों के ज्ञाता गुरुओं की सहायता से, (सुतं सोमम्) उत्पादित भक्तिरस को, (पवित्रे) अपने पवित्र हृदय में (आ नय) प्रकट कर, (पुनाहि) और उस भक्तिरस को पवित्र कर, ताकि (इन्द्राय पातवे) वह परमेश्वर द्वारा स्वीकृत हो जाय।

[अध्वर्यो=अ+ध्वर् (हिंसा)+यु। अद्रिभिः=अद्रयः आदरणीयाः (निरु. ९।१।६)। विद्वांसो हि ग्रावाणः (शत.३।९।३।४)। पुनाहि=बिना फलेच्छा के भक्तिरस का समर्पण,—यह भावना, भक्तिरस को पवित्र करती है। पातवे=पान करना या पीना,—इस का अभिप्राय है स्वीकार करना। "पा" धातु केवल मुख द्वारा तरल पदार्थ के पीने में ही प्रयुक्त नहीं होती। इस का प्रयोग निम्न प्रकार भी होता है, यथाः—To drink in with the eyes or ears, Look at or listen to intently (आपटे)। पातवे का अर्थ "रक्षा के लिये"—भी होता है, ताकि परमेश्वर तेरे भक्तिरस की रक्षा करे]

२ ३ १२ ३ १ २ ३ २उ ३क २र
१२२६—तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत।
१२ ३ १२
पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥

(इन्दो) चन्द्रसम शीतल हे प्रभो !, (त्ये) वे (देवाः) उपासना विधि का ज्ञान देने वाले योगगुरु, तथा (मरुतः) प्राणायाम के अभ्यासी नवीन उपासक, (पवमानस्य तव) पवित्र करने वाले आप के (मधोः अन्धसः) मधुर आनन्दरस का (व्याशत) भोग करते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
१२२७—दिवः पीयूषमुत्तमँ सोममिन्द्राय वज्रिणे।
३ २ ३ १ २
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ ॥ ११ (खा) ॥

हे उपासको ! (उत्तमम्) सर्वोत्तम, (मधुमत्तमम्) अत्यन्त मधुर, (दिवः पीयूषम्) तथा दिव्य अमृत रूप (सोमम्) भक्तिरस को,—(वज्रिणे) पाप-वृत्र के प्रति वज्रधारी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (सुनोत) निष्पादित करो।

[धा० ११। उ० २। स्व० २]

सूक्त १२

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१२२८—धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः।
१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजाँसि कृणुषे नदीष्वा
॥ १ ॥

(दिवः) द्युलोक का (धर्ता) धारण करने वाला, (कृत्व्यः) अविद्या ग्रन्थि का काटने वाला, (रसः) आनन्दरसरूप, (देवानाम्) उपासक देवों का (दक्षः) एकमात्र बलरूप, (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (अनुमाद्यः) स्तुति योग्य, (हरिः) पाप क्लेशहारी प्रभु, (पवते) उपासकों को पवित्र करता है, और उन के प्रति, (अत्यः न) अश्व के समान, शीघ्रता से गमन करता है। हे प्रभो ! आप (सत्त्वभिः) निज शक्तियों द्वारा (सृजानः) सृष्टि का सर्जन कर रहे हैं, आप (वृथा) निज स्वभाव से (नदीषु) बहती हुई नदियों में बहने के (पाजांसि) बल (कृणुषे) प्रदान कर रहे हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २ ३ १ २र

१२२९—शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व३ः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

प्रजाजनों को (स्वः सिषासन्) सुखप्रदान करने की इच्छा वाला, (रथिरः) रथियों का स्वामी (शूरः) शूरवीर योद्धा, (न) जैसे (गविष्टिषु) पार्थिव एषणाओं के निमित्त, (गभस्त्योः) अपने हाथों में (आयुधा) आयुध (धत्ते) धारण करता है, वैसे (रथिरः) जीवात्माओं का स्वामी परमेश्वर, (गविष्टिषु) उपासकों की आध्यात्मिक एषणाओं की पूर्ति के निमित्त उन्हें (स्वः सिषासन्) सुख प्रदान की इच्छा करता हुआ, और उन्हें (इन्दुः) अज्ञान-रात्रियों में ज्ञानप्रकाश देता हुआ, (इन्द्रस्य) तथा जीवात्माओं के (शुष्मम्) आत्मिक बलों को (ईरयन्) उन के प्रति प्रेरित करता हुआ, (हिन्वानः) इस प्रकार उन्हें उपासना मार्ग में बढ़ाता हुआ, (मनीषिभिः) मनस्वी (अपस्युभिः) कर्मयोगियों द्वारा (अज्यते) अभिव्यक्त किया जाता है, प्रकट किया जाता है।

[गभस्त्योः=बाहुनाम (निघं.२।४)। रथिरः=आत्मानं रथिनं विद्धि (कठ. १।३।३)+रः। गविष्टषु=गौ (पृथिवी, निघं. १।१)+इष्टि एषणाएं)। तथा गौ=स्तोता (निघं. ३।१६)। अपस्युभिः=अपः (कर्म, निघं. २।१)+क्यच्+उ। हिन्वानः=हि वृद्धौ]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१२३०—इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३

प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि

१ २

शश्वतः ॥ ३ ॥ ॥ १२ (चा) ॥

(सोम) हे जगदुत्पादक ! (पवमान) हे पवित्र करने वाले! (तविष्यमाणः) योगमार्ग में जीवात्मों की वृद्धि करते हुए आप, (ऊर्मिणा) आनन्दरसमयी लहर द्वारा, (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के अधिष्ठाता आत्माओं के (जठरेषु) तीनों शरीरों में (आ विश) प्रवेश पाइये, (इव) जैसे कि (विद्युत् अभ्रा) विद्युत् मेघों में प्रवेश पाई हुई है, और (नः) हमें (रोदसी) सिर से लेकर पैरों तक, अर्थात् शरीरों के

दोनों किनारों तक (प्र पिन्व) आनन्दरस से सींच दीजिये, तथा (धिया) सद्बुद्धियों और सत्कर्मों के साथ-साथ (नः) हमें (शश्वतः वाजान्) शाश्वत बल (उप माहि) प्रदान कीजिये।

[जठर=शरीर=स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, तथा कारण शरीर]

[रोदसी=द्यावा पृथिव्यौ (निघं० ३।३०)। वेदों में ब्रह्माण्ड दृष्टि से द्यु=द्युलोक, और पृथिवी=भूलोक। परन्तु पिण्ड दृष्टि से द्यु=सिर, और पृथिवी=पाद। यथाः—"शीर्ष्णो: द्यौः समवर्त्तत पद्भ्यां भूमिः" (यजु. ३१।१३)। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।

[धा० २७। उ० १। स्व० २]

सूक्त १३

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
१२३१—यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (यत्) यद्यपि आप, (प्राक्) पूर्व, (अपाक्) पश्चिम, (उदक्) उत्तर, (न्यक् वा) या दक्षिण में, (सिमाः) और सब ओर (नृभिः) नर-नारियों द्वारा (हूयसे) पुकारे जाते हैं, (पुरु) तथा बहुशः (नृषूतः असि) नर-नारियों द्वारा प्रेरित किये जाते हैं, तो भी (प्रशर्ध) हे महाबली! आप, (आनवे) प्राण-शक्ति सम्पन्न (तुर्वशे) तथा अपने आप को शीघ्र अपने वश में कर लेने वाले उपासक में, (पुरु) अधिकतया (असि) प्रकट होते हैं।

[सिमा=सिमस्मै (सर्वस्मै; निरु. ४।२।१०)। आनवे=आ+अन् (प्राणने) +उ। तुर्वशे=तुर्=त्वरया+वशे]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१२३२—यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि
॥ २ ॥ १३ (कि) ॥

हे परमेश्वर! (यद्वा) यद्यपि आप (रुमे) शाब्दिक स्तुति करने वाले, (रुशमे) शाब्दिक स्तुति के साथ-साथ शम-दम आदि पर चलाने वाले, (श्यावके) क्रिया शील अर्थात् उद्यमी तथा (कृपे) कृपाशील,—इन सब व्यक्तियों में (सचा) सम्बद्ध हुए, इन में वर्तमान हुए, इन्हें (मादयसे) प्रसन्न रखते तथा आप स्वयं प्रसन्न रहते हैं, तथापि (इन्द्र) हे परमेश्वर! (कण्वासः) मेधावी और (ब्रह्मवाहसः) आप ब्रह्म का वहन करने वाले उपासक ही, (त्वा) आप को, (आ यच्छन्ति) पूर्ण-तया नियन्त्रित कर लेते हैं, अपने वश में कर लेते हैं, अतः आप (आ गहि) इन्हें प्राप्त होते हैं।

[रुमे=रु (शब्दे)+मा (लक्ष्मी, सम्पत्ति)। मौखिक स्तुति करना,—यह

ही जिन की आध्यात्मिक सम्पत्ति है। रुशमे=रु (शब्दे)+शम। मौखिक स्तुति तथा शम दम का अभ्यास करने वाले। श्यावके=श्यैङ् गतौ। कण्वासः=मेधाविनः (निघं० ३।१५), अर्थात् कण-कण कर के आध्यात्मिक शक्तियों का उपार्जन करने वाले]

[धा० ११। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १४

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
१२३३—उभयँ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (अर्वाक्) हमारे अभिमुख हुआ-हुआ (नः) हमारे (इदम्) इन (उभयम्) दोनों प्रकार के (वचः) स्तुति वचन और प्रार्थना वचन (शृणवत्) सुनता है। (च) और (मघवान्) आत्मिक सम्पत्तियों वाला (शविष्ठः) अति बलवान् परमेश्वर, (सोमपीतये) भक्तिरस स्वीकार करने के लिये, (सत्राच्या) सदा त्राण करने में उद्यत (धिया) बुद्धि के साथ (आ गमत्) हमें प्राप्त होता है।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१२३४—तँ हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामँ हि ते मनः
॥ २॥॥ १४ (चो)॥

(स्वराजम्) स्वतः प्रकाशमान, तथा (वृषभम्) सुखों की वर्षा करने वाले (तम्) उस परमेश्वर को, (ओजसा) तथा ओज के साथ वर्तमान (तम्) उस परमेश्वर को, (हि) निश्चय से, (धिषणे) प्रज्ञा और भक्ति (निष्टतक्षुः) प्रकट करते हैं। और हे परमेश्वर! आप (उपमानाम्) उपमाओं में (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ उपमा रूप हैं। (नि षीदसि) आप हमारे हृदयों में सदा स्थित हैं। (ते) आप की (मनः) इच्छा (सोमकामम्) भक्तिरस की कामना वाली है।

[धिषणे=धी (प्रज्ञा)—षणु (दाने) भक्ति रूपी समर्पण]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७॥ [धा० १७। उ० १। स्व० ४]

सूक्त १५

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१२३५—पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः।
३ १ २र ३ १ २
वायुमा रोह धर्मणा ॥ १॥

(आयुषक् देव) मनुष्यसमाज की सेवा में प्रसक्त हे उपासक देव! (पवस्व) तू अपने भक्तिरस को पवित्र बना, ताकि (ते) तेरी (मदः) भक्ति की मस्ती

(इन्द्रम्) परमेश्वर को (गच्छतु) स्वीकृत हो जाय। हे उपासक! तू (धर्मणा) योग के धारण आदि साधनों द्वारा (वायुं आरोह) वायु अर्थात् "आकाश में आरोहण" आदि सिद्धियों को प्राप्त कर।

[आयुषक्=आयवः=मनुष्याः (निघं० २।३)+षच् (समवाये)। वायुमारोह=(योग ३।४२)। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद १०।१३६।१-७ के निम्नलिखित मन्त्रांश ध्यान के योग्य हैं। यथाः—"मुनयो वातरशना"वातस्यानु ध्राजिं यन्ति" (२); "उन्मदिता मौनेयेन वातां आ तस्थिमा वयम्" (३); "अन्तरिक्षेण पतति (मुनिः) विश्वा रूपावचाकशत्" (४); "मुनिः=उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः" (ऋ. १०।१३६।२,३,४,५)]

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१२३६—पवमान नि तोशसे रयिँ सोम श्रवाय्यम्।

१ २ ३ १ २र

इन्द्रो समुद्रमा विश ॥ २ ॥

(पवमान) अपने आप को पवित्र करने वाले; (सोम) सौम्य स्वभाव वाले! (इन्द्रो) तथा ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित हे उपासक! तू (नितोशसे) अपने पाप-वृत्रों का विनाश कर, और (श्रवाय्यम्) श्रुतियों द्वारा श्रवणयोग्य (रयिम्) आध्यात्मिक जीवन की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्तिरूप परमेश्वर में (आ विश) प्रवेश पा जा, जैसे कि नदियां (समुद्रम्) समुद्र में प्रवेश पा जाती हैं।

[नितोशसे=वधकर्मा (निघं० २।१९)]

३ १ २ ३ १ २

१२३७—अपघ्नन्पवसे मृधः ॥ ३ ॥ ॥ १५ (लि) ॥

(क्रतुवित्) उपासना-यज्ञ के स्वरूप को जानने वाले! (सोम) तथा सौम्य स्वभाव वाले हे उपासक! तू (मृधः) कामादि शत्रुओं का (अप घ्नन्) विनाश करता हुआ, (पवसे) अपने आप को पवित्र करता है। तू (अदेवयुं जनम्) परमेश्वर देव को न चाहने वाले नास्तिक व्यक्ति को (नुदस्व) अपनी सङ्गति से परे रख। इस प्रकार तू (मत्सरः) आनन्दरस का सरोवर बन जा।

[धा० १४। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त १६

३ १ २ ३ १ २

१२३८—अभी नो वाजसातमम् ॥ १ ॥

(इन्दो) हे प्रकाशमय प्रभो! (नः अभि) हमारी ओर (रयिम्) उस सम्पत्ति को, मोक्ष को, (अर्ष) प्रेरित कीजिये, जो कि (वाजसातमम्) अतिशय बल प्रदाता है, (शतस्पृहम्) सैंकड़ों उपासकों द्वारा वाञ्छनीय है, (सहस्रभर्णसम्) हजारों के आध्यात्मिक भरण पोषण में समर्थ है, (तुविद्युम्नम्) महायश प्रदाता (विभासहम्) तथा जो अपनी प्रभा द्वारा सांसारिक सम्पत्तियों को तुच्छ दर्शाता है।

३ १ २ ३ १ २र ३ १२ ३ १ २
१२३९—वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
३ २र ३ १ २र ३ १ २
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥ २ ॥

(वसोर्वसो) सम्पत्तियों में से सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति रूप हे परमेश्वर! उपासकों के (इषः) अभीष्टों को (राधसः) सिद्ध करने वाले, तथा (पुरुस्पृहः) बहुत चाहे गए (अस्य ते) आप के, (नि नेदिष्ठतमाः) नितरां अति समीप, (वयं स्याम) हम हो जाँय; इस प्रकार (अध्रिगो) हे आध्यात्मिक प्रगति को न रोकने वाले परमेश्वर! हम आप द्वारा दिये (सुम्ने) सुख में (नि स्याम) सदा वर्तमान रहें।

[सुम्नम्=सुख (निघं० ३।६)]

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२४०—परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः
॥ ३ ॥ ॥ १६ (ली ॥

(इन्दुः) प्रकाश-स्वरूप (मदच्युतः) आनन्दरस स्रावी (स्यः) वह परमेश्वर, (स्वानः) ज्ञानोपदेश की ध्वनियां करता हुआ, (अव्ये) रक्षणीय उपासक में, (परि अक्षरत्) पूर्णतया प्रवाहित हो जाता है। (गव्ययुः) उपासक के लिये ज्ञान-दुग्ध चाहता हुआ परमेश्वर, (न) जैसे (भ्राजा) अपनी ज्योति के साथ, वैसे अपनी (धारा) आनन्दमयी धारा के साथ, (अध्वरे) उपासक के हिंसारहित उपासना यज्ञ में (याति) विचरता है। परमेश्वर (यः) जो कि (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि है।

[धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त १७

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
१२४१—पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥१॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा जगदुत्पादक प्रभो ! आप (महान्) महान् हैं, (समुद्रः) आनन्दरस सागर हैं, (पिता) सब के पिता हैं, आप (देवानाम्) इन्द्रिय-देवों के (विश्वा धाम) सब धामों अर्थात् स्थानों को (अभि पवस्व) सब प्रकार से पवित्र कजिये।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१२४२—शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः॥२॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा जगदुत्पादक ! प्रभो ! आप (शुक्रः) शुचि और प्रकाश स्वरूप हैं, (देवेभ्यः) विद्वत्प्रजाजनों के लिये,(प्रजाभ्यः)अन्य सभी प्रजाजनों के लिये, (पृथिव्यै) समग्र पृथिवी के लिये, (दिवे) तथा समग्र द्युलोक के लिये (शम्) आप सुख शान्ति (पवस्व) प्रवाहित कीजिये।

३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१२४३—दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व
॥ ३ ॥ ॥ १७ (हि) ॥

हे प्रभो ! (दिवः) आप द्युलोक के तथा ज्ञानज्योति के (धर्त्ता) धारण करने वाले हैं, (शुक्रः) शुचि और प्रकाश स्वरूप हैं, (पीयूषः) अमृतरूप हैं, (वाजी) बलवान् हैं, (सत्ये विधर्मन्) सत्य के धारण करने में, आप हमें (पवस्व) पवित्र कीजिये ।

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त १८

१ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१२४४—प्रेष्ठं वो अतिथिँ स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
२ ३ २ ३ १ २र
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥

हे उपासको ! (वः) तुम्हारे (प्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रिय, तथा (अतिथि मित्रम् इव) अतिथि और मित्र के सदृश (प्रियम्) प्रिय परमात्मा के (स्तुषे) गुणों का स्तवन मैं करता हूँ । (अग्ने रथं न) अग्नि द्वारा चलाए गये रथ के सदृश (वेद्यम्) प्राप्त करने योग्य परमात्मा के गुणों का मैं स्तवन करता हूँ ।

[अग्ने रथम्=आग्नेय रथ द्वारा उद्दिष्ट स्थान पर शीघ्र पहुँचा जा सकता है । उपासक परमात्मा की सहायता द्वारा अपने उद्देश्य तक शीघ्र पहुँच जाता है]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१२४५—कविमिव प्रशँस्यं यं देवास इति द्विता ।
१ २उ ३ २
नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥

जो (कविम् इव) कविरूप में वेदों में (प्रशंस्यम्) प्रशंसित हुआ है, (यम्) तथा जिसे (देवासः) विद्वान् लोग (इति) यह कहते हैं कि वह (द्विता) द्विविध स्वरूप है, और जिसे विद्वान् लोग, (मर्त्येषु) मनुष्य समाज में, (नि आदधुः) निधिरूप में आधान करते हैं,—उस परमात्मा के गुणों का मैं (स्तुषे) स्तवन करता हूँ (मन्त्र १२४४) ।

[वेदों में परमात्मा को कवि, और उस द्वारा उपदिष्ट वेदों को काव्य कहा है । यथा "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः" (यजु० ४०।८); तथा "देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति" (अथर्व० १०।८।३२) । नि आ दधुः=आ निदधुः । अर्थात् वेद मनुष्यों को यह उपदेश देते हैं कि परमात्मा ही एक सच्ची निधि है, प्राकृतिक धन का खज़ाना सच्ची निधि नहीं । (द्विता=(१) एकपाद् सृष्टिकर्तृत्व रूप, (२) त्रिपाद् अमृत रूप, जो कि सृष्टि से ऊर्ध्व है (यजु. ३१।३,४)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१२४६—त्वं यविष्ठ दाशुषो नृ:ँ॒ पाहि शृणुही गिरः ।
१ २ ३ २ ३ १ २र
रक्षा तोकमुत त्मना ।। ३ ।। ।। १८ (यी) ।।

(यविष्ठ) हे सदा युवा शक्तियों वाले परमेश्वर ! (त्वम्) आप, (दाशुषः) आप के प्रति सर्वस्व समर्पण करने वाले (नृन्) नर-नारियों की (पाहि) सदा रक्षा करते हैं, (गिरः) उन की प्रार्थनावाणियों को (शृणुहि) सदा सुनते हैं, और (तोकम्) इन अध्यात्म-पुत्रों की (त्मना) आप स्वयं (रक्ष) रक्षा करते हैं।

[धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त १९

१ २ ३ १ २
१२४७—एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ।। १ ।।

(प्रिय सत्राजित्) हे प्रिय ! तथा सदा विजयी ! तथा (अगोह्य) न छिपाये जाने वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमें (आ गधि=आ गहि) आप प्राप्त हूजिये, दर्शन दीजिये। आप (गिरिः) आकाश में छाए हुए मेघ के (न) समान (पृथुः) सर्वत्र फैले हुए हैं, (दिवः) और विस्तृत द्युलोक के भी (पतिः) स्वामी हैं। [गिरि =मेघ (निघं० १।१०)] [अगोह्य=परमेश्वर छिपाया नहीं जा सकता । वह अपनी रचनाओं द्वारा अनुमेय हैं, और योगीजनों को प्रत्यक्ष भी होता है]

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
१२४८—अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ।। २ ।।

(सत्य) हे सत्यस्वरूप ! (हि) निश्चय से आप (सोमपाः) भक्तिरस का पान करते और उपासक के भक्तिरस की रक्षा करते हैं। आप (रोदसी) द्युलोक और भूलोक (उभे) इन दोनों को (अभि बभूथ) पराजित किये हुए हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (सुन्वतो) भक्तिरस निष्पादक उपासक को, (वृधः) उपासना-मार्ग में, बढ़ाते हैं। आप (दिवः) द्युलोक के (पतिः) रक्षक और स्वामी हैं।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
१२४९—त्वँ॒ हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ।। ३ ।। ।। १९ (फे) ।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप, (हि) निश्चय से, (शश्वतीनाम्) अनादि काल की (पुराम्) पुरियों के, अर्थात् सूक्ष्म शरीरों और कारण शरीरों के

(धर्त्ता) धारण, रक्षण करने वाले हैं। (दस्योः) क्षय करने वाले आसुरी भावों और संस्कारों के (हन्ता) विनाशक हैं, (मनोः) श्रवण मनन आदि करने वाले को (वृधः) आप बढ़ाते हैं, (दिवः) सभी ज्योतियों के (पतिः) आप स्वामी हैं।

[धा० २०। उ० २। स्व० ७]

सूक्त २०

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
१२५०—पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १ ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (अजायत) मुझ उपासक में प्रकट हुआ है। वह (पुरां भिन्दुः) स्थूल शरीरों का भेदन करता, मृत्यु द्वारा उन्हें विनष्ट करता है, (युवा) शक्तियों की दृष्टि से सदा युवा, उत्पत्ति और विनाश के लिये तत्त्वों में परस्पर संयोग और विभाग का करने वाला, (कविः) वेदकाव्यों का कवि अर्थात् रचयिता, (अमितौजाः) अपरिमित बल वाला, (विश्वस्य कर्मणः) संसार की विविध कृतियों का (धर्त्ता) करने वाला और उन का धारण-पोषण करने वाला, (वज्री) आसुर भावों पर वज्र-प्रहार करने वाला, तथा (पुरुष्टुतः) वेदों में बहुत प्रकार से प्रशंसित है।

[मन्त्र १२४९ में "पुराम्" शब्द द्वारा सूक्ष्म तथा कारण शरीरों का वर्णन है, जो कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवात्मा के साथ रहते और भावी जन्मों के बीज रूप होते हैं। और मन्त्र १२५० में "पुराम्" द्वारा स्थूल शरीरों का वर्णन हुआ है, जिन की कि उत्पत्ति और विनाश होता रहता है। इन्हीं "पुरों" की दृष्टि से जीवात्मा को "पुरुष" कहते हैं। पुरुष का अर्थ है पुरी में बसने वाला। शरीर ही जीवात्मा की पुरी है। युवा—यु (मिश्रण और अमिश्रण)]

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२५१—त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्।
२ ३ १ २र ३ १ २
त्वां देवा अबिभ्युपस्तुज्यमानास आविषुः ॥ २ ॥

(अद्रिवः) हे ज्ञान वज्रधारी परमेश्वर! (वलस्य) अज्ञानावरण से आवृत (गोमतः) वेदपाठी के (बिलम्) अज्ञानछिद्र को, अज्ञानरूपी कमी को, (त्वम्) आप ने (अ पावः) दूर कर दिया हैं, हटा दिया है। (देवाः) विद्वान् लोग (तुज्यमानासः) जब कामक्रोध, रागद्वेष आदि के प्रहारों से पीड़ित हो जाते हैं तो वे भी (त्वाम्) आप की शरण में (अविषुः) आते हैं, (अबिभ्युषः) और निर्भय हो जाते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१२५२—इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥३॥ २०(ही)॥

तदनन्तर (१२५१) गे देवलोग अर्थात् विद्वान्, (स्तोमैः) सामगानों द्वारा, (ओजसा ईशानम्) निजबल के कारण जगत् के शासक परमेश्वर की, (अभि) साक्षात् (अनूषत) स्तुतियां करते हैं, (यस्य) जिस परमेश्वर के कि (सहस्रं रातयः) हजारों दान हमें प्राप्त हैं, (उत वा) और जिस के (रातयः) दान (भूयसीः सन्ति) हजारों दानों से भी बहुत अधिक हैं।

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४]

इति पंचमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ५—१ ॥

नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥



दशमोऽध्यायः ।

[२]

अथ पंचमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥५॥

(१-२३) १ पराशरः शाक्त्यः; २ शुनःशेप आजीगर्तिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; ३ असितः काश्यपो देवलो वा; ४,७ राहूगण आंगिरसः; ५ (१-४), ५(प्रथम पाद.) प्रियमेध आंगिरसः; ५ (शेषास्त्रयः पादाः) ६ (प्रथम पादः) १४ नृमेध आंगिरसः; ६ (शेषास्त्रयः पादाः) इध्मवाहो दार्ढच्युतः; ८ पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० वत्सः काण्वः; ११ शतं वैखानसः; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १३ वसुर्भारद्वाजः; १५ भर्गः प्रागाथः; १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १७ मनुराप्सवः; १८ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १९ अग्नो धिष्ण्या ऐश्वराः; २० अमहीयुरांगिरसः; २१ त्रिशोकः काण्वः; २२ गोतमो राहूगणः; २३ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ॥ १-७, ११-१३, १६-२० पवमानः सोमः, ८ पवमानाध्येता, ६, १४-१५, २१ (२-३) २२-२३ इन्द्रः, ९ अग्निः; २१ (१) अग्नीन्द्रौ ॥ १,९ त्रिष्टुप्; २-७, १०-११, १६, २०-२१ गायत्री; ८, १८, २३ अनुष्टुप्; १२ (१-२), १४, १५ प्रगाथः = (बृहती, सतोबृहती); १३ (३), द्विपदा विराट्; १३ जगती, १७, २२ उष्णिक् ॥

सूक्त १

१२५३—अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः।
वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः
॥ १ ॥

(समुद्रः) विद्याओं और विभूतियों का सागर परमेश्वर, (प्रथमे) विस्तृत (वि विधर्मन्) तथा विविध जगत् के धारक महाकाश में (अक्रान्) व्याप्त है। (प्रजाः जनयन्) विविध कार्य जगत् को पैदा करता तथा (भुवनस्य) ब्रह्माण्ड का (गोपाः) रक्षक है। (अव्ये) अपने प्रवेश स्थान (पवित्रे) पवित्र हृदय में, (वृषा) आनन्दरस की वर्षा करने वाला प्रभु (अधिसानः) जीवात्मा को अधिक शक्ति प्रदान करता है। (स्वानः) वेदों का नाद करने वाला, (अद्रिः) मेघवत् सुखवर्षी, (सोमः) जगदुत्पादक प्रभु, (बृहत् वावृधे) हृदय में नानाशक्तियों के रूप में बढ़ता है, अभिव्यक्त होता है।

[अव्ये=अव (प्रवेशे)। सानः=षणु (दाने)। स्वानः=स्वन (शब्दे)। अद्रिः=मेघ (निघं० १।१०)]

१२५४—मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव
सोम ॥ २ ॥

(सोम देव) हे जगदुत्पादक देव! (नः) हमारे (इष्टये) इष्टों के लिये, और (राधसे) उन की सिद्धि के लिये, आप ने (वायुम्) वायु को (मत्सि) आनन्द प्रदायी किया है, (मित्रावरुणा) सूर्य और मेघ को (मत्सि) आनन्द प्रदायी किया है, (मारुतं शर्धः) मानसून वायु के बल को (मत्सि) आनन्द प्रदायी किया है, (देवान्) इन सब दिव्य शक्तियों और प्रकाशकारी हमारी इन्द्रियों को (मत्सि) आनन्दप्रदायी किया है, (द्यावापृथिवी) समग्र द्युलोक और पृथिवी लोक को (मत्सि) आनन्दप्रदायी किया है। (पूयमानः) आप इन सब को पवित्र बना रहे हैं।

१२५५—महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥ ३ ॥
॥ १ (टै) ॥

(महिषः सोमः) महान् जगदुत्पादक ने (तत्) वह महत्त्व का कार्य (चकार) किया है, (यद्) कि उस ने (अपाम्) पार्थिव और आकाशीय सामुद्रिक जलों, तथा व्यापक प्रकृति को, तथा (देवान्) सूर्य चन्द्र तारागण आदि दिव्य पदार्थों

को, उन की सुरक्षा के लिये, (गर्भः) गर्भरूप में (अवृणीत) स्वीकार कर रखा है। (पवमानः) पवित्र करने वाले प्रभु ने (इन्द्रे) विद्युत् में और इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा में (ओजः अदधात्) ओज स्थापित कर दिया है। (इन्दुः) उस प्रकाशमान ने (सूर्ये) सूर्य में (ज्योतिः अजनयत्) ज्योति प्रकट की है।

[देखो मन्त्र ५४२]

[धा० २८। उ० १। स्व० ८]

सूक्त २

३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२५६—एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते।
३ १ २र ३ १ २
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

(एषः) यह (अमर्त्यः देवः) अमर परमेश्वर देव, (द्रोणानि) उपासकों के हृदय कलशों में (आ सदम्) आ बैठने के लिये, उनके कर्म-बन्धनों को (अभि दीयति) काटता हैं, (इव) जैसे (पर्णवीः) पंखों से उड़ने वाला पक्षी फलों को काटता है।

अथवा

यह अमरदेव, उपासकों के हृदय-कलशों में आ बैठने के लिये उनकी ओर प्रथम झुकना है, जैसे कि पक्षी स्थान पर आ बैठने के लिये, उड़ता हुआ उस स्थान की ओर झुकता है।

[दीयति=दीङ् क्षये; तथा दय=गतौ। पर्णवीः=पर्ण=पंख + वी (गतौ)]

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१२५७—एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २ ॥

(एषः: देवः) यह परमेदवदेव (विप्रैः) मेधावी उपासकों द्वारा (अभिष्टुतः) प्रत्यक्ष स्तुति पा कर, उपासकों के (अपः) कर्मों का (विगाहते) विगाहन करता है, गहरा निरीक्षण करता है, और (दाशुषे) समर्पण करने वाले के लिये, (रत्नानि) आध्यात्मिक रत्न, विभूति आदि (दधत्) प्रदान करता है।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२५८—एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः।
१ २
पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥

(पवमानः एषः) पवित्र करने वाला यह परमेश्वर, (यन्) उपासक की ओर प्रयाण करता हुआ, झुकता हुआ, उसे (विश्वानि वार्या) उस के अभिलषित सब फलों को (सिषासति) देना चाहता है, (इव) जैसे कि (सत्वभिः) सम्पत्तियों

से सम्पन्न (शूरः) शूरवीर राजा, (यन्) प्रजाओं में विचरता हुआ, उन्हें सब प्रकार की श्रेष्ठ सम्पत्तियां प्रदान करता है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२५९—एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
३ १ २ ३ २
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥

(एषः देवः) यह परमेश्वर देव (रथर्यति) उपासकों के शरीर-रथों का स्वामी बन जाता है। (पवमानः) उपासकों को पवित्र करता हुआ (दिशस्यति) उन्हें जीवनोपयोगी निर्देश देता है, और (वग्वनुम्) वेदवाणी के रहस्यों को (आविष्कृणोति) प्रकट करता है।

[वग्नुः=वाक् (निघं० १।११)]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२६०—एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
२ ३ १ २
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥

(पवमानः) पवित्र करने वाला (एषः देवः) यह परमेश्वर देव, (विपन्युभिः) श्रद्धापूर्वक गुणगान करने वालों, तथा (ऋतायुभिः) सत्याभिलाषी उपासकों द्वारा (वाजाय) बल प्राप्ति के उद्देश्य से, (मृज्यते) विशुद्ध रूप में, अभिव्यक्त रूप में प्रकट किया जाता है। (हरि) परमेश्वर अविद्या आदि का अपहरण करता है।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२६१—एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
१ २ ३ १ २
पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

(पवमानः एषः देवः) पवित्र करने वाला यह परमेश्वर देव, (विपा) भक्तिमय सामगानों के वेपनों द्वारा (कृतः) स्वाभिमुख किया हुआ, (ह्वरांसि) उपासकों की कुटिलताओं को (अति) हटा कर, (धावति) उन्हें शुद्ध कर देता है। (अदाभ्यः) परमेश्वर किसी भी द्वारा दबाया नहीं जा सकता।

[धावु=शुद्धौ]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१२६२—एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
१ २ ३ १ २
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

(पवमानः) पवित्र करता हुआ यह परमेश्वर उपासक के (दिवम्) मस्तिष्क को (वि धावति) विशुद्ध कर देता है, और (धारया) आनन्दरसमयी धारा को

बहा कर उस के (रजांसि) राजसिक कर्मों को (तिरः) तिरस्कृत करता है, तथा उसे (कनिक्रदत्) बार-बार सन्मार्ग का उपदेश देता है।

[दिवम्="दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" (अथर्व० १०।७।३२)]

३ २उ ३ १ २ ३ २र ३ १ २
१२६३—एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः।
१ २ ३ २
पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

(अस्तृतः) अबाधित शक्ति वाला, (पवमानः) पवित्र करने वाला, (स्वध्वरः) उपासक के हिंसारहित उपासना यज्ञ को सफल बनाता हुआ (एषः) यह परमेश्वर, (दिवम्) उपासक के मस्तिष्क में (व्यासरत्) व्याप्त हो जाता है, और उस के (रजांसि) रजोगुणों को (तिरः) तिरस्कृत कर देता है।

[दिवम्=मस्तिष्क में दो चक्र होते हैं, आज्ञाचक्र और सहस्रार चक्र। आज्ञाचक्र में संयम द्वारा तृतीय नेत्र का विकास होता है, और सहस्रार चक्र में संयम द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार होता है। सहस्रारचक्र में योगी "ब्रह्मरन्ध्र" द्वारा पहुँचता है]

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१२६४—एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः।
१ २ ३ १ २
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

(हरिः) अविद्या क्लेशहारी (एषः देवः) यह परमेश्वर देव (पवित्रे) पवित्र हृदय में (अर्षति) प्रकट होता है, और (प्रत्नेन जन्मना) पुरातन नाना जन्मों और उन में किये कर्मों के अनुसार (देवेभ्यः) दिव्य रूप धारण किये उपासकों से (सुतः) प्रकट किया जाता है।

[अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिम् (गीता)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२६५—एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः।
१ २ ३ २
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ ॥ २ (ह्र) ॥

(एषः) यह (स्यः) पूर्व वर्णित परमेश्वर, (उ) निश्चय से, (पुरुव्रतः) महाव्रती है, (जज्ञानः) सर्वज्ञ है। (सुतः) प्रकट हो कर (धारया) आनन्दरसमयी धारा द्वारा (पवते) उपासक को पवित्र करता है। और (इषः) उपासक के अभीष्टों को (जनयन्) सिद्ध करता है।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥ [धा० ३४। उ० ३। स्व० ६]

सूक्त ३

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२६६—एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
२ ३ १२ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

(एषः) यह उपासक (अण्व्या) सूक्ष्म (धिया) योगज बुद्धि के साथ (याति) संसार में विचरता है, और (शूरः) धर्मवीर बन कर (आशुभिः) उद्देश्य तक शीघ्र पहुँचा देने वाले (रथेभिः) शरीर-रथों द्वारा, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण-शरीर द्वारा (याति) विचरा करता है, (इन्द्रस्य) और परमेश्वर के (निष्कृतम्) पवित्र विशुद्ध स्वरूप की ओर (गच्छन्) प्रगति करता रहता है।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१२६७—एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २
यत्रामृतास आशत ॥ २ ॥

(एषः) यह उपासक (महते देवतातये) दिव्यगुणों के महाविस्तार के लिये, (धिया) सूक्ष्म योगज बुद्धि द्वारा, (पुरू) पालक और परिपूर्ण परमेश्वर को (अयते) प्राप्त करता है, (यत्र) जिस परमेश्वर में वास करके (अमृतासः) अमृत आत्माएँ (आशत) परमेश्वर के आनन्दरस का भोग करती हैं।

[पुरू=पॄ पालन-पूरणयोः ।]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२६८—एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
३ २ ३ १ २र
प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥

(महीः इषः) उपासकों की महती इच्छाओं को (प्र चक्राणम्) सिद्ध कर देने वाले, (मर्ज्यम्) विशुद्ध रूप में साक्षात् करने योग्य (एतम्) इस परमेश्वर को, (आयवः) उपासक लोग (द्रोणेषु) अपने हृदय-कलशों में (उप मृजन्ति) श्रद्धापूर्वक मार्जन विधि द्वारा विशुद्ध रूप में साक्षात् कर लेते हैं।

[मन्त्र १२६७ और मन्त्र १२६८ में पठित "अयते" और "आयवः" में समानार्थक "अय्" धातु है]

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
१२६९—एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
१ २ ३ २ ३ १ २
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥

(एषः) यह (अन्तः) अन्तेवासी नवीन उपासक,—(हितः) जो कि सर्व हितकारी है—(शुन्ध्यावता पथा) शोधन मार्ग द्वारा पहिले (वि नीयते) विनीत

किया जाता है, (यदी) जब कि (भूर्णयः) इसका भरण-पोषण करने वाले गुरुजन (तुञ्जन्ति) इसे शिक्षा प्रदान करते हैं।

[तुञ्जति=दानकर्मा (निघं० ३।२०)]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२७०—एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः।
२ ३ १ २ ३ १ २
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

(एषः) यह नवीन उपासक (वाजी) योग-गुरुओं द्वारा शक्ति पा कर, (सिन्धूनाम्) वहती चित्तवृत्तियों पर (पतिः भवन्) विजय पाता हुआ, (रुक्मिभिः) ब्रह्मवर्चस्वी तथा (शुभ्रेभिः अंशुभिः) समुज्ज्वल किरणों के सदृश शुद्ध-पवित्र आध्यात्मिक गुरुओं के साथ (ईयते) विचरता है।

[सिन्धूनाम्=योगदर्शन १।१२ में व्यास लिखते हैं कि "चित्तनदी नाम उभयतो वाहिनी, वहति कल्याणाय, वहति पापाय च",—इस प्रकार चित्त को नदी कह कर चित्तवृत्तियों को चित्तनदी की लहरों के रूप में वर्णित किया है। सिन्धूनां स्यन्दन-शीलानां चित्तवृत्तीनाम्]

१ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २क ऽ १ २
१२७१—एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३वृषा।
३ १ २र ३ १ २
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ६ ॥

(एषः) यह नवीन उपासक, (शृङ्गानि) शृङ्गार और उनके परिणामभूत कामादि विकारों को (दोधुवत्) मानो कम्पाता हुआ, (शिशीते) उन का विनाश करता है; जैसे कि (यूथ्यः) सेनानायक, (वृषा) अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करता हुआ, शत्रुदल को कम्पा देता और उनका विनाश करता है।

[यूथ=Troop (आपटे); सेना]

३ १ २र ३ १ २र ३ ३ १ २र
१२७२—एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति।
२ ३ १ २
अव शादेषु गच्छति ॥ ७ ॥

(एषः) यह नवीन उपासक (वसूनि) सांसारिक सम्पत्तियों के (पिब्दनः) सेवन को त्यागता है, और (परुषा) निष्ठुर हो कर, कठोरता धारण कर के, (अति ययिवान्) उन का अतिक्रमण कर जाता है, उन का पूर्ण त्याग कर देता हैं, और (शादेषु) घास आदि से हरे-भरे प्रदेशों नें, अभ्यासार्थ, (अव गच्छति) चला जाता है।

[पिब्दनः=पिवि (सेवने) +दान (खण्डने)। शाद=शाद्वल ("अर्श" आदिभ्योऽच्)]

३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२७३—एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे।
३ २ ३ १ २
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ॥ ३ (के) ॥

हिंसा, स्तेय, असत्य, कामुकता, लोलुपता; मलिनता, असन्तोष, तपो राहित्य, स्वाध्याय न करना, अनीश्वरवादिता,—इन्हें (क्षिपः) परे फेंकने वाले (दश) ५ यम और ५ नियम,—(एतम् उ) इस ही (त्यम्) पूर्व वर्णित (हरिम्) प्रत्याहार साधना सम्पन्न नवीन, उपासक को (यातवे) योगमार्ग पर आगे-आगे बढ़ने के लिये (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं, और उसे आगे-आगे बढ़ाते हैं, जब कि वह नवीन उपासक (स्वायुधम्) स्वयं आसुरी भावों या विक्षेपों के साथ युद्ध करने लग जाता है, (मदिन्तमः) और उत्तरोत्तर आनन्द प्राप्त करता जाता है।

॥ इति द्वितीयः खण्ड ॥ २ ॥ [.घा० ३ १ । उ० १ । स्व० ७]

सूक्त ४

३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
१२७४—एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।
२ ३ १२ ३ १ २
गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

(एषः) यह (स्यः) पूर्ववर्णित उपासक (वृषा) उपदेशामृत की वर्षा करता हुआ, (रथः) परमेश्वर के वहन के लिये उस का रथरूप हो कर, (अव्याः) रक्षक परमेश्वर की दर्शाई (वारेभिः) परिधियों से घिरा हुआ (अव्यत) विचरता है, और (सहस्रिणम् वाजम्) हजारों शक्तियों को (गच्छन्) प्राप्त कर लेता है।

[वारेभिः=वारः=That which covers (आपटे)।

३ २ ३ २ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
१२७५—एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

(त्रितस्य) अति मेधावी, तथा पृथिवी-अन्तरिक्ष और-द्युलोक,—इन तीनों में स्थित परमेश्वर की (योषणः) निर्माण शक्तियां तथा संसार शक्तियां,—(हरिम्) प्रत्याहारसम्पन्न (इन्दुम्) तथा चन्द्रमा समान शीतल प्रकृति वाले उपासक को (अद्रिभिः) अविदीर्ण अर्थात् सदृढ़ रक्षाओं द्वारा (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं, (इन्द्राय) ताकि उपासक परमेश्वर की प्राप्ति कर सके, (पीतये) और उस के आनन्दरस का वह पान कर सके।

[योषणः=यु मिश्रणामिश्रणयोः+षणु दाने । मिश्रण=निर्माणशक्ति; और अमिश्रण=संहारशक्ति । निर्माण शक्तियां उपासक में सद्गुणों आधान करती; और संहार शक्तियां उस के दुर्गुणों का संहार करती हैं। इस प्रकार ये शक्तियां उपासक की रक्षा करती हैं। त्रितस्यः—"त्रितः तीर्णतमो मेधया" (निरु. ४।१।७), तथा "त्रिस्थानः इन्द्रः" (निरु० ९।३।२५)]

३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
१२७६—एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गच्छं जारो न योषितम् ॥ ३ ॥

(एषः) यह (स्यः) पूर्व वर्णित उपासक, (मानुषीषु विक्षु) मानुष प्रजाओं में, उन्हें ज्ञान प्रकाश देने के लिये, (आ सीदति) आ बसता है, (न) जैसे (श्येनः) आदित्य, प्रकाश देने के लिये, (विक्षु) प्रजाजनों में (आ सीदति) प्रतिदिन आ बसता है, तथा (न) जैसे (जारः) विवाह द्वारा कन्या के कन्यात्व को जीर्ण करने वाला, विनष्ट करने वाला पति (योषितम्) पत्नी बनी स्त्री के समीप प्रेम से (गच्छन्) जाता है, वैसे सच्चा उपासक प्रेम से मानुष प्रजाओं के समीप जाता है, उन के अज्ञानों का विनाश करने के लिये।

[श्येनः=आदित्यः, 'श्येन आदित्यो भवति श्यायतेर्गतिकर्मणः' (निरु० १२।२।७२)]

३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
१२७७—एष स्य मद्यो रक्षोऽव चष्टे दिवः शिशुः।
२उ ३ २ ३ १ २
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥

(एषः) यह (स्यः) पूर्ववर्णित उपासक (मद्यः) जब परमेश्वर के हर्ष अर्थात् प्रसन्नता का उत्पादक हो जाता है, (रक्षः) और भक्तिरसमय सा हो जाता है, तब वह (अव चष्टे) परमेश्वर का साक्षात्कार कर लेता है। (यः) तथा जो (इन्दुः) चन्द्रसमशीतल उपासक, (वारम्) अज्ञाननिवारक परमेश्वर में, (आविशत्) प्रवेश पा लेता है, वह (दिवः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का (शिशुः) शिशुवत् पालनीय हो जाता है।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
१२७८—एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥

(एषः) यह (स्यः) पूर्ववर्णित (सुतः) परमेश्वर का पुत्र, (हरिः) प्रत्याहार साधना से सम्पन्न हो कर, तथा (धर्णसिः) परमेश्वर को हृदय में धारण कर सदा उस की स्तुति करने वाला हो कर, (पीतये) आनन्दरसरूप दुग्ध के पीने के लिये, (क्रन्दन्) मानो क्रन्दन् करता हुआ, (प्रियं योनिम्) प्रिय जगन्माता की (अभि) ओर (अर्षति) गति करता है।

[धर्णसिः=धृञ् धारणे+णासृ शब्दे]

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१२७९—एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥ ॥ ४ (बी) ॥

(हरितः) विषयों में हरण करने वाली (दश) दस इन्द्रियां, (अपस्युवः) जब कर्म योग को चाहने लगती हैं, तब वे इन्द्रियां (एतम्) इस (त्यम्) पूर्ववर्णित उपासक को (मर्मृज्यन्ते) वार-वार माँज कर शुद्ध कर देती हैं, (याभिः) जिन १०

इन्द्रियों द्वारा माँजा गया उपासक, (मदाय) परमेश्वर के आनन्दरस की प्राप्ति के लिये, (शुम्भते) शोभायमान हो रहा होता है।

इति तृतीय खण्डः ।। ३ ।। (घा० २५ । उ० ८ । स्व० ४)

सूक्त ५

३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
१२८०—एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
२ ३ २ ३ १ २
अव्यं वारं वि धावति ।। १ ।।

(एषः) यह उपासक (मनस्पतिः) मन का स्वामी बन कर, मन की वृत्तियों पर विजय पा कर, (विश्ववित्) और योग के सब रहस्यों को जान कर, (हितः) सब का हितकर हो जाता है, और (नृभिः) उपासक नेताओं द्वारा (वाजी) शक्तिशाली बना दिया जाता है, तदनन्तर यह उपासक (अव्यम्) पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य में निवास करने वाले, तथा (वारम्) अविद्या के निवारक प्रभु की ओर (वि धावति) विशेष दौड़ लगाता है।

[अवि=mountain, air, sun (आपटे)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१२८१—एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वा धामान्याविशन् ।। २ ।।

(एषः) यह (सोमः) जगदुत्पादक, (देवेभ्यः) देवकोटि के उपासकों से (सुतः) प्रकट होता, और प्रत्येक दिव्य उपासक के (पवित्रे) पवित्र हृदय में (अक्षरत्) आनन्दरस-धारा रूप में प्रवाहित हो जाता है, तथा उपासक के (विश्वा धामानि) सब धामों में (आ विशन्) प्रवेश कर जाता है।

[धामानि=शारीरिक अंग, अर्थात् शरीर का प्रत्येक अङ्ग प्रभु की प्रेरणा के अधीन हो जाता है]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२८२—एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
वृत्रहा देववीतमः ।। ३ ।।

(एषः) यह (देवः) उपासक देव (वृत्रहा) पाप-वृत्रों का पूर्ण हनन कर लेता, (देववीतमः) परमेश्वर देव की प्राप्ति में श्रेष्ठ अधिकारी बन जाता, तथा (अमर्त्यः) मर्त्य-शरीर से छूट कर (योनौ अधि) जगन्माता में प्रवेश पा कर (शुभायते) शोभा प्राप्त करता है।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१२८३—एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
३ १ २र
अभि द्रोणानि धावति ।। ४ ।।

(एषः) यह उपासक (जामिभिः) बहिनों के सदृश उपकार करने वाली (दशभिः) १० सात्विक इन्द्रियों की सहायता से (यतः) संयम को सिद्ध कर (वृषा) उपदेशामृत की वर्षा करता, (कनिक्रदत्) सहायता के लिये परमेश्वर का वार-वार आह्वान करता है, और (द्रोणानि) अपने पांचों कोशों को (अभि धावति) पूर्णतया शुद्ध कर लेता है।

[जामि=वहिन। द्रोणानि=अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश]

३ १ २र ३ १२ ३ १ ३ १ २

१२८४—एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि।

३ १२ ३ १ २र

पवित्रे मत्सरो मदः॥ ५॥

सहायता के लिये उपासक जिस का वार-वार आह्वान करता है (१२८३), (एषः) यह परमेश्वर है, जो (पवमानः) सब को पवित्र करता और जिस ने (द्यवि अधि) द्युलोक में (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को चमकाया है, वह (पवित्रे) पवित्र हृदय में (मत्सरः) आनन्द का स्रोत बहाता है, (मदः) यतः वह स्वयं आनन्द-रसमय है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१२८५—एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता।

१ २ ३ १ २र

पतिर्वाचो अदाभ्यः॥ ६॥ ॥ ५ (के)॥

(एषः) यह परमेश्वर (सूर्येण) सूर्य के साथ-साथ (हासते) मानो गति करता है उसे थामने के लिये, क्योंकि यह (विवस्वता) सूर्य के साथ (संवसानः) बसा हुआ है। (वाचः पतिः) यह वेदवाणियों का स्वामी है, (अदाभ्यः) किसी द्वारा दबने वाला नहीं है।

[हासते=ओहाङ् गतौ]

॥ इति चतुर्थः खण्डः॥४॥ [धा० २६। उ० १। स्व० ७]

सूक्त ६

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१२८६—एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते।

३ २उ ३ १ २

पुनानो घ्नन्नप द्विषः॥ १॥

(एषः) यह (कविः) वेदकाव्यों का कवि परमेश्वर, (अभिष्टुतः) प्रत्यक्ष स्तुति पा कर, (पुनानः) उपासक को पवित्र करता हुआ, (पवित्रे अधि) उपासक के पवित्र हृदय में अधिष्ठित हुआ, (तोशते) उस की अविद्या का नाश करता है, और (द्विषः) राग द्वेष आदि शत्रुओं का (अपघ्नन्) हनन करता है।

[अभि-स्तुति=जब परमेश्वर प्रत्यक्ष हो तब की गई उस की स्तुति। तोशते=वधकर्मा (निघं० २।१९)]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
१२८७—एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि पिच्यते।
३ १ २ ३ १ २
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

(स्वर्जित्) सांसारिक सुखों पर विजय पाने वाला (एषः) यह उपासक, (पवित्रे) पवित्र परमेश्वर में स्थित हो कर (दक्षसाधनः) बलों को सिद्ध कर लेता है, और (इन्द्राय, वायवे) इन्द्र वायु आदि नाना नामों वाले परमेश्वर के प्रति (परिषिच्यते) अपने आप को न्योछावर कर देता है।

१ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
१२८८—एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो वनेषु विश्वजित् ॥ ३ ॥

जब (एषः) यह उपासक, (वने) एकान्त वन में अभ्यास करता हुआ, (नृभिः) उपासक नेताओं द्वारा (वि नीयते) विनीत कर लिया जाता है, तब (दिवः) द्युलोक का (मूर्धा) शिरोमणि, (वृषा) आनन्दरसवर्षी, (विश्वजित्) विश्वविजेता (सोमः) जगदुत्पादक परमेश्वर (सुतः) उपासक में प्रकट होता है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१२८९—एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः।
१ २ ३ १ २र
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

(एषः) यह उपासक (गव्युः) वेदवाणी के ज्ञान-दुग्ध को चाहता हुआ (अचिक्रदत्) परमेश्वर का आह्वान करता हैं, (पवमानः) सब को वेदवाणी के सदुपदेशों द्वारा पवित्र करता और (हिरण्ययुः) वीर्य शक्ति की, उर्ध्वरेता बनने की कामना वाला होता है। (इन्दुः) चन्द्रसमशीतल उपासक, (सत्राजित्) सत्य पर विजय पा कर, (अस्तृतः) कामादि द्वारा हिंसित नहीं होता।

[हिरण्य के सम्बन्ध में कहा है कि यह "देवानामोजः प्रथमजम्" इन्द्रियों का सर्वश्रेष्ठ ओज है; "अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि" हिरण्य जलों (रक्त) तेज है, यह शरीर में ज्योति और ओजरूप है, यह वनस्पत्तियों से उत्पन्न हुआ बल है, वीयरूप है" (अथर्व० १।३५)। हिरण्य क्या है,—इस के लिये समग्र यह ३५ वां सूक्त मनन के योग्य है। गव्यु=गोदुग्धाभिलाषी; गो=पयः (दूध); "अथप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमाः भवन्ति" (निरु० २।२।५) गो=वाक् (निघं० १।११)। अतः गव्यु=वेदवाणी के ज्ञानदुग्ध का अभिलाषी। सत्रा=सत्य (निघं० ३।१०)]

३ १उ ३क २र ३ १ २ ३ १ ३ १ २
१२९०—एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः।
३ २उ ३ २ ३ १
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥

(शुष्मी) आध्यात्मिक बलशाली, (वृषा) सदुपदेशवर्षी, (हरिः) प्रत्याहार साधना सम्पन्न (इन्दुः) चन्द्रसमशीतल (एषः) यह उपासक, (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (असिष्यदत्) विचरता है, और (पुनानः) अपने आप को पवित्र कर, (इन्द्रम्) परमेश्वर की ओर (आ असिष्यदत्) पूर्णतया प्रवाहित हो जाता है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१२९१—एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति।
३ १२ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ ॥ ६ (गु) ॥

(शुष्मी) आध्यात्मिक बलशाली, (अदाभ्यः) आसुरी भावनाओं से न दबने वाला, (देवावीः) दिव्य भावों की रक्षा करने वाला, (अघशंसहा) पाप की प्रशंसा करने वाली भावनाओं का हनन करने वाला (एषः) यह (सोमः) सौम्यप्रकृति उपासक, (पुनानः) सदुपदेशों द्वारा पवित्र करता हुआ (अर्षति) विचरता है।

॥ इति पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥ [धा० ३१ । उ० ३ । स्व० ५]

सूक्त ७

३ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२९२—स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति।
३ १ २र ३ २
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

परमेश्वर का (सः सुतः) वह उपासक-पुत्र, (पीतये) आत्मरक्षा के लिये, (पवित्रे) पवित्र परमेश्वर में (अर्षति) विचरता है। (सोमः) सौम्य स्वभाव वाला उपासक (वृषा) सदुपदेशों की वर्षा करता, (रक्षांसि) अपने तामसी और राजसी भावों का (विघ्नन्) हनन करता, (देवयुः) और परमेश्वर देव की सदा कामना करता रहता है।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
१२९३—स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः।
३ २उ ३ १ २
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

(सः) वह उपासक (विचक्षणः) विविध सृष्टि का निरीक्षण करता हुआ, (हरिः) प्रजाजनों के दुःखों का हरण करता हुआ, (धर्णसिः) सदुपदेशों द्वारा उन में सद्गुणों का धारण और दुर्गुणों का विनाश करता हुआ, (पवित्रे) पवित्र परमेश्वर में (अर्षति) विचरा करता है, और सहायता के लिये सदा (योनिम्) जगन्माता का (अभि कनिक्रदत्) साक्षात् आह्वान करता रहता है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१२९४—स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति।
३ १ २र ३ १ २
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

(सः) वह उपासक **(पवमानः)** अपने आप को पवित्र करता हुआ, इस लिये **(रक्षोहा)** तामसी और राजसी भावों का हनन करता हुआ **(वाजी)** शक्तिशाली हो जाता है। वह **(दिवः रोचनम्)** द्युलोक को चमकाने वाले, **(वारम्)** विघ्ननिवारक **(अव्ययम्)** अव्यय अविनाशी परमेश्वर की ओर **(वि धावति)** विशेषरूप से प्रगति करता है।

२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

१२९५—स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २

जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥

(पवमानः) सब को पवित्र करने वाले **(सः)** उस अव्यय (१२९४) परमेश्वर ने, **(त्रितस्य)** पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक इन तीन विभागों में विभक्त संसार के **(सानवि अधि)** उच्चतम प्रदेश में, **(जामिभिः सह)** साथ उत्पन्न हुई किरणों के समेत **(सूर्यम्)** सूर्य को **(अरोचयत्)** चमकाया है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

१२९६—स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।

२ ३ १ २

सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

(वृत्रहा) पाप वृत्रों का विनाशक, **(वृषा)** मनुष्य-समाज में सर्वश्रेष्ठ, **(वरिवोवित्)** आध्यात्मिक सम्पत्ति को प्राप्त, **(अदाभ्यः)** पापों से न दबने वाला, **(सोमः)** सौम्यप्रकृति **(सः)** वह **(सुतः)** परमेश्वर का पुत्र, **(वाजम् इव)** संग्राम की ओर सेनापति के सदृश, वेग से, **(असरत्)** मोक्ष की ओर प्रगति करता है।

[वृषा = The chief of a class (आपटे)]

२ ३ २ ३ १ २ ३ २S १ २र

१२९७—स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति ।

२ ३ १ २ ३ १ २

इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥ ६ ॥ ७ (खे) ॥

(सः) वह उपासक **(देवः)** देव बन कर, और **(कविना)** वेदकाव्य के कवि द्वारा **(इषितः)** प्रेषित हुआ-हुआ, **(इन्द्राय)** परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, **(द्रोणानि)** अपने पांचों कोशों की **(अभि)** ओर क्रमशः **(धावति)** प्रगति करता और उन्हें विशुद्ध करता है। **(इन्दुः)** चन्द्रसमशीतल तथा अज्ञानरात्री के अन्धकार को मिटाने वाला वह उपासक **(मंहयन्)** सदा परमेश्वर की महिमा गाता रहता है।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥ [धा० २१ । उ० २ । स्व० ७]

सूक्त ८

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१२९८—य पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ १ ॥

(यः) जो व्यक्ति (ऋषिभिः) ऋषिकोटि के गुरुओं द्वारा, (पावमानीः) पवित्र करने वाली ऋचाओं का (अध्येति) अध्ययन करता है, जो पवित्र करने वाली ऋचाएं जीवनोपयोगी (रसम्) ज्ञान रस के (संभृतम्) संग्रहरूप हैं, (सः) वह व्यक्ति, (मातरिश्वना) वायु द्वारा (स्वदितम्) आस्वादन किये गये, और इसलिये (पूतम्) पवित्र हुए, (सर्वम्) सब प्रकार के भोज्य पदार्थों का (अश्नाति) भोजन करता है।

[वेदों की ऋचाएँ जीवन को पवित्र करने के उपायों का वर्णन करती हैं। इन का अध्ययन ऋषिकोटि के गुरुओं द्वारा करना चाहिये। सामान्य गुरु ऋचाओं के रहस्यार्थों पर प्रकाश नहीं डाल सकते। ऋचाओं में जीवनोपयोगी ज्ञान-रस का वर्णन भरा पड़ा है। ऋचाएँ उपदेश देती हैं कि जिस अन्न को खाओ प्रथम परमेश्वर के नाम पर उस अन्न की आहुति, अग्निहोत्र द्वारा तथा वैश्वदेव यज्ञ द्वारा, वायु में पहुँचाओ। इस प्रकार पवित्र हुए अन्न का भोजन तदनन्तर करो। इस भाव की परिपुष्टि में निम्न प्रमाणों को ध्यान में रखना चाहिये, यथा:—"यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व-किल्बिषात्"; भुञ्जते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्म-कारणात्" (गीता); "केवलाघो भवति केवलादी" (वेद)]

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१२९९—पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ २॥

(यः) जो व्यक्ति (ऋषिभिः) ऋषिकोटि के गुरुओं द्वारा, (पावमानीः) पवित्र करने वाली ऋचाओं का (अध्येति) अध्ययन करता है, जो पवित्र करने वाली ऋचाएँ जीवनोपयोगी (रसम्) ज्ञान-रस के (संभृतम्) संग्रहरूप हैं, उस व्यक्ति के लिये, (सरस्वती) ज्ञान-सरोवर वाली वेदवाणी, जीवनोपयोगी (क्षीरम्, मधु, सर्पिः, उदक) दूध, घी, मधु, तथा उदक,—अर्थात् एतत्सम्बन्धी ज्ञान (दुहे) प्रदान करती है।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१३००—पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ १ ३ ३ २
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम्॥ ३॥

(पावमानीः) पवित्र करने वाली, (स्वस्त्ययनीः) और कल्याणकारिणी ऋचाएँ, (सुदुघाः) उत्तम ज्ञान-दुग्ध देती हैं, (हि) और निश्चय से (घृतश्चुतः) घृतवत् सारभूत मोक्षफल देती हैं। परमेश्वर ने (ऋषिभिः) वेद-प्रवक्ता ऋषियों द्वारा, ये ऋचाएँ, (रसः) ज्ञानरसरूप में (संभृतः) संग्रह रूप में की हैं; (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मवेत्ता वैदिक व्यक्तियों में (अमृतम्) वेद तथा वैदिकज्ञानरूपी अमृत (हितम्) निहित हुआ है।

३ १२ ३२ ३१ २र ३२
१३०१—पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
२ ३ १२ ३२३२ ३१२
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥

(पावमानीः) पवित्र करने वाली ऋचाएँ, (नः) हमें (इमं लोकम्) इस लोक का (अथो) तथा (अमुम्) उस द्युलोक का ज्ञान (दधन्तु) देकर, हमारा धारण-पोषण करती हैं, और (नः) हमारी (कामान्) कामनाओं को सफल और समृद्ध करती हैं। (देवीः) ये दिव्य ऋचाएँ (देवैः) दिव्य ऋषियों द्वारा (समाहृताः) संगृहीत हुई हैं, संग्रहरूप में प्रकट हुई हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१३०२—येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥

(देवाः) देवकोटि के लोग (येन पवित्रेण) जिस पवित्र परमेश्वर द्वारा, (सदा आत्मानं पुनते) सदा अपने आप को या अपनी-अपनी आत्मा को (पुनते) पवित्र करते हैं, (सहस्रधारेण तेन) हजारों लोक-लोकान्तरों के धारण करने वाले परमेश्वर का ज्ञान देकर, तद्-द्वारा, (पावमानीः) पवित्र करने वाली ऋचाएँ (नः) हमें (पुनन्तु) पवित्र करें।

३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१३०३—पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
पुण्याँश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ ८(ती)॥

(पावमानीः) पवित्र करने वाली ऋचाएँ, वास्तव में, (स्वस्त्ययनीः) कल्याण करती हैं, (ताभिः) उन द्वारा व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर (नान्दनम्) आनन्द सागर परमेश्वर को (गच्छति) प्राप्त करता है, (पुण्यान् भक्षान्) और पवित्र अन्न (भक्षयति) खाता है, या पुण्य कर्मरूपी भोग भोगता है, (च) और (अमृतत्वं गच्छति) अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है, अमृत हो जाता है, जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है।

इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [धा० ४४। उ० १। स्व० ४]

सूक्त ६

१२ ३१ २र३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१३०४—अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१॥

(यः) जो परमेश्वर (स्वे) अपने प्रकट होने के स्थान अर्थात् (दुरोणे) हृदय गृह में (समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्त हो कर (दीदाय) प्रकाशित होता है, उस (यविष्ठम्) सदा युवा शक्ति वाले, (उर्वी) विस्तृत (रोदसी) पृथिवी लोक और द्युलोक के (अन्तः) भीतर (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रभा वाले, (स्वाहुतम्) उत्तम प्रकार से जीवात्मरूप अग्नियों में आहुति रूप में प्राप्त, (विश्वतः) सब ओर (प्रत्यञ्चम्) प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त परमेश्वर को, —(महा नमसा) भूमिष्ठ नमः—शक्तियों द्वारा, महानम्रता द्वारा (अगन्म) हम प्राप्त हुए हैं।

[स्वाहुतम्=सु+आहुतम्। इस सम्बन्ध में यजुर्वेद (३१।१४) का मन्त्र महत्त्व का है। यथा:—"यत्पुरुषेण हविषा देवाः यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः" ॥ अभिप्राय यह है कि उपासक देव, पुरुष अर्थात् जगत्पुरी में बसे हुए परमेश्वर रूपी हवि द्वारा, जब परमेश्वर का ध्यान-यज्ञ करते हैं, उस ध्यान-यज्ञ में वसन्त ऋतु आज्यरूप होती है, ग्रीष्म ऋतु इध्म, तथा शरद् ऋतु हवि होती है। मन्त्र में "पुरुषेण हविषा" द्वारा परमेश्वर को हवि कहा है। हवि डाली जाती है अग्नि में। परमेश्वर के ध्यान में परमेश्वर को हवि माना है, और जीवात्मा को अग्नि कहा है। प्रभु-दर्शन की उग्र अभिलाषा से सम्पन्न जीवात्मा अग्नि है। इस जीवात्मरूपी अग्नि में, ध्यानरूपी हस्त द्वारा, परमेश्वर की हवि आहुत करनी होती है। ध्यानाभ्यास द्वारा किसी सौभाग्य काल में परमेश्वर का प्रकाश प्रकट होने लगता हैं। हवि की आहुति जब प्रज्वलित अग्नि में दी जाती है तब हवि से प्रकाश निकलता है, हवि प्रकाशमय हो जाती है। इसी प्रकार परमेश्वर जब "स्वाहुत" हो जाता है, उत्तम प्रकार से आहुत हो जाता है, तब इस परमेश्वरीय हवि से प्रकाश प्रकट होता है, अर्थात् परमेश्वर प्रकट होता है। परमेश्वरीय प्रकाशरूपी अग्नि में, फिर वर्षभर आत्माहुति देनी चाहिये। इसे तीन ऋतुओं द्वारा दर्शाया हैं। वसन्त ही आज्य है, ग्रीष्म ही इध्म, तथा शरद् हविरूप है। इस प्रकार मन्त्र में दो हवियों का वर्णन हुआ है, एक परमेश्वर रूपी हवि का और दूसरी शरद् रूपी हवि का। परमेश्वराग्नि के साक्षात् प्रकट हो जाने पर, इस प्रत्यक्ष अग्नि में, वर्षभर लगातार आत्मसमर्पण करना होता है। आत्मसमर्पण में अन्तिम आहुति शरद् हवि की होती है, और ध्याता एक वर्ष में अपने ध्यानयज्ञ में परमेश्वर का साक्षात् कर कृतकृत्य हो जाता है। [दरोणे=गृहनाम (निघं० ३।४)]

२ ३ १ ३र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१३०५—स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्नि ष्टवे दम आ जातवेदाः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः॥२॥

(सः) वह (जातवेदाः) वेद-प्रवक्ता (अग्निः) प्रकाशमय परमेश्वर, (मह्ना) अपनी महिमा से, (विश्वा) समग्र (दुरितानि) बुराइयों को (साह्वान्) तिरस्कृत करता है, और (दमे) हृदय-गृह में (आ स्तवे) स्तुतियां पाता है। (सः) वह परमेश्वर, (दुरितात्) दुष्फल और (अवद्यात्) जिन का कथन भी नहीं करना चाहिये ऐसे (नः) हमारे पापों से, (अस्मान् गृणतः) हम स्तोताओं की (रक्षिषत्) रक्षा करता है, (उत) और (नः) हमारे उन अध्यात्म-गुरुओं की रक्षा करता है जो कि (मघोनः) आध्यात्मिक सम्पत्तिशाली हैं।

[दमे=गृहे (निघं० ३।४)। अवद्य=अ+वद्+य। एक कवि ने कहा है कि "कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः", अर्थात् पापों का कथन भी अश्रेय के लिये पर्याप्त हैं। यही भाव "अवद्य" शब्द द्वारा प्रकट किया है]

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३

१३०६—त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

॥ ६ (ही) ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप सर्वाग्रणी! (त्वम्) आप ही (वरुणः) वरुण हैं, (उत) और (मित्रः) आप ही मित्र हैं। (वसिष्ठाः) प्राणाभ्यासी उपासक (मतिभिः) मनन निदिध्यासन द्वारा (त्वाम्) आप के प्रकाश को (वर्धन्ति) अधिकाधिक रूप में बढ़ाते हैं। (त्वे) आप में (वसु) जो वसु विद्यमान हैं वे (सुषणनानि) हमें उत्तम सुखदायी (सन्तु) हों। (यूयम्) हे तीनरूपों में वर्तमान परमेश्वर! आप उन तीनों (स्वस्तिभिः) कल्याणमय रूपों द्वारा (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा कीजिये, या हे आध्यात्मिक सम्पत्ति सम्पन्न गुरुजनो! (मन्त्र १३०५ में मघोनः) आप कल्याणमार्गों द्वारा हम उपासकों की सदा रक्षा कीजिये।

[मन्त्र में परमेश्वर को "अग्ने" पद द्वारा सम्बोधित कर के, उसे ही वरुण तथा मित्र कहा है। इसी लिये मन्त्र के द्वितीय पाद में "त्वाम्" इस एकवचनपद का प्रयोग हुआ है। अतः "वरुण, मित्र, तथा अग्नि" पर्यायवाची प्रतीत होते हैं। वरुण का अर्थ है वरण करने वाला। मित्र का अर्थ है मित्रवत् हितकारी और स्नेह करने वाला। मन्त्र के चतुर्थ पाद में "यूयम्" इस बहुवचन द्वारा, गुणभेद से व्यक्तिभेद मान कर, एक ही परमेश्वर का वर्णन हुआ है। जैसे एक ही व्यक्ति सम्बन्धभेद से पति, पिता, चाचा, मामा, भाई आदि शब्दों का वाच्य होता है]

[धा० २१। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त १०

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१३०७—महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।

१ २ ३ १ २

स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

(यः इन्द्रः) जो परमेश्वर (ओजसा) निजशक्ति के कारण (महान्) महान् है, वह (वृष्टिमान्) वर्षा करने वाले (पर्जन्यः इव) मेघ के सदृश, (वृष्टिमान्) सुखों की वर्षा करता है। वह (वत्सस्य) पुत्रस्थानीय स्तोता के (स्तोमैः) स्तुतिगानों द्वारा (वावृधे) उसे बढ़ाता है।

[वत्सस्य=वत्स स्थानीयस्य स्तोतुः (सायण)]

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१३०८—कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।

३ १ २ ३ १ २

जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥

(कण्वाः) मेधावी-उपासक, (यज्ञस्य) ध्यानयज्ञ के (साधनम्) साधनरूप परमेश्वर को (यद्) जब (स्तोमैः) स्तुतिगानों द्वारा (अकृत) अपना कर लेते हैं, तब हे उपासको ! तुम काम क्रोध आदि के विनाश के लिये (आयुधम्) अन्य साधनों को (जामि) कि ये साधन व्यर्थ हैं,—ऐसा (ब्रुवत) कहा करो। अर्थात् इन का विनाश परमेश्वर की कृपादृष्टि से ही हो जाता है।

[कण्वाः=मेधावी (निघं० ३।१५)। कण्वाः=स्तोतृनाम (सायण)। जामि=अतिरेकनामैतत्, अतिरिक्तमधिकं, प्रयोजनरहितम् (सायण)]

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१३०९—प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः।
१ २ ३ २ ३ १ २
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥ ॥ १०(टी) ॥

(वह्नयः) उपासना-यज्ञ की धुरा का वहन करने वाले उपासक नेता, (यद्) जब (पिप्रतः सत्यस्य) पालन करने वाले सत्यनियमों के (प्रजाम्) प्रथम जनयिता परमेश्वर को (प्र भरन्त) अपने जीवनों में धारण करते हैं, तब (विप्राः) मेधावी उपासक (ऋतस्य) सच्चाई के (वाहसा=वाहसः) वाहक बनते हैं। अर्थात् सत्य-स्वरूप परमेश्वर को जीवनों में धारण कर लेने के पश्चात् ही, विप्र, सच्चाई के प्रचारक बन सकते हैं।

इति अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [धा० ८। उ० १। स्व० ३]

सूक्त ११

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३१०—पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत।
१ १ २ ३ १ २
जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥

(पवमानस्य) पवित्र करने वाले, (जिघ्नतः) पापों का हनन करने वाले, (हरेः) विषयों से हरण करने, (अजिरशोचिषः) शीघ्र प्रकाश प्रकट करने वाले परमेश्वर की (चन्द्राः) आह्लादकारिणी तथा (जीराः) शीघ्रप्रवाहिनी आनन्दरस-धाराएँ उपासक में (असृक्षत) प्रकट हो जाती हैं, "जब कि मेधावी उपासक सच्चाई के वाहक बनते हैं" (मन्त्र १३०९)।

[अजिरम्; जीराः=क्षिप्रनाम (निघं० २।१५)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३११—पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः।
१ २ ३ १ २
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥

(पवमानः) पवित्र करने वाला परमेश्वर (रथीतमः) वास्तव में उपासक के शरीर रथ का स्वामी बन जाता है "जब कि मेधावी उपासक सच्चाई का वाहक बन जाता है" (मन्त्र १३०९)। (शुभ्रेभिः) निर्मल कर्मों वाले उपासकों द्वारा

(शुभ्रशस्तमः) यह परमेश्वर अत्यन्त निर्मल उद्‌घोषित किया गया है। (हरिः) परमेश्वर मन को विषयों से हरता है, (चन्द्रः) आह्लादकारी है, (मरुद्‌गणः) मितभाषी वाक्-संयमी इस के गण हैं, साथी हैं, सहायक हैं।

[चन्द्रः=चदि आह्लादने। मरुतः=मित राविणः (निरु० ११।२।१४); राविणः=रु शब्दे। शुभ्रशस्तमः=शुभ्र+शस् (स्तुतौ)+तमः।]

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
१३१२—पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः।
१ २ ३ २ ३ १ २
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ॥ ११ (ह) ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर! आप अपनी (रश्मिभिः) ज्योतिर्मयी किरणों द्वारा (व्यश्नुहि) हम में व्याप्त हो जाइये। आप (वाजसातमः) बल प्रदान करने में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप (स्तोत्रे) स्तोता में (सुवीर्यम्) उत्तम बल (दधत्) स्थापित कीजिये।

[वाजसातमः=वाज (बल)+सा (षणु दाने)+तमप्]

[घा० ११। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त १२

२ ३ १ २ १ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
१३१३—परीतो षिञ्चता सुतँ सोमो य उत्तमँ हविः।
३ १ १र ३ २ऽ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

हे उपासको! (इतः) इस जीवन में (सुतम्) प्रकट हुए भक्तिरस को, (परि) सर्वत्र (सिञ्चत) सींच दो, अपने उपदेशों द्वारा अन्यों में भी भक्तिरस को उपजाओ, (यः) जो (सोमः) उत्पन्न हुआ भक्तिरस (उत्तमं हविः) सर्वश्रेष्ठ हवि है परमात्मा को समर्पित करने के लिये। (यः नर्यः) नर हितकारी जिस परमात्मा ने कि (अद्रिभिः) सुदृढ़ रक्षाओं द्वारा, (अप्सु अन्तः) तुम्हारे शारीरिक रसों और प्राणों के भीतर (सोमम्) इस भक्तिरस को (आ सुषाव) प्रकट किया है, और (दधन्वान्) स्थापित किया है।

[इतः=इदम्+तसिल् (सप्तम्यर्थे)। अद्रि=अविदीर्ण]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३१४—नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सुते चित्वाप्सु मदामो अंधसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥

हे परमेश्वर! (नूनम्) निश्चय से आप (अविभिः) रक्षकों द्वारा हमें (पुनानः) पवित्र करते हैं। (परिस्रव) आप आनन्दरसमयी धारारूप में हम में सर्वत्र प्रवाहित हो जाइये। (अदब्धः) इस सम्बन्ध में आप किसी से दबने वाले नहीं, (सुरभिंतरः) आप अत्यन्त मधुर रूप हैं। (अप्सु) हमारे जीवनीय रसों में तथा

प्राणों में आप जब (सुते चित्) प्रकट हो जाते हैं, तब, (उत्तरम्) सर्वश्रेष्ठ (त्वा) आप का (श्रीणन्तः) आश्रय पा कर (अन्धसा) अपने अन्नमय शरीरों द्वारा और (गोभिः) अपनी इन्द्रियों द्वारा (त्वा) आप को (मदामः) हम प्रसन्न कर देते हैं।

१२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

१३१५—परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

॥ १२ (खा) ॥

(चक्षसे) हम में दिव्य दृष्टि देने के लिये (परि स्वानः) परमेश्वर हमें सर्वत्र उपदेश दे रहा है। (देवमादनः) वह देवकोटि के उपासकों को सदा प्रसन्नचित्त करता, (क्रतुः) विश्व का कर्त्ता, (इन्दुः) चन्द्रसमशीतल, (विचक्षणः) तथा सर्व-द्रष्टा है।

[धा० १६। उ० २। स्व० २]

सूक्त १३

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

१३१६—असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा

२र

अचिक्रदत्।

२ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १र ३ १ २ ३ १ २

पुनानो वारमत्येष्यव्ययँ श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत्

॥ १ ॥

(सोमः) भक्तिरस वाला उपासक (अरुषः) रोष-क्रोध आदि वृत्तियों से रहित (असावि) हो गया है। (वृषा) उपदेशामृतवर्षी, (हरिः) तथा अपने को विषयों से हटाने वाला उपासक, (गाः) पृथिवीवासियों के प्रति (अभि अचिक्रदत्) वार-वार उपदेश देता है, इस प्रकार (राजा इव) वह राजा के सदृश (दस्मः) प्रजा के कष्टों का क्षय करता है। (पुनानः)अपने को पवित्र करता हुआ हे उपासक! तू (वारम्) संसार के घेरे से (अति) निकल कर, (अव्ययम्) अविनाशी परमेश्वर को (एषि) प्राप्त कर लेता है, और (श्येनः) थका बाज-पक्षी (न) जैसे अपने आश्रय पर आ बैठता है, वैसे उपासक (घृतवन्तम्) घी आदि पदार्थ देने वाली स्नेह-मयी (योनिम्) जगन्माता की गोद में (आ सदत्) आ बैठता है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

१३१७—पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं

दधे।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ १र ३ १ २ ३ २

स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे

॥ २ ॥

जैसे (पर्णिनः) पत्तों वाले (महिषस्य) महावन को (पर्जन्यः) पालने और जन्म देने वाला मेघ, (पृथिव्या नाभा) पृथिवी के मध्य भाग में तथा (गिरिषु):

पर्वतों में निवास करता है, वैसे प्रजा की पालना और उसे द्विजन्मा बनाने वाला उपासक, सदुपदेशों की वर्षा करने के लिये, पर्वतों तथा पृथिवी में निवास करता है, विचरता है। जैसे (आपः) जल (स्वसारः) स्वयं बहते रहते हैं, वैसे उपासक भी (गाः अभि) पृथिवी-निवासियों के प्रति (उदासरन्) उन की उन्नति की भावनाओं से स्वेच्छापूर्वक विचरते रहते है, और (अध्वरे) हिंसारहित उपासना-यज्ञ के (वीते) प्रारम्भ होने हर (ग्रावभिः) उपासना यज्ञ के गुरुओं के सत्संग में (सं वसते) वास किया करते हैं।

[गाः=गो पृथिवी (निघं० १।१)। ग्रावभिः=ग्रावाणः विद्वांसः (शत० ३।६।३।४)। वीते=वि (विशेषतया)+इते (प्राप्ते)]

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

१३१८—कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि

३ १ २

निर्णिजम्॥ ३॥ ॥ १३ (गू)॥

हे उपासक! तू (कविः) वेदकाव्य का विद्वान् हो कर, (वेधस्या) विधि-विधान के कर्त्ता परमेश्वर की प्राप्ति की कामना से (माहिनम्) महामहिम परमेश्वर की (अभि) ओर (अर्षसि) प्रयाण करता हैं, और (अत्यः न) सूर्य के सदृश (मृष्टः) विशुद्ध होकर (वाजम्) बलशाली परमेश्वर की (अभि) ओर (अर्षसि) प्रगति करता है। (सोम) हे सौम्य प्रकृति उपासक! (दुरिता) हमारे दुष्परिणामी कर्मों को (अप सेधम्) उपदेशों द्वारा हटाता हुआ तू (मृड) हमें सुखी कर, और (घृता) जलों के समीप (वसानः) वसता हुआ, (निर्णिजम्) पापों से रहित विशुद्ध परमेश्वर को, (परि यासि) प्राप्त हो।

[वेधाः=विधाता। अत्यः=अश्वः (निघं० १।१४), वेदों में सूर्य को भी अश्व कहा है। घृता=घृतम् (उदकम्; निघं० १।१२)। "संगमे च नदीनां धिया विप्रः अजायत"]

॥ इति नवमः खण्डः॥ ९॥ [घा० २६। उ० ३। स्व० ६]

सूक्त १४

१ २ ३ २ ३ १ २र

१३१९—श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥ १॥

(सूर्यम् इव) सूर्य सदृश स्वप्रकाशी तथा अन्यों को प्रकाश देने वाले परमेश्वर के (श्रायन्तः) आश्रय में रहते हुए तुम सब, (इन्द्रस्य) परमेश्वर की दी हुई (जाता उ) वर्तमान तथा (जनिमानि) उत्पन्न होने वाली (विश्वा वसूनि) सब प्रकार की सम्पत्तियों का (भक्षत) भोग करो, (ओजसा) परिश्रम करते हुए। तथा (न) जैसे हम पितृप्रदत्त (प्रति भागम्) सम्पत्ति के अपने-अपने हिस्से को (दीधिम)

धारण करते हैं, वैसे जगत् के पिता द्वारा प्रदत्त सम्पत्तियों को यथोचित्त बाँट कर हम धारण करें।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
१३२०—अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन्
॥ २ ॥ ॥ १४ (लृ) ॥

(अलर्षिरातिम्) जिस परमेश्वर का दिया दान शोभा प्राप्त कराता, और जो (वसुदाम्) विविध सम्पत्तियां दे रहा है, (उप स्तुहि) उपासना विधि से तू उस की स्तुति किया कर। (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (रातयः) दिये दान (भद्राः) सब के सुख और कल्याण के लिये हैं। (यः) जो परमेश्वर (विधतः) परिचर्या करने वाले (अस्य) इस उपासक की (कामम्) धनेच्छा को (न रोषति) विफल नहीं करता, वही, (मनः) उपासक के मन को (दानाय) दान करने के लिये भी (चोदयन्) प्रेरित करता रहता है।

[अलर्षिरातिम्=अलं शोभाम्+ऋष् (प्राप्ति)+राति (दान)]

[धा० १९। उ० नास्ति। स्व० ६]

सूक्त १५

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३२१—यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
१ २ १ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

दान देते समय (यतः) जिन शक्तियों से (भयामहे) हम भय करते हैं, (इन्द्र) हे परमेश्वर! (ततः) उन शक्तियों से हमें (अभयम्) भय-रहित (कृधि) कीजिये। (मघवन्!) हे ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर! (शग्धि) इस निमित्त हमें शक्ति प्रदान कीजिये। (तव) आप का ही (तत्) वह समग्र धन है, (ऊतये) और हम सब की रक्षा के लिये है। (द्विषः) हमारी पारस्परिक विद्वेष-भावनाओं को (वि जहि) विनष्ट कीजिये, (मृधः) धन प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले संग्रामों को (वि जहि) हम सब से विगत कर दीजिये।

[जहि=हन् (हिंसा और गति]

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
१३२२—त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ २ ॥
॥ १५ (वा) ॥

(राधसस्पते) हे आध्यात्मिक तथा सांसारिक धनों के पति! (त्वम् हि) आप ही (राधसः) समग्र धनों के, तथा (महः क्षयस्य) धनों से भरे महा ब्रह्माण्ड-

गृह के (विधर्त्ता असि) धर्त्ता हैं। (मघवन्) हे धनों के स्वामी, (गिर्वणः) तथा हे वेदवाणियों द्वारा भजने योग्य ! (वयम्) हम (सुतावन्तः) सन्तानों समेत (तम् त्वा) उस आप का ही (हवामहे) सदा आह्वान करते हैं।

[क्षय=निवास (अष्टाध्यायी ६।१।१०१)]

॥ इति दशमः खण्डः ॥१०॥ [धा० । २० उ० ३ । स्व० २]

सूक्त १६

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २र
१३२३—त्वꣳ सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।
१२ ३ १ २
पवस्व मꣳहयद्रयिः ॥ १ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (त्वम्) आप (धारयुः) सब के धारण-पोषण की इच्छा रखते हैं, (मन्द्रः) सब को हर्षित रखते, तथा (ओजिष्ठः) महा ओजस्वी हैं। (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञकर्मों में (पवस्व) आप हमारे सहायक हूजिये, (मंहयद्रयिः) आप ही धनप्रदाता हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र
१३२४—त्वꣳ सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।
१ २ १ १ २र
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (सुतः) प्रकट हो कर (मदिन्तमः) अतिशय आनन्द देते हैं, (मत्सरिन्तमः) क्यों कि आप ही महान् आनन्दरस-सरोवर हैं। (दधन्वान्) और सब का धारण कर रहे हैं; (इन्दुः) प्रकाशमान, (सत्राजित्) सच्चाइयों पर विजय पाए हुए, तथा (अस्तृतः) अविनाशी हैं।

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ १ २
१३२५—त्वꣳ सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
द्युमन्तꣳ शुष्ममा भर ॥ ३ ॥ ॥ १६ (ली) ॥

हे परमेश्वर! (अद्रिभिः) पर्वतवत् अपने संकल्पों में दृढ़ रहने वाले उपासकों द्वारा (त्वम्) आप (सुष्वाणः) प्रकट किये जाते हैं। (कनिक्रदत्) सन्मार्ग का उपदेश देते हुए आप (अभ्यर्ष) हमें प्राप्त हूजिये, और (द्युमन्तम्) सर्व प्रसिद्ध (शुष्मम्) आध्यात्मिक बल (आ भर) हमें प्रदान कीजिये।

[धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त १७

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१३२६—पवस्व देववीतय इन्द्रा धाराभिरोजसा ।
२ ३ २ ३ १ २
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ १ ॥

(इन्दो) अध्यात्मप्रकाश देने वाले (सोम) हे भक्तिरस !, (देववीतये) परमेश्वर की स्वीकृति के लिये, तू (ओजसा) वेग से, (धाराभिः) धारारूप में, (पवस्व) हम में प्रवाहित हो जा। (मधुमान्) मधुर तू (सोम) हे भक्तिरस ! (नः) हमारे (कलशम्) हृदय-कलशों में (आ सदः) आ बैठ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१३२७—तव द्रप्सा अदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥

हे भक्तिरस ! (उदप्रुतः) उछलते हुए जल बिन्दुओं की तरह उछलते हुए (तव) तेरे (द्रप्साः) भक्तिरस बिन्दु, (मदाय) परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये, (इन्द्रम्) परमेश्वर का (वावृधुः) बढ़-चढ़ कर गुणगान करते हैं। हे भक्तिरस ! (देवासः) दिव्य उपासक, (अमृताय) अमृत-परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, (त्वां कम्) तुझ सुखदायी का (पपुः) पान करते आए हैं।

[द्रप्साः=Drops]

१ २ ३ १ २ ३ २
१३२८—आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।
३ १ २ ३ १ २
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥ ॥ १७ (वौ) ॥

(सुतासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) हे भक्तिरसो ! तुम (पुनानाः नः) हम उपासकों को पवित्र करते हुए, (रयिम्) सर्वोत्कृष्ट सम्पत्तिरूप परमेश्वर के प्रति (आ धावत) शीघ्र गति करो; (वृष्टि द्यावः) द्युलोक की वृष्टि के समान प्रभु पर अपनी वृष्टि करो, (रीत्यापः) जलों की रीति के समान तुम प्रभु की ओर स्वभावतः प्रवाहित हो जाओ, (स्वर्विदः) तुम स्वर्गीय सुख प्राप्त कराते हो।

[वेद एक सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। इस लिये काव्यरीति से भक्तिरस को सम्बोधित किया गया है]

[धा० १५। उ० नास्ति। स्व० नास्ति]

सूक्त १८

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१३२९—परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ १ ॥

(हर्यतम्) प्रगतिशील और कान्तिसम्पन्न, (हरिम्) इन्द्रियों को विषयों से हरण करने वाले, (बभ्रुम्) प्रजाजन का भरण-पोषण करने वाले (त्यम्) उस उपासक को,—गुरुजन, (वारेण) उस के पापों के निवारण द्वारा, (पुनन्ति) पहले पवित्र कर देते हैं, तत्पश्चात् वह उपासक, (यः) जो कि पवित्र हो चुका है (मदेन सह) प्रसन्नतापूर्वक, (विश्वान् देवान् इत्) सब दिव्यगुणों को ही (परि गच्छति) सब प्रकार से प्राप्त करता है, अदिव्य दुर्गुणों को नहीं।

२उ ३ १२ ३ १२ ३ १ २

१३३०—द्विर्यं पञ्च स्वयशसँ् सखायो अद्रिसँ् हतम् ।

३ १ १र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥

(द्विः पञ्च) द्विगुणित पांच अर्थात् ५ यम और ५ नियम, (सखायः) मानो सखा बन कर, (यम्) जिस उपासक को (अद्रिसंहतम्) व्रतपालन में पर्वत के सदृश सुदृढ़ और अटल बना देते,(स्वयशसम्) उसे निज यश से यशस्वी कर देते,(इन्द्रस्य) परमेश्वर के (प्रियम्) प्यारे बना देते, तथा (काम्यम्) प्रजाजन के प्रिय बना देते हैं, उसे ही (ऊर्मयः) भक्तिरस की लहरें (प्र स्नापयन्ते) मानो स्नान करा देती हैं।

[५ यम=अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिगृह। ५ नियम=शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान]

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २र

१३३१—इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १

नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥॥ १८ (जी)॥

(सोम) हे सौम्य उपासक ! (पातवे) रक्षा के लिये तू (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति (परिषिच्यसे) पूर्णरूप में न्यौछावर कर दिया गया है, उस परमेश्वर के प्रति जो कि (वृत्रघ्ने) तेरे पाप वृत्रों की हत्या करता है, (नरे) जगत् का नेता हैं, (दक्षिणावते) जिस ने समग्र पदार्थ मानो दक्षिणारूप में दे रखे हैं, (वीराय) जो सर्वप्रेरक है, (सदनासदे) और जो तेरे हृदय-सदन में विराज रहा है।

[वीराय=वि+ईर् (गतौ)। नरे=नृ नये। सदनासदे=सदनासद्—चतुर्थ्येक वचने]

[धा० २२ । उ० ३ । स्व० ४]

सूक्त १६

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

१३३२—पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १ ॥

(सोम) हे जगदुत्पादक परमेश्वर ! आप (अश्वः न) अग्नि के सदृश (निक्तः) शुचि हैं। (वाजी) आप बलवान् हैं। (महे दक्षाय) महान् आत्मिक बल तथा (धनाय) महान् मोक्ष-धन के प्रदान के लिये, आप (पवस्व) हमें प्राप्त हूजिये, दर्शन दीजिये।

[निक्तः=निजिर् शौचपोषणयोः। अश्वः=वह्नि (उणा० को० १।१५१), अजमेर]

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१३३३—प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ २ ॥

(सोतारः) भक्तिरस के उत्पादक (ते) वे उपासक, (मदाय) आनन्द-प्राप्ति

के लिये, (महे धनाय) तथा महाधन मोक्ष की प्राप्ति के लिये, (सोमं रसम्) उत्पन्न भक्तिरस को (प्र पुनन्ति) खूब पवित्र करते हैं।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१३३४—शिशुं जज्ञानँ हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥३॥
॥ १९ (का) ॥

(जज्ञानं शिशुम्) नवजात शिशु को जैसे माताएँ स्नान आदि द्वारा, (मृजन्ति) विशुद्ध करती हैं, वैसे भक्तिरस के उत्पादक उपासक (१३३३), (देवेभ्यः) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये, (हरिम्) मनोहारी, (इन्दुम्) तथा अध्यात्म-प्रकाश देने वाले (सोमम्) भक्तिरस को, (पवित्रे) पवित्र हृदयों में (मृजन्ति) मार्जन विधि द्वारा शुद्ध पवित्र करते हैं।

[तीव्र अभ्यास, तीव्र वैराग्य, उत्कट श्रद्धा आदि मार्जन विधि के साधन हैं]

[धा० ११ । उ० १। स्व० २]

सूक्त २०

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

१३३५—उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।
१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

(जातम्) प्रकट हुए, (अप्तुरम्) प्राणों तथा कर्मों में शक्ति देने वाले, (गोभिः) वेदवाणियों के उपदेशों द्वारा अविद्या आदि के दुर्गों का भङ्ग करने वाले, (परिष्कृतम्) भक्तिरस द्वारा स्नान करा कर विशुद्ध रूप में प्रकट किये गये, (इन्दुम्) प्रकाशमान परमेश्वर के (उप) समीप, (देवाः) दिव्य उपासक, (सु) सुगमता से (अयासिषुः) पहुँच जाते हैं।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१३३६—तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सँ सँशिश्वरीरिव।
१ २र ३ १ २
य इन्द्रस्य हृदँ सनिः ॥ २ ॥

(यः) जो परमेश्वर (इन्द्रस्य) जीवात्मा के (हृदम्) हृदय का (सनिः) भागी बनता है, (तम् इत्) उसे ही, (नः) हमारी (गिरः) स्तुति-वाणियां (सं वर्धन्तु) खूब बढ़ाती हैं, (इव) जैसे कि (शिश्वरीः) शिशु की माताएँ (वत्सम्) शिशु-पुत्र को अपने दूध द्वारा बढ़ाती हैं।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१३३७—अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।
१ २ ३ १ २
वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ ॥ २० (ही) ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक ! (नः) हमें आप (अर्ष) प्राप्त हूजिये। (गवे) समग्र पृथिवी के लिये (शम् धुक्ष्व) शान्ति का दीपक जलाइये।

(पिप्युषीम्) हमारी बढ़ी हुई (इषम्) मोक्षाभिलाषा को (धुक्ष्व) और अधिक चमकाइये। (उक्थ्य) हे वैदिक सूक्तों द्वारा प्रशंसित परमेश्वर! (समुद्रम्) हमारे हृदय-समुद्रों को (वर्धा) बढ़ाइये, उद्देश्य की ओर शीघ्र बढ़ने में उत्साहित कीजिये।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [घा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त २१

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१३३८—आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति वर्हिरानुषक्।

१ १ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

(ये) जो उपासक, (आ) प्रत्यक्ष रूप में, (घ) निश्चय से, (अग्निम्) उद्देश्य की ओर आगे-आगे ले जाने वाले परमेश्वर को (इन्धते) हृदय-कुण्ड में प्रदीप्त कर लेते हैं, और (युवा) सदा युवा (इन्द्रः) परमेश्वर (येषाम्) जिन उपासकों का (सखा) स्नेही मित्र बन जाता है, वे उपासक परमेश्वर के लिये (बर्हिः) अपने हृदयासनों को (आनुषक्) निरन्तर (स्तृणन्ति) विछाए रखते हैं।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

१३३९—बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

(युवा इन्द्रः) सदा युवा परमेश्वर (येषाम्) जिन उपासकों का (सखा) स्नेही मित्र बन जाता है, (एषाम्) इन उपासकों की (इध्मः) समिधाएँ (बृहत्) बड़ी होती हैं, सामान्य नहीं; (शस्त्रम्) इन के परमेश्वर-प्रशंसक सामगान भी (भूरि) वार-वार होते हैं, (स्वसः) सामगान के स्वर भी (पृथुः) ऊँचे स्वरों के होते हैं।

[प्राकृतिक अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये तो "इध्म" सामान्य लकड़ीरूप होता है, परन्तु परमात्माग्नि को प्रदीप्त करने के लिये जो इध्म होता है वह महान् होता है। वह इध्म है,—यह आत्मा, जीवात्मा "अयं त इध्म आत्मा" (आश्व० १।१०।१२); वह इध्म है,—ग्रीष्म ऋतुः 'वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः' (यजु० ३१।१४); वह इध्म है,—शरीर की समग्र शक्तियां "त्रिःषप्त समिधः कृताः" (यजु० ३१।१५), अर्थात् २१ समिधाएं=५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां, ५ स्थूलभूत, ५ सूक्ष्मभूत, १ मन]

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१३४०—अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आ जति सत्वभिः।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥ ॥ २१ (ठ) ॥

(युवा) सदा युवा (इन्द्रः) परमेश्वर (येषाम्) जिन उपासकों का (सखा) स्नेही मित्र बन जाता है, वे उपासक जब (युधा) कामादिक आसुरी योद्धाओं से

(आवृतम्) आवृत हो जाते हैं, घिर जाते हैं, तब (शूरः) पराक्रमशील परमेश्वर (सत्वभिः) अपनी शक्तियों के साथ, उपासक की सहायता के लिये, (आ अजति) आ जाता है, परमेश्वर को (अयुद्धः इत्) आसुरी योद्धाओं के साथ युद्ध नहीं करना पड़ता, आसुरी योद्धा परमेश्वर की केवल उपस्थिति से ही विशीर्ण हो जाते हैं।

[धा० ३। उ० २। स्व० १]

सूक्त २२

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ५ १ २
१३४१—य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥

(अङ्ग) हे उपासक ! (यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (एक इत्) अकेली ही (दाशुषे) समर्पक (मर्त्ताय) मनुष्य के प्रति (वसु) सांसारिक और आध्यात्मिक विभूतियां (विदयते) देता है, वह अकेला ही (ईशानः) सर्वाधीश हैं, वह (अ प्रतिष्कुतः) कहीं से भी प्रतिद्वन्द्विता नहीं पाता, विरोध नहीं पाता।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१३४२—यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥

(अङ्ग) हे परमेश्वर ! (बहुभ्यः आ) बहुत मनुष्यों में से (यः चित्) जो भी मनुष्य, (सुतावान्) भक्तिरस सम्पन्न हो कर, (हि) निश्चय से, (त्वा) आप की (आ विवासति) परिचर्या करता है, उपासना करता है, वह (तत्) प्रसिद्ध (उग्रं शवः) प्रबल आध्यात्मिक बल (पत्यते) प्राप्त कर लेता है, (इन्द्रः) और परम ऐश्वर्यवान् हो जाता है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
१३४३—कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ३ ॥ ॥ २२ (कि) ॥

(अङ्ग) हे प्रिय उपासक ! नहीं कहा जा सकता कि (इन्द्रः) परमेश्वर (अराधसं मर्तम्) आराधना हीन मनुष्य को (कदा) कब (स्फुरत्) कुचल दे, (पदा) पैर से (इव) जैसे (क्षुम्पम्) खुम्ब को कुचल दिया जाता है, और (कदा) कब परमेश्वर (नः) हमारी (गिरः) प्रार्थना-वाणियों को (शुश्रुवत्) सुन ले। इसलिये तू सदा आराधना किया कर।

[धा० ११। उ० १। स्व० ३]

सूक्त २३

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
१३४४—गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

(शतक्रतो) सैंकड़ों विविध कृतियों वाले हे परमेश्वर ! (गायत्रिणः) गायत्री आदि छन्दों को गाने वाले (त्वा) आप का ही (गायन्ति) गान करते हैं, (अर्किणः) ऋचाओं द्वारा स्तुतियां करने वाले (अर्कम्) स्तुति योग्य आप की ही (अर्चन्ति) स्तुतियां करते हैं, (ब्रह्माणः) ब्रह्मवेत्ता लोग (त्वा) आप को ही सर्वोच्च रूप में वर्णित करते हैं, (इव) जैसे कि विजेता लोग (वंशम्) अपनी विजय पताका का (उद् येमिरे) ऊँचा उठाते हैं।

२उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
१३४५—यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

हे उपासक ! (यत्) जब तू (सानोः) आध्यात्मिक योगभूमियों की एक ऊँचाई से (सानु) अगली ऊँचाई पर (आरुहः) आरुढ़ होता है, और (भूरि) नाना (कर्त्वम्) कर्तव्य कर्मों को (अस्पष्ट) स्पष्टरूप में करता है, (तत् अर्थम्) तेरे उन पुरुषार्थों को (इन्द्रः) परमेश्वर (चेतति) जान रहा होता है, तब (वृष्णिः) आनन्द-रसमयी परमेश्वर, (यूथेन) अपने शक्तिसमूह के द्वारा, (एजति) तेरी विघ्न-बाधाओं को हटा देता है।

३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २
१३४६—युंक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
१ २ ३ १ २र
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥ २३ (वी) ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (केशिना) ज्ञानप्रकाशक, (वृषणा) और आनन्द वर्षक (हरी) चित्तहारी "ऋक् और साम" से मिश्रित भक्तिगानों को (युंक्ष्व) हमारे साथ सदा जोत रखिये, (कक्ष्यप्रा) ऋक् और साम मिल कर, दो कोखों के मध्यवर्ती हृदय और छाती को आनन्द से पूरित कर दें, भर दें ! (अथा) तदनन्तर हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (सोमपाः) हमारे भक्तिरसों का पान करते हुए आप, (नः) हमारी (गिराम्) स्तुति और प्रार्थना की वाणियों का, (उप) समीपवर्ती हो कर, (श्रुतिम् चर) श्रवण कीजिये।

[ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी (ऐत० ब्रा० २।२४) । कक्ष्यप्रा=कक्षे भवः कक्ष्यः,+प्रा (पूरणे)]

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [धा० २५ । उ० ३ । स्व० ४]

इति पञ्चमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥

पञ्चम प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

[१]

अथ षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ५॥

(१—११) मेघातिथिः काण्वः, २, १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ प्रगाथः काण्वः, ४ पराशरः शाक्त्यः, ५ प्रगाथो घौरः काण्वः; ६ मेध्यातिथिः काण्डः; ७ त्र्यरुण-त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य; ८ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; ९ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः; १० सार्पराज्ञी ॥ १ आप्रीसूक्तं=(१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इलः); २ आदित्याः; ३, ५—६ इन्द्रः, ४, ७—९ पवमानः सोमः; १० अग्निः; ११ आत्मा, सूर्यो वा ।
१—३, ११ गायत्री; ४ त्रिष्टुप्; ५—६ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्; ८ द्विपदा विराट्; ९ जगती; १० विराट् ॥

सूक्त १

१२ ३१२ ३१ २ ३१२
१३४७—सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
१२ ३१२
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! (नः) हमें (देवान्) दिव्यगुण (आ वह) प्राप्त कराइये, (हविष्मते) और उसे भी दिव्यगुण प्राप्त कराइये जो कि आप के लिये आत्मसमर्पण रूपी हवि समर्पित करता है । (होतः) हे दिव्यगुणों का दान करने वाले ! तथा अदिव्य दुर्गुणों का विनाश करने वाले परमेश्वर !, (पावक) तथा हे पवित्र करने वाले ! (यक्षि च) आप ही हमारे उपासना-यज्ञों को सफल कीजिये ।

१२ ३२३१२
१३४८—मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
३ १२ ३१२
अद्या कृणुह्यूतये ॥ २ ॥

(कवे) हे वेदकाव्य के कवि !, (तनूनपात्) तथा हे हमारे शरीरों को धर्ममार्ग से पतित न होने देने वाले ! (नः) हमारे (मधुमन्तं यज्ञम्) मधुर अर्थात् आनन्ददायी उपासना-यज्ञ को आप, (अस्य) आज से ही, (देवेषु) दिव्यगुणी व्यक्तियों में (आ कृणुहि) सर्वत्र फैला दीजिये, (ऊतये) ताकि हम सब की रक्षा हो सके ।

२३१ २३२ ३२३२ ३१२र
१३४९—नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।
१२ ३१२
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

(इह) इस हृदय-वेदी में रचाए गये (अस्मिन् यज्ञे) इस उपासना-यज्ञ में, (नराशंसम्) नर-नारियों के प्रति उन के कर्तव्यों का कथन करने वाले, (प्रियम्) सर्वप्रिय, (मधुजिह्वम्) मधुर वेदवाणी द्वारा उपदेश देने वाले, (हविष्कृतम्) हमारी आत्मसमर्पण रूपी हवि को सफल बनाने वाले जगन्नेता का (उप ह्वये) आह्वान, मैं श्रद्धापूर्वक करता हूँ।

[जिह्वा=वाक् (निघं० १।११)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१३५०—अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह।

२ ३ २ ३ १ २

असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥ ॥ १ (रा) ॥

(अग्ने) हे जगन्नेता! (सुखतमे) अतिसुखदायी (रथे) शरीर-रथ में स्थित हुए आप, हमें (देवान्) दिव्य गुण (आ वह) प्राप्त कराइये। हम द्वारा आप ही (ईडितः) स्तुति पाते हैं। आप (होता) दाता हैं, (मनुः) मनस्वी हैं, (हितः) सर्व हितकारी हैं।

[धा० १८। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त २

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१३५१—यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा।

३ १ २ ३ १ २र

सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥

(अद्य) आज ही से, (यत्) जो व्यक्ति, (सूरे उदिते) प्रतिदिन सूर्य के उदित होते (अनागाः) निष्पाप रहता, (मित्रः) सब के साथ मैत्री का व्यावहार करता, और (अर्यमा) न्यायपूर्वक वर्तता है, उसे (सविता) सर्वप्रेरक और (भगः) भजनीय तथा समग्रैश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर (सुवाति) अपनी प्रेरणाएँ देता है।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २र

१३५२—सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।

२ ३ १ २ ३ १ २

ये नो अँहोऽतिपिप्रति ॥ २ ॥

हे सद्गुरुओ! (सुदानवः) उत्तमोत्तम उपदेश देने वाले आप, जिस घर में (प्र यामन्) यान-प्रयाण अर्थात् आना-जाना करते हैं, (सः क्षयः) वह घर (नु) निश्चय से (सु) अच्छे प्रकार (प्रावीः) सब की रक्षा करने वाला (अस्तु) हो जाता है। हे सद्गुरुओ! आप ही हैं (ये) जो कि हमें (अंहः) पाप-नद से (अति) पार करके (पिप्रति) हमारी पालना करते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

१३५३—उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये।

३ १ २र

महो राजान ईशते ॥ ३ ॥ ॥ २ (खि) ॥

(उत) और (स्वराजः) अपने गुणों से स्वयं प्रकाशमान सद्गुरु, और (अदितिः) अनश्वर जगन्माता, = (ये) जो कि (अदब्धस्य महः व्रतस्य) सुदृढ़ महाव्रतों के (ईशते) अधीश्वर हैं, वे (राजानः) धर्म पर राज्य करते हैं।

[महः व्रतस्य = योगदर्शन (२।३१) में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, —इन्हें महा-व्रत कहा है। यथा:--"जाति देशकाल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्"।

[धा० ११। उ० २। स्व०३]

सूक्त ३

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

१३५४—उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।

१ २ ३ १ २

अव ब्रह्मद्विषो जहि॥ १॥

(उ) तथा वे (सोमाः) भक्तिरस वाले उपासक, (त्वा) हे परमेश्वर! आप को (मदन्तु) भक्तिरस समर्पण द्वारा प्रसन्न करें। (अद्रिवः) हे अखण्डितव्रती परमेश्वर! (राधः) आराधना रूपी धन (कुणुष्व) हमें प्रदान कीजिये। (ब्रह्मद्विषः) जो लोग वेद विरोधी तथा नास्तिक हैं उन्हें (अव जहि) हम से पृथक् रखिये।

[जहि = हन् (गतौ)। अव जहि = अव (Away, off, away from, आपटे) + जहि (हन् गतौ), अपगतान् कुरु]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१३५५—पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि।

२उ ३ २ ३ १ २र

न हि त्वा कश्चन प्रति॥ २॥

हे परमेश्वर! (अराधसः) आराधनाहीन (पणीन्) लोभी व्यापारियों को (नि बाधस्व) जड़ से उखाड़ दे, जैसे कि (पदा) पैर से खुम्ब को उखाड़ दिया जाता है (मन्त्र १३४३); (महान् असि) आप महा-शक्तिशाली हैं। (कश्चन) कोई भी (त्वा) आप का (प्रति) प्रतिद्वन्द्वी (न हि) नहीं है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

१३५६—त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्।

२उ ३ १ २

त्वँ राजा जनानाम्॥ ३॥॥ ३ (ठि)॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (सुतानाम्) समग्र उत्पन्न पदार्थों के, तथा (त्वम्) आप (असुतानाम्) जो भविष्य में उत्पन्न होंगे, उन सब के, (राजा) राजा हैं, स्वामी हैं, (त्वम्) आप (जनानाम्) सभी प्रजाजनों के भी राजा हैं।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥ [धा० ११। उ० २। स्व० ३]

सूक्त ४

१ २र ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१३५७—आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनाँ सोमः पुनानो असदश्चमूषु ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥

(यम्) जिस परमेश्वर को,(निकामाः) विविध कामनाओं वाले, (अध्वर्यवः) हिंसा-रहित उपासना-यज्ञों के जुटाने वाले, (रथिरासः) शरीर-रथों के स्वामी, (सुहस्ताः) कार्यकुशल (मिथुनासः) स्त्री-पुरुष,—(सपन्ति) योग-विधि द्वारा अपने साथ सम्बद्ध करते हैं, वह परमेश्वर (जागृविः) सदा जागरूक है, (विप्रः) विविध जगत् में परिपूर्ण है। वह (ऋतम्) सत्यस्वरूप, (सोमः) जगदुत्पादक, (मतीनां पुनानः) मतियों को पवित्र करता है, तथा (चमूषु) लोक-लोकान्तरों में (आ असदत्) सर्वत्र स्थित है।

[चम्वौ=द्यावापृथिवी, (निघं० ३।३०)]

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ १र ३ १ २ ३ १ २र
१३५८—स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २र
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यँ सत् ॥ २ ॥

(यस्य सतः) जिस सत्स्वरूप परमेश्वर की (ऊती) रक्षाएँ, (प्रिया चित्) सर्वप्रिय, तथा (प्रियसासः) प्रिय अर्थात् अभीष्टों का प्रदान करती हैं, वह परमेश्वर, (कारिणे) उपासना-यज्ञ के अनुष्ठाता के लिये, (धनम्) आध्यात्मिक धन (प्र यंसत्) प्रदान करता है, (न) जैसे कि (कारिणे) कर्मकर को (धनम्) उस का वेतन-धन दिया जाता है। (सः) वह परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता है, (सूरे) सूर्य (उप दधानः) शासकरूप में स्थित है, (उभे रोदसी) द्युलोक और भूलोक इन दोनों में (आ अप्राः) भरपूर है, (च) और (वि आवः) इन पर पड़े आवरणों को हटाता है।

[वि आवः=रात्रि के समय पृथिवी पर अन्धकार का आवरण होता है, और दिन के समय द्युलोक पर सूर्य के प्रकाश का आवरण होता है, तथा प्रलयकाल में सब पर प्रलय का आवरण होता है। प्रियसासः=प्रिय+षणु दाने]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
१३५९—स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो
१ २
ज्योतिषावित् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १र ३ २
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥ ३ ॥ ॥ ४ (तै) ॥

(पदज्ञा:) वैदिक पद पदार्थों के ज्ञाता, (स्वर्विदः) तथा सच्चे सुख को प्राप्त किये हुए (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) अनादि परम्परा के पितर, (गाः) परमेश्वरीय प्रेरणा-वाणियों तथा (अद्रिम्) धर्म मेघ समाधि को (अभि इष्णन्) साक्षात् चाहते हुए, (यत्र) जिस परमेश्वर में विचरते हैं, (सः) वह (सोमः) परमेश्वर (वर्धिता) हमारी वृद्धि करता है, (वर्धनः) वह सद्गुणों में बढ़ा-चढ़ा है, (पूयमानः) उपासना द्वारा विशुद्धरूप में प्रकट किया गया (मीढ्वान्) सुखों का मेह बरसाता, तथा (ज्योतिषा) अपनी ज्योति द्वारा (नः) हमारी (अभि आवीत्) सब प्रकार से रक्षा करता है।

[धा० ६ । उ० १ । स्व० ८]

सूक्त ५

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१३६०—मा चिदन्यद्वि शँ सत सखायो मा रिषण्यत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषणँ सचा सुते मुहुरुक्था च शँ सत ॥१॥

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (अन्यत्) परमेश्वर से भिन्न किसी की (मा चित्) मत (वि शंसत) स्तुति किया करो; (सुते) भक्तिरस के उत्पन्न होने पर (वृषणम्) धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की वर्षा करने वाले (इन्द्रम् इत्) परमेश्वर की ही, (सचा) सब मिल कर, (स्तोता) स्तुति किया करो, (उक्था च) और सूक्तों का (मुहुः) वार-वार (शंसत) भक्ति-पूर्वक उच्चारण किया करो। इस प्रकार (मा रिषण्यत) तुम विनाश को प्राप्त न होओ।

[परमेश्वर से भिन्न की उपासना विनाश से नहीं बचा सकती। जन्म और मरण की परम्परा और दुःख-भोग,—यही विनाश है।]

३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१३६१—अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विद्वेषणँ संवननमुभयङ्करं मँ हिष्ठमुभयाविनम्
॥ २ ॥ ॥ ५ (यी) ॥

उस परमेश्वर की स्तुति किया करो (मन्त्र १३६०) जो कि (अवक्रक्षिणम्) अवक्र अर्थात् अकुटिल उपासकों में निवास करता, उन्हें प्रत्यक्ष होता, (वृषभं यथा) वर्षा करने वाले मेघ के सदृश सुखों की वर्षा करता, (जुवम्) सक्रिय, (गां न) गौ के सदृश (चर्षणी सहम्) सब प्राणियों को तृप्त करता, (विद्वेषिणम्) द्वेष से रहित, (संवननम्) सम्यक् भजनीय, (उभयङ्करम्) इहलोक और परलोक इन दोनों का कर्त्ता, (मंहिष्ठम्) महादानी, (उभयाविनम्) तथा दोनों लोकों का रक्षक है।

[अवक्रक्षिणम्=अवक्र+क्षि (निवासे)। सहम्=षह् तृप्ति योगे]

[धा० १७ । उ० ना । स्व० ९]

सूक्त ६

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
१३६२—उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ।। १ ।।

(त्ये) वे (मधुमत्तमाः) मधुर स्वर वाली (गिरः) वैदिक ऋचाएँ और (स्तोमासः) अत्यन्त मधुर सामगान, (उ) निश्चय से (उद् ईरते) हम से उच्चस्वरों में गाए जा रहे हैं, (सत्राजितः) सत्य है कि ये राग द्वेष आदि पर विजय पाते, (धनसाः) आध्यात्मिक धन प्रदान करते, (अक्षितोतयः) अविनश्वर रक्षाएँ प्रदान करते, (रथा इव) तथा रथों के सदृश (वाजयन्तः) उपासकों को उपासना मार्ग में वेग प्रदान करते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१३६३—कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रँ स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्
।। २ ।। ।। ६(ला) ।।

(कण्वा इव) जिन्होंने सांसारिक इच्छाओं का प्रतिघात कर दिया है ऐसे सन्तों के सदृश वर्तमान, तथा (भृगवः) भून देने वाली (सूर्या इव) प्रखर सौर-किरणों के सदृश जिन्होंने तपश्चर्या द्वारा राग-द्वेष, काम क्रोध आदि को भून दिया है,—ऐसे (प्रियमेधासः) उपासना यज्ञ के प्यारे (आयवः) उपासक लोग, (स्तोमेभिः) सामगानों द्वारा (इन्द्रं महयन्तः) परमेश्वर की महिमा का वर्णन करते हुए (अस्वरन्) मीठे स्वर में भक्तिगान करते हैं, और (धीतम्) ध्यानयोग द्वारा ध्यान किये गए (विश्वम्) व्यापक परमेश्वर को (आशत) प्राप्त करते हैं ।

[कण्वाः=कणे इच्छा प्रतीघाते । भृगवः=भ्रस्ज पाके]

[धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त ७

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३६४—पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ।। १ ।।

हे परमेश्वर ! (वाजसातये) बलप्रदान के लिये, (उ) निश्चय से, आप (सु) सुगमता से (परि प्र धन्व) हमें शीघ्र प्राप्त हूजिये । (वृत्राणि) विघ्न-बाधक रूप हमारे कामादि शत्रुओं का (परि सक्षणिः) पूर्ण क्षय कीजिये । (द्विषः) द्वेष-

नद से (तरध्यै) हमें तैराने के लिये, (ऋणयाः न) ऋण-यापन करने वाले, अर्थात् ऋण चुकाने वाले के सदृश (ईयसे) आप हमें प्राप्त हों।

[वैदिक दृष्टि में ऋणी, अपने ऋण के चुकाने में, अत्यन्त व्याकुलरूप में वर्णित हुआ है। वह परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि वह इहलोक तथा परलोक के ऋणों के चुकाने में समर्थ हो। वैदिक ऋणी, अपने ऋण के चुकाने के लिये, सुगमता से तथा शीघ्रता से, ऋण-दाता के समीप पहुँच कर ऋण चुकाता है। उपासक की भक्ति और श्रद्धा का ऋणी है,—परमेश्वर! उसे भी उपासक का ऋण चुकाना है। उपासक का ऋण चुकाया जायगा, जब कि परमेश्वर उपासक को द्वेष-नद से तैराएगा, उसे अपने स्वरूप का दर्शन देगा, और उसे मोक्ष प्रदान करेगा। इस दृष्टि से परमेश्वर को '-ऋणयाः" कहा है]

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३२३ १ २३१२
१३६५—अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
१२ ३१२ ३१२
गोजीरया रँहमाणः पुरन्ध्या ॥ २ ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमात्मन्! आप ने (शक्मना) निज शक्ति से (विधारे) निराधार में [आकाश में] (सूर्यम्) सूर्य को (अजीजनः) जन्म दिया है, तथा (पयः) जलराशि को, मेघ आदि के रूप में, स्थापित किया है। आप (गोजीरया) पृथिवी पर प्राणियों को जीवन देने वाली (पुरन्ध्या) महामति के साथ (रंहमानः) विचर रहे हैं।

[गोजीरया=गौ (पृथिवी)+जीव् (प्राणधारणे)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
१३६६—अनु हि त्वा सुतँ सोम मदामसि ॥ ३ ॥ ॥ ७ (ल) ॥

(सोम) हे जगदुत्पादक प्रभो! (महे समर्यराज्ये) आप-स्वामी के सुसंगत महान् राज्य [भूमण्डल] में रहते हुए हम, (सुतम्) प्रकट हुए (त्वा अनु) आप की आज्ञा के अनुकूल चलते हुए, (मदामसि हि) निश्चय से प्रसन्न रहते हैं। (पवमान) हे पवित्र करने वाले! आप (वाजान्) समग्र बलों और शक्तियों को (अभि) साक्षात् (प्र गाहसे) विलोड़ित कर रहे हैं, उन पर प्रभाव जमाए हुए हैं।

[समर्य राज्ये=सम्+अर्य (स्वामी)+राज्यें]

[घा० ९। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ८

२ ३ १ २ ३
१३६७—परि प्र धन्व ॥ १ ॥

(सोम) हे उत्पन्न हुए भक्तिरस! (स्वादुः) तू मधुर है। (मित्राय) स्नेह करने वाले, (पूष्णे) पुष्टि देने वाले, (भगाय) समग्रैश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान से

सम्पन्न (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये,—हे भक्तिरस !,—तू (परि प्र धन्व) शीघ्रता से प्रवाहित हो जा।

[धन्व=धवि गत्यर्थः]

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१३६८—एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ २ ॥

हे भक्तिरस ! (सः) वह तू (शुक्रः) विशुद्ध (दिव्यः पीयूषः) दिव्य पेय है; तू (महे) महान् (क्षयाय) और सब के निवासभूत (अमृताय) अमर परमेश्वर के लिये, (एव) निश्चय से, (अर्ष) प्रवाहित हो जा।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१३६९—इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात्क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥३॥
॥ ८ (ला) ॥

(सोम) हे उत्पन्न भक्तिरस ! (क्रत्वे) प्रज्ञा की प्राप्ति के लिये, (दक्षाय) बल, वृद्धि और प्रगति की प्राप्ति के लिये,—(ते सुतस्य) तुझ उत्पन्न को (इन्द्रः) परमेश्वर (पेयात्) स्वीकार करे, (च) और (विश्वे देवाः) सब उपासक देव भी तेरा रसास्वादन करें।

[वेद, परमेश्वर-कवि का, महाकाव्य है। इस लिये कविता शैली में भक्तिरस को सम्बोधित किया गया है।]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥ [घा० ६। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ६

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३७०—सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३२
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन
॥ १ ॥

(इव) जैसे (सूर्यस्य रश्मयः) सूर्य की रश्मियां (द्रावयित्नवः) प्रजाजनों को कार्यों में द्रुतगति से प्रेरित करती हैं, वैसे (मत्सरासः) आनन्दरस के सरोवर उपासक, (प्रसुतः) परमेश्वरीय प्रेरणाएँ प्राप्त कर, (साकम्) परस्पर मिल कर, (ईरते) प्रजाजनों को भक्तिमार्ग में प्रेरणा देने के लिये भूमण्डल में विचरते हैं। (सर्गासः) और परमेश्वर की एक अद्भुत सृष्टिरूप में उपासक, (आशवः) प्रयत्नशील होकर, (ततं तन्तुम्) सर्वव्यापक, तथा कारणरूप परमेश्वर का (परि ईरते) सर्वत्र प्रचार करते हैं, क्योंकि (इन्द्रात् ऋते) परमेश्वर के विना (किं चन) कोई भी (धाम) स्थान (न पवते) पवित्र नहीं समझा जाता।

[प्रसुतः=प्र+सु (प्रेरणे)+क्विप्, तुक्+प्रथमा बहुवचन]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१३७१—उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥

(मतिः) परमेश्वरोपासक की मति अर्थात् बुद्धि और मनन-शक्ति (उ) निश्चय से (उप) परमेश्वर के साथ (पृच्यते) सदा लगी रहती है, और उपासक का (मधु) मधुर भक्तिरस (सिच्यते) परमेश्वर पर सदा सींचा जाता है। तथा (आसनि अन्तः) उपासक के मुख के भीतर (मन्द्रा) धीमी स्तुतिध्वनि सदा (अजनी) सक्रिय रहती है, जो कि उसे (चोदते) प्रेरणा देती रहती है। वह उपासक (पवमानः) अपने आप को स्तुतिध्वनियों द्वारा पवित्र करता हुआ, तथा (सन्तनिः) पवित्रता का विस्तार करता हुआ, (वारम्) पापनिवारक परमेश्वर की (परि) ओर (अर्षति) पग बढ़ाए चला जाता है, (इव) जैसे कि (सुन्वताम्) सोम यज्ञ अर्थात् भक्ति-यज्ञ करने वालों का (मधुमान्) मधुर (द्रप्सः) भक्तिरस परमेश्वर की (परि) ओर (अर्षति) सदा प्रवाहित होता रहता है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१३७२—उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति
३ २
निष्कृतम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत
॥ ३ ॥ ॥ ९ (ग) ॥

(उक्षा) भक्तिरस सींचने वाला उपासक (मिमेति) प्रभु के स्तुतिगान करता रहता है। (धेनवः) उस की स्तुतिवाणियां (प्रति यन्ति) परमेश्वर की ओर ही प्रयाण करती हैं, और (देवीः) ये दिव्य स्तुतियां (देवस्य) परमेश्वर देव के (निष्कृतम्) परिष्कृत स्वरूप को (उप यन्ति) प्रकट करती हैं। (सोमः) भक्तिरस वाला उपासक (अति अक्रमीत्) विघ्नों और बाधाओं का अतिक्रमण कर लेता और (अर्जुनम्) उपासना विधि द्वारा अर्जित तथा निष्कलङ्क, (वारम्) पापनिवारक (अव्ययम्) अविनश्वर, (निक्तम्) शुद्ध पवित्र, (अत्कं न) तथा पापशत्रुओं के प्रति वज्ररूप परमेश्वर को (परि अव्यत) पूर्णरूप में प्राप्त कर लेता है।

[धेनुः=वाक् (निघं० १।११)। अव्यत=अव् (अवाप्तौ)। अत्कम्=वज्र (निघं० २।२०)]

[धा० २६। उ० ३। स्व० १]

सूक्त १०

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१३७३—अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्र शस्तम्।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १ ॥

(नरः) हे उपासक नर-नारियो ! तुम, (हस्तच्युतम्) हाथ पैर आदि अवयवों से रहित "अपाणिपाद" और "अकाय", (प्रशस्तम्) वेदादि द्वारा प्रशंसित, (दूरे दृशम्) दूर द्रष्टा, (गृहपतिम्) संसार गृह के स्वामी, (अथर्युम्) सर्वगत (अग्निम्) अग्नि नामक परमात्मा को,—(अरण्योः) स्वदेहरूपी अधरारणि और प्रणवरूपी उत्तरारणि से, (दीधितिभिः) श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा (जनयत) प्रकट करो, साक्षात् करो।

[अरण्योः="स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्यान निर्मथनाभ्याद् देवं पश्येन्निगूढवत्" (मन्त्र संख्या ९)। अग्नि जैसे काष्ठों में निलीन रहती है, और उसे प्रयत्नों द्वारा प्रकट किया जाता है, वैसे ही परमात्माग्नि संसार में, और हृदयों में, निलीन है, उसे ध्यान रूपी साधनों द्वारा प्रकट किया जाता है]

२ ३ २उ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१३७४—तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्।
३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

(वसवः) सद्गुणों के निवासरूप २४ वर्षों के ब्रह्मचारी, (कुतश्चित्) काम क्रोध आदि किसी से भी प्राप्त भय से (अवसे) आत्मरक्षार्थ, (सु प्रतिचक्षम्) उत्तमरीति से प्रत्येक व्यक्ति पर कृपादृष्टि रखने वाले (तम् अग्निम्) उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को, (अस्ते) अपने हृदय-गृहों में (न्यृण्वन्) प्राप्त कर लेते हैं, (य.) जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा कि (दक्षाय्यः) बल प्राप्त कराता, और (दमे) हृदय-गृह में (नित्यः आस) नित्य स्थित है।

१ २ ३ १ २र ३क २र
१३७५—प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वाँ शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥ ॥ १० (डी)

(यविष्ठ) हे सदा युवा तथा संसार की उत्पत्ति और विनाश करने में सशक्त (अग्ने) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! (प्रेद्धः) आप अत्यन्त दीप्ति से सम्पन्न हैं; (अजस्रया) न क्षीण होने वाली (सूर्म्या) सुन्दर ज्वालाओं के रूप में आप (नः) हमारे (पुरः) संमुख (दीदिहि) चमकिये। (त्वाम्) आप को (शश्वन्तः) शाश्वतिक (वाजाः) शक्तियां (उप यन्ति) नित्य प्राप्त हैं।

[यविष्ठ=यु मिश्रणे, अमिश्रणे च। मिश्रण=उत्पत्ति। अमिश्रण=विनाश। सूर्म्या=सु+ऊर्मि (लहरें; ज्वालाओं की लहरें)+तृतीयैकवचन। परमात्म दर्शन से पूर्व ध्यानावस्थित उपासक का आग्नेय ज्वालाएं दृष्टि-गोचर होने लगती हैं। यथा:—नीहार-धूमार्का-निलानलानां खद्योत विद्युत् स्फटिक शशीनाम्। एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभि-व्यक्ति-कराणि योगे" (श्वेता. अ. २;खं.११)]

[धा० २८। उ० ३। स्व० ४]

सूक्त ११

१ २र ३ १२ ३ १२ ३ २

१३७६—आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।

३ १२ ३ १ २

पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

(अयम्) यह उपासक, (पृश्निः [1])जो कि पहिले रंग-बिरङ्गा था, रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण से मिश्रित था, अब (गौः [2]) स्तोता बन कर, परमेश्वर के गुणों का गान करने वाला बन कर, (मातरम्)श्रद्धा-माता की गोद में (आ असदत्) आसन जमाता है, और (पुरः) उपासनामार्ग पर आगे-आगे (अक्रमीत्) पग बढ़ाता है, (च) और (स्वः) सुखस्वरूप तथा प्रकाशमान (पितरम्) जगत्पिता परमेश्वर की ओर (प्रयन्) प्रयाण करता रहता है ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

१३७७—अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।

२र ३ १ २र

व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥

(अस्य) इस उपासक के (अन्तः) अन्दर तब (रोचना) ब्राह्मी-दीप्ति (चरति) विचरती है, जो कि उपासक में (प्राणात् अपानती) प्राण और अपान की क्रिया अर्थात् श्वास-प्रश्वास की क्रियामात्र करा रही होती है । उस समय (महिषः) महान् प्रभु (दिवम्) उपासक में प्रज्ञा का प्रकाश (व्यख्यत्) प्रकट करता है ।

[प्राणादपानती="प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्त-चेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत" (श्वेता० अ० २, खं. ९), अर्थात् इन्द्रियों को दबा कर, योगाभ्यास में शारीरिक चेष्टाओं का निरोध कर, इन्द्रियों के शान्त हो जाने पर, केवल नासिका द्वारा श्वासोच्छ्वास-क्रिया करे"।

"रोचना=रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥ (यजु० ३१।२१)]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २३ १ २

१४७८—त्रिँ शद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।

२ १ २ ३ २ ३ १ २

प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥ ॥ ११ (छि) ॥

(वाक्) उपासक की स्तुतिवाणी, उपासक में, (त्रिंशत् धाम) ३० मुहूर्तों में लगातार (वि राजति) विराजमान रहती है, और स्तुति वाणी (पतङ्गाय)जीवात्मा की शुद्धि और परमात्मा की प्राप्ति के लिये (धीयते) परिपुष्ट की जाती है । (प्रति

१—पृश्निः=Divarsified (आपटे) । २—गौ=स्तोता(निघं. ३।१६); गायतेः स्तुतिकर्मणः ।

वस्तोः) प्रतिदिन (द्युभिः अह) सूर्य की द्युति से लेकर अगले सूर्योदय तक स्तुति-वाणी उपासक में रहती है।

[पतङ्ग का अर्थ है,—पक्षी। वेदों में जीवात्मा और परमात्मा को "द्वा सुपर्णा" अर्थात् दो पक्षियों के रूप में वर्णित किया है। प्रस्तुत मन्त्र में इन्हें "पतङ्ग" कहा है। जीवात्मा कभी तो शरीर में "पतन" करता है, और कभी शरीर से "गमन" अर्थात् पृथक् होता है। इसी प्रकार सृष्टिकाल में परमात्मा जगत् में "पतन" करता है, और प्रलयकाल में जगत् से "गमन" करता है, पृथक् हो जाता है। अतः जीवात्मा और परमात्मा दोनों "पतङ्ग" हैं। पतङ्ग=पतन्+ग (गच्छति)]

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [घा० १७ । उ० २ । स्व० ३]

इति षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ६—१ ॥

एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

[२]

अथ षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ६—२ ॥

(१—२०) १ (१—२) गोतमो राहूगणः; १ (३), ८, ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ७ भरद्वाजो वार्हस्पत्यः; ३ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा; ४, १३ सोभरिः काण्वः; ५ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; ६ (१) ऋजिश्वा भारद्वाजः; ६ (२) ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः; ९ तिरश्चीराङ्गिरसः; १० सुतंभर आत्रेयः; १२, १९ नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ; १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; १५ नोधा गौतमः १६ मेध्यातिथिः काण्वः; १७ रेणुर्वैश्वामित्रः १८ कुत्स आङ्गिरसः; २० अगस्त्यो मैत्रावरुणः ॥ १—२ ७, १०, १३—१४ अग्निः; ३, ६, ८, ११, १५, १७—१८ पवमानः सोमः; ४, ५, ९, १२, १६, १९, २० इन्द्रः ॥ १—२, ७, १० १४, गायत्री; ३, ९, १९ (१—२) २० (२—३) अनुष्टुप्; ४, ६—१३ काकुभः प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); ५, १९ (३), बृहती; ८, ११, १५, १८ त्रिष्टुप्; १२, १६ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)। १७ जगती; २० (१) स्कन्धोग्रीवी बृहती ॥

सूक्त १

३ १२ ३१ २र ३१२
१३७९—उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।
३२ ३१२ ३२
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

(अध्वरम्) हिंसारहित उपासना-यज्ञ (उप प्रयन्तः) प्रारम्भ करते हुए हम उपासक, (अग्नये) प्रकाश-स्वरूप जगन्नेता के प्रति (मन्त्रम् वोचेम) मन्त्रोच्चारण करते हैं, जो जगन्नेता कि (आरे) दूर से दूर और समीप से समीप विद्यमान है, (च) और (अस्मे) हमारी स्तुतिवाणियों को (शृण्वते) सुनता है।

[आरे=आरात् दूर समीपयोः। शृण्वते=सुनना धर्म है चेतन का। अतः अग्नि पद प्राकृतिक अग्नि के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ। मन्त्र में अग्नि-पद परमात्म-वाचक है]

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१३८०—यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु।

१ २ ३ २ ३ १ २

अरक्षद्दाशुषे गयम्॥ २॥

(यः) जो प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (पूर्व्यः) अनादि है, सनातन है, और जो (सं जग्मानासु) उपासना के लिये संगत हुए, (स्नीहितीषु) तथा जगन्नेता के साथ सामगानों द्वारा स्नेह प्रकट करने वाले (कृष्टिषु) प्रजाजनों में से,—(दाशुषे), आत्मसमर्पण करने वाले के लिये,—उस के (गयम्) प्राणों की (अरक्षत्) रक्षा करता है,—"उस के प्रति हम मन्त्रोच्चारण करें" (१३७९)।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१३८१—स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः।

३ २उ ३ १ २

उतास्मान्पात्वꣳहसः॥ ३॥

(सः) वह (शन्तमः) अत्यन्त सुखस्वरूप (अग्निः) जगन्नेता (नः) हमारे (अमात्यम्) आध्यात्मिक (वेदः) धन अर्थात् मोक्ष की (रक्षतु) रक्षा करे, (उत) और (अंहसः) पापों से (अस्मान् पातु) हमारी रक्षा करे।

[अमात्यम्=अमा (The soul आपटे)। वेदः=धनम् (निघं. २।१०)]

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१३८२—उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि।

३ १ २र

धनञ्जयो रणेरणे॥ ४॥॥ १ (ति)॥

(उत) तथा (जन्तवः) जन्मधारी उपासक (ब्रुवन्तु) कहा करें कि हम में (वृत्रहा) पाप-वृत्रों का हनन करने वाला (अग्निः) सुपथ से आगे-आगे ले जाने वाला परमात्मा (उद् अजनि) प्रकट हुआ है। वह (रणे-रणे) हमारे देवासुर-संग्राम में (धनञ्जयः) हमारे आध्यात्मिक धन पर विजय पाता है, उस की रक्षा करता है।

॥ इति प्रथमः खण्डः॥ १॥ [धा० १९। उ० १। स्व० ३]

सूक्त २

१ २३ १ २र ३१२
१३८३—अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
२३१२ ३१२
अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे प्रकाशस्वरूप परमात्म-देव! (हि) निश्चय से (ये अश्वासः) जो इन्द्रियाश्व (तव) आप के ही दिये हुए हैं, उन्हें आप ही (युंक्ष्व) हमारे शरीर रथों में जोतिये । तभी वे इन्द्रियाश्व (साधवः) हमारी साधना को सफल करते हैं और (आशवः) शीघ्रता से हमें (अरम्) मोक्ष के समीप (वहन्ति) ले जाते हैं ।

[अरम्=near, at hand,present (आपटे)]

१ २ ३१ २३१ २र ३१२
१३८४—अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
२ ३१ २र
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ २ ॥

हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! (१३८३) (नः) हमारे (अच्छ) अभिमुख (आ याहि) प्रकट हूजिये, हमारे (प्रयांसि अभि) प्रयासों को लक्ष्य कर के दर्शन दीजिये। (देवान् आ वह) हमें दिव्य गुण प्राप्त कराइये (वीतये) हम में व्याप्त हो जाने के लिये, तथा (सोमपीतये) हमारे भक्तिरस का आस्वादन करने के लिये ।

१२ ३१ २र ३१२
१३८५—उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
२ ३ १ ३
शोचा वि भाह्यजर ॥ ३ ॥ ॥ २ (यी) ॥

(भारत) हे भरण-पोषण करने वाले! (अग्ने) हे प्रकाश-स्वरूप जगन्नेता! (द्युमत्) द्युतिसम्पन्न आप, (उद् शोच) हमारे हृदयों में खूब चमकिये । आप (अजस्रेण) न क्षीण होने वाली द्युति द्वारा (दविद्युतत्) सदा द्युतिमान् है । (अजर) हे जीर्ण न होने वाले परमात्मन् ! (वि भाहि) आप विशिष्ट रूपों में प्रकट हूजिये ।

[धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त ३

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१३८६—प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३ १ २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १ ॥

(अन्धसः [1]) अपने अन्नमयशरीर से (सुन्वानाय [1]) भक्तिरस प्रकट करने वाले उपासक के लिये, (तद्वचः) परमात्मा के प्रेरक वचन, (प्र वष्ट) प्रकाश प्रकट करते हैं। (मर्त्तः) भक्तिरस विहीन मरणधर्मा सामान्य मनुष्य,(तद्वचः) परमात्मा के प्रेरक वचनों का (न प्रवष्ट) प्रकाश नहीं पाता। ऐसे (अराधसम्) आराधना-हीन (श्वानम्) कुत्ते-समान ससार-लोभी तथा परस्पर द्वेषी व्यक्ति को,-- हे उपासको! (अप हत) अपने उपासना-यज्ञों से पृथक् रखो, (न) जैसे कि (भृगवः) परिपक्व योगी (मखम्) चञ्चल वृत्तियों वाले को योगाभ्यास से दूर रखते हैं।

[मखम्=मख् गतौ। वष्ट=वष्टि कान्तिकर्मा (निघं० २।६)]

२ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क २र

१३८७—आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।

१२ ३ १ २र ३ २ २र ३ १ २

सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम्॥ २॥

(जामिः) जो जन्म से ही उपासक हैं वह, (अत्के) पापों के प्रति वज्ररूप परमेश्वर में (आ अव्यत) पूर्ण-रक्षा पाता है, (न) जैसे कि (पुत्रः) जन्मा-पुत्र (ओण्योः) पृथिवी-लोक और द्युलोक समान वर्तमान माता-पिता की(भुजे) भुजाओं में रक्षा पाता है। वह उपासक (योनिम्) जगन्माता की गोद में (आसदम्) बैठने के लिये (सरत्) अग्रसर होता है, (न) जैसे कि (जारः) प्रेमी (योषणाम्) अपनी प्रेयसी की ओर अग्रसर होता, तथा वर विवाहार्थ (न) जैसे (योनिम्) बधू के घर की ओर अग्रसर होता है।

[जामिः=भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम् (योग १।१६)। योनि=गृह (निघं० ३।४)]

२ ३१ २३१२३ २उ ३ २ ३ १२

१३८८—स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।

१२ ३१२ ३१ २र ३ १ २

हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥३॥ ३(खै)॥

(यः) जो परमेश्वर (रोदसी) द्युलोक और भूलोक को (वि तस्तम्भ) अलग-अलग थामे हुए है, (सः) वह परमेश्वर, उपासक को (वीरः) विशेष प्रेरणाएं देता और (दक्षसाधनः) उस के आध्यात्मिक बल को सिद्ध करता है। (हरिः) प्रत्याहार-सम्पन्न उपासक (योनिम् आसदम्) जगद्-योनि की गोद में आ बैठने के निमित्त, (पवित्रे) पवित्र परमात्मा के आश्रय में (अव्यत) जाता है, (न) जैसे कि (वेधाः) सूर्य (योनिम्) जगद्-योनि की गोद में स्थित हो कर पवित्र परमात्मा का आश्रय पाए हुए है।

[वेधाः=The sun(आपटे)। वेधाः योनिम् "यत्राधि सूर उदितो विभाति, कस्मै देवाय हविषा विधेम" (यजु० ३२।७)]

[धा० २१। उ० २। स्व० ८]

---

(१) अथवा भक्तिरसरूपी अन्न को पैदा करने वाले। भक्तिरस, जीवात्मा का अन्न है।

सूक्त ४

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१३८९—अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

३ १ २ ३ १ २

युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (जनुषा) स्वभावतः, (सनात्) सदा से, (अभ्रातृव्यः) भाई-भतीजे से रहित, (अना) मानुष-चोले से रहित, (अनापिः) तथा अन्य रिश्तेदारी से रहित (असि) हैं। आप उस व्यक्ति को (आपित्वम्) अपना सम्बन्धी बनाना (इच्छसे) चाहते हैं, जो कि (युधा इत्) पापों के साथ युद्ध कर के आप का सम्बन्धी बनता है।

[वेदों में जीवात्मा और परमात्मा को सखा कहा है। सखा का अर्थ है "समान ख्याति वाले, समान प्रसिद्धि वाले। परमात्मा तो सदा से शुद्ध पवित्र है। जीवात्मा भी जब योगसाधनाओं द्वारा शुद्ध-पवित्र हो जाता है तब जीवात्मा और परमात्मा दोनों समान ख्याति वाले हो जाते हैं, सखा बन जाते हैं, सखा-पन के रिश्ते में बन्ध जाते हैं, परस्पर सम्बन्धी हो जाते हैं। परन्तु जीवात्मा तभी परमात्मा का रिश्तेदार बनता है, जब कि वह, अपने देवासुर-संग्राम में स्वयं युद्ध कर असुरों पर विजय पा लेता है। अना=अ+ना("नृ" का प्रथमैकवचन)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र

१३९०—न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥२॥४(पि)॥

हे परमेश्वर ! आप (रेवन्तम्) धन-लोलुप के साथ (सख्याय) सखिभाव (नकिः) किसी भी प्रकार से नहीं (विन्दसे) रखते, क्योंकि (ते) वे धन-लोलुप (सुराश्वः) सुरा की मस्ती में व्याप्त हुए (पीयन्ति) प्रजाजनों को कष्ट पहुँचाते रहते हैं। हे परमेश्वर ! (यदा) जब आप (नदनुम्) घोर-गर्जना (कृणोषि) करते हैं, और (समूहसि) जब आप इन का संहार करने लगते हैं, (आत् इत्) तदनन्तर ही आप, (पिता इव) हे पिता ! ऐसे कह कर (हूयसे) उन धन-लोलुपों द्वारा पुकारे जाते हैं।

[सुराश्वः=सुरा (शराब)+अशूङ् व्याप्तौ]

[धा० १५ । उ० १ । स्व० ३]

सूक्त ५

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

१३९१—आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ १ ३ १

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (हिरण्यये रथे) तेजोमय सूर्य-रथ में (युक्ता:) जुते हुए, (सहस्रम्) हज़ारों और (शतम्) हजार गुना सौ अर्थात् लाखों,(केशिन:) केशों की तरह फैले हुए प्रकाशमान रश्मिरूपी (हरय:) अश्व, (त्वा आ आ वहन्तु) आप का बार-बार आवाहन करते हैं,—जो अश्व कि(ब्रह्मयुज:) उपासकों को, आप-ब्रह्म के साथ, योग-विधि से युक्त करते हैं,—(सोमपीतये) ताकि आप उन के भक्तिरसों को स्वीकार करें।

[वेदों में सूर्य को सौर-मण्डल का केन्द्र माना है। परमेश्वर सर्वव्यापक है। तो भी वह केन्द्ररूपी सूर्य में स्थित हुआ, सूर्य द्वारा, सौर-मण्डल को नियन्त्रित कर रहा है। जैसे कि कहा है कि "योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म" (यजु० ४०।१७)। प्रातः काल उपासना-काल है, जब कि सूर्य की हजारों और लाखों किरणें आकाश की ओर उछलती हुई परमेश्वर के उपासना-काल का निर्देश करती हैं। इस समय उपासक, योगयुक्त समाधि में आसन जमाए हुए, अपने भक्ति-रसों को ब्रह्म के प्रति न्योछावर करते हैं।]

२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१३९२—आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये॥ २॥

हे परमेश्वर ! आप के (हिरण्यये) सुवर्णसदृशपीत (रथे) सूर्य-रथ में जुते हुए, (हरी) दो प्रकार के अश्व अर्थात् किरण-समूह,—जो कि (मयूरशेप्या) मयूर की पूंछ के सदृश विविध वर्णों वाले हैं, परन्तु (शितिपृष्ठा) जो परस्परस्पर्श अर्थात् मेल के कारण श्वेतवर्णी हैं,—वे, (त्वा) आप का(आ वहताम्) आवाहन करते हैं, आप को हम तक पहुँचाते हैं, आप का प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं, ताकि (विवक्षणस्य) स्तुतिवक्ता उपासक के (मध्व:) मधुर(अन्धस:) भक्तिरसरूपी अन्नरस का(पीतये) आप पान करें।

[हिरण्ययः—रात्रि के समय जो तारे दृष्टि-गोचर होते हैं, उन में से ग्रहों को छोड़ कर, शेष सभी सूर्य हैं। ये सूर्य सात प्रकार के वर्णों वाले हैं। लाल, नारंगी वर्ण, पीत, हरे, नीले, आसमानी वर्ण अर्थात् नील के पौदे से निकले "नील" के रंग वाले, और बैंगनी। इन्हें Red, orange, yellow, green, blue, indigo, तथा violet कहते हैं। हमारा सूर्य पीतवर्ण का है, जैसे कि सुवर्ण पीत रंग का होता है। हरी=सूर्य की किरणें दो प्रकार की होती हैं, प्रकाश देने वाली तथा ताप देने वाली। आ वहताम्=सूर्योदय काल में उपासना समाप्त होती है। अन्तर्ध्यानी उपासक जब ओ३म् के जप द्वारा परमेश्वर का ध्यान करता है तब उसे परमेश्वर का साक्षात्कार होता है (योग १।२९)। विवक्षणस्य=वच्+सन्+ल्युट्। यथा "विवक्षसे इति, वक्तेः साभ्यासात्" (निरु० अ० ३, पा० ३, खं० १३)]

२ ३ १ऽ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१३९३—पिबा त्व३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते॥ ३॥

॥ ५ (प)॥

(गिर्वणः) वेदवाणियों द्वारा भजनीय हे परमेश्वर ! (अस्य सुतस्य) इस उत्पन्न हुए भक्तिरस का (पिब तु) पान तो कीजिये, यह भक्तिरस आप के लिये (पूर्वया इव) पहिले पान के सदृश है। (परिष्कृतस्य) स्वच्छ और विशुद्ध तथा (रसिनः) रसीले और स्वादु भक्तिरस की (इयम्) यह (आसुतिः) प्रथम निष्पत्ति है, (चारुः) जो कि आप को रुचिकर है, और जो (मदाय) आप की प्रसन्नता के लिये (पत्यते) प्रस्तुत की जा रही है।

[उपासना में रत उपासक को जब प्रभु-दर्शन की प्रथम झलक मिलती है, उस समय उपासक अपने भक्तिरस को, प्रथम वार, प्रभु पर न्योछावर करता है, यही प्रभु का प्रथम पान है, उपासक द्वारा दिये भक्तिरस का पान है, स्वीकृति है]

[धा० २० । उ० १ । स्व० १]

सूक्त ६

१ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २र३ १२ ३ १२
१३६४—आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरँ रजस्तुरम्।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥

जो भक्तिरस (अश्वं न) अश्व के समान वेगप्रद है, उस (स्तोमम्) स्तुत्य, (अप्तुरम्) सत्कर्मों में प्रेरक, (रजस्तुरम्) रजोगुणविनाशी, (वनप्रक्षम्) भक्तों में निवास करने वाले, (उदप्रुतम्) जल के सदृश, परमेश्वर के प्रति, प्रवाहित होने वाले भक्तिरस को,—हे उपासको ! (आ सोत) तुम उत्पन्न करो, और उसे (परि षिञ्चत) सर्वत्र सींच दो।

[वन=संभक्तौ]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१३६५—सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ २ ॥
॥ ६ (या) ॥

(यः) जो भक्तिरस (ऋतजातः) सत्यानुष्ठान से प्रकट होता, (राजा) सब रसों का राजा है, (देवः) दिव्य है, (ऋतेन) सत्यानुष्ठान द्वारा (बृहत् ऋतम्) महान् तथा सत्य स्वरूप मोक्ष की (वि वावृधे) विशेष वृद्धि करता है, उस (सहस्रधारम्) हजारों उपासकों में धारारूप में प्रवाहित होने वाले, (वृषभम्) सुखवर्षी, (पयोदुहम्) जीवन में सार भूत, (प्रियम्) परमेश्वर के प्रिय भक्तिरस को,—(देवाय जन्मने) अपने जन्मों को दिव्य बनाने के लिये (आ सोत) उत्पन्न करो।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त ७

३ २३ १ २ ३ १२३ १२
१३९६—अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
१२ ३१ २र
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥

(विपन्यया) भक्ति के आहुत स्तुतियों द्वारा (समिद्धः) सम्यक् रूप में प्रकट, (शुक्रः) शुचि, (आहुतः) आत्मसमर्पण की आहुति को प्राप्त, (द्रविणस्युः) उपासक के लिये आध्यात्मिक धन चाहता हुआ (अग्निः) सर्वाग्रणी परमात्मा, (वृत्राणि) उपासक के पापों का (जङ्घनत्) सर्वथा विनाश करता है ।

१२३२ ३२ ३१ २ ३ २ ३१२
१३९७—गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
१२ ३२ ३ २ ३ २
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

हे सर्वाग्रणी ! आप (मातुः) मेरी माता के गर्भ में भी विद्यमान हैं, (पितुः पिता) मेरे पिता के भी पिता हैं, आप (अक्षरे) न क्षीण होने वाली मेरी आत्मा में (वि दिद्युतानः) विद्युत् के समान चमक रहे हैं, और (ऋतस्य) सत्यज्ञान की (योनिम्) वेद माता की गोद में (आ सीदन्) स्थित हैं ।

१२ ३२३१ २३ १२ ३ १२
१३९८—ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
२ ३ २३१२३२
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३ ॥ ॥ ७ (व) ॥

(जातवेदः) हे वेदों के उत्पादक ! (वि चर्षणे) हे सर्वद्रष्टा !, (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप सर्वाग्रणी !, (यत्) जो आप (दिवि) द्युलोक में (दीदयत्) चमक-दमक रहे हैं, वे आप, हमें (प्रजावत्) उत्तम सन्तानों समेत (ब्रह्म) ब्रह्मोपासना की भावना और वेदज्ञान (आ भर) प्रदान कीजिये ।

[धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त ८

३ २ ३२ ३१२ ३१२ ३२ ३२३ १२ ३१२
१३९९—अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
३२ ३२३ १२३ १२ ३२३१२ ३२ ३१२
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ १ ॥

(अस्य) इस प्रभु की (हेमना) वृद्धिदायक (प्रेषा) प्रेरणाओं द्वारा (पूयमानः) पवित्र होता हुआ (देवः) दिव्य उपासक, (देवेभिः) अन्य दिव्य उपासकों के साथ मिलकर, उन के भक्तिरसों के साथ (रसम्) अपने भक्तिरस का (समपृक्त) मेल करता है, संतुलन करता है । (सुतः) नवीन आध्यात्मिक जीवन का उपासक,

(रेभन्) प्रभु के भक्तिगान करता हुआ, (पवित्रम्) पवित्र प्रभु को (पर्येति) पूर्णतया प्राप्त कर लेता है। और (इव) जैसे गोस्वामी (मिता) निर्मित (पशुमन्ति सद्म) गोशाला में (पर्येति) स्वेच्छापूर्वक जाता है, वैसे (होता) उपासना-यज्ञ में आत्माहुति देने वाला उपासक, स्वेच्छया (पर्येति) प्रभु के पास पहुंच जाता है।

३ १ २र ३ २ ऽ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४००—भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शँ॑सन्।
१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ॥२॥

(महान् कविः) महाकवि उपासक, (भद्रा समन्या) भद्र और सामाजिक जीवनोचित (वसानः) वस्त्रों को धारण करता हुआ, (निवचनानि शंसन्) प्रवचन-योग्य वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ (पूयमानः) अपने आप को पवित्र करता रहता है। हे वेदकाव्य के प्रवक्ता महाकवि उपासक! (विचक्षणः) सब पर कृपादृष्टि रखते हुए, और (जागृविः) अपने कर्तव्य में सदा सावधान रहते हुए आप, (देववीतौ) दिव्य गुणों की प्राप्ति के निमित्त, (चम्वोः) द्युलोक और भूलोक के मध्य विद्यमान सब नर-नारियों में (आ वच्यस्व) सर्वत्र प्रवचन करते रहिये।

[समन्या=समनयोग्यानि। समन=सम् + अन् (प्राणन, जीवन)]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१४०१—समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥३॥ ॥ ८ (रि)॥

महाकवि (१४००) उपासक, (प्रियः) सब का प्यारा बन कर, (उ) निश्चय से (सं मृज्यते) अपने आप का सम्यक् मार्जन करता, और (अव्ये) रक्षक परमेश्वर द्वारा रक्षणीय भूमण्डल में (अस्मे) हमें (सानः) उपदेश प्रदान करता है। वह (यशसाम्) यशस्वियों में (यशस्तरः) सर्वाधिक यशस्वी, और (क्षैतः) क्षिति अर्थात् पृथिवी में ख्याति वाला हो जाता है। हे महाकवि उपासक! आप (धन्वा) प्रणव-जप द्वारा (पूयमानः) अपने आप को पवित्र करते हुए (अभि स्वर) सर्वत्र प्रचार कीजिये। हे प्रजाजनो! (यूयम्) आप सब (स्वस्तिभिः) कल्याणमार्गों द्वारा (सदा नः पात) सदा हम उपासकों की रक्षा करते रहिये।

[सानः=षणु दाने। धन्वा=प्रणवो धनुः (मुण्डक. २।२।४)। धन्वा=धनुषा]

[धा० १८। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ९

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१४०२—एतो न्विन्द्रँ॑ स्तवाम शुद्धँ॑ शुद्धेन साम्ना।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाँ॑सँ॑ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु॥ १॥

हे उपासको ! (नु) शीघ्र (एत उ) आओ, (शुद्धेन साम्ना) विशुद्ध स्वर-मात्रा वाले सामगान द्वारा (शुद्धम् इन्द्रम्) शुद्ध-पवित्र परमेश्वर का (स्तवाम) हम स्तवन करें। (शुद्धैः उक्थैः) स्वर-मात्रा से विशुद्ध सूक्तों के द्वारा (वावृध्वांसम्) हमारी वृद्धि करने वाले परमेश्वर का हम स्तवन करें। (शुद्धैः) विशुद्ध सूक्तों तथा विशुद्ध सामगानों द्वारा परमेश्वर हमें (आशीर्वान्) आशीर्वाद देता है, और (ममत्तु) अत्यन्त प्रसन्न होता है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४०३—इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।
३ २ ३ १ २र ३ १ २
शुद्धो रयिं वि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (शुद्धः) आप शुद्ध पवित्र हैं, (नः) हमें आप (आ गहि) प्राप्त हूजिये। (शुद्धः) आप शुद्ध हैं, (शुद्धाभिः ऊतिभिः) आप अपनी पावनी रक्षाओं द्वारा हमारी रक्षा कीजिये। (शुद्धः) आप शुद्ध हैं, (रयिम्) शुद्ध-सम्पत्ति (नि धारय) हमें प्रदान कीजिये। (सोम्य) हे हमारे भक्तिरस के पात्र ! (शुद्धः) आप पावन (ममद्धि) हम पर सदा प्रसन्न रहें।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१४०४—इन्द्र शुद्धो हि नो रयिँ् शुद्धो रत्नानि दाशुषे।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजँ् सिषाससि ॥३॥६(यी)॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (हि) निश्चय से (शुद्धः) शुद्ध हैं, (नः) हमें (रयिम्) विशुद्ध धन, सत्पथ से कमाया धन, प्रदान कीजिये। (शुद्धः) पावन और पवित्र आप, (दाशुषे) दानी को, (रत्नानि) नानाविध रत्न प्रदान करते हैं। (शुद्धः) आप शुद्ध-पवित्र (वृत्राणि) हमारे अपवित्र पापों का (जिघ्नसे) हनन करते हैं, (शुद्धः) आप शुद्ध पवित्र हमें (वाजम्) विशुद्ध बल (सिषाससि) प्रदान करना चाहते हैं।

इति तृतीय खण्डः ॥ ३ ॥ [धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त १०

३ ३ १र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४०५—अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः।
३ १ २ ३ १ २
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥

(द्रविणस्यवः) आध्यात्मिक सम्पत्तियां चाहने वाले हम उपासक,—(दिविस्पृशः) द्युलोक स्पर्शी (देवस्य अग्नेः) देवाधिदेव प्रकाशस्वरूप जगन्नेता के (स्तोमम्) स्तुति गानों को, (अद्य) अब से, हम (सिध्रम्) अभीष्ट साधक (मनामहे) मानने लग पड़े हैं।

३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ ९२३ २
१४०६—अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।
१ २ ३ २ ३ १ २
स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ २ ॥

(अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (नः) हमारी (गिरः) स्तुतिवाणियों को (जुषत) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता हैं, (यः) जो परमेश्वर कि (मानुषेषु) मनुष्यों मे (आ) सब से बढ़ कर (होता) दाता है (सः) वह, (दैव्यं जनम्) परमात्म-देव के उपासक जन को (यक्षत्) अपने उपासना-यज्ञ में सफल करे।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१४०७—त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
१ २ ३ १ २र
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥ ॥ १० (रि) ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! (त्वम्) आप (सप्रथाः) विस्तृत आकाश आदि के स्वामी हैं, (जुष्टः) सर्वप्रिय तथा सर्वसेवित हैं, (होता) सब के दाता तथा (वरेण्यः) सब द्वारा वरणयोग्य (असि) हैं। (त्वया) आप की सहायता द्वारा उपासक (यज्ञम्) उपासना-यज्ञों का (वि तन्वते) विस्तार करते हैं।

[धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त ११

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४०८—अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ १ ॥

(त्रिपृष्ठम्) तीन लोकों के साथ स्पर्श किये हुए, (वृषणम्) सुखवर्षी, (वयोधाम्) जीवन प्रदाता, (अङ्गोषिणम्) अंग-प्रत्यङ्ग में उष्णता देने वाले परमेश्वर का, (वाणीः) वेदवाणियां (अभि) साक्षात् (अवावशन्त) वार-वार वर्णन करती हैं। (वना) मेघीय जलों में (वसानः) बसा हुआ (वरुणः) विद्युत् (न) जैसे (सिन्धुः) जलों का स्पन्दन करता है, वैसे (रत्नधाः) रमणीय पदार्थों का धारण-पोषण करने वाला प्रभु (वार्याणि) वरणीय श्रेष्ठ पदार्थों का (वि दयते) विविध दान कर रहा है।

[वनम्=उदकम् (निघं. १।१२)। पृष्ठम्=स्पृशतेः (निरु. ४।१।३)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४०९—शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (शूरग्राम: सर्ववीरः) आप के सब उपासक शूर और वीर हो जाते हैं, आप (सहावान्) सहनशील, तब भी (जेता) सर्वविजयी हैं, आप (धनानि) सांसारिक और आध्यात्मिक धन (सनिता) प्रदान करते, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधों वाले, (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रप्रहारी, (समत्सु) देवासुर संग्रामों में (अषाढः) पराभूत न होने वाले, (पृतनासु) काम क्रोध आदि की सेनाओं में (शत्रून्) इन शत्रुओं का (साह्वान्) पराभव करते हैं,—(पवस्व) इन कामादि शत्रुओं से हमें बचा कर हमें पवित्र कर दीजिये।

[ग्राम:=समूह; multitude (आपटे)। तिग्मायुधः=अधिक गर्मी, अधिक सर्दी, आग लगना, जल प्रलय, रोग, मृत्यु आदि परमेश्वर के आयुध हैं]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

१४१०– उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी।

३ १ २र ३ २ ३ २ १ २र ३ २ ३ २ ३

अपः सिषासन्नुषसः स्व३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं

१ २

वाजान्॥ ३॥॥ ११ (५)॥

हे परमेश्वर ! सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों को (अभयानि कृण्वन्) निर्भय करते हुए आप ने (उरुगव्यूतिः) इन के जाने-आने के मार्ग विस्तृत रचे हैं, आप के रचे (पुरन्धी) द्युलोक और भूलोक (समीचीने) यथोचित और प्रशंसनीय हैं। (अपः) जलों, (उषसः) उषाओं, (स्वः) सांसारिक सुख, (गाः) गौएँ, (महः वाजान्) तथा अन्य प्रकार की नानाविध शक्तियां (सिषासन्) प्रदान करते हुए आप ने (गाः) वेद-वाणियों का भी (अस्मभ्यम्) हमें (सम्) सम्यक् (चिक्रदः) उपदेश किया है, (आ पवस्व) आप हमें पवित्र कीजिये।

[पुरन्धी=द्यावापृथिव्यौ (निघं० ३।३०)]

[धा० ३०। उ० १। स्व० ६]

सूक्त १२

१ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २

१४११—त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं वृत्राणि हं॒स्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः॥ १॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप ही एकमात्र (यशाः असि) यशस्वी हैं, (ऋजीषी) आप ऋजु अर्थात् सत्यमार्ग के अभिलाषी हैं, (शवसस्पतिः) बलों के स्वामी हैं। (त्वम्) आप (वृत्राणि) पापों का (हंसि) हनन करते हैं, (अप्रतीनि) वे पाप आप की प्रतिद्वंद्विता में ठहर नहीं सकते। (एक इत्) आप एक ही हैं। (पुरु) परिपूर्ण हैं, (अनुत्तः) किसी द्वारा प्रेरित नहीं हैं, (चर्षणीधृतिः) सब प्रजाओं के परिपालक हैं।

["तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयः" (अथर्व० ८।४।१२)। अर्थात् ऋजुमार्ग= सत्यमार्ग। ऋजीषी=ऋजु+इष् (इच्छा)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १

१४१२—तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १

महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥२॥

॥ १२ (त) ॥

(असुर) हे प्राणों-प्रज्ञाओं-और-वस्तुओं के स्वामी ! (तम् उ त्वा) उस आप (प्रचेतसम्) प्रज्ञावान् से, (नूनम्) निश्चय से, (राधः) आध्यात्मिक आराधना धन (ईमहे) हम चाहते हैं, (भागम् इव) जैसे कि सन्तानें अपने पिता से अपने अपने भाग को चाहती हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (इव) जैसे (मही) महान् द्युलोक और पृथिवीलोक (ते) आप के (शरणा) शरण में हैं, वैसे (कृत्तिः) सब प्रकार के यश आप के शरणागत हुए-हुए हैं। (ते) आप की (सुम्ना) प्रसन्नताएँ (नः) हमें (प्र अश्नवन्) प्राप्त रहें।

[असु=प्रज्ञा, प्राण, वसु (निरु० १०।३।३४)। सुम्ना=सौमनस्य; सु+मनस्। मही=द्यावापृथिव्यौ (निघं० ३।३०)। कृत्तिः=यशो वा अन्नं वा (निरु० ५।४।२२)]

[घा० १४। उ० १। स्व० १]

सूक्त १३

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

१४१३—यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

(यजिष्ठम्) उपासना-यज्ञों में अत्यन्त पूजनीय, (देवत्रा देवम्) देवों में महादेव, (होतारम्) महादानी, (अमर्त्यम्) अमर, (अस्य यज्ञस्य) इस उपासना यज्ञ को (सुक्रतुम्) सफल करने वाले (त्वा) आप का,—हे परमेश्वर ! (ववृमहे) हम वरण करते हैं।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१४१४—अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥२॥

॥ १३ (ता) ॥

(अपाम्) अपने कर्ममार्गों से हमें (न पातम्) न पतित होने देने वाले, (सुभगम्) उत्तम ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान से सम्पन्न, (सु दीदितिम्) सुप्रकाशमान, (श्रेष्ठ शोचिषम्) अद्भुत चमक वाले, (अग्निम्) सुपथ पर चलाने वाले परमेश्वर का (उ) ही (ववृमहे) हम वरण करते हैं (१४१३)। (सः) वह परमेश्वर (नः) हमें (दिवि) द्युलोक में स्थित (मित्रस्य) सूर्य का, (वरुणस्य) हमें घेरे हुए वायु का, (अपाम्) पृथिवीस्थ जलों का (सुम्नम) सुख (आ यक्षते) प्रदान करता है।

[यक्षते=यज् देव-पूजा, संगतिकरण, दान]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [घा० १४। उ० १। स्व० २]

सूक्त १४

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
१४१५—यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! (पृत्सु) देवासुर-संग्रामों में (यं मर्त्यम्) जिस मरणधर्मा उपासक की (अवाः) आप रक्षा करते हैं, (यम्) और जिस को (वाजेषु) बलों की प्राप्ति के निमित्त आप (जुनाः) प्रेरित करते हैं, (सः) वह उपासक (शश्वतीः) शाश्वतिक (इषः) अभीष्टों का (यन्ता) नियन्ता हो जाता है, स्वामी बन जाता है ।

१ २ ३ १ २र
१४१६—न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
१ २ ३ १ २
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥

(सहन्त्य) हे आसुरी-भावनाओं का पराभव करने वाले ! आप के (अस्य) इस, या (कयस्य चित्) किसी भी उपासक को (न किः) कोई भी आसुर-शक्ति नहीं (पर्येता) घेर सकती । आप के उपासक का (वाजः) बल (श्रवाय्यः) श्रवण-योग्य (अस्ति) हो जाता है ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४१७—स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
१ २ ३ १ २
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ ॥ १४ (ठा) ॥

(सः विश्वचर्षणिः) वह विश्वद्रष्टा, (अर्वद्भिः) प्रेरणाप्रद (विप्रेभिः) विप्रों द्वारा, (वाजम्) देवासुर-सग्रामों से (तरुता अस्तु) हमें तैरा देता है, पार कर देता है, और इस निमित्त (वाजम्) बल (सनिता अस्तु) प्रदान करता है ।

[वाज=Battle (आपटे) ; वाज=बल (निघं० २।९) । अर्वद्भिः= अर्व (गतौ)]

[प्रा० १८ । उ० २ । स्व० २]

सूक्त १५

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१४१८—साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

(धीरस्य) ध्यानी उपासक की (दश धीतयः) दस शक्तियां, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों की ५ ज्ञानशक्तियां, तथा कर्मेन्द्रियों की ५ कर्मशक्तियां (मर्जयन्त) जब

मार्जन-विधि द्वारा शुद्ध हो जाती हैं, और (धनुत्रीः) प्रणवरूपी धनुष की सहायता से सब का त्राण करने लगती हैं, और जब ये (स्वसारः) बहिनों के सदृश (साकम्) एकमत होकर (उक्षः) प्रभु के प्रति अपने ज्ञानों और कर्मों को सींचती हैं, समर्पित करती हैं, तब (सूर्यस्य) आध्यात्मिक सूर्य का (जाः) जन्मदाता (हरिः) क्लेशहारी प्रभु (पर्यद्रवत्) परिद्रवित हो जाता है, दयार्द्र हृदय हो जाता है, और (द्रोणम्) हृदय-गृह में (वाजी) वेगवान् हो कर (ननक्षे) प्रकट हो जाता है, (अत्यः न) जैसे कि वेगवान् अश्व उद्दिष्ट स्थान में शीघ्रता से पहुँच जाता है। (मन्त्र ५३८; ५३४)।

२ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २
१४१९—सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥

(न) जैसे (मातृभिः) माताओं द्वारा (शिशुः) शिशु का (सं दधन्वे) सम्यक् धारण-पोषण होता है, वैसे (वावशानः) प्रभु की कामना वाले, (वृषा) और प्रभु पर भक्तिरस की वर्षा करने वाले उपासक का धारण-पोषण, (अद्भिः) उस की दीक्षा के समय जलाभिषेक विधि से, अध्यात्मगुरुओं द्वारा होता है। तदनन्तर वह उपासक (पुरुवारः) बुरे कर्मों से अपने आप को बहुत निवारित करता रहता है। तथा (न) जैसे (मर्यः) पति (योषाम् अभियन्) अपनी पत्नी की ओर जाता हुआ (सं गच्छते) उस का संग करता है, वैसे उपासक (निष्कृतम् अभि यन्) स्वच्छ परमेश्वर की ओर जाता हुआ, (कलशे) हृदय-घट में, (उस्रियाभिः) परमेश्वर की प्रकाशमयी ज्योतियों के (सं गच्छते) साथ संगत हो जाता है।

[वावशानः=वश कान्तौ। कान्ति=कामना, इच्छा]

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१४२०—उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥ ॥ १५ (वृ ॥)

(उत) और जैसे बछड़ा पास आ जाने पर (अघ्न्यायाः) गौ का (ऊधः) सुहाना (प्र पिप्ये) दूध से भर जाता है, वैसे ही उपासक जब परमेश्वर के समीप हो जाता है, तब (इन्दुः) चन्द्रसमशीतल तथा (सुमेधाः) अनुग्रहसम्पन्न प्रज्ञा वाला परमेश्वर, (धाराभिः) अपनी आनन्दरसमयीधाराओं समेत, (सचते) उपासक के साथ सम्बन्ध पैदा कर लेता है। तथा (न) जैसे (गावः) गौएँ (मूर्धानम्) बछड़ों के सिरों को चाटती हुईं (पयसा) दूध द्वारा (अभि श्रीणन्ति) उसे परिपक्व अवस्था में ला देती है, वैसे (चमूषु) देवासुर-संग्रामों में परमेश्वर (निक्तैः) विशुद्ध और परिपुष्ट (वसुभिः) आध्यात्मिक सम्पत्तियों के प्रदान द्वारा, उपासक को, परिपक्व कर देता है।

[धा० ३०। उ० नास्ति। स्व० ६]

सूक्त १६

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४२१—पिबा सुतस्व रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १२ ३१२३२ऽ १ २ ३ १२
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ ऽस्मां॑ अवन्तु ते धियः ॥१॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सुतस्य) उत्पन्न हुए (रसिनः) हमारे रसीले भक्तिरस का (पिब) आप पान कीजिये, और (गोमतः) हम इन्द्रियसंयमियों को (मत्स्व) प्रसन्न कीजिये। (सधमाद्ये) पारस्परिक आनन्द में (नः) हमारे आप (आपिः) बन्धु बन चुके हैं। (बोधि) हमारी इस भावना को आप जानिये। (ते) आप की (धियः) अनुग्रहबुद्धि और अनुग्रहात्मक कर्म (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें, (वृधे) ताकि योगमार्ग में हमारी वृद्धि हो सके।

[सधमाद्ये=उपासक के भक्तिरस का आनन्द परमेश्वर लेता है, और परमेश्वर के आनन्दरस का आनन्द उपासक लेता है]

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१४२२—भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्मां चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥
॥ १६ (ल) ॥

हे परमेश्वर ! (ते) आपकी दी (सुमतौ) सुमति में रहकर (वयम्) हम (वाजिनः) बलशाली (भूयाम) बनें; (अभिमातये) अभिमान के वशीभूत हमें (मा) न होने दीजिये, अपितु (स्तः) उस पर परदा डाले रखिये। (चित्राभिः) अपनी अद्भुत (अभिष्टिभिः) अभीष्ट शक्तियों द्वारा (अस्मान् अवतात्) हमारी रक्षा करते रहिये, (नः) हमें, इस प्रकार (सुम्नेषु) सुखों में (आ यामय) बान्धे रखिये। [स्तः=स्तृ=आच्छादने]

[धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १७

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
१४२३—त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत
॥ १ ॥

(सप्त धेनवः) मुख्य ७ छन्दों वाली वेदवाणियां, (अस्मै) इस उपासक के लिये, (परमे व्योमन्) श्रेष्ठ हृदयाकाश में स्थित परमात्मा से, (त्रिः) दिन रात में तीन वार, (सत्याम् आशिरम्) यथार्थ आशीर्वाद (दुदुह्रिरे) दोहती हैं, उपासक को प्राप्त कराती हैं। (यद्) और जब (ऋतैः) सत्यानुष्ठानों द्वारा (अवर्द्धत) जीवात्मा योगमार्ग में वृद्धि पाता है, तब (निर्णिजे) चित्त के रजोगुण-और-तमोगुण हटा कर

अत्यन्त शुद्धि के लिये, इस जीवात्मा के (अन्या) अन्य (चत्वारि भुवना) चार भुवनों को (चारूणि चक्रे) परमात्मा सुचारु कर देता है।

[देखो मन्त्र संख्या ५६०]

१ २र ३१२३१२ ३२उ ३ १ २३ १ २
१४२४—स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे।
१२ ३२३ २३१२ ३१२३२३ १२३ १२
तेजिष्ठा अपो मँहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो
३२
विदुः ॥ २ ॥

(चारुणः) सुन्दर तथा रुचिकर (अमृतस्य) भक्तिरसरूपी अमृत का (भक्षमाणः) आ स्वाद लेता हुआ (सः) वह परमेश्वर, उपासक के प्रति, (काव्येन) वेदकाव्य के द्वारा, (उभे द्यावा) द्युलोक-और-भूलोक, इन दोनों के रहस्यों को, (विशश्रथे) विशेष रूप में खोल देता है। (यद् ई) और जब ही (श्रवसा) कीर्त्ति से सम्पन्न (देवस्य) परमेश्वर देव की (सदः) असली स्थिति को उपासक (विदुः) जान लेते हैं, तब ये उपासक, (मंहना) महिमा सम्पन्न होकर, (तेजिष्ठाः अपः) समुज्वल कर्मों की ओढ़नी (परिव्यत) ओढ़ते हैं।

१ २ ३१ २र३१२ ३१२ ३१ २र
१४२५—ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।
१२३ १ २ ३क २र ३१ २र ३१२
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत
॥ ३ ॥ ॥ १७ (चे) ॥

(येभिः) जिन उपासकों द्वारा, परमेश्वर, (नृम्णा) सांसारिक सम्पत्तियों और (देव्या) दिव्य सम्पत्तियों को (पुनते) पवित्र करता है, (अस्य) इस परमेश्वर के (ते) वे उपासक, (केतवः) सम्यक्-ज्ञानी, (अमृत्यवः) जीवन्मुक्त, तथा (अदाभ्यासः) कामक्रोध आदि से दबने वाले नहीं होते, (जनुषी) उत्पन्न हुई (उभे) दोनों शक्तियां अर्थात् सांसारिक-और-दिव्यशक्तियां इस उपासक के (अनु सन्तु) अनुकूल हो जाती हैं। (आत् इत्) तदनन्तर ही (मनना) मननशील उपासक (राजानम्) जगत् के अधिराज की सत्ता को (अगृभ्णन्) स्वीकार करते हैं।

[साधारण व्यक्ति सांसारिक विभूतियों का प्रयोग अपवित्र रूप में भी करते हैं। परन्तु उपासनाओं में रत श्रेष्ठ उपासक हो उपर्युक्त दो प्रकार की विभूतियों का प्रयोग पवित्रता से करना सिखाते हैं]

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥ [धा० ३२। उ० १। स्व० ७]

सूक्त १८

३ २ ३ २ ३क २र ३ २ऽ २ ३१ २र ३१२
१४२६—अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः।
३१ २र३१२ ३ २३२३ १२३१२
अभी नरं धीजवनँ रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ १ ॥

हे उपासक ! (गृणानः) परमेश्वर की स्तुति करता हुआ तू, (वीती) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, उसके (वायुम्) वायुस्वरूप को, प्राणस्वरूप को (अभि अर्ष) जान। (पूयमानः) परमेश्वर द्वारा पवित्र किया जा कर तू उसके (मित्रावरुणा) मित्र रूप को तथा पापनिवारक श्रेष्ठ स्वरूप को (अभि) जान। तथा (रथेष्ठाम्) तेरे शरीर-रथ में स्थित (नरम्) उस नेता के (धीजवनम्) बुद्धिप्रेरक तथा कर्मप्रेरक स्वरूपों को (अभि) पहचान, और (वज्रबाहुम्) जिसके हाथ में न्यायवज्र है या आसुरी-शक्तियों के विनाश करने का वज्र है उस (वृषणम्) सुखवर्षी (इन्द्रम्) परमेश्वर की ओर तू (अभि अर्ष) प्रगति कर।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४२७—अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव सोम॥२॥

हे उपासक ! परमेश्वर के इन स्वरूपों को जान कर तू (सुवसनानि) उत्तम पहनने योग्य (वस्त्रा) वस्त्रों को (अभि अर्ष) हम से प्राप्त कर, (पूयमानः) पवित्र किया जा रहा तू (सुदुघाः धेनूः) सुगमता से दुही जाने वाली गौओं को (अभि अर्ष) प्राप्त हो। (भर्तवे) भरण-पोषण के लिये (नः) हमारे (चन्द्रा हिरण्यानि) चान्दी और सोने रूपी धनों को (अभि अर्ष) प्राप्त कर, (देव सोम) हे भक्तिरस से आप्लुत उपासक-देव ! (रथिनः अश्वान्) रथों में जुतने वाले अश्वों को (अभि अर्ष) प्राप्त कर।

[प्रजा द्वारा सच्चे उपासक की सेवा का वर्णन है]

३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
१४२८—अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः॥ ३॥
॥ १८ (खे)

हे उपासक ! हमारी सेवाओं को प्राप्त कर के तू (नः) हमें (दिव्या वसूनि) दिव्य अर्थात् योगसाधना द्वारा प्राप्त होने वाली (वसूनि) आध्यात्मिक-सम्पत्तियां (अभि अर्ष) प्राप्त करा, (पूयमानः) अपने आपको पवित्र करता हुआ तू (विश्वा पार्थिवा) सब प्रकार की सांसारिक-सम्पत्तियां भी (अभि अर्ष) हमें प्राप्त करा। तथा (येन) जिन साधनों द्वारा हम (द्रविणम्) सम्पत्तियां (अश्नवाम) प्राप्त कर सकें (अभि अर्ष) उन साधनों को भी हमें (अभि अर्ष) प्राप्त करा। और (जमदग्निवत्) जिसने अपने में परमेश्वरीय-अग्नि को प्रज्वलित कर लिया है उसके सदृश, (आर्षेयम्) आर्ष-सम्पत्तियां भी (अभि अर्ष) हमें प्राप्त करा।

[जमदग्नि = जमदग्नयः प्रज्वलिताग्नयः (निरु० ७।७।२५)]

[धा० २१। उ० २। स्व० ७]

सूक्त १९

१ २र ३ १ २ ३ १ २
१४२९—यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ १ ॥

(अपूर्व्य) हे कारणविहीन अनादि (मघवन्) परमेश्वर ! (यत्) जो आप (वृत्रहत्याय) पाप-वृत्रों के हनन के लिये (जायथा:) हमारे हृदयों में प्रकट हुए हैं, (तत्) उस आपने ही (पृथिवीम्) पृथिवी को (अप्रथय:) फैलाया है, (उत) तथा (उ) निश्चय से (तद्) उस आपने ही (दिवम्) द्युलोक को (अस्तभ्ना:) थाम रखा है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
१४३०—तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
१ २र ३ १ २ ३ ३ २उ ३ १ २र
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (ते) आपके निमित्त किये जाने वाले (यज्ञ:) यज्ञिय-कर्म (तत्) उस आप से ही (अजायत) वेद द्वारा प्रकट हुए हैं, (तत्) उस आपसे ही (अर्क:) सूर्य प्रकट हुआ है, (उत) और (हस्कृति:) दिन की कृति अर्थात् रचना हुई है। (तत्) उस आपने (विश्वम्) विश्व पर (अभिभू: असि) विजय पाई हुई है, (यत्) जो विश्व कि (जातम्) उत्पन्न हुआ है, (यत् च) और जो कि (जन्त्वम्) भविष्य में उत्पन्न होगा।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
१४३१—आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ३ ॥
॥ १९ (पे) ॥

हे परमेश्वर ! आपने (आमासु) कच्चे-मांस वाली गौओं में (पक्वम्) पके धारोष्ण दूध को, या वृक्षों की कच्ची-शाखाओं में पके फलों को (ऐरय:) प्रेरित किया है, तथा (घर्मं न) प्रदीप्त अग्नि के सदृश गर्म (सूर्यम्) सूर्य को, आपने, (दिवि) द्युलोक में (आ रोहय:) चढ़ाया है। हे उपासको ! (तपता) तपश्चर्या से सम्पन्न हो कर, (गिर्वणसे) वेदवाणियों द्वारा भजनीय परमेश्वर के लिये, (सुवृक्तिभि:) दोषवर्जित स्वरों द्वारा, (जुष्टम्) अपने प्रिय (बृहत् सामम्) महा-साम-गानों को गाया करो।

[घा० ३० । उ० १ । २व० ७]

सूक्त २०

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१४३२—मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

(हरिवः) हे हमारे इन्द्रियाश्वों के स्वामिन् !, (मत्सरः) मुझ से प्रवाहित (मदः) तृप्तिदायक भक्तिरस, (महः पात्रस्य इव) महापात्र के सदृश वर्तमान (ते) आपके लिये भेंट हैं। (अपायि) आपने इसे स्वीकार किया है। अतः आप मुझ पर (मत्सि) प्रसन्न हूजिये। तथा (वृष्णः) आनन्दरस वर्षी (ते) आपका जो (वृषा) शक्तिशाली, (इन्दुः) चन्द्रसमान शीतलता देने वाला, (वाजी) उपासना में प्रगति देने वाला, (सहस्रसातमः) तथा हजारों प्रकार की शक्तियां देने वाला आनन्द रस है, उसे प्रतिफल-रूप में मुझे प्रदान कीजिये।

पात्रस्य=पात्र=A fit or worthy person, a person fit for worthy to receive gifts (आपटे)।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
१४३३—आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (मत्सरः) हर्षस्रावी, (वृषा) सुखवर्षी, (वरेण्यः) स्वीकरणीय, (सहावान्) सहनशक्तिप्रदायी, (सानसिः) भक्ति का उत्पादक, (पृतनाषाट्) काम क्रोध आदि शत्रुसैनिकों को पराजित करने वाला (अमर्त्यः) तथा अमर,—(ते) आप का (मदः) आनन्दरस, (नः) हमें (आ गन्तु) प्राप्त हो।

[सानसिः=षणु दाने]

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४३४—त्वँ हि शूरः सनिता चोदयो मनुषा रथम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥ ॥२० वि॥

हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (हि) निश्चय से (शूरः) शूर हैं, (सनिता) दाता हैं, आप (मनुषः रथम्) मननशील मुझ उपासक के शरीर-रथ में (चोदयः) प्रेरणाएं दीजिये। (सहावान्) आप कामादि का पराभव करते हैं; (अव्रतम्) व्रतों से रहित (दस्युम्) और प्रजाक्षयकारी व्यक्ति को (ओषः) दुःखों और कष्टों की अग्नि द्वारा जलाते हैं, (न) जैसे कि अग्नि (शोचिषा) अपनी ज्वाला द्वारा (पात्रम्) लकड़ी के पात्र को जला देती है।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥ [धा० २५ । उ० ३ । स्व० ३]

इति षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ६—२ ॥
द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

[३]

अथ षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥६-३॥

(१—२०) १ कविर्भार्गवः; २, ६, १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ असितः काश्यपो देवलो वा, ४ सुकक्षः आंगिरसः; ५ विभ्राट्सौर्यः; ६, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १०--१७ भार्गवः प्रागाथः; १०, १७ विश्वामित्रो गाधिनः; ११ मेधातिथिः काण्वः; १२ शतं वैखानसाः; १३ यजत आत्रेयः; १४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १५ उशना काव्यः; १८ हर्षतः प्रागाथः; १९ बृहद्दिव आथर्वणः; २० गृत्समदः शौनकः ॥ १, ३, १५ पवमानः सोमः; २, ४, ६, ७, १४, १९, २० इन्द्रः; ८ सरस्वान्; ९ सरस्वती; १० सविता; ११ ब्रह्मणस्पतिः; १२ अग्निः पवमानः; १३ मित्रावरुणौ; १६-१८ अग्निः; १८ हवींषि वा; ५ सूर्यः ॥ १, ३-४, ८-१४, १६ (२-३) १८ गायत्री; २ (१-३) अनुष्टुप्; २ (४) बृहती, ६, ७ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती; १६ (१)वर्धमाना, १९ त्रिष्टुप्; २० (१) अष्टिः; २० (२-३) अतिशक्वरी, ५ जगती ॥ १५

सूक्त १

१२ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २र
१४३५—पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
३ १ २ ३ १ २र
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (सुवृष्टिम्) सुखों की उत्तम वर्षा (आ पवस्व) कीजिये, और (दिवः परि) द्युलोक से (अपाम् ऊर्मिम्) रश्मियों की लहरें बहाइये । तथा (अयक्ष्माः) यक्ष्म आदि रोगों से रहित और यक्ष्मा आदि रोगों को हटाने वाले (बृहतीः इषः) प्रभूत अन्नरूपा ओषधियां प्रदान कीजिये ।
[आपः=व्यापन शीला रश्मयः (निरु० १२।४।३८)]

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २र
१४३६—तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
१ २ ३ १ २ ३ २
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (तया धारया) उन वृष्टिधाराओं तथा रश्मिधाराओं द्वारा (पवस्व) हमें पवित्र कीजिये, (यया) जिस से (जन्यासः) जनहितकारिणी (गावः) गौएं, (इह) भूमण्डल में, (नः) हमारे (गृहम्) घरों में (उप आगमन्) उपस्थित रहें ।
[गावः का अर्थ रश्मियां और जल भी होता है । घरों में रश्मियों का प्रवेश, तथा जल की सत्ता भी चाहिये]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४३७—घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
३ १ २ ३ १ २र
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर ! (धारया) दूध की धाराओं द्वारा (घृतं पवस्व) घृत की वर्षा कीजिये, क्यों कि आप (यज्ञेषु) यज्ञों में (देववीतमः) देवयज्ञ की, अग्निहोत्र की अत्यधिक कामना करते हैं । (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ) सर्वत्र (वृष्टि पव) सुवृष्टि कीजिये ।

१ २ ३ २ ३क ऽ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४३८—स न ऊर्जे व्य३व्ययं पवित्रं धाव धारया ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥

(सः) वह आप हे परमेश्वर ! (नः) हमारी (ऊर्जे) बलशक्ति और प्राण-शक्ति के लिये, (अव्ययम्) अविनाशी तथा (पवित्रम्) पुनीत आनन्दरस को, (धारया) धाराओं के रूप में, (वि धाव) विशेषतया प्रेरित कीजिये । (देवासः) ताकि हम उपासक, देव बन कर, (कम्) आप आनन्दमय का (हि) ही (शृण्वन्) श्रवण-मनन-निदिध्यासन करते रहें ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१४३९—पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥ ५ ॥ ॥ १ (ची) ॥

(पवमानः) पवित्र करने वाला परमेश्वर, आनन्दरसमयी धारारूप में, (असिष्यदत्) हमारी ओर प्रवाहित हुआ है । और इस ने (रक्षांसि) हमारे आसुरी और राक्षसी कर्मों का (जङ्घनत्) पूर्ण विनाश कर दिया है, और (प्रत्नवत्) प्राचीन अनादि कालों की तरह (रुचः) हम में ब्राह्मी दीप्तियों को (रोचयन्) चमकाया है ।

[धा० २२ । उ० १ । स्व० ४]

सूक्त २

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४४०—प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥

हे उपासक ! (पिपीषते) सब की वृद्धि चाहने वाले, (विश्वानि विदुषे) विश्ववेत्ता, (अरंगमाय) गति रहित, तथापि (जग्मये) सर्वगत, (अपश्चात् अध्वने) जिस द्वारा उपदिष्ट जीवनमार्ग उपासक को पिछड़ने नहीं देता,—ऐसे (अस्मै) इस परमेश्वर के लिये (भर) अपने हृदय को भक्तिरस से भर ले । (नरः) हे उपासक

नर-नारियो ! (प्रति) तुम में से प्रत्येक उपासक, इस परमेश्वर के लिये, अपने-अपने हृदय को भक्तिरस से भर ले।

[पिपीषते=ओप्यायी वृद्धौ; प्यायः पी+सन्। अरम्=अलम्]

१२ ३ १२३ १२ ३ १२
१४४१—एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्।
१२ ३ २३ १२ ३२३ १२
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥

(सोमपातमम्) भक्तिरस की अभीप्सा वाले, (ऋजीषिणम्) ऋजु अर्थात् सत्यानुष्ठान चाहने वाले (एनम् इन्द्रम्) इस परमेश्वर के (प्रति) प्रति,—(सुतेभिः) उत्पन्न, (इन्दुभिः) चन्द्रसम प्रशान्त (अमत्रेभिः) प्रभूत मात्रा वाले तथा शक्तिशाली (सोमेभिः) भक्तिरसों के साथ,—(ईम्) अवश्य (आ एतन) आया करो।

१२ ३२३ १२ ३ १२ ३ १२
१४४२—यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ।
२३ १२ ३ १२ ३ २उ ३ १ २र
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥

हे उपासको ! (यदि ई) यदि तुम, (सुतेभिः) उत्पन्न तथा (इन्दुभिः) चन्द्रसमशान्ति देने वाले (सोमेभिः) भक्तिरसों के द्वारा, (प्रति भूषथ) परमेश्वर को सुशोभित करते हो, सत्कृत करते हो, तो (मेधिरः) मेधावी परमेश्वर (विश्वस्य वेद) तुम्हारे दिये इस सब को जानता है, (धृषत्) और प्रतिफल में उपासक के कामादि शत्रुओं का पराभव करता हुआ, (तम् तम्) उस-उस उपासक को अर्थात् जिस-जिस ने भक्तिरसों द्वारा उसे सत्कृत किया है,—(इत्)ही (एषते) प्राप्त होता है, और चाहता है।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१४४३—अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १२३ १२ ३ १२
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत ४॥२(ठ)॥

(अध्वर्यो) हिंसारहित उपासना-यज्ञ के रचयिता हे उपासक ! (अन्धसः) अन्नमयशरीर से (सुतम्) प्रकट किये गए भक्तिरस को, (अस्मै) इस तथा (अस्मै इत्) इस ही परमेश्वर के प्रति, (प्र भर) श्रद्धापूर्वक उपहार-रूप में समर्पित किया कर। (शर्धतः) कुत्सित प्रेरणाएं देने वाले, (जेन्यस्य) तथा विजेतव्य (समस्य) सभी कामादि शत्रुवर्ग से (अभिशस्तेः) की जाने वाली हिंसा से, परमेश्वर, (कुवित्) सब प्रकार से (अव स्वरत्) केवल आज्ञा द्वारा ही, उपासक की रक्षा कर देता है।

[शर्धतः=शृधु शब्द कुत्सने। अव स्वरत्=अव+स्वृ (शब्दे)]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [वा० २३। उ० २। स्व० १]

सूक्त ३

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१४४४—बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।
१ २ ३ १ २
सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥

हे उपासको ! (बभ्रवे) भरण-पोषण करने वाले, (स्वतवसे) स्वाभाविक बलशाली, (अरुणाय) पूर्णतया रोचक, (दिविस्पृशे) द्युलोक में वर्तमान तारागणों में व्यापक (सोमाय) जगदुत्पादक परमेश्वर के लिये, (गाथम्) स्तुति गान (नु) अवश्य (अर्चत) अर्चना रूप में भेंट किया करो ।

[अरुण:=आ रोचन: (निरु० ५।४।२१)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
१४४५—हस्तच्युतेभिरद्रिभि: सुतँ सोम पुनीतन ।
२ ३ १ २ ३ १ २
मधावा धावता मधु ॥ २ ॥

(अद्रिभि:) अपने व्रतों में पर्वत-समान अविचल (हस्तच्युतेभि:) तथा हाथ आदि की चेष्टाओं से रहित परिपक्व ध्यानी गुरुओं द्वारा (सुतम्) उत्पादित (सोमम्) भक्तिरस को,—हे उपासको !, (पुनीतन) पवित्र करते रहो, और अपने (मधौ) मधुर भक्तिरस में, (मधु) परमेश्वरीय मधुर आनन्दरस को, (आ धावत) शीघ्रता से मिलाया करो ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
१४४६—नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
२ ३ १ २
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥

हे उपासको ! (नमसा) नमस्कार करते हुए तुम, परमेश्वर के (उप) समीप (सीदत) आसन जमाया करो, उपस्थान किया करो, (दध्ना इत्) और ध्यानों द्वारा ही (अभि) परमेश्वर को स्वाभिमुख कर के, (श्रीणीतन) परमेश्वरीय भावनाओं को परिपक्व किया करो, और (इन्दुम्) भक्तिरस को (इन्द्रे) परमेश्वर में (दधातन) दृढ़ स्थापित किया करो ।

[दध्ना=ध्यान द्वारा । जैसे "दध्यङ्" पद में "दधि" पद है । "दध्ना" पद के अर्थ को "दधातन" पद भी स्पष्ट करता है]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
१४४७—अमित्रहा विचर्षणि: पवस्व सोम शं गवे ।
३ १ २ ३ १
देवेभ्यो अनुकामकृ ॥ ४ ॥

(सोम) हे शान्त भक्तिरस ! (अमित्रहा) उपासना में अमित्ररूप अन्तरायों और विक्षेपों को तू हटा देता है, (विचर्षणिः) तू उपासक को अगला-अगला मार्ग दर्शाता है, (गवे) हमारी इन्द्रियों को (शम्) शान्ति देता हुआ तू (पवस्व) हम में प्रवाहित हो जा। तू (देवेभ्यः) उपासक देवों की (अनुकामकृत्) चाही हुई कामना को, मोक्ष कामना को पूर्ण करता है।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ६

१४४८—इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे।

३ १ २र ३ १ २

मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥

(सोम) हे शान्तिदायक भक्तिरस ! तू (इन्द्राय पातवे) इन्द्र की स्वीकृति के लिये, तथा (मदाय) उस की प्रसन्नता के लिये, (परि षिच्यसे) हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग में सींचा गया है, तथा (मनः चित्) हमारे मनों में सींचा गया है। तू (मनस्पतिः) हमारे मनों का स्वामी बन गया है, अर्थात् हमारी मानसिक-कामनाएँ अब भक्ति के रंग में रंगी गई हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

१४४९—पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः।

२ ३ १ २ ३ २

इन्द्रविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ ॥ ३ (यू) ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले (इन्दो) चन्द्रसमान शान्तिदायक (सोम) भक्तिरस ! (सुवीर्यं रयिम्) शक्तिशाली आध्यात्मिक सम्पत्ति (नः) हमें (रिरीहि) प्रदान कर, और (नः) हमें (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (युजा) योगयुक्त कर दे।

[घा० ३२ । उ० नास्ति । स्व० ६]

सूक्त ४

२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

१४५०—उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्।

१ २

अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

(सूर्य) आध्यात्मिक अन्धकार को दूर करने वाले सूर्यों के सूर्य परमेश्वर ! आप (ह) निश्चय से, और (इत्) अवश्य, ऐसे उपासक के प्रति (अभि उद् एषि) प्रत्यक्ष रूप में उदित हो जाते हैं, जिस की कि (श्रुतामघम्) आध्यात्मिक सम्पत्ति विश्रुत है, प्रसिद्ध है, (वृषभम्) जो प्रजाजनों पर सुखों की वर्षा करता, (नर्यापसम्) तथा जिस के कर्म प्रजाजनों का हित करने वाले हैं, (अस्तारम्) तथा जिस ने अपने पाप-शत्रुओं को परास्त कर दिया है।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र

१४५१—नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा।

१ २ ३ १ २

अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥

(यः) जिस परमेश्वर ने (बाह्वोजसा) निर्माण और संहाररूपी बाहुओं के ओज द्वारा (नव) ९ और (नवतिम्) ९० वर्षों से उपलक्षित (पुरः) पुरियों अर्थात् काम-क्रोध आदि के गढ़ों अर्थात् शरीरों को (बिभेद) तोड़-फोड़ कर जीवात्माओं को मुक्त किया है, उसी परमेश्वर ने इन पुरियों अर्थात् शरीरों में रहने वाले (अहिं च) कामक्रोध, रागद्वेष, ईर्ष्या आदि सांपों का भी (अवधीत्) वध किया है, क्योंकि परमेश्वर (वृत्रहा) इन आवरक-शक्तियों का हनन करने वाला है ही।

[मनुष्य की औसतन आयु १०० वर्ष कही गई है। मातृगर्भवास के लगभग एक वर्ष के काल से पृथक् ९९ वर्ष सामान्य जीवन-काल है। इस प्रकार जीवनकाल १०० वर्षों का होता है। काम-क्रोध आदि को सांप कहा है। इन सांपों का विनाश कर के परमेश्वर, इन के गढ़ों अर्थात् शरीरों को तोड़-फोड़ देता, और अन्ततः योगियों के जीवात्माओं को मुक्त कर देता है। जन्म के पश्चात् ९९ वर्षों से उपलक्षित मानुषशरीरों को तोड़-फोड़ कर योगियों के मोक्ष का वर्णन मन्त्र में हुआ है]

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
१४५२—स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्।
३ १ २
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥ ॥ ४ (ती) ॥

(सः इन्द्र) वह परमेश्वर (शिवः) शिवस्वरूप है, सुखस्वरूप हैं; (सखा) सखा है। वह (नः) हमें (अश्वावत्) अश्वों समेत, (गोमत्) गौओं समेत, (यवमत्) जौं आदि अन्नों समेत आध्यात्मिक सम्पत्ति, (उरुधारा इव) महाधारा के रूप में (दोहते) प्रदान करता है।

[अथवा अश्वावत्=प्रबल मन; गोमत्=स्वस्थ इन्द्रियां; यवमत्=खाद्य सामग्री]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [धा० ९। उ० १। स्व० ४]

सूक्त ५

३ २ १ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४५३—विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि
२र
राजति ॥ १ ॥

(विभ्राट्) दीप्तिसम्पन्न परमात्मा, (बृहत्) बहुत उमड़े हुए हमारे (सोम्यं मधु) भक्तिरसरूपी मधु का (पिबतु) पान करे, और (यज्ञपतौ) आत्मयाजी में (अविह्रुतम्) छल-कपट कुटिलता से रहित (आयुः) जीवन (दधत्) स्थापित करे। (वातजूतः) प्राणायाम की विधि से प्रेरित (यः) जो परमात्मा (त्मना) अपने स्वभाव से ही, (प्रजाः) प्रजाओं की (अभि रक्षति) साक्षात् रक्षा करता और (पिपर्त्ति) उन का पालन-पोषण करता है, वह (बहुधा) नानारूपों में (वि राजति) विराजमान है।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१४५४—विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा
॥ २ ॥

(विभ्राट्) सुप्रदीप्त, (बृहत्) महतो महान्, (सुभृतम्) अच्छे प्रकार भरण-पोषण करने वाला, (वाजसातमम्) बलप्रदान में सर्वश्रेष्ठ, (दिवः धर्मम्) प्रकाश-धारी, (धरुणे) और सौर मण्डल के धर्त्ता सूर्य में (अर्पितम्) स्थित, (सत्यं ज्योतिः) सत्यस्वरूप ज्योतिः (जज्ञे) मुझ उपासक में प्रकट हो गई है। वह ज्योतिः (अमित्रहा) स्नेह करने वाले कामक्रोध आदि का विनाशक है, (वृत्रहा) आत्मिक शक्तियों पर आवरण डाल देने वाले राग-द्वेष आदि का विनाशक हैं, (दस्युहन्तमम्) उपक्षय करने वाले लोभ मोह आदि का विशेषरूप में विनाशक है, (असुरहा) प्राणपोषण में रत व्यक्तियों को परे रखने वाला, तथा (सपत्नहा) सपत्नों का विनाशक है।

[धरुणे अर्पितम्="योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म' (यजु० ४०।१७)। अमित्रहा=उपासक, काम-क्रोध आदि को, अमित्र समझता है, अप्रिय समझता है; अ+मिद् (स्नेहने)। वृत्रहा=रागद्वेष आदि वृत्र हैं, ये व्यक्ति की सद्बुद्धि पर आवरण डाल देते हैं, वृञ् आवरणे। दस्यु=काम-क्रोध आदि जब व्यक्ति का उपक्षय अर्थात् विनाश करने में उन्मुख हो जाते हैं तो इन्हें दस्यु कहते हैं; दसु उपक्षये। असुरहा=असु र+ओहाक् त्यागे। कामक्रोध आदि जब केवल, प्राणपोषण मात्र के लिये प्रेरित करते हैं, और इस से अतिरिक्त और कोई ऊँचा उद्देश्य नहीं होता तो इन्हें असुर कहते हैं, असु (प्राण)+र (रत)। सपत्न=मन की दो प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं,—सात्विक और असात्विक, आत्मा इन दोनों का पति है। ये दो प्रकार की मनोवृत्तियां आत्मा की पत्नी हैं। प्रतिबुद्ध आत्मा की असली पत्नी है सात्विक वृत्ति। अप्रतिबुद्ध आत्मा की पत्नी होती है असात्विक वृत्ति। प्रतिबुद्ध आत्मा असात्विक वृत्ति को, सात्विक वृत्ति की, सपत्नी अर्थात् दुश्मन समझता है। इस लिये" सपत्न का अर्थ है दुश्मन, शत्रु]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४५५—इदँ श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते
३ २
बृहत्।
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो
१ २
अच्युतम् ॥ ३ ॥ ॥ ५ (जि) ॥

(ज्योतिषां ज्योतिः) ज्योतियों का ज्योति (इदम्) यह परमेश्वर (श्रेष्ठम्) सर्व श्रेष्ठ है, (उत्तमम्) सर्वोत्तम है, (विश्वजित्) विश्वविजयी हैं, (धनजित्) सांसारिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का स्वामी है, (बृहत् उच्यते) इसे सब से

बड़ी शक्ति कहा गया है। (विश्व भ्राट्) वह विश्व का प्रकाशक, (महि भ्राजः) महाप्रकाशी, (दृशे) हमारी आध्यात्मिक दृष्टि के लिये (सूर्यः) सूर्य है। (उरु पप्रथे) महाविस्तार वाला है, सर्व-व्यापक है, (अच्युतं सहः ओजः) यह अविनश्वर बल तथा ओज है।

[धा० २७ । उ० ३ । स्व० ३]

सूक्त ६

१३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१४५६— इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३२
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ १॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हमें (क्रतुम) कर्मशक्ति, संकल्प शक्ति, और प्रज्ञाशक्ति (आ भर) प्रदान कीजिये, (यथा) जैसे कि (पिता पुत्रेभ्यः) पिता अपने पुत्रों को ये शक्तियां प्रदान करता है। (पुरुहूत) हे बहुत नामों द्वारा स्मरणीय! जीवन की (अस्मिन् यामन्) इन घड़ी में (नः शिक्ष) आप हमें शिक्षा दीजिये, ताकि (जीवाः) वर्तमान जीवन में ही (ज्योतिः) ज्योतिः-स्वरूप आप को (अशी-महि) हम प्राप्त हो सकें।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ऽ १ २ ३ १ २
१४५७— मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव क्रमुः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोति शूर तरामसि॥ २॥ ६(ल)॥

हे परमेश्वर ! (अज्ञाता वृजना) अज्ञात-पाप (नः) हम पर (मा अवक्रमुः) न आक्रमण करें, तथा (दुराध्यः) ध्यान करने पर जो पाप दुष्परिणाम पैदा करते हैं, इस लिये (अशिवासः) जो शिव नहीं हैं, सुखकारी नहीं है ऐसे ज्ञात-पाप भी हम पर आक्रमण न करें। (शूर त्वया) हे शौर्य-सम्पन्न परमेश्वर ! आप की सहायता से (वयम्) हम, (शश्वतः प्रवतः) शाश्वत काल से बहते हुए (अपः) कर्मगतिरूपी नद को (अति तरामसि) तैर जाते हैं।

[धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त ७

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४५८—अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः॥ १॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अद्य) आज (अद्य) अर्थात् इस दिन, (श्वः) और कल (श्वः) अर्थात् आने वाले दिन, (परे च) और उस से भी परे के दिनों में

आप (नः) हमारी (त्रास्व) रक्षा और पालना करते रहिये। (सत्पते) हे सच्चे रक्षक ! (नः जरितॄन्) हम स्तोताओं की रक्षा तथा पालना आप (विश्वा अहा) सब दिनों करते रहिये, (दिवा नक्तं च) दिन में और रात में (रक्षिषः) रक्षा करते रहिये।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २

१४५९—प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ २ ॥

॥ ७ (वी) ॥

हे परमेश्वर ! आप (प्रभङ्गी) दुःखभञ्जक हैं, (शूरः) पराक्रमी हैं, (मघवा) धनी हैं, (तुवीमघः) महाधनी हैं, (संमिश्लः) जगत् म घुले-मिले से हैं, आप (वीर्याय) हमें वीरता प्रदान के लिये हम में (संमिश्लः) रमे हुए हैं, ताकि हम (कम्) सुखस्वरूप आप प्रजापति को प्राप्त हो सकें। (शतक्रतो) हे असंख्य कर्मों वाले परमेश्वर ! (ते) आप की (उभा बाहू) दोनों अर्थात् निर्माण-शक्ति और संहारशक्ति रूप बाहुएँ (वृषणा) शक्तिशाली तथा सुख बर्साने वाली हैं। (या) जो दो शक्तियां कि (वज्रम्) न्याय-वज्र को (नि मिमिक्षतुः) धारण किये हुई हैं।

[बाहू=बाध्यन्ते विलोडयन्ते पदार्था याभ्यां तौ। संहारशक्ति और निर्माण-शक्ति संसार विलोडन कर रही हैं, ससार को चलायमान कर रही हैं।]

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [धा० १५। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त ८

३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१४६०—जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः।

१ २

सरस्वन्तं हवावहे ॥ १ ॥ ॥ ८ (रौ) ॥

(अग्रवः) आगे-आगे बढ़ने वाले हम गृहस्थ उपासक,—(जनीयन्तः) गृहस्थ धर्म में जाया चाहते हुए, तथा (पुत्रीयन्तः) पुत्र-पुत्रियां चाहते हुए, (सुदानवः) उत्तम दानी बनते हैं। और (नु) आज से ही (सरस्वन्तम्) सरस हृदय आप का (हवामहे) हे परमेश्वर ! सदा आह्वान हम करते रहते हैं।

[सुदानवः=गृहस्थधर्म में ५ महायज्ञ करने होते हैं। इसलिये गृहस्थों को "सुदानु" होना चाहिये। हवामहे=दोनों सन्ध्याकालों में विशेषरूप में, तथा अन्य कालों में भी, परमेश्वरीय शक्ति का आह्वान करते रहना चाहिये।]

[धा० ३। उ० नास्ति। स्व० नास्ति]

सूक्त ९

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४६१—उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
१ २ ३ १ २
सरस्वती स्तोम्या भूत ॥ १ ॥ ॥ ९ (हौ) ॥

(उत) तथा (प्रियासु) प्रिय वाणियों में (प्रिया) अत्यन्त प्यारी, (सप्त स्वसा) ७ छन्दों से युक्त तथा दुर्गुणों को दूर करने वाली, (सुजुष्टा) ऋषिमुनियों द्वारा सुसेवित (सरस्वती) सरस वेदवाणी (नः) हम गृहस्थियों के लिये (स्तोम्या) स्तुति योग्य, अर्थात् स्वाध्याय योग्य (भूत्) हुई हैं।

[स्वसा=सु+अस् (प्रक्षेपे)]

[धा० ३। उ० नास्ति। स्व० नास्ति]

सूक्त १०

१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
१४६२—तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
२ ३ १ २ ३ १ २
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

(सवितुः) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् (देवस्य) देवाधिदेव के (तत्) उस (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ तथा वरणयोग्य, (भर्गः) तथा पापों को भून देने वाले तेज का, (धीमहि) हम योगविधि द्वारा ध्यान करते हैं, (यः) जो परमेश्वर कि (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों और कर्मों को (प्र चोदयात्) प्रेरित करे।

३ २ ३ १ २
१४६३—सोमानां स्वरणम् ॥ २ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के स्वामी ! (यः) जो मैं, (औशिजः) कान्तिसम्पन्न आप का पुत्र हूँ, (कक्षीवन्तम्) और आप की प्राप्ति के लिये कमर कसे हुए हूँ, एतदर्थ (सोमानाम्) भक्तिरसों का (स्वरणम्) प्रकाश करने वाला मुझे (कृणुहि) आप कीजिये।

२ ३ १ २ ३
१४६४—अग्न आयूँषि पवसे ॥ ३ ॥ ॥ १० (य) ॥

(अग्ने) हे प्रकाशमय सर्वाग्रणी ! (आयूंषि) हमारे जीवनों को (पवस्व) पवित्र कीजिये, (च) और (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) बल तथा प्राण शक्ति, (च) और (इषम्) आध्यात्मिक अभीष्ट अर्थात् मोक्ष (आ सुव) प्रेरित कीजिये, तथा (दुच्छुनाम्) कुत्तों की सी बुरी प्रवृत्तियों को (आरे) हम से दूर (बाधस्व) हटाइये।

[दुच्छुना=दुः+शुन (कुत्ता); अथवा दुः+शुन(सुख), अर्थात् बुरे सुख, वैषयिक सुख]

[धा० २। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ११

१ २ ३ १ २
१४६५—ता नः शक्तं पार्थिवस्य ॥ १ ॥

स्नेह करने वाले परमेश्वर की स्नेह शक्ति, तथा पापों से निवारण करने वाले परमेश्वर की पापनिवारण शक्ति, (ता) वे दोनों शक्तियां, (नः) हमें (पार्थिवस्य) सांसारिक तथा (दिव्यस्य) आध्यात्मिक (महः रायः) महासम्पत्तियों के प्रदान में (शक्तम्) समर्थ हैं। हे दोनों शक्तियो! (देवेषु) देवकोटि के व्यक्तियों में (वाम्) तुम दोनों का (महि क्षत्रम्) क्षतियों से त्राण करने का महाबल प्रसिद्ध है।

[मन्त्र ११४३ तथा ११४४ में मित्र और वरुण का वर्णन है। इन्हीं का वर्णन १४६५ में भी है। मित्र का अर्थ है स्नेह करने वाला, और वरुण का अर्थ है पापों से निवारण करने वाला। पापों से निवारण जितना स्नेह द्वारा हो सकता है उतना दण्ड द्वारा नहीं हो सकता। यह मन्त्र पूणवर्णित ११४५ संख्या का है]

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१४६६—ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते।
३ १ २ ३ १ २
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ २ ॥

परमेश्वर की स्नेहशक्ति तथा पापनिवारण शक्ति,—ये दोनों मिल कर, (ऋतेन) सत्यानुष्ठान द्वारा (ऋतम्) सत्य को (सपन्ता) बढ़ाती हुई, (इषिरम्) अभीष्ट (दक्षम्) बल (आशते) प्राप्त कराती हैं। ये दोनों शक्तियां (अद्रुहा) जो कि द्रोह और वैर से रहित हैं, (देवौ) दिव्य हैं, (वर्द्धेते) ये दोनों मिल कर हमें बढ़ाती हैं।

३ १ २ ३क२र ३ २उ ३ १ २
१४६७—वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः।
३ २ ३ १ २
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ३ ॥ ॥ ११ (पा) ॥

(वृष्टिद्यावा) प्रभु की स्नेह शक्ति और पापनिवारण शक्ति सुखों की वर्षा करती और योगजविभूतियों का प्रकाश करती हैं, (रीत्यापा) इस रीति से श्रेष्ठ फल प्राप्त कराती; तथा (दानुमत्याः इषः) दान देने की उदार भावनाओं की (पती) रक्षा करती हैं। प्रभु की ये दोनों शक्तियां (बृहन्तं गर्तम्) बड़े घर अर्थात् ब्रह्माण्ड में (आशाते) व्याप रही हैं।

[गर्त=गृहनाम (निघं० ३।४)]

[धा० ५। उ० १। स्व० २]

सूक्त १२

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१४६८—युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
१ २ ३ २ ३ २
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

(ब्रध्नम्) महान् तथा आदित्यसदृश स्वतः प्रकाशमान, (अरुषम्) रोष और क्रोध से रहित, (परि) चारों ओर (तस्थुषः) स्थित प्रत्येक पदार्थ में (चरन्तम्) विचर रहे परमेश्वर को, योगीजन योगविधि द्वारा (युञ्जन्ति) अपने साथ युक्त करते हैं, सम्बद्ध करते हैं। (दिवि) द्युलोक में स्थित तारामण्डल (रोचना=रोचनया) परमेश्वर की प्रदीप्ति द्वारा ही (रोचन्ते) प्रदीप्त हो रहे हैं।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४६९—युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
१ २ ३ २ ३ १ २
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

(अस्य काम्या) इस योगी को योगसाधना के लिये चाही गई, (हरी) चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली, अर्थात् चित्त को अन्तर्मुख कर देने वाली, (रथे) शरीर-रथ में (विपक्षसा) सुषुम्णा=नाड़ी के दो पक्षों में लगी हुई (शोणा) रंग-बिरंगी (धृष्णू) मजबूत (नृवाहसा) तथा योग के नेताओं को उन के उद्देश्य तक पहुंचाने वाली, इडा और पिङ्गला नाड़ियों को, योगी-जन,(युञ्जन्ति) अपने चित्तों के साथ धारणा-ध्यान द्वारा युक्त करते हैं, सम्बद्ध करते हैं।

[इडा, पिङ्गला=सुषुम्णा, इडा, पिंगला इन तीनों का योग के साथ सम्बन्ध है। सुषुम्णा नाडी अतिसूक्ष्म नली के सदृश हैं, जो गुदा के निकट से, मेरुदण्ड के भीतर होती हुई, मस्तिष्क के ऊपर तक चली गई है। गुदास्थान के निकट से सुषुम्णा के वामभाग से इडा और दक्षिणभाग से पिङ्गला नासिकामूल पर्यन्त मस्तक तक चली गई है। भ्रूमध्य में ये तीनों नाड़ियां परस्पर मिल गई हैं। सुषुम्णा को सरस्वती, इडा को गङ्गा, तथा पिङ्गला को यमुना भी कहते हैं। इडा को चन्द्रनाड़ी और पिङ्गला को सूर्यनाडी भी कहते हैं]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४७०—केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
२ ३ १ २
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥ ॥ १२ (य) ॥

(मर्याः) हे उपासक जनो! परमेश्वर, (अकेतवे) प्रज्ञा-रहित उपासक के लिये (केतुम्) योगज प्रज्ञा को (कृण्वन्) प्रकट करता हुआ, तथा (अपेशसे) योग सम्बन्धी रूप से रहित उपासक के लिये (पेशः कृण्वन्) नया योग सम्बन्धी रूप को प्रकट करता हुआ,(उषद्भिः)उषाकालों में (सम् अजायथाः)सम्यक् प्रकट होजाता है।

योगी के लिये, योगाभ्यास का काल, रात्रि के १२ बजे के बाद का उपयुक्त गिना गया है। १२ बजे के बाद और सूर्योदय से पूर्व योगाभ्यास करना चाहिये। यह काल शान्ति का काल है। सूर्योदय काल के आरम्भ होने से पूर्व परमेश्वर के साक्षात्कार का वर्णन मन्त्र में किया है]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० । ७ उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १३

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४७१—अयँ सोम इन्द्र तुभ्यँ सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
२ ३ १ २ ३ १ २र३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वँ ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अयं सोमः) यह भक्तिरस (तुभ्यम्) आप के लिये (सुन्वे) निष्पादित हुआ है, (तुभ्यम्) आप के लिये यह (पवते) प्रवाहित हो रहा है, (त्वम्) आप (अस्य) इस भक्तिरस की (पाहि) रक्षा कीजिये। (यम्) जिस (इन्दुं सोमम्) चन्द्रसम शीतल भक्तिरस को (त्वम् ह) आप ने ही प्रकट किया है, आप ही उस की रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप ने उपासक पर (मदाय ववृषे) उस की मस्ती के लिये आनन्दरस की वर्षा की है, जो उपासक कि (युज्याय) आप का योगयुक्त सखा बन गया है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१४७२—स ईँ रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
२ ३ १ २ ३क२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आदी विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥

(सः) वह परमेश्वर, (रथः न) रथ के समान, (ईम्) इस अर्थात् संसार का (भूरिषाट्) महाभार सहन कर रहा है। (पुरूणि) नानाविध (वसूनि) योगज सम्पत्तियों की (सातये) प्राप्ति के लिये, (महः अयोजि) उपासक ने, इस महाशक्ति को (अयोजि) अपने साथ योग द्वारा सम्बद्ध कर लिया है। (वने) और शान्त वनों में योगाभ्यास पूर्वक (स्वर्षाता) सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति हो जाने पर, (विश्वा नहुष्याणि जाता) तथा मनुष्यसम्बन्धी सभी अभीष्टों की प्राप्ति हो जाने के (आत्) अनन्तर, ये उपासक (ऊर्ध्वा नवन्त) ऊर्ध्वगति को प्राप्त कर लेते हैं। (नहुषः=मनुष्य) (निघं० २।३)।

३ २उ ३ २ ३र ३ १ २ ३ २उ ३ २
१४७३—शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ३ ॥ ॥ १३ (घो) ॥

हे परमेश्वर ! (मारुतं शर्धः न) मारुत अर्थात् मानसून वायु के बल के समान आप बली हैं, (पवस्व) आप हम में प्रवाहित हो जाइये, (यथा) ताकि (विट्) प्रजा (अनभिशस्ता) हिंसा तथा निन्दा आदि की दुर्भावनाओं से रहित हो कर (दिव्या) दिव्य बन जाय। (आपः न) जलों के समान शीतल आप, (मक्षू) शीघ्र, (नः) हमें (सुमतिः) उत्तममति प्रदान करने वाले (भव) हो जाइये। (सहस्राप्साः) आप अनन्तरूप हैं। (पृतनाषाट् न) शत्रुसेना का पराभव करने वाले सेनापति के सदृश आप कामक्रोध आदि शत्रुसेना का पराभव करते हैं। (यज्ञः) आप यज्ञस्वरूप हैं, अर्थात् आप की उपासना महायज्ञ रूप है।

[सुमतिः=शोभा मतिः यस्मात् सः सुमतिः। सहस्राप्साः=सहस्र+अप्सः (रूपनाम, निघं. ३।७)]

[धा० २६ । उ० ४ । स्व० ४]

सूक्त १४

१२ ३२ ३ २ ३ १ ३ ३ २
१४७४—त्वमग्ने यज्ञाना होता विश्वेषा हितः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥

(अग्ने) हे सर्वाग्रणी ! (त्वम्) आप (यज्ञानाम्) यज्ञिय विचारों और यज्ञिय व्यवहारों के (होता) ज्ञान-दाता हो, तथा (विश्वेषाम्) सब का (हितः) हित चाहते हो। और (जने मानुषे) उत्पन्न प्रत्येक मनुष्य में (देवेभिः) अपने दिव्य गुणों समेत (हितः) आप निहित हैं।

यज्ञ=देवपूजा, संगतिकरण, दान]

१ २ ३ १ १ ३ १ ३ १ २ ३ २
१४७५ स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥

(सः) वह सर्वाग्रणी प्रभु, (नः अध्वरे) हमारे हिंसारहित उपासना यज्ञों में, (मन्द्राभिः जिह्वाभिः) अर्थों की दृष्टि से गम्भीर तथा हर्षदायक वेदवाणियों द्वारा, (महः) अपने तेजस्वी रूप को (यज) संगत करे, हमारे साथ सम्बद्ध करे। हे सर्वाग्रणी ! आप (देवान्) दिव्यगुण (आ वक्षि) हमें प्राप्त कराइये, (च) और (यक्षि) हमारे उपासना-यज्ञों का यजन कीजिये, उन्हें सफल कीजिये।

[जिह्वा=वाणी (निघं. १।११)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४७६—वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा।
१ २ ३ १ २
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥ ॥ १४ (हो)

(वेध:) हे जगद्-विधाता !, (देव) हे देवाधिदेव !, (सुक्रतो) हे हमारे क्रतुओं अर्थात् उपासना-यज्ञों को सफल बनाने वाले (अग्ने) सर्वाग्रणी प्रभो !, (यज्ञेषु) उपासना-यज्ञों के सम्बन्ध में आप ही इन की सफलता के (अध्वनः पथः) मार्गों और विधियों को (अञ्जसा) ठीक प्रकार से (वेत्थ) जानते हैं।

[अञ्जसा=Truly, Properly, rightly (आपटे)]

[धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति]

सूक्त १५

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१४७७—होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया।
३ १ २ ३ १ २
विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥

(होता) सुखदाता (अमर्त्यः) अमर (देवः) देवाधिदेव परमेश्वर, (मायया) ऋतम्भरा प्रज्ञा का उपहार लिये, (पुरस्तात) उपासक की दिव्य दृष्टि के सामने (एति) आ प्रकट हुआ है, और (विदथानि) नानाविध ज्ञानों का (प्रचोदयन्) प्रवचन कर रहा है।

[माया=प्रज्ञा (निघं. ३।९)]

३ १ २र ३ २ ३ १ २
१४७८—वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते।
१ २ ३ २ ३ १ २
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

(वाजेषु) बलों की प्राप्ति के निमित्त, (वाजी) महाबली परमेश्वर (धीयते) ध्यानविधियों द्वारा ध्यान का विषय किया जाता है। (अध्वरेषु) और हिंसारहित उपासना-यज्ञों में, (प्र णीयते) प्रणयपूर्वक, इसे अपनाया जाता है। (विप्रः) मेधावी परमेश्वर (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञों का (साधनः) साधक है।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१४७९—धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे।
१ २ ३ २ ३ १ २
दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥ ॥ १५ (रा)

(वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ तथा वरण करने योग्य परमेश्वर ने, (धिया) बुद्धिपूर्वक, (चक्रे) जगत् रचा है। (भूतानाम्) भूत-भौतिक जगत् की उत्पत्ति के लिये, परमेश्वर ने ही, (गर्भम्) प्रकृति में गर्भ का (आ दधे) आधान किया था। इसी ने (दक्षस्य) बलों के (पितरम्) पिता, सूर्य को, (तना) ताना है।

इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त १६

२ ३१२ ३ २३१२ ३ १२
१४८०—आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।
३१ २ ३२
रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥

हे उपासको ! (सुते) भक्तिरसों के निष्पन्न हो जाने पर इन्हें, (श्रियम्) सर्व श्री परमेश्वर के प्रति (आ सिञ्चत) पूर्ण रूप से सींच दो, जो परमेश्वर कि (रोदस्योः) द्युलोक और पृथिवीलोक का (अभि श्रियम्) साक्षात् आश्रय है। (वृषभम्) आनन्दरसवर्षी परमेश्वर को लक्ष्य कर के, (रसा) अपने भक्तिरसों का (दधीत) धारण और परिपोषण करते रहो ।

१ २ ३ २३ २ऽ २ ३२ ३ २३१२
१४८१—ते जानत स्वमोक्यंऽ३ सं वत्सासो न मातृभिः ।
३१ २ ३ १ २
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ २ ॥

(ते) वे उपासक (सं जानत) सम्यक् प्रकार से जानते हैं कि उन का (स्वम्) अपना (ओक्यम्) निवास-गृह जगन्नेता है । जहां कि उन्होने विश्राम पाना है। (न) जैसे कि (मातृभिः) माताओं और (जामिभिः) बहिनों समेत (वत्सासः) छोटे बच्चे (मिथः) मिल कर सभी अपने घर को जानते और (नसन्त) उसे प्राप्त होते हैं।

९३१२३१९ ३२३१२३२
१४८२—उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि ।
१ २ ३ २उ ३क २र
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥ ॥ १६ (च) ॥

(इन्द्रे) परमेश्वर की परम ऐश्वर्यशक्ति तथा (अग्ना) आग्नेय शक्ति के निमित्त (नमः) हमारे नमस्कारों और (स्वः) सांसारिक सुखों की आहुतियां हों। ये दो शक्तियां (धरुणम्) सौरमण्डल के धारक सूर्य को (दिवि) द्युलोक में (कृण्वते) पैदा करती हैं [सृष्टिकाल में] और ये ही दो शक्तियां (स्रक्वेषु) अपने जबाड़ों में (उप बप्सतः) इसे चबा खाती हैं [प्रलयकाल में] ।

[इन्द्रशक्ति उत्पादक शक्ति है, और अग्निशक्ति संहारक शक्ति है]

[प्रा० १२ । उ० १ । स्व० १]

सूक्त १७

१ २र३१२ ३ २३१२ ३२३२ ३१२
१४८३—तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेष नृम्णः ।
३ २ ३ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ ९उ ३ ९ ३ १ २
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥

(तत्) वह ब्रह्म (इत्) ही (भुवनेषु) समग्र लोक-लोकान्तरों में (ज्येष्ठम्) सबसे बड़ी-शक्ति के रूप में (आस) रहा है, (यतः) जिसकी कृपा से उपासक (उग्रः) अपने व्रतों में सुदृढ़ और (त्वेषनृम्णः) प्रज्ञालोक रूपी-धन वाला हो कर (जज्ञे) मानो नवजन्मा हो जाता है। उपासक में ब्रह्म (जज्ञानः) प्रकट हो कर (सद्यः) तत्काल (शत्रून्) काम क्रोधादि की वासनारूपी शत्रुओं का (नि रिणाति) पूर्ण क्षय कर देता है, (यम् अनु) जिस ब्रह्म का कि आश्रय पा कर (विश्वे ऊमाः) संसार की समग्र रक्षक-शक्तियां (मदन्ति) हृष्ट-पुष्ट हो रही हैं।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१४८४—वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

(शवसा) निज बल द्वारा (वावृधानः) सबसे बढ़ा हुआ, (भूर्योजाः) महा-ओजस्वी, (शत्रुः) काम क्रोध आदि का विनाशक परमेश्वर, (दासाय) परविनाशी व्यक्ति के लिये (भियसं दधाति) भयरूप होता हैं। (अव्यनत्) अप्राणी (च) और (व्यनत् च) प्राणी जगत् को (सस्नि) वह शुद्ध कर रहा है। (ते) वे प्राणी और अप्राणी, (प्रभृताः) परमेश्वर से भरण-पोषण पाए हुए, (मदेषु) मानो आनन्दित हुए-हुए (सं नवन्त) मिल कर परमेश्वर की स्तुति के गान कर रहे हैं।

१उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३२उ ३ १ २

१४८५—त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १

स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि

२

योधीः ॥ ३ ॥ १७(णी)

हे परमेश्वर! संसार के (विश्वे) सब अप्राणी-और-प्राणी, (त्वे) आप में ही, (क्रतुम्) अपने-अपने कर्मों को (अपि वृञ्जन्ति) समर्पित किये हुए है, (यत्) चाहे (एते) ये अप्राणी-और-प्राणी, (ऊमाः) अन्यों के रक्षक होकर, (द्विः त्रिः भवन्ति) अपनी-अपनी शक्तियों में दुगनी या तिगुणी शक्तियों वाले क्यों न हो जायं। हे परमेश्वर! (स्वादोः) संसार के स्वादु पदार्थों में (स्वादीयः) आप उनसे अधिक स्वादु है। (अदः) उस अपने स्वादु रूप को (स्वादुना) संसार के स्वादु रूपों के (सम्) साथ (सृज) मिला दीजिये, (मधु) अपने मीठे रूप को (मधुना) संसार के मीठे रूपों के साथ (सु) अच्छे प्रकार (अभि योधीः) मिश्रित कर दीजिये।

[उपासक कहता है कि हे परमेश्वर! सांसारिक पदार्थों की मिठास का अनुभव करते हुए हम, आपकी मिठास का भी अनुभव साथ-साथ करें। उपासक के लिये संसार और ब्रह्म दोनों मीठे हों]

[धा० २३। उ० ५। स्व० ४]

सूक्त १८

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३
१४८६—त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिब-
१ २ ३ १ २ ३ २
द्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं:
३ १ २र ३ १ २र
सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।। १ ।।

(त्रिकद्रुकेषु) पृथिवी के तीन स्थानों अर्थात् जल-स्थल-पर्वत में, अथवा पार्थिव शरीर के तीन स्थानों अर्थात् शरीर-मन-आत्मा में, (विष्णुना सुतम्) व्यापक परमेश्वर की कृपा द्वारा निष्पन्न भक्तिरस को, (महिषः) महान् तथा (तुविशुष्मः) महाबली परमेश्वर (अपिबत्) स्वीकार करता है, (यथावशम्) और अपनी इच्छानुसार स्वीकार करता है, और सदा तृप्त परमेश्वर उस द्वारा (तृम्पत्)सः) तृप्ति अनुभव करता है। (सः) वह भक्तिरस, (ईम्) इस परमेश्वर को, (ममाद) हर्षित तथा आनन्दित करता है। परिणाम में परमेश्वर उपासक का (महि कर्म) महा-कर्म (कर्तवे) कर देता है [उपासक जिस इच्छा से भक्तिरस का निष्पादन करता है, उस भक्तिरस को स्वीकार कर परमेश्वर उपासक की उस इच्छा को पूर्ण कर देता है, यही महाकर्म है], (सः) वह (देवः) दिव्य भक्तिरस, (महाम्) महान् और (उरुम्) सर्वाच्छादक अर्थात् व्यापक (एनम्) इस परमेश्वर को (सश्चत्) प्राप्त हो जाता है। यह भक्तिरस (इन्दुः) चन्द्रमा के सदृश शान्तिप्रद है, और आध्यात्मिक जीवन का एक (सत्यः) सत्य-तत्त्व है। यह भक्तिरस (सत्यम्) सत्य स्वरूप (इन्द्रम्) परमेश्वर को (सश्चत्) अवश्य प्राप्त हो जाता है। और वह परमेश्वर (यवाशिरम्) जौं पकाकर, भक्तिपूर्वक, दी गई उसकी आहुति को भी (अपिबत्) स्वीकार करता है।

[त्रिकद्रुकेषु=कद्रु=पृथिवी। क्योंकि पृथिवी का (द्रु) अर्थात् गति, (क) कुत्सित है। चूंकि पृथिवी की गति अनुभूत नहीं हो रही होती, इसलिये पृथिवी को "कद्रुक" कहा हैं। त्रिकद्रु=जल, स्थल, पर्वत। या पार्थिव शरीर, मन, आत्मा। "इयं पृथिवी कद्रूः" (शत० ब्रा० ३।६।२।२)]

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३क२र
१४८७—साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः
३ २उ ३ १ २
सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
२ ३ १ २ ३ २उ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं सश्चद्देवो देवं
३ १ २र ३ १ २र
सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।। २ ।।

हे परमेश्वर ! आप अपनी स्वाभाविक (ऋतुना) क्रिया शक्ति-और प्रज्ञा शक्ति के (साकम्) साथ, तथा स्वाभाविक (ओजसा) ओज के (साकम्) साथ (ववक्षिथ) संसार का वहन कर रहे हैं, तथा (वीर्यैः) निज सामर्थ्यों के (साकम्) साथ (वृद्धः) सबसे बढ़े-चढ़े हैं। आप (मृधः) संग्रामकारी आसुरी-भावनाओं का (सासहिः) तिरस्कार करते, और (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा हैं। (प्रचेतन) हे ज्ञानी परमेश्वर ! आप (स्तुवते) स्तोता को उसका (काम्यं वसु) अभीष्ट धन (दाता) प्रदान करते हैं, जो कि (राधः) उसके अभीष्टों को सिद्ध कर देता है। (सः) वह स्तोता (देवः) दिव्य गुणों वाला हो कर (एनं देवम्) दिव्य गुणों वाले इस आपको (सश्चत्) प्राप्त कर लेता है, अर्थात् (सत्यः) सत्यनिष्ठ (इन्दुः) उपासक, (सत्यम् इन्द्रम्) सत्यस्वरूप आप परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।

[कई मन्त्रों में इन्दु और इन्द्र का इकट्ठा वर्णन हुआ है। आधिदैविक दृष्टि में इन्दु है चन्द्रमा, और इन्द्र है सूर्य। इन्दु अर्थात् चन्द्रमा अपना प्रकाश इन्द्र अर्थात् सूर्य से पाता है। आध्यात्मिक दृष्टि में इन्दु है उपासक और इन्द्र हैं परमेश्वर। उपासकरूपी चन्द्रमा भी परमेश्वर रूपी सूर्य से प्रकाश पाता है]

२३ १२ ३ १२३ १२ ३१२३१ २र
१४८८—अध त्विषीमाँ अभ्योजसा कृविं युधाभवदा रोदसी आपृण-
३ २ ३ १ २
दस्य मज्मना प्र वावृधे।
१२३ २ ३२३१२ ३१ २ ३ १२ ३ २ ३ २
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनँ सश्चद्देवो देवँ
३ १ २र ३ १ २र
सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥ ॥ १८ (थि) ॥

(अध) तदनन्तर (त्विषीमान्) दीप्तिमान् परमेश्वर (ओजसा) अपने ओज द्वारा, (युधा) मानो युद्ध करके, (कृविम्) उपासक की हिंस्र प्रवृत्तियों और विचारों का (अभि अभवत्) साक्षात् पराभव कर देता है। परमेश्वर ने (रोदसी) द्युलोक और भूलोक को (आ अपृणत) अपनी व्याप्ति से आपूरित किया हुआ है। (अस्य) इस परमेश्वर की (मज्मना) शक्ति द्वारा उपासक (प्र वावृधे) खूब वृद्धि पाता है। परमेश्वर (अन्यम्) किसी की तो (अधत्त) ऐसी सुरक्षा करता है जैसे कि माता (जठरे) अपने पेट में विद्यमान अजात-बच्चे की (अधत्त) रक्षा करती है, (ईम्) और किसी को (प्र अरिच्यत) सुरक्षा से वञ्चित कर देता है। हे परमेश्वर ! (एनम्) इस उपासक को (प्र चेतय) सचेत कीजिये, ताकि (सः) वह उपासक (देवः) दिव्य गुणों से सम्पन्न हो कर, (देवम्) दिव्य गुणों वाले आपको, (सश्चत्) प्राप्त कर ले, (इन्दुः) चन्द्रमा के सदृश शान्त स्वभाव वाला (सत्यः) सत्यनिष्ठ उपासक (इन्द्रम्) सूर्य सदृश प्रकाशमान (सत्यम्) सत्यस्वरूप आपको (सश्चत्) प्राप्त कर ले।

[कृविम्=कृञ् हिंसायाम्]

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ [धा० ५४। उ० २। स्व० १३]

इति षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥

षष्ठः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

[१]

अथ सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७-१ ॥

(१—१६) १, ६ प्रियमेघ आङ्गिरसः; २ नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ; ३, ७ त्र्यरुण-स्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः ४ शुनः-शेप आजीगर्तिः; ५ वत्सः काण्वः; ६ अग्नि-स्तापसः; ८ विश्वमना वैयश्वः; १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ११ सौभरिः काण्वः; १२ शतं वैखानसः; १३ वसूयव आत्रेयः; १४ गोतमो राहूगणः; केतुराग्नेयः; १६ विरूप आङ्गिरसः ॥ १-२, ५, ८-६ इन्द्रः; ३, ७ पवमानः सोमः; ४, १०-११, १३-१६ अग्निः; ६ विश्वे देवाः, १२ अग्निः पव-मानः ॥ १, ४-५, १२-१६ गायत्री; २, १० प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती,); ३, ७ ऊर्ध्वा बृहती; ६ अनुष्टुप्, ८-६ उष्णिक्; ११ बृहती ॥

सूक्त १

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१४८६—अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥

हे उपासक ! तू (यथाविदे) यथार्थविद्या की प्राप्ति के लिये, (गिरा) वेद वाणियों द्वारा, (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अभि) प्रत्यक्षरूप में, अर्थात् उसे प्रत्यक्ष कर के (अर्च) अर्चना किया कर, जो परमेश्वर कि (गोपतिम्) वेदवाणियों का पति है, (सत्यस्य) सत्य ज्ञान का (सूनुम्) प्रेरक है, और (सत्पतिम्) सच्चा रक्षक है उस की (प्र) खूब अर्चना किया कर ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१४९०—आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
२ ३ २ ३ १ २
यत्राभि सन्नवामहे ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (बर्हिषि अधि) हृदयाकाश में, आप की (अरुषीः) चमकीली (हरयः) किरणें, (आ ससृज्रिरे) फैली हुई प्रकट हो गई हैं, (यत्र) जिस हृदया-काश में कि (अभि सम् नवामहे) हम प्रत्यक्ष रूप में आप की स्तुतियां करते हैं ।

[हरयः=हरणाः आदित्य-रश्मयः (निरु० ७।७।२४)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१४९१—इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
१ २ ३ २ ३ २
यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥ ॥ १ (हा) ॥

(गावः) परमेश्वर की प्रकाशमयी किरणों ने, (वज्रिणे) न्यायवज्रधारी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये, (मधु) मधुर तथा (आशिरम्) परिपक्व भक्तिरसरूपी दुग्ध का (दुदुह्रे) दोहन कर दिया है, (यत्) जब कि उपासक ने, (उपह्वरे) पर्वतों की घाटियों में [समाधि द्वारा] (सीम्) सर्वत्र विद्यमान परमेश्वर को (विदत्) पा लिया है।

(उपासक को जब परमेश्वर की किरणें अर्थात् ज्योति प्राप्त हो जाती है, तब भक्तिरस का परिपाक अधिक हो जाता है)

[घा० ११। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त २

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४९२—आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रँ समत्सु भूषत।
२ ३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥ १ ॥

हे उपासको! (विश्वासु) समस्त (समत्सु) देवासुर-संग्रामों में, (नः) हम सब की सहायता के लिये, (हव्यम्) आह्वान योग्य (इन्द्रम्) परमेश्वर को (आ भूषत्) अलंकृत किया करो, स्तुतियों द्वारा उस की शोभा बढ़ाया करो, और कहा करो कि (वृत्रहन्) हे पाप-वृत्रों का हनन करने वाले!, (ऋचीषम) हे ऋचाओं में समरूप से वर्णित! आप (परमज्या) सर्वोत्कृष्ट धनुष्-डोरी हैं पाप-वृत्रों के विनाश के लिये, आप के लिये हमारी (ब्रह्माणि) वैदिक स्तुतियां और (सवनानि) यज्ञिय कर्म (उप) उपस्थित हैं।

(प्रणव तो धनुष् है (मुण्डक. २।२।४), और परमेश्वर इस धनुष की डोरी है, जिस के सहारे आत्मरूपीशर में शक्ति आती है)

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१४९३—त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥
॥ २ (या) ॥

हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (राधसदम्) सांसारिक और आध्यात्मिक धनों के (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (दाता असि) दाता हैं, आप (सत्यः असि) सत्यस्वरूप हैं। (ईशान कृत्) आप ही दोनों प्रकार के धनिकों को, अपने-अपने धन के सम्बन्ध में, अधीश्वर बना देते हैं। हे परमेश्वर! (वृणीमहे) हम आप से यह वर मांगते है कि (पुत्रस्य) हमारे पुत्र (तुविद्युम्नस्य) यदि महाधनी, और (महः शवसः) धन की दृष्टि से महाबली हो जायें, तो उन्हें आप (युज्या) योग्य अर्थात् यथोचित्त सत्कर्मों के करने वाले कीजिये। (युज्या=युज्यानि योग्यानि सत्कर्माणि)

(उपासक चाहते हैं कि उन की सन्तानें भी उपासनामार्गी हों, सन्मार्गी हों।

यदि सन्तानें धनिक होती हैं, तो वे धन के मद में मस्त हो कर कुमार्गगामी न बन जायें। अतः सन्तानों के सम्बन्ध में प्रार्थना हुई है]

[धा० १७। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ३

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
१४९४—प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत।
३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रमभि जायमानँ समस्वरन् ॥ १ ॥

(प्रत्नम्) पुरातन, (पीयूषम्) अमर आनन्दरसरूप, (पूर्व्यम्) अनादि काल के ऋषिमुनियों द्वारा ध्यात, (उक्थ्यम्) वैदिक सूक्तों द्वारा प्रशंसित, (यत्) जो परमेश्वर तत्त्व है उसे,—उपासक लोग, (दिवः) मस्तिष्क की (महः गाहात्) महती गहराई से (आ) प्रत्यक्षतया (निरधुक्षत) दोहन करते हैं, और (अभि) प्रत्यक्ष हुए (इन्द्रम्) परमेश्वर की (समस्वरन्) स्वर-पूर्वक स्तुतियां गाते हैं।

[दिवः="दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" (अथर्व. १०।७।३२); "शीर्ष्णो: द्यौः समवर्तत" (यजु. ३१।१३)। दिवः=मस्तिष्क से। गाहात्=सहस्रारचक्र मस्तिष्क की गहराई में छिपा पड़ा है]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
१४९५—आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत।
३ १ २र ३ १ २
दिवो न वारँ सविता व्यूर्णुते ॥ २ ॥

(आत्) तदनन्तर (केचित् दिव्याः) कई दिव्य उपासक, जो कि (वसुरुचः) परमेश्वर को ही रुचिकर सम्पत्ति मानते हैं वे. (ईम्) इस (आप्यम्) प्रापणीय परमेश्वर का (पश्यमानासः) प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए (अभि अनूषत) इस की साक्षात् स्तुतियां करते हैं। (न) जैसे (दिवः सविता) द्युलोक का सूर्य (वारम्) अन्धकार के आवरण को (व्यूर्णुते) हटा देता है, वैसे परमेश्वर उपासकों के (वारम्) अज्ञान-रूपी आवरण को, परदे को (व्यूर्णुते) हटा देता है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१४९६—अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि
३ १ २
मज्मना।
३२उ ३ १ २ ३ १ २र
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥ ३ ॥ ॥ ३ (ख) ॥

(पवमान) हे पवित्र करने वाले परमेश्वर! (अध) तदनन्तर उपासक देखते हैं, अनुभव करते हैं कि (इमे रोदसी) इन द्युलोक और भूलोक में, (च) और (इमा विश्वा भुवना) इन सब भुवनों में अर्थात् सूर्य चन्द्र नक्षत्र तारागण आदि

में आप (मज्मना) निज शक्ति से (निष्ठाः) नितरां स्थित हुए (अभि विराजसि) सर्वत्र विराजमान हो रहे हैं, (न) जैसे कि (वृषभः) शक्ति-शाली बैल (मज्मना) अपनी शक्ति के कारण (यूथे) स्वजातीय समूह में (निष्ठाः) स्थित हुआ विराजमान होता है।

[धा० १६। उ० २। स्व० ६]

सूक्त ४

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१४९७—इममू षु त्वमस्म कँ सनिं गायत्रं नव्यांसम्।

१ २ ३ २ ३ १ २

अग्ने देवेषु प्र वोचः॥ १॥

(अग्ने) हे अनन्तविद्यानिधि परमेश्वर! जैसे सृष्टि के आदि में, (देवेषु) पुण्यात्मा अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा नामक मनुष्य-देवताओं की आत्माओं में (त्वम्) आप ने (नव्यांसम्) नवीन-नवीन बोध कराने वाले (गायत्रम्) गायत्री आदि छन्दों से युक्त (सनिम्) सब प्राणियों को सुखों का सेवन कराने वाले चारों वेदों का (प्र वोचः) उपदेश किया था, और अगले कल्प-कल्पादि में फिर भी करोगे, वैसे (अस्माकम्) हमारी आत्माओं में (इमम्) इस वेदविद्या का उपदेश (सु) अच्छी प्रकार कीजिये।

[ऋग्वेद में महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य के आधार पर अर्थ किया है (ऋ० १।२७।४)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१४९८—विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ।

३ २ ३ १ २

सद्यो दाशुषे क्षरसि॥ २॥

(चित्रभानो) हे अद्भुत प्रभावाले परमेश्वर! आप (विभक्ता असि) धनों का विभाजन करते हैं (आ) जैसे कि (सिन्धोः) बहती हुई नदी के (उपाके) समीप के खेतों में (ऊर्मा) नदी के जलप्रवाह का विभाजन किया जाता है। हे परमेश्वर! (दाशुषे) दानशील व्यक्ति के निमित्त आप (सद्यः) शीघ्र (क्षरसि) धन का प्रवाह करते हैं।

[ऊर्मा=ऊर्मिम् (सायण)। परमेश्वर की इच्छा है कि समग्र प्रजाजनों में उस के धन का समुचित विभाजन हो। इसी उद्देश्य के लिये वह दानशील व्यक्ति के प्रति धन का प्रवाह करता है।]

१ २ ३ १ १र ३ १ २

१४९९—आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु।

२ ३ २ ३ १ २

शिक्षा वस्वो अन्तमस्य॥ ३॥ ॥ ४ (टा)॥

हे परमेश्वर ! (नः) हम सब को, (परमेषु वाजेषु) सर्वोत्कृष्ट धनों के सम्बन्ध में (आ भज) हिस्सेदार कीजिये, (मध्यमेषु) मध्यकोटि के धनों में हमें (आ भज) हिस्सेदार कीजिये, और (अन्तमस्य) निचली कोटि के (वस्वः) धन का भाग भी (शिक्ष) हम सब को दीजिये।

[सर्वोत्कृष्ट धन है आध्यात्मिक; यथा श्रद्धा, भक्ति, स्तुति, उपासना, धारणा, ध्यान, समाधि। मध्यम कोटि का धन है मानसिक धन; यथा स्वाध्याय, मनन, सदुपदेश श्रवण आदि। निचली कोटि का धन है शारीरिक ; यथा स्वास्थ्य, दीर्घायु, नीरोगता, अन्न, वस्त्र, मकान, प्राकृतिक ऐश्वर्य]

[घा० १३। उ० १। स्व० २]

सूक्त ५

३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५००—अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह।
३ १ २र
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥

(अहम्) मैं उपासक ने, (इत् हि) निश्चय से, (पितुः परि) परमपिता परमेश्वर से (ऋतस्य) सत्य का (मेधाम्) ज्ञान (जग्रह) ग्रहण किया है, और (अहम्) मैं (सूर्य इव) जैसे सूर्य प्रकाश से प्रकाशित हैं वैसे सत्यज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित (अजनि) हो गया हूँ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५०१—अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्।
२उ ३ २ ३ २ ३ २
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ २ ॥

(अहम्) मैं उपासक (प्रत्नेन जन्मना) पहिले जन्मों के शुभ संस्कारों के कारण, (कण्ववत्) अन्य मेधावियों के सदृश, (गिरः) वेदवाणियों की (शुम्भामि) शोभा को बढ़ा रहा हूँ, (येन) जिस से (इन्द्रः) परमेश्वर (इत्) अवश्य (शुष्मम्) बल (दधे) प्रदान करता है।

"प्रत्नेन जन्मना"— इन शब्दों द्वारा पुनर्जन्म का सिद्धान्त परिपुष्ट होता है। कण्व=मेधावी (निघं० ३।१५)]

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
१५०२—ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।
१ २र ३ १ २
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ ५ (थु) ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ये) जो अनृषिकोटि के लोग (त्वाम्) आप की (न तुष्टुवुः) स्तुति नहीं करते, (च) और (ये ऋषयः) जो ऋषिकोटि के लोग

(त्वाम्) आप की स्तुति करते हैं, उन में से (मम) मेरी स्तुतियों द्वारा (सुष्टुतः) उत्तम स्तुतियां पा कर आप (वर्द्धस्व इत्) सब की ही वृद्धि कीजिये ।

[मन्त्र में तीन प्रकार के लोगों का वर्णन हुआ है, अनृषि, ऋषि, महर्षि का। उपासक महर्षि कोटि का प्रतीत होता है, तभी इस उपासक की स्तुतियों को "सुस्तुतियां" कहा है (सुष्टुतः) । ऐसे महर्षि कोटि के उपासक सब की वृद्धि चाहते हैं, इसलिये सब की वृद्धि के लिये वे परमेश्वर की उत्तम स्तुतियां करते रहते हैं]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [धा० १४ । उ० २ । स्व० ५]

सूक्त ६

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१५०३—अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥ १ ॥

(सहस्कृत) हे साहस और धैर्य-पूर्वक योगसाधना द्वारा प्रकट किये गए (अग्ने) ज्ञानमय जगन्नेता ! (नः) हमारे (ब्रह्म) ब्रह्मप्रतिपादक वैदिक स्तवनों को आप (जोषि) प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिये, और (ये) जो ज्ञानाग्नियां (देवत्रा) देवकोटि के लोगों में हैं, और (ये) जो ज्ञानाग्नियां (आयुषु) मानुषकोटि के मननशील लोगों में हैं, (तेभिः) उन (विश्वेभिः अग्निभिः) सब ज्ञानाग्नियों से हमें सम्बद्ध कीजिये, और इस प्रकार (नः) हमारी (गिरः) स्तुतिवाणियों को (महय) महिमा-सम्पन्न कीजिये ।

देवत्रा=आध्यात्मिक देवों में । आयुषु=सांसारिक मनुष्यों में । अग्नि=ज्ञानाग्नि; यथा:="ज्ञानाग्निः सर्व-कर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन" (गीता) । मन्त्र में आध्यात्मिक तथा सांसारिक ज्ञानों की प्राप्ति की प्रार्थना है, अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति की प्रार्थना है]

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१५०४—प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ ११
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥ २ ॥

(अग्निः) ज्ञानमय जगन्नेता (सः) वह है, (यस्य) जिस के कि (वाजिनः) सब शक्तिशाली पदार्थ हैं, अर्थात् जो सभी शक्तिशाली पदार्थों का स्वामी है । (सः) वह (विश्वेभिः) सब प्रकार की (अग्निभिः) ज्ञानाग्नियों से (परीवृतः) घिरा हुआ है । (वाजैः) शक्तियों से (परीवृतः) घिरा हुआ, अर्थात् इन शक्तियों वाला वह जगन्नेता, (अस्मत्) हम से उत्पन्न हमारे (तनये तोके) पुत्रों और पौत्रों में (प्र आ) आ प्रकट हो ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५०५—त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥ ॥ ६ (डि)॥

(अग्ने) हे ज्ञानमय जगन्नेता ! आप (अग्निभिः) ज्ञानाग्नियों से सम्पन्न हैं; (त्वम्) आप (नः) हमारे (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान को (च) और (यज्ञम्) ब्रह्मोपासना रूपी यज्ञ को (वर्धय) बढ़ाइये। (देवतातये) देवयज्ञ [अग्निहोत्र] और परमात्मदेव सम्बन्धी उपासना-यज्ञ के विस्तार के लिये, (त्वम्) आप (नः) हमारे प्रति (रांगः) धनों को (चोदय) प्रेरित कीजिये, और हमें उस धन के (दानाय) दान करने में प्रेरित कीजिये।

[धा० १८। उ० ३। स्व० ३]

सूक्त ७

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१५०६—त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः।

१ २र ३क २र

स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ १ ॥

(सोम) हे सर्वप्रेरक तथा सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (वृक्तबर्हिषः) जिन्होंने बाह्य-यज्ञों अर्थात् अग्निहोत्रादि को पूर्ण कर लिया है ऐसे (प्रथमाः) श्रेष्ठ व्यक्ति, (महे वाजाय) महाबल अर्थात् योगज बल की प्राप्ति के लिये, तथा (श्रवसे) आप के गुणों के श्रवण-मनन के लिये, (त्वे) आप में (धियम्) अपनी प्रज्ञाओं और कर्मों को (दधुः) समर्पित कर चुके हैं। (वीर) हे प्रेरक ! (सः) वह (त्वम्) आप (नः) हमें (वीर्याय) योगसाधना में वीर बनने के लिये (चोदय) प्रेरित कीजिये।

[वृक्त=वृजी वर्जने; बर्हिः=Fire (आपटे)]

३क २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

१५०७—अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कंचिज्जनपानमक्षितम्।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (श्रवसा) आप के गुणों के श्रवण के कारण, आप ने, हम में भक्तिरस के (कंचित्) किसी एक (उत्सं न) मानो स्रोत को (अभि) प्रत्यक्षरूप में, (अभि) वस्तुतः प्रत्यक्षरूप में, (ततर्दिथ) खोद कर प्रकट कर दिया है, जो स्रोत कि (अक्षितम्) क्षीण नहीं होता, (न) जैसे कि (भरमाणः) कूप से पानी निकालने वाला कूपकार, (शर्याभिः) हाथों द्वारा, (गभस्त्योः) तथा बाहुओं द्वारा, (जलपानम्) पीने योग्य जल को (ततर्दिथ) खोद निकालता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१५०८—अजीजनो अमृत मर्त्याय अमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥ ॥ ७ (ले) ॥

(अमृत) हे अमर परमेश्वर ! (ऋतस्य, अमृतस्य, चारुणः) सत्यस्वरूप, अमृत, और सुन्दर आप हैं। आप के दर्शाए (धर्मन्) धर्म-मार्ग में वर्तमान (मर्त्याय)

उपासक मनुष्य के लिये, आप ने (कम् अजीजनः) सुख प्रकट किया है। (सदासरः) आप सदा से आनन्दरस-सरोवर है। आप (अच्छ) उपासक के प्रति (वाजं सनिष्यदत्) शक्ति का प्रवाह बहाते रहते हैं।

[धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ७]

सूक्त ८

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१५०९—एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधाँसि चोदयते महित्वना ॥ १ ॥

हे उपासको ! (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति, (इन्दुम्) चन्द्रमा के सदृश शीतल भक्तिरस को (आ सिञ्चत) पूर्णतया सींचो। परमेश्वर (सोम्यं मधु) भक्तिरस की मिठास को (पिबाति) स्वीकार करता है, और (महित्वना) निज महिमा द्वारा, उपासक के प्रति, (राधांसि) आध्यात्मिक धन (प्र) प्रभूत मात्रा में (चोदयते) प्रेरित करता है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१५१०—उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

नूनँ श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ २ ॥

(हरीणां पतिम्) इन्द्रियों के (पतिम्) पति, तथा (राधः पृञ्चन्तम्) आध्यात्मिक और सांसारिक सम्पत्ति वाले परमेश्वर के (उप) शरणागत हो कर (अब्रवम्) मैंने परमेश्वर को कहा है कि (स्तुवतः) स्तुति करने वाले मुझ उपासक के (अश्व्यस्य) मन की बात तो (नूनम्) अवश्य (श्रुधि) सुन लीजिये।

[हरि का अर्थ होता है,—घोड़ा। यहाँ "हरि" पद द्वारा इन्द्रियों का वर्णन हुआ है, इसलिये "अश्व" पद मन के लिये प्रयुक्त हुआ है]

१ ३क ऽ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

१५११—न ह्यँ ङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

न की राया नैवथा न भन्दना ॥ ३ ॥ ॥ ८ (चा) ॥

(अङ्ग) हे मेरे जीवन के अङ्गभूत परमेश्वर ! (पुराचन) पूर्वकाल में भी (त्वम् वीरतरः) आप से बढ़ कर कोई विक्रम-पराक्रमशाली (न हि) नहीं (जज्ञे) हुआ; (न किः) न कोई (राया) धन की दृष्टि से, (न एवथा) न रक्षा की दृष्टि से, और (न) न (भन्दना) अभिवादन तथा स्तुति की दृष्टि से आप से कोई बढ़ कर हुआ है।

[एवथा = अवथा = अवनेन]

[धा० १७ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त ९

३ २ ३ १ २   ३ १   २र
१५१२—नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
१ २ ३ १ २   ३ १ २
पतिं वो अध्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ १ ॥ ॥ ९ (व) ॥

(ओदतीनाम्) उषाओं के सदृश [ज्ञान का] प्रकाश देने वाली (धेनूनाम्) वेदवाणियों का (नदम्) नाद करने वाले, (पतिम्) रक्षक परमेश्वर से हे उपासक! तू ज्ञान के प्रकाश की (इषुध्यसि) याचना किया कर; (योयुवतीनाम्) परमेश्वर के साथ संग कराने वाली (धेनूनाम्) वेदवाणियों का (नदम्) नाद करने वाले (पतिम्) रक्षक परमेश्वर से तू उस के साथ संग करने की (इषुध्यसि) प्रार्थना किया कर; (अध्न्यानाम्) न हनन करने योग्य (धेनूनाम्) नवप्रसूता गौओं के (पतिम्) रक्षक परमेश्वर से तू ऐसी गौओं की प्राप्ति के लिये (इषुध्यसि) प्रार्थना किया कर। (वः)तुम सब उपासकों को अपने प्रभु से ऐसी प्रार्थनाएँ करनी चाहियें।

[ओदती=उषा (निघं० १।८)। योयुवतीनाम्=यु (मिश्रण; संग)। धेनुः=वाक् (निघं० १।११)। उपासक का सात्विक अन्न है गोदुग्ध। इसलिये गौओं की प्रार्थना की है। "अघ्न्या" पद दर्शाता है कि वेददृष्टि में गौएं हनन के योग्य नहीं। इषुध्यति=याञ्चा (निघं ३।१९)]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [घा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १०

३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २
१५१३—देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
३ १ ३ २ ३ १ २   ३ १ २र ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ १ ॥

हे उपासको ! (द्रविणोदाः) धन का दाता (देवः) प्रभु देव (वः) तुम्हारे (पूर्णां आ सिचम्) भक्तिरस के पूर्ण प्रवाह को (विवष्टु) चाहता है, (उद् वा सिञ्चध्वम्) हृदय को ऊपर तक भक्तिरस से भर कर सींचो, (उप वा पृणध्वम्) प्रभुदेव के समीप हो कर इसे भक्तिरस से पूर दो, (आत् इत्) इस के बाद ही प्रभुदेव (वः) तुम्हारे कार्यभार का (ओहते) वहन करता है।

१   २र   ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५१४—तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
१ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥१०(लि)

(होतारम्) सब के दाता, (अध्वरस्य) हिंसारहित यज्ञियकर्मों के (प्रचेतसम्) ज्ञाता तथा ज्ञापक, (वह्निम्) संसार-भार का वहन करने वाले (तम्) उस

परमेश्वर को, (देवा:) दिव्य उपासक (अकृण्वत) अपना लेते हैं, अपनी ओर झुका लेते हैं। (अग्निः) प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय जगन्नेता (विधते) सेवावृत्ति वाले, (दाशुषे) आत्मसमर्पक, (जनाय) उपासक के लिये (सुवीर्यम्) उत्तम सामर्थ्य देने वाले (रत्नम्) मोक्षरूपी रत्न (दधाति) धारण करता है।

[धा० १४। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ११

१२ ३१२३ १ २ ३१ २३२

१५१५—अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः॥ १॥

(गातुवित्तमः) उपासक की गतिविधियों के सम्यक् ज्ञाता का (अदर्शि) मैंने दर्शन कर लिया है, (यस्मिन्) जिस के निमित्त कि उपासक (व्रतानि) अपने व्रतकर्मों को (आ दधुः) समर्पित कर देते हैं। (उप उ) वह निश्चत से हमारे समीप है। (सुजातम्) साक्षात् हुए, (आर्यस्य वर्धनम्) और श्रेष्ठ व्यक्तियों को बढ़ाने वाले (तम्) उस (अग्निम्) जगन्नेता का (नः गिरः) हमारी स्तुतिवाणियां (नक्षन्तु) प्राप्त हों।

२ ३१२ ३१२३१ २ ३२

१५१६—यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।

३ २ ३१२ ३२ ३ २ ३ १ २

सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत॥ २॥

(चर्कृत्यानि कृण्वतः) संहार तथा दुष्कर्मों के फलदान आदि कर्मों को करने वाले (यस्मात्) जिस जगन्नेता से, (कृष्टयः) दुष्कर्मी लोग (रेजन्त) काम्पते हैं; तथा (सहस्रसाम्) सुकर्मियों को हजारों प्रकार के सुख देने वाले उस (अग्निम्) जगन्नेता को, (त्मना) अपने हृदय से, और (धीभिः) अपने कर्मों द्वारा, (नमस्यत) सदा नमस्कार किया करो, (इव) जैसे कि (मेधसातौ) मेधा की प्राप्ति के लिये गुरु को नमस्कार किया जाता है।

१ २र ३ २

१५१७—प्र दैवोदासो अग्नि॥ ३॥ ११ (हा)॥

(दैवोदासः) देवाधिदेव तथा कुवासनाओं का क्षय करने वाला (अग्निः देवः) ज्योतिर्मय परमात्मा, (मज्मना) बल की दृष्टि से (इन्द्रः) विद्युत् और सूर्य के (न) सदृश है। वह (पृथिवीं मातरम्) भूतों का निर्माण करने वाली पृथिवी को, (अनु) अपनी इच्छानुसार (वि वावृते) वृत्ताकार परिधि में चला रहा है, वह (नाकस्य) आनन्द के (शर्मणि) प्रशान्त सागर में (तस्थौ) सर्वदा स्थित रहता है।

[धा० १६। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त १२

२ ३ १ २ ३
१५१८—अग्न आयूंषि पवस ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (आयूंषि) हमारे जीवनों को (पवसे) पवित्र करते हैं। (नः) हमें (ऊर्जम्) बलशक्ति और प्राणशक्ति, तथा (इषम्) अभीष्ट मोक्ष (आसुव) प्रदान कीजिये, और (दुच्छुनाम्) बुरे अर्थात् वैषयिक सुखों को (आरे) हम से दूर (बाधस्व) कीजिये।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५१९—अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
१ २ ३ २
तमीमहे महागयम् ॥ २ ॥

(अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (ऋषिः) ऋषि है, वेदों तथा वेदार्थों का द्रष्टा है, (पवमानः) पवित्र करने वाला, (पाञ्चजन्यः) विस्तृत प्रजाजनों का हितकारी है, (पुरोहितः) प्रत्यक्षरूप में सर्वहितकारी है। (तम्) उस (महागयम्) ब्रह्माण्डरूपी महान् घर वाले को (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं।

[पञ्च=पचि विस्तारे, यथा "पञ्चास्य"=शेर]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१५२०—अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
१ २ ३२उ ३ १ २
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ३ ॥ ॥ १२ (फ) ॥

(अग्ने) हे प्रकाशमय प्रभो ! (स्वपाः) आप स्वयं सुकर्मी हैं, और हमारे कर्मों को उत्तम बनाते हैं। आप (अस्मे) हमें (सुवीर्यम्) उत्तमवीर्य, (वर्चः) तथा तेज (पवस्व) प्रदान कीजिये, और (मयि) मुझ में (पोषं रयिम्) सदा पुष्टि करने वाली आध्यात्मिक सम्पत्ति (दधत्) स्थापित कीजिये।

[धा० १०। उ० २। स्व० १]

सूक्त १३

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५२१—अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ देवान्वक्षियक्षि च ॥१॥

(पावक) पवित्र करने वाले (अग्ने देव) हे प्रकाशमय देव !, (रोचिषा) ज्ञानप्रकाश देने वाली, तथा (मन्द्रया) आनन्द देने वाली (जिह्वया) वेदवाणी द्वारा, हमें (देवान) दिव्यगुण (आ वक्षि) प्राप्त कराइये, (च) और (यक्षि) हमारे उपासना यज्ञों को सफल कीजिये।

[जिह्वा=वाक् (निघं० १।११)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१५२२—तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
३ २उ ३ १ २
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

(घृतस्नो) हे प्रकाश के स्रोत ! (चित्रभानो) हे अद्भुत प्रभा वाले !, (स्वर्दृशम्) स्वर्गीय जीवन का मार्ग दिखाने वाले (तं त्वा) उस आप को (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं । (वीतये) नये आध्यात्मिक जन्म के लिये हमें (देवान् आ वह) दिव्यगुण प्राप्त कराइये ।

[स्नु=प्रस्रवणे । घृत-घृ दीप्तौ । वीतये=वी (प्रजनन)]

३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५२३—वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तँ समिधीमहि ।
१ २ ३ १ २ ३ २
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥ १३ (टौ) ॥

(कवे) हे वेदकाव्य के कवि ! (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप सर्वाग्रणी !, (वीतिहोत्रम्) भक्तिरस की आहुति चाहने वाले, (द्युमन्तम्) द्युतिसम्पन्न, तथा (बृहन्तम्) सर्वतो महान् आप को, हम उपासक, (अध्वरे) हिंसारहित उपासना-यज्ञों में (समिधीमहि) सम्यक् प्रदीप्त करते हैं ।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [धा० १८ । उ० १ । स्व० नास्ति ।]

सूक्त १४

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५२४—अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।
१ २ ३ १ २
विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥

(वन्द्य) हे अभिवादन और स्तुति के योग्य (अग्ने) प्रकाशमय जगन्नेता ! (गायत्रस्य) गायत्री आदि छन्दों वाले सामगानों के (प्र भर्मणि) सम्पादन में, तथा (विश्वासु धीषु) उपासना सम्बन्धी सब कृत्यों में (ऊतिभिः) रक्षासाधनों द्वारा आप (नः) हमारी (अव) रक्षा कीजिये ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५२५—आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २ ॥

(अग्ने) हे सुपथ पर चलाने वाले प्रभो ! (नः) हमें (रयिम्) वह आध्या-

त्मिक सम्पत्ति (आ भर) प्रदान कीजिये जो कि (सत्रासाहम्) सत्यमार्ग पर चलने का साहस प्रदान करे, (वरेण्यम्) वरणीय हो, श्रेष्ठ हो, और (विश्वासु पृत्सु) सब देवासुर-संग्रामों में (दुष्टरम्) अपराभवनीय हो।

["अग्ने नय सुपथा राये" (यजु. ४०।१६)।]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५२६—आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्।
३ १ २ ३ १ २
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ ॥ १४ (वौ) ॥

(अग्ने) हे सुपथ पर चलाने वाले प्रभो!, (जीवसे) जीने के लिये, (सुचेतुना) उत्तम चेतना के साथ-साथ (नः) हम में (रयिम्) ऐसी आध्यात्मिक सम्पत्ति का (आ धेहि) आधान कीजिये, जोकि (विश्वायु पोषसम्) सभी मनुष्यों का पालन-पोषण करे, (मार्डीकम्) और सब के लिये सुखकारी हो।

[आयुः=मनुष्य (निघं. २।३))

[धा० १५। उ० नास्ति। स्व० नास्ति।]

सूक्त १५

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५२७—अग्निँ हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिष।
१ २ ३ १ २
तेन जेष्म धनंधनम् ॥ १ ॥

(नः) हमारे (धियः) विचार, कर्म, और ध्यानवृत्तियां, (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता को (हिन्वन्तु) हमारी ओर प्रेरित करें, (इव) जैसे कि (आजिषु) संग्रामों में (आशुम्) शीघ्रगामी (सप्तिम्) अश्व को, अश्वारोही योद्धा प्रेरित करता है। (तेन) उस जगन्नेता की प्रेरणा पा कर हम (धनं धनम्) नानाविध आध्यात्मिक सम्पत्तियों पर (जेष्म) विजय पा लेते हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २
१५२८—यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या।
१ २ ३ १ २
तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! (यया) जिस आप की (ऊत्या सेनया) रक्षारूपी सेना द्वारा हम (गाः) पार्थिव भोगों पर (आ करामहे) विजय पा लेते हैं, (ताम्) उस रक्षा को (नः) हमारे लिये (हिन्व) और अधिक बढ़ाइये, ताकि (मघत्तये) हम आध्यात्मिक सम्पत्ति-लाभ कर सकें, और उस सम्पत्ति को दानरूप में औरों को दे सकें।

(मघत्ति=मघ (सम्पत्ति)+दा+क्ति)

१ २ ३२ ३१ २ ३१ १र ३ १२

१५२९—आग्ने स्थूरँ् रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।

३ २उ ३१२ ३२

अङ्घि खं वर्तया पविम् ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! आप हमें (स्थूरम्) स्थिर रहने वाली (पृथुं रयिम्) महा सम्पत्ति अर्थात् योगज सम्पत्ति (आ भर) प्रदान कीजिये, जिस से (गोमन्तम्) हमारी इन्द्रियां प्रशस्त हो जायें, (अश्विनम्) और हमारे मद प्रशस्त हो जायें। हे प्रकाशमय प्रभो ! (खम्) आप हमारे हृदयाकाशों को अपने प्रकाशों द्वारा (अंग्धि) प्रकाशित कर दीजिये, तदनन्तर इन हृदयों में (पविम्) पवित्र वाणी को (वर्तय) प्रेरित कीजिये ।

[पवि=वाक् (निघं० १।११)

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ १र ३ २

१५३०—अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यँ् रोहयो दिवि ।

२ ३ २ ३ १ २

दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! आप ने (अजरम्) जरारहित अर्थात् जीर्ण न होने वाले (सूर्यं नक्षत्रम्) सूर्यरूपी नक्षत्र को (दिवि) द्युलोक में (आ रोहयः) आरूढ़ किया हैं, चढ़ाया है, और आप ने (जनेभ्यः) प्राणियों के लिये (ज्योतिः दधत्) सूर्य को ज्योतिरूप में स्थापित किया है ।

[रात्रि के समय द्युलोक में जो चमकते तारे दिखाई देते हैं, वे प्रायः कर के सब सूर्यरूप हैं। दूरी के कारण वे छोटे-छोटे दिखाई देते हैं। हमारा सूर्य समीप होने के कारण बड़ा दिखाई देता है। यह सूर्य दिन का नक्षत्र है। नक्षत्र का अर्थ है "न क्षीण होने वाला"। इसी भाव को "अजर" शब्द भी प्रकट करता है। अथर्व वेद में २८ नक्षत्रों का भी वर्णन हुआ है (अथर्व. काण्ड १९। सूक्त ७, ८)। इन नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा माना है। ये २८ नक्षत्र वे हैं जिन में चन्द्रमा गति करता है, एक मास में एक बार गति करता है]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

१५३१—अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठ श्रेष्ठ उपस्थसत् ।

१ २ ३ २उ ३ १ १

बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥ ५ ॥ ॥ १५ (था) ॥

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय प्रभो ! आप (विशाम्) प्रजाजनों को (केतुः) ज्ञान-प्रकाश देने वाले (असि) हैं, आप (प्रेष्ठः) अतिप्रिय, और (श्रेष्ठः) सर्वोत्तम हैं, (उपस्थसत्) आप प्रजाओं के हृदयों की गोदियों में स्थित हैं। (स्तोत्रे) स्तोता के लिये (वयः) दीर्घायु (दधत्) प्रदान कीजिये, और उसे (बोध) आध्यात्मिक बोध प्रदान कीजिये ।

[घा० १९ । उ० २ । स्व० २]

सूक्त १६

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
१५३२—अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पति पृथिव्या अयम् ।
३ १ २र
अपाँ रेताँसि जिन्वति ॥ १ ॥

(अग्निः) ज्योतिर्मय प्रभु (मूर्धा) संसार का शिरोमणि है, (दिवः) द्युलोक की (ककुत्) सर्वोच्च शक्ति है, (अयम्) और यह (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी है। (अपाम्) कर्मों के (रेतांसि) बीजों को, अर्थात् संस्कारों को, (जिन्वति) तृप्त करता है।

[जिन्वति=संस्कारों को तृप्त करने के दो अभिप्राय हैं। कर्मों के करने के लिये उन्हें शुद्ध करना, जैसे कि सुषुप्ति के अनन्तर संस्कार पुनः उद्बुद्ध हो कर कर्मों के प्रेरक हो जाते हैं। (२) तृप्ति का अभिप्राय यह भी है कि जीवन्मुक्तों के संस्कारों को पुनः उद्बुद्ध न होने देना, परिणामरूप में जीवन्मुक्त शरीर आदि से मुक्त हो जाते हैं]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
१५३३—ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ २ ॥

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय प्रभो ! (वार्यस्य [1]) वरणीय (दात्रस्य [2]) तथा सब के त्राण के लिये दान करने योग्य धनों के (ईशिषे) अधीश्वर हैं। आप (स्वः) सांसारिक सुखों और सुखसाधनों के (पतिः) रक्षक तथा स्वामी हैं। (स्तोता) आप के गुणों का स्तवन करने वाला मैं उपासक, (तव) आप की (शर्मणि) शरण में (स्याम्) सदा रहूँ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१५३४—उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
२ ३ १ २ ३ १ १
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ ३ ॥ ॥ १६ (ली) ॥

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय प्रभो ! (तव) आप की (शुचयः) पवित्र, (शुक्रा) शुभ, (भ्राजन्तः) सुप्रदीप्त (अर्चयः) ज्वालाएं, तथा (तव) आप की (ज्योतींषि) नानाविध ज्योतियां (उद् ईरते) मेरे हृदय में उदित हो रही हैं, प्रकट हो रही हैं।

(अर्चयः, ज्योतींषि=हृदय में चित्त को लगा कर जब ध्यान किया जाता है तब ध्यान की दृढ़ता में नानाविध ज्योतियां प्रकट होने लगती हैं। योगदर्शन, १।३६ के व्यास भाष्य में लिखा है कि "बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरं, तत्र स्थिति वैशारद्यात् प्रवृत्तिः, सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते", अर्थात् हृदयस्थ बुद्धि सत्त्व, में

(१) वार्यम्=Blessing, Boon (आपटे)। (२) दात्र=दा+त्र।

अर्थात् सत्त्वगुणमय बुद्धि तत्त्व में जब मन स्थिर हो जाता है, तब सूर्य, चन्द्र, ग्रह, और मणियों की प्रभाएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है कि अभ्यास प्रक्रम में अभ्यासी को कोहरा, धूम्र, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनु या सितारे, विद्युत्, स्फटिक, चन्द्रमा,—ऐसी ज्योतियां प्रकट होने लगती हैं, जो कि ब्रह्माभिव्यक्ति के पूर्वरूप हैं। यथाः—नीहार धूम्रार्कानिलानलानां खद्योत विद्युत् स्फटिक शशीनाम्। एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे" (श्वेताश्व. अध्याय २, खण्ड ११)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० ४ उ० नास्ति। स्व० ४]

इति सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७—१ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥



अथ पञ्चदशोऽध्यायः।

[२]

अथ सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७—२ ॥

(१—१४) १, ११, गोतमो राहूगणः; २, ६ विश्वामित्रो गाथिनः ३ विरूप आङ्गिरसः; ४, ७, भर्गः प्रागाथः, ५ त्रित आप्त्यः; १० सोभरिः काण्वः; १२ गोपवन आत्रेयः; १३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आङ्गिरसो वा; १३ प्रयोगो भार्गवः; पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो या, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रवान्यतरो वा॥ अग्निः॥ १—३, ६, ९, १४ गायत्री; ४, ७, ८ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ५ त्रिष्टुप्; १० काकुभः प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); ११ उष्णिक्; १२ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः (अनुष्टुप्+गायत्र्यौ); १३ जगती॥

सूक्त १

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३क २र
१५३५—कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः।
२ ३ १ २ ३ २
को ह कस्मिन्नसि श्रितः॥ १॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! (ते) आप के (जनानाम्) प्रजाजनों का (जामिः) सच्चा बन्धु (कः) कौन है?, (कः) और कौन है (दाश्वध्वरः) जिसने कि आप के प्रति हिंसारहित उपासना-यज्ञ समर्पित कर दिया है?, (कः ह) और आप कौन हैं?, तथा आप (कस्मिन्) किस उपासक में (श्रितः असि) आश्रय पाए हुए हैं?

२ ३ १ १र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५३६—त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (जनानाम्) प्रजाजनों के (त्वम्) आप ही (जामिः) सच्चे बन्धु हैं, आप (मित्रः प्रियः सखा असि) स्नेह करने वाले, प्रिय, तथा सखा हैं, आप (सखिभ्यः ईड्यः) सखाओं से स्तुति के योग्य हैं ।

[मन्त्र १५३५ के प्रश्नों के उत्तर मन्त्र १५३६ में दिये गये हैं। "कः जामिः" का उत्तर है "त्वं जामिः" । "कः दाश्वध्वरः" का उत्तर है "सखिभ्यः ईड्यः" । यही उत्तर है "-कस्मिन् श्रितः" का। "को ह" का उत्तर है मित्रः, प्रियः, सखा । ईड्यः=स्तुति और प्रार्थना के सम्बन्ध में वैदिक भावना यह है कि प्रत्यक्षरूप में उपस्थित हुए परमात्मा की स्तुति प्रार्थना वस्तुतः स्तुति-प्रार्थना है । और परमात्मा का प्रत्यक्ष तब होता है जब कि उपासक अपने आप को तथा अपने सर्वस्व को परमात्मा के प्रति समर्पित कर देता है । अतः इस में "दाश्वध्वरः" की भावना स्पष्ट हो जाती है । परमात्मा के प्रत्यक्ष होने का अभिप्राय है उस का उपासक के हृदय में अभिव्यक्त हो जाना । जब परमात्मा उपासक के हृदय का वासी बन जाता है तो वह उपासक के हृदय में आश्रय पाए हुए होता है । अतः "कस्मिन् श्रितः" का उत्तर भी "सखिभ्यः ईड्यः" इन शब्दों में मिल जाता है]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
१५३७—यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
२ ३ २ ३ १ २र
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥ ॥ १ (रु) ॥

(अग्ने) हे प्रकाशमान प्रभो ! (मित्रावरुणा नः) हम में मैत्रीभावना और पापनिवारण भावना को (यज) सुसंगत कीजिये; (देवान्) हम में सब प्रकार के दिव्यगुणों को (यज) सुसंगत कीजिये; (बृहत् ऋतम्) हम में "महान्-सत्य" व्रत को सुसंगत कीजिये; (स्वम्) अपने आप को (यक्षि) हम में सुसंगत कीजिये, सम्बद्ध कीजिये; (दमम्) हम में इन्द्रिय-दमन को सुसंगत कीजिये ।

[धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ५]

सूक्त २

३ १ २ ३क २र ३ १ २र ३ २
१५३८—ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमाँसि दर्शतः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

(ईडेन्यः) स्तुति के योग्य, (नमस्यः) नमस्कार के योग्य, (दर्शतः) सर्वद्रष्टा, तथा (वृषा) सुखवर्षी परमात्मा, (सम् इध्यते) हृदयों में प्रदीप्त किया जाता

है, और प्रदीप्त हो कर (अग्निः) प्रकाशमान परमात्मा (तमांसि) हमारे अज्ञानान्धकारों को (तिरः) तिरस्कृत करता है, दूर करता है।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५३९—वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।
२ ३ १ २
तं हविष्मन्त ईडते ।। २ ।।

(उ) निश्चय से (वृषा) आनन्दरस की वर्षा करने वाला (अग्निः) जगन्नेता (समिध्यते) हृदयों में प्रदीप्त किया जाता है, प्रदीप्त हो कर जगन्नेता (देव वाहनः) उपासकों के प्रति दिव्यगुण प्राप्त कराता है, (न) जैसे कि (अश्वः) अश्व एक स्थान से अभीष्ट स्थान में पदार्थों को प्राप्त कराता है। (हविष्मन्तः) आत्मसमर्पण की हवि वाले उपासक (तम्) उस जगन्नेता की (ईडते) स्तुतियां गाते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५४०—वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने दीद्यतं बृहत् ।। ३ ।। ।। २ (लि) ।।

(वृषन्) हे आनन्दरसवर्षी ! (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप !, (वृषणः वयम्) भक्तिरसों की वर्षा करने वाले हम,—(वृषणम्) आनन्दरसवर्षी, (बृहत् दीद्यतम्) तथा महाद्युति से सम्पन्न (त्वा) आप को (समिधीमहि) सम्यक् अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करते हैं।

[धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त ३

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५४१—उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः ।
१ २ ३ १ २
अग्ने शुक्रास ईरते ।। १ ।।

(दीदिवः) हे प्रकाशमान (अग्ने) जगन्नेता ! (समिधानस्य ते) प्रदीप्त हुए आप की (बृहन्तः) बड़ी-बड़ी (शुक्रासः) शुभ्र (अर्चयः) ज्वालाएं (उद् ईरते) हमारे हृदयाकाशों में उठ रही हैं।

[देखो मन्त्र १५३४]

१ २ ३ २ ऽ १ २ ३ १ २
१५४२—उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।
१ २ ३ १ २
अग्ने हव्या जुषस्व नः ।। २ ।।

(हर्यत) हे भक्तिरस की कामना वाले (अग्ने) जगन्नेता ! (घृताचीः)

स्नेह से परिपूर्ण (मम) मेरी (जुह्वः) हार्दिक भावनाएँ, (त्वा) आप के (उप) समीप (यन्तु) पहुचें। आप (नः) हमारे (हव्या) श्रद्धा और भक्तिरूपी हव्यों को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिये।

[जुह्वः=अग्नि में घृत की आहुति स्रुव अर्थात् यज्ञिय-चम्मच द्वारा दी जाती है। मन्त्र में "जुह्वः" का अभिप्राय है "हार्दिक-भावनाएँ", और घृत= स्नेह, प्रेम]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५४३—मन्द्रँ होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
३ १ २ ३ १ २
अग्निमीडे स उ श्रवत्॥ ३॥ ॥ ३ (ह)॥

(मन्द्रम्) आनन्दमय, (होतारम्) दाता, (ऋत्विजम्), सब ऋतुओं में किये गए उपासना-यज्ञों को सफल बनाने वाले, (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रभा वाले, (विभावसुम्) विविध प्रकाशों के धनी, (अग्निम्) जगन्नेता की (इडे) मैं स्तुति करता हूँ, (सः) वह जगन्नेता (उ) निश्चय से (श्रवत्) हमारी स्तुतियां और प्रार्थनाएँ सुनता है।

[धा० ६। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ४

३ १ २ ३ १ २ ३ २ऽ २ ३ १ २
१५४४—पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥ १॥

(ऊर्जांपते) हे बलों और प्राणों के पति !, (वसो) हे सर्वत्र बसे हुए ! (अग्ने) ज्ञान-प्रकाश से सम्पन्न प्रभो ! (एकया) एक वाणी अर्थात् ऋग्वेद के उपदेश द्वारा (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये। (उत) और (द्वितीयया) दूसरी वाणी अर्थात् यजुर्वेद के उपदेश द्वारा हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये। (तिसृभिः गीर्भिः) ऋक्, यजुः, सामरूपी तीन वाणियों के उपदेशों द्वारा (पाहि) हमारी रक्षा कीजिये। तथा (चतसृभिः) चारों वेदवाणियों के उपदेशों द्वारा (पाहि) हमारी रक्षा कीजिये।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५४५—पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव।
१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे॥ २॥
॥ ४(यि)॥

हे जगन्नेता ! (विश्वस्मात्) सभी (रक्षसः) राक्षसी-भावों और राक्षसी-

कर्मों से, तथा सभी (अराव्णः) अदानभावनाओं से (पाहि) आप हमारी रक्षा कीजिये। (वाजेषु) इस निमित्त बलों की प्राप्ति में (नः) हमारी आप (प्र स्म अव) खूब रक्षा कीजिये। (देवतातये) आप देव की प्राप्ति के निमित्त विस्तारित भक्ति यज्ञों की सफलता के लिये, (वृधे) तथा इन यज्ञों की वृद्धि के लिये, (त्वाम् इत् हि) आप ही (नेदिष्ठम्) नजदीकी (आपिम्) बन्धु को (नक्षामहे) हम प्राप्त होते हैं, आप की ही शरण में आते है।

[अराव्णः=विद्यादान, धनदान, रक्षादान, श्रमदान, भूदान,—आदि कई दान हैं। इन का दान न करना "अराव्णः" अर्थात् अदान भावनाएँ हैं]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [धा० १७। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ५

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५४६—इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

(राजन्) हे संसार के महाराज! (इनः) आप ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, (अरतिः) रति-रहित अर्थात् अलिप्त हैं, (समिद्धः) प्रदीप्त सम्पन्न हैं, (रौद्रः) पापियों के प्रति रुद्ररूप, (दक्षाय) प्रगति और वृद्धि प्रदान के लिये आप (सुषुमान्) प्रेरणाएँ देते हैं। (अदर्शि) मैंने आप का दर्शन पा लिया है। वह परमेश्वर (चिकित्) यथार्थवेत्ता है, वह (असिक्नीम्) तामसी अर्थात् अज्ञानरात्री को (अपाजन्) दूर फैंकता हुआ (बृहता भासा) अपनी महाप्रभा द्वारा (रुशतीम्) चमकीली ज्ञानमय उषा को (वि भाति) चमकाता है। (एति) वह हृदयकाश में प्रकट होता है।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
१५४७—कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥

हे परमेश्वर! आप (यद्) जब (कृष्णाम्) काली तामसी चितवृत्तियों को, तथा (एनीम्) चितकवरी अर्थात् रजस्तमोमयी चित्तवृत्तियों को, (वर्पसा) निज समुज्ज्वल स्वरूप द्वारा, (अभि अभूत्) पराभूत कर देते हैं, तब आप (बृहतः पितुः) महापालक सूर्यरूपी पिता से (जाम्) उत्पन्न हुई (योषाम्) नानावर्णों से मिश्रित उषा के सदृश, (योषाम्) नानारूपों से मिश्रित सत्त्वगुणमयी "विशोका" वृत्ति को (जनयन्) जन्म देते हैं। तदनन्तर आप (ऊर्ध्वम् दिवः) ऊपर मस्तिष्क में (सूर्यस्य) सहस्रार-चक्ररूपी सूर्य की (भानुम्) प्रभा को (स्तभायन्) थामते हुए, (वसुभिः) मस्तिष्क में बसे हुए निज दिव्य तेजों द्वारा (वि भाति) विशेशरूप में चमकते हैं। (अरतिः) आप सर्वथा अलिप्त हैं, रतिरहित हैं।

[विशोका ज्योतिष्मती:—(योग १।३६)। व्यासमुनि कहते हैं कि "हृदय पुण्डरी के धारयतो या बुद्धि-संवित्। बुद्धिसत्वं हि भास्वरमाकाशकल्पं, तत्र स्थिति-

वैशारद्यात् प्रवृत्तिः, सूर्येन्दुग्रह मणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते, एषा प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीति उच्यते"। अर्थात् "हृदय कमल"—चित्त का स्थान है। योगी जब हृदयस्थ चित्त में धारणा ध्यान करता है तब उसे चित्त के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। यह बुद्धिसत्त्व अर्थात् सत्त्वगुणमय चित्त आकाश-सदृश शुद्ध है। यह चित्त, ध्याता को, उस समय सूर्य, चन्द्र, ग्रह, और मणियों की प्रभाओं के रूपों के सदृश नानाविध आकारों में नानारूपों में, दृष्टिगोचर होने लगता है"। मन्त्र में इस "विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति" को "ज्ञानमयी उषा" कहा है।

सूर्य या सहस्रार चक्रः—मन्त्र में "दिवः" पद द्वारा मस्तिष्क को सूचित किया है, तत्सम्बन्धी सूर्य "सहस्रारचक्र" है। शीर्ष्णो: द्यौः समवर्तत" (यजु० ३१। १३) में द्यु का सम्बन्ध सिर के साथ दर्शाया है। सहस्रार-चक्र का अर्थ है ऐसा चक्र जिस के ',अरे'' (spokes) हजारों हैं। सूर्य भी चक्राकार है, और उस की हजारों किरणें उस के हजारों "अरे" रूप है। इसीलिये सूर्य को "सहस्रांशु" भी कहते है। सहस्रार-चक्र तालु के ऊपर मस्तिक में स्थित है, और सब शक्तियों का केन्द्र है। नाना रंग के प्रकाश से युक्त सहस्र दलों वाले कमल जैसा है। पर ब्रह्म अपनी महाशक्ति के साथ यहां प्रकट होता है। इसी सहस्रार-चक्र में असम्प्रज्ञातसमाधि द्वारा जीवात्मा मुक्त हो जाता है (देखो पातञ्जल योग प्रदीप, ग्रन्थकार स्वामी ओमानन्द तीर्थ]

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ २
१५४८—भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारोऽअभ्येति पश्चात्।
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्
॥ ३ ॥ ॥ ५ (यो) ॥

(पश्चात्) तत्पश्चात् (भद्रः) कल्याणकारी तथा सुखदायी परमेश्वर, (भद्रया) कल्याण-कारिणी तथा सुखदायिनी सात्विक चित्तवृति के साथ (सचमानः) संगत हुआ-हुआ, (आ गात्) हृदयाकाश में आ प्रकट होता है, अर्थात् (जारः) तामसिक और रजस्तमोमयी चित्तवृत्तियों को जीर्ण-शीर्ण करता हुआ, (स्वसारम्) प्रभु की ओर स्वयं सरण करने वाली अर्थात् स्वभावतः सरण करने वाली सत्त्वगुणमयी चित्तवृत्ति की (अभ्येति) ओर आता है। (अग्निः) प्रकाशमय यह जगन्नेता (सुप्रकेतैः) योगियों द्वारा अच्छे प्रकार जाने हुए (द्युभिः) प्रकाशों के साथ, (वितिष्ठन्) हृदयाकाश में या सहस्रार चक्र में स्थित होता हुआ (उशद्भिः वर्णैः) अपने चमकीले वर्णों के साथ (रामम्) रमणीय जीवात्मा के (अभि) अभिमुख (अस्थात्) स्थिर हो जाता है।

[धा० २७। उ० नास्ति। स्व० ६]

सूक्त ६

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१५४९—कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्।
१ २ ३ १ २
वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय जगन्नेता !, (अङ्गिरः) हे अङ्गों और शरीरों के रसरूप !, (ऊर्जः न पात्) हे बलों और प्राणों को न गिरने देने वाले !, (देव) हे देवाधिदेव !,—(वराय) सर्वश्रेष्ठ तथा स्वीकरणीय, (मन्यवे) और सर्वज्ञ (ते) आप के लिये, (कया) किस विधि से, या कैसी भाषा में, मैं आपकी (उप स्तुतिम्) उपासनापूर्वक स्तुति करूँ ?,

[अर्थात् मैं अल्पबुद्धि हूँ, अतः अनभिज्ञ हूँ]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५५०—दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
१ २ ३ १ २र
कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥

उपासक के (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ सम्बन्धी (सहसः) साहस और धैर्य से (यहो) प्रकट होने वाले हे प्रभो ! मैं (कस्य) किस के (मनसा) मन द्वारा (दाशेम) आप के प्रति आत्मसमर्पण या स्तुति भेंट करूँ, (कत् उ) किस विधि से (इदं नमः)इस नमस्कार (वोचे) वचन का उच्चारण करूँ,—यह भी मैं नहीं जानता [यहुः=अपत्यनाम (निघं० २।२)। मनसा=आप मेरे मन की पहुँच से परे हैं]

१ ३ १र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
१५५१—अधा त्वँ हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यँ सुक्षितीः ।
१ २ ३ १ २
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ३ ॥ ॥ ६ (ट) ॥

(अधा) इस लिये हे परमेश्वर ! (त्वं हि) आप ही (नः विश्वाः) हम सब (सुक्षितीः) पृथिवीनिवासी प्रजाजनों को आचार-विचार से उत्तम (करः) कर दीजिये, और (गिरः) हमारी स्तुति-प्रार्थना की वाणियों को, (अस्मभ्यम्) हमारे लिये, (वाजद्रविणसः) बलशाली और आध्यात्मिक सम्पत्ति से भरपूर कर दीजिये।

[धा० १८ । उ० १ । स्व० १]

सूक्त ७

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५५२—अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशमय जगन्नेता ! आप अपनी (अग्निभिः) प्रज्वलित ज्वालाओं के साथ (आ याहि) आइये, प्रकट हूजिये (त्वा) आप (होतारम्) महादानी का (वृणीमहे) हम वरण करते हैं। (प्रयता) संयम सम्पन्न हमारी बुद्धि, (हविष्मती) समर्पणरूपी हवि की भेंट लिये हुए,—(यजिष्ठं त्वा) यज्ञों को सफल करने वाले आप को (आ अनक्तु) पूर्णतया अभिव्यक्त करे, ताकि आप (बर्हिः) हृदयासन पर (आ सद) आ विराजें।

[देखो मन्त्र १५४१]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१५५३—आच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥
॥ ७ (या) ॥

(सहसः) साहस और धैर्य के (सूनो) प्रेरक हे प्रभो!, (अङ्गिरः) हे अङ्ग-प्रत्यङ्ग और शरीरों के रसरूप जगदीश्वर !, (अध्वरे) हिंसारहित उपासना-यज्ञ में (त्वा अच्छ हि) आप के प्रति ही, (स्रुचः) हमारे हृदयरूपी यज्ञिय चमस (चरन्ति) श्रद्धारूपी घृत की आहुतियां दे रहे हैं। (ऊर्जो न पातम्) उपासक के बलों और प्राणों को न गिरने देने वाले, (घृतकेशम्) घृत द्वारा चमकने वाली प्राकृतिक अग्नि के सदृश श्रद्धारूपी-घृत द्वारा चमकने वाले (पूर्व्यम्) पूर्वकालों में भी विद्यमान अनादि, तथा कामनाओं के पूरक आप (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता को, (यज्ञेषु) भक्तिमय उपासना यज्ञों में (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं।

[सूनो=षू प्रेरणे]

[धा० १७। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ८

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५५४—अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १ ॥

(नः) हमारी (गिरः) स्तुतिप्रार्थनाओं की वाणियां, (शीरशोचिषम्) संसार में प्रसुप्तप्रकाश वाले, (दर्शतम्) मार्गदर्शी या दर्शनीय प्रभु के (अच्छ) प्रति (यन्तु) प्रवाहित होती हैं। और (यज्ञासः) हमारे उपासनायज्ञ, (नमसा) श्रद्धापूर्वक नमस्कारों के साथ,—(पुरुवसुम्) सर्वत्र वसे तथा महाधनी, और (पुरुप्रशस्तम्) बहुप्रशस्त प्रभु के (अच्छ) प्रति (यन्तु) प्राप्त होते हैं, (ऊतये) ताकि प्रभु हमारी रक्षा करे।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५५५—अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥
॥ ८ (टा) ॥

(वार्याणाम्) वाञ्छनीय आध्यात्मिक शक्तियों के (दानाय) दान की प्राप्ति के लिये, (सहसः सूनुम्) साहस और धैर्यपूर्वक अभ्यासमार्ग से प्रकट हुए, (जात-वेदसम्) वेदप्रवक्ता, (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप जगन्नायक के प्रति, हमारी स्तुति-

प्रार्थनाओं की वाणियां तथा नमस्कारों सहित उपासना-यज्ञ प्राप्त हों (मन्त्र संख्या १५५४), (यः) जो (अमृतः) अमर जगन्नायक कि (मर्त्येषु) मर्त्य प्रजाजनों में (द्विता अभूत्) दो प्रकार का हुआ है, अर्थात् (विशि) सामान्य प्रजाजनों में (आ होता) सब प्रकार की जीवन-सामग्री देने वाला, और (मन्द्रतमः) उपासकों को आध्यात्मिक-सुखप्रदाता हुआ है।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥ [धा० ८ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त ६

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २र

१५५६—अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम्।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥

(अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (अदाभ्यः) किसी भी शक्ति द्वारा दबाया नहीं जा सकता, वह (मानुषीणाम्) मानुष (विशाम्) प्रजाओं का (पुर एता) सन्मार्गदर्शक अग्रगामी नेता है। (रथः) रथ जैसे रथी को उसके उद्देश्य तक शीघ्र पहुँचा देता है वैसे परमेश्वर (तूर्णी) उपासक को उस के उद्देश्य तक शीघ्र पहुँचा देता है, परमेश्वर (सदा नवः) पुरातन होता हुआ भी सदा नवीन है, या सदा स्तुति-योग्य है।

[नवः=नु स्तुतौ]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१५५७—अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः।

१ २ ३ १ २

क्षयं पावकशोचिषः ॥ २ ॥

(दाश्वान् मर्त्यः) आत्मसमर्पक उपासक, (वाहसा) शक्तियां प्राप्त कराने वाले परमेश्वर की सहायता द्वारा, योगाभ्यास में (प्रयांसि अभि अश्नोति) प्रयास पर प्रयास करता है, और (पावकशोचिषः) पवित्र ज्योतिः स्वरूप परमेश्वर रूपी (क्षयम् अभि अश्नोति) घर का आश्रय पा लेता है।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१५५८—साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः।

३ २ ३ १ २

अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥ ॥ ६ (वि) ॥

(अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (अभियुजः विश्वाः) सम्मुख जुटीं सभी विरोधी शक्तियों को (साह्वान्) पराभव करता, (देवानां क्रतुः) पृथिवी आदि देवों का प्रज्ञारूप तथा शक्तिरूप है। (अमृक्तः) सदा विशुद्ध, (तुविश्रवस्तमः) और महायशस्वी हैं।

[अमृक्तः=अ+मृक्त; (मृज् शुद्धौ), जो कभी शुद्ध नहीं किया गया, अर्थात् जो सदा से विशुद्ध है]

[धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त १०

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ २
१५५९—भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३ १ २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥

(आहुतः) आत्मसमर्पणरूपी आहुतियां पाया हुआ (अग्निः) जगन्नायक (नः) हमारा (भद्रः) कल्याण करता और हमें सुख पहुंचाता है। (रातिः) उस के दिये दान (भद्रा) हमारा कल्याण करते और हमें सुख पहुँचाते हैं। (सुभग) हे सौभाग्यों से सम्पन्न परमेश्वर ! (अध्वरः) हिंसारहित उपासनायज्ञ (भद्रः) हमारा कल्याण करता और हमें सुख पहुँचाता है। (उत) तथा (प्रशस्तयः) परमेश्वर की की गई प्रशस्तियां हमारा कल्याण करती और हमें सुख पहुंचाती हैं।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५६०—भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥ २ ॥
॥ १० (लि) ॥

हे परमेश्वर ! (वृत्रतूर्ये) पाप-वृत्रों के विनाश के निमित्त (मनः) हमारे मनों को (भद्रम्) शुभसंकल्पी (कृणुष्व) कर दीजिये, (येन) जिन भद्र-संकल्पी मनों द्वारा हम (समत्सु) देवासुर-संग्रामों में (सासहिः) असुरों का पराभव करें। (भूरि शर्धताम्) महाबल प्रदर्शन करने वाले आसुरी-शत्रुओं के (स्थिरा) स्थिर बलों को (अव तनुहि) आप ढीला कर दीजिये, ताकि (अभिष्टये) अभीष्ट मोक्ष की प्राप्ति के लिये (वनेम) हम आप की सम्यक् भक्ति कर सकें।

[धा० ४। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ११

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५६१—अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगत्-प्रभो ! आप (गोमतः) गतिशील ब्रह्माण्ड के (वाजस्य) समग्र बलों के (ईशानः) अधीश्वर हैं। (सहसः यहो) उपासक के साहस और धैर्य से प्रकट हुए हे परमेश्वर ! (जातवेदः) हे प्रज्ञानी तथा वेदोपदेष्टा! (अस्मे) हम उपासकों को आप (महि श्रवः) महायश (देहि) दीजिये।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१५६२—स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
३ २ ३ १ २
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

(सः) वह (इधानः अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (वसुः) सर्वत्र बसा हुआ है, (कविः) वेदकाव्यों का कवि है, (गिरा) वेदवाणियों द्वारा (ईडेन्यः) स्तुतियों के योग्य है। (पुर्वणीक) हे महाप्राण स्वरूप परमेश्वर ! आप (अस्मभ्यम्) हमें (रेवत्) आध्यात्मिक-सम्पत्तियां देते हुए (दीदिहि) हम में प्रकाशित हूजिये।

[पुर्वणीक=पुरु+अनीक (अन प्राणने)]

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

१५६३—क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥ ॥ ११ (टा) ॥

(राजन्) हे ब्रह्माण्ड के सम्राट् ! (तिग्मजम्भ) हे पापविनाशक ! (अग्ने) हे प्रकाशमय जगन्नायक ! (सः) वे आप --(क्षपः) रात्री में होने वाले (उत उषसः) और उषाकालों में होने वाले, (उत) तथा (वस्तोः) दिन भर होने वाले (प्रति रक्षसः) प्रत्येक राक्षसीभाव और राक्षसी कर्म को (त्मना) अपनी शक्ति द्वारा (दह) दग्ध कर दीजिये।

[तिग्मजम्भ का शाब्दिक अर्थ है "तेज-दाढ़ों वाला"। यथाः—"तं वो जम्भे दध्मः" (सन्ध्या)]

॥ इति तृतीय खण्डः ॥ ३ ॥ [घा० १३ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त १२

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१५६४—विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

हे उपासको ! (वाजयन्तः) तुम आध्यात्मिक-बल चाह रहे हो, (वः) तुम में से (विशः विशः) प्रत्येक उपासक के (अतिथिम्) अतिथिवत् पूजनीय, (पुरुप्रियम्) अतिप्रिय, तथा (वः दुर्यम्) तुम्हारे गृहजीवनों के लिये हितकर (अग्निम्) जगन्नेता प्रभु के प्रति, (वचः स्तुषे) मैं स्तुतिवचनों का उच्चारण करता हूं, तथा (शूषस्य) सुखदायी (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा उसके गुणों का वर्णन करता हूं।

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

१५६५—यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्।

३ १ २ ३ १ २

प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

(जनासः) सज्जन लोग (न) जैसे (सर्पिरासुतिम्) घृत के पदार्थों और अरिष्टों आदि द्वारा (मित्रम्) मित्र का सत्कार करते, और (प्रशस्तिभिः) प्रशंसा-

वाक्यों द्वारा (प्रशंसन्ति) उस की प्रशंसा करते हैं, जैसे उपासक-जन (हविष्मन्तः) आत्मसमर्पण रूपी हवियों द्वारा (यम्) जिस परमेश्वर का सत्कार करते, और (प्रशस्तिभिः) उत्तम-स्तुतियों द्वारा (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं।

[उस परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूं (स्तुषे, मन्त्र १५६४)]।

१२ ३१२ ३२३२३१२

१५६६—पन्याँ्सं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।

३१ २र ३२

हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥ ॥ १२ (टा) ॥

(पन्यांसम्) अतिप्रशंसनीय, (जातवेदसम्) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान तथा वेद-प्रवक्ता परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूं [स्तुषे, मन्त्र १५६४], (यः) जो परमेश्वर कि (देवताति) चमकीले-नक्षत्रों वाले विस्तृत (दिवि) द्युलोक में (उद्यता) उदित होने वाले नक्षत्रों को (ऐरयत्) प्रेरित कर रहा है, जिन नक्षत्रों ने कि अपने आप को परमेश्वर के प्रति (हव्यानि) हविरूप में समर्पित कर रखा है।

[प्रपा० १३। उ० १। स्व० २]

सूक्त १३

१२ ३२३१२ ३ १२३१२ ३२३१२३२

१५६७—समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे

३२

ध्रुवम् ।

२३ १२ ३१२३१२३२ ३१२ ३१२

विप्रँ् होतारं पुरुवारमद्रुहं कविँ् सुम्नैरीमहे जातवेदसम्

॥ १ ॥

(समिधा) आत्मसमर्पणरूपी समिधा द्वारा (समिद्धम्) सम्यक्-प्रदीप्त हुए, प्रकट हुए (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता की (गिरा गृणे) स्तुति मैं वेदवाणियों द्वारा करता हूं, जो जगन्नेता कि (शुचिम्) स्वयं शुद्ध है, और (पावकम्) अन्यों को पवित्र करता है, जो (अध्वरे) हिंसा-रहित उपासना-यज्ञ में (पुरः) सदा सम्मुख रहता, और (ध्रुवः) कूटस्थ तथा निश्चल है, (विप्रम्) जो मेधावी तथा सर्वत्र परिपूर्ण, (होतारम्) सब का दाता, (पुरुवारम्) सब द्वारा वरणीय, (अद्रुहम्) किसी से भी द्रोह न करने वाला, (कविम्) वेदकाव्यों का कवि, (जातवेदसम्) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान और वेदोपदेष्टा है, उसे (सुम्नैः) सुखोत्पादक श्रेष्ठ-स्तुतियों द्वारा (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं।

[समिधा="अयं त इध्म आत्मा" (आश्व १।१०।१२); आत्मा=इध्म]

२३१२ ३१२३१२ ३१२ २१ २र

१५६८—त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।

३१२३१२ ३१२ ३२३ २३१२३ १ २

देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे

॥ २ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! (देवासः च) देवकोटि के, और (मर्तासः च) साधारण मनुष्य, (त्वाम्) आप को (दधिरे) अपने हृदयों में धारण करते हैं, जो आप कि (अमृतम्) अमर हैं, (दूतम्) पापपरितापी हैं, (युगे युगे) युग युग में (हव्यवाहम्) सब को जीवन-सामग्री पहुंचाते, (पायुम्) सर्वपालक, (ईड्यम्) सर्वस्तुत्य, (जागृविम्) सदा जागरूक, (विभुम्) सर्वव्यापक, (विश्पतिम्) तथा सब प्रजाओं के पति हैं, उस आप को, देव और मनुष्य, (नमसा) नमस्कार करते हुए, (नि षेदिरे) अपने हृदयों में स्थापित करते रहे हैं।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१५६९—विभूषन्नग्न उभयाँ अनुव्रता दूतो देवानाँ रजसी समीयसे।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

यत्ते धीतिँ सुमतिमावृणीमहेऽध स्म नस्त्रिवरूथः शिवो भव
॥ ३ ॥ ॥ १३(या)

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नायक ! आप (उभयान् रजसी) दोनों लोकों अर्थात् भूलोक और द्युलोक को (विभूषन्) विभूषित करते हुए, उन में (समीयसे) समा रहे हैं। आप (देवानाम्) दिव्यकोटि के उपासकों के पाप-वृत्रों को (दूतः) परितप्त करते हैं। (यत्) जब हम (अनुव्रताः) आप के व्रतों के अनुकूल चलने लगते हैं, तब हम, (ते) आप के (धीतिम्) कर्मों अर्थात् व्रतों, और (सुमतिम्) आप की सुमति को [जोकि आप ने वेदों द्वारा दी है] (आ वृणीमहे) पूर्णतया स्वीकार कर लेते हैं। (अध) तदनन्तर आप (नः) हमारे लिये (शिवः) कल्याण-रूप (भव) हो जाते हैं, (त्रिवरूथः) हमारे तीनों स्थानों अर्थात् मन, बुद्धि और आत्मा में विराजते हैं।

(दूतः=दू परितापे)

[धा० २२। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त १४

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१५७०—उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।

३ १ २र

वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥

(हविष्कृतः) उपासना-यज्ञ में समर्पण योग्य हवियों का सम्पादन करने वाले उपासकों की (गिरः) स्तुति-प्रार्थना की वाणियां, (जामयः) जो कि उपासकों से सहोदर बहिनों के सदृश स्नेह करती हैं, वे (देदिशतीः) हे परमेश्वर ! आप के यथार्थ स्वरूप का निर्देश करती हुईं, (वायोः) वायुवत् प्राणस्वरूप आप के (अनीके) समीप (उप अस्थिरन्) उपस्थित हैं, प्रभो ! स्वीकार करो।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

१५७१—यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्।

१ २ ३ १ २ ३ २

आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ २ ॥

(यस्य) जिस परमेश्वर का, (त्रिधातु) सत्व-रजस्-तमस् इन तीन धारक तत्वों द्वारा बना (अवृतम्) दृष्टिगोचर जगत् है, और जिस परमेश्वर का (असन्दितम्) निःसीम (बर्हिः) आकाश है, वह ही (तस्थौ) इस सब में अधिष्ठातृरूप में स्थित है। (आपः चित्) व्यापक-प्रकृति ने भी इसी परमेश्वर में (पदं नि दधाः) अपना स्थिति लाभ किया हुआ है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१५७२—पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
३ १ २र ३ २
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ ३ ॥ ॥ १४(हु)

(मीढुषः) सुख और शान्ति की वर्षा करने वाले (देवस्य) देवाधिदेव की (पदम्) जगत् में स्थिति, (अनाधृष्टाभिः) अपराभूत (ऊतिभिः) रक्षाओं और रक्षा-साधनों के साथ सम्बद्ध है। (इव) जैसे (सूर्यः) सूर्य कल्याणकारी और सुखदायी है वैसे परमेश्वर की (उपदृक्) सर्वगत कृपा-दृष्टि सब के लिये (भद्रा) कल्याणकारिणी और सुखदायिनी है।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ४]

॥ इति सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७—२ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १५ ॥



अथ षोडशोऽध्यायः ।

[३]

अथ सप्तमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥७-३॥

(१—२१) १, ८, १८, मेध्यातिथिः काण्वः; २ विश्वामित्रो गाथिनः; ३—४ भर्गः प्रागाथः; ५ सोभरिः काण्वः; ६, १५ शुनःशेप आजीगर्तिः; ७ सुकक्ष आङ्गिरसः; ९ विश्वकर्मा भौवनः; १० अनानतः पारुच्छेपिः; ११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १२ गोतमो राहूगणः; १३ ऋजिश्वा भारद्वाजः; १४ वामदेवो गौतमः; १७ देवातिथिः काण्वः; १९ वालखिल्यः (श्रुष्टिगुः काण्वः); २० पर्वतनारदौ; २१ अत्रिर्भौमः ॥ १, ३—४, ७—८, १५, १७—१९ इन्द्रः; २ इन्द्राग्नी; ६ वरुणः; ९ विश्वकर्मा; १०, २०, २१ पवमानः सोमः; ११ पूषा; १२ मरुतः; १३ विश्वे देवाः; १४ द्यावापृथिवी, १६ अग्निः हर्वींषि वा ॥ १, ३—५, ८, १७—१९ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); २, ६—७, ११—१६ गायत्री; ९ त्रिष्टुप्, १० अत्यष्टिः; २० उष्णिक्; २१ जगती ॥

सूक्त १

३ १ २ ३१२ ३२३ १२ ३१२
१५७३—अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १२३२३ १२ ३१२ ३ २
समीचीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (समीचीनासः) सत्य आचार विचार वाले ब्राह्मण, (ऋभवः) कारीगर वैश्य, (रुद्राः) रौद्रकर्म करने वाले क्षत्रिय, तथा (आयवः) वैश्य,—ये सब (पूर्वपीतये) पूर्णतया आप के आनन्दरस के पान के लिये, (स्तोमेभिः) सामगानों द्वारा (पूर्व्यं त्वा) सनातन आप का (सम् अस्वरन्) सम्मिलित गान करते हैं, और (अभि गृणन्त) प्रत्यक्ष हुए आप के गुणों का वर्णन करते हैं।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५७४—अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यँ शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥
॥ १ (रि) ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (अस्य इत्) इस ही उपासक के (वृष्ण्यं शवः) सुख-वर्षी बल को (वावृधे) अत्यन्त बढ़ाता है, जिस पर कि (विष्णवि) व्यापक परमेश्वर के निमित्त (सुतस्य) निष्पन्न हुए भक्तिरस की (मदे) मस्ती चढ़ गई है। (आयवः) उपासक लोग, (पूर्वथा) सनातन काल के सदृश (अद्य) आज भी, (अस्य) इस परमेश्वर की (तं महिमानम्) उस प्रसिद्ध महिमा का (अनुष्टुवन्ति) निरन्तर स्तवन करते हैं।

[धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त २

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५७५—प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) बलशक्ति और ज्ञानशक्ति से सम्पन्न हे परमेश्वर ! (उक्थिनः) वैदिक सूक्तों के वेत्ता, तथा (नीथाविदः) आचार नीति के वेत्ता (जरितारः) स्तोता लोग, (वाम्) आप के दोनों स्वरूपों की (प्र अर्चन्ति) प्रकृष्ट स्तुतियां करते हैं। (इषं) अभीष्ट कामना की प्राप्ति के लिये (आ वृणे) मैं उपासक भी आप के उक्त स्वरूपों का पूर्णतया वरण करता हूँ।

[ज्ञान के बिना बल, और बल के बिना ज्ञान,—सफलता-प्रदान में असमर्थ हैं। दोनों मिल कर यथार्थ सफलता प्रदान करते हैं]

१ २ ३ १ २र ३ १ २
१५७६—इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
३ १ २र ३ १ २
साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) बलशक्ति और ज्ञानशक्ति से सम्पन्न हे परमेश्वर ! आप ने (दासपत्नीः) उपक्षय-कारी काम-क्रोध आदि द्वारा पालित (नवतिं पुरः) नब्वे पुरियों को, (एकेन कर्मणा साकम्) अपने एक ही संकल्परूपीकर्म द्वारा (अधूनुतम्) कम्पा दिया है ।

[नवतिं पुरः=सूक्ष्मशरीर में १८ तत्त्व होते हैं । ५ कर्मेन्द्रियों की शक्तियाँ ५ ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियाँ, १ मन, ५ पंचतन्मात्राएँ, १ अहंकार और १ महत्तत्त्व । इसे ही लिङ्ग शरीर भी कहते हैं "अष्टादशकं लिङ्गम्" । सूक्ष्म शरीर के १८ तत्त्वों में से प्रत्येक तत्त्व "वचपर्वा अविद्या से अर्थात् ५ क्लेश से घिरा रहता है । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये ५ क्लेश हैं । इस प्रकार १८×५ =९०; ये ही "दासपत्नीः नवतिं पुरः" हैं । मोक्ष के लिये इन ९० पुरियों का अवधूनन आवश्यक होता है]

१ २ ३ १ २ ३ १र ३ १ २ ३ १ २
१५७७—इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः ।
३ १ २ ३ २ १ २
ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ ३ ॥

(इन्द्राग्नी) बलशक्ति और ज्ञानशक्ति सम्पन्न हे परमेश्वर ! आप की कृपा से, (ऋतस्य) सत्यमय जीवन के (पथ्याः) हितकर मार्गों के (अनु) अनुसार, (अपसः) हमारे कर्म (प्र यन्ति) चलते हैं, और (धीतयः) हमारी धारणा-ध्यान आदि योगसाधनाएँ (प्र) प्रकर्षरूप में, (उप) और समीपता से, हमारे कर्मों के (परि) चारों ओर (यन्ति) परिधिरूप में घेरा डाले हुई हैं ।

[मन्त्र में कर्मों को "केन्द्र" और योगसाधनों को "परिधिरूप" में वर्णित किया है । केन्द्र कभी परिधि से बाहिर नहीं हो सकता । उपासकों के कर्म भी धारणा ध्यान आदि की परिधि से बाहिर न होने चाहियें, अपितु धारणा-ध्यान आदि से सदा घिरे रहने चाहियें]

१ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
१५७८—इन्द्राग्नी तविषाणि वाँ सधस्थानि पयाँसि च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्यँ हितम् ॥ ४ ॥ ॥ २(टा) ॥

(इन्द्राग्नी) बलशक्ति और ज्ञान-शक्ति से सम्पन्न हे परमेश्वर ! (वाम्) आप की दोनों शक्तियों के (तविषाणि) बल और (प्रयांसि) प्रयास, (सधस्थानि) साथ-साथ रहते हैं, अर्थात् एक-दूसरे के सहायक हैं । (अप्तूर्यम्) कर्मों का त्वरित

फल देना (युवोः) आप की इन दोनों शक्तियों के पारस्परिक सहयोग में (हितम्) निहित है।

[बल है परन्तु प्रयास अर्थात् प्रयत्न नहीं, प्रयत्न है परन्तु तदनुरूप बल नहीं। इस प्रकार अकेली-अकेली शक्ति से शीघ्र फल नहीं मिल सकता। एतदर्थं इन दोनों शक्तियों में समन्वय चाहिये, तभी कर्मों का फल शीघ्र मिल सकता है]

[घा० १३। उ० १। स्व० २]

सूक्त ३

३ २ऽ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५७६—शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

(शचीपते) प्रज्ञा, वेदवाणी, और कर्मों के पति (इन्द्र) हे परमेश्वर! आप (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार के रक्षासाधनों के साथ-साथ, हमें (भगम्) सब प्रकार का ऐश्वर्य अर्थात् सांसारिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियां अर्थात् अन्नादि सामग्री, तथा ज्ञान, धर्म, श्री, वैराग्य, (न) तथा (यशसम्) तदनुरूप यश, (सु) अच्छे प्रकार, (हि) और निश्चय से, (शग्धि) प्रदान कीजिये। (शूर) हे पराक्रमशील! (त्वा वसुविदम्) सब प्रकार की सम्पत्तियां देने वाले आप की आज्ञा के (अनु) अनुसार (चरामसि) हम चलते हैं।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१५८०—पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥

॥ ३(चु) ॥

(देव) हे परमेश्वर-देव! आप (पौरः) ब्रह्माण्ड-पुरी में बसे हुए हैं, (अश्वस्य) सूर्य के और (गवाम्) सूर्य की किरणों के (पुरुकृत्) अनगिनत संख्या में आप निर्माता हैं, (उत्सः) आप शक्तियों के स्रोत हैं, (हिरण्ययः) ब्रह्माण्डरूपी विराट् शरीर में बसे हुए आप सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों की दृष्टि से हिरण्यय हैं, मानो सुवर्णमय हैं, हिरण्यगर्भ हैं। (त्वे दानम्) आप के दिये दान का (न किः) कोई नहीं (परिमर्द्धिषत्) परिमर्दन कर सकता, (यद् यद्) जो-जो (यामि) मैं आप से मांगता हूं (तद्) वह-वह आप मुझे (आ भर) प्रदान कीजिये।

सूक्त ४

१उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
१५८१—त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (चेरवे) मेरे हृदय और जीवन में विचरने के लिये (त्वम्) आप (हि) अवश्य (एहि) आइये, प्रकट हूजिये। आप हमें (भगम्) भग अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य का (विदाः) दान दीजिये, ताकि हम (वसुत्तये) इन सम्पत्तियों का प्रतिदान कर सकें। (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! भगों की हम पर (उद् आ वृषस्व) उत्कृष्ट और भरपूर वर्षा कीजिये (गविष्टये) ताकि समग्र पृथिवी में हम इन का दान-यज्ञ कर सकें। और हमें (उद्) उत्कृष्ट (अश्वम्) मन दीजिये (इष्टये) ताकि हम इन्द्रिय-विजयरूपी-यज्ञ कर सकें।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१५८२—त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्र गायन्तोऽवसे ॥२॥४(फौ)

हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप हमें (पुरु) बहुत से, (यूथा) अर्थात् समूहरूप में, (शतानि सहस्राणि) सैंकड़ों और हजारों पदार्थ (मंहसे) दे रहे हैं, (दानाय) ताकि हम उनका दान करें। (विप्रवचसः) मेधावी परमेश्वर के दिये वैदिक-वचनों से सम्पन्न हम उपासक, (गायन्तः) परमेश्वर सम्बन्धी सामगान करते हुए, (अवसे) विषयों से अपनी रक्षा के लिये, (पुरंदरम्) शरीर-पुरियों की परम्परा का विदारण करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (आ चकृम) स्वाभिमुख करते हैं।

[यूथा=कोयला, सोना, चान्दी, तेल, जङ्गल, पर्वत आदि सम्पत्तियां एक-एक स्थान में समूहरूप में और बहुतायत में मिलती हैं]

[धा० १५। उ० २। स्व० नास्ति]

सूक्त ५

२उ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २र

१५८३—यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २उ ३ १ २

मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥ १ ॥

(यः) जो (होता) दाता (विश्वा) सब (वसु) सम्पत्तियां (दयते) दे रहा है, इस प्रकार (जनानाम्) जनता को (मन्द्रः) हर्ष, आनन्द और तृप्ति प्रदान करा रहा है, (अस्मै अग्नये) ऐसे इस प्रकाशस्वरूप नेता के प्रति, हमारे (प्रथमानि) सर्व-श्रेष्ठ (स्तोमा) स्तोत्र और कीर्त्तन (प्र यन्तु) भेंट हों, (न) जैसे कि श्रेष्ठ अतिथियों के प्रति, (मधोः) मधु के (प्रथमानि पात्रा) श्रेष्ठ पात्र भेंट किये जाते हैं।

२ ३ २ ३ २ ३क२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१५८४—अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ २॥

॥ ५(पु)॥

(रथ्यम्) रथवहनयोग्य (अश्वम्) अश्व को (न) जैसे सारथि, (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध कर सुशोभित करते हैं, वैसे (देवयवः) आप-देव को चाहने वाले (सुदानवः) और आप के प्रति सर्वोत्तम आत्मसमर्पण करने वाले उपासक, (गीर्भिः) वैदिक स्तुतिवाणियों द्वारा, आप के विशुद्धस्वरूप को प्राप्त कर, आप की शोभा बढ़ाते हैं। (दस्म) हे पापों का क्षय करने वाले !, (विश्पते) हे प्रजाओं के रक्षक ! (तोके तनये) हमारे पुत्रों और पौत्रों (उभे) दोनों को, (राधः) आराधनारूपी सम्पत्ति, (पर्षि) भरपूर मात्रा में दीजिये, जैसे कि आप ने (मघोनाम्) सांसारिक ऐश्वर्य के धनवानों को, सांसारिक सम्पत्ति, भरपूर दे रखी है।

॥ इति प्रथममः खण्डः ॥ १ ॥ [धा० १५ । उ० १ । स्व० ५]

सूक्त ६

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१५८५—इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडय ।

१ २ ३ १ २र

त्वामवस्युरा चके ॥ १ ॥ ॥ ६(ष) ॥

(वरुण) पापों के निवारण करने वाले सर्वश्रेष्ठ वरणीय हे परमेश्वर ! (मे) मेरी (इमम्) इस (हवम्) पुकार को आप (श्रुधि) सुनिये, कि (अद्य च) आज से (मृडय) मुझे सुखी कीजिये। (अवस्युः) रक्षा चाहने वाला मैं (त्वाम्) आप की प्राप्ति की (आ चके) कामना करता हूं।

[धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त ७

२ ३ १ २ ३ १ २र

१५८६—कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् ।

१ २ १ २ ३ १ २

कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ॥ ७(य) ॥

(वृषन्) हे सुख-शान्ति की वर्षा करने वाले !, (कया) किस प्रकार की (ऊत्या) रक्षा द्वारा, (त्वम्) आप (नः) हमें (अभि प्र मन्दसे) सब प्रकार से प्रमुदित कर रहे हैं। तथा (कया) किस प्रकार की रक्षा द्वारा, (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के लिये (आ भर) भरपूर आनन्द दे रहे हैं।

[उपासक अनुभव करता है कि शास्त्रों और महात्माओं द्वारा सुना गया है कि परमेश्वर माता, पिता, बन्धु, सखा, रक्षक, पालक तथा दयावान् आदि है, परन्तु उस की प्रजा में दुःख, कष्ट, पीड़ा, रोग, गरीबी, मृत्यु आदि भी दुःखदायी घटनाएं हैं,—इन विषमताओं में समन्वय कैसे है,—यह जानने की इच्छा वह प्रभु के प्रति प्रकट कर रहा है। परन्तु मन्त्र में ही—"कया (सुखमय्या), वृषन् प्रमन्दसे" शब्दों द्वारा इन में समन्वय की भी सूचना दे दी है। माता-पिता बच्चे को दण्ड देते

हैं बच्चे के भावी सुख के लिये; न्यायाधीश अपराधी को दण्ड देता है उसके भावी सुख के लिये। यही व्यवस्था परमेश्वर की भी है]

[धा० २। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ८

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २
१५८७—इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥ १॥

(देवतातये) परमेश्वर-देव सम्बन्धी उपासना के विस्तार के लिये (इन्द्रम् इत्) परमेश्वर का ही (हवामहे) हम उपासक आह्वान करते हैं। (अध्वरे) हिंसा-रहित यज्ञियकर्मों के (प्रयति) प्रयत्न में हम परमेश्वर का ही आह्वान करते हैं। (समीके) देवासुर-संग्राम में सहायतार्थं, (इन्द्रम्) परमेश्वर का ही हम आह्वान करते हैं। (धनस्य सातये) धन की प्राप्ति के लिये हम (इन्द्रम्) परमेश्वर का ही आह्वान करते हैं। (वनिनः) उस धन के बांटने वाले हम, इस वांट में भी, परमेश्वर की सहायता का आह्वान करते हैं।

[समीके=संग्राम नाम (निघं २।१७)]

१ २ ३ १ १र ३ २ ३ २ ३ १ २
१५८८—इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥२॥
॥ ८(वा)॥

(इन्द्रः) परमेश्वर ने (मह्ना) अपनी महिमा से (रोदसी) द्युलोक और भूलोक में (शवः) अपना अनन्त बल (पप्रथत्) फैलाया हुआ है। (इन्द्रः) परमेश्वर ने (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) चमकाया है। (इन्द्रे) परमेश्वर में (विश्वा भुवनानि) समग्र लोक लोकान्तर (येमिरे) नियन्त्रित हुए-हुए हैं। (इन्दवः) ज्ञान से प्रकाशित तथा शीतल स्वभाव वाले उपासक, (स्वानासः) सदुपदेश देते हुए, (इन्द्रे) परमेश्वर के ही आश्रय में रहकर (येमिरे) अपने यम-नियमों का पालन करते हैं।

[धा० १५। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ९

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १
१५८९—विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वां३ऽस्वा
२र
हि ते।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥३॥

(विश्वकर्मन्) हे विश्वकर्त्ता ! (हविषा) हम उपासकों की आत्मसमर्पण-रूपी हवियों द्वारा (वावृधानः) अधिकाधिक प्रसन्न हुए आप (स्वयम्) स्वयं (तन्वम्) हमारी तनुओं अर्थात् देहों को (यजस्व) यज्ञमय कर दीजिये, (हि) क्योंकि निश्चय से, हमारी यह तनुएँ (ते) आप की (स्वा) अपनी बन चुकी हैं। (अभितः) हम उपासकों के चारों ओर बसे हुए (जनासः) लोग तो (मुह्यन्तु) मोह-ममता में ग्रसित हैं, परन्तु (इह) इन हमारे जीवनों में, (मघवा) आध्यात्मिक सम्पत्तियों का स्वामी परमेश्वर, (अस्माकम्) हम उपासकों को (सूरिः) प्रेरणाएँ देने वाला (अस्तु) हुआ है।

[इस सम्बन्ध में ऋग्वेद ८।४४।३२ मन्त्र अधिक प्रकाश डालता है। यथाः—"यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः"। योग दो प्रकार का है ध्यानयोग और क्रियायोग : ध्यानयोग में ध्याता, परमेश्वर में चित्तवृत्ति को लगा कर परमेश्वर में अपने आप को तन्मय बना लेता है, मानो वह अपनी स्थिति खोकर तद्रूप हो गया है। यह अभिप्राय प्रकट हुआ है "स्याम् अह त्वम्"—शब्दों द्वारा, अर्थात् "मैं,—तू हो गया हूं"। क्रियायोग में उपासक. परमेश्वर को, "अहम्' रूप में प्रकट कर लेता है। इस अवस्था में उपासक अपने "अहंभाव" से प्रेरणाएँ न पा कर केवल परमेश्वर द्वारा ही प्रेरणाएँ पा रहा होता है, उस समय मानो परमेश्वर ने उपासक के "अहं भाव" का रूप धारण कर लिया है, मानो उपासक की देह अब उपासक की नहीं रही, वह परमेश्वर की देह बन चुकी है। क्योंकि उस में उपासक की निजप्रेरणाएँ नहीं हो रही होतीं अपितु परमेश्वरीय प्रेरणाएँ ही हो रही होती हैं। इस अभिप्राय को "त्वं वा घ स्या अहम्",—इन शब्दों द्वारा प्रकट किया है। १५८९ मन्त्र में इस अभिप्राय को "स्वा हि ते,"—शब्दों द्वारा प्रकट किया है। अर्थात् यह तनु अब आप की हो चुकी है]

[धा० ६। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त १०

१२ ३१ २र ३२उ ३ १२ ३१
१५९०—अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयु-
२ ३ १२ ३ २ ३ १ २
ग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

(सयुग्वभिः) योगसाधनाओं से सम्पन्न उपासक, परमेश्वर की (अया) इस (हरिण्या) मनोहारिणी (रुचा) दीप्ति द्वारा (पुनानः) अपने-आप को पवित्र करता हुआ, (विश्वा) सब प्रकार की (द्वेषांसि) द्वेष भावनाओं से (तरति) तर जाता है। तदनन्तर (सयुग्वभिः) योगसाधनाओं से सम्पन्न उपासक, (सूरो न) सूर्य के सदृश, औरों को भी प्रकाश देने लगता है। (यत्) जब उपासक की (पृष्ठस्य)

पृष्ठवंश की सुषुम्णा नाड़ी में (धारा) प्रकाशधारा (रोचते) चमकने लगती है, तब उपासक, अपने आप को और अधिक (पुनानः) पवित्र कर, (अरुषः) और रोष-क्रोध आदि दुर्भावनाओं से रहित हो कर, (हरिः) इन्द्रियों को विषयों से हर लेता हैं। हे उपासक ! तब तू (ऋक्वभिः) ऋचामय वेदों द्वारा, अर्थात् (सप्तास्येभिः) मानो सात छन्दरूपी मुखों द्वारा उपदेश देने वाले (ऋक्वभिः) ऋचामय-वेदों द्वारा, (विश्वा रूपा) परमेश्वर के सब स्वरूपों को, या संसार के सभी रहस्यों को (परि यासि) जान लेता है।

१५९१—प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सँ रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः।
अग्मन्नुक्थानि पौँस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ २ ॥

(रथः) सूर्यरूपी रथ (प्राचीम) पूर्व की (प्रदिशम्) उत्कृष्ट दिशा में (अनु) परमेश्वर की आज्ञानुसार (याति) प्रातः काल प्राप्त होता है, और (चेकितत्) सब को ज्ञानवान् कर देता है। तदनन्तर (दर्शतः) दृष्टि का साधन (रथः) सूर्यरथ (रश्मिभिः) रश्मियों के साथ (सं यतते) सम्यक् प्रकार से संगत हो जाता है। यह (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) सूर्यरथ (दैव्यः) देवाधिदेव परमेश्वर का है। उस समय उपासकों के (पौंस्या) शक्तिशाली (उक्थानि) प्रशंसामय वैदिक सूक्त (अग्मन्) परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन सूक्तों द्वारा परमेश्वर की स्तुति की जाती है, और (जैत्राय) पाप-वृत्रों पर विजय पाने के लिये, वे सूक्त, (हर्षयन्) परमेश्वर को प्रसन्न कर देते हैं। तब (वज्रः) परमेश्वर का पापघाती वज्र उद्यत होता है, (यद्) जब कि हे उपासक ! तू और परमेश्वर, मिल कर, (समत्सु) देवासुर संग्रामों में (अनपच्युता भवथः) अटल हो कर डट जाते हो, (अनपच्युता) वास्तव में अटल हो कर डट जाते हो।

१५९२—त्वँ ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ ३ ॥
॥ १०(ङ) ॥

हे उपासक ! (ह) निश्चय से (त्वम्) तू (पणीनाम्) स्तोताओं के (त्यत्) उस (वसु) मोक्षधन को या परमेश्वर को (विदः) पा लेता है, जब कि (स्वे) अपने (दमे) शमदम सम्पन्न शरीर-गृह में रहता हुआ तू (मातृभिः) तेरा निर्माण करने वाली मातृरूप वैदिक ऋचाओं द्वारा, अपना (सं मर्जयसि) सम्यक् मार्जन कर लेता है, अर्थात् (दमे) शामदम सम्पन्न शरीर गृह में रहता हुआ (ऋतस्य धीतिभिः) सत्यानुष्ठानों द्वारा तू अपना (आ मर्जयसि) पूर्णरूप में मार्जन अर्थात् शोधन कर लेता है। (परावतः) पराविद्या से सम्पन्न ब्रह्मवेत्ता को (न) जैसे (साम) शान्ति होती है (तद्) वैसी शान्ति तुझे भी प्राप्त हो जाती है जब कि (यत्र) जिस तुझ में (धीतयः) सत्यकर्म अर्थात् सत्यानुष्ठान (आ रणन्ति) पूर्णतया रम रहे होते हैं। तब तू (अरुषीभिः) चमकती हुई अर्थात् रोष आदि दुर्गुणों से रहित (त्रिधातुभिः) तीन धातुओं, अर्थात् सत्त्व-रजस्-तमस् द्वारा (रोचमानः) चमकता हुआ, या सब को रुचिकर होता हुआ, (वयः दधे) उत्कृष्ट जीवन धारण कर लेता है, (वयः दधे) वास्तव में उत्कृष्ट धारण कर लेता है।

[मातृभिः; माता=वेदमाता। यथाः—"स्तुता मया वरदा वेदमाता" (अथर्व. १९।७१।१)। धीतिभिः=कर्मभिः (निरु. ११।२।१६)]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [धा० ४१ । उ० ५ । स्व० ७]

सूक्त ११

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
१५९३—उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
३ १ २ ३ १ २
नृवत्कृणुह्यूतये ॥ १ ॥ ॥ ११(यौ) ॥

हे परमेश्वर ! आप (नृवत्) मार्गदर्शी श्रेष्ठनेता के सदृश हैं। आप (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये, हमारी (धियम्) बुद्धियों को (कृणुहि) ऐसी कर दीजिये जिस से कि (गोषणिम्) हमारी इन्द्रियों में शक्ति प्राप्त हो, (अश्वसाम्) मनों में शक्ति प्राप्त हो (उत) और (वाजसाम्) शरीरों में शक्ति प्राप्त हो।

[धा० २ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति]

सूक्त १२

३ १ २ ३ १ २
१५९४—शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
३ १ २र ३ १ २
विदा कामस्य वेनतः ॥ १ ॥ ॥ १२(व) ॥

(नरः) हे उपासक नेताओ ! आप (शशमानस्य) प्लुतगति से आगे-आगे बढ़ने वाले, (स्वेदस्य) अव्यक्तवाणी में जप करने वाले, तथा परिश्रमी, (सत्यश्वसः) सच्चाई के बल वाले, (वेनतः) योगसाधना की अभीप्सा वाले व्यक्ति की (कामस्य) कामना को (विदाः) पूर्ण कीजिये।

[शशमानस्य=शश प्लुत गतौ । स्वेदस्य=ष्विद् अव्यक्ते शब्दे; तथा गात्रप्रक्षरणे]

[धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १३

१२ ३२३ १२ ३ २ ३१२३२
१५९५—उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
३ १ २
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥ ॥ १३(रौ) ॥

(ये) जो (नः) हमारी (सूनवः) सन्तानें हैं वे, (अमृतस्य) अमृत परमेश्वर की (गिरः) वेदवाणियों को (उप) ध्यान से और श्रद्धा से (शृण्वन्तु) सुना करें, ताकि वे (नः) हमारे लिये (सुमृडीकाः) उत्तम सुखदायी (भवन्तु) हो जांय।

[धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति]

सूक्त १४

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५९६—प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
२ ३ २ ३ १ २
शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥

हे माता-पिता ! आप दोनों (महि) महान् और पूजायोग्य हो, (द्यवी) ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो, (शुची) आचार-विचार में शुद्ध पवित्र हो। (वाम्) आप दोनों की (उपस्तुतिम्) श्रद्धापूर्वक की गई परमेश्वरीय स्तुतियों को (अभि प्र भरामहे) हम भी श्रद्धापूर्वक धारण करते हैं, ताकि हम आप की सन्तानें भी (उप प्रशस्तये) श्रद्धापूर्वक परमेश्वर की प्रशस्तियां गा सकें।

३ २ ३उ२२ ३ २उ ३ १ २
१५९७—पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
३ १ २ ३ २ ३ २
उह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥

हे माता पिता ! आप दोनों, (मिथः) परस्पर सहयोग से, (पुनाने) अपने आप को पवित्र रखते हुए, (स्वेन) अपने (तन्वा, दक्षेण) शरीर और बल की दृष्टि से (राजथः) तेजस्वी हैं, और (सनात्) सदा (ऋतम्) सत्यधर्म का (उह्याथे) वहन करते रहते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५९८—मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
१ २ ३ १ २२
परि यज्ञं वेदथुः ॥ ३ ॥ ॥ १४(का) ॥

हे माता पिता ! आप दोनों (मही) महान् तथा पूजनीय हैं, (मित्रस्य) स्नेहियों के अभीष्टों को आप (साधथः) सिद्ध करते हैं, (तरन्ती) भवसागर से तैरते हुए, (ऋतं पिप्रती) और सत्यधर्म का पालन करते हुए, (यज्ञम्) सदा यज्ञिय कर्मों में (परि निषेदथुः) स्थित रहते हैं।

[धा० ६ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त १५

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५९९—अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
२ ३ १ २
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (अयम्) यह प्रजाजन (उ) निश्चय से (ते) आप का है। (समतसि) आप सदा इस प्रजाजन के संग रहते हैं, (इव) जैसे कि (गर्भधिम्) गर्भधारणयोग्य कबूतरी के संग (कपोतः) कबूतर सदा रहता है। तब भी आप (नः) हमारे (तद् वचः) उन प्रार्थना-वचनों को अभी तक (ओहसे) भाररूप में ढोए चले जा रहे हैं, अर्थात् उस भार को आप ने अभी तक उतारा नहीं, हमारी प्रार्थनाओं को अभी तक सफल नहीं किया।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६००—स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
१ २ ३ १ २
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

(राधानाम् पते) हे आराधनाओं के स्वामिन्! (गिर्वाहः)हे हमारी प्रार्थना-वाणियों के भार का वहन करने वाले ! (वीर) हे विक्रम-पराक्रमशाली ! (यस्य ते) जिस आप का (स्तोत्रम्) वैदिक स्तुतिसमूह है, वह वैदिक स्तुतिसमूह (विभूतिः) आप की विभूति है, (सूनृता) वह प्रिय और सत्यस्वरूप वाणी है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ र
१६०१—उर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो ।
२ ३ १ २
समन्वेषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ ॥ १५(ह) ॥

(शतक्रतो) हे अनन्त प्रज्ञा और अनन्त कर्मों वाले परमेश्वर ! (अस्मिन्) इस उपस्थित (वाजे) देवासुर-संग्राम में (नः ऊतये)हमारी रक्षा के लिये, (ऊर्ध्वः तिष्ठः) आप हमारे सर्वोच्च अधिष्ठाता बनिये। ताकि (समन्येषु) इन संग्राम-सम्बन्धी कार्यों मे (ब्रवावहे) आप और मैं सदा परस्पर परामर्श करते रहें।

[धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १६

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१६०२—गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३ १ २र ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥

(गावः) हे स्तोताओ ! तुम में से प्रत्येक (अवटे) हृदये-गुहा में (उप) परमेश्वर के समीप हो कर, उस के प्रति (वद) स्तुति-प्रार्थना के वचन बोला करे। ताकि (मही) समग्र पृथिवी, (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ सम्बन्धी (रप्सुदा) अभिव्यक्त वेदवाणी का उत्तमदान, सब को कर सके, और प्रत्येक श्रोता के (उभा कर्णा) दोनों कान (हिरण्यया) मन्त्रश्रवणरूपी सुवर्णकुण्डलों के धारण करने वाले हो जायें।

[हिरण्यया="श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन" अर्थात् कानों की शोभा वेदमन्त्रों के सुनने से होती है, न कि कुण्डलों से। रप्सुदा=रप् (व्यक्तायां वाचि)+सु+दा। गावः=स्तोतारः (निघं ३।१६)]

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६०३—अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु ।
३ १ २ ३ १ २
अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥

(अद्रयः) पर्वतों के सदृश अपने व्रतों में सुदृढ़ हे उपासको !, (अवटस्य) सिर के गढ़े को (विसर्जने) त्याग करते समय, (पुष्करे) शरीर के पोषक हृदय-कमल में (निषिक्तम्) सिञ्चित हुए (मधु) मधुर आनन्दरसमय प्रभु को, (अभि) साक्षात् रूप में, (आरम् इत्) मैं उपासक ने पा ही लिया हैं।

[आरम्=आ+ऋ (अर्) गतौ। अभिगम्य (सायरण) अद्रयः=आद्रियमाणाः अध्वर्यवः (सायण)]

[अवट का अर्थ है, गढ़ा। अव अटतीति अवटः, जो कि नीचे की ओर गया हुआ हो। सिर की खोपड़ी जो कि उल्टे रखे प्याले के सदृश है, उसे मन्त्र में "अवट' कहा है। मोक्षावस्था में जीवात्मा इस खोपड़ी में स्थित मस्तिष्क के "ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सूर्यद्वार" द्वारा शरीर का परित्याग करता है "सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः सः पुरुषो ह्यव्ययात्मा" (मुण्डक १।२।११)। इस अवट को छोड़ने से पूर्व ब्रह्म का साक्षात्कार होना आवश्यक है, जो ब्रह्म कि हृदय-पुष्कर में विराजमान हो रहा होता है "हृदि ह्येष आत्मा" (प्रश्न० ३।६)। इस हृदय-पुष्कर में मधुर आनन्दरसरूप परमेश्वर का साक्षात्कार होता है। तदनन्तर मस्तिष्क में स्थित सहस्रार-चक्र में ब्रह्म की दिव्यज्योति प्रकट होती है, और मोक्ष होता है]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१६०४—सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
३ १ २ ३ १ २
नीचीनवारमक्षितम् ॥ ३ ॥ ॥ १६ (रा) ॥

(अवटम्) इस अवट में स्थित ब्रह्म को, उपासकध्यानी, (नमसा) नमस्कारों की वर्षा द्वारा (सिञ्चन्ति) सींचते हैं। इस अवट में (उच्चाचक्रम्) सहस्रारचक्र ऊँचा स्थित है, (परिज्मानम्) जिस की कि प्रेरणाएँ शरीर में सब ओर गति करती हैं। (नीचीनवारम्) इस अवट के निचले भाग में एक द्वार है। (अक्षितम्) इस अवट के नीचे की ओर सुषुम्णा रूपी अक्ष अर्थात् धुरा चली गई है।

[मन्त्र में "अवट" शब्द द्वारा सिर, और सिर में स्थित ब्रह्म का भी वर्णन हुआ है। जैसे कि "मञ्चाः क्रोशन्ति" वाक्य में "मञ्च" का अर्थ मञ्च भी है, और मञ्चस्थ पुरुष भी। "तिर्यग्बिलः चमसः ऊर्ध्वबुध्नः, तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्" (अथर्व० १०।८।९) में इसी "अवट" का वर्णन है, ऊपर की खोपड़ी या मस्तिष्क के ऊपर की ओर के उभार को "ऊर्ध्वबुध्नः" कहा है। इस के नीचे की ओर जो बिल अर्थात् छिद्र है उसे "तिर्यग् बिलः" द्वारा सूचित किया है। इस बिल में से हो कर सुषुम्णा नाड़ी नीचे गुदा तक चली गई है। अक्षितम्=अक्षः जातः अस्य तत्; यथा "तारकितं नभः"। ब्रह्मसाक्षात्कार प्रथम हृदय में होता है, तत्पश्चात् सहस्रार चक्र में। तदनन्तर मुक्ति होती है]

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [घा० ८। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त १७

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१६०५—मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥

हे परमेश्वर! (उग्रस्य) न्याय-नियमों में उग्र (तव) आप के (सख्ये) सखिभाव में, हम (मा भेम) भयरहित हो जाते हैं, और (मा श्रमिष्म) सन्ताप तथा खेद से रहित हो जाते हैं। (वृष्णः ते) सुख-शान्ति की वर्षा करने वाले आप का (महत् कृतम्) महाकर्म (अभि चक्ष्यम्) सर्वत्र विख्यात है, वह यह कि हम (तुर्वशम्) इन्द्रियों को शीघ्र वश में करने वाले, (यदुम्) प्रयत्नशील उपासक को (पश्येम) सफल होते देखते हैं।

[श्रमिष्म=श्रम् तपसि खेदे च]

३ १ २र ३क२र ३ २ ३ २ ३ १ २

१६०६—सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ २ ॥

॥ १७(वी) ॥

(सव्याम्) बाईं ओर के (स्फिग्यम्) स्नेहस्थान अर्थात् हृदय में,—हे परमेश्वर! आप (वृषा) सुखशान्ति की वर्षा करते हुए, (अनुवावसे) निरन्तर बसे हुए हैं। (दानः) आत्मदान करने वाला (अस्य) इस का उपासक (न रोषति) रोष-

क्रोध आदि से रहित हो जाता है। (सारघेण मध्वा) मधुमक्खी की शहद से (सम्पृक्ताः) मिले (धेनवः) गोदुग्ध के सदृश हमारे मधुर भक्तिरस हैं, आप इन की ओर (एहि) आइये, (द्रव) शीघ्र आइये, और इन का (पिब) पान कीजिये।

[स्फिग्=स्फिट् स्नेहने। धेनवः=धेनुओं का दूध "अथाप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवत् निगमा भवन्ति" (निरु० २।२।५)]

[धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त १८

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१६०७—इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

(पुरूवसो) जगत् में परिपूर्ण हो कर बसने वाले तथा महाधनी परमेश्वर! (याः) जो (मम गिरः) मेरी स्तुति-वाणियां हैं, (इमाः) ये (त्वा) आप के (उ) ही (वर्धन्तु) यश को बढ़ाती हैं। (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी, (शुचयः) शरीर मन आत्मा में शुद्धपवित्र, (विपश्चितः) मेधावी उपासक,—(स्तोमैः) स्तुति गानों द्वार आप की (अभि) प्रत्यक्ष रूप में, (अनूषत) स्तुतियां करते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१६०८—अयँ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

॥ १८(रि) ॥

(सहस्रम् ऋषिभिः) हज़ारों ऋषियों ने, (अयम्) इस परमेश्वर को, अपना (सहः कृतः) बलरूप बनाया है। (अस्य) इस की (महिमा) महिमा (सत्यः) सत्य हैं। (सः) वह महिमा (समुद्र इव) समुद्र और आकाश के सदृश (पप्रथे) सर्वत्र फैली हुई है। (यज्ञेषु) यज्ञों में, तथा (विप्रराज्ये) सच्चे ब्राह्मण मन्त्रियों द्वारा चलाए गए राज्य में, (शवः) परमेश्वरीय शक्ति का (गृणे) मैं कथन करता हूँ, स्तवन करता हूँ।

[धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त १९

२ ३२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

१६०९—यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ १ ॥

(अयम्) यह (विश्वः आर्यः) सब आर्य, (यस्य) जिस के (दासः) दास

हैं, भृत्यवत् आज्ञापालक हैं, वह प्रभु (शेवधिपाः) वेदनिधि का रक्षक है, (अरिः) और सर्वेश्वर है। (अर्ये) उसी सर्वेश्वर में,—जो कि (रुशते) ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित है, और (पवीरवि) वेदवाणी का स्वामी है,—(रयिः) वेद की सम्पत्ति (तिरः) प्रलयकाल में छिपी रहती है। (सः) वह वेद की सम्पत्ति (तुभ्येत्) हे उपासक ! तेरे लिये ही (अज्यते) सृष्टिकाल में प्रकट की जाती है।

[आर्यः=ईश्वरपुत्रः (निरु० ६।५।२६)। अर्ये=अर्यः ईश्वरः (निरु० ५।२।६) तथा १३।१४)। अरिः=ईश्वरः (निरु० ५।२।७)। (पविः=वाक्) (निघं० १।११)]

३ २३१२ ३२३१२ ३१२
१६१०—तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ ३ १ २
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः॥ २॥
॥ १६ (त)॥

(विप्रासः) मेधावी उपासक (तुरण्यवः) शीघ्र ही, (मधुमन्तम्) मधुर आनन्दरस से सम्पन्न, (घृतश्चुतम्) तथा घृत आदि पदार्थों के दाता, (अर्कम्) अर्चनीय परमेश्वर की (आनृचुः) अर्चना में लग जाते हैं। और उस से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! (अस्मे)हमारे लिए आप ने (रयिः) सब प्रकार की सम्पत्ति (पप्रथे) फैला रखी हैं, आप ने हमें (वृष्ण्यम्) सुखवर्षी (शवः) बल प्रदान किया है, आप ने (अस्मे) हमें (स्वानासः) आप के गीत गवाने वाले (इन्दवः) रसीले भक्तिरस प्रदान किये हैं।

[स्वानासः=स्वन शब्दे। इन्दवः=उन्दी क्लेदने=रसीले; "उन्देरिच्चादेः" (उणा, कोष १।१२)]

[घा० १४। उ० १। स्व० १]

सूक्त २०

१२ ३१२ ३१२
१६११—गोमन्न इन्द्रो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारया॥ १॥

(इन्दो) हे हमारे हृदयाकाश के चांद !, (सुदक्ष) हे सर्वोत्तम बली !, (सुतः) प्रकट हुए आप, (नः) हमें (गोमत्) इन्द्रिय सम्बन्धी तथा(अश्ववत्) मनः-सम्बन्धी प्रकाश और बल (धनिव) प्राप्त कराइये, और (गोषु) हमारी इन्द्रियों में (शुचिम्) पवित्रता का (वर्णम्) रङ्ग (अधि धारय) भर दीजिये।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१६१२—स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव॥ २॥

(नः हरीणां पते) हे हमारी इन्द्रियों के पति! या रक्षक !,(इन्दो)हे हमारे हृदयाकाशों के चांद !, (देव) हे देवाधिदेव !, (द्युम्नरस्तमः) आप अतिशय दीप्ति से सम्पन्न हैं। (सः) वह आप (नर्यः) नर-नारियों के हितकारी हैं। आप हमें (रुचे भव) रुचिकर हों, (इव) जैसे कि (सखा) मित्र, अपने (सख्ये) मित्र के लिये, रुचिकर होता है।

१ २ ३ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २

१६१३—सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम्।

१ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ३ ॥ ॥ २० (ल)॥

हे परमेश्वर ! (त्वम्)आप(सनेमि) सदा से हमारे सखा हैं [मन्त्र १६१२]। आप (अस्मत्) हम से (अप बाधः) उसे हटा दीजिये कि जो (कंचित्)कोई (अदेवम्) आप देव की उपासना नहीं करता, जो कि (अत्रिणाम्) खान-पान के भोगों में ही व्यस्त रहता है। (इन्दो) हे हमारे हृदयाकाशों के चांद! आप (साह्वान्) पराभव करने वाले हैं, (परि बाधः)और उसे भी हम से परे रखिये जो कि(द्वयुम्) आप की सत्ता के सम्बन्ध में दुविधा में पड़ा हुआ है, या सत्य और अनृत से युक्त है, जो बाहिर से और, तथा भीतर से और है, अर्थात् छली-कपटी है।

[बा० ६। उ० नास्ति। सू० १]।

सूक्त २१

१ २ ३क २र १ १ २ ३ १ २ १ २ ३क १र

१६१४—अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुँ रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते।

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ १ २ ३ १

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणँ हिरण्यपावाः पशुमप्सु

२

गृभ्णते ॥ १ ॥

(हिरण्यपावाः) सुवर्ण के सदृश विशुद्ध, या ऊर्ध्वरेता होने के कारण पवित्र उपासक,—(सिन्धोः) हृदय-समुद्रों की (उच्छ्वासे) भक्तिरसमयी उछालों में (पतयन्तम्) सहसा प्रकट होने वाले, (उक्षणम्) आनन्दरस द्वारा सींचने वाले, (पशुम्) सर्वद्रष्टा परमेश्वर को, (अञ्जते) अभिव्यक्त करते, (व्यञ्जते) विविधरूपों में अभिव्यक्त करते, (समञ्जते) सम्यक्तया अभिव्यक्त करते, (क्रतुम्) प्रज्ञानमय प्रभु के सत्संग का (रिहन्ति) स्वाद लेते, और उसे (मध्वा) मधुर-भक्तिरस से (अभ्यञ्जते) संलिप्त करते, तथा अन्त में (अप्सु) हृदयाकाशों में उसे (गृभ्णते)प्राप्त कर लेते हैं।

[अञ्ज्=व्यक्ति, अभिव्यक्ति, तथा म्रक्षण (Smearing, anointing, आपटे)। सिन्धोः=हृदय "सिन्धुसृत्याय जाताः" (अथर्व० १०।२।११)। पशुः=पश्यतीति। अप्सु=आपः=अन्तरिक्षम् (निघं १।३)]

३ २ ३ १ २ ३ १ २र

१६१५—विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥२॥

हे उपासको ! (विपश्चिते) मेधावी तथा (पवमानाय) पवित्र करने वाले परमेश्वर के लिये (गायत) सामगान किया करो । (न) जैसे (मही) पृथिवी सब को (अन्धः) अन्न (अति अर्षति) बहुमात्रा में प्राप्त कराती हैं, वैसे (धारा) परमेश्वर की आनन्दरसमयी धारा बहुमात्रा में सब को प्राप्त हो रही है । (न) जैसे (अहिः) सांप अपनी (जूर्णाम्) जीर्ण-शीर्ण (त्वचम्) कांचली को (अति) छोड़कर (सर्पति) निकल जाता है, वैसे (वृषा) सृष्टिकाल में सुखों की वर्षा करने वाला परमेश्वर, (हरिः) प्रलय काल में जगत् का संहार और परिहार कर, (असरत्) जगत् से बाहिर सरक जाता है । मानो वह (अत्यः) अश्व के (न) सदृश (क्रीड़न्) क्रीड़ा-सी कर रहा है ।

[अश्व कभी रथ में जुतता, और कभी रथ से विमुक्त हो जाता है । ये स्थितियां अश्व की वार-वार होती हैं । इसी प्रकार सृष्टि और प्रलय भी वार-वार होते हैं]

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१६१६—अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ३ ॥ ॥ २१(ले) ॥

(अग्रेगः) सर्वाग्रणी, (राजा) ब्रह्माण्ड का राजा, (आप्यः) सब द्वारा प्रापणीय परमेश्वर की (तविष्यते) स्तुति की जाती है, उस का वर्णन किया जाता है कि वह (अह्नाम्) दिनों का (विमानः) निर्माण करता [चन्द्र और सूर्य के उदयास्त द्वारा], (भुवनेषु) सब भुवनों में (अर्पितः) व्याप्त है, (हरिः) क्लेशहारी तथा जगत्संहारी हैं, (घृतस्नुः) घृतादि सामग्री का बहाने वाला, (सुदृशीकः) उत्तम-दर्शनीय, (अर्णवः) आनन्दरस सागर, (ज्योतीरथः) ज्योतिर्मय और रमणीय सूर्यादि का स्वामी, (ओक्यः) तथा सर्वाश्रय हैं । वही (रायः) सांसारिक तथा आध्यात्मिक सम्पत्तियों को (पवते) प्रवाहरूप में बहा रहा है ।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० ३६ । उ० नास्ति । स्व० ७]

इति सप्तमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः ॥ ७-३ ॥

सप्तमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

]१]

अथाष्टमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।। ८—१ ।।

(१—१४) १, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ शंयुर्बार्हस्पत्यः; (तृणपाणिः) ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५ वामदेवो गोतमः; ६ रेभसूनू काश्यपौ; ८ नृमेध आंगिरसः; ९, ११ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; १२ विरूप आंगिरसः; १३ वत्सः काण्वः ।। १, ३, ७, १२, अग्निः; २, ८—११, १३ इन्द्रः, ४ विष्णुः; ५ (१) वायुः ५ (२—३) इन्द्रवायू, ६ पवमानः सोमः ।। १—२, ७, ९, १०, १२, १३ गायत्री; ३, ८ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ४ त्रिष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ११ उष्णिक् ।

सूक्त १

१ २ ३ १२ ३२ ३२ ३ १ २र

१६१७—विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।

२ १

चनो धाः सहसो यहो ।। १ ।।

(सहसः) हम उपासकों के साहस और धैर्य द्वारा (यहो) प्रकट हुए (अग्ने) प्रकाशस्वरूप हे नेता ! आप (विश्वेभिः अग्निभिः) अपनी समग्र ज्योतियों के साथ (इमं यज्ञम्) हमारे इन उपासना यज्ञों को (धाः) परिपुष्ट कीजिये, (इदं वचः) इन हमारे स्तुति-प्रार्थना के वचनों को (धाः) सफल कीजिये, (चनः) हमें आध्यात्मिक अन्न अर्थात् आनन्दरस (धाः) प्रदान कीजिये ।

[चनः=भक्तम्; food (उणा. को; आपटे)]

२ ३ १ २र ३ १२ ३ १२ ३ १२

१६१८—यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।

१ २र ३ २

त्वे इद्धूयते हविः ।। २ ।।

(यत् चित् हि) यद्यपि (तना) विस्तृत यज्ञकर्मों द्वारा, (शश्वता) बार-बार (देवं देवम्) नाना देवों अर्थात् अग्नि, सोम, वायु आदि नामों से (यजामहे) आहुतियां देकर हम यज्ञ करते हैं, तो भी (हविः) वे हवियां वास्तव में (त्वे) आप को लक्ष्य कर के ही (हूयते) दी जाती हैं, अर्थात् अग्नि, सोम आदि नाम मुख्यरूप में आप के नाम हैं ।

३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २र

१६१९—प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।

३ २ ३ १ २ ३ २

प्रियाः स्वग्नयो वयम् ।। ३ ।। ।। १(ही) ।।

(विश्पति:) सब प्रजाओं का पति, (होता) सब का दाता, (मन्द्रः) सदा प्रसन्न और संतुष्ट, (वरेण्य:) सर्वश्रेष्ठ तथा वरणीय परमेश्वर (न:) हमारा (प्रियः अस्तु) प्रिय हो जाय, और (स्वग्नय:) इस अग्रणी को उत्तम विधि से करने वाले (वयम्) हम उपासक, उस के (प्रिया:) प्रिय बन जायें।

[स्वग्नय:=सुष्ठु अग्निर्येषां ते]

[धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त २

१ २ ३ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २

१६२०—इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।

३ १ २ ३ १ २

अस्माकमस्तु केवल: ॥ १ ॥

हे सज्जनो! (विश्वत: परि) सर्वोपरि विद्यमान (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हवामहे) हम उपासक आह्वान करते हैं, (व: जनेभ्य:) तुम सब सज्जनों की सुख शान्ति के लिये। वह परमेश्वर (अस्माकम्) हम सब का (केवल:) एकमात्र उपास्य तथा सेवनीय (अस्तु) हो।

[केवल:=केवृ सेवने+ल (वाला)]

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

१६२१—स नो वृषन्नमुं चरुँ सत्रादावन्नपा वृधि।

३ २ ३ १ २

अस्मभ्यमप्रतिष्कुत: ॥ २ ॥

(वृषन्) हे सुखवर्षी!, (सत्रादावन्) हे सच्चे दाता परमेश्वर! (स:) वह आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये, (न:) हमारे जीवनों में (चरुम्) विचरने वाले, (अमुम्) उस अज्ञानावरण को (अपा वृधि) हटा दीजिये। (अप्रतिष्कुत:) इस निमित्त कहीं से भी आप का प्रतिरोध नहीं है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१६२२—वृषा यूथेव वँसग: कृष्टीरियर्त्योजसा।

१ २ ३ १ २

ईशानो अप्रतिष्कुत: ॥ ३ ॥ २(र) ॥

परमेश्वर (ओजसा) निज शक्ति द्वारा (वृषा) सुखों की वर्षा करता, और (कृष्टी:) प्रजाओं में (इयर्ति) विचरता है, (इव) जैसे कि (वंसग:) सुन्दर गति वाला सेनापति (यूथा) सेनाओं के समूह में विचरता है। (अप्रतिष्कुत:) परमेश्वर के विचरने में कहीं से भी कोई प्रतिरोध नहीं है।

[धा० ८। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ३

१ २ ३२ ३२र ३ १२
१६२३—त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधा ँ्सि चोदय ।
३ २ ३१ २र ३१२ ३ २ ३ २ ३१ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ १ ॥

(वसो) हे सर्ववासी (चित्र) अद्भुत-स्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) आप (ऊत्या) रक्षा के साथ-साथ (नः) हमें (राधांसि) सांसारिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियां (चोदय) प्रदान कीजिये। (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) आप (अस्य रायः) इन सम्पत्तियों के (रथीः) स्वामी (असि) हैं, (तु) और (नः) हमारी (तुचे) सन्तानों के लिये (गाधं विदाः) आप आश्रय बनिये।

१ २ ३ १ ९र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१६२४—पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
अग्ने हेडा ँ्सि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि हरा ँ्सि च ॥ २ ॥
॥ ३(की) ॥

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) आप (अदब्धैः) अनिवार्य और (अप्रयावभिः) अटल (पर्तृभिः) रक्षाओं द्वारा, (तोकम्, तनयम्) हमारे पुत्रों और पौत्रों की (पर्षि) पालना कीजिये। (दैव्या) सूर्यादि दिव्यशक्तियों के (हेडांसि) प्रकोपों को, तथा विद्वानों से प्राप्त होने वाले अनादरों को, (युयोधि) हम से जुदा रखिये, (च) तथा (अदेवानि) अदेवकोटि के मनुष्यों में होने वाले (ह्वरांसि) छल-कपट के व्यवहारों को भी (युयोधि) हम से पृथक् रखिये।

[वा० ११। उ० १। स्व० ४]

सूक्त ४

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १
१६२५—किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो
२
अस्मि ।
१ २र ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ १ ॥

(विष्णो) हे सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ! (ते) आप के (नाम) नाम का (किम् इत्) क्या (परिचक्षि) मैं सर्वत्र कथन करूं, (यत्) जब कि आप ने स्वयम् (प्र ववक्षे) उद्घोषित किया कर दिया है कि (शिपिविष्टः अस्मि) "मैं शिपिविष्ट हूं," प्रकाशमयी किरणों से घिरा हुआ हूं, ज्योतिर्मय हूं। आप अपने (एतत् वर्पः) इस रूप को (अस्मत्) हम से अब (मा अपगूह) न छिपाइये, (यद्) जैसे कि आप

(समिथे) देवासुर-संग्रामों में, अभी तक, (अन्यरूपः) ज्योतिर्मय रूप से भिन्नरूप वाले (बभूथ) रहे हैं, अर्थात् अप्रकट रूप रहे हैं।

[उपासक अभी तक देवासुर-संग्रामों में निज शक्ति के भरोसे लड़ता रहा, परन्तु उसे सफलता नहीं हुई। जब विष्णु ने अपना ज्योतिर्मयरूप प्रकट किया तब उपासक के आसुर शत्रु पराजित हुए, क्यों कि ये शत्रु, अज्ञानान्धकार के परिणाम थे। इस लिये उपासक परमेश्वर के प्रति विनय भाव से कहता है कि आप इस ज्योतिर्मय स्वरूप को अब हम से छिपाईयेगा नहीं।

[शिपिविष्टः=शिपयो रश्मयः, तैराविष्टः, प्रतिपन्नरश्मिः (निरु० ५।२।८)]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१६२६—प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शँसामि वयुनानि
३ २
विद्वान्।
१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ १ १ २र ३ २
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके
॥ २ ॥

(शिपिविष्ट) हे ज्योतिर्मय प्रभो! (वयुनानि) उपासना विधियों के ज्ञानों से (विद्वान्) अभिज्ञ, (अर्यः) आप ईश्वर का उपासक मैं, (अद्य) आज इस शुभ दिन, (ते) आप के प्रति, (तत् हव्यम्) उस प्रसिद्ध आत्मसमर्पणरूपी (हव्यम्) हवि को, (प्र शंसामि) आप की प्रशंसापूर्वक भेंट करता हूं। साथ ही (अतव्यान्) निर्बल मैं (तं त्वा तवसम्) उस बलस्वरूप आप की (गृणामि) स्तुतियां भी करता हूँ, जो आप (अस्य रजसः) इस ब्रह्माण्ड के (पराके) परे भी (क्षयन्तम्) बस रहे हैं।

[अर्यः; अरिः ईश्वरः (निरु० ५।२।७), तस्य उपासकः]

१ २ ३ १ २र ३ १ २
१६२७—वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट
३ २
हव्यम्।
१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः
॥ ३ ॥ ॥ ४ (ते) ॥

(विष्णो) हे सर्वव्यापक! मैं (आसे) अपने मुख में, (ते) आपके लिये (वषट् आ कृणोमि) जपाहुति देता हूँ, (शिपिविष्ट) हे ज्योतिर्मय! (मे) मेरी (तत्) उस (हव्यम्) आहुति को (जुषस्व) आप प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिये। (मे) मेरी (सुष्टुतयः) सुन्दर स्तुति-युक्त (गिरः) वाणियां (त्वा) आप की सत्कीर्त्ति को (वर्धन्तु) बढ़ाएँ। हे स्तुति-वाणियो! (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याण मार्ग दर्शाती हुई (नः) हमारी (सदा पान्तु) सदा रक्षा करती रहो।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [धा० ४४। उ० १। स्व० ७]

सूक्त ५

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१६२८—वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥

(वायो) हे सर्वगत प्राणाधार ! (शुक्रः) वीर्यवान् तथा पवित्र आचरणों वाला मैं उपासक, (दिविष्टिषु) दिव्य-एषणाओं की पूर्त्ति के लिये, (ते) आप के प्रति, (मध्वः अग्रम्) मधुर भक्तिरस का सर्वश्रेष्ठ उपहार (अयामि) लाया हूं। (आ याहि) आप प्रकट हूजिये, (सोमपीतये) इस भक्तिरस की स्वीकृति के लिये। (नियुत्वता) आप अपनी हज़ारों शक्तियों के साथ प्रकट हूजिये। (देव) हे देवाधिदेव ! आप ही (स्पार्हः) स्पृहणीय हैं, आप ही अभीप्सित हैं।

[अथर्ववेद (१३।४।४।४४; ४५) में परमेश्वर को शतरूपों तथा न्यर्बुद-रूपों वाला कहा है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१६२९—इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
३ १ २र ३ २उ ३ २ ३उ२र
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥

(वायो) हे सर्वगत प्राणाधार ! आप (च) और (इन्द्रः) आप का परमैश्वर्यवान् स्वरूप !, अर्थात् आप के ये दोरों स्वरूप, (एषाम्) इन (सोमानाम्) भक्तिरसों के (पीतिम्) पान के (अर्हथः) योग्य हैं, (युवां हि) आप के इन दोनों स्वरूपों के प्रति (इन्दवः) हमारे भक्तिरस (यन्ति)पहुंचते हैं, (न) जैसे कि(आपः) जल (सध्र्यक्) साथ-साथ मिल कर चलते हुए (निम्नम्) नीचे स्थान समुद्र की ओर पहुंचते हैं।

[मन्त्रों के अर्थ प्रायः तीन प्रकार के होते हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक। आधिदैविक दृष्टि में वायु और सूर्य मिल कर, आकाश में, जल का ग्रहण करते हैं, जिस से वर्षा हो कर, नदियां समुद्र की ओर बहती हैं। आध्यात्मिक दृष्टि में वायु है प्राणाधार, तथा इन्द्र है परमैश्वर्यवान्। परमात्मा के ये दो स्वरूप मिल कर भक्तिरस का ग्रहण करते हैं। आधिभौतिक दृष्टि में वायु है वैश्य, और इन्द्र है राजा। वैश्य का धन और राजा की प्रबन्ध शक्ति, मिल कर, राज्यभार का वहन करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६३०—वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥ ५(ता)॥

(वायो) हे सर्वगत प्राणाधार ! आप, (च) और (इन्द्रः) आप का

ऐश्वर्यवान् स्वरूप अर्थात् आप के ये दोनों स्वरूप, (सरथम्) साथ-साथ रहते हुए, (शुष्मिणा) सबल और (शवसस्पती) बलों के स्वामी होते हैं। हे परमेश्वर! (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये, और (सोमपीतये) हमारे भक्तिरसों के पान के लिये, आप इन दोनों स्वरूपों में (नियुत्वता) तथा अपने हज़ारों रूपों के साथ, (आ यातम्) प्रकट हूजिये।

[सरथम्=एक रथ में, अर्थात् साथ-साथ। एक रथ के सवार साथ-साथ रहते हैं। परमात्मा "वायुरूप तो है, अर्थात् सर्वत्र व्यापक तो है, इस दृष्टि से कहीं भी बैठे उपासक भक्तिरस का ग्रहण वह कर सकता है, परन्तु यदि फलदान में वह अशक्त है, अनीश्वर है, अर्थात् "इन्द्ररूप" नहीं तो भक्त की उपासना निष्फल हो जायगी। और यदि परमात्मा इन्द्र हैं, अधीश्वरी शक्ति से सम्पन्न है, अर्थात् फल-दान में समर्थ है, परन्तु वह वायुरूप नहीं, अर्थात् सर्वगत नहीं तब भी वह सभी उपासकों के भक्तिरसों का ग्रहण नहीं कर सकेगा। क्योंकि वहां उस की सत्ता ही नहीं, वहां के भक्तों तक वह पहुंच ही नहीं सकता। इसलिये उपासक की सफलता के लिये उपासक, परमेश्वर के दोनों स्वरूपों का आह्वान एक साथ करता है। इस भाव को द्योतित करने के लिये मन्त्र में "सरथम्" पद है।

[वायो=वा (गतौ), वा गतिगन्धनयोः। गति अर्थात् सर्वगत परमेश्वर]

[घा० १६। उ० १। स्व० २]

सूक्त ६

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

१६३१—अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यदी विवस्वतो धियो हरिँ हिन्वन्ति यातवे॥ १॥

(क्षपा) रात्रि में, तथा (अध=अधः) रात्रि के पश्चात्, (परिष्कृतः) स्वच्छरूप में प्रकट किये गये हे परमेश्वर!, (वाजान्) आप उपासकों के भक्तिरस-रूपी जल में (अभि) प्रत्यक्षरूप में (प्र) और प्रकर्षरूप में, (गाहसे) अवगाहन करते हैं, मानो स्नान करते हैं, (यद् ई) जब कि (विवस्वतः) अविद्यान्धकार को विवासित अर्थात् विनष्ट किये हुए उपासक की (धियः) ध्यानवृत्तियां, (हरिम्) क्लेशहारी परमेश्वर को, (यातवे) प्राप्त होने के लिये, (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं।

[क्षपा=रात्रि के १२ बजे के पश्चात् उपासनाकाल प्रारम्भ हो जाता है। देखो "अश्विनौ" शब्द की व्याख्या में निरुक्त (१२।१।१)। वाजान् वाजः=water (आपटे) यातवे=या प्रापणे]

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१६३२—तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः॥ २॥

(अस्य) इस उपासक के (तम्) उस भक्तिरस को, हम गुरुजन, (मर्ज-

यानसि) परि मार्जन द्वारा विशुद्ध करते हैं, (यः) जो भक्तिरस की (मदः) परमेश्वर की तृप्ति और हर्ष का उत्पादक हो जाय, और (इन्द्रातमः) परमेश्वर को पूर्णतया स्वीकृत हो जाय, (गावः) स्तुतिगान करने वाले (सूरयः) स्तोता, (पुरा) पूर्व कालों में (च) और (नूनम्) अब भी, (यम्) जिस भक्तिरस को (आसभिः) मौखिक स्तुतियों और सामगानों द्वारा (दधु.) परिपुष्ट करते रहे हैं, और अब भी परिपुष्ट करते हैं।

[केवल परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रकट किया भक्तिरस "विशुद्ध" भक्तिरस है। इसमें सांसारिक-सम्पत्तियों की प्राप्ति, प्रार्थित नहीं होती]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३क२र

१६३३—तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।

३ १ ९ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः॥ ३॥६ (लु)॥

(पुराण्या) सनातन (गाथया) वैदिक-गानों द्वारा, उपासक, (पुनानम्) पवित्र करने वाले (तम्) उस परमेश्वर की (अभि) साक्षात् (अनूषत) स्तुतियां करते हैं, (उत उ) और इस प्रकार (देवानां नाम) भिन्न-भिन्न दैवत-नामों को (बिभ्रतीः) धारण करती हुई (धीतयः) ध्यानवृत्तियां (कृपन्त) सामर्थ्य वाली होती हैं।

[दैवत नाम=अभिप्राय यह है कि परमेश्वर की की गई स्तुतियां भिन्न-भिन्न दैवत-नामों द्वारा भी होती हैं। वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र आदि किसी भी नाम द्वारा, परमेश्वर की स्तुति की जा सकती है। ये सब नाम, आध्यात्मिक दृष्टि में, परमेश्वर के भिन्न-भिन्न गुणों का ही, साक्षात् और परम्परया, वर्णन करते हैं।

[धा० १४। उ० नास्ति। स्व० ५]

सूक्त ७

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१६३४—अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।

३ १ २ ३ १ २

सम्राजन्तमध्वराणाम्॥ १॥

(न) जैसे अश्वपालक (अश्वम्) अश्व को, (नमोभिः) उसके भोज्य अन्नों द्वारा रिझाता है, वैसे मैं उपासक, (वारवन्तम्) दुःखों और क्लेशों का निवारण करने वाले, और (अध्वराणाम्) हिंसारहित उपासना-यज्ञों के (सम्राजम्) सम्राट् (त्वा अग्निम्) आप प्रकाशमय जगन्नेता को, (वन्दध्यै) वन्दना के निमित्त, (नमोभिः) नमस्कारों द्वारा रिझाता हूँ।

[नमः=अन्न (निघं० २।७); नमः=नमस्कार]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ १

१६३५—स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः।

३ २ ३ १ २

मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्॥ २॥

(सः घ) वह प्रकाशमय जगन्नेता, जो कि (शवसा) निजशक्ति द्वारा (सुशेवः) उत्तम कल्याण करता, (पृथुप्रगामा) विस्तृत, तथा प्रगतिप्रदाता है, (मीढ्वान्) तथा आनन्दरसवर्षी है, (नः) हमारा (सूनुः) प्रेरक (बभूयात्) बने ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१६३६—स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥ ॥ ७(टि) ॥

हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! आप (विश्वायुः) सब प्रजाजनों के स्वामी हैं । (दूरात्) दूर वर्तमान (च) और (आसात्) समीप वर्तमान (अघायोः मर्त्यात्) पापी-मनुष्य से, (सः) वह आप, (नः) हमारी (सदम् इत्) सदा ही (नि पाहि) पूर्णतया रक्षा कीजिये ।

[घा० १३ । उ० १ । स्व० ३ ।

सूक्त ८

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१६३७—त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३ १ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (प्रतूर्तिषु) देवासुर-संग्रामों में (विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्धा, ईर्ष्या, असहिष्णुता, मात्सर्य आदि शत्रुओं का (अभि असि) पराभव करते हैं । (अशस्तिहा) आप अपकीर्ति के विनाशक हैं, (जनिता) सर्वोत्पादक, (वृत्रतूः) आत्मा और बुद्धि पर आवरण डालने वाले कामादि-पापों के विनाशक (असि) हैं । (त्वम्) आप (तरुष्यतः) इन विनाशकों का (तूर्य) विनाश कीजिये ।

[वृत्र=वृञ् आवरणे]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
१६३८—अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥
॥ ८(टा) ॥

हे परमेश्वर ! (ते) आपके (तुरयन्तम्) संहारकारी (शुष्मम्) बल का (अनु) अनुध्यान करके, (क्षोणी) द्युलोक-और-पृथिवी लोक (अनु ईयतुः) आपकी इच्छानुकूल चलते हैं, (न) जैसे कि (मातरा) माता-पिता (शिशुम्) शिशु के पीछे-पीछे चलते हैं । (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) चूंकि आप (वृत्रम्) सभी पाप-वृत्रों का (तुर्वसि) विनाश करते हैं, इसलिए (ते मन्यवे) आपके मन्यु के प्रति

(विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्धा आदि दुर्भावनाएँ, (श्नथयन्त) ढीली पड़ जाती हैं।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [घा० १८ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त ६

३ १ २र ३ २र ३ १ २
१६३६—यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्।
३ १ २ ३ २ ३ २
चक्राण ओपशं दिवि ॥ १ ॥

(यज्ञः) संसार-यज्ञ (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अवर्धयत्) बढ़ाई कर रहा है, (यत्) चूँकि परमेश्वर ने (भूमिम्) भूमि को (व्यवर्तयत्) अपने कक्षा-वृत्त पर घुमाया है, और (दिवि) द्युलोक में, सूर्य को, (ओपशम्) मुकुट रूप में (चक्राणः) स्थापित किया है।

२ऽ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
१६४०—व्य३न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
२ ३ १ २र ३ २
इन्द्रो यदभिनद्बालम् ॥ २ ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर ने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (वि अतिरत्) विशेषरूप में फैलाया है, और द्युलोक में (रोचना) रोचक नक्षत्र और तारागण फैलाए हैं, तथा उपासक द्वारा समर्पित (सोमस्य) भक्तिरस की (मदे) मस्ती में (यत्) जो परमेश्वर ने (बलम्) काम-क्रोध आदि शत्रुओं के बलों का (अभिनत्) भेदन कर दिया है।

[मन्त्र १६३६ और १६४० में एक ही भाव है, अर्थात् परमेश्वर की बढ़ाई]

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
१६४१—उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः।
३ १ २ ३ २
अर्वाञ्चं नुनुदे बलम् ॥ ३ ॥ ॥ ६(पी) ॥
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(अङ्गिरोभ्यः) प्राणायाम के अभ्यासियों के लिये, परमेश्वर ने, (गाः) ज्ञानरश्मियों को (उद् आजत्) उद्बुद्ध किया है, अर्थात् (गुहा) हृदय-की-गुफा में (सतीः) छिपी हुई ज्ञान-रश्मियों को (आविष्कृण्वन्) उसने आविष्कृत किया है, प्रकट किया है। और ज्ञान-रश्मियों के विरोधी (बलम्) बलों को परमेश्वर ने मानो (अर्वाञ्चम्) नीचे (नुनुदे) पटक दिया है।

[बलम्=रजस् और तमस् के बल]

[घा० २० । उ० १ । स्व० ४]

सूक्त १०

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१६४२—त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
१ २ ३ १ २
आ च्यावयस्यूतये ॥ १ ॥

हे उपासक ! तू (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये, (त्यम्) उस परमेश्वर को (उ) ही, अपनी ओर (आच्यावयसि) आवर्जित कर, स्वाभिमुख कर। हे उपासको ! तुम सब भी उस परमेश्वर को, (वः) अपनी ओर आवर्जित करो, स्वाभिमुख करो। वह परमेश्वर (सत्रासाहम्) वास्तव में विघ्नों का पराभव करता, और (गीर्षु) वेदों की वाणियों में (आततम्) फैला हुआ है, वर्णित है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
१६४३—युध्मँ सन्तमनर्वाणँ सोमपानमनपच्युतम् ।
१२ ३ १ २
नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥

हे उपासको ! तुम उस परमेश्वर को अपनी ओर आवर्जित करो (मन्त्र-१६४२), जो कि (युध्मम्) तुम्हारे देवासुर-संग्रामों में असुरों के साथ युद्ध करता है, (सन्तम्) जो सद्रूप हैं, (अनर्वाणम्) जो किसी पर आश्रित नहीं, स्वयम्भू हैं, (सोमपानम्) जो भक्तिरसों को स्वीकार करता, (अनपच्युतम्) अपने कर्तव्य-पालन में अटल, (नरम्) जगन्नायक, (अवार्यक्रतुम्) और अपने संकल्पों से हटाया नहीं जा सकता।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ १
१६४४—शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥ ॥ १० (ता) ॥

(ऋचीषम) हे ऋचाओं में समाए हुए (इन्द्र) परमेश्वर ! (विद्वान्) आप सर्ववेत्ता हैं, आप (आ) पूर्णरूप से (रायः) यथार्थ धन के सम्बन्ध में (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दीजिये। (पार्ये) भवसागर से पार कर देने वाले (धने) यथार्थ धन की प्राप्ति के निमित्त, आप (नः) हमारी (पुरु अव) पूर्ण रक्षा कीजिये।

[धा० १४ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त ११

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
१६४५—तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
वज्रँ शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (तव) आपके (त्यत्) उस (बृहत् इन्द्रियम्) महान् ऐश्वर्य की, (तव) आपके (दक्षम्) बल की, (उत) और (ऋतुम्) प्रज्ञा, कर्म और संकल्प की, (वरेण्यं वज्रम्) तथा श्रेष्ठ न्यायवज्र की (शिशाति, धिषणा) शिक्षा हमें वेदवाणी देती है।

[इन्द्रियम्=धनम् (निघं० २।१०)। धिषणा=वाक् (निघं० १।११)। धि=धी: (कर्म; प्रज्ञा; निघं० २।१; ३।९)+षणु (दाने) अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य का तथा यथार्थज्ञान का उपदेश देने वाली=वेदवाणी]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६४६—तव द्यौरिन्द्र पौँ स्यं पृथिवी वर्धति श्रवः।
२उ ३ १ २
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (द्यौः) द्युलोक (तव) आपके (पौंस्यम्) पुरुषार्थ, बल की महिमा को (वर्द्धति) बढ़ाता है, और (पृथिवी) पृथिवी आपके (श्रवः) यश को (वर्द्धति) बढ़ाती है। (आपः) जल (च) और (पर्वताः) पर्वत, मेघ (हिन्विरे) भी आपकी बढ़ोती के सूचक हैं।

[पर्वतः=मेघ (निघं० १।१०)]

१ २र३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१६४७—त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः।
१ २र ३ २ ३ १ २
त्वाँ शर्द्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥ ॥ ११(ठी) ॥

हे परमेश्वर ! (विष्णुः) रश्मियों से व्याप्त सूर्य. (बृहन् क्षयः) महान्-गृह अर्थात् अन्तरिक्ष, (मित्रः) वायु, (वरुणः) अग्नि, (मारुतम्) तथा मानसून वायुओं का (शर्द्धः) बल, इन में से प्रत्येक (त्वाम् अनु) आप की निरन्तर (मदति) स्तुतियां गा रहा है।

[मित्रः="अयं वै वायुर्मित्रो यो ऽयं पवते" (शत० ६।५।१५। वरुणः =यो वरुणः सो ऽग्निः (शत० ५।२।४।१३)। मरुतः=मानसून वायु (अथर्व० ४।२७।४,५)। सूर्य का ताप, पार्थिव अग्नि, वायु और अन्तरिक्ष,—इनकी सत्ता में मानसून का प्रादुर्भाव होता है]

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [धा० १३। उ० २। स्व० ४।]

सूक्त १२

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६४८—नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
१ २ ३ १ २
असैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशमय जगन्नेता !, (ते) आपके (ओजसे) ओज के प्रति, (नमः) हम नमस्कार करते हैं, सदा झुके रहते हैं। (देव) हे देवाधिदेव ! (कृष्टयः) जीवनों की खेतियों में सद्गुणों के बीज बोने वाले कर्मयोगी, (ओजसे) ओज शक्ति की प्राप्ति के लिये, (गृणन्ति) आपका स्तवन करते हैं। आप अपने स्वाभाविक (अमैः) ज्ञान, बल, क्रिया द्वारा (अमित्रम्) हमारे साथ स्नेह न करने वाले काम, क्रोध आदि शत्रुगण को (अर्दय) नष्ट करने की कृपा करें।

[अमैः=अम=बल (निरु० १०।२।२०); अम गतौ (भ्वा०)]

३ २उ ३ १२ ३१ २ ३१२ ३२
१६४९—कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्।
१२ ३१२
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (गविष्टये) गो-यज्ञ अर्थात् समग्र-पृथिवी के उपकार रूप महा-यज्ञ के लिये, (नः) हम में आप (कुवित्) बहुत (रयिम्) आध्यात्मिक-शक्ति (सु सं वेषिषः) अच्छे प्रकार प्रदान कीजिये। (उरुकृत्) आप महान् कार्यों के करने वाले हैं, (नः) हमें भी आप (उरुकृत्) महान् कार्य करने वाले (कृधि) कीजिये।

१ २ ३१ २र ३१२
१६५०—मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा।
३२३ २ ३१ २
संवर्गं सं रयिं जय ॥ ३ ॥ ॥ १२(प) ॥

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरुप जगन्नेता ! (महाधने) आध्यात्मिक-महाधन की प्राप्ति के निमित्त, आप (नः) हमें (मा परावर्क्) बीच में ही न छोड़ दीजिये, (यथा) जैसे कि (भारभृत्) बोझ ढोने वाला व्यक्ति बोझ को बीच में ही नहीं छोड़ देता, अपितु बोझ को निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचा देता है। (वर्गम्) काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वर्गों अर्थात् विभागों या समूहों पर (सं जय) हमें सम्यक्-विजय दिलाइये, (रयिम्) और आध्यात्मिक-सम्पत्ति पर आप हमें (सं जय) सम्यक्-विजय दिलाइये।

[घा० १५। उ० १। स्व० १]

सूक्त १३

१२ ३२३२ ३ १ २ ३१२
१६५१—समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
३ १२३ १२
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

(अस्य) इस परमेश्वर के (मन्यवे) ज्ञानपूर्वक किये रौद्ररूप के प्रति, (विशः) सर्वत्र फैली हुई (विश्वाः) सब (कृष्टयः) प्रजाएं (सं नमन्त) पूर्णतया झुक जाती हैं, (इव) जैसे कि (सिन्धवः) नदियां (समुद्राय) समुद्र के प्रति झुकी रहती हैं।

[मन्यु:=ज्ञानपूर्वक किया गया मन्यु=न्याय-और-कर्मों को दृष्टि में रख कर, दुष्ट व्यक्तियों को सुधारने के लिये, उन पर दर्शाया गया, रौद्ररूप]

१ २३१ ३ १२३ १२ ३ १२
१६५२—वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
१२ ३१२
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

(चित्) चेतन-परमेश्वर, (दोधतः) कम्पा देने वाले (वृत्रस्य) महापापों के (शिरः) सिरों को, (वृष्णिना) सुखवर्षी (शतपर्वणा) सौ वर्षों तक पालन-पोषण करने वाले (वज्रेण) अपने-शक्तिरूपी-वज्र द्वारा, (वि बिभेद) मानो काट फैंकता है।

२ ३ १२ ३ २उ ३१२
१६५३—ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।
२ ३ १२३१२
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ३ ॥ ॥ १३(तौ) ॥

(अस्य) इस परमेश्वर का (तत्) वह प्रसिद्ध (ओजः) तेज (तित्विषे) चमक उठता है, (यत) जब कि (इन्द्रः) परमेश्वर, (चर्म इव) चमड़े अर्थात् मृग-शस्ना के सदृश, (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक-और-भूलोक को, प्रलयकाल में, (व्यवर्तयत्) लपेट लेता है।

[धा० १४ । उ० १ । स्व० नास्ति]

सूक्त १४

३ २ ३ २ ३ १ २ ३१२
१६५४—सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (सुमन्मा) सुविचारपूर्ण, (वस्वी) श्रद्धा-भक्ति रूपी धन वाली, (रन्ती) रमणीय, (सूनरी) प्रिय-और-यथार्थ 'स्तुति-वाणी' आपके प्रति भेंट है।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
१६५५—सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि ।
२ ३ १ २र
ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥

(सरूप) हे सदा एकरूप वाले !, (वृषन्) हे सुखशान्ति की वर्षा करने वाले !, (धुर्यौ) उपासना-यज्ञ की धुरा का वहन करने वाले, (भद्रौ) सुख-और-कल्याण करने वाले, (इमौ) इन ऋक्-और-साम मिश्रित सामगानों के प्रति (आ गहि) आप आइये, (तौ इमौ) वे दोनों, सामगान रूप में, (उप सर्पः) आप के समीप भेंट रूप में उपस्थित हैं।

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१६५६—नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
१ २ ३ १ २ ३ २
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥ ॥ १४(यि) ॥

हे उपासको ! तुम अपने (शीर्षाणि) सिरों को (इव) मानो (नि मृढ्वम्) खूब मांज लो, अर्थात् अपने विचारों को खूब शुद्ध-पवित्र कर लो, क्योंकि परमेश्वर (आपस्य) प्राणों, रस-रक्तों के (मध्ये) बीच में (तिष्ठति) सदा स्थित है। वह तुम्हें (शृङ्गेभिः दशभिः) शृंगारमय दस विकारों के दुष्परिणामों द्वारा, (दिशन्) जीवन का यथार्थ मार्ग दर्शा रहा है।

[ब्रह्मचर्य योगसाधना का मुख्य उपाय है। योगदर्शन में "वीर्य" को भी समाधि का अंग माना है। यथा:—श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्" (१।२०)। ब्रह्मचर्य के लिये विचारों की पवित्रता आवश्यक है। विचारों की पवित्रता पर कर्मों की पवित्रता निर्भर है। शृंगारमय विकार जीवन को अपवित्र कर, व्यक्ति को योगसाधना से विमुख कर देते हैं। कामुकता से प्रेरित हो कर स्त्री-पुरुष का परस्पर संस्मरण, दर्शन, क्रीड़ा, एक दूसरे के रंग-रूप का कीर्तन, परस्पर भाषण, कामचेष्टा, कामभूषा, परस्पर प्रसंग अर्थात् मैथुन, कामुक साहित्य का पढ़ना, ये सब शृंगार-रस के परिणाम हैं। मन्त्र निर्देश करता है कि ये कामविकार, परिणामरूप में, दुःखदायी और योग विरोधी हैं।]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० ३]

इत्यष्टम प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ८—१ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



अथाष्टादशोऽध्यायः ।

[२]

अथाष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८—२ ॥

(१—१६) १ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; ३ शुनःशेप आजीगर्तिः; ४ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ वालखिल्यम् (आयुः काण्वः); ८ अम्बरिषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १० विश्वमना वैयश्वः; ११ सोभरिः काण्वः; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गौतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १३ कलिः प्रागाथः; १४, १७ विश्वामित्रः प्रागाथः; १५ मेध्यातिथिः काण्वः, १६ निध्रुविः काश्यपः; १८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ १—२, ४, ६—७, ६—१०, १३, १५ इन्द्रः; ३, ११, १८ अग्निः; ५ विष्णुः, ५ (६) देवो वा; ८, १२, १६ पवमानः सोमः; १४, १७

इन्द्राग्नी ॥ १—५, १४, १६—१८
गायत्री; ६, ७, ९, १२, १३ प्रगाथ:=
(विषमा बृहती, समा सतोबृहती);
८ अनुष्टुप् १० उष्णिक्, ११
काकुभः प्रगाथ:=(विषमा
ककुप्, समा सतोबृहती);
१५ बृहती ॥

सूक्त १

१२ ३१ २ ३ १ २ ३ १२
१६५७—पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥

(सोतारः) हे भक्तिरस के निष्पादक उपासको !, (मद्याय) प्रसन्न करने योग्य, (वीराय) विविध जगत् के प्रेरक, तथा (शूराय) पराक्रमशील परमेश्वर के लिये, तुम (पन्यं पन्यं इत्) अति प्रशंसनीय (सोमम्) भक्ति-भावनाओं को समर्पित करने के लिये (आ धावत) शीघ्रता करो।

[पन्यम्=पन स्तुतौ। वीर=वि+ईर् (गतौ, प्रेरणायाम्)। शूर=विक्रान्तौ]

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६५८—एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम्।
१ २ ३ १ २र
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥ २ ॥

(इह) इस उपासना-यज्ञ में, (ब्रह्मयुजा) ब्रह्म के साथ उपासक को जोड़ देने वाले, (शग्मा) सुखदायक, (हरी) मनको विषयों से हर लेने वाले ऋक्-और-साम,—(गीर्भिः) सामगान रूपी स्तुति वाणियों द्वारा,—(सखायम्) परममित्ररूप तथा (गिर्वणसम्) वैदिक वाणियों द्वारा भजनीय (इन्द्रम्) परमेश्वर का (आ वक्षतः) आवाहन करते हैं।

[हरी="ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" (ऐत० ब्रा० २।२४); तथा (शत० ब्रा० ४।४।३।६)]

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २
१६५९—पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्।
१ २ ३ १ २
नि यमते शतमूतिः ॥ ३ ॥ ॥ १(ति) ॥

(पाता) रक्षक तथा (वृत्रहा) पापविनाशक परमेश्वर, (सुतम्) निष्पादित भक्तिरस की ओर (घ) अवश्य (आगमत्) आता है, (अस्मत्) हम उपासकों से (आरे) दूर (न) नहीं रहता। (शतमूतिः) वह सैकड़ों प्रकार से उपासकों की रक्षा करता है, (नि यमते) और उन्हें नियमों में रखता है।

[घा० १४। उ० १। स्व० ३]

सूक्त २

१ २ ३ १२ ३१ २३ १ २

१६६०—आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।

२उ ३ १ २

न त्वामिन्द्राति रिच्यते ।। १ ।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (इन्दवः) चन्द्रसमान शीतल स्वभाव वाले उपासक, (त्वा) आप में (आ विशन्तु) प्रवेश पा जाँय, (इव) जैसे कि (सिन्धवः) स्यन्दन-शील नदियां (समुद्रम्) समुद्र में प्रवेश पा जाती हैं। हे परमेश्वर ! (त्वाम् अतिरिच्यते न) आप से बढ़कर और कोई नहीं है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१६६१—विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षँ सोमस्य जागृवे ।

१ २ ३ १ २

य इन्द्र जठरेषु ते ।। २ ।।

(वृषन्) हे सुख-शान्ति की वर्षा करने वाले!, (जागृवे) हे सदा जागरूक (इन्द्र) परमेश्वर ! आप अपनी (महिना) महिमा से, महत्त्वगुण से, (विव्यक्थ) सर्वत्र व्याप रहे हैं, और आप अपनी महिमा से ही, (सोमस्य) उत्पन्न-संसार का (भक्षम्) भक्षण, प्रलयकाल में, करते हैं, (यः) जो उत्पन्न-संसार कि (ते) आपके (जठरेषु) पेटों में समा रहा है, और समा जाता है।

[अथर्ववेद में विराट्-पुरुष का वर्णन करते हुए कहा है कि "अन्तरिक्षमुतोदरम्" (१०।७।३२), अर्थात् परमेश्वर का उदर है—अन्तरिक्ष। परमेश्वर के इस अन्तरिक्षरूपी पेट (जठर) में समग्र ब्रह्माण्ड समाया हुआ है, इसी अन्तरिक्ष-पेट में ही समग्र ब्रह्माण्ड प्रलय काल में समा जाता है। इसी भक्षण की दृष्टि से परमेश्वर को "अत्ता" और "अन्नाद" भी कहते हैं। मन्त्र में सोम का भक्षण कहा है. सोम का पान नहीं कहा। इसीलिये सोम का अर्थ "भक्तिरस" इस मन्त्र में अनुपपन्न है। "जठरेषु" में बहुवचन इस सच्चाई को सूचित करता है कि संसार का उत्पादन और संहार (भक्षण) वार-वार सृष्टिनियम द्वारा होता रहता है। संसार की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलय,—ये तीनों ही परमेश्वर के जठरों (अन्तरिक्षों) में होते रहते हैं। परमेश्वर के शरीर और शरीरावयवों का वर्णन काल्पनिक है (यजु० ३१।१०, १३; व्यकल्पयन्, तथा अकल्पयन्)]

१ २ ३ २ ३ १ २

१६६२—अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।

२ ३ १ २ ३ १ २

अरं धामभ्य इन्दवः ।। ३ ।। ।। २(क) ।।

(वृत्रहन्) हे पापों के घेरे का विनाश करने वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! (सोमः) समग्र उत्पन्न-ब्रह्माण्ड, (ते) आपके (कुक्षये) केवल अल्प-निवासगृह के वर्णन के निमित्त (अरम् भवत) पर्याप्त है, और (इन्दवः) चन्द्रसमशीतल स्वभाव

वाले उपासक (ते धामभ्यः) आपके अन्य धामों के कथन के लिये (अरम्, अलम्) पर्याप्त हैं।

[वृत्रहन्=वृत्रस्य आवरकस्य पापस्य (सायण)। सोमः=उत्पन्न ब्रह्माण्ड (षु प्रसव)। कुक्षये=कु (अल्प) + क्षय (निवास गृह)। यह समग्र ब्रह्माण्ड परमेश्वर के निवास के लिये अत्यल्प है। इसमें तो केवल एक पाद ही, परमेश्वर का, समाया हुआ है (पादोऽस्य विश्वा भूतानि, यजु० ३१।३)। इस परमेश्वर के शेष तीन-पाद संसार की रचना, पालना और संहार से ऊपर उठे हुए हैं, संसार से असम्बन्धित हैं। "त्रिपादस्यामृतं दिवि", तथा त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः" (यजु० ३१।३,४)। परमेश्वर के इन तीन-पादों का वर्णन तो प्रत्यक्षदर्शी योगिजन ही कर सकते हैं। यह ब्रह्माण्ड परमेश्वर का एक-धाम है। शेष त्रिपाद, परमेश्वर के अन्य तीन-धाम हैं। ब्रह्माण्ड अर्थात् जगत् जागरितावस्थारूप है, प्रलयोन्मुखता स्वप्न रूप है, पूर्ण प्रलय सुषुप्त्यवस्था, तथा जगत् विहीनावस्था तुर्य रूप है] (1)

[धा० ११। उ० १। स्व० १]

सूक्त ३

१२ ३१२ ३१२ ३१२
१६६३—जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
१ २ ३१२ ३ १
स्तोमँ रुद्राय दृशीकम् ॥ १ ॥

(जराबोध) हमारी स्तुति-प्रार्थनाओं को जानने-पहचानने वाले हे प्रभो! (तत्) उन हमारे हृदयों में (विविड्ढि) आप प्रवेश कीजिये, (विशेविशे) ताकि प्रजामात्र का कल्याण हो, (यज्ञियाय) और हमारे उपासना-यज्ञ सम्पन्न हो सकें। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले आपके प्रति हम (दृशीकम्) दर्शनीय (स्तोमम्) सामगान भेंट करते हैं।

१ २ ३१ २ ३ २ ३१२ ३ २
१६६४—स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।
३ १ २र
धिये वाजाय हिन्वतु ॥ २ ॥

(महान्) महान्, (अनिमानः) माप रहित, (धूमकेतुः) धुआं जिसका ज्ञापक चिन्ह है, (पुरुश्चन्द्रः) पूर्ण-चांद भी जिसका ज्ञापक चिन्ह है, (सः) वह परमेश्वर, (नः) हमें (धिये) सद्बुद्धि और सत्कर्मों के लिये, तथा (वाजाय) शक्ति की प्राप्ति के लिये (हिन्वतु) प्रेरित करे।

---

१. मनुस्मृति में प्रलयोन्मुखावस्था को "सुप्त-अवस्था", तथा पूर्ण प्रलय को "प्रसुप्त-अवस्था" कहा है। यथा:—"आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः"। स्वप्न-अवस्था=सुप्त-अवस्था; तथा सुषुप्ति-अवस्था=प्रसुप्त-अवस्था।

सूक्त २

१ २ ३ १२ ३१२३ १२
१६६०—आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
२उ ३ १२
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ।। १ ।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (इन्दवः) चन्द्रसमान शीतल स्वभाव वाले उपासक, (त्वा) आप में (आ विशन्तु) प्रवेश पा जाँय, (इव) जैसे कि (सिन्धवः) स्यन्दन-शील नदियां (समुद्रम्) समुद्र में प्रवेश पा जाती हैं। हे परमेश्वर ! (त्वाम् अतिरिच्यते न) आप से बढ़कर और कोई नहीं है।

३ १ २ ३ १२ ३१ २र
१६६१—विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।
१२ ३१२
य इन्द्र जठरेषु ते ।। २ ।।

(वृषन्) हे सुख-शान्ति की वर्षा करने वाले!, (जागृवे) हे सदा जागरूक (इन्द्र) परमेश्वर ! आप अपनी (महिना) महिमा से, महत्त्वगुण से, (विव्यक्थ) सर्वत्र व्याप रहे हैं, और आप अपनी महिमा से ही, (सोमस्य) उत्पन्न-संसार का (भक्षम्) भक्षण, प्रलयकाल में, करते हैं, (यः) जो उत्पन्न-संसार कि (ते) आपके (जठरेषु) पेटों में समा रहा है, और समा जाता है।

[अथर्ववेद में विराट्-पुरुष का वर्णन करते हुए कहा है कि "अन्तरिक्षमुतोदरम्" (१०।७।३२), अर्थात् परमेश्वर का उदर है—अन्तरिक्ष। परमेश्वर के इस अन्तरिक्षरूपी पेट (जठर) में समग्र ब्रह्माण्ड समाया हुआ है, इसी अन्तरिक्ष-पेट में ही समग्र ब्रह्माण्ड प्रलय काल में समा जाता है। इसी भक्षण की दृष्टि से परमेश्वर को "अत्ता" और "अन्नाद" भी कहते हैं। मन्त्र में सोम का भक्षण कहा है. सोम का पान नहीं कहा। इसीलिये सोम का अर्थ "भक्तिरस" इस मन्त्र में अनुपपन्न है। "जठरेषु" में बहुवचन इस सच्चाई को सूचित करता है कि संसार का उत्पादन और संहार (भक्षण) वार-वार सृष्टिनियम द्वारा होता रहता है। संसार की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलय,—ये तीनों ही परमेश्वर के जठरों (अन्तरिक्षों) में होते रहते हैं। परमेश्वर के शरीर और शरीरावयवों का वर्णन काल्पनिक है (यजु० ३१।१०, १३; व्यकल्पयन्, तथा अकल्पयन्)]

१२ ३२३११
१६६२—अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
२३ १२ ३ १२
अरं धामभ्य इन्दवः ।। ३ ।। ।। २(क) ।।

(वृत्रहन्) हे पापों के घेरे का विनाश करने वाले (इन्द्र) परमेश्वर ! (सोमः) समग्र उत्पन्न-ब्रह्माण्ड, (ते) आपके (कुक्षये) केवल अल्प-निवासगृह के वर्णन के निमित्त (अरम् भवत) पर्याप्त है, और (इन्दवः) चन्द्रसमशीतल स्वभाव

वाले उपासक (ते धामभ्यः) आपके अन्य धामों के कथन के लिये (अरम्, अलम्) पर्याप्त हैं।

[वृत्रहन्=वृत्रस्य आवरकस्य पापस्य (सायण)। सोमः=उत्पन्न ब्रह्माण्ड (षु प्रसव)। कुक्षये=कु (अल्प) + क्षय (निवास गृह)। यह समग्र ब्रह्माण्ड परमेश्वर के निवास के लिये अत्यल्प है। इसमें तो केवल एक पाद ही, परमेश्वर का, समाया हुआ है (पादोऽस्य विश्वा भूतानि, यजु० ३१।३)। इस परमेश्वर के शेष तीन-पाद संसार की रचना, पालना और संहार से ऊपर उठे हुए हैं, संसार से असम्बन्धित हैं। "त्रिपादस्यामृतं दिवि", तथा त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः" (यजु० ३१।३,४)। परमेश्वर के इन तीन-पादों का वर्णन तो प्रत्यक्षदर्शी योगिजन ही कर सकते हैं। यह ब्रह्माण्ड परमेश्वर का एक-धाम है। शेष त्रिपाद, परमेश्वर के अन्य तीन-धाम हैं। ब्रह्माण्ड अर्थात् जगत् जागरितावस्थारूप है, प्रलयोन्मुखता स्वप्न रूप है, पूर्ण प्रलय सुषुप्त्यवस्था, तथा जगत् विहीनावस्था तुर्य रूप है] ([1])

[धा० ११। उ० १। स्व० १]

सूक्त ३

१२ ३१२ ३१२ ३१२
१६६३—जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
१२ ३१२ ३१
स्तोमँ रुद्राय दृशीकम्॥ १॥

(जराबोध) हमारी स्तुति-प्रार्थनाओं को जानने-पहचानने वाले हे प्रभो! (तत्) उन हमारे हृदयों में (विविड्ढि) आप प्रवेश कीजिये, (विशेविशे) ताकि प्रजामात्र का कल्याण हो, (यज्ञियाय) और हमारे उपासना-यज्ञ सम्पन्न हो सकें। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले आपके प्रति हम (दृशीकम्) दर्शनीय (स्तोमम्) सामगान भेंट करते हैं।

१२ ३१ २ ३२ ३१२ ३२
१६६४—स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।
३१ २र
धिये वाजाय हिन्वतु॥ २॥

(महान्) महान्, (अनिमानः) माप रहित, (धूमकेतुः) धुआं जिसका ज्ञापक चिन्ह है, (पुरुश्चन्द्रः) पूर्ण-चांद भी जिसका ज्ञापक चिन्ह है, (सः) वह परमेश्वर, (नः) हमें (धिये) सद्बुद्धि और सत्कर्मों के लिये, तथा (वाजाय) शक्ति की प्राप्ति के लिये (हिन्वतु) प्रेरित करे।

---

१. मनुस्मृति में प्रलयोन्मुखावस्था को "सुप्त-अवस्था", तथा पूर्ण प्रलय को "प्रसुप्त-अवस्था" कहा है। यथा:—"आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः"। स्वप्न-अवस्था=सुप्त-अवस्था; तथा सुषुप्ति-अवस्था=प्रसुप्त-अवस्था।

[मन्त्र में "धूम और चन्द्र" पद आध्यात्मिक धूम और चन्द्र के सूचक हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् (अ० २, खं ११) में कहा है कि "नीहार धूमार्कानिलानलानां खद्योत विद्युत्स्फटिक शशीनाम्। एतानि रूपाणि पुरः सराणि, ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे"। अर्थात् योगाभ्यास में सफेद कोहरा, धूम, सूर्य, वायु का चलना, आग, जुगनुओं या सितारों, विद्युत्, स्फटिक, और चांद आदि का आंतरिक-भान होना, ब्रह्माभिव्यक्ति के पूर्व रूप हैं। इन में "धूम और चान्द" की भी गणना हुई है, जिन का कि वर्णन १६६४ वें मन्त्र में हुआ है। धिये=धी (प्रज्ञा और कर्म)। पुरुश्चन्द्रः पुरुश्चासौ चन्द्रश्च (सायण)। (पुरुः पूर्णः) चन्द्रः ज्ञापको यस्य सः]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१६६५—स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः।

३ २ ३ २ ३ १ २

उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः॥ ३॥ ॥ ३ (ह)॥

(विश्पतिः) प्रजाओं का पालक, (दैव्यः) देवाधिदेव, (केतुः) यथार्थ वेत्ता, तथा (बृहद्भानुः) महाप्रभायुक्त (अग्निः) जगन्नेता प्रभु, (उक्थैः) वैदिक सूक्तों द्वारा प्रार्थित हुआ, (नः) हमारी प्रार्थनाओं को (शृणोतु) सुने, (इव) जैसे कि (रेवान्) सम्पत्तिशाली (विश्पतिः) राजा, प्रार्थियों की प्रार्थनाओं को सुनता है।

[केतुः=प्रज्ञानम् (निरु० १२।१।७)]

[धा० ११। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त ४

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

१६६६—तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।

२उ ३ २ ३ १ २

शं यद्गवे न शाकिने॥ १॥

हे उपासको! (सुते) भक्तिरस के उत्पन्न हो जाने पर, (वः) तुम में से प्रत्येक, (सचा) परस्पर मिल कर,—(पुरुहूताय) बहुतनामों द्वारा पुकारे गये (सत्वने) पापध्वंसी परमेश्वर के लिये,—(तत्) उस सामगान का (गाय) गान करे, (यद्) जो सामगान कि (न) जैसे (गवे) गाने वाले उपासक के लिये (शम्) शान्ति प्रदान करे, वैसे (शाकिने) शक्तिशाली परमेश्वर के लिये भी प्रसन्नता का उत्पादक हो।

[गवे=गौः स्तोतृनाम (निघं० ३।१६)] सत्वने=षद्लृ अवसादने, विशरणे+वत्]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

१६६७—न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

यत्सीमुपश्रवद्गिरः॥ २॥

(गोमतः) पार्थिव सम्पत्तियों सम्बन्धी (वाजस्य) बलों, इन्द्रिय शक्तियों सम्बन्धी बलों, तथा वेदवाणियों सम्बन्धी ज्ञानों के (दानम्) दान को (वसुः) ब्रह्माण्डवासी परमेश्वर, (घ) निश्चय से, (न नियमते) नियमित नहीं करता, अर्थात् इनका दान प्रभूतमात्रा में करता हैं, (यत् सीम्) जब कि सर्वव्यापक परमेश्वर (गिरः) प्रार्थना-वाणियों को (उप श्रवत्) प्रत्यक्ष हो कर सुन लेता है।

[गौः=पृथिवी (निघं० १।१); गौः=इन्द्रियां (उणादि कोष २।६७ वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। गौः=वाक् (निघं० १।११। वाजस्य=बलस्य (निघं० २।९)। उप=समीप होना, प्रत्यक्ष होना]

३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
१६६८—कुवित्सस्य प्राहि वज्रं गोमन्तं दस्युहा गमत्।
१ २ ३ १ २
शचीभिरप नो वरत्॥ ३॥ ॥ ४(फी)॥

(कुवित्सस्य) अपने पापों के विनाश में बहुत प्रयास करने वाले उपासक के, (गोमन्तं व्रजम्) ऐन्द्रियिक —पाप समूह के प्रति, (दस्युहा) क्षयकारी-पापों का हनन करने वाला परमेश्वर, (हि) अवश्य, (प्र आगमत्) उपासक की सहायतार्थ, शीघ्र आ प्रकट होता है, और (शचीभिः) अपनी शक्तियों द्वारा (अप) पाप-दस्युओं को हटा कर (नः) हम उपासकों का (वरत्) वरण कर लेता है, हमें अपना लेता है।

[कुवित्सस्य=कुवित् बहु स्यति हिनस्ति यः, तस्य (सत्यता)। कुवित्=बहु (निघ० ३(१)+षा अन्तकर्मणि; षै क्षये]

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥ [धा० १५। उ २। स्व० ४]

सूक्त ५

३२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
१६६९—इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
१ २ ३ २
समूढमस्य पांसुले ॥ १॥

(विष्णुः) व्यापक परमेश्वर ने, एक पाद द्वारा, (इदम्) इस ब्रह्माण्ड पर (विचक्रमे) अपना विक्रम अर्थात् पराक्रम दर्शाया है। और परमेश्वर ने इस (पदम्) एक पाद को (त्रेधा) तीन स्थानों में तीन प्रकार से (नि दधे) स्थापित किया है। और इसका यह एक पाद भी (समूढम्) अज्ञात रूप है, या ऊहा अर्थात् तर्क द्वारा गम्य है, प्रत्यक्ष नहीं हो रहा, जैसे कि (पांसुरे) धूली-भूमि में छिपी वस्तु प्रत्यक्ष नहीं होती।

[समूढम्=स+मूढ; या सम्+ऊढ। त्रेधा=पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक में। अज्ञात रूप का वर्णन, "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्" (यजु० ४०।१७) द्वारा भी हुआ है]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
१६७०—त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥

(**विष्णुः**) व्यापक परमेश्वर ने (**त्रीणि पदा**) तीन-पादों का भी (**विचक्रमे**) पराक्रम दर्शाया है । अतः इन तीन पादों से वह (**धर्माणि**) धारण करने वाले तीनों लोकों को (**धारयन्**) धारण कर रहा हैं। परमेश्वर इन तीन-पादों की दृष्टि से (**गोपाः**) गुप्त रूप है, अप्रकटित रूप है, (**अदाभ्यः**) वह सदा इस रूप में रहता है, यह रूप इसका सांसारिक परिवर्तनों से असम्बद्ध है ।

[विचक्रमे = संसारोत्पत्ति के आरम्भ में परमेश्वर "ईक्षण" करता है "स ऐक्षत" (छान्दोग्य० उप०), कि मैं नानाविध जगत् का निर्माण करूँ ("बहु स्याम प्रजायेय" (छान्दोग्य० उप०) । यह "ईक्षण" और "बहु स्याम" की इच्छा जगत् का प्रारम्भिक बीज है । इन्हीं द्वारा जगत् की रचना और धारणा होती है। यह बीज "त्रिपाद् परमेश्वर में प्रथम अङ्कुरित होता है, तत्पश्चात् सृष्टि रचना होती है । मन्त्र १६६९ और १६७० की व्याख्या यजुर्वेद अध्याय ३१ के पुरुष सूक्त के "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"(३१।३)के अनुसार की गई है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१६७१—विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

हे उपासको ! तुम (**विष्णोः**) व्यापक परमेश्वर के (**कर्माणि**) कर्मों को (**पश्यत**) देखो, (**यतः**) जिन कर्मों को देखकर, (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर का (**युज्यः सखा**) योग्य-सखा अर्थात् सच्चा परमेश्वरोपासक, (**व्रतानि**) अपने व्रतों का (**पस्पशे**) पालन करता है, अर्थात् अपने व्रतों को परमेश्वर के कर्मों के अनुसार ढालता है ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१६७२—तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ४ ॥

(**विष्णोः**) व्यापक परमेश्वर के (**तत्**) उस (**परमं पदम्**) परम-पद को, त्रिपाद्रूप को, (**सूरयः**) ब्रह्मवेत्ता-योगी (**सदा पश्यन्ति**) सदा देखते हैं, स्वात्माओं में उस का साक्षात्कार करते हैं, (**इव**) जैसे कि (**दिवि**) द्युलोक में (**आततम्**) रश्मियों द्वारा फैले हुए (**चक्षुः**) सौर-मण्डल की आंख अर्थात् सूर्य को सर्वसाधारण-जन देखते हैं। या द्युलोक में फैले नक्षत्र आदि को हमारी आंख देखती हैं।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१६७३—तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ५ ॥

(विष्णोः) व्यापक परमेश्वर का (यत्) जो (परमं पदम्) परम-पद अर्थात् त्रिपाद्रूप है, (तत्) उसे (वि पन्यवः) विशिष्ट-स्तुतियों वाले, (जागृवांसः) सदा जागरूक, सावधान योगी-जन (समिन्धते) अपनी आत्माओं या हृदयों में सम्यक्-प्रदीप्त रखते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१६७४—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥ ॥ ५ (ठू)॥

(यतः) चूंकि (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर का (वि चक्रमे) विक्रम अर्थात् पराक्रम सर्वत्र विद्यमान है, (अतः) इस लिये (देवाः) परमेश्वर की दिव्य शक्तियां, कहीं भी रहते (नः) हम उपासकों की (अवन्तु) रक्षा करती रहती हैं, (पृथिव्याः) पृथिवी के (सानवि अधि) एकान्त उच्च-प्रदेशों अर्थात् पर्वतों की गुफाओं आदि में भी, वे दिव्य शक्तियाँ, हमारी रक्षा करती रहती हैं।

[बा० ३३। उ० २। स्व० ६]

सूक्त ६

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
१६७५—मोषु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

हे परमेश्वर! (वाघतः) आप द्वारा सौंपे कार्यभार का वहन करने वाले अर्थात् आप की प्रेरणाओं द्वारा प्रेरित उपासक, (त्वा) आप को (नि रीरमन्) निरन्तर संतुष्ट और प्रसन्न रखते हैं। (अस्मत् चन) हम अन्य उपासकों से भी आप (आरे) दूर (मा उ सु) मत हूजिये, विमुख न हूजिये, (वा) अथवा (आरात्तात्) ज्ञान दृष्टि से दूर होते हुए भी, (नः) हमारे (सधमादम्) और आप के पारस्परिक सहानन्दों में (आ गहि) आप आ प्रकट हूजिये, (वा) अथवा (इह सन्) इन हमारे हृदयों में होते हुए (उप श्रुधि) हमारी स्तुति-प्रार्थनाओं का श्रवण कीजिये।

[आरात्तात्=आरात्+ताति (प्रत्यय)। अथवा आरात्+तात्(वहाँ से)]

३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २
१६७६—इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥६(डी)

(ब्रह्मकृतः) जिन्होंने आप-ब्रह्म को अपना लिया है, ऐसे (ते) आप के (इमे) ये उपासक, (सुते) भक्तिरस के उत्पन्न हो जाने पर, (सचा) आप के साथ लीन हुए, (आसते) ऐसे उपासना में बैठते हैं, (न) जैसे कि (मधौ) मधुभरे छत्ते पर (मक्षः) मधुमक्खियाँ मधु में लीन हुई सी बैठती हैं। (वसूयवः) आप की आनन्द-

रस रूपी सम्पत्ति के अभिलाषी (जरितारः) ये स्तोता लोग, (इन्द्रे) आप परमेश्वर में, (कामम्) अपनी सब कामनाओं का (आ दधुः) आधान कर निश्चिन्त हो जाते है, (न) जैसे कि रथारोही, (पादम्) पैरों समेत अपने-आप को, (रथे) रथ में, (आ दधुः) सुरक्षित रूप में रख कर, निश्चिन्त हो जाते हैं।

[धा० १३ । उ० ४ । स्व० ४]

सूक्त ७

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

१६७७—अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥

(मन्म) मनन करने योग्य सामगान (अस्तावि) प्रारम्भ हो चुका है। हे उपासको ! तुम भी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (ब्रह्म) ब्रह्मप्रतिपादक (पूर्व्यम्) सनातन सामगान (वोचत) गाओ। (ऋतस्य) सच्चाई-भरी (पूर्वीः बृहतीः) तथा प्राचीन, ब्रह्मप्रतिपादक वेदवाणियों का, (अनूषत) स्तुतिरूप में गान करो। इससे (स्तोतुः) स्तोताओं को (ऋतस्य मेधाः) ऋतम्भरा-प्रज्ञाएं (असृक्षत) प्रकट होती हैं। [ऋतम्भरा प्रज्ञा (योग १।४८)]

[ब्रह्म और बृहतीः दोनों पदों में धातु है 'बृह्', जिस का अर्थ है-'बड़ा']

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

१६७८—समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥

॥ ७(ठा) ॥

(इन्द्रः) शक्तिशाली परमेश्वर (रायः बृहतीः) बड़ी-बड़ी सम्पत्तियों को (सम्) एक साथ (अधूनुत) कम्पा देता है, (क्षोणीः) नाना भूमियों को (सम्) एक साथ कम्पा देता है, (उ) और निश्चय से (सूर्यम्) सूर्य को भी (सम्) सम्यक् प्रकार से कम्पा देता है। (गवाशिरः) वेद वाणियों के निर्देश द्वारा परिपक्व, (शुचयः) निर्मल और (शुक्रासः) शक्तिशाली (सोमाः) भक्तिरस (इन्द्रम्) परमेश्वर को (सम् अमन्दिषुः) सम्यक् रूप से प्रसन्न करते हैं।

[गवाशिरः=गौ=वाक् (निघं० १।११)+श्रीञ् या श्रा (पाके)। अमन्दिषुः=मदि, मोद]

[धा० १३ । उ० २ । स्व० २]

सूक्त ८

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

१६७९—इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥

(सोम) हे सौम्य उपासक ! (पातवे) रक्षा के लिये तू (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रति (परिषिच्यसे) पूर्णरूप में न्योछावर कर दिया गया है, उस परमेश्वर के प्रति जोकि (वृत्रघ्ने) तेरे पाप-वृत्रों की हत्या करता, (नरे) जगत् का नेता है, (दक्षिणावते) जिसने समग्र पदार्थ मानो दक्षिणारूप में दे रखे हैं, (वीराय) जो सर्व-प्रेरक है, (सदनासदे) और तेरे हृदय-सदन में विराज रहा है।

१ २ ३ १ २ २ ३ ३ २ २ ३ १ २
१६८०—तँ सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अश्याम वाजगन्ध्यँ सनेम वाजस्पत्यम् ॥ २ ॥

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (सूरयः) प्रज्ञा वाले (वयम्) हम (च) और (यूयम्) तुम—(पुरूरुचम्) बहुत रुचिकर, (वाजगन्ध्यम्) बल और शक्ति की सुकीर्ति से सम्पन्न, तथा (वाजपस्त्यम्) बल और शक्ति के आगार (तम्) उस परमेश्वर का (सनेम) भजन करें, और उसे (अश्याम) प्राप्त करें।

२ ३ १ २ ३ १ २र
१६८१—परि त्यँ हर्यतँ हरिम् ॥ ३ ॥ ॥ ८(हा) ॥

उपासक लोग, (धारेण) तामसिक-और-राजसिक चित्तवृत्तियों के निवारण द्वारा, उनके निरोध द्वारा, (त्यम्) उस (हर्यतम्) कान्तिमय, (हरिम्) क्लेशहर्त्ता (बभ्रुम्) सबका भरण-पोषण करने वाले प्रभु को (पुनन्ति) विशुद्धरूप में प्रकट कर लेते हैं, (यः) जो प्रभु कि (मदेन सह) उपासक के लिये मस्तानी आनन्दमात्रा के साथ, (विश्वान् देवान्) सभी उपासक-देवों को (इत्) ही (परि गच्छति) प्राप्त होता है।

[धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त ९

१ २र ०३ ०
१६८२—कस्तमिन्द्र त्वा वस [वसो । आ] ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वसो) हे विश्ववासी ! (कः) कौन (मर्त्यः) मरण-धर्मा मनुष्य (तं त्वा) उस प्रसिद्ध शक्ति वाले आप को (आ दधर्षति) दबा सकता है ? (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली ! (पार्ये) पार लगाने वाले (दिवि) ज्ञान-प्रकाश में उत्पन्न हुई (ते) आपके प्रति (श्रद्धा हि) श्रद्धा ही, उपासक को, (वाजम्) आध्यात्मिक-बल (सिषासति) प्रदान कर सकती है, क्योंकि आप ही (वाजी) सभी बलों के स्वामी हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
१६८३—मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ २ ॥
॥ ९(यि) ॥

हे परमेश्वर ! आप की कृपा से हम (मघोनः) सम्पत्तियों के स्वामी (स्म) हुए हैं। (ये) जो सम्पत्तियों के स्वामी (प्रिया) अपनी प्रिय (वसु)) सम्पत्तियों का (ददति) सत्पात्रों में दान करते हैं, उन्हें आप (वृत्र हत्येषु) पाप-वृत्रों के हनन कर्म में (चोदथ) प्रेरणाएं दीजिये। (हर्यश्व) विषयहारी प्रबल मन के हे स्वामी! (तव) आप के (प्रणीती) सत्पथों पर नयन द्वारा, तथा (सूरिभिः) उपासक विद्वानों की सत्प्रेरणाओं द्वारा, हम (विश्वा दुरिता) सब दुष्परिणामी पाप-नदों को (तरेम) तैर जायें।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥ [घा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त १०

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६८४—एदु मधोमदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः।
३ २उ ३ १ २र ३ १ २
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ १ ॥

(अध्वर्यो) ! हिंसारहित उपासना-यज्ञ के नेता हे उपासक ! तू उपासना में (अन्धसः) अन्नमय शरीर से उत्पन्न (मधोः मदिन्तरम्) शहद से भी अधिक प्रसन्नता देने वाले भक्तिरस को, (इत् उ) अवश्य (आ सिञ्च) परमेश्वर पर पूर्णतया न्योछावर कर। (एव हि) इस विधि से ही (वीरः)प्रेरणादायक परमेश्वर (स्तवते) उपासक को जीवन मार्ग का उपदेश देता है, (सदावृधः) और सदा उपासक की वृद्धि करता है।

[वीरः=वि+ईर (गतौ)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २
१६८५—इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ २ ॥

(हरीणाम्) विषयों में हरण करने वाली इन्द्रियों के (स्थातः) अधिष्ठाता (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) आपकी (पूर्व्यस्तुतिम्) पूर्वकाल की सनातन वैदिक-स्तुतियों तक (नकिः) कोई नहीं पहुँच सका, (न) न (शवसा) बल की दृष्टि से, और न (भन्दना) कल्याण करने और सुख देने की दृष्टि से (उदानंश) आप तक कोई पहुंच पाया है।

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१६८६— तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ३ ॥ ॥ १०(क) ॥

हे उपासक शिष्यो ! (वः) तुम्हारे लिये, (श्रवस्यवः) यश, प्रशंसा, और आध्यात्मिक-अन्न चाहते हुए हम गुरुजनों ने, (अहूमहि) परमेश्वर का आह्वान किया है, जो परमेश्वर कि (वाजानां पतिम्) बलों और शक्तियों का स्वामी है,

और जो (अप्रायुभिः) स्थिर चित्तवृत्तियों द्वारा किये जाने वाले (यज्ञेभिः) उपासना-यज्ञों द्वारा (वावृधेन्यम्) खूब बढ़ाता है।

[धा० १६ । उ० १ । स्व० १]

सूक्त ११

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१६८७—तं गूर्द्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।

३ २ ३ १ २

देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥

(देवासः) देवकोटि के उपासक, जिस (स्वः नरम्) सुख-के-नेता, (अरतिम्) संसार में रतिरहित, (देवम्) परमात्मदेव का (दधन्विरे) अपनी आत्माओं में ध्यान करते हैं, (तम्) उस परमात्मा की, हे उपासक ! तू (गूर्धय) अर्चना किया कर, तब तू (देवत्रा) परमात्मदेव की, (हव्यम्) अपनी आत्मसमर्पणरूपी हवि (ऊहिषे) पहुंचा सकेगा।

[गूर्धयति अर्चतिकर्मा (निघं० ३।१४)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१६८८—विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

॥ ११(या) ॥

(विप्र) हे मेधावी !, (सोभरे) तथा असात्विक वृत्तियों का अन्त करने वाले और सात्विक वृत्तियों का भरण-पोषण करने वाले हे उपासक ! (अध्वराय) हिंसारहित उपासना-यज्ञ की सफलता के लिये तू (विभूत रातिम्) प्रभूतदानी, (चित्रशोचिषम्) अद्भुतदीप्तिसम्पन्न, (अस्य) इस (सोम्यस्य) भक्तिरस सम्बन्धी (मेधस्य) उपासनायज्ञ के (यन्तुरम्) नियन्ता, (पूर्व्यम्) अनादि तथा सनातन (इम् अग्निम्) इस जगन्नेता की (प्र ईडिष्व) खूब स्तुति किया कर।

[सोभरे=सोभरि=षो अन्तकर्मणि+भृ (धारण, पोषण)।

[धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त १२

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

१६८९—आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।

२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २

जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ १ ॥

(सोम) हे भक्तिरस ! तू (स्वानः) उपासक में अन्तर्नाद प्रकट करता है, (अद्रिभिः) पर्वतों और मेघों आदि के दिव्य दृश्यों द्वारा तू उत्पन्न होता है (मन्त्र

५१२) । (वाराणि) विघ्न-बाधाओं का निवारण करने वाली (अव्यया=अव्ययानि) रक्षक प्रभु की शक्तियों को प्राप्त कर तू (तिरः) विघ्न-बाधाओं को तिरस्कृत कर देता है। (जनः न) जैसे जनता (पुरि) नगर में (विशत्) प्रविष्ट होती है, वैसे भक्तिरस (चम्वोः) सिर से लेकर पैरों तक मेरे समग्र शरीर में (आ विशत्) भर-पूर हुआ-हुआ है। (हरिः) हे भक्तिरस तू क्लेशापहारी है। (वनेषु) वनों में वानप्रस्थियों में (सदा दधिषे) तूने सदा निवास किया है, आत्मधारण किया है।

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २

१६९०—स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वांत्सप्तिर्न वाजयुः।

३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २

अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः

॥ २ ॥ ॥ १२(तु)

(मेष्यः) सुखवर्षी वेदमाता द्वारा दर्शाए (अण्वानि) सूक्ष्मधर्मों को (तिरः) प्राप्त कर लेने पर (सः सोमः) वह जगत्प्रेरक-तथा-जगदुत्पादक परमेश्वर (मामृजे) उपासक को मानो मांज देता है, विशुद्ध कर देता है। (मीढ्वान्) परमेश्वर वास्तव में सुखवर्षी है। (सप्तिः न) अश्व के सदृश वह उपासक को (वाजयुः) वेग प्राप्त कराता है। (मनीषिभिः) मनों को वश करने वाले, (ऋक्वभिः) ऋचाओं द्वारा स्तुतियां करने वाले (विप्रेभिः) मेधावी उपासकों द्वारा,—(पवमानः) पवित्रकारी परमेश्वर (अनुमाद्यः) निरन्तर प्रसादनीय होता है।

[अण्वानि=अणुरेष धर्मः (कठ० १।१।२१)। वाजयुः=वाज+क्यच्। मेष्यः=मिष (वर्षणे, सेचने]

[घा० १४। उ० १। स्व० ५]

सूक्त १३

३ १ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २

१६९१—वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥

(इह) इस उपासना-यज्ञ में, (वयम्) हमने, (एनम् इत्) इस परमेश्वर के प्रति ही, (ह्यः) पहिले दिनों में (सुतम्) प्रकट हुआ भक्तिरस (अपीपेम) भेंट किया है। (वज्रिणम्) वह परमेश्वर न्याय-वज्रधारी है। (अद्य उ) आज भी हे उपासक! (सवने) इस उपासना-यज्ञ में (सुतम्) निष्पादित भक्तिरस को, (तस्मै) उस परमेश्वर के प्रति, (आ भर) भेंट में ला। हे उपासको! तुम सब (नूनम्) निश्चय से उस परमेश्वर की (भूषत) शोभा को बढ़ाओ, जब कि तुमने वेदों द्वारा उसके गुणों का (श्रुते) श्रवण कर लिया है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

१६९२—वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।

२उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥

॥ १३(खा) ॥

(अस्य) इस परमेश्वर के उपदिष्ट (वयुनेषु) सत्यज्ञानों के प्राप्त हो जाने पर, (वृकः चित्) भेड़िये के से स्वभाव वाला हिंस्र व्यक्ति भी, (उरामथिः) और बहुत दुःखदायी व्यक्ति भी, (वारणः) अपने हिंस्र और दुःखदायी स्वभावों का निवारण कर देता है, (आ भूषति) इस प्रकार अपनी शोभा बढ़ा लेता है। (इन्द्र) हे परमेश्वर! (सः) वह-आप (नः) हमारी (इमम्) इस सम्मिलित (स्तोमम्) स्तुति-तथा-सामगान का (जुजुषाणः) प्रीतिपूर्वक सेवन करते हुए, और हमें (चित्रया) अद्भुत (धिया) बुद्धि प्रदान करते हुए, (प्र) शीघ्र (आ गहि) हमारे हृदयों में प्रकट हूजिये।

[धा० १६। उ० २। स्व० २]

सूक्त १४

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
१६६३—इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः।
१ २ ३ २ ३क२र
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे जगत् के सम्राट् तथा ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित प्रभो! आप के ये दोनों स्वरूप (दिवः रोचना) कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान को प्रकाशित करते हैं, और (वाजेषु) वैदिक-मन्त्रों में (परि) सर्वत्र (भूषथः) विभूषित हो रहे हैं। (वाम्) आप इन दोनों रूपों में, (तद् वीर्यम्) हम उपासकों में प्रसिद्ध आध्यात्मिक वीरता को (प्र चेति) जागरित कर रहे हैं।

[इन्द्राग्नी=प्रभु का न्यायकारी दण्डधर रूप; तथा वेदों द्वारा दिया ज्ञान-प्रकाश,—ये दोनों कर्तव्या-कर्तव्य का बोध कराते हैं। वाजेषु=वाजः "A prayer, or Mantra" (आपटे)।]

१ २ ३ १ २ ३ २र
१६६४—इन्द्राग्नी अपसस्परि ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) बलशक्ति और ज्ञानशक्ति से सम्पन्न हे परमेश्वर! आपकी कृपा से (ऋतस्य) सत्यमय जीवन के (पथ्याः) हितकर मार्गों के (अनु) अनुसार (अपसः) हमारे कर्म (प्र यन्ति) चलते हैं और (धीतयः) हमारी धारणा-ध्यान आदि योग साधनाएँ, (प्र) प्रकर्ष रूप में, और (उप) समीपता से, हमारे कर्मों के (परि) चारों ओर, (यन्ति) परिधि रूप में घेरा डाले हुई हैं।

१ २ ३ १ २
१६६५—इन्द्राग्नी तविषाणि वाम् ॥ ३ ॥ ॥ १४(क) ॥

(इन्द्राग्नी) वलशक्ति और ज्ञानशक्ति से सम्पन्न हे परमेश्वर! (वाम्) आपकी दोनों शक्तियों के (तविषाणि) बल, (च) और (प्रयांसि) प्रयास, (सधस्थानि) साथ-साथ रहते है, अर्थात् एक-दूसरे के सहयोगी हैं। (अप्तूर्यम्) कर्मों का त्वरित फल देना, (युवोः) आपकी इन दोनों शक्तियों के पारस्परिक सहयोग में, (हितम्) निहित है।

[धा० ६। उ० १। स्व० १]

सूक्त १५

१ २ ३ २२ २र
१६९६—क ईं वेद सुते सचा ॥ १ ॥

(सुते) भक्तिरस के उत्पन्न हो जाने पर, हे परमेश्वर ! आप-और-उपासक (सचा) साथ-साथ भक्तिरस-और-आनन्दरस का (पिबन्तम्) पान करते हैं,— (ईम्) ऐसे प्रभु को (कः) कौन (वेद) जान सकता है ? ; उपासक (कत्) कितनी (वयः) आयु (दधे) धारण करता हुआ, अर्थात् कितनी आयु तक, आपको भक्ति-रस की भेंट दे सकता है, और आप उसे उसकी किस आयु तक आनन्दरस पिला सकते हैं,—इसे भी (कः वेद) कौन जान सकता है ? ; हे परमेश्वर ! आप (अयम्) यह हैं (यः) जो कि (मन्दानः) प्रसन्न होकर, (ओजसा) अपने ओज द्वारा, (पुरः) आसुरी भावों के गढ़ों को (वि भिनत्ति) तोड़-फोड़ देते हैं, जैसे कि (शिप्री) तेजस्वी मुखवाला सेनापति, (अन्धसः) अन्न से भरे (पुरः) शत्रुओं के किलों और नगरों को, तोड़-फोड़ देता है ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१६९७—दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ २ ॥

(न) जैसे (मृगः) आदित्य-का-रश्मिसमूह (वारणः) अन्धकार का निवारण करता, और (पुरुत्रा) बहुविध (दाना =दानानि) दान करता है, प्रकाश-ताप-वर्षा आदि का दान करता है, वैसे परमेश्वर कष्ट-क्लेशों का निवारण करता और बहु-विध सांसरिक-और-आध्यात्मिक दान करता है। वह (चरथं दधे) सर्वत्र विचर रहा है। हे परमेश्वर ! (त्वा) आपको अपने कार्यों में (न किः नि यमत्) कोई शक्ति नहीं रोक सकती। (सुते) भक्तिरस के उत्पन्न हो जाने पर (आ गमः) आप आ प्रकट होते हैं। (महान्) आप सर्वतो महान् हैं। (ओजसा) और निज ओज के साथ (चरसि) सर्वत्र विचर रहे हैं।

[मृगः="मृगाणामादित्यरश्मीनां मार्गणकर्मणाम्" (निरु० १३।२।१३)]

२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
१६९८—य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय सँस्कृतः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥
॥ १५(ही) ॥

(यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (उग्रः) न्याय करने में उग्ररूप है, (सन्) ऐसा होता हुआ जो (अनिष्टृतः) किसी भी शक्ति द्वारा टाला नहीं जा सकता, (स्थिरः) जो कूटस्थ है, और फिर भी उपासक द्वारा जो (रणाय) देवासुर संग्राम के लिये (संस्कृतः) सन्नद्ध कर दिया जाता है, वह (मघवा) ऐश्वर्यशाली परमेश्वर, (यदि स्तोतुः) यदि स्तुतिकर्त्ता की (हवम्) पुकार को (शृणवत्) सुन लेता है,

स्वीकार कर लेता है, तो वह (न योषति) उपासक से विमुख नहीं होता, अपितु (आ गमत्) उपासक के हृदय में आ प्रकट होता है।

॥ इति तृतीय खण्डः ॥ ३ ॥ [घा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त १६

१२ ३ १ २ ३२ ३१ २
१६९९—पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
३ १ २र ३ १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

(पवमानाः) पवित्र करने वाले, (शुक्रासः) शक्तिशाली, (इन्दवः) तथा ज्ञानप्रकाश देने वाले (सोमाः) भक्तिरस (असृक्षत) प्रकट हो गए हैं, (अभि) जिनका कि स्पष्ट वर्णन (विश्वानि काव्या) सभी वेदकाव्यों में है।

१२ ३ २उ ३ १ २
१७००—पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥

(पवमानाः) पवित्र करने वाले भक्तिरस, (दिवः परि) मस्तिष्क से, और (अन्तरिक्षात्) हृदयाकाश से, (असृक्षत) प्रकट हो गए हैं, जो मस्तिष्क-और-हृदयाकाश (पृथिव्याः) पार्थिवशरीर के (सानवि अधि) उच्च प्रदेशों में स्थित हैं।

[मस्तिष्क का सम्बन्ध विचारों से है, और हृदय का भावनाओं से। भक्ति द्वारा, विचार-और-भावनाएँ पवित्र हो जाती हैं]

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७०१—पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ ॥ १६ (फ) ॥

(पवमानासः) पवित्र करने वाले, (शुभ्राः) सात्विक, (इन्दवः) आध्यात्मिक-प्रकाश (असृग्रम्) प्रकट हो गए हैं, (आशवः) और मेरे समग्र शरीर में व्याप्त हो गए हैं। इन्होंने (विश्वाः) सब प्रकार की (द्विषः) द्वेषभावनाओं को (अप) दूर कर दिया है, और (घ्नन्तः) विनष्ट कर दिया है।

[आशवः = अशूङ् व्याप्तौ]

[घा० १५ । उ० २ । स्व० १]

सूक्त १७

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१७०२—तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे जगत्-के-सम्राट् तथा ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित प्रभो ! आप के ये दोनों स्वरूप मिल कर, (तोशा) विघ्नविनाशी, (वृत्रहणा) पापनाशक, (सजित्वाना) सदा विजयी, (अपराजिता) पराजित न होने वाले, (वाजसातमा) अतिशय बलदायक हैं। मैं उपासक (हुवे) इन दोनों रूपों में आप का आह्वान करता हूं।

१२ ३ १२
१७०३—प्र वामर्चन्त्युक्थिनः ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) हे जगत्-के-सम्राट् तथा ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित प्रभो! (उक्थिनः) वैदिक-सूक्तों के वेत्ता, तथा (नीथाविदः) आचार नीति के वेत्ता (जरितारः) स्तोता लोग, (वाम्) आप के दोनों स्वरूपों की (प्र अर्चन्ति) प्रकृष्ट-स्तुतियां करते हैं। (इषे) अभीष्ट--कामनाओं की प्राप्ति के लिये (आ वृणे) मैं उपासक आप के उक्त स्वरूपों का पूर्णतया वरण करता हूं।

१२ ३ १ २र
१७०४—इन्द्राग्नी नवतिं पुरो ॥ ३ ॥ ॥ १७(र) ॥

(इन्द्राग्नी) हे जगत्-के-सम्राट् तथा ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित प्रभो ! आपने (दासपत्नीः) उपक्षयकारी काम-क्रोध आदि द्वारा पालित (नवतिं पुरः) नव्वे पुरियों को, (एकेन कर्मणा साकम्) अपने एक ही संकल्परूपी कर्म द्वारा (अधूनुतम्) कम्पा दिया है।

[इन्द्राग्नी=विघ्नों की बाधा, तथा उन्नति के लिये, क्षात्र भावना और वस्तु स्वरूप का यथार्थज्ञान—इन दोनों का मेल होना चाहिये। नवतिं पुरः=देखो मन्त्र १५७६]

[धा० ८। उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १८

१२ ३ १२ ३ १२
१७०५—उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
१ १ ३ १ ३ १२
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥

(सहस्कृत) उपासक के साहस-और-धैर्य से प्रकट होने वाले (अग्ने) प्रकाशस्वरूप हे जगन्नेता ! (प्रयस्वन्तः) प्रयासशील तथा भक्तिरसरूपी-अन्नों की भेंट करने वाले हम उपासक, (रण्वसंदृशम्) रमणीय दर्शन (त्वा) आप के प्रति, (गिरः) स्तुतिवाणियां (उप ससृज्महे) उपस्थित करते हैं।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१७०६—उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
२ ३ १ २
अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता ! (इव) जैसे (घृणेः) सूर्य के तेज से

संतप्त व्यक्ति (छायाम्) छाया का आश्रय लेते हैं, वैसे सांसारिक क्लेशों से सन्तप्त (वयम्) हम उपासक, (हिरण्यसंदृशः) सुवर्णतुल्य तेज वाले (ते) आप के (शर्म) आश्रय को (उप अगन्म) उपासना मार्ग द्वारा प्राप्त हुए हैं।

[हिरण्यसंदृशः=सुवर्ण ज्योतीरूप है, पर गर्म नहीं। परमेश्वर भी ज्योतिः स्वरूप है, परमेश्वरीय ज्योति भी गर्म नहीं होती, सन्तापक नहीं होती, अपितु शान्त और सुखदायी होती है, (शर्म=सुख (निघं० ३।६)। इसलिये परमेश्वर को "हिरण्यसंदृश" कहा है]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३२
१७०७—य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः।
२ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥ ॥ १८(य) ॥

(यः) जो परमेश्वर (शर्यहा) मृत्युदण्ड के योग्य व्यक्तियों का हनन करता है, इस लिये वह (उग्र इव) उग्र व्यक्ति के सदृश प्रतीत होता है, जो परमेश्वर (तिग्मशृङ्गः) तीखी किरणों वाले सूर्य के (न) सदृश कुकर्मियों के ताप-सन्ताप देता है, फिर भी उस की यह (वंसगः) गतिविधि श्रद्धापूर्वक भजने-योग्य है—ऐसे (अग्ने) हे जगन्नेता! आप उपासकों की (पुरः) शरीर-पुरियों को (रुरोजिथ) भंग कर, उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं।

[शर्य=शॄ हिंसायाम्, हिंसनीय। शृङ्ग=शृङ्गाणि ज्वलतो नाम (निघं० १।१७)। वंसगः=वननीय गतिः (सायण); वननीय=वन संभक्तौ, सम्यक् भक्तौ)। उग्र इव=परमेश्वर न्याय करने में उग्र के सदृश प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः वह उग्र नहीं। न्याय भी व्यक्ति के सुधार के लिये है, व्यक्ति के विनाश या बदले की दृष्टि से नहीं]

[धा० ७। उ० नास्ति। स्व० १]

सूक्त १९

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७०८—ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्।
१ २ ३ १ २
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥

(ऋतावानम्) सत्यनिष्ठ, (ऋतस्य ज्योतिषः पतिम्) सत्यज्ञानरूपी ज्योति के स्वामी, (वैश्वानरम्) सब नर-नारियों के हितकारी, (अजस्रम्) अविनश्वर तथा (घर्मम्) देदीप्यमान परमेश्वर को हम उपासक (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क ३२ ३ २
१७०९—य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन्।
३ १ ३२ ३ २
ऋतूनुत्सृजते वशी ॥ २ ॥

(यः) जो परमेश्वर (यज्ञस्य) उपासना-यज्ञ के (स्वः) फलरूप-सुख को

(उत्तिरन्) बढ़ाता, और जो (इदम्) इस संसार में (प्रति पप्रथे) प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है, वह (वशी) सब को वश में रखने वाला, (ऋतून् उत्सृजते) ऋतुओं की श्रेष्ठ रचनाएं करता है।

३ २ ३ २ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१७१०—अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
३ २उ ३ १ २
सम्राडेको विराजति ॥ ३ ॥ ॥१९(का) ॥

(अग्निः) प्रकाशमय जगन्नेता (भूतस्य) भूतकाल के उपासकों की (कामः) कामनाओं का विषय रहा है, और (भव्यस्य) भविष्यत् में भी उपासकों की कामनाओं का विषय रहेगा, वह (एकः) अकेला अद्वितीय (सम्राट्) सम्राट् (प्रियेषु धामसु) प्रिय धामों में अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष, और द्युलोक में, (विराजति) विराजमान है।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० ११ । उ० १ । स्व० २]

॥ इत्यष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८—२ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥



अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

[३]

अथाष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥८-३॥

(१—१८) १ विरूप आङ्गिरसः; २, १८ अवत्सारः काश्यपः; ३ विश्वामित्रो गाथिनः; ४ देवातिथिः काण्वः; ५, ८, ९, १६ गोतमो राहूगणः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ प्रस्कण्वः काण्व; १० वसुश्रुत आत्रेयः; ११ सत्यश्रवा आत्रेयः; १२ अपस्युरात्रेयः; १३ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ; १४ कुत्स आङ्गिरसः; १५ अत्रिर्भौमः, १७ दीर्घतमा औचथ्यः ॥ १, १०, १३ अग्निः; २, १८ पवमानः सोमः; ३—५ इन्द्रः; ६, ८, ११, १४ (१ उत्तरार्धः रात्रिश्च), १६ उषाः; ७, ९, १२, १५, १७ अश्विनौ ॥ १—२, ६—७, १८ गायत्री, ३, १३—१५ त्रिष्टुप्; ४—५ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ८—९ उष्णिक् १०—१२ पङ्क्तिः; १६, १७ जगती ॥

सूक्त १

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१७११—अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्व३ँ स्वाम् ।
३ १ २र
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १ ॥

(प्रत्नेन जन्मना) पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के कारण (अग्निः) अग्नि रूप हुआ उपासक, (स्वां तन्वम्) अपने शरीर को (शुम्भमानः) सद्गुणों द्वारा सुशोभित करता हुआ, (कविः) और परमेश्वर के गुण कीर्तन करता हुआ, (विप्रेण) सर्व-व्यापक-सर्वज्ञ परमेश्वर की कृपा से (वावृधे) खूब बढ़ता है।

[अग्नि में जिस वस्तु को डाला जाय वह वस्तु भी अग्निमय हो जाती है, प्रकाशस्वरूप हो जाती है। इसी प्रकार जिस उपासक ने पूर्वजन्मों में, अपनी आत्मा को, अग्निस्वरूप अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में, आहुतिरूप में, समर्पित कर दिया है, वह भी अग्निमय होकर, अर्थात् प्रकाशमय होकर, नया जन्म धारण करता अर्थात् तेजस्वी शरीर को धारण करता, तथा परमेश्वर के गुणों का कीर्तन करता है। वेद में गौणरूप में भी अग्नि शब्द का प्रयोग मनुष्य के सम्बन्ध में भी हुआ है। यथाः—"अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः" (ऋ० १०।८४।१) विप्रेण=वि+प्रा (पूरणे), अर्थात् सर्वत्र पूर्ण, सर्वव्यापक। तथा विप्र=मेधावी (निघं० ३।१५)। प्रत्नेन जन्मना=पुनर्जन्म में प्रमाण]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७१२—ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम्।
३ २ ३ १ २ ३ २
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ २ ॥

(ऊर्जः) अभ्यास में दृढ़ता और शक्ति को (न पातम्) प्रोत्साहित करने वाले, तथा (पावकशोचिषम्) पवित्रकारी प्रकाश वाले (अग्निम्) मार्गदर्शी परमेश्वर का,—(अस्मिन्) इस (स्वध्वरे) हिंसारहित उत्तम (यज्ञे) उपासना-यज्ञ में, (आहुवे) मैं उपासक आह्वान करता हूं।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१७१३—स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा।
३ १ २र ३ १ २
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ३ ॥ ॥ १(ली) ॥

(मित्रमहः) हे सूर्यसदृश तेजस्विन्! (अग्ने) मार्गदर्शी परमेश्वर! (सः त्वम्) वह-आप, (शुक्रेण शोचिषा) अपने शक्तिशाली तेज समेत, (देवैः) हम उपासकों के दिव्य गुणों से प्रेरित हुए-हुए, (नः) हमारे (बर्हिषि) हृदयासनों पर (आ सत्सि) आ विराजिये।

[मित्रमहः=मित्र (The sun)+महः (Lustre), आपटे]

[वा० ६। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त २

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७१४—उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

(अद्रिवः) हे पापभक्षक परमेश्वर ! (ते) आपके (शुष्मासः) पापशोषी बल, (रक्षः) पाप-राक्षसों को (भिन्दन्तः) छिन्न-भिन्न करते हुए, (उत् अस्थुः) उत्थान किये हुए हैं। हे परमेश्वर ! (याः) जो हमारी (स्पृधः) स्पर्धा आदि दुर्भावनाएं हैं उन्हें (परि नुदस्व) परे धकेल दीजिये।

[अद्रि=अपि वा अत्तेः स्यात् निरु० ४।१।४), देखो मन्त्र १७१६ में "वृत्रखादः"]

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
१७१५—अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते।
२ ३ १ २ ३ २
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

(अया) इस (ओजसा) अपने ओज के द्वारा, हे परमेश्वर ! आप (निजघ्निः) मेरे समग्र पापों का पूर्णतया हनन कर देते हैं, जब कि (रथ संगे) मेरे शरीर-रथ में आपके साथ मेरा संग अर्थात् सत्संग या सम्बन्ध हो जाता है। तदनन्तर (हिते धने) हितकारी मोक्षधन की प्राप्ति के निमित्त मैं (अबिभ्युषा) निडर हृदय से (स्तवै) आपकी स्तुति करता हूं।

१ २ ३ २ ३ २क ३ १ २ ३क २र
१७१६—अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या।
३ १ २र ३ १ २
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

(पवमानस्य) पवित्र करने वाले (अस्य) इस परमेश्वर के (व्रतानि) नियम, (दूढ्या) दुर्बुद्धि मनुष्य द्वारा (न आधृषे) नहीं उल्लंघन किये जा सकते। हे परमेश्वर ! (यः) जो दुर्बुद्धि (त्वा) आपका (पृतन्यति) मुकाबला करता है, उसे आप, (रुज) रुग्ण कर देते और छिन्न-भिन्न कर देते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७१७—तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्।
२ ३ १ २ ३ २
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ ॥ २(पी) ॥

(मदच्युतम्) सांसारिक-मस्तियों से छुड़ा देने वाले, (हरिम्) इन्द्रियों को विषयों से हटा देने वाले, (नदीषु) शारीरिक नस-नाड़ियों में (वाजिनम्) बल प्रदान करने वाले, और (इन्द्राय) जीवात्मा के लिये (मत्सरम्) आनन्द-सरोवर, (इन्दुम्) तथा प्रकाशस्वरूप (तम्) उस परमेश्वर को, उपासक लोग, (हिन्वन्ति) अपनी ओर प्रेरित कर लेते हैं, आमर्जित कर लेते हैं, झुका लेते हैं।

[हरिम् = हृञ् हरणे। नदीषु="नदी" शब्द का प्रयोग शरीरस्थ नस-नाड़ियों के लिये भी होता है। छान्दोग्य उपनिषद (३।१९।२) में लिखा है" या धमन्यः ता नद्यः"। इस वाक्य में धमनियों को नदियां कहा है। हठयोग में "इडा भगवती गंगा, पिंगला यमुना नदी" (३।११०), तथा शिवस्वरोदय में "मध्ये सरस्वतीं विद्यात्" द्वारा शरीरस्थ सुषुम्णा, इडा, पिंगला को नदियां कहा है।

"समुद्रो यस्य नाड्य: पुरुषेऽधि समाहिता:" (अथर्व १०।७।१५ में समुद्र-और-नदियों को हृदय-और-नाडियों से उपमित किया है। नदी तथा नाड़ी शब्द उच्चारण भेद से समानार्थक प्रतीत होते हैं। इन्दुम्=इन्धते र्वास्यात् (निरु० १०।४।४१)। इन्द्राय=इन्द्र (जीवात्मा), अर्थात् इन्द्रियों का अधिष्ठाता]

[धा० २०। उ० १। स्व० ४]

सूक्त ३

२ ३१२ ३१२ ३ २ ३१२
१७१८—आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभि:।
२ ३ २ ३ १ २३२उ ३ २उ ३ १२३ १ २
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥

जैसे कोई सम्राट् (मन्द्रै:) रथ को सुगमता से ले चलने वाले, तथा शोभा के लिये सिरों पर लगे (मयूररोमभि:) मोर-पंखों वाले (हरिभि:) घोड़ों द्वारा, अपने राष्ट्र में आता है, वैसे हे (इन्द्र) परमेश्वर! (मन्द्रै:) आनन्ददायी (हरिभि:) प्रत्याहार आदि साधनों से सम्पन्न उपासकों के हृदय-साम्राज्यों में (आ याहि) आइये। इस आने में (केचित्) कोई भी शक्तियां (त्वा) आपको (मा नियेमु:) नहीं रोक सकती, (पाशिन:) पाशधारी व्याघ (न) जैसे उड़ते हुए पक्षी को नहीं रोक सकते। अपितु (इव) जैसे कोई उद्यमी (धन्व) मरुभूमि को (अति) लांघ कर आ जाता है, वैसे आप (तान् अति) उन सब विघ्नों को लांघ कर, (इत्) अवश्य, (इहि) आ जाइये, प्रकट हो जाइये।

३ १२ ३२ ३२३१ ३२३२
१८१९—वृत्रखादो वलं रुज: पुरां दर्मो अपामज:।
२ ३ १२३१२ ३१ २र ३१ २ ३२
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुज: ॥ २ ॥

(वृत्रखाद:) पाप-वृत्रों को खा जाने वाला, (वलं रुज:) उनके बलों का भंग करने वाला, मुक्तिकाल में (पुराम्) जीवन्मुक्तों की शरीर-पुरियों को (दर्म:) विदीर्ण करने वाला, (अपाम्) शरीर के रस-रक्त आदि जलीयतत्त्वों में (अज:) प्रेरणाएँ देने वाला, (रथस्य) शरीर-रथ का (स्थाता) अधिष्ठाता (इन्द्र:) परमेश्वर, (हर्यो:) कर्मेन्द्रियों-और-ज्ञानेन्द्रियों के (दृढा चित्) सुदृढ़-संस्कारों के गढ़ों को (आरुज:) पूर्णतया तोड़-फोड़ देता है, (अभिस्वरे) जब कि उपासक अभिमुख हो कर परमेश्वर की स्तुतियों का गान करते हैं।

३ १ २३१ २३ १२ ३१२
१७२०—गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव।
१२३१ २र ३१२ ३१३ १२
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥
॥ ३ (छा) ॥

(गम्भीरान् उदधीन्) गम्भीर समुद्रों को (इव) जैसे नदियां परिपुष्ट करती हैं, तथा (सुगोपाः) उत्तम-गोस्वामी (इव) जैसे (गाः) गौओं को परिपुष्ट करते हैं, वैसे ही हे परमेश्वर! आप (ऋतुम्) हमारे सत्संकल्पों, सत्कर्मों और उपासनाओं को (पुष्यसि) परिपुष्ट करते हैं। तथा (यथा) जैसे (धेनवः) दुधार-गौएं (यवसम्) चारे की ओर (प्र) शीघ्रता से (आशत) स्वयमेव प्राप्त होती हैं, (इव) और जैसे (कुल्याः) जलनालियां (ह्रदम्) तालाब की ओर स्वयमेव बह आती हैं, वैसे हे परमेश्वर! हमारे भक्तिरस, स्वभावतः (आशत) आपकी ओर प्रवाहित हो रहे हैं।

[घा० १७। उ० २। स्व० २]

सूक्त ४

१ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र

१७२१—यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१॥

(यथा) जैसे (तृष्यन्) प्यासा (गौरः) मृग (अपाकृतम्) जल वाले (इरिणम्) मरुस्थल की ओर (तूयम्) शीघ्रता से (अव एति) आता है, वैसे हे परमेश्वर! (नः) हम-और-आप में (सचा) परस्पर (आपित्वे) बन्धुत्वभाव (प्रपित्वे) प्राप्त हो जाने पर, आप (तूयम्) शीघ्र (आ गहि) आइये, और (कण्वेषु) प्रगतिशील तथा समाधि में निमीलित नेत्रों वाले उपासक-स्तोताओं में प्रवाहित भक्तिरसों का (सु पिब) उत्तम-पान कीजिये।

[कण्वेषु=कण गतौ; कण निमीलने; कण शब्दे; तथा कण्व मेधावि नाम (निघं० ३।१५)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१७२२—मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः॥ २॥

॥४ (घ)॥

(मघवन्) हे सम्पत्शाली (इन्द्र) परमेश्वर! (इन्दवः) हमारे भक्तिरस (त्वा) आपको (मन्दन्तु) प्रसन्न करें, ताकि आप (सुन्वते) भक्तिरस के निष्पादकों को (राधः देयाय) आराधना-धन प्रदान करें। (अमुष्य) उस उपासक के (सोमम्) भक्तिरस को (आ अपिबः) आपने स्वीकार किया है, जिसका भक्तिरस (चमू) सिर से पैरों तक (सुतम्) प्रवाहित हुआ है। तदनन्तर उपासक में आपने (तत्) प्रसिद्ध (सहः) पापपराभव-बल (दधिषे) धारण कर दिया है।

[घा० २१। उ० ४। स्व० १]

सूक्त ५

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१७२३—त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥ १॥

(अङ्ग) हे मेरे जीवन के अङ्गभूत !, (शविष्ठ) तथा हे महाबलशाली परमेश्वर ! (त्वम्) आप (देवः) प्रकाशमान हैं, और प्रकाश प्रदाता हैं। आप बल और प्रकाश प्रदान करके (मर्त्यम्) उपासक जन को (प्रशंसिषः) प्रशंसा का पात्र बनाइये। (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न कोई भी (मर्डिता) सुख का देने वाला (न अस्ति) नहीं है। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! इसीलिये मैं (ते) आपके प्रति (वचः) ये वचन (ब्रवीमि) कह रहा हूँ।

२ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१७२४—मा ते राधाँसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२॥
॥ ५ (का) ॥

(वसो) हे विश्ववासी ! (मा) न (ते) आपके दिये (राधांसि) धन, और (मा) न (त) आप द्वारा की गई (ऊतयः) हमारी रक्षाएँ (अस्मान्) हमें (कदा चन) कभी भी (आ दभन्) विनाशोन्मुख करती हैं। (मानुष) हे मननशील व्यक्ति का हित करने वाले ! (विश्वा चन) सब (वसूनि) सम्पत्तियां, (चर्षणीभ्यः) मनुष्यों के लिये, (आ) पूर्णतया (उपमिमीहि) माप कर दीजिये।

[परमेश्वर द्वारा दिया गया धन वह धन है जो कि सुपथ द्वारा प्राप्त हुआ है। कुपथ द्वारा कमाया धन चौर-धन है। सुपथ द्वारा कमाया गया धन धनिक को विनाशोन्मुख नहीं करता। इसी प्रकार जिसका रक्षक परमेश्वर है वह भी विनाशोन्मुख नहीं होता। परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि हम मनुष्यों में धन का यथोचित विभाग कीजिये]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [धा० २१। उ० १। स्व० २]

सूक्त ६

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१७२५—प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः।
३ १ २ ३ २
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

(सूनरी) प्रेरणाओं के प्रदान में अग्रणी, (जनी) उपासक को नवजीवन प्रदान करने वाली, (व्युच्छन्ती) अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान-प्रकाश देने वाली, (परि स्वसुः) अविद्याजन्य रागद्वेष आदि का पूर्ण निराकरण करने वाली, (दिवः) मूर्धा या सिर से (दुहिता) प्रकट हुई (स्या) वह आध्यात्मिक-ज्योति (प्रति अदर्शि) दीख पड़ी है।

[सूनरी=सू (प्रेरणा+नृ (नये)। स्वसुः=सु+अस् (प्रक्षेपणे)। दिवः="दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" (अथर्व १०।७।३२) तथा "शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत" (यजु० ३१।१३)। तथा मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्" (योग० ३।३२)]

१ २ ३ १ २ ३ १ १र ३ १ २
१७२६—अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।
१ २ ३ १ २ ३ २
सखा भूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥

(उषाः) वह आध्यात्मिक-उषा अर्थात् मूर्द्ध-ज्योति (अश्व इव चित्रा) पूर्व दिशा में व्याप्त उषा के सदृश विचित्र स्वरूप वाली है, (अरुषी) चमकीली, (गवाम् माता) प्रकाशों की जननी, (ऋतावरी) तथा सत्यमार्ग दर्शाती है। तथा (अश्विनाः) अश्वियों की (सखा) सखी है।

[अश्वा=अशूङ् व्याप्तौ। अश्विनो;=निरुक्त १२।१।१-५) में अश्वियों का काल मध्यरात्री के उपरान्त, रात्री के तमस् में प्रकाश के अनु प्रवेश से लेकर सूर्योदय पर्यन्त कहा है। साथ ही यह भी कहा है कि योगाभ्यास के लिये यह काल अत्यन्त उपयोगी हैं। ऋग्वेद में कहा है कि "पूर्वः पूर्वः यजमानो वनीयान्" (ऋ० ५।७७।२); अर्थात् इस अश्विकाल में जो उपासक जितना पहिले उपासना में रत हो जाता है वह उपासना का फल शीघ्र पाता है। आधिदैविक-उषा का काल सूर्योदय से कुछ पूर्व होता है। सूर्योदय काल से पूर्व प्रकट मूर्द्ध ज्योति को, इस दृष्टि से, उषा से उपमित किया है। इसलिये यह मूर्द्धज्योति अश्वियों की सखी है।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
१७२७—उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
३ १ ३ १ २
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥ ॥६(लि)॥

(उत) तथा (उषः) हे मूर्द्धज्योति! तू (अश्विनोः) अश्वियों की (सखा असि) सखी है, (उत) और (गवाम्) प्रकाशों अर्थात् आध्यात्मिक-प्रकाशों की (माता असि) माता है, (उत) और (वस्वः) आध्यात्मिक-सम्पत्तियों की (ईशिषे) अधीश्वरी है, स्वामिनी है।

[देखो मन्त्र १७२६]

[धा० ९। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ७

३ २ ३ १ २र २क २र ३ २ ३ २
१७२८—एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
३ १ २ ३ १
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

(एषा उ) यह ही (उषाः) आध्यात्मिक-उषा अर्थात् मूर्द्ध-ज्योति (अपूर्व्या) एक अपूर्व-ज्योति है, (प्रिया) यह प्रियरूप वाली है, (दिवः) मूर्द्धा या मस्तिष्क से प्रकट होकर इसने (व्युच्छति) मेरी अज्ञानी-रात्री को हटा दिया है। मैं इस सम्बन्ध में (वाम् अश्विना) तुम दो अश्वियों के गुणों का (बृहत् स्तुषे) महागान करता हूँ, इनके गुणों का प्रभूत कथन करता हूँ।

[मध्य रात्री के उपरान्त, जब रात्री के अन्धकार में आदित्य के प्रकाश का अनुप्रवेश होता है, तो अश्विकाल प्रारम्भ होता है। यह समय शान्त होता है। इस काल में ध्यान करना उत्तम माना गया है। इसलिए यह काल प्रशंसित है]

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
१७२९—या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

(दस्रा) अविद्यादि-क्लेशों का क्षय करने वाले (सिन्धु मातरा) हृदय-सिन्धु का नव-निर्माण करने वाले, (मनोतरा) मन को संकल्प-विकल्पों के नद से तैराने वाले, मन को निरोधावस्था में लाने वाले, (रयीणाम्) आध्यात्मिक-सम्पत्तियां (देवौ) देने वाले, (धिया) सद्बुद्धि और सत्कर्मों के साथ-साथ (वसुविदा) आध्यात्मिक-सम्पत्तियां देने वाले (या) जो दो अश्विनौ हैं,—उनके गुणों का मैं कथन करता हूँ।

[सिन्धु=हृदय (अथर्व० १०।२।११)। हृदय को भक्तिरस से आप्लुत करना,—हृदय का नव-निर्माण है। अश्वि-काल में ध्यानमग्न होने का फल मन्त्र में कहा गया है]

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७३०—वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥ ॥ ७(लि) ॥

(विष्टपि) ताप-रहित रात्री-काल के (जूर्णायाम्) जीर्ण हो जाने पर, (अधि) तदनन्तर जब हे अश्वियो! (वाम्) तुम्हारा (रथः) सूर्य, (विभिः) पक्षियों के साथ, (पतात्) आकाश में उड़ने लगता है, तब अश्वियों के सम्बन्ध में उपासकों के मुखों से (वच्यन्ते) ये वचन निकलते हैं कि (ककुहासः)। "वह उपासना काल का सुख, या ब्रह्मानन्दरस, कहां चला गया?"

[मन्त्र १७२६ के अनुसार अश्वियों का काल सूर्योदय पर्यन्त है। अश्वियों का काल समाप्त हो जाता है सूर्य के उदय होने पर। कल्पना की गई है कि अश्विनौ मानो सूर्यरूपी रथ में सवार होकर प्रस्थान कर गये हैं। प्रस्थान काल की सूचना आकाश में पक्षियों के उड़ने द्वारा भी दी गई है। अश्विनौ के काल में उपासक, ब्रह्म में मग्न हो, सुख का या ब्रह्मानन्द रस का आस्वादन ले रहे थे। अश्विनौ के काल की समाप्ति पर उपासकों की उपासनाओं की भी समाप्ति हो गई। समाप्ति-काल में उपासकों के मुखों से ये वचन सहसा निकल पड़ते हैं कि "वह उपासना सुख या ब्रह्मानन्द रस, अब कहां चला गया, कब अश्विनौ का काल पुनः आयेगा कि हम इस उपासना-सुख या ब्रह्मानन्दरस की अनुभूति फिर करेंगे? ककुहासः=क (सुख, तथा प्रजापति)+कुह (कहां)+अस् (प्रक्षेपे, प्रक्षिप्त हो गया, चला गया]

[धा० १४। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ८

२ ३ १ २ ३ १ २ २र ३ १ २
१७३१—उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥

(वाजिनीवति) शक्तिदायिनी-प्राकृतिक उषा के सदृश शक्तिदायिनी (उषः) हे आध्यात्मिक-उषा ! अर्थात् मूर्द्धज्योति !, तू (तत्) वह प्रसिद्ध (चित्रम्) अद्भुत स्वरूप आध्यात्मिक-धन (अस्यभ्यम्) हम उपासकों को (आ भर) प्रदान कर, (येन) जिस द्वारा कि हम (तोकं च) पुत्रों और (तनयं च) पौत्रों का भी, आध्यात्मिक दृष्टि से, (धामहे) परिपोषण कर सकें ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
१७३२—उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
३ २ ३ १ २
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥

(गोमति) इन्द्रियों को प्रशस्त बनाने वाली !, (अश्वावति) मन को प्रशस्त बनाने वाली !, (विभावरि) विशिष्ट प्रभा वाली !, (सूनृतावति) वाणी को प्रिय-तथा-सत्य बनाने वाली ! (उषः) हे आध्यात्मिक-उषा ! मूर्द्धज्योति या ज्योतिष्मती प्रवृत्ति ! (इह) इन हम उपासकों के जीवनों में, (अद्य) आज से ही, (अस्मे) हमारे लिये, (रेवत्) आध्यात्मिक-धन प्रदान करती हुई तू (व्युच्छ) हमारे अज्ञानान्धकारों को दूर कर ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१७३३—युंक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ ३ ॥ ॥८(हि) ॥

(वाजिनीवति) शक्तिदायिनी-प्राकृतिक उषा के सदृश शक्तिदायिनी (उषः) हे आध्यात्मिक-उषा अर्थात् मूर्द्ध-ज्योति ! तू (अरुणान्) रजोगुणी हमारे (अश्वान्) मनों को (अद्य) आज से (हि) ही (युंक्ष्व) योगयुक्त कर दे, निरोधावस्था से सम्पन्न कर दे । (अथा) और तदनन्तर (विश्वा सौभगानि) सभी आध्यात्मिक सौभाग्य (नः) हमें (आ वह) प्राप्त करा ।

[अरुणान्=अरुण का अर्थ है "लाल" । रजोगुण को उपनिषदों में लोहित अर्थात् लाल कहा है । यथा:—"अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णाम्" (श्वेता० उप० ४।५) । लोहित=रजोगुण; शुक्ल=सत्वगुण; कृष्ण=तमोगुण । अजा=उत्पत्ति-रहित प्रकृति ।

[धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त ९

१ २ ३२३१ ३२ ३ १२
१७३४—अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
३२उ ३ १२ ३ १२
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १ ॥

(दस्रा) अविद्यान्धकार का क्षय करने वाले (अश्विना) हे अश्वियो ! तुम दोनों, (समनसा) मानो एक मन होकर, (अर्वाक्) हमारी ओर आने वाले (रथम्) अपने प्रस्थानोपयोगी सूर्य-रथ को (अस्मत्) हम से (आ नि यच्छतम्) अभी दूर ही नियन्त्रित कर दो, अभी उसे उदित न होने दो । सूर्य-रथ जो कि (वर्त्तिः) सांसारिक वर्तन-वर्ताव तथा व्यवहारों का साधन है, (गोमत्) जो कि रश्मियों से युक्त, तथा (हिरण्यवत्) सुवर्णसदृश चमकीला है ।

[मन्त्र में वर्णन कविताशैली का हे । इसी शैली के अनुसार अश्वियों का सम्बोधन किया गया है । दोनों अश्विनौ सदा साथ रहते हैं, परस्पर घुले-मिले से रहते हैं । मध्यरात्री के बाद का काल जब कि अन्धकार में प्रकाश का अनुप्रवेश होता है, तब यह मिश्रण अर्थात् अन्धकार और प्रकाश का परस्पर घुले-मिले हो कर संमिश्रणरूप होना,—यही अश्विनौ का काल है । इस संमिश्रण के कारण अश्विनौ को "समनसा=समनसौ" कहा है । चूंकि ये कभी एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते । मानो इन दोनों का मन एक ही है ।

उपासक जब यह अनुभव करते हैं कि सूर्योदय हुआ तो अश्विनौ का काल समाप्त हो जायगा, और अश्विनौ सूर्य-रथ पर सवार हो कर प्रस्थान कर जायेंगे, और हमारा ब्रह्मध्यान सम्बन्धी आनन्दरस का आस्वादन समाप्त हो जायगा, तब वे व्याकुल से होकर अश्विनौ के प्रति कहते हैं कि हे "अश्विनौ" अपने सूर्य-रथ को, इसकी अपनी रथ-शाला से, बाहिर न निकालो, अर्थात् सूर्य को अभी कुछ काल तक उदित होने से और रोक दो, ताकि हमें ध्यान का और मौका मिल सके । परमेश्वर को वेदों में कवि कहा है, और वेदों को काव्य कहा है । इसलिये वेदों में स्थान-स्थान पर कविताशैली में वर्णन मिलते हैं । सूर्य का उदित होना सांसारिक धन्धों में प्रवृत्त करने के लिये है, वह ध्यान के लिये उपयोगी नहीं ।]

२उ ३१२३१२ ३१ २२
१७३५—एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
३ १२ ३१२
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ २ ॥

(उषर्बुधः) प्राकृतिक-उषा काल में समाधिनिद्रा से जागने वाले उपासक, (इह) इन अपने उपासना-यज्ञों में, (सोमपीतये) अपने भक्तिरसों की वृद्धि के लिये, (मयोभुवा) उपासना-मार्ग में प्रगतिदायक, (दस्रा) अविद्यान्धकार विनाशक, (हिरण्यवर्तनी) सुवर्ण सदृश सूर्य=रथ वाले, (देवा) अश्वि-देवों का, (आ वहन्तु) पुनः-पुनः आवाहन किया करें, उनके पुनरागमन की आकांक्षा किया करें ।

[पीति=प्यायी वृद्धौ। लिट् और यङ् में "प्याय" को "पी" आदेश व्याकरण-सम्मत है, तो भी वेदों में बहुल करके "पीति" में भी "पी" आदेश समझना चाहिये। अथवा "सोमपीतये" का अभिप्राय है "भक्तिरस की रक्षा के लिये" पा (रक्षणे)। मयः=मय् गतौ। हिरण्यवर्त्तनी=वर्ततेऽनेनेति व्युत्पत्त्या वर्तनिशब्देन रथ उच्यते। सुवर्णमयो वर्तनिः ययोः तौ (सायण)]

२ ३ २उ ३ २ ३ १उ ३ १ २ ३ १ २

१७३६—यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।

२ ३ १ २ ३ २

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥ ॥६(भा)॥

(यौ) जिन दो "अश्विनौ" ने (दिवः) मूर्द्धा से या मस्तिष्क से, (इत्था) वास्तव में या इस प्रकार, (श्लोकम्) प्रशंसनीय (ज्योतिः) ज्योति (आ चक्रथुः) प्रकट की है, (अश्विना) हे अश्विनौ! (युवम्) वे तुम दोनों (नः) हमें (ऊर्जम्) बलदायक और प्राणशक्ति प्रदायक ब्रह्मानन्द रस (आ वहतम्) प्राप्त कराओ।

[इत्था=सत्यनाम (निघं० ३।१०)]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [घा० २० । उ० ४ । स्व० २]

सूक्त १०

३ १ २र ३ १उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

१७३७—अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषँ स्तोतृभ्य

१ २

आ भर ॥ १ ॥

(यः) जो परमेश्वर (वसुः) सर्वत्र बसा हुआ है (तम्) उसे, मैं उपासक, (अग्निं मन्ये) अग्नि मानता हूँ। (यम्) जिस परमेश्वर में (धेनवः) दुधार-गौएँ तथा वेदवाणियां, अपने-अपने काल में (अस्तं यन्ति) लीन हो जाती हैं, तथा जिसमें (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) अश्व तथा चंचल मन (अस्तं यन्ति) अपने-अपने काल में लीन हो जाते हैं, तथा जिसमें (नित्यासः) नित्य समझे जाने वाले (वाजिनः) शक्तिशाली पदार्थ अर्थात् सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, तारागण, वायु, आकाश आदि भी अपने-अपने काल में (अस्तं यन्ति) लीन हो जाते हैं,—हे परमेश्वर! वे आप, (स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओं के प्रति, (इषम्) उनके अभीष्ट मोक्ष (आ भर) प्रदान कीजिये।

[धेनवः=धेनुः वाक्नाम (निघं० १।११)]

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

१७३८—अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।

३ १र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

अग्नी राये स्वाभुवँ स प्रीतो याति वार्यमिषँ स्तोतृभ्य

१ २

आ भर ॥ २ ॥

(विश्वचर्षणिः) विश्वद्रष्टा (अग्निः) जगन्नायक (हि) निश्चय से, (विशे) अभ्यासमार्ग में प्रविष्ट उपासक के लिये। (वाजिनम्) ब्रह्मवेत्ता गुरु को (ददाति) उपस्थित कर देता है। (अग्निः) जगन्नेता ही (राये) उपासक को आध्यात्मिक धन की प्राप्ति के लिये, (स्वाभुवम्) योग में स्वयंसिद्ध गुरु को उपस्थित कर देता है। (सः) वह जगन्नायक (प्रीतः) प्रसन्न हो कर (वार्यम्) वरण करने योग्य उपासक को (याति) समय पर प्राप्त हो जाता है। हे जगन्नायक ! आप (स्तोतृभ्यः) सभी स्तोताओं के प्रति, (इषम्) उनके अभीष्ट मोक्ष को (आ भर) प्राप्त कराइये।

[वार्यम्="यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" (कठ० १।२।२२; तथा मुण्डक ३।२)]

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
१७३९—सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
समर्वन्तो रघुद्रुवः सँ सुजातासः सूरय इषँ स्तोतृभ्य आ
२
भर ॥ ३ ॥ ॥ १० (घु) ॥

(सः) वह (अग्निः) अग्नि है (यः) जो (वसुः) सर्वत्र बसा हुआ है। (यम्) जिसमें (धेनवः) दुधार गौएँ तथा वेदवाणियां (समायन्ति) अपने-अपने काल में समा जाती हैं जिसमें (रघुद्रुवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) अश्व तथा चंचल मन (सम्) अपने-अपने काल में समा जाते हैं, (सुजातासः) और जिन्होंने अपने जन्म सफल कर लिये हैं ऐसे (सूरयः) स्तोता लोग (सम्) जिसमें अपने-अपने काल में समा जाते हैं,—(गृणे) ऐसे जगन्नायक की मैं उपासक स्तुति करता हूं। हे जगन्नायक ! (स्तोतृभ्यः) सभी स्तोताओं के प्रति, (इषम्) उनके अभीष्ट मोक्ष को (आ भर) प्राप्त कराइये।

[धा० १६। उ० ४। स्व० ५]

सूक्त ११

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१७४०—महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥

(उषः) हे आध्यात्मिक-उषा अर्थात् ज्योतिष्मती प्रज्ञा ! या मूर्द्ध ज्योति ! तू (दिवित्मती) दिव्य प्रकाश वाली है, (महे राये) महा-आत्मिक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये, (नः) हमें (अद्य) आज (बोधय) प्रबोधयुक्त कर, (यथाचित्) जैसे कि तू (नः) हम उपासकों को अनादि काल से (अबोधयः) प्रबोधयुक्त करती रही है। (अश्व सूनृते) हे व्यापक-सत्य और व्यापक-प्रेम का मार्ग दिखाने वाली, तथा (सुजाते) हे सौभाग्य से उत्पन्न हुई आध्यात्मिक-उषा !; (सत्यश्रवसि) सत्यव्यव-

हारों के सम्बन्ध में कीर्त्तिसम्पन्न, तथा (वाय्ये) आध्यात्मिक-कर्म पट के बुनने वाले मुझ उपासक में भी तू प्रबोध प्रकट कर।

[दिवित्मती=दिव् (प्रकाश)+इत्+मती ?]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
१७४१—या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥

(दिवः) मस्तिष्क या मूर्धा की (दुहितः) हे पुत्री ! अर्थात् ज्योतिष्मती-प्रज्ञा या मूर्द्ध ज्योति ! (या) जो तूने (शौचद्रथे) पवित्र-शरीर-रथ वाले उपासक में (व्यौच्छः) चमक कर, उसके अज्ञानान्धकार को दूर किया है (सा) वह तू (अश्व सूनृते) हे व्यापक-सत्य और व्यापक-प्रेम का मार्ग दिखाने वाली ! तथा (सुजाते) हे सौभाग्य से उत्पन्न हुई। आध्यात्मिक-उषा! ,—(सहीयसि) साहस-सम्पन्न, (सत्यश्रवसि) सत्य व्यवहारों में कीर्ति सम्पन्न, (वाय्ये) तथा आध्यात्मिक कर्मपट के बुनने वाले मुझ उपासक में भी,(व्युच्छ) चमक, और मेरे अज्ञानान्धकार को दूर कर।

[वाय्ये=वाय्य (बुनने वाला); यथाः—तन्तुवाय (जुलाहा) तन्तुओं से बुनने वाला]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
१७४२—सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः।
२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥ ॥ ११ (तु) ॥

(दिवः) मस्तिष्क या मूर्धा की (दुहितः) हे पुत्री ! अर्थात् ज्योतिष्मती-प्रज्ञा या मूर्द्ध-ज्योति ! (या उ) जो तूने (सहीयसि) साहससम्पन्न, (सत्यश्रवसि) सत्यव्यवहारों में कीर्तिसम्पन्न, (वाय्ये) तथा आध्यात्मिक-कर्मपट के बुनने वाले मुझ उपासक में (व्यौच्छः) चमक कर, मेरे अज्ञान्धकार को दूर किया है, (सा) वह तू (अश्व सूनृते) हे व्यापक-सत्य और व्यापक-प्रेम का मार्ग दिखाने वाली !, तथा (सुजाते) हे सौभाग्य से उत्पन्न हुई आध्यात्मिक-उषा ! (नः) हम सब उपासकों को (अद्य) इस शुभ दिन में, (आभरद्वसुः) आध्यात्मिक-धन प्राप्त करा।

[ज्योतिष्मती प्रज्ञा (योग १।३६); मूर्द्ध ज्योति (योग ३।३२)]

[धा० १९। उ० १। स्व० ५]

सूक्त १२

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७४३—प्रति प्रियतमँ रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम
३ १ २
श्रुतँ हवम् ॥ १ ॥

(अश्विनौ) हे पति-पत्नी रूप सद्गृहस्थियो !, (प्रियतमम्) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय, (वृषणम्) सुख-वर्षी, (वसुवाहनम्) अभ्युदय-और-निःश्रेयस रूपी सम्पत्तियां प्राप्त कराने वाले (प्रति रथम्) तुम्हारे प्रत्येक के शरीर-रथ को (ऋषिः) एकर्षि परमेश्वर (भूषति) सुन्दर रूपों तथा सुन्दर आकृतियों द्वारा विभूषित करता है, तथा वही एकर्षि परमेश्वर (स्तोता) जीवन सम्बन्धी आदर्शों का भी कथन करता, और (स्तोमेभिः) वैदिक मन्त्रों द्वारा (वाम्) तुम्हारे मनों-और-आत्माओं को, यथार्थज्ञान और ब्रह्मज्ञान के प्रदान द्वारा (भूषति) विभूषित करता है। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विभूतियों को प्राप्त कर तुम दोनों (माध्वी) मधुरूप बन जाओ, सबके प्रिय बन जाओ,—हे सदगृह-स्थियो ! तुम दोनों (माध्वी) मधुरूप बन जाओ, सबके प्रिय बन जाओ,—हे सद्गृहस्थियो ! तुम दोनों (मम) मेरे (हवम्) इस कथन को (श्रुतम्) ध्यान से सुनो।

[देखो मन्त्र ४१८]

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
१७४४—अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहँ सना ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतँ
१ २
हवम् ॥ २ ॥

(अश्विना) हे सदगृहस्थी स्त्री-पुरुषो ! (अति) विघ्न-बाधाओं को लांघ कर (आयातम्) उपासना-सत्संग में आया करो। (अहम्) मैं तुम्हारा मार्गदर्शी आध्यात्मिक-गुरु, (सना) सदा, तुम्हारी (विश्वा) सब कठिनाइयों को (तिरः) तिरस्कृत करता रहता हूँ। हे सद्गृहस्थियो ! तुम (दस्रा) अपने पापों का क्षय करते रहो, (हिरण्यवर्तनी) सदा हितकर-और-रमणीय धर्म मार्ग में चलते रहो, (सुषुम्णा) सदा प्रसन्नचित्त रहा करो, (सिन्धु वाहसा) अपने-हृदय-सिन्धुओं में सदा भक्ति-और-प्रेम का रस बहाया करो, (माध्वी) मधुरूप होकर सबके प्रिय बनो,—(मम) मुझ आध्यात्मिक गुरु के (हवम्) इस कथन को (श्रुतम्) ध्यान से सुनो।

[सुषुम्ना=सु+सुम्न (सुख), निघं० ३।६]

६ ३ १२ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ २
१७४५—आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतँ
१ २
हवम् ॥ ३ ॥ ॥ १२ (वा) ॥

(अश्विना) हे सद्गृहस्थी स्त्री-पुरुषो ! (रत्नानि) सांसारिक-सम्पत्तियों और आध्यात्मिक-विभूतियों को (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (युवम्) तुम दोनों, (नः) हमारे सत्संगों में (आ गच्छतम्) आया करो। (रुद्रा) तुम दोनों पापों के प्रति रुद्ररूप बनो, (हिरण्यवर्तनी) हितकर-और-रमणीय धर्म-मार्ग में चलते रहो, (जुषाणा) परस्पर की सेवा प्रीतिपूर्वक किया करो, (वाजिनी वसू) शक्तिशालिनी उषा और सूर्य के समान एक दूसरे का अनुगमन किया करो,—(मम) मुझ आध्यात्मिक गुरु के (हवम्) इस कथन को (श्रुतम्) ध्यान से सुनो।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० २]

सूक्त १३

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१७४६—अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ
॥ १ ॥

(आयतीम्) घर आती हुई (धेनुं प्रति) दूध देने वाली गौ को लक्ष्य करके (इव) जैसे उसके लिये चारा भेंट किया जाता है, वैसे (उषासं प्रति) आती हुई उषा को लक्ष्य करके परमेश्वर के प्रति आत्मसमर्पण की भेंटें की जाती हैं, और (जनानाम्) उपासक जनों की (समिधा) इन भेंटों द्वारा (अग्निः) परमेश्वरीय-प्रकाश (अबोधि) प्रकट हो जाता है। (इव) जैसे (यह्वाः) महावृक्ष (वयाम्) अपनी-अपनी शाखाओं को (प्र उत् जिहानाः) ऊपर आकाश में दूर तक फेंकते हैं, वैसे ही (भानवः) प्रकाश (नाकम् अच्छ) द्युलोक से भी ऊपर तक (प्र सस्रते) फैले हुए हैं।

[वयाः=शाखा (निरु० १।२।४)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
१७४७—अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्
१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २ ३ १ २
समिद्धस्य रुशदर्दशि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ।२।

(होता) सबके दाता (अग्निः) जगन्नायक ने, (यजथाय) उपासना-यज्ञ प्रारम्भ करने के लिये, (देवान्) हम में श्रद्धा आदि दिव्यगुणों को (अबोधि) जागरित कर दिया है। (ऊर्ध्वः) त्रिपाद् रूप में जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय से

उठा हुआ (अग्निः) जगन्नायक (सुमनाः) प्रसन्न होकर, (प्रातः) प्रातःकाल की उपासना में (अस्थात्) हृदयों में आ उपस्थित हुआ है। (समिद्धस्य) सम्यक् रूप से प्रदीप्त हुए जगन्नायक की (रुशत् पाजः) चमकती हुई अर्थात् प्रकट हुई रक्षाशक्ति-तथा-पापों को दूर कर देने की शक्ति का (अदर्शि) प्रत्यक्ष-दर्शन हुआ है। (महान् देवः) इस महादेव ने (तमसः) अविद्या के अन्धकार से (निरमोचि) हमें मुक्त कर दिया है।

[होता=हु (दाने)। ऊर्ध्वः="त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः" "त्रिपादस्यामृतं दिवि" (यजु० ३१।३,४) पाजः=पा (रक्षणे)+अज (क्षेपणे)]

१ २ ३ १ २ ३१ २र३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१७४८—यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयत्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः। ३।
॥ १३(लि) ॥

(यद्) जब (ईम्) यह (अग्निः) जगन्नायक, (गणस्य) उपासक वर्ग की (रशनाम्) जिह्वाओं को (अजीगः) मुखरित करता है, तब (शुचिः) पवित्र जगन्नायक (शुचिभिः गोभिः) पवित्र वेदवाणियों द्वारा (अङ्क्ते) उपासक को कान्ति सम्पन्न कर देता है। (आत्)तदनन्तर (वाजयन्ती) बलप्रदान करती हुई (दक्षिणा) और बढ़ी हुई भक्तिरस धारा (युज्यते) जगन्नेता के साथ सम्बद्ध हो जाती है। (ऊर्ध्वः) त्रिपाद् रूप में जगत् से उठा हुआ जगन्नायक (उत्तानाम्) तरंगों में उछलती हुई भक्तिरस धारा का (अधयत्) पान करता है, आस्वादन लेता है, (जुहूभिः) जो भक्तिरस धारा कि भक्तिरस की आहुतियां देने वाले उपासकों द्वारा समर्पित की जा रही होती हैं।

[रशना=Tongue (आपटे)=रसना। अजीगः=गृ (शब्दे)। दक्षिणा=दक्ष (वृद्धौ)]

[धा० १६। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त १४

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
१७४९—इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट
२
विभ्वा।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३र२उ ३ २ ३ १ २
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक्॥ १॥

(इदं ज्योतिः) यह विवेकज ज्ञान-रूपी ज्योति (ज्योतिषाम्) अन्य ज्योतियों से अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों, मन आदि की ज्योतियों से (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ है। (आ गात्) यह ज्योति मुझे प्राप्त हुई है। (चित्रः)यह दभुअत ज्योति (प्रकेतः) जो कि प्रज्ञान रूप है, (विभु) और सर्वविषयों का ज्ञान कराती है,—(आ अजनिष्ट) मुझ में आ

प्रकट हुई है। (यथा) जैसे यह ज्योति (प्रसूता) प्रकट हुई है (सवितुः) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर के (सवाय) स्वरूपज्ञान के लिये, और स्वरूपज्ञान दे कर (आरैक्) यह अपना स्थान रिक्त कर देती है, अर्थात् समाप्त हो जाती है, (एवा) ऐसे ही (रात्री) अविद्या-की-रात्री ने (उषसे) विवेकज ज्ञान-रूपी उषा को प्रकट कर, (योनिम्) अपने स्थान को (आरैक्) रिक्त कर दिया है, अर्थात् समाप्त हो गई है।

[विवेकज-ज्ञान से सर्वभावाधिष्ठातृत्व तथा सर्वज्ञत्व की शक्तियां प्रकट हो जाती हैं। (योग ३।४९), तथा यह ज्ञान सर्वविषयक, सर्वथा विषयक, तथा युगपत् होता है (योग ३।५४)। विवेकज-ज्ञान, परमेश्वर का स्वरूप दर्शा कर, और असम्प्रज्ञात समाधि प्रकट कर मोक्ष हो जाने पर विनष्ट हो जाता है।

१२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

१७५०—रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।

३ १२ ३१२ ३२उ ३ १२ ३२

समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने॥ २॥

विवेकज ज्ञानरूपी ज्योतिर्मयी चित्तवृत्ति ने (रुशद्वत्सा) जीवात्म-रूपी पुत्र को चमका दिया है, उसे उसके आत्मस्वरूप का प्रदर्शन करा दिया है। (रुशती) यह चित्तवृत्ति प्रकाशमयी है, (श्वेत्या) श्वेतवर्ण वाले सत्त्वगुण का परिणामरूप है, (आ गात्) मुझ में प्रकट हुई हैं। (कृष्णा) काली तमोमयी चित्तवृत्ति ने (अस्याः) इस सत्त्वमयी चित्तवृत्ति के (सदनानि) स्थानों को (आरैक् उ) रिक्त कर दिया हैं, खाली कर दिया है। (समानबन्धू) कृष्णचित्तवृत्ति और श्वेतचित्तवृत्ति एक ही चित्त के बन्धन में बन्धी हुई हैं। (अमृते) ये दोनों प्रकार की चित्तवृत्तियां अनादि काल से चली आ रही हैं। (अनूची) ये एक-दूसरे के साथ लगी हुई हैं। (द्यावा) दोनों ही अपने-अपने रूपों में चमकती हुई (चरतः) विचार रही हैं, और (वर्णम्) एक दूसरे के स्वरूप को (आ मिनाने) विनष्ट करती हैं।

१ २उ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३१२

१७५१—समानो अध्वा स्वस्रोरनंतस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।

१२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे॥३॥

॥ १४(म) ॥

(स्वस्रोः) इन दोनों बहिनों अर्थात् कृष्णचित्तवृत्ति और शुक्लचित्तवृत्ति का (अध्वा) विचरने का मार्ग (समानः) एक ही है, अर्थात् चित्त ही है, (अनन्तः) और अन्त से रहित है, अर्थात् जन्म-जन्मान्तरों के अनादि प्रवाह चक्र से चलता आया है। (देवशिष्टे) परमेश्वर-देव के अनुशासन में बन्धी हुई ये दोनों प्रकार की चित्तवृत्तियां (अन्या अन्या) अपने-अपने भिन्न-भिन्न मार्ग में (चरतः) विचरती हैं। (सुमेके) इन दोनों ने एक-दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण किया हुआ है। (न मेथेते) ये परस्पर एक-दूसरे को मिलती नहीं, (न तस्थतुः) न कभी एक स्थान में इकट्ठी होती हैं। (नक्तोषासा) इन में से कृष्णचित्तवृत्ति रात्री के समान काली है, तामसिक है; और शुक्ल चित्तवृत्ति उषा के समान चमकीली है, सात्विक है।

[सुमेके=सु+मेङ् प्रणिदाने, प्रत्यर्पणे। मेथेते=मिथृ, मेथ्=To meet one auother (आपटे); जैसे मिथुन=जोड़ा।

[प्रा० ३० । उ० ५ । स्व० १]

सूक्त १५

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
१७५२—आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाञ्चा नूनँ रथ्येह यातं पीपिवाँसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

(अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नायक, (उषसाम्) अविद्यारात्रियों को समाप्त करने वाली विवेकजज्ञानरूपी-उषाओं के (अनीकम्) स्वरूपों को, (आ भाति) पूर्णतया प्रकट कर देता है। उषाओं के प्रकट हो जाने पर (विप्राणां देवयाः वाचः) परमेश्वर-देव को चाहने वाली, उपासक-मेधावियों की स्तुति-वाणियां, (उद् अस्थुः) उच्च स्वर में उठती हैं, उच्चारित होती हैं। (रथ्या) सूर्य-रथ पर सवार हो जाने वाले (अश्विना) हे अश्वियो! (नूनम्) निश्चय से अर्थात् अवश्य, तुम दोनों (अर्वाञ्चा) हमारी ओर (इह) इस उपासना-यज्ञ में (आ यातम्) फिर आना, (पीपिवांसम्) बढ़ते हुए अर्थात् चढ़ते हुए (घर्मम् अच्छ) अगले दिन फिर आना।

[देवयाः=देव+क्यच् (इच्छा), अथवा देव+या (प्रापणे), देव तक पहुँचने वाली वाणियां। पीपिवांसम्=प्यायी वृद्धौ। घर्मम्=दिन (आपटे)]

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
१७५३—न सँस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्ति दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २ ॥

(अश्विना) हे अश्वियो! तुम मेरे (संस्कृतम्) सम्यक्-विधि से उपार्जित विवेकज-ज्ञान को (प्र मिमीतः न) विनष्ट नहीं होने देते। (गमिष्ठा) सूर्य के चढ़ने पर चले जाने वाले अश्वियो! (उप स्तुता) जब मैं उपासना-विधि से भक्तिपूर्वक स्तुतियां करूँ, तब (इह) मेरे इस उपासना-यज्ञ में (नूनम्) अवश्य (अन्ति) मेरे समीप आना, अर्थात् (दिवाभिपित्वे) अगले दिन के प्राप्त होने पर, (अवसा) मेरी रक्षा की दृष्टि से, (आ गमिष्ठा) तुमने आना, (प्रत्यवर्तिम्) प्रत्यावर्तन करना, लौट कर फिर आना,। और (दाशुषे) जिसने परमेश्वर-देव के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है उसे (शम् भविष्ठा) शान्ति प्रदान करना।

[अश्विनो का काल, मध्यरात्री के पश्चात् रात्री के तमस् में, सूर्य की अलक्षित रश्मियों के प्रवेश से लेकर, सूर्योदय पर्यन्त माना गया है (निरुक्त)। सूर्योदय होने पर अश्विकाल समाप्त हो जाता है, तब मानो अश्विनो सूर्य-रथ पर सवार हो कर चले जाते हैं। अश्विनो का काल प्रशान्त होता है, अतः योगाभ्यास के

लिये अत्युपयोगी है। यह प्राकृतिक-काल, आध्यात्मिक-काल का भी सूचक है। आध्यात्मिक अश्विनौ-काल वह काल है जब अविद्यारात्री के गहरे अन्धकार में ज्ञान-ज्योति का प्राथमिक-मिश्रण होकर, इस अविद्यान्धकार में ज्ञान-ज्योति अधिकाधिक बढ़ती जाती है, और अभ्यास करते-करते विवेकज-ज्ञान की उषा अपने स्वच्छ और भव्य प्रकाश में चमकने लगती है। यह परिस्थिति मोक्ष की अन्तिम सीढ़ी है। उपासक में अश्विनौ-काल के प्रत्यागमन की उग्र-अभिलाषा है। उपासक नहीं चाहता कि विवेकज-ज्ञान से पूर्व उसका शरीरपात हो। इसलिये जब तक उपासक में विवेकज-ज्ञान की उषा चमक नहीं उठती, तब तक अश्विनौ-काल के प्रत्यागमन की अभिलाषा, उपासक करता रहता है। मुमुक्षु के लिये, इस अभिलाषा का अन्तिम समय तक जारी रहना, स्वाभाविक है।

[प्रत्यवर्तिम्=प्रत्यावर्तिम् लक्ष्यीकृत्य। अवर्त्तिः=अनावर्तनम्, तत्प्रतिकूलम्=आवर्तनम्]

३ १ २   ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१७५४—उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य।

२ ३   २ ३ १ २ ३   १ २ ३   १ २र ३ २ ३ १   २र

दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान

॥ ३ ॥ ॥ १५(लो) ॥

(उत) तथा (अश्विना) हे अश्विनौ! (आ यातम्) तुम आओ (संगवे) जब कि मध्य रात्री के उपरान्त अन्धकार में सूर्य रश्मियों का प्रथम संगम हो, (प्रातः) तथा प्रातःकाल, (अह्नः मध्यन्दिने) मध्याह्न में, (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय होने पर, (दिवा) दिन भर, (नक्तम्) रात्री म, (न इदानीम्) केवल इसी समय अर्थात् मध्यरात्री के पश्चात् ही नहीं,—अपितु प्रतिदिन सब कालों में तुम आया करो, (शन्तमेन) अत्यधिक शान्तिदायक (अवसा) ब्रह्मानन्दरसरूपी-अन्न के साथ आया करो, ताकि (पीतिः) हमारा ब्रह्मानन्दरस का पान (ततान) सदा जारी रहो।

[मुमुक्षु चाहता है कि योगसाधना का आश्वि-काल उसके लिये सदा बना रहे, सदा, अर्थात् प्रतिदिन, हर, समय, उसकी योगसाधना प्रस्तुत रहे, ताकि वह ब्रह्मानन्दरस का पान विना विच्छेद कर सके। प्राकृतिक—अश्विकाल का प्रतिरूप आध्यात्मिक-अश्विकाल है, उसे वह योगी सदा बनाए रखना चाहता है। आध्यात्मिक-अश्विकाल की व्याख्या मन्त्र १७५३ में की गई है।

"छन्द" की दृष्टि से मन्त्र में "अह्नः मध्यन्दिने" का पाठ "उदिता सूर्यस्य" से पूर्व हुआ है। अभिप्राय-दृष्टि से यह पाठ "उदिता सूर्यस्य" के पश्चात् समझना चाहिये। [अवसा=अवस्=अन्न (निघं. २।७)। प्रातः=प्रकृष्टमतति गच्छतीति प्रातः=प्रभातकालः (उणाः कोष ५।५९), अजमेर]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९]

सूक्त १६

१२ ३ २ ३१२ ३१२ ३२३ १३१२ ३१२
१७५५—एता उ त्या उषसः केतमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
३ १ २र ३२३ १३ १ २र
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति
३ १ २
मातरः ॥ १ ॥

(एताः) इन (त्याः) प्रसिद्ध (उषसः) विवेकज-ज्ञानमयी उषाओं ने, (उ) निश्चय से, (केतम्) मुझ में ऋतम्भरा-प्रज्ञा (अक्रत) प्रकट कर दी है। मेरे (रजसः) रज प्रधान राजसिक जीवन के (पूर्वे अर्धे) पूर्वार्ध में ही इन विवेकज-ज्ञान रूपी उषाओं ने (भानुम्) सूर्यों-के-सूर्य को (अञ्जते) अभिव्यक्त कर दिया है। (इव) जैसे (धृष्णवः) वीर-योद्धा (आयुधानि) युद्ध के साधन अस्त्र-शस्त्रों को (निष्कृण्वानाः) निर्मल करते हैं, वैसे (अरुषीः गावः) विवेकज-ज्ञान के चमकीले प्रकाश,—(मातरः) जो कि माता के सदृश योगी का नवनिर्माण करते हैं,—(प्रति यन्ति) मुझे निर्मल करते हुए मेरे प्रति प्रकट हुए हैं।

केतुः=प्रज्ञा (निघं० ३।९)। पूर्वे अर्धे=५० वर्षों की आयु में ही।

१२ ३२३२३१२ ३२३ १२३१२
१७५६—उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
१२ ३१२ ३१२ १२३१२ ३१ २र
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः
॥ २ ॥

(अरुणाः) लाल अर्थात् राजसिक (भानवः) प्रकाश (उदपप्तन्) उड़ गए हैं, (वृथा) वे वृथा हो गए हैं। (स्वायुजः) स्वभावतः योग सम्पादक (अरुषीः) चमकीले (गाः) सात्विक प्रकाश (अयुक्षत) मेरे साथ योगविधि से संयुक्त हो गए हैं। (उषासः) विवेकज ज्ञानमयी-उषाओं ने (वयुनानि) मुझ में सत्यज्ञान (अक्रन्) प्रकट कर दिये हैं। (अरुषीः) इन चमकीले विवेकज ज्ञानरूपी प्रकाशों ने, (पूर्वथा) पहिले से ही (रुशन्तम्) चमकते हुए (भानुम्) आदित्यवर्णी परमेश्वर का, (अशिश्रयुः) अब आश्रय पा लिया है।

[अरुणाः=लाल=रक्त; रजोगुण। यथा "अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णाम्" (श्वेता० उप०)। इसमें रजोगुण को लोहित पद द्वारा सूचित किया है]

१२ ३ १ २३२३२ ३ १ २ ३२३१२३१२३१२
१७५७—अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः
२३१२ ३१२३१२३ २उ ३१२ ३२
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥
॥ १६(कि) ॥

(अपसः न) कर्मयोगियों के सदृश (नारीः), नारियां, (विष्टिभिः) यौगिक-कर्मों अर्थात् क्रियाओं द्वारा, (अर्चन्ति) परमेश्वर की अर्चना करती हैं, (परावतः आ) दूर-दूर के प्रदेशों से भी आ कर (समानेन योजनेन) समान योगविधि द्वारा अर्चना करती हैं। ये (विश्वा इत् अह) सभी ही नारियां, (सुकृते) सुकर्मी (सुदानवे) योगसाधना की उत्तम शिक्षा देने वाले, (सुन्वते) भक्तिरस से सम्पन्न (यजमानाय) तथा स्वयं उपासनायज्ञ में रत सद्गुरु के प्रति, (इषम्) अभीष्ट अन्नादि सामग्री (वहन्तीः) पहुँचाती रहती हैं।

[विष्टी=कर्मनाम (निघं० २।१)। इषम्=अन्ननाम (निघं० २।७)]

[धा० २६। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १७

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ऽ२ ३ २ ३क २र ३ १ २

१७५८—अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ

आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता

१ १ २

जगत्पृथक् ॥ १ ॥

(ज्मः) मेरे पार्थिव-शरीर से उत्पन्न (अग्निः) अग्नि (अबोधि) जागी है, उद्बुद्ध हुई है; (सूर्यः) तथा सूर्य (उदेति) उदित हुआ है; (चन्द्रा) आल्हादकारिणी (मही उषाः) महती उषा ने, (अर्चिषा) दीप्ति द्वारा, (वि आवः) मेरे अज्ञान का पर्दा हटा दिया है। अब (अश्विना) अश्वि-काल ने (यातवे) जाने के लिये (रथम्) सूर्य-रथ को (आ युक्षाताम्) जोत लिया है। (सविता) सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर-देव ने, मेरे लिये, (पृथक् जगत्) बाह्य-जगत् से पृथक् एक नई आध्यात्मिक-सृष्टि (प्रासावीत्) रच दी है।

[अभ्यास मार्ग में अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि का आध्यात्मिक-प्रत्यक्ष होता है। इन वस्तुओं का प्रत्यक्ष होना,—ब्रह्माभिव्यक्ति के पूर्वरूपों की सूचना है। यथाः—"नीहार धूमार्का निलानलानां खद्योत विद्युत्स्फटिक शशीनाम्। एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभि व्यक्तिकराणि योगे" (श्वेता० उप० २।११)। अर्थात् कोहरा, धूआं, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनु अर्थात् सितारे, विद्युत्, स्फटिक, चान्द,—ये नाना रूप, योगाभ्यास में, ब्रह्माभिव्यक्ति से पूर्व होते हैं। इनके पश्चात् ब्रह्माभिव्यक्ति होती हैं। यह आध्यात्मिक-सृष्टि है]

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१७५९—यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥

(अश्विना) हे अश्वियो ! तुम दोनों (यत्) जब (वृषणं रथम्) वर्षा करने वाले सूर्य-रथ को (युञ्जाथे) अपने जाने के निमित्त जोतते हो, तब तुम (घृतेन मधुना) घृत और मधु आदि भोग्य पदार्थों के साथ-साथ हम में (क्षत्रम्) आसुरी-प्रवृत्तियों के साथ युद्ध करने के लिये क्षात्रभावनाओं को भी (उक्षतम्) सींचो। (पृतनासु) काम-क्रोधादि की सेनाओं में, सहायक रूप में, (अस्माकम्) हमारे उपास्य (ब्रह्म) ब्रह्म को (जिन्वतम्) प्रसन्न करो, ताकि (शूरसाता) इन संग्रामों में (वयम्) हम (धना) आध्यात्मिक-धनों के (भजेमहि) भागी बनें।

[सूर्योदय से पूर्व मुमुक्षु ध्यान में मग्न था। सूर्योदय होने पर वह व्युत्थित दशा में आया। तब खानपान का व्यवहार चला, और सांसारिक भावनाओं के होते, काम-क्रोध आदि के साथ युद्ध की सम्भावना में क्षात्रभावना की भी आवश्यकता अनुभूत हुई, और साथ ही ब्राह्मी सहायता की भी आवश्यकता हुई,—यह भाव इस मन्त्र में प्रकट किया गया है]

३१ २३१ २३१२३ १२ ३१२ ३ १ २ ३
१७६०—अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु
१ २
सुष्टुतः।
३ २३१२३१ २ ३ १ ३ १ २ ३२३१२
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे
॥ ३ ॥ ॥१७(छा) ॥

(अर्वाङ्) हमारे सम्मुख उपस्थित, (त्रिचक्रः) तीन चक्रों वाला (मधुवाहनः) मधुर खाद्य-पदार्थ प्राप्त कराने वाला, (सुष्टुतः) सु प्रशस्त (अश्विनोः रथः) अश्वियों का सूर्य-रथ, (जीराश्वः) जीर्ण-किरणों वाला हो कर, (यातु) सायंकाल के पश्चात् दृष्टि से ओझल हो जाये, अर्थात्, छिप जाये। तदनन्तर अश्विकाल के पुनरागमन पर (त्रिबन्धुरः) शरीर, इन्द्रियों, और मनरूपी तीन बन्धनों में बांधने वाला, (मघवा) सांसारिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का स्वामी, (विश्वसौभगः) सब सौभाग्यों से सम्पन्न परमेश्वर, (नः) हम उपासकों के लिये, (द्विपदे) सभी नर-नारियों के लिये, तथा (चतुष्पदे) सभी जानवरों के लिये (शम्) शान्ति और सुख (आवक्षत्) प्रदान करे।

[त्रिचक्रः=सूर्य के तीन चक्र हैं। एक पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व की ओर, जिससे दिन और रात का निर्माण होता है। दो चक्र हैं मध्य अर्थात् विषुव-रेखा से उत्तर-अयन की ओर, और वहां से विषुव-रेखा की ओर; तथा विषुव-रेखा से दक्षिण-अयन की ओर, और वहां से विषुव-रेखा की ओर। इन दो चक्रों से ऋतु-परिवर्तन होता रहता है। सूर्य के विषुव-रेखा पर रहते दिन-रात बराबर होते हैं। शेष दो चक्रों के कारण दिन-रात छोटे-बड़े होते हैं। चक्र=चक्कर। जीराश्वः=जीर (जीर्ण)+अश्वः (किरण)। जीर=ज्या वयोहानौ (सम्प्रसारणम्) त्रिबन्धुरः=अथवा स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, और कारण शरीर रूपी तीन बन्धन करने वाला]

[प्रा० २२। उ० २। स्व० २]

सूक्त १८

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१७६१—प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा वाजँ सहस्रिणम् ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (ते) आपकी (धाराः) आनन्दधाराएँ (असश्चतः) सांसारिक संगों से रहित करतीं, और हमें (सहस्रिणं वाजम्) अनन्त शक्तियां तथा साहस-सम्पन्न शक्तियां (प्र यन्ति) प्रदान करती हैं, (न) जैसे कि (दिवः) द्युलोक की (वृष्टयः) वृष्टि-धाराएँ (सहस्रिणं वाजम्) अनन्त प्रकार के अन्न प्रदान करती हैं।

[वाजम्=बल (निघं० २।९), तथा अन्न (निघं० २।७)]

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१७६२—अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
१ २ ३ १ १र
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

(हरिः) क्लेशहारी परमेश्वर, (विश्वा) (प्रियाणि काव्या) प्रिय वेदकाव्यों का (चक्षाणः) कथन करता हुआ (अभि अर्षति) प्रकट होता है, और (आयुधा) आसुरी भावों और कर्मों के साथ युद्ध करने के साधन (तुञ्जानः) प्रदान करता है।

[चक्षाणः=चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । तुञ्जानः=तुञ्जति दानकर्मा (निघं० ३।२०)] आयुधा=श्रद्धा, भक्ति, विवेकज्ञान, आनन्द आदि]

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१७६३—स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
३ १ २र
श्येनो न वँसु षीदति ॥ ३ ॥

(सः) वह (सुव्रतः) व्रतपति परमेश्वर, (आयुभिः) उपासक जनों द्वारा, (मर्मृजानः) विशुद्धावस्था में, अर्थात् प्रत्यक्षरूप में प्रकट कर लिया जाता है। वह (इभः इव) हाथी के सदृश बलवान्, और (राजा इव) राजा के सदृश ब्रह्माण्ड का राजा है। वह (वंसु) भक्तजनों के हृदयों में (सीदति) स्थित हो जाता है, (न) जैसे कि (श्येनः) बाज-पक्षी अपने आश्रय पर आ बैठता है।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
१७६४—स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
३ १ २ ३ १ २
पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥ ॥१८ (ती) ॥

(इन्दो) चन्द्र समान शीतल प्रकाश वाले हे परमेश्वर ! (सः) वह आप (पुनानः) पवित्र करते हुए, (नः) हम उपासकों को, (दिवः) दैवी (उत उ) और

(पृथिव्याः) पार्थिव (वसु) सम्पत्तियां, (अधि) प्रभूत मात्रा में, (आ भर) प्रदान कीजिये।

॥ इति पंचमः खण्डः ॥५॥ [धा० १४ । उ० १ । स्व० ४]

॥ इति अष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः; अष्टमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥



अथ विंशोऽध्यायः ।

[१]

अथ नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९—१॥

(१—१८) १ नृमेध आंगिरसः; २—३ प्रियमेघ आङ्गिरसः; ४ दीर्घतमा औचथ्यः; ५ वामदेवो गौतमः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ७ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ८ बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः; ९, १७ जमदग्निर्भार्गवः; १० सुकक्ष आंगिरसः; ११—१३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ सुदाः पैजवनः; १५ मेधातिथिः काण्वः; १६ नीपातिथिः काण्वः; १८ परुच्छेपो दैवोदासिः ॥ १, १७ पवमानः सोमः; ३, ७, १०, १६ इन्द्रः; ४—६, १८ अग्निः; ९ मरुतः; १० सूर्यः; २...॥ १, ८, १०, १५—१७ गायत्री; (१७ नित्यपदा) २......; ३ अनुष्टम्मुखः प्रगाथः=(१ अनुष्टुप्+गायत्र्यौ); ४, ११, १३ विराट्ः; ५ पदपंक्तिः; ६, ९, १२ प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७ त्रिष्टुप्; १४ शक्करी; १८ अत्यष्टिः ॥

सूक्त १

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१७६५—प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्याजसः ।

३ १ २र ३ १ २

देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥

(वृष्णः) सुख-शान्ति की वर्षा करने वाले, (ओजसः) ओजः सम्पन्न, (देवान् अनु) दिव्यगुणों की प्राप्ति के पश्चात् (प्रभूषतः) अपना प्रभाव दर्शाने वाले अथवा दिव्य गुणों में भूषणरूप (सुतस्य) प्रकट हुए (अस्य) इस भक्तिरस की (धाराः) धाराएँ अर्थात् प्रवाह (प्र अक्षरम्) वेग से प्रवाहित हुए हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१७६६—सप्ति मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।

१ २ ३ २ ३क २र

ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

(वेधसः) आत्मरूपीशर द्वारा ब्रह्म का वेधन करने वाले, (कारवः) कर्मयोगी उपासक, (गिरा) वेदोक्त विधियों द्वारा, (सप्तिम्) प्रसरणशील भक्तिरस

का (मृजन्ति) परिशोधन करते हैं, और (जज्ञानम्) प्रकट हुए (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (ज्योतिः) ब्राह्मी-ज्योति के (गृणन्तः) स्तुतिगान करते हैं।

[वेधसः="प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्" (मुण्ड० २।२।४)] वेद्धव्यं और वेधसः में धातुसाम्य है।

३ १ २ ३ १ १ ३ १ २
१७६७—सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो।
१ २ ३ १ २
वर्धा समुद्रमुक्थ्य॥ ३॥ ॥१ (धि)॥

(प्रभूवसो) हे प्रभूतधनी! (सोम) तथा हे सर्वप्रेरक-और-सर्वोत्पादक प्रभो!, (पुनानाय) अपने आचार-विचारों को पवित्र करने वाले उपासक के लिये, (ते) आपके (तानि) वे प्रसिद्ध तेज (सुषहा) उसकी विघ्न-बाधाओं को सुगमता से पराभूत कर देते हैं। (उक्थ्य) हे प्रशंसनीय प्रभो! (समुद्रम्) उपासक के हृदय-समुद्र को, (वर्धा) अपनी आनन्दरसमयी तरंगों द्वारा, उत्तरंगित कर दीजिये।

[धा० १२। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त २

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
१७६८—एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे॥ १॥

(एषः) यह परमेश्वर (ब्रह्मा) ब्रह्मा है, (यः) जो कि (ऋत्वियः) ऋतुओं का निर्माण करता है, (इन्द्रः नाम श्रुतः) और "इन्द्र" नाम से प्रसिद्ध है, वेदों में सुना गया है। (गृणे) इसकी मैं स्तुति करता हूँ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१७६९—त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः॥ २॥

(शवसः पते) हे बलों के स्वामी! (न) जैसे (गिरः) वेदवाणियां (त्वाम् इत्) आपको ही (यन्ति) प्राप्त हो रही हैं, केवल आपका ही वर्णन कर रही हैं, वैसे (संयतः) संयम-सम्पन्न उपासक की (गिरः) स्तुतिवाणियां आपको ही प्राप्त होती हैं, आपका ही यशोगान करती हैं।

संयम=त्रयमेकत्र संयमः (योग ३।४) अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि का एक-ही-विषय होना,—संयम है]

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ
१७७०—वि स्रुतयो यथा पथः॥ ३॥ ॥२ (प)॥

(वि स्रुतयः) विविध नदियां, (यथा) जैसे, (पथा) अपने-अपने मार्गों द्वारा, (यन्तु) समुद्र को (यन्तु) प्राप्त होती हैं, (इन्द्र) हे परमेश्वर! (पथा) सुपथ द्वारा (रातयः) विविध दान (त्वत्) आप से (यन्तु) हमें प्राप्त हो।

[पथा=अग्ने नय सुपथा राये स्मान्" (यजु० ४०।१६)।

[धा० ५। उ० १। स्व० १]

सूक्त ३

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१७७१—आ त्वा रथं यथोतये ॥ १ ॥

(यथा) जैसे व्यक्ति (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये, (सुम्नाय) और सुख के लिये (रथम्) रथ को प्रवृत्त कराता है, वैसे (शविष्ठ) हे बलिष्ठ परमेश्वर !, —(ऊतये, सुम्नाय) रक्षा और सुख के लिये, हम उपासक,—(तुविकूर्मिम्) नानाविध कर्मों वाले, (ऋतीषहम्) आर्तियों अर्थात् कष्टों का पराभव करने वाले, (सत्पतिम्) सच्चे-रक्षक, (त्वाम् इन्द्रम्) आप परमैश्वर्यवान् को,—(आ वर्तयामसि) अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं, स्वाभिमुख करते हैं, अपनी ओर आवर्जित करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७७२—तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते।
१ २ ३ २
आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

(तुविशुष्म) हे महाबली ! (तुविक्रतो) हे महाकर्मों वाले, (शचीवः) हे वेदवाणी वाले !, (मते) हे प्रज्ञान घन ! आप (विश्वया) विश्वव्यापी (महित्वना) महिमा से (आ पप्राथ) सर्वत्र ब्रह्माण्ड में विस्तृत हुए-हुए हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१७७३—यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः।
२ ३ १ २ ३ १ २
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥ ॥३ (वि) ॥

हे परमेश्वर ! (महिना) निज महिमा द्वारा (महः) महान् (यस्य) जिस (ते) आप के, (हस्तौ) दो हाथों ने, (ज्मायन्तम्) पृथिवी नियामक, (हिरण्मयम्) तथा हितकारी-और-रमणीय (वज्रम्) न्याय-वज्र को (परि ईयतुः) पूर्णतया ग्रहण किया हुआ है।

[ज्मायन्तम्=ज्मा पृथिवी (निघं० १।१)+यन्तम्=नियामक। हस्तौ= नियमन के साधन दो होते हैं, निग्रह और अनुग्रह। दुष्टों का निग्रह करना, और श्रेष्ठों पर अनुग्रह करना। इन दो साधनों द्वारा न्याय किया जाता है। मानो ये दो साधन दो हाथ रूप हैं, जिन्होंने न्याय-वज्र ग्रहण किया हुआ है]

[धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त ४

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३ ३ २ १ २
१७७४—आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सूरो न रुरुक्वां छतात्मा ॥ १ ॥

(यः) जो (शतात्मा) अगणित लोकलोकान्तरों की आत्मा है, वह, (नार्मिणीम्) नर-नारियों की मन-भाती (पुरम्) पुरियों अर्थात् देहों को (प्रदीदेत्) प्रकाशित करता और विनष्ट करता है। वह (अत्यः) सर्वत्र व्याप्त है, (कविः) वेद-काव्यों का कवि है, क्रान्तदर्शी है, (नभन्यः न) मेघनेता वायु के सदृश (अर्वा) सदागतिक है, तथा (सूरो न) सूर्य के सदृश (रुरुक्वान्) प्रदीप्त है।

[प्रदीदेत्=दीधीङ् दीप्तौ; दीङ् क्षये। अत्यः=अत सातत्यगमने। अर्वा=ऋ गतौ। नभन्यः—नभस् (मेघ)+न्यः (नी)]

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
१७७५—अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजाँ्सि शुशुचानो
२
अस्थात्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
होता यजिष्ठो अपाँ् सधस्थे ॥ २॥

(द्विजन्मा) दो साधनों अर्थात् अभ्यास-और-वैराग्य, या देहरूपी अधरारणि और प्रणवरूपी उत्तरारणि से प्रकट होता, (त्री रोचनानि) अग्नि-सूर्य-चान्द,—इन तीन ज्योतियों को, तथा (विश्वा रजांसि) अनन्त सब लोक लोकान्तरों को (शुशुचानः) प्रकाशित करता, (होता) सब का दाता, (यजिष्ठः) संसार-यज्ञ का रचयिता, (अपाम्) प्राणों के (सधस्थे) स्थान अर्थात् हृदय में, जो स्थान कि जीवात्मा और परमात्मा इन दोनों का निवासस्थान है,—(अभि) साक्षात् (अस्थात्) स्थित हुआ-हुआ है।

[द्विजन्मा="स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासात् देवं पश्येत् निगूढवत्" (मन्त्र संख्या ६)]

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
१७७६—अयँ् स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥३॥ ॥ ४(छ) ॥

(अयम्) यह (सः द्विजन्मा) वह द्विजन्मा है (यः) जो कि (होता) सब का दाता है, वह (वार्याणि) वरणीय अर्थात् श्रेष्ठ (श्रवस्या) तथा अन्नों और धनों से भरपूर (विश्वा) सब लोकलोकान्तरों का (दधे) धारण कर रहा है। (यः) जो (मर्तः) मनुष्य (अस्मै) इस के प्रति (ददाश) सर्वस्व-समर्पण कर देता है वह (सुतुकः) उत्तम सन्तानों वाला होता है, उत्तम गृहस्थी होता है।

[द्विजन्मा (मन्त्र १७७५)। श्रवः=अन्न (निघं० २।७); धन (निघं० २।१०)]

[धा० १२। उ० २। स्व० १]

सूक्त ५

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७७७—अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्।
३ १ २ ३ १ २
ऋध्यामा त ओहैः॥ १ ॥

(अग्ने) हे आगे बढ़ाने वाले जगन्नेता !, (अद्य) आज हम मिल कर, (ते) आपके (स्तोमैः) स्तुति मन्त्रों द्वारा,—जो स्तुति मन्त्र कि (ओहैः) हमें आप तक बहा ले जाते हैं,—(तम्) उस प्रसिद्ध सामगान को गाते हैं, जो सामगान कि (अश्वं न) अश्व के समान हमारे अभीष्टों को सिद्ध करता, और जो (क्रतुं न) अन्य सत्कर्मों के सदृश (भद्रम्) सुख देता और कल्याणकारी होता, तथा (हृदिस्पृशम्) हृदय-स्पर्शी है, हार्दिक स्नेह भावनाओं को जागरित करता है। (ऋध्याम) उस प्रसिद्ध सामगान द्वारा हम ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१७७८—अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥

(अधा हि) तथा निश्चय से, (अग्ने) हे आगे ले जाने वाले जगन्नेता !, आप हमारे (क्रतोः) उपासना-यज्ञों, सत्कर्मों, तथा सत्संकल्पों के (रथीः) नेता या स्वामी हो चुके हैं, जो हमारे उपासना-यज्ञ, सत्कर्म, तथा सत्संकल्प (भद्रस्य) सब को सुख देने वाले तथा सब का कल्याण करने वाले हैं; (दक्षस्य) वृद्धिकारक तथा (साधोः) अभीष्ट साधक हैं; तथा जो (ऋतस्य) सत्यस्वरूप और (बृहतः) महान् (बभूथ) हैं।

१ २ ३ १ २र ३ २ ऽऽ १ २र
१७७९—एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्वऽ३र्ण ज्योतिः।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥ ३ ॥ ॥५(चि)॥

(अग्ने) हे आगे ले जाने वाले जगन्नेता ! (नः) हमारे (एभिः अर्कैः) इन स्तुतिसाधक स्तोत्रों द्वारा, आप (नः) हमारी (अर्वाक् अभिभव) ओर अभिमुख हो जाइये, प्रकट हो जाइये। आप (स्वः न) सूर्य के समान (ज्योतिः) ज्योतिः-स्वरूप हैं। आप (विश्वेभिः) समग्र (अनीकैः) निज तेजों द्वारा (सुमनाः) हमारे मनों को श्रेष्ठ कर दीजिये।

[अनीकैः=तेजोभिः (सायण)]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ [धा० ७ । उ० १ । स्व० ३]

सूक्त ६

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
१७८०—अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः॥ १ ॥

(अमर्त्य) हे अमर (अग्ने) जगन्नेता ! मेरे आध्यात्मिक जीवन की (उषसः) नई-उषा का (चित्रम्) विचित्र, और (विवस्वत्) अविद्यान्धकार को दूर करने वाला, (राधः) जो धन हैं वह (आ वह) मुझे प्राप्त कराइये। (जातवेदः) हे इस आध्यात्मिक-धन को प्रकट करने वाले ! (दाशुषे) आप के प्रति सर्वस्व-समर्पण करने वाले मुझ उपासक के लिये, (उषर्बुधः) आध्यात्मिक-जीवन की नई उषा में उद्बुद्ध होने वाली (देवान्) दिव्यशक्तियों को भी, (त्वम्) आप (अद्य) आज (आ वह) मुझे प्राप्त कराइये।

२ ३ २ ३ १ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७८१—जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत्
॥ २ ॥ ॥६ (ला) ॥

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप जगन्नेता ! (जुष्टः) प्रीति से सेवा किये गए आप (हि) निश्चय से, (दूतः असि) हमारे पापों को परितप्त करते हैं, और (हव्यवाहनः) उपासकों को सांसारिक-तथा-आध्यात्मिक भोग्य पदार्थ प्राप्त कराते हैं। आप (अध्वराणाम्) हिंसारहित उपासना आदि यज्ञों के (रथीः) स्वामी हैं, प्रेरक हैं। (उषसा सजूः) उषा कालों से संपृक्त (अश्विभ्याम्) अश्वि-कालों में आप (अस्मे) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम शक्ति तथा (बृहत्) महा (यशः) यश या महा-धन अर्थात् मोक्ष (धेहि) प्रदान कीजिये।

[अश्विभ्याम्, उषसा=मध्यरात्री के बाद से लेकर उषा काल तक अश्वि-काल है। इस समय किया गया ध्यान महाफलदायी होता है। यह काल सूर्योदय पर समाप्त हो जाता है। देखो मन्त्र १७५३]

[घा० ९। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ७

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१७८२—विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥१॥

(विधुम्) शत्रुदल का वेधन करने वाले, और उसे कम्पा देने वाले, (दद्राणम्) तथा उसे विद्रावित कर देने वाले शक्तिशाली (युवानं सन्तम्) युवा को भी,—(बहूनां समने) अन्य बहुतों के जीवित रहते,—(पलितः) पलों से निर्मित काल, पल भर में ही (जगार) निगल जाता है। इस रहस्य के ज्ञानार्थ हे उपासक! तू (देवस्य) परमात्म-देव के (महित्वा) महत्त्वशाली (काव्यम्) वेदकाव्य का (पश्य) पर्यालोचन कर। देख ! जो (अद्य) आज (ममार) मरा है (सः) वह (ह्यः) कल (समान) जीवित था।

[विधुम्=व्यध् (ताड़ने) तथा धूञ् (कम्पने)। दद्राणम्=द्रा (गतौ)। समने=सम् (संगत)+अव (प्राणने)। पलित=पल+इतच्]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
१७८३—शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २उ
यश्चिकेतत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता
॥ २ ॥

वह परमेश्वर (शक्मना) निज शक्ति द्वारा (शाकः) शक्तिमान् है, (अरुणः) प्रकाशस्वरूप, तथा (सुपर्णः) उत्तम पालक है, (यः) जो (महः शूरः) महान् और विक्रमशाली है (सनात्) सनातन और (अनीडः) अनाश्रित है, अर्थात् स्वाश्रितसत्ता वाला है, (यत्) जो कुछ (आ चिकेत) वह जानता है (तत्) वह (सत्यम् इत्) सत्य ही होता है, (मोघं न) वह कभी निष्फल, असत्य नहीं होता। (उत) तथा (स्पार्हम्) हम लोगों द्वारा स्पृहणीय (वसु) सब प्रकार की सम्पत्तियों पर उस ने (जेता) विजय पाई हुई है, (उत) और उन सम्पत्तियों को वह (दाता) दे भी रहा है।

[अरुणः=आरोचनः (निरु० ५।४।२०)]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१७८४—ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः
॥ ३ ॥ ॥७(घे) ॥

परमेश्वर (एभिः) इन देव कोटि के उपासक शिरोमणियों द्वारा, (वृष्ण्या) सुखवर्षक (पौंस्यानि) पौरुष कर्म (आ ददे) कराता है, (येभिः) जिन उपासक शिरोमणियों द्वारा कि (वज्री) न्यायवज्रधारी परमेश्वर, (वृत्रहत्याय) पापवृत्रों की हत्या के लिये, प्रजाजनों में (औक्षत्) शक्ति सींचता रहता है, तथा (ये देवाः) जो देवकोटि के उपासक शिरोमणि (क्रियमाणस्य) किये जाने वाले (मह्नः कर्मणः) महत्त्वशाली कर्म की सफलता के लिये, परमेश्वर के प्रति सदा (उदजायन्त) उन्मुख रहते हैं, क्योंकि ऐसे महत्वशाली (कर्मम्) कर्म (ऋते) परमेश्वर की सहायता के विना सफल नहीं हो पाते।

अथवा

(ये) जो (देवाः) देवकोटि के उपासक शिरोमणि,—(क्रियमाणस्य) सांसारिक दृष्टि से किये जा रहे (मह्नः कर्मणः) महत्वशाली कर्मों के होते हुए भी,—(ऋते कर्मम्) केवल सत्यमय कर्मों को करते हुए (उदजायन्त) उन्नति प्राप्त करते हैं, और (येभिः) जिन देवकोटि के उपासक शिरोमणियों द्वारा कि (वज्री) न्यायवज्रधारी परमेश्वर, (वृत्रहत्याय) पाप-वृत्रों की हत्या के लिये, प्रजाजनों में (औक्षत्) शक्ति सींचता रहता है, (एभिः) ऐसे देवकोटि के उपासकों द्वारा परमेश्वर, (वृष्ण्या) सुखपूर्वक (पौंस्यानि) पौरुषकर्म (आ ददे) कराता रहता है।

["ऋते कर्मम्" को समस्त पद मान कर यह द्वितीय अर्थ किया गया है]

[प्रा० ३१। उ० ४। स्व० ७]

सूक्त ८

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३२ ३ १ २
१७८५—अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत स्वराजो अश्विना ॥१॥

हे परमेश्वर ! (अयम्) यह (सोमः) भक्तिरस (सुतः अस्ति) सम्पन्न हो चुका है। आप की कृपा से मेरे (मरुतः) समग्र प्राण (अस्य) इस भक्तिरस का (पिबन्ति) पान करने लग गए हैं, और वे समग्र प्राण (स्वराजः) अपने-अपने क्षेत्र में राज्य करते हुए अनुभूत हो रहे हैं। (उत) और अश्विना) प्राण-तथा-अपानरूपी मुख्य प्राण भी इस भक्तिरस का पान करने लग गये हैं। अर्थात् मेरी समग्र शारीरिक शक्तियाँ भक्तिरस द्वारा आप्लुत हो गई हैं।

[अश्विनौ का नाम "नासत्यौ" भी है। नासत्यौ का अर्थ "नास्" अर्थात् नासिका में, "अत्यौ" सतत गति करने वाले, अत् सातत्यगमने। प्राण-और-अपान का नासिका में सतत-गमन होता रहता है। "अत्य" का अर्थ है "अश्व"। अत्यः अश्वनाम (निघं० १।१४)। अश्विनौ का "अश्व" शब्द, और नासत्यौ का "अत्य" शब्द समानार्थक हैं। अतः नासत्यौ का अर्थ हुआ "नास् में सतत गति करने वाले दो अश्व। संस्कृत साहित्य में नासिका को "नस्" आदेश होता है (अष्टा० ६।१।६३) "नस्" ही "नास्" में परिवर्त्तित हुआ है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २
१७८६—पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः।
३ २ ३ १ २
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ २ ॥

(पूतस्य) पवित्र, (त्रिषधस्थस्य) तीन स्थानों में स्थित हुए, अर्थात् विचारों भावनाओं-और कर्मों में स्थित हुए (जावतः) भक्तिरस का द्विजन्मारूप में नया जीवन देने वाले (पिबन्ति) पान करते हैं,— (मित्रः) सर्वभूत मैत्री की भावना वाले, (अर्यमा) न्यायपूर्वक व्यवहार करने वाले, (वरुणः) पापों का निवारण करने वाले श्रेष्ठजन, तथा (तना) इन गुणों वाले सत्पुरुषों की सन्तानें।

३ १ २ ३ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २
१७८७—उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः।
३ १ २२
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥ ॥ ८(ली) ॥

(उत) और (उ नु) निश्चय से,—(गोमतः) वैदिक स्तुति गानों से मिश्रित, (अस्य) इस (सुतस्य) निष्पन्न भक्तिरस का (जोषम्) सेवन (इन्द्रः) परमेश्वर करता है, (आ मत्सति) और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है, (इव) जैसे कि (होता) परमेश्वर के प्रति आत्मसमर्पण करने वाला उपासक, (प्रातः) प्रातः काल के ध्यान में, परमेश्वरीय आनन्दरस का सेवन कर पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है।

[गो=वाक् (निघं० १।११)]

[घा० ६। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त ९

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७८८—बण्महाँ॒ असि सूर्य बडादित्य महाँ॒ असि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ॒ असि ॥ १ ॥

मन्त्र १७८७ के अनुसार उपासक प्रातःकाल के ध्यान में आनन्दरस का पान करता हुआ स्तुति करता है किः—"(सूर्य) हे सूर्यों-के-सूर्य ! (बट्) सत्य है कि आप (महान् असि) महान् हैं, (आदित्य) हे आदित्यों-के-आदित्य ! (बट्) सत्य है कि आप (महान् असि) महान् हैं, (महः सतः) चूँकि आप वस्तुतः महान् हैं, इसलिये (ते) आपकी ही (महिमा) महिमा सर्वत्र है। (पनिष्टम) हे सर्वातिशायिनी स्तुति वाले ! (देव) देवाधिदेव ! आप अपनी (मह्ना) महिमा के कारण (महान् असि) महान् हैं।

[बट्=सत्यनाम (निघं० ३।१०) । "बट्" शब्द सम्भवतः "बद्" का रूपान्तर हो। बद् धातु भ्वादिगण में पठित है, जिसका अर्थ है "स्थैर्ये"। सत्य वह वस्तु है जो सदा स्थिर हो, एकरस हो। इस स्थिरता—अर्थ के कारण बद्=बट्]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७८९—बट् सूर्य श्रवसा महाँ॒ असि सत्रा देव महाँ॒ असि ।
३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्
॥ २ ॥ ॥९ (त) ॥

(बट्) सत्य है कि (सूर्य) हे सूर्यों-के-सूर्य ! आप (श्रवसा) कीर्त्ति की दृष्टि से (महान् असि) महान् हैं। (देव) हे देवाधिदेव ! (सत्रा) सत्य है कि आप (महान् असि) महान् हैं। (मह्ना) आप निज महिमा के कारण (देवानाम्) आधिदैविक देवों के (असुर्यः) प्राणरूप हैं, (पुरोहितः) आप उपासकों के संमुख ध्येयरूप में निहित होते हैं। आप (विभु अदाभ्यं ज्योतिः) व्यापक और अनश्वर ज्योति हैं।

[सत्रा=सत्यम् (निघं० ३।१०) । पुरोहितः=पुरः संमुख; हितः निहितः]

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥ [धा० १४ । उ० १ । स्व० १]

सूक्त १०

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१७९०—उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ १ ॥

(मदानां पते) हे आनन्दों के स्वामी ! (नः) हमारे (सुतम्) निष्पन्न भक्तिरसों में, (हरिभिः) निज-मनोहारी-तेजों समेत, (उप याहि) उपस्थित हूजिये। (नः) हमारे (सुतम्) निष्पन्न भक्तिरसों में, (हरिभिः) निज-मनोहारी-तेजों समेत, (उप याहि) अवश्य उपस्थित हूजिये।

३ १   १र ३ १ २   ३ १ २र ३ १ २

१७९१—द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः।

१ २ ३ १ २   ३ २

उप नो हरिभिः सुतम् ॥ २ ॥

(यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (द्विता) दो स्वरूपों का (विदे) जाना जाता है, अर्थात् (वृत्रहन्तमः) पाप-वृत्रों का अतिशय हनन करने वाला, तथा (शतक्रतुः) नानाविध जगत् का रचयिता,—वह आप हे परमेश्वर ! (नः) हमारे (सुतम्) निष्पन्न भक्तिरसों में, (हरिभिः) निज-मनोहारी-तेजों समेत (उप याहि) प्रकट हूजिये।

["वृत्रहन्तमः" द्वारा परमेश्वर का रौद्ररूप, और "शतक्रतुः" द्वारा उसका प्रशान्तरूप प्रकट किया है। पुराणों की परिभाषा में इन दो स्वरूपों को शिव और ब्रह्मा कह सकते हैं]

१   २र   ३ १   २र ३ १ २

१७९२—त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि।

१ २ ३ १ २   ३ २

उप नो हरिभिः सुतम् ॥३ ॥ ॥१०(री) ॥

(वृत्रहन्) हे पाप-वृत्रों का हनन करने वाले ! (त्वम् हि) आप ही (एषां सोमानाम्) इन भक्तिरसों या भक्ति-यज्ञों के (पाता असि) रक्षक हैं। (नः) हमारे (सुतम्) निष्पन्न भक्तिरसों या भक्तियज्ञों में, (हरिभिः) निज-मनोहारी-तेजों समेत, (उप याहि) प्रकट हूजिये।

[धा० १३। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त ११

१ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१७९३—प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।

१ २ ३ १   २र   ३ १

विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ १ ॥

हे उपासको ! तुम अपनी (महेवृधे) महावृद्धि के लिये, (वः) अपने (महे) पूजनीय परमेश्वर के लिये, (प्र भरध्वम्) आत्मसमर्पण कर दो, और (प्रचेतसे) सर्वज्ञ परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, अपनी (सुमतिम्) सुमतियों को (प्र कृणुध्वम्) और अधिक श्रेष्ठ बनाओ। हे परमेश्वर ! आप (चर्षणिप्राः) उपासकजनों की अभिलाषाओं को पूर्ण करते हैं, (पूर्वीः) अनादि परम्परा से प्राप्त (विशः) इन प्रजाओं के हृदयों में आप (प्र चर) विचरिये।

३ १२ ३१२ ३ १ २र३१२ ३ १२
१७९४—उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ २ ॥

(उरुव्यचसे) महाविस्तारी अर्थात् सर्वव्यापक, (महिने) तथा महामहिम जिस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये, (विप्राः) मेधावी-उपासक, (सुवृक्तिम्) दोष-वर्जित (ब्रह्म) ब्रह्मप्रतिपादक स्तुतियां (जनयन्त) करते हैं, (तस्य) उस परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट (व्रतानि) व्रत-कर्मों का (धीराः) धीर-उपासक (मिनन्ति न) उल्लंघन नहीं करते ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१७९५—इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
१ २ ३ २ ३ २
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥३॥ ॥११(हि) ॥

विप्र तथा धीर लोग [मन्त्र १७९४] (सहध्यै) पापों के पराभव के लिये, सदा (वाणीः) वेदवाणियों को अपने हृदयों में (दधिरे) धारण करते हैं, और साथ ही (इन्द्रम्) परमेश्वर को अपने हृदयों में धारण करते हैं, जो कि (सत्रा राजानम्) सच्चा राजा है, और (अनुत्तमन्युम्) जिसके मन्यु का प्रतीकार नहीं किया जा सकता । (एव) यह बात निश्चित है । हे उपासक ! तू (हर्यश्वाय) मनोहारी-व्यापक परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, (आपीन्) अपने सम्बन्धियों को भी (सं बर्हय) इस मार्ग में बढ़ाया कर ।

[हर्यश्व=हरि (मनोहारी)+अश्व (अशूङ् व्याप्तौ]

[धा० २६ । उ० नास्ति । स्व० ३]

सूक्त १२

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७९६—यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यावतः) जितने ऐश्वर्य के (त्वम्) आप अधीश्वर हैं (यद्) यदि (एतावत्) इतने ऐश्वर्य का (अहम्) मैं (ईशीय) अधीश्वर हो जाऊँ, तो मैं आपके (स्तोतारम्) स्तोताओं का (इत्) ही केवल (दधिषे) धारण-पोषण करूँ । (रदावसो) हे सम्पत्तियों के दाता ! (पापत्वाय) पाप-कर्म के लिये, (न रंसिषम्) आपकी दी सम्पत्ति का मैं दान न करूँ । या पाप-कर्म के लिये आप की दी सम्पत्तियों में मैं रमण न करूँ ।

[रदावसो=रा (दाने)+दा (दाने)+वसु (सम्पत्ति)]

१२ ३१ २ ३२११ २ ३१ २२ ३१२
१७६७—शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
२२ ३ १२ ३२३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न
॥ २ ॥ ॥१२(ता)

(मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! (महयते) आपकी महिमा गाने वाले के लिये, (दिवेदिवे) दिन प्रतिदिन, मैं (इत्) अवश्य (रायः) धन (आ शिक्षेयम्) सब प्रकार से दिया करूँ, (कुहचित्) चाहे वह कहीं भी (विदे) विद्यमान हो। हे परमेश्वर ! (हि) क्योंकि (त्वत् अन्यत्) आपसे अतिरिक्त, (वस्यः) प्रशस्त (आप्यम्) बन्धु, (नः) हमारा (न) और कोई नहीं है, (च) और (न) न कोई (पिता) सच्चा-रक्षक ही (अस्ति) है ।

[घा० १४ । उ० १ । स्व० २]

सूक्त १३

३ १ २र ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ १ ३ २
१७६८—श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! (विपिपानस्य) आपके आनन्दरस का बार-बार पान करने वाले, तथा (अद्रेः) पर्वत सदृश अपने कर्तव्यों में अटल रहने वाले, या मेघसदृश सब पर सुखों की या उपदेशों की वर्षा करने वाले मुझ उपासक के (हवम्) आह्वान को (श्रुधि) कृपया सुनिये, और (अर्चतः) आपकी अर्चना करते हुए मुझ (विप्रस्य) मेधावी उपासक की (मनीषाम्) मनोवाञ्छा को (बोध) जानिये, तथा (इमा दुवांसि) मुझ द्वारा की गई इन सेवाओं को (अन्तमा) अपने समीप (कृष्व) रखिये, स्मरण रखिये, (सचा) और सदा सहायक बने रहिये ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २
१७६९—न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
१ २ ३ १ २
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (तुरस्य) अविद्या के विनाशक (ते) आपकी, (गिरः अपि) वेदवाणियों को भी, (न मृष्ये) विचारने में मैं असमर्थ हूँ, और (असुर्यस्य) प्रज्ञा-तथा-प्राणशक्ति के प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ आपकी, (सुष्टुतिम्) उत्तम-स्तुति के ढंग को भी, मैं (न विद्वान्) नहीं जानता । मैं तो (सदा) सदा (ते) आपके (स्वयशः) निज-यशस्वी (नाम) ओ३म् नाम का, (विवक्मि) विशेषतया जप करता रहता हूँ ।

[योगदर्शन में प्रणव (ओ३म्) के जप द्वारा भी समाधि-सिद्धि का वर्णन किया गया है । समाधि के अन्य साधनों की अपेक्षा जप-साधन सुगम भी है । जप में ईश्वर की ओर चित्त लगाकर, "ओ३म्" का सतत मानसिक उच्चारण करना होता है, और ओ३म् के वाच्य की अर्थात् परमेश्वर की मनोभावना करनी होती

है। इससे प्रत्यक्-चेतना अर्थात् जीवात्मा के निजस्वरूप का भी अधिगम हो जाता है, और परमेश्वर का भी साक्षात् हो जाता है, तथा योगमार्ग में जो बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, उनका भी अभाव ईश्वरीय-कृपा द्वारा हो जाता है। योगदर्शन के सूत्र निम्नलिखित हैं,—ईश्वर प्रणिधानाद्वा (१।२३); तस्य वाचकः प्रणवः (१।२७); तज्जपः तदर्थभावनम् (१।२८), ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च (१।२९)।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१८००—भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्।

२उ ३ १ २ ३ १ २

मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः ॥ ३ ॥ ॥१३ (वा)॥

हे परमेश्वर! (मानुषेषु) मनुष्यों में, (ते) आपकी प्राप्ति के निमित्त, (भूरि) बहुत (सवना) यज्ञ किये जा रहे हैं। (मनीषी) आपके प्रति मनोभावनाओं से प्रेरित हुआ उपासक, (भूरि) वार-वार (त्वाम् इत्) आपको ही (हवते) पुकारता है। आप तो (अस्मत्) हमारे (आरे) समीप ही वर्तमान हैं। इसलिये (मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली (ज्योक्) देरी (मा) न (कः) कीजिये, अर्थात् शीघ्र दर्शन दीजिये।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [धा० १५। उ० ३। स्व० २]

सूक्त १४

१ २ ३ १ २र ३ १ २

१८०१—प्र व्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३

अस्माकं बोधि चोदिता नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि

१ २

धन्वसु ॥ १ ॥

हे उपासको! (अस्मै इन्द्राय) इस परमेश्वर के प्रति, (पुरोरथम्) अपने पुरस्कृत-शरीर-रथों समेत (शूषम्) समग्र शक्तियां, (सु) सम्यक् प्रकार से अर्थात् भक्तिभावना पूर्वक, (उ) अवश्य, (प्र अर्चत) पूर्णतया अर्चनारूप में भेंट करो। क्योंकि (अभीके चित्) परमेश्वर जब समीप हो जाता है, अर्थात् जीव और परमेश्वर के बीच स्थित अविद्या का परदा जब अनावृत हो जाता है, तब परमेश्वर (उ) निश्चय से (लोककृत्) आलोक प्रकट कर देता है, और उसके साथ (सङ्गे) सङ्ग हो जाने पर, (समत्सु) देवासुर संग्रामों में (वृत्रहा) वह, आवरण डालने वाले पापों का हनन कर देता है। (अस्माकम्) हमारी स्तुति-प्रार्थना को (बोधि) हे परमेश्वर! आप जानिये, और (चोदिता) हमें प्रेरणाएँ दीजिये। (अन्यकेषाम्) आसुरी विचारों, भावनाओं, और कर्मों के (धन्वसु अधि) धनुषों पर चढ़ीं (ज्याकाः) कमजोर डोरियां (नमन्ताम्) आपकी कृपा से टूट-फूट जायें।

२उ　३ १ २　३ २३ २३१ २
१८०२—त्वँ् सिधूँ्रवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
३ १ २　३ १ २　३ १ २
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
२ ३ १ २　३ १ २　३ १ २　३ २उ　३
तं त्वा परि ष्वजामहे नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि
१ २
धन्वसु ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! (त्वम्) आपने (अधराचः) नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली (सिन्धून्) नदियों का (अवासृजः) सर्जन किया है, और इस निमित्त (अहिम्) मेघों का (अहन्) हनन किया है; तथा आपने (अधराचः) धरातल पर न बहने वाली अपितु शरीर में बहने वाली (सिन्धून्) रक्त-स्यन्दन करने वाली नाड़ियों का सर्जन किया है, और (अहिम्) रक्त-स्यन्दन करने की रुकावटों को (अहन्) दूर किया है, तथा पाप-सांपों का हनन किया है। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! इस कार्य के निमित्त आपका (अशत्रुः जज्ञिषे) कोई शत्रु उत्पन्न नहीं हुआ। आप (विश्वं वार्यम्) वरण करने योग्य सब श्रेष्ठकर्मों को (पुष्यसि) परिपुष्ट करते रहते हैं। (तं त्वा) उस आपका (परि ष्वजामहे) हम पर्यालिङ्गन करते हैं। (नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु) मन्त्र १८०१ के समान अर्थ है।

[अधराचः=अधर (नीचे)+अञ्च् (गतौ)। तथा अधरा (धरातल पर नहीं)+अञ्च्(गतौ)। अहिम्=मेघ (निघं०१।१०)। तथा अहि=अ+हि(गतौ) अर्थात् गति में रुकावट। तथा अहि=सांप (आहन्ति)। रोग, रुकावटें, प्रतिबन्ध, ये पापों के परिणाम हैं।

२र　३ १ २ ३ १ २　३ १ २
१८०३—वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः।
१ २ ३ १ २ ३ १　२र ३ १ २
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघाँसति।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २　३ १ २ ३ २उ ३ १ २
या ते रातिर्ददिवसु नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु
॥ ३ ॥ ॥१४ (टि) ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से (अरातयः) दान-न-देने आदि की, (वि) विविध प्रकार की (विश्वाः) सब (अर्यः) अरिरूप-दुर्वृत्तियां (नशन्त) नष्ट हो जाँय; और (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां, कर्म, और ध्यानवृत्तियां (अर्यः) आपकी ओर प्रगति करें। हे परमेश्वर ! (यः) जो दुर्भाव और दुष्कर्म (नः) हमारी (जिघांसति) हत्या करना चाहता है, उस (शत्रवे) हमारे शत्रु के प्रति, (वधम्) निज शस्त्रास्त्र को आप सदा (अस्ता असि) चलाते रहते हैं। (या) जो (ते) आपकी (रातिः) दान भावना है वह हमें सदा (वसु) ऐश्वर्य (ददिः) प्रदान करती रहती है। (नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु) मन्त्र १८०१ के समान अर्थ है।

[अरातयः=अ+रा (दाने)+ति। अर्यः=ऋ (रेषणे; गतौ च)। जिघांसति में हनन की इच्छा का वर्णन है। काम क्रोध जब हनन करते हैं तब वे अपनी उत्पत्ति में व्यक्ति की इच्छा की अपेक्षा करते हैं, विना इच्छा, हनन नहीं होता]

[घा० ४३। उ० ६। स्व० ३]

सूक्त १५

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

१८०४—रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः।

१ २ ३ १ २

प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥

(हरिवः) अविद्या का अपहरण करने वाले हे परमेश्वर ! (सुतस्य) स्तोता की स्तुतियों द्वारा प्रेरित हुए, (त्वावतः) आप-सदृश (रेवतः) आध्यात्मिक-सम्पत्ति शाली, तथा (मघोनः) सांसारिक-सम्पत्तिशाली का (स्तोता) स्तोता, (इत्) अवश्य (रेवान्) दोनों प्रकार की सम्पत्तियों वाला (प्रस्यात्) हो जाता है,—यह (उ) निश्चित है।

[इत्=एव (निरु. ११।४।४५)]

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

१८०५—उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।

१ २ ३ २ ३ १ २

न गायत्रं गीयमानम् ॥ २ ॥

(अगोः) जो वास्तव में स्तोता नहीं, अर्थात् जो श्रद्धापूर्वक स्तुतियां नहीं करता, उसके (शस्यमानम्) उच्चारित (उक्थम्) स्तुतिपरक सूक्तों पर (चन) भी (अयिः) सर्वगत परमेश्वर (न आचिकेत) नहीं ध्यान देता, और (न) न (गीयमानम्) गाए जाते हुए (गायत्रम्) गायत्र आदि साम गानों पर ही ध्यान देता है।

[अगोः=अ+गौः (स्तोता, निघं० ३।१६)। अयिः=अय् गतौ]

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

१८०६—मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः।

१ २ ३ १ २

शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ ३ ॥ ॥ १५ (ति) ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हमारी (पीयत्नवे) हिंसा करने वाले काम-क्रोध आदि के (मा परा दाः) पराधीन हमें न होने दीजिये, अपितु (शर्धते) शक्तिशाली भी इन काम-क्रोध आदि के (मा परादाः) पराधीन हमें न होने दीजिये अपितु (शचीवः) हे शक्तिशाली ! (शचीभिः) निज शक्तियों द्वारा (शिक्ष) हमें शिक्षा देते रहिये, ताकि हम इनके पराधीन न होने पाएँ।

[घा० १४। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १६

१२ ३१२३२३१ २ ३ २
१८०७—एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ।। १ ।।

(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (हरिभिः) ऋक्-और-साम की स्तुतियों द्वारा आप (आ याहि) आइये, प्रकट हूजिये । (कण्वस्य) आपकी भक्ति के रसीले-कणों, तथा पराविद्या के ज्ञान-कणों का जो उपार्जन करता है उसकी (सुष्टुतिम्) उत्तम-स्तुतियों को आप (उप) समीप होकर सुनिये । (दिवावसो) हे परमेश्वर के प्रकाश के साथ बसने वाले उपासक ! (दिवः) प्रकाशमान द्युलोक का जो (शासतः) शासन कर रहा है (अमुष्य) उसके (दिवम्) दिव्य प्रकाश की ओर तू (यय) जा, प्रगति कर ।

[हरिभिः="ऋक्सामे वा इन्द्रस्य" [ऐत. ब्रा. २।२४]

२ ३ २ ३१२३२३१२ ३ १२
१८०८—अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ।। २ ।।

(अत्र) इसी जीवन में (नेमिः) जगन्नायक, (एषाम्) इन आसुरी भावों की शक्तियों को (विधूनुते) कम्पा देता है, (न) जैसे कि (वृकः) भेड़िया (उराम्) भेड़ों को (विधूनुते) कम्पा देता है । (दिवावसो) हे परमेश्वर के प्रकाश के साथ बसने वाले उपासक ! (दिवः) प्रकाशमान द्युलोक का जो (शासतः) शासन कर रहा है, (अमुष्य) उसके (दिवम्) दिव्य प्रकाश की ओर तू (यय) जा, अधिकाधिक पग बढ़ाते जा ।

२ ३ २ ३ १२३२ ३ १ २२
१८०९—आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ३ ।। १६ (ब) ।।

हे उपासक ! (सोमी) भक्तिरस का स्वामी (ग्रावा) उपदेशक गुरु, (इह) इस जीवन में, (त्वा) तुझे (वदन्) उपदेश देता हुआ, (घोषेण) और तुझ में अन्तर्नाद प्रकट करता हुआ, (आ वक्षतु) तुझे अपनी शिष्यता में लेवे । (दिवावसो) हे परमेश्वर के प्रकाश के साथ बसने वाले उपासक ! (दिवः) प्रकाशमान द्युलोक का जो (शासतः) शासन कर रहा है (अमुष्य) उसके (दिवम्) दिव्य प्रकाश की ओर तू (यय) जा, उसकी ओर अधिकाधिक पग बढ़ाते जा ।

[धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १]

सूक्त १७

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१८१०—पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥

(सोम) हे मेरे भक्तिरस ! तू (मन्दयन्) प्रसन्न करता हुआ, (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये, (पवस्व) प्रवाहित हो जा। (मधुमत्तमः) तू परमेश्वर के लिये अति मधुर रूप है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१८११—ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ २ ॥

(ते) वे (शुक्राः सुतासः) उत्पन्न सात्विक भक्तिरस (विपश्चितः) आध्यात्मिक-वेपनों का चयन करते, वेपनों को अधिकाधिक बढ़ाते और अन्तर्नाद पैदा करने वाली (वायुम्) वायु का (असृक्षत) सर्जन करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१८१२—असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ ३ ॥ ॥१७ (रौ)॥

(देववीतये) परमेश्वर-देव की प्राप्ति के लिये, ये भक्तिरस (असृग्रन्) प्रकट हुए हैं, और ये भक्तिरस (रथा इव) रथों के सदृश (वाजयन्तः) हम में वेग प्रदान करते हैं।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ [धा० ८। उ० नास्ति। स्व० नास्ति]

सूक्त १८

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २ ३

१८१३—अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं

२ ३ २ ३ १ २

विप्रं न जातवेदसम्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

य ऊर्ध्वरो स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

(अग्निम्) जगन्नेता परमेश्वर को (वसोः) सम्पत्तियों का (होता) अदनकर्त्ता अर्थात् प्रलयकर्त्ता, तथा (दास्वन्तम्) सम्पत्तियों का दाता; (सहसः) आध्यात्मिक-साहस से धैर्य और प्रयत्न से (सूनुम्) प्रकट हुआ; और (विप्रं न) बुद्धिमानों के सदृश (जातवेदसम्) प्रज्ञावान् (मन्ये) मैं मानता हूं, अवश्य (विप्रं न) बुद्धिमानों के सदृश (जातवेदसम्) प्रज्ञावान् मानता हूँ। (यः) जो (देवः) परमेश्वर-देव (ऊर्ध्वया) ऊपर के (देवाच्यः) चमकते नक्षत्रों में पहुंची हुई (कृपा) अपनी कृपा या सामर्थ्य के कारण (स्वध्वरः) उत्तम प्रकार से संसार-यज्ञ का रचयिता है, वह (आजुह्वानस्य) आहुतिरूप में डाले गए (सर्पिषः घृतस्य) पिघले घी की (शुक्रशोचिषः) चमकती ज्योति की (विभ्रष्टिम्) समुज्ज्वल-दीप्ति के (अनु) सदृश देदीप्यमान है।

१ २ ३ १२ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३
१८१४—यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभि-
१ २ ३ १ २
विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
१ २ ३ १ २र ३ २
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
३ १२ ३ १२ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

हे परमेश्वर! (यजमानाः) उपासना-यज्ञ के करने वाले हम उपासक, (यजिष्ठम्) उपासना-यज्ञ को सफल बनाने वाले (त्वा) आपका (हुवेम) आह्वान करते हैं; (अङ्गिरसाम्) अङ्गों के जीवनीय-रसों में आप (ज्येष्ठम्) सर्वश्रेष्ठ जीवनी-रस हैं। (विप्र) हे मेधाविन्! (मन्मभिः) मनन के साधन मन्त्रों द्वारा, तथा (विप्रेभिः) उपासना-यज्ञ के विद्वानों के सहयोग द्वारा, हम आपका आह्वान करते हैं। (शुक्र) हे शुभ ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर! (मन्मभिः) श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा हम आपका आह्वान करते हैं। (परिज्मानम् इव) चन्द्र के सदृश, तथा (द्याम्) सूर्य और द्युलोक के सदृश (शोचिष्केशम्) चमकती किरणों वाले, (चर्षणीनाम्) मनुष्यों को (होतारम्) सब कुछ देने वाले, (वृषणम्) सुख और कल्याण की वर्षा करने वाले (यम्) जिस परमेश्वर को (इमाः विशः) ये उपासक-प्रजाजन (प्रावन्तु) प्राप्त होते हैं, (विशः) प्रजाजन (जूतये) जीवनों में प्रगति की प्राप्ति के लिये जिसे प्राप्त होते हैं, उस परमेश्वर का हम आह्वान करते हैं।

[परिज्मानम्=ज्मा (पृथिवी) के (परि) चारों ओर गति करने वाला चान्द]

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
१८१५—स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः
२ ३ १ २र ३ २
परशुर्न द्रुहन्तरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥१८(टी)॥

(सः हि) वह परमेश्वर, निश्चय से, (विरुक्मता ओजसा) विशेष ज्योति सम्पन्न ओज द्वारा (पुरुचित्) बहुत (दीद्यानः) प्रदीप्त होता हुआ, (द्रुहन्तरः) हमारे द्रोह आदि दुर्भावों का विनाशकारी (भवति) होता है, (न) जैसे कि (परशुः) कुल्हाड़ा (द्रुहन्तरः) द्रोहकारी शत्रुओं का विनाशकारी होता है। (यस्य) जिस परमेश्वर के (समृतौ) संगम हो जाने पर, (वीडुचित्) सुदृढ़ कुवासनाएं भी, तथा (यत्) जो (स्थिरम्) जन्मजन्मान्तरों से स्थिर अविद्या भी, (वना इव) पानी की तरह (श्रुवत्) बह जाती है, वह परमेश्वर (निष्षहमानः) इन सबका पूर्ण

पराभव करता हुआ (यमेत) इनका नियमन कर देता है, (न अयते) इस काम से वह पीछे नहीं हटता, (धन्वासहाः) धनुषद्वारा शत्रुओं का पराभव करने वाला वीर योद्धा जैसे (न अयते) युद्ध में पीछे नहीं हटता।

[श्रुवत्=स्रु (स्रवण करना, बहना)+वत्। वना=वनानि; वनम्=उदकम् (निघं० १।१२)]

[धा० ४३। उ० २। स्व० ४]

इति नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥



[२]

अथ नवमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ९—२ ॥

(१—१३) १ अग्निः पावकः; २ सोभरिः काण्वः; ३ अरुणो वैतहव्यः; ५—६ अवत्सारः काश्यपः; ९ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौः; १० त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा; ११ उलो वातायनः; १३ वेनो भार्गवः; ४, ७, ८, १२। १—४, ७—८, १२ अग्निः; ५—६ विश्वे देवाः; ९ इन्द्रः, १० आपः; ११ वायुः १३ वेनः, १ (१—२) विष्टारपंक्तिः; १ (३—५) सतोबृहती, १ (६) उपरिष्टाज्ज्योतिः, २ काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); ३ जगती; ५—६, १३ त्रिष्टुप्; ४, ७—११, गायत्री; ४, ७, ८, १२।

सूक्त १

२ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ १

१८१६—अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप जगन्नेता! (तव) आप का (श्रवः) यश, और आपकी (वयः) सम्पत्ति, (महि) महान् है। (विभावसो) हे प्रकाशधनी! आपकी (अर्चयः) प्रकाश ज्वालाएँ (भ्राजन्ते) सूर्य, चन्द्र तथा तारागणों में प्रदीप्त हो रही हैं। (बृहद्भानो) हे बड़े-बड़े सूर्यों के स्वामिन्! (कवे) हे वेद काव्यों के कवि! आप (शवसा) आध्यात्मिक बल के साथ-साथ, (दाशुषे) आत्मसमर्पक के लिये, (उक्थ्यं वाजम्) वेदोक्त ज्ञान (दधासि) प्रदान करते हैं।

[वयः=अन्नम् (निघं० २।७)]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१८१७—पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥

हे प्रकाशमय जगन्नेता ! (पावक वर्चाः) आप का प्रकाश पवित्र करने वाला है, (शुक्रवर्चाः) आप का प्रकाश निर्मल है, (अनूनवर्चाः) सूर्यादि प्रकाशमान पिण्डों से आप का प्रकाश न्यून नहीं है, (भानुना उदियर्षि) सूर्योदय होते मानो आप ही उदित होते हैं। (विचरन्) विचरता हुआ युवा (पुत्रः) पुत्र जैसे (मातरा) माता पिता की रक्षा करता तथा उन की पालना करता है, वैसे आप संसार में विचरते हुए (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक-और-भूलोक की (उपावसि) अपने सामीप्यपन से रक्षा करते हैं और (पृणक्षि) पालना कर रहे हैं।

१ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २

१८१८—ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।

२उ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २

त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३ ॥

(ऊर्जः न पात्) उपासकों की शक्तियों को न गिरने देने वाले हे प्रकाशमय जगन्नेता !, (जातवेदः) हे वेदों के प्रवक्ता !, (सुशस्तिभिः) हमारे उत्तम-कीर्तनों द्वारा (मन्दस्व) आप प्रसन्न हूजिये, आप (धीतिभिः) धारणा-ध्यान आदि साधनों द्वारा हमारे हृदयों में (हितः) निहित हो चुके हैं। (भूरि वर्पसः) नाना रूपों वाले (चित्रोतयः) विचित्र प्रकार से अर्थात् अपने-अपने ढंग से प्रजाजनों की रक्षा करने वाले, तथा (वामजाताः) द्विजन्मारूप से "प्रशंसनीय जन्मों वाले" उपासकों ने, (इषः) अपनी-अपनी इच्छाओं और अभिलाषाओं को, (त्वे) आप के प्रति, (सं दधुः) समर्पित कर रखा है।

३ १ २   ३ १ २ ३ १   २र

१८१९—इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १   २र

स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥ ४ ॥

(अमर्त्य अग्ने) हे अमर जगन्नेता ! (जन्तुभिः) जन्मधारी उपासकों द्वारा (इरज्यन्) शोभा प्राप्त आप, (अस्मे) हम उपासकों में (रायः) आध्यात्मिक-विभूतियों का (प्रथयस्व) विस्तार कीजिये। हे जगन्नेता ! (सः) वह आप, (दर्शतस्य) दृष्टिगोचर (वपुषः) हम उपासकों के शरीरों के भी (वि राजसि) राजा बन चुके हैं, या दर्शनीय विराट्-जगत्रूपी अपने शरीर के आप राजा हैं, और (दर्शतम्) दर्शनीय (क्रतुम्) उपासना-यज्ञों के (पृणक्षि) पालक तथा पूर्ण करने वाले हैं।

[वपुषः=वेदों में जगत् को परमेश्वर के देहरूप में वर्णित किया है। देखो यजु० ३१।१२, १३)। यह देहवर्णन कल्पनारूप ही है ',व्यकल्पयन्" (यजु० ३१। १३)। कल्पना यह दर्शाने के लिये की गई है कि यह सिद्धान्त आसानी से बुद्धिगत किया जा सके कि जैसे प्रत्येक देह में जीव आत्मा और उसकी इच्छा, ज्ञान, और प्रयत्न द्वारा कार्य हो रहे हैं, वैसे ही जगत् में भी महान् आत्मा, उसकी इच्छा, ज्ञान और प्रयत्न कार्य कर रहे हैं]।

३ १२ ३ ३१२ ३१२३ १२ ३२
१८२०—इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तँ राधसो महः ।
३ २ ३१२ ३१२३२र ३१२ ३२ ३२
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिँ रयिम् ॥५॥

(इष्कर्तारम्) उपासकों के अभीष्टों को सफल करने वाले, (अध्वरस्य) हिंसारहित उपासना-यज्ञ के रहस्यों को (प्रचेतसम्) चेताने वाले, (महः राधसः) महाधन अर्थात् मोक्ष के (क्षयन्तम्) निवासभूत, (वामस्य) याचनीय अर्थात् मोक्ष-धन के (रातिम्) दाता [अग्नि सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः, (मन्त्र १८२१ से)] जगन्नेता को, सुख के लिये, उपासकजन सदा अपने सामने रखते हैं। क्योंकि हे परमेश्वर ! आप (सुभगाम्) सौभाग्यसम्पन्न, (महीम् इषम्) उपासकों की महाभिलाषा को, मोक्षाभिलाषा को, (दधासि) सदा अपने विचार में रखते हैं, और उनके (सानसिम्) सम्यक् भक्तिरूपी (रयिम्) धन को भी सदा अपने विचार में रखते हैं।

[क्षयन्तम्=क्षि निवासे। वामस्य=वनु याचने। सानसिम्=षण् संभक्तौ =सम्यक् भक्ति]

३ १ २ ३२ ३१२ ३ २ ३१२ ३१
१८२१—ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निँ सुम्नाय दधिरे पुरो
२र
जनाः ।
१ २ ३१२ ३२उ ३ १ २ ३२
श्रुत्कर्णँ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा
॥ ६ ॥ ॥ १(दि)॥

(ऋतावानम्) सांसारिक-नियमों के नियन्ता तथा सत्यस्वरूप, (महिषम्) महान् तथा पूजनीय, (विश्वदर्शतम्) सब के लिये दर्शनीय (अग्निम्) जगन्नेता को (जनाः) उपासक-जन, (सुम्नाय) सुख और प्रसन्नता की प्राप्ति के लिये, सदा (पुरः) अपने सामने (दधिरे) रखते हैं, सदा उसे ध्यान में रखते हैं। तथा (मानुषाः युगाः) मानुष-जोड़े अर्थात् पति-पत्नी या स्त्री-पुरुष भी (श्रुत्कर्णम्) स्तुति-प्रार्थनाओं के सुनने वाले, (सप्रथस्तमम्) सर्वव्यापक, (दैव्यम्) देवाधिदेव (त्वा) आप को (गिरा) वैदिक स्तुति मन्त्रों द्वारा (दधिरे) सदा ध्यान में रखते हैं।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥ [धा० ५६। उ० ३। स्व० ३]

सूक्त २

१ २र३ २३ १२ ३१२ ३१२
१८२२—प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
२ ३ २ ३१ २र
यस्य त्वँ सख्यमाविथ ॥ १ ॥

(अग्ने) हे सर्वाग्रणी ! (यस्य) जिस उपासक के (सख्यम्) सखिभाव को (त्वम्) आप (आविथ) प्राप्त कर लेते हैं, (सः) वह उपासक, (तव) आप की

(ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा, (प्रतरति) तर जाता है, भवसागर से पार हो जाता है, जो रक्षाएँ कि (सुवीराभिः) उपासक को अपने कर्तव्यों में वीर बनाती, तथा (वाजकर्मभिः) ज्ञान-और-कर्म का मार्ग दर्शाती हैं।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१८२३—तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि
॥ २ ॥ ॥ २(यी) ॥

(सिष्णो) अपने आनन्दरस में स्नान कराने वाले हे सर्वाग्रणी ! (नीलवान्) नीले आकाश में रहने वाला, (ऋत्वियः) ऋतुओं का निर्माण करने वाला (इन्धानः) प्रकाश देने वाला, (वाशः) कान्तिमान (तव द्रप्सः) आपका सूर्य है, (आ ददे) उसे मैं जीवन में आदर्श रूप में ग्रहण करता हूं, आदित्य ब्रह्मचारी बन कर सूर्य की तरह कान्तिमान् होता हूं। हे सर्वाग्रणी ! (महीनाम् उषसाम्) विस्तृत-उषाओं सम्बन्धी (प्रियः) प्रियदर्शी सूर्य के सदृश (त्वम् प्रियः) आप प्रियरूप हैं, (क्षपः) रात्रि काल में (वस्तुषु) द्युलोक में बसने वाले तारागणों में (राजसि) आप ही प्रदीप्त हो रहे हैं।

[द्रप्सः=असौ वा आदित्यो द्रप्सः (शत० ७।४।१।२०)। द्रप्सः=द्रा (अन्धकार का विद्रावण करने वाला,+प्सा (रोगकीटाणुओं का भक्षण करने वाला "प्सा भक्षणे")]

[घा० १२। उ० नास्ति। स्व० ४]

सूक्त ३

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१८२४—तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा
॥ १ ॥ ॥३(रि) ॥

(ओषधीः) ओषधियां (ऋत्वियम्) अपने ऋतुकाल में (तम्) उस सर्वाग्रणी को (गर्भम्) गर्भरूप में (दधिरे) धारण करती हैं, (आपः) जल (तम्) उसी (अग्निम्) सर्वाग्रणी को, ऋतुकाल में, गर्भरूप में धारण करते हैं, (मातरः) माताएँ ऋतुकाल में उसी सर्वाग्रणी को गर्भरूप में धारण कर (जनयन्त) कालान्तर में सन्तान पैदा करती हैं। (वनिनः) वन की (वीरुधः) लताएँ भी (तम् इत्) उस ही (समानम्) एक सर्वाग्रणी को गर्भरूप में धारण कर (अन्तर्वतीः) गर्भवती होती हैं, (च) और (विश्वहा) अपने-अपने दिनों में (सुवते च) प्रसूता होती हैं।

[अभिप्राय यह है कि उत्पत्ति में, परमेश्वरीय-शक्ति ही, बीज और फल रूप में, प्रकट हो रही हैं]

[घा० १३। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ४

३ १ २र ३ २ ३ १ १र
१८२५—अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति ।
१२ ३ १ २
महिषीव वि जायते ॥ १ ॥ ॥ ४(या) ॥

(अग्निः) प्रकाशस्वरूप जगन्नेता (इन्द्राय) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा के लिये, (पवते) क्रियाशील हो रहा है। तथा (शुक्रः) निर्मल प्रकाश वाला जगन्नेता (दिवि) द्युलोक में (विराजति) विराज रहा है, और यही जगन्नेता (महिषी इव) महाशक्ति के रूप में (वि जायते) विविध रूपों में प्रकट हो रहा है।

[पवतेः—समग्र जड़ जगत्, जीवात्माओं के कर्मफलों के अनुसार, जीवात्माओं के अभ्युदय और निःश्रेयस के लिये है। इस प्रकार परमेश्वर जो जगत् में क्रियाशील हो रहा है, इसमें, जीवात्मा की अभ्युन्नति और निःश्रेयस ही प्रेरक हैं]

[धा० ७। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ५

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३२ ३१३ १२
१८२६—यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २३१२ ३ १ १
यो जागार तमयँ सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः
॥ १ ॥ ॥ ५ (या) ॥

(यः) जो उपासक अपने कर्तव्यों में (जागार) जागरूक रहता है, सदा कर्तव्यपालन में तत्पर रहता है, (ऋचः) वैदिक मन्त्र (तं कामयन्ते) उसकी कामना करते हैं। (यः) जो उपासक (जागार) अपने कर्तव्यों में जागरूक रहता है, सदा कर्तव्य पालन में तत्पर रहता है, (सामानि) सामगान (तम् उ) उसे ही (यन्ति) प्राप्त होते हैं। (यः) जो उपासक (जागार) अपने कर्तव्यों में जागरूक रहता है, सदा कर्तव्यपालन में तत्पर रहता है (तम्) उसके प्रति (अयं सोमः) यह सर्वप्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक परमेश्वर मानो (आह) कहता है कि "(अहम्) मैं (तव) तेरे साथ (सख्ये) सखिभाव के निमित्त (न्योकाः) तेरे हृदय-गृह में नियतरूप में (अस्मि) रहता हूं"।

[अभिप्राय यह है कि ऋचाओं और सामगान द्वारा की गई उपासनाओं का फल उसे ही प्राप्त होता है जोकि अपने इस कर्तव्यपालन में सदा सावधान रहता है, और ऐसे उपासक को परमेश्वर सदा सत्प्रेरणाएँ देता रहता है।]

[धा० ७। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ६

३ १२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ १२
१८२७—अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
३ १२ ३ २३१ २र ३२ ३१२ ३१ २
अग्निर्जागार तमयँ सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ६ (वा) ॥

(अग्निः) अग्नि (जागार) जागरूक रहता है, (ऋचः) वैदिक मन्त्र (तं कामयन्ते) उसकी कामना करते हैं। (अग्निः) अग्नि (जागार) जागरूक रहता है, (सामानि) सामगान (तम् उ) उसे ही (यन्ति) प्राप्त होते है। (अग्निः) अग्नि (जागार) जागरूक रहता है (तमयं न्योकाः) पूर्वमन्त्रवत्।

[अग्नि में जो वस्तु डाली जाती है वह वस्तु भी अग्निमय हो जाती है। मन्त्र में "अग्निपद" का अर्थ हैं "प्रकाशस्वरूप जगन्नेता"। जिस उपासक ने इस अग्नि में आत्मसमर्पण कर दिया है, आत्माहुति दे दी है, वह उपासक भी अग्निमय हो जाता है। ऐसे उपासक को मन्त्र में "अग्नि" कहा है। जैसे कहा कि "तदपश्यत्, तदभवत्, तदासीत्" (यजु० ३१।१२)] अर्थात् उपासक जन परमेश्वर का दर्शन पा लेता है, तो वह तद्रूप हो जाता है, क्योंकि वैसा वह स्वभावतः ही है। प्रकृति में लिप्त होने के कारण वह अतद्रूप हो जाता है]

[घा० १०। उ० नास्ति। स्व०२]

सूक्त ७

१२ ३१२ ३२ ३१२ ३१२
१८२८—नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः।
३ १ २र ३१२
युञ्जे वाचँ शतपदीम् ॥ १ ॥

(पूर्वसद्भ्यः) मुझ उपासक से पहिले के उपासक, जोकि उपासना में स्थिरता को प्राप्त हो चुके हैं, (सखिभ्यः) और जो परमेश्वर के साथ सखिभाव को प्राप्त हो चुके है, उनके प्रति, (नमः) मैं नमस्कार करता हूं। (साकंनिषेभ्यः) और मेरे साथ उपासना में बैठे हुए जो उपासक, उपासना में स्थिरता को प्राप्त कर चुके हैं, और परमेश्वर के साथ सखिभाव को प्राप्त हो चुके हैं, उनके प्रति भी, (नमः) मैं नमस्कार करता हूं। और मैं उपासक, (शतपदीं वाचम्) अपरिमित पदों वाली वेदवाणी का (युञ्जे) योग साधना के लिये प्रयोग कर रहा हूं।

३ १ २र ३१२३१२३१२
१८२९—युञ्जेवाचँ शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि।
३ १ २र ३१२
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥

मैं उपासक, (शतपदीं वाचम्) अपरिमित पदों वाली वेदवाणी का (युञ्जे) योगसाधना के लिये प्रयोग करता हूं, और (सहस्रवर्तनि) हजारों प्रकार के राग-रागिणियों से युक्त (गायत्रम्) गायत्री छन्द पर गाए गए गायत्रसाम, (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुभ् छन्द पर गाए गए त्रैष्टुभ् साम, और (जागतम्) जगतीछन्द पर गाए गए जागतसाम (गाये) गाता हूं।

[कहा भी है कि सहस्रवर्त्मा सामवेदः]

३१ २र ३२३१२ ३२३ १२
१८३०—गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
३१ २र ३१
देवा ओकांसि चक्रिरे ।। ३ ।। ।।७ (यु) ।।

(गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्) गायत्रसाम, त्रैष्टुभसाम और जागतसाम,—(विश्वा) अन्य सामों या राग-रागिणियों के (रूपाणि) स्वरूपों के (सम्भृता) संग्रहात्मक हैं, अर्थात् इन तीन सामगानों में अन्य सामगानों का समावेश है। (गाये) मैं उपासक इन का गान करता हूं [मन्त्र १८२९ से अन्वय]। परिणामतः (देवाः) दिव्य शक्तियों ने मुझे (ओकांसि) अपना घर बना लिया है।

[ओकांसि=अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या (अथर्व० १०।२।३१)। सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्" । अथर्व० ११।८।१३)। गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् (अथर्व० ११।८।१८)। सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते (अथर्व० १८।८।३२)]

[धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ५]

सूक्त ८

१ २उ ३ १२३२उ ३ २३ २३१२
१८३१—अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
२३ २३ २३ १२
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ।।

(अग्निः) अग्नि (ज्योतिः) ज्योतिरूप है, (ज्योतिः) ज्योति (अग्निः) अग्निरूप है। (इन्द्रः) इन्द्र (ज्योतिः) ज्योतिरूप है, (ज्योतिः) ज्योति (इन्द्रः) इन्द्ररूप है। (सूर्यः) सूर्य (ज्योतिः) ज्योतिरूप है, (ज्योतिः) ज्योति (सूर्यः) सूर्यरूप है।

(१) अग्नि=ज्योति
ज्योति=अग्नि

(२) इन्द्र=ज्योति
ज्योति=इन्द्र

(३) सूर्य=ज्योति
ज्योति=सूर्य

[अभिप्राय यह है कि (१) अग्नि, इन्द्र (विद्युत्), सूर्य एक ही ज्योति के परिणामरूप हैं। (२) अग्नि, इन्द्र, और सूर्य,—ये नाम, मुख्यरूप में, एक ही ज्योति-स्वरूप परमेश्वर के हैं]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
१८३२—पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा ।
१ २ ३ १ २
पुनर्नः पाह्यंहसः ।। २ ।।

(अग्ने) हे जगन्नेता ! (पुनः) वार-वार (ऊर्जा) बल और प्राणशक्ति के प्रदान करने के लिये (नि वर्तस्व) आप हमारे अभिमुख हूजिये, (पुनः) वार-वार (इषा) अभीष्टों और (आयुषा) दीर्घ-तथा-स्वस्थ आयु प्रदान करने के लिये आप हमारे अभिमुख हूजिये, (पुनः) वार-वार (अंहसः) पाप से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये।

[अभिमुख होना=प्रत्यक्ष होना। नि वर्तस्व=नितरां पर्तस्व]

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१८३३—सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।। ३ ।। ८ ।। (ठा) ।।

(अग्ने) हे जगन्नेता ! (रय्या) आध्यात्मिक और सांसारिक सम्पत्तियों के साथ (नि वर्तस्व) आप हमारी ओर आइये, और (विश्वतः परि) सब ओर से अर्थात् सब प्रकार से (विश्वप्स्न्या) समग्र-पापों को खा जाने वाली (धारया) अपनी आनन्दरसमयी धारा के साथ आप हमारी ओर आइये।

[प्सा=भक्षणे]

।। इति षष्ठः खण्डः ।।६।। [धा० ८। उ० २। स्व० २]

सूक्त ९

१ २ ३ २उ ३ २र ३ २ ३ २ ३ २
१८३४—यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
३ २ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात् ।। १ ।।

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! (यथा) जैसे (त्वम्) आप (एक इत्) अकेले ही (वस्वः) आध्यात्मिक-और-सांसारिक सम्पत्तियों के अधीश्वर हैं, वैसे (अहम्) मैं उपासक भी (यद्) यदि सम्पत्तियों का अकेला ही (ईशीय) अधीश्वर हो जाऊँ, तो (मे) मेरा स्तोता (गोसखा) वेदों और वैदिक भावनाओं का सखा (स्यात्) हो जाय।

[उपासक उपासना में चिरकाल से लगा हुआ है, परन्तु वेद और वैदिक-भावनाओं के प्रति अभी तक उसमें उग्र-श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई, क्योंकि इस सम्बन्ध में वह अभी तक परमेश्वरीय-कृपा का पात्र नहीं बन पाया। इसलिये परमेश्वर के प्रति उपासक एक प्रकार से शिकायत सी कर रहा है। गौः=वाक् (निघं० १।११)। गोसखा का भाव निम्नलिखित मन्त्र द्वारा स्पष्ट होता हैं। यथाः—यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति। यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न स प्र वेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ (ऋ० १०।७१।६)। इस मन्त्र में वेद को सखा, तथा साथी को पहिचानने वाला कहा है। जब तक मनुष्य वेद का सखा नहीं बनता, तब तक वह वेद के रहस्यार्थों को नहीं जान सकता, और न उसमें वेद और वैदिक भावनाओं के प्रति श्रद्धा और निष्ठा ही पैदा हो सकती है। इसके लिये परमेश्वरीय-कृपा की भी आवश्यकता होती है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१८३५—शिक्षेयमस्मै दित्सेयँ शचीपते मनीषिणे।

२ ३ १ २र ३ २

यदहं गोपतिः स्याम्॥ २॥

(शचीपते) हे प्रज्ञा-वाणी-शक्तियों के पति! (यद्) यदि (अहम्) मैं (गोपतिः) प्रज्ञा-वाणी, तथा पृथिवी का स्वामी (स्याम्) होता, तो मैं (मनीषिणे) बुद्धिमान्-और-मनस्वी (अस्मै) अपने इस भक्त के लिये (शिक्षेयम्) शिक्षा प्रदान करता, और (दित्सेयम्) इसे धनादि का दान भी करता।

[परन्तु आप अपने भक्त के लिये न तो आध्यात्मिक प्रशिक्षण कर रहे हैं, और न कोई आध्यात्मिक-सम्पदा ही दे रहे हैं,—भक्त का यह उपालम्भ परमेश्वर के प्रति है]

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

१८३६—धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।

१ २र ३ १ २

गामश्वं पिप्युषी दुहे॥ ३॥ ॥९(पि)॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! (ते) आप की (धेनुः) वेदवाणीरूपी दुधार-गौ ज्ञान-दुग्ध प्रदान करती है, (सूनृता) प्रिय है, तथा सत्यरूपा है, (पिप्युषी) स्वाध्याय के प्रेमी को खूब बढ़ाती, तथा (सुन्वते) आप के प्रति भक्तिरस समर्पित करने वाले (यजमानाय) उपासना-यज्ञ के कर्त्ता के लिये (गाम्) इन्द्रिय-शक्तियों और (अश्वम्) मनोबल का (दुहे) दोहन करती है।

[धेनुः=वाङ् नाम (निघं०१।११)। [धा० १५। उ० १। स्व० ३]

सूक्त १०

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१८३७—आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।

३ १ २र ३ १ २

महे रणाय चक्षसे॥ १॥

(आपः) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! आप (हि) निश्चय से (मयोभुवः स्थ) सुख-शान्ति प्रदाता हैं, (ताः) वे आप, (ऊर्जे) बल और प्राणशक्ति की प्राप्ति के लिये, (नः) हमारा (दधातन) धारण-पोषण कीजिये, तथा (महे रणाय) आसुरी-शक्तियों के साथ महायुद्ध के लिये, और (चक्षसे) आप के दर्शन के लिये हमारा धारण-पोषण कीजिये।

[आपः=आप्लृ व्याप्तौ। तथा यजुर्वेद में (३२।१) में परमेश्वर के नामों में "आपः" शब्द भी है। यथा "तदेवाग्निस्तदादित्यः तद्वायुः तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥" आपः का अर्थ जल भी है। मन्त्र में जल-चिकित्सा के भी लाभ दर्शाए हैं, (१) सुखशान्ति की प्राप्ति रोगनिवारण द्वारा, (२) बल प्राप्ति तथा प्राणशक्ति की परिपुष्टि, (३) चक्षु की महा रमणीयता]

२ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१८३८—यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
३ १ २ ३ १ २
उशतीरिव मातरः॥ २॥

हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (वः) आप का (यः) जो (शिवतमः) अत्यन्त कल्याणकारी (रसः) आनन्दरस है, (तस्य) उसका (नः) हमें, (इह) इसी जीवन में, (भाजयत) भागी बनाइये, (इव) जैसे कि शिशु का कल्याण (उशतीः) चाहती हुई (मातरः) माताएँ, शिशु को अपने दुग्ध रस का पान कराती हैं।

[जल-चिकित्सा की दृष्टि से जलरस स्वास्थ्य के लिये कल्याणकारी है]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१८३९—तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
१ २ ३ १ २
आपो जनयथा च नः॥ ३॥ ॥१० (वा)॥

(आपः) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! हम उपासकों में (यस्य) जिस आनन्दरस के (क्षयाय) निवास करने के लिये आप हमें (जिन्वथ) प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखते हैं, (तस्मै) उस आनन्दरस की प्राप्ति के लिये हम (वः) आप को (अरङ्गमाम) पूर्णतया प्राप्त होते हैं। (नः) आप हमें (जनयथ) नया आध्यात्मिक-जन्म दीजिये, आध्यात्मिक दृष्टि से आप हमें द्विजन्मा बनाइये।

[जलचिकित्सा की दृष्टि से "क्षयाय" का अर्थ है रोगक्षय, रोगविनाश। तथा "जनपथ" का अर्थ है जननशक्ति का प्रदान, अर्थात् नपुंसकता का विनाश]

[धा० १०। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ११

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
१८४०—वात आ वातु भेषजँ शम्भु मयोभु नो हृदे।
२ ३ १ २
प्र न आयूँषि तारिषत्॥ १॥

(वातः) सर्वगत तथा अविद्यानाशक परमेश्वर (भेषजम्) ऐसी महौषध (आ वातु) हमें प्रदान करे जो कि हमें (शम्भु) शान्तिप्रदान करे और जो (नः) हमारे (हृदे) हृदयों के लिये (मयोभु) सुख प्रदान करे, और (नः) हमारी (आयूँषि) आयुओं को (प्र तारिषत्) बढ़ाए।

[भेषजम्=आध्यात्मिक दृष्टि से यह महौषध है "परमेश्वरीय-आनन्दरस"। वातः=गतौ, गन्धने (विनाशने)]

अथवा

वातचिकित्सा अर्थात् शुद्धवायु का सेवन तथा प्राणायाम की दृष्टि से :—

हे परमेश्वर! आप की कृपा से (वातः) वायु हमारे लिये (भेषजम्) औषध (आ वातु) बहा लाए, जो औषध कि (नः) हमारे (हृदे) हृदयों के लिये (शम्भु) शान्ति पैदा करने वाली हो, तथा (मयोभु) सुख पैदा करने वाली हो, और जो (नः) हमारी (आयूँषि) आयुओं को (प्र तारिषत्) बढ़ाए।

[वायु महौषध लाती है आक्सिजन (oxygen) के रूप में, जो कि रक्त को शुद्ध करती और आयु को बढ़ाती है]

३ १ २ ३ १ २ ३१उ ३ २ ३ १ २
१८४१—उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
१ २ ३ १ २
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

(उत) और (वात) हे सर्वगत, अविद्यानाशक प्राणधार परमेश्वर! आप (नः) हमारे (पिता असि) पिता हैं, रक्षक और पालक हैं, (उत) और (नः) हमारे (भ्राता) भाई हैं, भरण-पोषण करने वाले हैं, (सखा) तथा चेतनरूप से समान-ख्याति वाले मित्र हैं। (सः) वह आप (नः) हमें (जीवातवे) जीवन के लिये (कृधि) समर्थ कीजिये।

[वातचिकित्सा की दृष्टि से शुद्धवायु तथा प्राणायाम, व्यक्ति की रक्षा, पालन, भरण-पोषण करते तथा मित्रवत् हितकारी हैं]

२ ३ १ २ ३ २ऽ २ ३ १ २ ३ १ २
१८४२—यददो वात ते गृहे३ऽमृतं निहितं गुहा।
१ २ ३ १ २
तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ ॥११ (पौ) ॥

(वात) हे सर्वगत, अविद्याविनाशक, प्राणाधार परमेश्वर! (ते) आप के (गृहे) निवासस्थान हृदय-गृह में, आप का (यद्) जो (अदः) वह (अमृतम्) आनन्दरसामृत (गुहा निहितम्) अभी तक हम उपासकों के लिये छिपा पड़ा है, (तस्य) उसका कुछ अंश, (जीवसे) जीवित रहने के लिये (नः) हमें (धेहि) प्रदान कीजिये।

[वातः=जैसे मन्त्र १८३७; १८३८; १८३९ में "आपः" का अर्थ परमेश्वर है। वैसे इन वात मन्त्रों में "वात" का अर्थ भी परमेश्वर है। यजुर्वेद ३२।१ में जैसे परमेश्वर को "आपः" कहा है, वैसे ही परमेश्वर को "वायु" भी कहा है,—"तद्वायुः"। वायु और वात पर्यायवाची है। वैदिक साहित्य के अनुसार परमेश्वर

के प्रत्यक्षीकरण का स्थान है "हृदय" । हृदय, परमेश्वर का निवास स्थान है, गृह है । परमेश्वर अभी तक उपासकों के हृदयों में छिपा पड़ा है, अभी तक उपासकों को परमेश्वर का प्रत्यक्ष नहीं हुआ । साथ ही परमेश्वर का आनन्दरसामृत भी अभी तक हृदयों में छिपा पड़ा है । मन्त्र में उपासक उस आनन्दरसामृत की अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं ।

अथवा

वातचिकित्सा अर्थात् शुद्ध वात के सेवन तथा प्राणायाम की दृष्टि से :—

(वात) हे वायु ! (ते) तेरे (गृहे) घर में अर्थात् अन्तरिक्ष में, (यद्) जो (अदः) वह (अमृतम्) मरने से बचाने वाला तत्त्व, अर्थात् आक्सीजन (oxygen) (गुहा निहितम्) छिपा पड़ा है, (नः) हमारे (जीवसे) जीवित रहने के लिये, (तस्य) उस अमृत तत्त्व का अंश (नः धेहि) हमें प्रदान कर ।

[धा० १० । उ० १ । स्व० नास्ति]

सूक्त १२

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१८४३—अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं
३ २
सुपर्णः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥ १ ॥

हे परमेश्वर ! आप (वाजी) बलवान् हैं, (विश्वरूपः) विश्व को रूप देते हैं, (सुपर्णः) विश्व का उत्तम-पालन करते, (ऋजुः) तथा पापों का भर्जन करते हैं । (जनित्रम्) अपने उत्पत्तिस्थान (हिरण्ययम्) हिरण्यसदृश प्रकाशमान, (अत्कम्) सततगतिशील हृदय का (बिभ्रत्) धारण-पोषण करते हुए, तथा (ऋतुथा) ऋतु-ऋतु के अनुसार परिवर्तनशील (सूर्यस्य भानुम्) सूर्य की प्रभा में (वसानः) बसे हुए आपने (परि) सब ओर (मेधम्) संसार-यज्ञ की (स्वयम्) अपने-आप, बिना किसी की सहायता के, (जजान) रचना की है ।

[सुपर्णः=सु+पृ (पालने) । ऋज्रः=ऋजी भर्जने । अत्कम्=अतनं (सततगमनम्) करोतीति । हृदय की गति उत्पत्ति काल से लेकर मृत्यु पर्यन्त सतत रहती है ।

३ १ २र १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
१८४४—अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य
१ २
रेतः ॥ २ ॥

(विश्वरूपम्) विश्व को रूप देने वाली परमेश्वरीय-शक्ति, (रेतः) बीजरूप में, (अप्सु) जलों में (शिश्रिये) आश्रित है । वही परमेश्वरीय-शक्ति, बीजरूप में, (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी में (यत्) जो (तेजः) अग्नि है, उस रूप में (संबभूव)

प्रकट हुई है। (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (स्वं महिमानम्) अपनी महिमा का (मिमान:) निर्माण करता हुआ परमेश्वर, (वृष्ण:) वर्षा करने वाले (अश्वस्य) सूर्य का भी (रेत:) उत्पादक है। वही परमेश्वर (कनिक्रन्ति) उपासक का भी अपनी ओर आह्वान करता है।

[जलों में परमेश्वरीय-शक्ति, समुद्र, नदियों, सरोवर, बर्फ, ओषधि तथा वनस्पति आदि के रूप में प्रकट हो रही है। वही परमेश्वरीय शक्ति पृथिवी में अग्निरूप में, अन्तरिक्ष में वायु, मानसून, बादल तथा विद्युत् आदि के रूप में प्रकट हो रही है, तथा सूर्य की उत्पादिका है। वही शक्ति उपासक पर भी कृपादृष्टि रखे हुए है। कनिक्रन्ति=क्रद् (आह्वाने)। अश्वस्य="असौ वा आदित्य अश्व:" (तैत्ति० ३।६।२३।२)]

३ ९ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१८४५—अयं॑ सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः

॥ ३ ॥ ॥१२ (पु) ॥

(यज्ञ:) यज्ञ नाम वाला (अयम्) यह परमेश्वर, (परि) सब ओर वर्तमान (युक्ता) आकर्षण शक्ति द्वारा परस्पर सम्बद्ध (सहस्रा) हजारों ताराओं तथा लोक-लोकान्तरों में (वसानः) बस रहा है, और इस ने (सूर्यस्य) सूर्य की (भानुम्) प्रभा को (दाधार) धारण किया हुआ है। यह (शतदाः) सैंकड़ों प्रकार के दान दे रहा, (सहस्रदाः) हजारों प्रकार के दान दे रहा, तथा (भूरिदावा) प्रभूत और अपरिमित प्रकार के दान दे रहा है। (दिव:) यह द्युलोक का (धर्त्ता) धारण-पोषण करता, (भुवनस्य) तथा समग्र भुवनों का धारण-पोषण करता, और (विश्पतिः) समग्र मनुष्यों का स्वामी, रक्षक तथा पालक है।

[धा० २०। उ० १। स्व० ५]

सूक्त १३

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

१८४६—नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं॑ हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१॥

हे परमेश्वर ! (हृदा) हृदय से (वेनन्त:) आप की कामना करते हुए उपासक, (नाके) दुःख-रहित आनन्दमयी अवस्था में, (त्वा) आप का (अभि अचक्षत) प्रत्यक्ष दर्शन कर लेते हैं। उस आप का दर्शन कर लेते हैं जो आप कि (उप) उपासना में (पतन्तम्) उपासकों के हृदयाकाशों में मानो उड़ानें ले रहे होते हैं, जो आपकि (हिरण्यपक्षम्) सुवर्णवर्णी सूर्य-नक्षत्र आदि के मानो पंखरूप हैं, अर्थात् जिस आप की सहायता से ये मानो आकाश में उड़ से रहे हैं, जो आप कि (वरुणस्य) आवरण करने वाली अज्ञानरात्रि के (दूतम्) परितापक हैं, जो आप कि (यमस्य) यमनियमों का पालन करने वाले,

इन्द्रियों और मन के नियन्ता, उपासक के (योनौ) हृदय-गृह में रहते हुए (शकुनम्) उसे शक्तिप्रदान करते हैं, तथा (भुरण्युम्) उसका भरण-पोषण करते हैं।

३ १ २ ३ १२उ ३ १२ ३ २ ३ १
१८४७—ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ् चित्रा
२ ३ १ २
बिभ्रदस्यायुधानि।
१२ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २र
वसानो अत्कं सुरभि दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत
३ १ २
प्रियाणि ॥ २ ॥

(गन्धर्वः) पृथिवी का धारण करने वाला (ऊर्ध्वः) परन्तु पार्थिवभागों से ऊपर उठा हुआ परमेश्वर, (नाके) दुःखरहित निज आनन्द स्वरूप में (अधि अस्थात्) अधिष्ठित रहता है। (प्रत्यङ्) वह प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है। आसुरशक्तियों के विनाश के लिये इसके (आयुधानि चित्रा) आयुध अद्भुत हैं, (बिभ्रत्) जिन्हें कि यह धारण किये हुए है। (दृशे) योगिजनों के दर्शन के लिये परमेश्वर, (अत्कम्) सर्वव्यापी (सुरभिम्) प्रियतम (कम्) आनन्दमय स्वरूप को (वसानः) धारण किये हुए है। (स्वः न) यह सूर्य-सदृश समुज्ज्वल है। वेद इसके (प्रियाणि नाम) प्रिय नामों को (जनत) प्रकट करता है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
१८४८—द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा
१ २
विधर्मन्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि
॥ ३ ॥ ॥ १३ (ख) ॥

(द्रप्सः) आदित्यसमतेजस्वी योगी (यत्) जब (समुद्रम्) आनन्दरस सागर की (अभि) ओर (जिगाति) प्रयाण करता है, तब (वि धर्मन्) विविध जगत् के धारण करने वाले परमेश्वर में स्थित होकर, (गृध्रस्य) अभिकांक्षापूर्ण (चक्षसा) दिव्य-चक्षु द्वारा (पश्यन्) परमेश्वर को देखता रहता है। (शुक्रेण शोचिषा) पवित्र तेज से (भानुः) चमकता हुआ योगी (चकानः) तब तृप्त हो जाता है, और (तृतीये रजसि) चित्त-रञ्जन तृतीय-धाम परमेश्वर में (प्रियाणि) अपनी प्रिय अकांक्षाओं को (चक्रे) पूर्ण कर लेता है।

[द्रप्सः=आदित्य (मन्त्र १८२३)। गृध्रस्य=गृधु अभिकांक्षायाम्। चकानः=चक तृप्तौ।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [धा० २६। उ० २। स्व० ५]

॥ इति नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥९—२ ॥ ॥ इति विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः ।

[३]

अथ नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥९—३॥

(१—३) १—४, ५ (१—२), अप्रतिरथ ऐन्द्रः; ५ (३), ६ (३), ८ (१, ३) पायुर्भारद्वाजः; ७ (१—२) शासो भारद्वाजः; ९ (१) जय ऐन्द्रः; ९ (२—३) गोतमो राहूगणः; ४ (३) ६ (१—२) ...७ (३)...८ (२)...॥ १, २ (२—३), ३—४, ५ (२), ६, ७, ९ (१) इन्द्रः; ५ (२) इन्द्रो मरुतो वा; (१) बृहस्पतिः; ५ (१) अप्वा देवी, ५ (३) इषवः; ६ (३) (संग्रामाशिषः) युद्धभूमि—कवच—ब्राह्मणस्पत्यादितयः; ८ (१, ३ [सग्रामाशिषः १ वर्म-सोम-वरुणाः, ३ देवब्रह्माणि]; ९ सोमावरुणौ। (२—३) विश्वे देवाः; ८ (३)...॥३॥ १-४ ५ (१), ६ (१) ८ (१) ९ (१—२) त्रिष्टुप्; ५ (२—३), ६ (२) ७ (१—२), ८ (२) अनुष्टुप्; ६ (३) पंक्तिः; ९ (३) विराट्स्थाना; ७ (३) विराट् जगती ८ (२)...॥

सूक्त १

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३
१८४९—आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणी-
२
नाम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतँ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (आशुः) सर्वत्र व्याप्त है, और शीघ्र फलदाता है। (शिशानः) परमेश्वर पाप-वृत्रों के विनाश के लिये उपासकों को उग्र बनाता (वृषभो न) तीक्ष्ण सींगों वाले बैल के सदृश (भीमः) पापियों के लिये भयानक, (घनाघनः) अतिशय रूप में पापों का हनन करने वाला, (चर्षणीनाम्) पापी-जनों में (क्षोभणः) क्षोभोत्पादक, (संक्रन्दनः) पापियों को रुलाने वाला, (अनिमिषः) शासन में सदा जागरूक, (एकवीरः) सर्वाधिक वीर, तथा पापों की (शतं सेनाः) सैंकड़ों सेनाओं पर (साकम्) एक साथ (अजयत्) विजय पा लेता है।

[यद्यपि १८४९ से लेकर १८७५ तक के मन्त्र, स्पष्टतया, राजनैतिक युद्ध का वर्णन करते हुए प्रतीत होते हैं, तो भी इन में अन्तर्निहित आध्यात्मिक भावना ही है। देवासुर-संग्राम, आध्यात्मिक-आन्तरिक युद्धों के लिये, वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र वर्णित है, और इस युद्ध में विजय पाने के लिये उपासक के निज-मनोबल, और उपासना द्वारा परमेश्वरीय कृपा की आवश्यकता होती है; देखो, मन्त्र १८७२]

३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१८५०—सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन
३ १ २
धृष्णुना ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २॥

(संक्रन्दनेन) पापियों को रुलाने वाले, (अनिमिषेण) शासन में सदा जागरूक, (जिष्णुना) सदा विजयी, (युत्कारेण) पापों के साथ युद्ध करने वाले, (दुश्च्यवनेन) अविचल, (धृष्णुना) पापों का पराभव करने वाले (इन्द्रेण) परमेश्वर के साहाय्य द्वारा, हे उपासको ! तुम (तत्) उस पाप-शत्रु पर (जयत) विजय पा लो। (युधः नरः) हे धर्मयुद्ध के नायको ! (इषुहस्तेन) केवल इच्छा मात्र द्वारा पापों का हनन करने वाले, (वृष्णा) सुखवर्षी परमेश्वर के साहाय्य से, तुम (तत्) उस पाप-शत्रु का (सहध्वम्) पराभव करो।

[इषु=इष् इच्छायाम्। हस्त=हन् हिंसायाम्]

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
१८५१—स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सँस्रष्टा स युध इन्द्रो
३ १ २
गणेन ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ऽ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सँसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता
॥ ३ ॥ ॥१ (फे) ॥

जैसे (सः इन्द्रः) वह सम्राट् (इषुहस्तैः) इषुधारी तथा (निषङ्गिभिः) खङ्गधारी योद्धाओं द्वारा (वशी) शत्रुओं को वश में करता, और (सः) वह सम्राट् (युधः) युद्धकारी शत्रुओं के (गणेन) गणों के साथ (सं स्रष्टा) स्वयं भी भिड़ जाता है, (संसृष्टजित्) और भिड़ कर उन पर विजय पा लेता है, तथा (बाहुशर्धी) बाहुबलशाली और (उग्रधन्वा) उग्रधनुष्धारी वह सम्राट् (प्रति हिताभिः) शत्रुओं की ओर प्रेरित हुई सेनाओं द्वारा (अस्ता) शत्रुओं को परास्त कर देता है और (सोमपाः) सौम्य प्रकृति प्रजा की रक्षा करता है, वैसे ही (सः इन्द्रः) जगत् का सम्राट् वह परमेश्वर (इषुहस्तैः) प्रबल-इच्छा रूपी-बाणधारी तथा (निषङ्गिभिः) असङ्गरूपी खड्गधारी सन्तों, महात्माओं, योगिजनों द्वारा, (वशी) उपासकों के काम-क्रोध आदि शत्रुओं को (वशी) नियन्त्रित करता है, और (सः) वह परमेश्वर स्वय भी (युधः) युद्धकारी काम-क्रोध आदि के (गणेन) गणों के साथ (सं स्रष्टा) भिड़ जाता है, और (संसृष्टजित्) भिड़े हुए इन शत्रुओं पर विजय पा लेता है, (बाहुशर्धी) बहु बलशाली तथा (उग्रधन्वा) उग्र प्रणव-धनुष् वाला परमेश्वर, (प्रति हिताभिः) प्रेषित-सन्तों आदि की सेनाओं द्वारा (अस्ता) उपासकों के काम-क्रोध आदि शत्रुओं को परास्त कर (सोमपाः) भक्तिरस सम्पन्न तथा सौम्यप्रकृति उपासकों की रक्षा करता है।

[वैदिक साहित्य में इषु तथा धनुष का अप्राकृतिक स्वरूप भी माना है। यथाः—ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवेत्ता की जिह्वा को ज्या, हृदय-बल को धनुष् कहा है

(अथर्व० ५।१८।८); इसी प्रकार ब्राह्मण की वाणी को घोरा-इषु कहा है (अथर्व० ५।१८।१५)। इसी प्रकार प्रणव अर्थात् ओ३म् को धनुष् तथा जीवात्मा को शर अर्थात् इषु कहा है (मुण्डक २।२।४)। तथा कामवासना को भी इषु माना है जिस द्वारा काम हृदय को बींधता है (अथर्व० ३।२५।१); काम का इषु प्लीहा (spleen) को सुखा देता है। (अथर्व० ३।२५।३)। इषुहस्तैः=जिनके हाथों में मानो मनोबल है, प्रबल इच्छा-शक्ति का बल है] [घा० ४०। उ० २। स्व० ७]

सूक्त २

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१८५२–बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः।
३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता
२र
रथानाम् ॥ १ ॥

(बृहस्पते) हे महाशक्तियों के स्वामिन्! (रथेन) हमारे शरीर-रथों द्वारा आप हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का (परि दीय) पूर्णतया क्षय कीजिये। आप (रक्षोहा) राक्षसी भावों-और-कर्मों के हनन करने वाले हैं, आप (अमित्रान्) इन अमित्रों के कार्यों में (अप बाधमानः) बाधारूप हैं। आप काम क्रोध आदि की (सेनाः) सेनाओं को (प्र भञ्जन्) छिन्न-भिन्न करते हुए, और (प्रमृणः) इन मारक शक्तियों पर (युधा जयन्) युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करते हुए, (अस्माकम्) हमारे (रथानाम्) शरीर-रथों तथा मनोरथों के (अविता एधि) रक्षक बनिये।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
१८५३—बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ
३ २
गोवित् ॥ २ ॥

हे परमेश्वर! आप (बलविज्ञायः) बल में विख्यात तथा बल द्वारा लभ्य हैं, (स्थविरः) कूटस्थ तथा पुराणपुरुष हैं, (प्रवीरः) जगत् के प्रेरक, (सहस्वान्) कामादि के पराभवकर्त्ता, (वाजी) सांसारिक-और-आध्यात्मिक अन्नों के पति, (सहमानः उग्रः) सहनशील तथा उग्र, (अभिवीरः) उपासक वीरों को अभिगत, प्राप्त, (अभिसत्वा) समग्र सत्पदार्थों के स्वामी, (सहोजाः) और ओजस्वी हैं। (इन्द्र) हे परमेश्वर! आप—(गोवित्) सभी इन्द्रिय शक्तियों से सम्पन्न (जैत्रम्) विजयशील (रथम्) हमारे शरीर-रथों के (आ तिष्ठ) अधिष्ठाता बनिये।

[बलविज्ञायः="नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" (मुण्डक ३।२।४)]

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१८५४—गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
इमँ सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रँ सखायो अनु सँ
२
रभध्वम् ॥ ३ ॥ ॥२ (हे) ॥

(सजाता:) हे साथी उपासको ! तुम,—(गोत्रभिदम्) पार्थिव-शरीरों की परम्परा के भेदन करने वाले, (गोविदम्) ऐन्द्रियिक-शक्तियों के दाता, (वज्रबाहुम्) न्यायवज्र को हस्तगत किये, (अज्म) देवासुर-संग्राम में (जयन्तम्) विजयी, और (ओजसा) अपने ओज द्वारा (प्रमृणन्तम्) आसुरी-शक्तियों के विनाशक (इमं इन्द्रम्) इस परमेश्वर की (अनु) अनुकूलता में (वीरयध्वम्) पापों के मुकाबिले में वीरता प्रदर्शन करो; (सखाय:) हे उपासक मित्रो ! इस सम्बन्ध में (अनु) परमेश्वर के सदृश तुम भी (संरभध्वम्) परस्पर मिल कर प्रयत्न करो।

[गौ:=इन्द्रिय (उषा० कोष, २।६७), अजमेर। गोत्र=इन्द्रियों द्वारा रक्षित=शरीर। अज्म=संग्राम (निघं० २।१७)]

[धा० ३६। उ० नास्ति। स्व० ७]

सूक्त ३

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१८५५—अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
३   १ २ ३ १ २ ३ २   २ ३ १ २   ३ २ ३ २
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकँ सेना अवतु प्र युत्सु ॥ १ ॥

(गोत्राणि) पापों के, पर्वत समान, सुदृढ़ गढ़ों को, (सहसा) बल द्वारा (अभि गाहमान:) उपासकों के समक्ष बिलोड़ने वाला, (अदय:) दया न करने वाला न्यायकारी, (वीर:) वीरता सम्पन्न, (शतमन्यु:) इकट्ठे हुए सैंकड़ों पापों पर मननपूर्वक क्रोध करने वाला, (दुश्च्यवन:) इस कर्तव्य में अटल, (पृतनाषाट्) कामादि की सेनाओं का पराभव करने वाला, (अयुध्य:) पापशत्रु जिसके साथ युद्ध करने में सशक्त नहीं हो सकते,—ऐसा (इन्द्र:) जगत्सम्राट् परमेश्वर, (युत्सु) देवासुर-संग्रामों में (अस्माकम्) हम उपासकों की (सेना:) देव-सेनाओं की (प्र अवतु) सर्वथा रक्षा करता है।

[अस्माकं सेना:—ब्रह्मचर्य, यमनियम, इन्द्रिय संयम, मनोनिग्रह, सत्य, श्रद्धा, उत्साह आदि सेनाएँ हैं, उपासकों की]

१ २   ३ २उ   ३ २ ३ १ २   ३ २   ३ १ २ ३ १ २
१८५६—इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
३   १ २   ३ १   २र   ३ १ २   ३ १ २
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥२॥

(इन्द्र:) परमेश्वर (आसाम्) इन देवसेनाओं का (नेता) नेता है, (बृहस्पति:) वेदवाणी का पति अर्थात् वैदिक-शिक्षा का गुरु (दक्षिणा) देव सेनाओं को प्रगति देने वाला तथा इनकी वृद्धि करने वाला है, (यज्ञ:) देव पूजा, सत्संग, तथा दान, अर्थात् आत्मसमर्पण, और (सोम:) भक्तिरस (पुर: एतु) सदा दृष्टि के सामने होने चाहियें, (अभि भञ्जतीनाम्) पाप सेनाओं के व्यूहों को तोड़ती हुई, तथा (जयन्तीनाम्) इन पर विजय पाती हुई, (देव सेनानाम्) दैवीसेनाओं के (अग्रम्) आगे (मरुत:) प्राण-वायुएँ अर्थात् प्राणायाम (यन्तु) चलें।

[देवसेना=ब्रह्मचर्य आदि (मन्त्र संख्या १८५५)। अभ्यास-मार्ग में सफ-

लता के साधन है,—(१) प्राणायाम, (२) श्रद्धा-भक्ति, (३) यज्ञभावनाएं (४) सद्गुरु सेवा, (५) परमेश्वरीय कृपा]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१८५७—इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुता ँ शर्ध
१ २
उग्रम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्
॥ ३ ॥ ३ ॥ (च) ॥

(वृष्णः) आनन्दरसवर्षी (इन्द्रस्थ) परमेश्वर का (उग्रं शर्धः) उग्र बल, (वरुणस्य) परमेश्वर का वरण करने वाले और (राज्ञः) शरीर के राजा अर्थात् जीवात्मा का उग्रबल, (आदित्यानाम्) अदित्य ब्रह्मचारी रूपी सद्गुरुओं का उग्र बल, (मरुताम्) प्राणायाम द्वारा नियन्त्रित प्राणों का उग्रवल,—आवश्यक हैं आसुरी-सेनाओं पर विजय पाने के लिये (मन्त्र सं० १८५६)। तदनन्तर (महामनसाम्) महामनोबल वाले महामनस्वी, (भुवनच्यवानाम्) भूमण्डल के पापों को च्युत कर देने वाले, (जयताम्) पापों पर विजय पाने वाले (देवानाम्) दिव्य व्यक्तियों के (घोषः) जयनाद (उदस्थात्) गूँज उठते हैं।

[घा० २७ । उ० १ । स्व० १]

सूक्त ४

१ ३ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
१८५८—उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मना ँसि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१॥

(मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर! (मामकानाम्) इन मेरे उपासक शिष्यों के (आयुधानि) देवासुर-युद्धसम्बन्धी आयुधों को (उद् हर्षय) खूब चमका-दीजिये, (सत्वनाम्) शक्तिशाली उपासक-शिष्यों के (मनांसि) मनों को आप (उद्) प्रसन्न कर दीजिये। (वृत्रहन्) हे पाप-वृत्र विनाशी! (वाजिनाम्) इन शक्तिशाली उपासक-शिष्यों की (वाजिनानि) शक्तियों को (उद्) उद्यम सम्पन्न कर दीजिये, ताकि (जयताम्) पापों पर विजय पाने वाले (रथानाम्) शरीर-रथों से (घोषाः) विजय घोष (उद् यन्तु) गूँज उठें।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१८५९—अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मा ँ उ देवा अवता हवेषु ॥२॥

जब दिव्य भावनाओं और आसुरी भावनाओं के (ध्वजेषु) झण्डे (समृतेषु) परस्पर-संगत अर्थात् पारस्परिक युद्ध में टकराने लगें, तब, (इन्द्रः) परमेश्वर (अस्माकम्) हमारा सहायक हो, (अस्माकम्) हम देवों के (या इषवः) जो बाण हैं (ताः) वे (जयन्तु) विजयी हों, (अस्माकम्) हम देवों के (वीराः) धर्मवीर

उपासक (उत्तरे भवन्तु) देवासुर-संग्रामों में श्रेष्ठ साबित हों। (देवाः) हे देवकोटि के उपासको! तथा हे हमारी दिव्य भावनाओ! (आ हवेषु) आसुरी-भावनाएँ जब हमें ललकारें, तब तुम (अस्मान्) हमारी (आवत) रक्षा कीजिये।

[इषवः, देखो (मन्त्र १८५१ तथा १८५५)। लौकिक संस्कृत-साहित्य में भी रथ, इषु, शस्त्र, अग्नि आदि के अप्राकृतिक स्वरूपों का वर्णन मिलता है। यथा—"कामाग्नि" पद में काम को "अग्नि" कहा है। इसी प्रकार "ज्ञानाग्नि" पद में ज्ञान को "अग्नि" कहा है। वाक् को "वज्र" कहा है "वाग्वज्रः यजमानं हिनस्ति"(महाभाष्य)। "काम-पत्नी" पद में रति को काम की "पत्नी" कहा। "कामसखः" पद में "वसन्तऋतु" को काम को सखी कहा जाता है, असङ्ग को "शस्त्र" कहा है "असङ्गशस्त्रेण दृढ़ेन छित्त्वा" (गीता १५।३)। 'मनोरथ" पद में इच्छा को मन का "रथ" कहा है। "कामायुध" पद में आम्रवृक्ष को काम का आयुध कहा है,—इत्यादि]

३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १२
१८६०—असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २
तां गहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात्।
॥ ३ ॥ ॥४(चृ)

(मरुतः) हे प्राणायाम के अभ्यासी उपासको! (परेषाम्) शत्रुरूप आसुर-भावों की (असौ) वह (सेना) सेना, (या) जोकि (स्पर्धमाना) मानो दिव्यभावों के साथ स्पर्धा करती हुई सी, (ओजसा) अपने पूरे बल के साथ, (नः) हमारी (अभि) ओर (एति) मानो चढ़ाई कर आती है, (ताम्) उस सेना को (गहत) तुम छिपा दो, निरुद्धवृत्तिक कर दो, जैसे कि (तमसा) अन्धकार के द्वारा (अपव्रतेन) किसी को चेष्टा हीन कर दिया जाता है, (यथा) ताकि आसुर-सैनिक अर्थात् काम, क्रोध, लोभ आदि, जो कि इकट्ठे मिलकर हम पर आक्रमण करते थे, (एषाम्) इन में से (अन्यः अन्यं न जानात्) प्रत्येक एक-दूसरे को जान-पहिचान न पाएँ, अर्थात् ये सामूहिकरूप में न हो कर अलग-अलग हो जाँय, अर्थात् इनकी सामूहिकशक्ति के क्षय हो जाने पर शेष रहे इक्के-दुक्के को भी आसानी से क्षीण किया जा सके।

[वा० ३२। उ० १। स्व० ५]

सूक्त ५

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१८६१—अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्
॥ १ ॥

(अप्वे) आसुरी भावनाओं को पृथक् कर उन्हें भगा देने वाली हे आध्यात्मिक-शक्ति! (एषाम्) इन आसुरी-भावनाओं की (चित्तम्) मानो चेतनता को, (प्रति) इन में से प्रत्येक की चेतनता को, (लोभयन्ती) विलुप्त करती हुई, (अङ्गानि) इनमें से प्रत्येक के अङ्गप्रत्यङ्गों को, अर्थात् कामादि के वर्ग-उपवर्गों को (गृहाण) जकड़ दे, ताकि ये कार्य करने में असमर्थ हो जाँय (अभि प्रेहि) इन पर तू आक्रमण कर, (परेहि) इन्हें दूर भगा दे, (हृत्सु) उपासकों के हृदयों में,—अभी

तक कामादि द्वारा घिरे रहने के कारण जो (शोकैः) शोक-सन्ताप पैदा हुए हैं उस द्वारा, (निर्दह) कामादि को परिदग्ध कर दे। (अमित्राः) ये अमित्र कामादि, (अन्धेन तमसा) मानो गहरे अन्धकार से (सचन्ताम्) संयुक्त हो जायें, गहरे अन्धकार में छिप जायें, ये निश्चेष्ट हो जायें।

[अप्वा=अप (पृथक्)+वा (गतौ)]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १

१८६२—प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ २ ॥

(नरः) हे उपासक नर-नारियो ! (प्रेत) आगे बढ़ो, (जयत) और विजय प्राप्त करो, (इन्द्रः) परमेश्वर (वः) तुम्हें (शर्म) शान्ति दे और अपना आश्रय दे। (वः) तुम्हारी (बाहवः) शत्रु को विलोड़ित करने की शक्तियां (उग्राः सन्तु) उग्र हो जाँय, (यथा) ताकि तुम (अनाधृष्या असथ) कामादि द्वारा न दबाए जा सकने योग्य हो जाओ।

[शर्म=सुख (निघं० ३।६); तथा शर्म=शरणम् (निरुक्त० १२।४।४५)। बाहवः=वाधृ विलोड़ने (उणा० कोष, १।२७)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१८६३—अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसँ शिते ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः

३ ॥५ (टा)

(शरव्ये) राग-द्वेष तथा काम-क्रोध आदि को विशीर्ण करने वाली हे परा-विद्या, ब्रह्मविद्या रूपी अस्त्र ! (अवसृष्टा) चलाया गया तू (परा पत) कामादि शत्रुओं पर जा गिर। हे ब्रह्मविद्या ! तू (ब्रह्म संशिते) स्वयं ब्रह्म द्वारा सुशिक्षित हुई है, (गच्छ) जा, (अमित्रान्) कामादि अमित्रों को (प्र पद्यस्व) प्राप्त हो। (अमीषाम्) इन अमित्रों में से (कं चन) किसी को भी (मा उच्छिषः) शेष न छोड़, सब को नष्ट कर दे।

[घा० १८। उ० २। स्व० २]

सूक्त ६

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१८६४—कंका सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयाँ स्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१॥

(कङ्काः) बगुले, (सुपर्णाः) मुर्गे आदि, (एनान्) इन आसुरी-कर्मों में (अनु) निरन्तर (यन्तु) लगे रहते हैं। (असौ) वह (सेना) आसुरी-सेना (गृध्राणाम्) गीधों का (अन्नम् अस्तु) अन्न होता है। (एषाम्) इन आसुरी-सैनिकों में से कोई भी (मा मोचि) नाश से मुक्त न हो, (अघहारः च) इनमें से जो भी हमें पाप की

ओर खींच कर ले जाता है वह (न) नाश से मुक्त न हो। (इन्द्र) हे परमेश्वर (वयांसि) कौए आदि (एनान्) इन आसुरी-कर्मों में (अनु) निरन्तर (सं यन्तु) पूर्णरूप से लगे रहते हैं।

[कङ्क, सुपर्ण, गृध्र और वयांसि,—ये अपनी-अपनी विशिष्ट आसुरी-वृत्तियों या आसुरी-कर्मों के निर्देशक हैं। "कङ्क" का अर्थ है "बगुले"। जो बाहिर से तो धर्मात्मा प्रतीत होता हो, और भीतर से छली-कपटी हो, उसे बगुला-भक्त कहते हैं। ये दूसरों को हितैषी होने का विश्वास दिला कर अन्त में उन्हें नुकसान पहुंचाते हैं। यह बगुला-वृत्ति आसुरी-वृत्ति है। सुपर्ण का अर्थ "मुर्गा" भी है। मुर्गे को कुक्कुट भी कहते हैं। कुक्कुटी-वृत्ति के लिये। आपटे ने Hypoceiry तथा Interested observance of religous rites लिखा है। अर्थात् पाखण्ड, और लाभ-भावना से धर्मकृत्य करना। गृध्र अर्थात् गीध, गर्धा अर्थात् अतिलोभ का सूचक है। वयांसि अर्थात् कौए, चालाकी, आंख बचा कर परद्रव्यापहरण, केवल खाने-पीने के लिये देर तक जीवित रहना आदि के सूचक हैं। ये और ऐसी दुर्वृत्तियाँ पशु-पक्षियों की होती हैं। उपासकों को इन दुर्वृत्तियों को सर्वथा त्याग देना चाहिये, और इस निमित्त परमेश्वरीय-सहायता की प्रार्थना करते रहना चाहिये]

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
१८६५—अमित्रसेनां मघवन्नस्मां छत्रुयतीमभि।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

(अमित्रसेनाम्) हमारे साथ स्नेह न करने वाली (शत्रुयतीम्) अपितु शत्रुता करने वाली आसुरी-सेना को, (मघवन्) हे आध्यात्मिक-सम्पत्तियां देने वाले! तथा (वृत्रहन्) हे पाप-वृत्रों का हनन करने वाले (इन्द्र) परमेश्वर! आप (च) और (अग्निः) आप द्वारा दी गई यथार्थज्ञानरूपी अग्नि, (उभौ) तुम दोनों मिल कर, (अभि) हमारे सम्मुख ही (ताम्) उस आसुरी-सेना को, (प्रति) उसके प्रत्येक सैनिक को, (दहतम्) दग्ध कर दीजिये।

[इस मन्त्र में भी आध्यात्मिक-शत्रुओं का ही वर्णन है]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१८६६—यत्र वाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥ ॥६ (या) ॥

(विशिखाः) जिनका अभी शिखा-संस्कार नहीं हुआ ऐसे (कुमाराः) छोटे बालक, (इव) जैसे किसी अभिलषित वस्तु की ओर (सं पतन्ति) युगपत् दौड़ पड़ते हैं, वैसे (यत्र) जिस देवासुर-संग्राम में उपासकों के (वाणाः) आध्यात्मिक-वाण (सं पतन्ति) कामादि शत्रुओं पर युगपत् गिरते हैं, (तत्र) उस देवासुर-संग्राम में, (अदितिः) अविनाशी (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्डपति परमेश्वर (नः) हमें (शर्म) अपना आश्रय (यच्छतु) प्रदान करे, और सुखशान्ति प्रदान करे, (विश्वाहा) सब

दिनों में (शर्म यच्छतु) हमें अपना आश्रय प्रदान करे, और सुखशान्ति प्रदान करे।

[शर्म=सुख (निघं० ३।६); गृह (निघं० ३।४)]

[धा० २७। उ० नास्ति। स्व० २]

सूक्त ७

२र ३ १ २र ३ १ ३ २ ३ १ १

१८६७—वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ १ ॥

(वृत्रहन्) हे पाप-वृत्रघाती (इन्द्र) परमेश्वर! (रक्षः) हमारे राक्षसी अर्थात् तामसिक-दुर्भावों का (वि जहि) आप हनन कीजिये, (मृधः) संग्रामोद्यत राजसिक-दुर्भावों का आप (वि) हनन कीजिये, (वृत्रस्य) हमारी बुद्धियों पर आवरण डाल देने वाले पाप-शत्रु की (हनू) हनन-शक्तियों को आप (वि रुज) भग्न कर दीजिये। (अभिदासतः) जो दुर्भाव हमें अपना दास बनाए हुए हैं उस (अमित्रस्य) मित्रता न करने वाले शत्रु की (मन्युम्) उग्रता का (वि) आप हनन कर दीजिये।

[कामादि द्वारा हनन दो प्रकार से होता है, मानसिक और शारीरिक। इसलिये "हनू" में द्विवचन है]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१८६८—वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।

२ ३ १ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! जो दुर्भावनाएँ (नः) हमारे साथ (मृधः) संग्राम कर रही हैं उनका आप (वि जहि) हनन कीजिये, और जो दुर्भावनाएँ (पृतन्यतः) सेना बन कर हम पर इकट्ठा आक्रमण करना चाहती हैं, अर्थात् जो अभी संस्कार रूप में हैं, अभी उद्बुद्ध नहीं हुईं, उन्हें (नीचा यच्छ) नीचे ही दबा दीजिये, ताकि वे उद्बुद्ध न होने पाएँ। (यः) जो दुर्भाव (अस्मान्) हमें (अभिदासति) साक्षात् दास बनाए हुए है, उस (तमः) तामसिक (अधरम्) नीच भाव को (गमय) हम से पृथक् कर दीजिये।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २

१८६९—इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ।

१ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३

तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणाँ

१ २ ३ २

सहो महत् ॥ ३ ॥ ॥७ (थि)॥

(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (बाहू) दो बाहुएँ अर्थात् "निग्रह-और-अनुग्रह", (स्थविरौ) जगत् के शासन में स्थिररूप से कार्य कर रहे हैं, कार्य करने में ये दोनों (युवानौ) सदा युवारूप हैं, (अनाधृष्यौ) ये दबाए नहीं जा सकते (प्रतीकौ) ये

दोनों जीवात्माओं के शुभाशुभ कर्मों के प्रतिबिम्बरूप हैं, (असह्यौ) इन का कभी पराभव नहीं हो सकता, (योगे) आसुरशक्तियों के साथ सांमुख्य का (आगते) अवसर आ जाने पर, उपासक, (तौ प्रथमौ) इन दो मुख्य तत्त्वों का (युञ्जीत) सदा सहारा समझे, (याभ्याम्) जिन दो तत्त्वों द्वारा (असुराणाम्) आसुरी-भावों का (महत् सहः) महाबल (जितम्) जीता जाता है।

[प्रतीकम्=Image (आपटे)। सच्चा उपासक विश्वास रखे कि परमेश्वर उस पर अनुग्रह करेगा, और उसके काम आदि शत्रुओं का निग्रह करेगा]

[घा० २९। उ० २। स्व० ३]

सूक्त ८

१८७०—मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥

हे उपासक! (ते) तेरे (मर्माणि) मर्म-स्थानों को, उन स्थानों को जिन पर कि कामादि द्वारा प्रहार किये जा सकते हैं,—मैं सद्गुरु,—(वर्मणा) ब्राह्मी-कवच द्वारा, [मन्त्र १८७२; १८७४] (आच्छादयामि) आच्छादित करता हूं। (सोमः) जगत्प्रेरक-तथा-सर्वोत्पादक (राजा) जगत् का राजा परमेश्वर (त्वा) तुझे (अमृतेन) आनन्दरसामृत द्वारा (अनु) निरन्तर (वस्ताम्) आच्छादित रखे। (वरुणः) पापनिवारक परमेश्वर (ते) तेरे लिये (उरोः वरीयः) महान् से भी महान् मोक्षसुख (कृणोतु) प्रकट करे। (जयन्तं त्वा) जब तू कामादि पर विजय पा रहा हो तब (देवाः) देवकोटि के उपासक तुझे देख कर (अनु मदन्तु) प्रसन्न हो जायें।

[मर्माणि=पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन, तथा बुद्धि,—ये मर्मस्थान हैं। विषयों के प्रहार होते हैं पांच ज्ञानेन्द्रियों पर, और इन प्रहारों के संस्कार पड़ते हैं, मन पर। मानसिक संस्कारों के अनुसार बुद्धि बनती है। वर्मणा=देखो (मन्त्र १८७२)]

१८७१—अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥

(अमित्राः) स्नेह न करने वाले हे आसुर-शत्रुओ! (अन्धाः भवत) तुम्हारी मारकशक्तियां कुण्ठित हो जायें, (अशीर्षाणः) सिर-कटे (अहयः इव) सांपों की तरह तुम अपने विषप्रयोगों से रहित (भवत) हो जाओ। हे आसुर-शत्रुओ! (तेषां वः) तुम जब (अग्निनुन्नानाम्) ज्ञानाग्नि के प्रकाश द्वारा धकेल दिये जाओ, तो तुम में से (वरं वरम्) प्रत्येक को चुन-चुन कर (इन्द्रः) परमेश्वर (हन्तु) विनष्ट कर दे।

[अन्धाः=यह प्रयोग लाक्षणिक है। यथा:—मदान्धाः, दर्पान्धाः, अन्धकार। विषयप्रयोग का अभिप्राय है विषयसम्बन्ध]

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१८७२—यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ ३
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म
१ २र
ममान्तरम् ॥ ३ ॥ ॥८ (वी) ॥

(यः) जो (अरणः) आसुर-शत्रु अर्थात् कामक्रोध आदि (स्वः) हमारा निज-उपार्जित है, (यः च) और जो (निष्ट्यः) बाहर का है, माता-पिता आदि द्वारा हमें प्राप्त हुआ है.— इनमें से जो भी (नः) हम उपासकों की (जिघांसति) हिंसा करने को उन्मुख है, (सर्वे देवाः) हमारी उपार्जित सब दिव्यशक्तियां (तम्) उस आसुर-शत्रु की (धूर्वन्तु) हिंसा कर दें। इस निमित्त (ब्रह्म) वेद-तथा-परमेश्वर (मम) हम प्रत्येक उपासक की (आन्तरम्) अभ्यन्तर (वर्म) कवच हो, तथा (शर्म) ब्रह्मानन्दरस की प्राप्ति (मम) हम प्रत्येक उपासक की (आन्तरम्) आभ्यन्तर (वर्म) कवच हो।

[अरणः=अरमणीयः । अथवा "ऋ" (रेषणे) । अथवा अ+रण (शब्दे) =अवघम् (पापम्) । आन्तरं वर्म=राजनैतिक युद्ध में कवच लोहे की होती है, और शरीर के बाहर भाग पर पहनी जाती है। परन्तु मन्त्र में यह कवच ब्राह्मी कही है, और आभ्यन्तर कवच है। ब्राह्मी कवच का अभिप्राय है वेद और परमेश्वर रूपी कवच। वेद का श्रवण और वैदिकभावनाओं का मनन, तथा परमेश्वर के निज "ओ३म्" नाम का निरन्तर जाप। यह ब्राह्मीकवच ऐन्द्रियिक शक्तियों, मन, और बुद्धि की है, आभ्यन्तर कवच है। इस ब्राह्मी कवच के रहते, पाप, इन आभ्यन्तर तत्त्वों पर प्रभावशून्य हो जाते हैं। इस प्रकार यह समग्र प्रकरण आध्यात्मिक-युद्ध का वर्णन करता है। सामवेद उपासना का वेद है। उपासना का वर्णन करते हुए उपसंहार में राजनैतिक युद्ध का वर्णन असामयिक प्रतीत होता है। अतः उपसंहार में आध्यात्मिक युद्ध का ही वर्णन समझना चाहिये]

[धा० २५ । उ० नास्ति । स्व० ४]

सूक्त ९

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
१८७३—मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था
१ २
परस्याः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २र
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो
नुदस्व ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे परमेश्वर! आप आसुरभावों के प्रति (मृगः न) सिंह के सदृश (भीमः) भीम हैं, आसुरभावों के विनाश के लिये आप (कुचरः) पृथिवी पर विचर रहे हैं। आप (गिरिष्ठाः) हमारी वाणियों में स्थित हैं। आप (परस्याः परावतः) चिरकाल से पराङ्मुखता का त्याग कर (आ जगन्थ) हमारी ओर आइये, हमारे

हृदयों में प्रकट हूजिये। हे परमेश्वर! आप अपने (सृकम्) सर्वत्र प्रसरित (तिग्मम्) तीक्ष्ण (पविम्) वज्रको (संशाय) और अधिक तेज करके (शत्रून्) काम आदि शत्रुओं की (वि ताढि) विशेष ताड़ना कीजिये, और (मृधः) संग्रामकारी इन शत्रुओं को (वि नुदस्व) परे धकेल दीजिये।

[गिरिष्ठाः=गीः (वाणी)+स्था (स्थित)। "सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्" अर्थात् परमेश्वर मनुष्यों के सत्यानृत व्यवहारों को देखता है। कुचरः=कु (पृथिवी)+चर]

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

१८७४—भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥२॥

(देवाः) हे देवो! हम उपासक (कर्णेभिः) कानों से सदा (भद्रम्) कल्याणकारी वचन (शृणुयाम) सुनते रहें, (यजत्राः) हे यज्ञिय भावनाओं द्वारा रक्षा करने वालो! (अक्षभिः) आँखों द्वारा, हम उपासक, सदा (भद्रम्) कल्याणकारी दृश्य (पश्येम) देखते रहें; (स्थिरैः) सुदृढ़ (अंगैः) अंगों द्वारा सुदृढ़ (तनूभिः) शरीरों के साथ वर्तमान हम, (तुष्टुवांसः) परमेश्वर के स्तुतिगान करते हुए, (देवहितम्) परमेश्वर प्रदत्त (यद्) जो (आयुः) आयु है उसे (व्यशेमहि) प्राप्त करें।

[मन्त्र १८७२ में जिन आभ्यन्तर तत्वों का कथन किया गया है उसके दृष्टान्तरूप में "कर्णेभिः" और "अक्षभिः" का वर्णन है]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

१८७५—स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

३ २ ३ २ ३ १ २

ॐ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ ३॥॥ ९ (कृ)॥

(वृद्धश्रवाः) प्रवृद्ध कीर्ति वाला (इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी हो, (पूषा) सदा पुष्टि करने वाला (विश्ववेदाः) विश्ववेत्ता परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी हो, (तार्क्ष्यः) सर्वत्रव्याप्त और (अरिष्टनेमिः) ब्रह्माण्ड चक्र की सुदृढ़ नेमि रूप परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी हो, (बृहस्पतिः) बड़ी से बड़ी शक्तियों का स्वामी (नः) हम में (स्वस्ति) कल्याणभावना (दधातु) स्थापित करे, और उसे पुष्ट करे। (बृहस्पतिः—दधातु) पूर्ववत्।

[दो वार पाठ कल्याणभावना की परिपुष्टि के लिये है]

[धा० २६। उ० १। स्व० ६]

॥ इति नवमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः, नवमप्रपाठकश्च समाप्तः॥ ९—३॥

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः॥ २१॥ ॥ इत्युत्तरार्चिकः समाप्तः॥

॥ सामवेद का आध्यात्मिक भाष्य समाप्त॥


वेद "सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है।
— महर्षि दयानन्द